देख कबीरा रोया

प्रवचन-क्रम

1. एक मृत महापुरुष का जन्म...3
2. संचेतना के ठोस आयाम..19
3. एक और असहमति..35
4. लकीरों से हट कर..48
5. अतीत के मरघट से मुक्ति...62
6. तोड़ने का एक और उपक्रम...76
7. उगती हुई जमीन...89
8. अंधेरे कूपों में हलचल..102
9. गांधी का चिंतन अवैज्ञानिक है..113 10..मेरी दृष्टि में रचनात्मक क्या है?
.... 127
11...................................गांधीवाद ही नहीं, वाद मात्र के विरोध में हूं
.... 142
12...समाजवाद का पहला कदमः पूंजीवाद
.... 161
13..समाजवादः पूंजीवाद का विकास
.... 197
14..पूंजीवाद का दर्शन
.... 220
15..भौतिक समृद्धि: अध्यात्म का आधार
.... 246
16...विध्वंसः सृजन का प्रारंभ
.... 264
17..असली अपराधीः राजनीतिज्ञ
.... 280
18..प्रेम-विवाहः जातिवाद का अंत
.... 314
19...परस्पर-निर्भरता और विश्व नागरिकता
.... 331
20..वैज्ञानिक विकास और बदलते जीवन-मूल्य
.... 355
21..गांधीवादी कहां हैं?
.... 372
22...विचार-क्रांति की भूमिका
.... 392
1

23..गांधी की रुग्ण -दृष्टि
....414
24..राष्ट्रभाषाः अ -लोकतांत्रिक
....431
25..समाजवादः परिपक्व पूंजीवाद का परिणाम
....459
26...गांधीवादः दरिद्रता का दर्शन
....475
27...गांधी पर पुनर्विचार
....492
28...अनिवार्य संतति -नियमन
....513
29...गांधी से मुक्ति
....545
30...देख कबीरा रोया
....555

देख कबीरा रोया
पहला प्रवचन

एक मृत महापुरुष का जन्म

मेरे प्रिय आत्मन्!
वेटिकन का पोप अमरीका गया हुआ था। हवाई जहाज से उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहाः एक बात ध्यान रखना, उतरते ही हवाई अड्डे पर पत्रकार कुछ पूछें तो थोड़ा सोच-समझ कर उत्तर देना। और हां और न में तो उत्तर देना ही नहीं। जहां तक बन सके, उत्तर देने से बचने की कोशिश करना; अन्यथा अमेरिका में आते ही परेशानी शुरू हो जाएगी।
पोप जैसे ही हवाई अड्डे पर उतरा, वैसे ही पत्रकारों ने उसे घेर लिया
और एक पत्रकार ने उससे पूछाः वुड यू लाइक टु विजिट एनी न्युडिस्ट कैंप वाइल इन न्यूयार्क? क्या तुम कोई दिगंबर क्लब, कोई न्युडिस्ट क्लब, कोई नग्न रहने वाले लोगों के क्लब में, न्यूयार्क में रहते समय जाना पसंद करोगे?
पोप ने सोचा, हां और न में उत्तर देना खतरनाक हो सकता है। हां कहने का मतलब होगा कि मैं जाना चाहता हूं देखने। न कहने का मतलब होगा कि जाने से डरता हूं। उत्तर देने से बचने के लिए उसने उलटा प्रश्न पूछा। उसने पूछाः इ.ज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? कोई न्यूयार्क में नंगे लोगों का क्लब है? फिर बात दूसरी चल पड़ी। उसने सोचा कि छुटकारा हुआ।
लेकिन दूसरे दिन सुबह अखबारों में पहले ही पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में खबर छपी थी। खबर थी कि महामहिम परम पूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही पत्रकारों से पहली बात यह पूछी, इ.ज देयर एनी न्युडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? कोई नंगे लोगों का क्लब है न्यूयार्क में? यह उतरते ही पहली बात पत्रकारों से महामहिम पोप ने पूछी।
कुछ ऐसा ही मामला मेरे और पत्रकारों के बीच भी हो गया। लेकिन मेरे संबंध में और पत्रकारों के बीच में और पोप और पत्रकारों के बीच हुई बात में थोड़ा फर्क है। एक तो फर्क यह है कि मैंने हां और न में उत्तर दिए। मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं कि उत्तरों से बचने की कोशिश करूं। घुमाव-फिराव से मुझे कोई नाता और संबंध नहीं है। जो बात मुझे ठीक लगे और जैसी लगे वैसा ही कह देने को मैं कर्तव्य समझता हूं। मेरे उत्तरों तक तो ठीक था, लेकिन उन उत्तरों को इस तरह बिगाड़ कर, विकृत करके अधूरे प्रसंग के बाहर उपस्थित किया गया।
मैं तो यहां नहीं था, पंजाब था। लौटा तो यहां देख कर बहुत हैरानी मालूम पड़ी और आश्चर्य मालूम पड़ा कि चीजें इस रंग में भी पेश की जा सकती हैं। लेकिन मित्र तो घबड़ाए हुए थे। मैं खुश हुआ। मैंने कहाः इससे घबड़ाने की बात नहीं। एक लिहाज से पत्रकारों ने बड़ी कृपा की है और भविष्य में भी ऐसी ही कृपा करते रहेंगे तो अच्छा होगा। बहुत लोगों तक खबर पहुंच गई, बात पहुंच गई। कोई फिकर नहीं कि गलत ढंग से पहुंची। लेकिन वे मुझे सुनने आ सकेंगे तो उन्हें ठीक बात का बोध हो सकेगा।
कई बार कुछ लोग जिन बातों को सोचते हैं कि अभिशाप बन जाएंगी, वे ही बातें वरदान भी बन सकती हैं।
मैं राजकोट गया, वहीं से लौटा आज। वहां मित्र बहुत घबड़ाए हुए थे। लेकिन परिणाम यह हुआ कि जहां दस हजार लोग मुझे सुनते थे, वहां बीस हजार लोगों ने मुझे सुना। वे समझ कर गए और आश्चर्य करते गए कि चीजों को यह रंग और यह रूप भी दिया जा सकता है। जो मैंने बात की थी इन तीन दिनों में, उसी संबंध में पूरी बात मुझे करनी है।
मेरी दृष्टि में भारत के दुर्भाग्यों में से एक दुर्भाग्य यह रहा है
कि हम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में आज तक भी समर्थ नहीं हो पाए। और जो कौम अपने महापुरुषों की आलोचना करने में समर्थ नहीं हो पाती, उस कौम के संबंध में दो ही बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि वह अपने महापुरुषों को इस योग्य नहीं समझती कि उनकी आलोचना की जा सके या अपने महापुरुषों को इतना कमजोर और साधारण समझती है कि आलोचना में वे टिक नहीं सकेंगे।

मैं गांधी के संबंध में ये दोनों ही बातें मानने को तैयार नहीं हूं। मेरी समझ में गांधी कोई कागजी महापुरुष नहीं हैं कि आलोचना की वर्षा आएगी और उनका रंग-रोगन बह जाएगा। कुछ कागजी महापुरुष होते हैं उन्हें आलोचना से बचाया जाना चाहिए, क्योंकि वे आलोचना में खड़े नहीं रह सकते हैं। लेकिन गांधी को मैं कागजी महापुरुष नहीं मानता, वे कोई कागज की प्रतिमा नहीं हैं कच्चे रंग में रंगी हुई कि वर्षा आएगी आलोचना की और सब नष्ट हो जाएगा। गांधी को मैं दुनिया के उन थोड़े से महापुरुषों में से एक मानता हूं,
जो पत्थर की प्रतिमाओं की तरह हैं, जिन पर वर्षा होती है तो धूल बह जाती है, प्रतिमा और निखर कर प्रकट होती है।
गांधी कोई कच्चे महापुरुष नहीं हैं। लेकिन गांधी के पीछे जो अनुयायियों का वर्ग है, वह शायद स्वयं कच्चा है, इसलिए गांधी को भी कच्चा मान लेता है। खुद के भय ही हम अपने महापुरुषों पर भी आरोपित कर देते हैं। हमारी अपनी ही हालतें हम अपने महापुरुषों पर भी थोप देते हैं। गांधी की आलोचना निश्चित की जानी चाहिए। क्योंकि गांधी की आलोचना से गांधी का तो कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है, हमारा जरूर कुछ हित हो सकता है।
यह बात अत्यंत अप्रौढ़ और इम्मैच्योर मालूम होती है कि हम अपने महापुरुषों की सिर्फ पूजा करें और कभी कोई सृजनात्मक आलोचना, क्रिएटिव क्रिटिसिज्म न करें। यह भी कुछ भय मालूम होता है पीछे कि कहीं हमारे महापुरुष की कोई भूल न खयाल में आ जाए।
ध्यान रखना चाहिए कि पृथ्वी पर ऐसा कोई मनुष्य कभी नहीं हुआ है जिससे भूलें न होती हों। एक बात का फर्क होता है--छोटे लोग छोटी भूलें करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं। महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते हैं। लेकिन पृथ्वी पर कोई मनुष्य कभी नहीं होता जिससे भूल न होती हो। जिससे भूल नहीं होती है वह मोक्ष चला जाता है। उसे पृथ्वी पर आने की कोई जरूरत ही नहीं होती है।
लेकिन हमारे मन में यह घबड़ाहट रहती है कि हमारे महापुरुष की कोई भूल, कोई गलती खयाल में न आ जाए। इसलिए पूजा करो, प्रार्थना करो, उपासना करो, लेकिन विचार कभी मत करना।
क्योंकि ध्यान रहे, जैसे ही विचार शुरू होगा, आलोचना प्रारंभ होती है। बिना आलोचना के विचार कभी होता ही नहीं है। पूजा हो सकती है, स्तुति हो सकती है, प्रशंसा हो सकती है। लेकिन वह विचार नहीं है। और जो कौम अपने महापुरुषों पर विचार नहीं करती, उसके महापुरुषों का जीवन व्यर्थ हो जाता है, वह उसके कौम के काम में ही नहीं आ पाता है।
हम तीन-चार हजार वर्षों से यही कर रहे हैं! महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं, राम हैं। हमें उनकी पूजा करनी है, विचार उन पर कभी नहीं करना है? ध्यान रहे, जिन पर हम विचार नहीं करते हैं, उनका हमारे जीवन पर कोई संस्पर्श, हमारे जीवन को परिवर्तन करने वाला कोई भी प्रभाव कभी नहीं पड़ता है।
पूजा से हम रूपांतरित नहीं होते हैं, विचार से हम रूपांतरित होते हैं। और पूजा हो सकता है सिर्फ हमारी तरकीब हो महापुरुषों से बच जाने की। और मुझे तो ऐसा ही लगता है कि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसी को भगवान बना कर मंदिर में बिठा देते हैं। फिर हमारी झंझट समाप्त हो जाती है। कभी दो फूल चढ़ा आते हैं, कभी माला पहना आते हैं, कभी स्तुति कर लेते हैं, कभी जन्म-दिन मना लेते हैं और हमसे उसका फिर कोई संबंध नहीं रह जाता!
जिस महापुरुष को हमें व्यर्थ करना हो, उसकी हमने तरकीब निकाल ली है कि
हम उसकी पूजा करेंगे, स्तुति करेंगे, लेकिन उस पर विचार नहीं करेंगे। क्योंकि विचार करने का परिणाम एक ही हो सकता है कि विचार करने से वह हमें इस योग्य मालूम पड़े कि हम अपने जीवन को बदलें।
लेकिन हम बहुत होशियार हैं, यह देश बहुत होशियार है, अपने आप को धोखा देने में। यह देश सोचता है कि हम महावीर की पूजा करते हैं तो हम बड़ा भारी काम कर रहे हैं; कि हम बुद्ध की पूजा करते हैं तो शायद बुद्ध पर कोई उपकार कर रहे हैं, या गांधी की पूजा शुरू की है तो गांधी पर हमारा कोई अनुग्रह हो रहा है। इस भ्रांति में रहने की जरूरत नहीं है। महापुरुष पूजा के लिए न

पैदा होते हैं, न उनकी पूजा की कोई लालसा है। और जिसके मन में पूजा की लालसा हो; वह और कुछ भी हो, महापुरुष नहीं हो सकता है।
महापुरुष का उपयोग यह है कि वह हमारे जीवन में, हमारे खून में, हमारे विचार में, हमारी प्रतिभा में प्रविष्ट हो सके।
और हमारी प्रतिभा में किसी को द्वार तभी मिलता है, जब हम विचार करते हैं, आलोचना करते हैं, खोज-बीन करते हैं, अन्वेषण करते हैं, तब प्रवेश मिलता है हमारी प्रतिभा के भीतर।
हमारे सारे महापुरुष भारत की प्रतिभा के बाहर खड़े हुए हैं, मंदिरों में बंद। भारत के प्राणों में उनका कोई प्रवेश नहीं हो सका है।
मैं नहीं चाहता हूं कि पुराने महापुरुषों की तरह गांधी जैसा अदभुत व्यक्ति भी व्यर्थ हो जाए। इसलिए मैं चाहता हूं कि गांधी पर जितनी सतेज आलोचना और विचार हो सके उतना ही सौभाग्य मानना चाहिए। लेकिन वह जो गांधी के पीछे चलने वाले गांधीवादियों का तपका है, वह इस बात से बहुत घबड़ाता है। वह क्यों घबड़ाता है? वह इसलिए घबड़ाता है कि उसे डर है कि गांधी की आलोचना अंततः गांधीवादी की आलोचना बन सकती है। उसका भय। उसका भय यह नहीं है कि गांधी की आलोचना से उसको कोई परेशानी होने वाली है। उसका भय यह है कि गांधी की आड़ में वह खुद छिपा हुआ है और गांधी की आलोचना कहीं उसकी आलोचना न बन जाए। इसलिए वह गांधी की आलोचना और विचार करने से बचना चाहता है। वह कहता है पूजा के थाल चलाओ और गांधी को भगवान बना लो। मैं भगवान से एक ही प्रार्थना करता हूं कि कृपा करना, गांधी को भगवान मत बनने देना। क्योंकि जितने लोग हमारे पहले भगवान बन गए हैं, वे भगवान बनते ही व्यर्थ हो गए। समाज और देश के लिए उनका कोई उपयोग नहीं रह गया।
गांधी एक अदभुत व्यक्ति हैं। शायद पृथ्वी पर दो-चार लोग ही उस कोटि के पैदा हुए हैं। लेकिन पीछे चलने वाले लोग हमेशा महापुरुष की हत्या करने की कोशिश करते हैं। वह हत्या उनको भगवान बना कर की जाती है।
जिस आदमी को भी भगवान बना दिया, उसकी आदमी की तरह हत्या हो गई। भगवान
की तरह स्थापना हो गई, आदमी की तरह हत्या हो गई।
और हम आदमियों से ही प्रभावित हो सकते हैं और आदमियों के साथ ही हम जी सकते हैं और आगे चल सकते हैं। गांधी के साथ फिर वही शरारत शुरू हो गई जो हमने राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर के साथ की थी। लेकिन हम अतीत की भूलों से कुछ सीखते भी मालूम नहीं पड़ते हैं।
मैं चाहता हूं कि गांधी को हम मनुष्य ही बनाए रखें, ताकि वे हमारी मनुष्यता के काम आ सकें। हम उन पर निरंतर विचार कर सकें, सोच सकें और आगे बढ़ सकें। इस खयाल से मैंने उनकी कुछ आलोचना की थी।
मुझे अनेक पत्र पहुंचे कि जो व्यक्ति मर चुका है उसकी आलोचना हमें नहीं करनी चाहिए। मैंने उन पत्रों के उत्तर में लिखा कि शायद तुम्हें पता नहीं है कि गांधी उन लोगों में से नहीं हैं जो इतनी आसानी से मर जाएं। गोडसे ने जो भूल की थी वही गांधीवादी भी भूल करते हैं। गोडसे ने भूल की थी कि गोली मार देंगे, इस आदमी का शरीर मर जाएगा, तो यह गांधी मर जाएगा। गांधीवादी भी समझते हैं कि शरीर गिर गया गांधी का तो गांधी मर गए। अब उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए।
यह बात ठीक है छोटे-मोटे लोगों के बाबत कि वे मर जाएं तो हमें उनकी प्रशंसा ही करनी चाहिए, क्योंकि मरे हुए आदमी की क्या आलोचना करनी है! एक बुरा आदमी भी गांव में मर जाता है तो भी उसकी कब्र पर लोग कहते हैं कि बड़ा अच्छा आदमी था। छोटे आदमियों के साथ यह ठीक है कि उन बेचारों के पास क्या है जो उनके मरने के बाद बच रहेगा!
लेकिन गांधी जैसे महापुरुषों के साथ यह अन्याय है कि हम समझें कि वे
मर गए। मैं गांधी को, उनके प्रभाव को अभी जिंदा मानता हूं और उनके साथ एक जिंदा आदमी का व्यवहार करना चाहता हूं, एक मरे आदमी का नहीं। लेकिन गांधीवादी कहते हैं कि वे मर गए, अब उनकी बात नहीं करनी चाहिए।
शायद आपने सुना हो, कि सुकरात की जिस दिन मौत हुई, उसे जहर दिया गया। जहर देने के पहले उसके मित्र उसके पास गए और उसके एक शिष्य क्रेटो ने उससे पूछा कि सांझ आपको जहर दे दिया जाएगा तो आप हमें बता दें कि हम दफनाएंगे

किस तरह आपको? किस विधि से, किस मार्ग से? गड़ाएं, जलाएं, क्या करें? आप रास्ता बता दें, वैसा हम करें।
पता है? सुकरात हंसने लगा और उसने क्रेटो से कहा, पागल, जो मेरे दुश्मन समझते हैं कि मुझे जहर देकर मार डालेंगे वही तुम समझते हो कि शरीर के मरने से मैं मर जाऊंगा और तुम मेरे दफनाने का विचार करने लगे हो!
मैं तुम्हें कहता हूं क्रेटो, कि तुम सब मर जाओगे, तुम सब दफना दिए जाओगे, तब भी मैं जिंदा रहूंगा!
आज ढाई हजार साल हो गए, सुकरात अभी जिंदा है। क्रेटो का नाम सिर्फ हमें इसीलिए याद है कि सुकरात ने वह नाम लिया था। क्रेटो कभी का मर चुका। वे साथी मर चुके, जिन्होंने सोचा होगा हम सुकरात को दफना रहे हैं, लेकिन सुकरात जिंदा है।
महान व्यक्ति का एक ही अर्थ होता है कि वह शरीर के पार उठ गया। अब शरीर
के मिटने से उसके मिटने की कोई संभावना नहीं है।
मैं गांधी को एक जिंदा आदमी मान कर व्यवहार करना चाहता हूं। और मुझे लगता है कि अभी गांधी को गांधीवादी दफनाने की बात न करें तो बहुत अच्छा है। इतने जल्दी मरा हुआ मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन वे भयभीत हैं कि कोई आलोचना न की जाए। और मैंने आलोचना क्या की है? मेरी आलोचना गांधी के विरोध में नहीं है, लेकिन गांधीवाद के विरोध में है। और मेरी दृष्टि है कि सच बात तो यह है कि गांधीवाद जैसी कोई चीज गांधी की कल्पना में थी ही नहीं। गांधी नहीं मानते थे कि उनका कोई वाद है। मानते थे कि जो उनकी अंतर्दृष्टि को ठीक मालूम पड़ता है, वह प्रयोग करते चले जाते हैं। उनका कोई सिस्टम, कोई रेखाबद्ध वाद नहीं है, लेकिन गांधी के पीछे जो गिरोह इकट्ठा हुआ, उसने गांधीवाद खड़ा कर रखा है।
दुनिया में हमेशा अनुयायी--पंथ, संप्रदाय और वाद खड़े करते हैं और जितने पंथ, संप्रदाय और वाद मजबूत हो जाते हैं, उतना ही हम और हमारे महापुरुषों के बीच एक पत्थर की दीवाल खड़ी हो जाती है, जिसको पार करना मुश्किल हो जाता है।
गांधी का कोई वाद नहीं है इन अर्थों में, लेकिन गांधी ने जीवन भर जो किया है, जो सोचा है, जो विचारा है, वह है, और उस पर हमें बहुत स्पष्ट निर्णय लेना जरूरी है, क्योंकि उसी निर्णय के आधार पर इस देश के भविष्य को बनाने का हम विचार करेंगे।
गांधीवादी कहते हैं कि उस पर विचार नहीं करना है। जो उन्होंने कहा है उसे वैसा ही मान लेना है। यह बात इतनी अंधी और खतरनाक है कि अगर इन सारी बातों को इसी तरह मान लिया गया तो गांधी की आत्मा भी आकाश में कहीं होगी तो रोएगी, क्योंकि गांधी खुद अपनी जिंदगी में हर वर्ष अपनी पिछली भूलों को स्वीकार करते रहे और मानते रहे कि जो भूलें हो गई हैं उन्हें छोड़ देना है। अगर गांधी जिंदा होते तो इन बीस वर्षों में उन्होंने बहुत सी भूलें स्वीकार की होतीं। लेकिन गांधीवादी कहता है कि अब हमें कोई भूल पर ध्यान नहीं देना है। जो कहा गया है उसे चुपचाप मान लेना है।
यह अंधापन बहुत महंगा साबित होगा। बुद्ध और महावीर को अंधेपन से मान लेने से उतना नुकसान नहीं हो सकता, क्योंकि बुद्ध और महावीर ने व्यक्तिगत मनुष्य की आत्मोत्कर्ष की बात की है। हिंदुस्तान में एक पहले धार्मिक व्यक्ति थे गांधी जिन्होंने सामाजिक-उत्कर्ष का भी विचार किया है। बुद्ध और महावीर को मान लेने से एक-एक व्यक्ति भटक सकता है, गांधी को अंधेपन से मान लेने से पूरे समाज का भविष्य भटक सकता है, पूरा देश भटक सकता है। इसलिए गांधी पर विचार कर लेना बहुत जरूरी है।
गांधी एक अर्थों में अनूठे हैं भारत के इतिहास में। भारत के धार्मिक व्यक्ति ने कभी भी समाज, राजनीति और जीवन के संबंध में सीधी कोई रुचि नहीं ली है। भारत का महापुरुष सदा से पलायनवादी रहा है, उसने पीठ कर ली है समाज की तरफ। उसने मोक्ष की खोज की है, समाधि की खोज की है, सत्य की खोज की है-- लेकिन समाज और इस जीवन का भी कोई मूल्य है यह उसने कभी स्वीकार नहीं किया। गांधी पहले हिम्मतवर आदमी थे जिन्होंने धार्मिक होते हुए समाज की तरफ
से मुंह नहीं मोड़ा। वे समाज के बीच में खड़े रहे और जिंदगी के साथ और जिंदगी

को उठाने की उन्होंने कोशिश की। यह पहला धार्मिक आदमी था जो जीवन-विरोधी नहीं था, जिसका जीवन के प्रति स्वीकार का भाव था। स्वाभाविक, पहले आदमी से बड़ी भूलें होनी संभव है। पायोनियर हमेशा भूलें करता है। वह पहले आदमी थे, एक नई दिशा में प्रयोग कर रहे थे और अगर हम उनको अंधे होकर माने लेंगे तो हम बहुत खतरनाक रास्तों पर जा सकते हैं।
जो बातें मैंने आलोचना की हैं उनमें से कुछ एक-दो सूत्रों पर आज और फिर आने वाले दिनों में बात करूंगा।
मेरी दृष्टि में भारत की बहुत प्राचीन समय से कुछ बुनियादी भूलों में
एक भूल यह रही है कि हमने दरिद्रता को एक तरह की महिमा, एक तरह का गौरव, एक तरह का ग्लोरीफिकेशन किया है। हम दरिद्रता को एक तरह का सम्मान देते रहे हैं। हमने एक फिलासफी विकसित की है जिसको फिलासफी ऑफ पावर्टी कहा जा सकता है, दरिद्रता का एक दर्शन विकसित किया है। हमने यह स्वीकार कर रखा है पांच हजार वर्षों से कि दरिद्र होना भी कोई बड़े गौरव की बात है। और उसके साथ ही धन-संपदा, समृद्धि इनकी एक निंदा, इनका एक बहिष्कार भी हमारे मन में रहा है। परिग्रह का एक विरोध, अपरिग्रह की एक स्थापना। समृद्धि-विस्तार इसका विरोध, संकोच, दरिद्रता, इसकी स्वीकृति हमारे खून में प्रविष्ट हो गई है। मैं कहना चाहता हूं कि यह इस विचार का परिणाम है कि भारत पांच हजार वर्षों की लंबी सयता के बाद भी दरिद्र है और समृद्ध नहीं हो पाया है। इस विचार का यह अंतिम परिणाम है।
गांधी ने जाने-अनजाने पुनः इसी दरिद्रता के दर्शन को फिर से सहारा दे दिया है। गांधी ने फिर दरिद्र को दरिद्रनारायण कह दिया है। दरिद्र नारायण नहीं है, दरिद्रता पाप है, दरिद्रता रोग है। उससे घृणा करनी है, उसे नष्ट करना है। दरिद्र को अगर हम पवित्र और भगवान और इस तरह की बातें करेंगे और दरिद्रता को महिमावंत करेंगे तो हम दरिद्रता को नष्ट नहीं कर सकते हैं, हम दरिद्रता को बनाए ही रखेंगे। हम दरिद्रता पर दया कर सकेंगे, सेवा कर सकेंगे दरिद्र की, लेकिन दरिद्र को मिटा नहीं सकेंगे। दरिद्र की सेवा की जरूरत नहीं है, दरिद्र के गुणगान की जरूरत नहीं है, दरिद्र को दया की जरूरत नहीं है, दरिद्र को पृथ्वी से समाप्त करना है, दरिद्र को नष्ट करना है, दरिद्र को नहीं बचने देना है। दरिद्रता के साथ एक महामारी का व्यवहार करना है। प्लेग और हैजा और मलेरिया के साथ हम जो व्यवहार करते हैं वह दरिद्रता के साथ व्यवहार करना है। लेकिन हिंदुस्तान की जो परंपरा है दरिद्रता की और त्याग की, गांधी के मन पर उसका प्रभाव है, सारे मुल्क के मन पर उसका प्रभाव है। हमने जाने-अनजाने हमारे अचेतन में, अनकांशस तक यह बात प्रविष्ट हो गई है कि दरिद्रता को कुछ गौरव है।
यह बहुत ही खतरनाक दृष्टि है, यह बहुत ही आत्मघाती दृष्टि है; क्योंकि
जब हम दरिद्रता को इस भांति स्वीकार करते हैं, सम्मान देते हैं और दरिद्रता में संतोष कर लेने को एक धार्मिक गुण मानते हैं, तो फिर समाज समृद्ध कैसे होगा? समाज संपत्ति पैदा कैसे करेगा?
हम भी इसी पृथ्वी पर हैं, दूसरे देश भी इसी पृथ्वी पर हैं। हम पीछे इतिहास में उनसे कहीं ज्यादा समृद्ध थे जो आज हमें भीख दे रहे हैं। हम कहीं ज्यादा खुशहाल थे, आज हमें भीख मांगनी पड़ रही है। और शायद आगे भी हमें भीख ही मांगती रहनी पड़ेगी। अगर हमने अपने आज तक के जीवन को जीने की फिलासफी और व्यवस्था को रूपांतरित नहीं किया तो हम आगे भी यही करते चले जाएंगे, जो हमने पीछे किया है।
संपत्ति आसमान से पैदा नहीं होती है, संपत्ति श्रम से पैदा होती है। श्रम आकस्मिक नहीं होता, श्रम विचार से जन्म लेता है और अगर हमारे विचार में संपदा का विरोध है तो हम न श्रम करेंगे, न हम संपदा पैदा करेंगे।
यह जो भारत एकदम श्रम-शून्य मालूम पड़ता है--सुस्त, काहिल, अलाल मालूम पड़ता है, लेजी मालूम पड़ता है, यह लेजीनेस, यह सुस्ती, यह काम न करने की प्रवृत्ति, यह प्रवृत्ति उस विचार से पैदा होती है जो दरिद्रता में संतोष मानने की शिक्षा देता है। और यह भी ध्यान रहे कि बुद्ध और महावीर जैसे लोग राजघरों को छोड़ कर दरिद्र हो गए।

हिंदुस्तान में जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के थे। बुद्ध राजा के लड़के थे, राम और कृष्ण राजाओं के लड़के थे। हिंदुस्तान के ये सारे तीर्थंकर और अवतार राजपुत्र थे। ये सारे तीर्थंकर और बुद्ध राजमहलों को छोड़ कर दरिद्र हो गए और इनके दरिद्र होने से हमारी दरिद्रता के दर्शन को और सहारा मिला। लेकिन एक बात ध्यान रहे, अमीर आदमी का दरिद्र होना एक बात ही दूसरी है और दरिद्र का दरिद्रता में संतुष्ट हो जाना बात दूसरी है। इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क है।
अमीर आदमी जब दरिद्र होता है तब वह अमीरी को जान कर दरिद्र होता है। अमीरी व्यर्थ हो गई, इसलिए दरिद्र होता है। उसकी दरिद्रता और उस आदमी की दरिद्रता जिसने कभी अमीरी नहीं जानी, भरपेट भोजन नहीं जाना, कपड़े नहीं जाने, इन दोनों की दरिद्रता में कोई भी संबंध नहीं है।
सच बात तो यह है कि अमीर जब दरिद्र होता है तो दरिद्रता भी एक आनंद मालूम होती है, क्योंकि दरिद्रता भी एक स्वतंत्रता मालूम होती है। गरीब आदमी जब दरिद्रता में संतोष कर लेता है तो वह संतोष सिर्फ दुख को छिपाने का और सांत्वना का एक उपाय होता है।
हिंदुस्तान के सारे बड़े शिक्षक राजघरानों से आए। वे राजघरानों से ऊब
गए थे। वे संपत्ति से ऊब गए थे, परेशान हो गए थे। संपत्ति की अपनी परेशानियां हैं, दरिद्रता की अपनी परेशानी है, भिखमंगे की अपनी परेशानी है, राजघर की अपनी परेशानी है।
वे अपनी परेशानियों से पीड़ित हो गए थे, वे धन से घिरे हुए परेशान हो गए थे, वे स्त्रियां और सुख के बीच ऊब गए थे, उन्हें बदलाहट चाहिए थी। उन्होंने वह सब छोड़ कर सड़क पर नग्न खड़े हो गए। उन्हें उस नग्नता में बहुत स्वतंत्रता मालूम हुई होगी, उन्हें उस नग्नता में एक अदभुत मुक्ति मालूम हुई होगी।
वह मालूम हो सकती है, लेकिन वह हमेशा तभी मालूम होती है, जब कोई समृद्धि को लात मार कर दरिद्र बनता है। वह दरिद्रता समृद्धि के आगे का कदम है, समृद्धि के पहले का कदम नहीं है। वह दरिद्रता भी एक अर्थ में समृद्धि की लक्.जरी है, वह दरिद्रता भी समृद्धि का अंतिम विलास है। वह उसको भी लात मारने का मजा है। वह सुख गरीब आदमी नहीं उठा सकता।
लेकिन हिंदुस्तान के बड़े शिक्षक जब दरिद्र हुए, उन्होंने धन छोड़ा, तो दरिद्र को लगा कि जिस चीज को छोड़ ही देना पड़ता है उसे पाने की जरूरत क्या है। और उसे पता नहीं कि वह दरिद्र महावीर की दरिद्रता का मजा नहीं लूट पाएगा। महावीर की दरिद्रता बुनियादी रूप से क्वालिटेटिवली, गुणात्मक रूप से भिन्न है।
मैं अमृतसर था। एक संन्यासी मित्र एक घटना सुना रहे थे, वे घटना सुना रहे थे कि अमृतसर से एक ट्रेन जा रही थी हरिद्वार की तरफ। मेला है हरिद्वार में। हजारों लोग ट्रेन में भर रहे हैं। हरेक आदमी अमृतसर की स्टेशन पर यही चिल्ला रहा है कि चलो गाड़ी के अंदर भीतर बैठो, जल्दी भीतर चले जाओ, सामान रखो।
एक आदमी के पास भीड़ इकट्ठी है और वह यह कह रहा है कि मैं गाड़ी में बैठूं तो जरूर, लेकिन अमृतसर पर बैठता हूं, हरिद्वार में उतरना पड़ेगा न? जब उतरना ही पड़ेगा तो गाड़ी में बैठने की जरूरत क्या है? वह आदमी यह दलील दे रहा है कि जब उतरना ही पड़ेगा गाड़ी से, तो फिर गाड़ी में बैठे ही क्यों? जब उतरना ही है तो उतरे ही रहें।
मित्रों ने जबरदस्ती धक्के दिए और कहा, यह तर्क समझाने का समय नहीं है। अंदर बैठ जाओ, फिर तुम्हें समझाएंगे। गाड़ी जाने के करीब है। जबरदस्ती उस आदमी को भीतर ले गए, लेकिन वह आदमी यही चिल्लाता रहा कि जब उतरना ही है तो बैठने की जरूरत क्या है? फिर हरिद्वार आ गया, फिर सारी गाड़ी में दूसरी आवाज आने लगी कि उतरो, सामान उतारो, नीचे उतरो, जल्दी उतरो, कहीं गाड़ी न छूट जाए। वह मित्र उसको फिर समझा रहे हैं कि नीचे उतरो। वह कहता है कि जब चढ़ ही गए तो अब उतरना क्या? पहले ही मैंने कहा था कि चढ़ाओ मत अगर उतरना हो। अब जब चढ़ ही गए तो चढ़ ही गए, अब उतरना क्या? उसे जबरदस्ती नीचे उतारा वह व्यक्ति तर्क तो ठीक दे रहा है, यह बात सच है कि अमृतसर से जाना है हरिद्वार, तो

गाड़ी पर चढ़ना भी होगा और उतरना भी होगा। और जो सोचता है कि जब उतरना ही है कभी जाकर तो चढ़ना ही क्या? तो वह फिर अमृतसर पर ही रह जाएगा हरिद्वार नहीं पहुंच सकता। और अगर हरिद्वार पर पहुंच कर उसने यह जिद्द की कि जब चढ़ ही गए तो अब उतरना ही क्या, तब भी वह हरिद्वार नहीं पहुंच पाएगा। दोनों हालत में हरिद्वार चूक जाएगा।
मेरी अपनी दृष्टि यह है कि समृद्धि की एक यात्रा है जीवन में। निश्चित ही एक दिन समृद्धि छोड़ देने जैसी हो जाती है, लेकिन वह समृद्धि की यात्रा से ही होती है। और दरिद्र आदमी अगर यह सोचे कि जब महावीर और बुद्ध जैसे लोग छोड़ कर आ रहे हैं तो फिर मुझे परेशान होने की क्या जरूरत है। तो वह ध्यान रखे, उसकी दरिद्रता अमृतसर की दरिद्रता होगी, हरिद्वार की नहीं। हिंदुस्तान के इन धनी शिक्षकों के कारण यह बात बड़ी अजीब और पैराडाक्सिकल। धनी शिक्षकों के कारण हिंदुस्तान दरिद्रता के दर्शन को विकसित कर लिया और दरिद्र ने अपनी दरिद्रता स्वीकार कर ली। जब उसने देखा कि राजमहलों को लोग छोड़ कर आ रहे हैं, तो फिर ठीक है, मुझे और राजमहलों की तरफ जाने का सवाल क्या है। और जब एक बार दरिद्रता स्वीकृत हो जाती है तो संपत्ति को उत्पादन करने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। यह देश इसलिए गरीब है।
काउंट कैसरलिंग हिंदुस्तान से लौटा, तो उसने अपनी डायरी में एक वाक्य लिखा। मैं पढ़ रहा था तो बहुत हैरान हुआ। मुझे लगा कि कोई छापेखाने की भूल होनी चाहिए। उसने एक वाक्य लिखा कि मैं हिंदुस्तान गया, वहां से लौटा हूं, तो एक अजीब नतीजा लेकर आया हूं, वह नतीजा यह कि इंडिया इ.ज ए रिच लैंड, व्हेयर पुअर पिपुल लिव। कि हिंदुस्तान एक धनी देश है, जहां गरीब लोग रहते हैं।
मैं बहुत हैरान हुआ कि यह वाक्य कैसा हुआ? अगर धनी देश है तो गरीब लोग कैसे रहते होंगे? और गरीब लोग रहते हैं तो धनी देश कैसे है? कोई छापे की भूल है शायद, लेकिन आगे पढ़ने पर मुझे पता चला कि वह मजाक कर रहा है। वह यह कह रहा है कि देश तो बहुत धनी है, लेकिन रहने वाले मूढ़ हैं, वे गरीब बने हुए हैं। देश तो बहुत धन पैदा कर सकता है, लेकिन रहने वालों की जीवन-दृष्टि दरिद्र रहने की है, इसलिए वे संपत्ति पैदा नहीं कर पाते।
हिंदुस्तान की दरिद्रता नहीं मिटेगी, जब तक हम संपत्ति के प्रति भी
एक स्वस्थ रुख लेने को राजी न हों। हमारा संपत्ति के प्रति अत्यंत अस्वस्थ, रुग्ण, अनहेल्दी रुख है। तो एक तरफ तो यह है कि हम संपत्ति का विरोध करते हैं और दूसरी तरफ भीतर संपत्ति की लालसा भी करते हैं, क्योंकि दरिद्रता के भीतर यह असंभव है कि आप सच में संतुष्ट हो जाएं। कैसे संतुष्ट हो सकते हैं? जबरदस्ती थोप कर अपने ऊपर संतोष के कपड़े पहन लेंगे, लेकिन संतुष्ट हो कैसे सकते हैं? भीतर असंतोष की आग जलती ही रहेगी। इसलिए ऊपर से कहेंगे, कुछ मतलब नहीं है हमें, हम तो संतुष्ट हैं और भीतर लालसा, ईर्ष्या और लोभ वे सब काम करते रहेंगे।
मैं एक फकीर के पास, एक संन्यासी के पास यहीं बंबई में कोई पांच-सात साल पहले मिलने गया था। एक मुनि हैं। बहुत उनके शिष्य हैं। बहुत लोग वहां इकट्ठे हो गए, मैं मिलने आया हूं, कुछ बात होगी। उन मुनि ने मुझे एक गीत सुनाया। गुजराती में वह गीत उन्होंने बनाया था। उसका अर्थ मुझे समझाया। सुनने वाले बैठ कर सिर हिलाने लगे और कहने लगे, वाह, वाह! मैं बहुत हैरान हुआ। क्योंकि उस गीत का मतलब यह था कि वह संन्यासी उस गीत में यह कहते हैं कि तुम अपने राजमहल में खुश हो, रहो, हम अपनी धूल में भी आनंद में हैं। तुम स्वर्ण के सिंहासन पर बैठे हो, बैठो, हमें तुम्हारे स्वर्ण के सिंहासन से कोई भी मतलब नहीं, हम लात मारते हैं स्वर्ण के सिंहासन पर, हम तो अपनी धूल में ही मस्त हैं, हम तो फकीर हैं। इस तरह का भाव था।
पूरा गीत कह कर वे मुझसे पूछने लगे, कैसा लगा?
मैंने कहा कि मैं बहुत हैरान हुआ। मैं इसलिए हैरान हुआ कि अगर आपको राजमहलों से कोई मतलब नहीं, अगर आपको स्वर्ण-सिंहासनों से कोई मतलब नहीं, तो उनकी याद क्यों आती हैं? उनके गीत क्यों लिखते हैं? मैंने किसी सम्राट को कभी ऐसा गीत लिखते नहीं देखा, नहीं सुना कि उसने कहा हो कि हम अपने

स्वर्ण-सिंहासन पर ही ठीक हैं, हमें तुम्हारी धूल से कुछ भी नहीं लेना, तुम रहो मजे में, हम उपेक्षा करते हैं, हमें कोई फिक्र नहीं। कोई सम्राट ऐसा नहीं कहता, लेकिन ये फकीर निरंतर यह बात कहते हैं कि हमें स्वर्ण-सिंहासन से कोई मतलब नहीं।
मतलब नहीं है तो यह गीत क्या बताते हैं? ये मतलब बताते हैं, मतलब बहुत गहरा है और भीतरी है। स्वर्ण-सिंहासन मन को खींचता है। संतोष से मन को रोका हुआ है। संतोष से जो मन को रोकता है और स्वर्ण-सिंहासन की भीतर लालसा है, वह स्वर्ण-सिंहासन को गाली देना शुरू कर देगा, ताकि संतोष करने में सुविधा मिले।
हिंदुस्तान, पूरा का पूरा हिंदुस्तान भौतिकवाद को गालियां देता है।
वह आदमी भौतिकवादी है, पश्चिम मैटीरियलिस्ट है। जितना तुम भौतिकवाद को गालियां देते हो, उतना तुम खबर लाते हो कि तुम्हारे प्राणों में भौतिकवाद की आकांक्षा है।
मन के नियम बहुत अजीब हैं।
एक आदमी अगर अपनी स्त्री को छोड़ कर जंगल में भाग जाए और संन्यासी हो जाए, और उसका मन स्त्री से मुक्त न हुआ हो तो वह घूम-फिर कर यही कहता रहेगाः कामिनी-कांचन से सावधान, स्त्री से बचना, स्त्री नरक का द्वार है! वह किसी और से नहीं कह रहा है, जोर-जोर से अपने से कह रहा है। वह भीतर स्त्री खींच रही है, निमंत्रण दे रही है, वह कह रही, आओ। स्त्री भीतर रूप बन रही है, स्त्री भीतर प्राणों को कस रही है, वह उससे बचने के लिए कह रहा है, कामिनी- कांचन पाप है, स्त्री नरक का द्वार है, स्त्री से सावधान! दूसरों को समझा रहा है। दूसरों के बहाने अपनी ही वाणी को जोर से सुनने की कोशिश कर रहा है, ताकि भीतर हिम्मत बनी रहे कि स्त्री नरक का द्वार है, बचो, सावधान रहो!
जो आदमी वासना से मुक्त हो जाएगा उसे स्त्री नरक का द्वार कैसे दिखाई पड़ेगी? जिस आदमी का मन सेक्स से मुक्त हो गया हो, उस आदमी को स्त्री और पुरुष में भेद दिखाई पड़ेगा?
बुद्ध एक जंगल में बैठे थे एक पहाड़ के पास। कुछ लोग शहर से आए थे युवक
एक वेश्या को लेकर जंगल में पिकनिक के लिए, आमोद-प्रमोद के लिए। वे तो सब नशे में चूर हो गए, वेश्या ने देखा कि वे बेहोश हो गए हैं नशे में, वह भाग खड़ी हुई। उसके सारे वस्त्र उन्होंने छीन रखे थे। वह नग्न थी। जब वह भाग गई उन्हें कुछ होश आया, तो उन्होंने कहा, वह वेश्या भाग गई, तो उसे खोजने जंगल में निकले।
रास्ते पर बुद्ध को बैठे देखा तो उनके पास जाकर कहा कि भंते, यही एक रास्ता है, जरूर यहां से एक स्त्री को आपने भागते देखा होगा। स्त्री नग्न थी, वेश्या थी, आपको खयाल है वह कहां गई? यहीं से रास्ते बंट जाते हैं। हम उसे खोजने कहां जाएं?
बुद्ध ने कहा, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह पहचानना बहुत मुश्किल है, कोई निकला जरूर था, लेकिन वह स्त्री थी या पुरुष, यह मुझे याद नहीं। क्योंकि जब से मेरे भीतर से वासना उठ गई, तब से मेरे भीतर का पुरुष मर गया, जब से मेरा पुरुष मर गया, तब से बाहर की स्त्री उस तरह नहीं दिखाई पड़ती, जैसे पहले दिखाई पड़ती थी।
यह बुद्ध जैसा आदमी स्त्री को नरक का द्वार कैसे कहेगा? नहीं, जो स्त्री को नरक का द्वार कह रहा है, उसके भीतर स्त्री का आकर्षण शेष है। जो संपत्ति को गाली दे रहा है, उसके भीतर संपत्ति का आकर्षण शेष है। जो कह रहा है कि सोना मिट्टी है, वह अपने को समझा रहा है, सोना अभी पूरी तरह सोना है और प्राणों को खींच रहा है।
भारत ने एक तरफ दरिद्रता की बातें सीख लीं और दूसरी तरफ लोभ, और दूसरी तरफ ईर्ष्या, और दूसरी तरफ धन की वासना तीव्र से तीव्र होती चली गई। यह एक अदभुत घटना घट गई। ऊपर से हम दरिद्र हैं। दरिद्रता में संतोष की बात भी करते हैं, और भीतर हमसे ज्यादा ग्रीडी, हमसे ज्यादा लोभी जमीन पर आदमी खोजने मुश्किल हैं।
मैं एक घर में ठहरता था। उस घर के ऊपर कुछ पश्चिम के लोग--दो परिवार रहते थे। उस घर में जब भी मैं ठहरा तो उस घर के लोगों ने मुझे कहा कि ये

पश्चिम के लोग बड़े भौतिकवादी हैं। सिवाय खाने-पीने के, सिवाय नाच-गाने के इन्हें कुछ भी मतलब नहीं, एकदम भौतिकवादी हैं। जब भी मैं गया, मुझे वे यही कहते थे। रात बारह-बारह बजे तक नाचते रहते हैं। बस, खाना और पीना और नाचना-- यही जिंदगी है। फिर एक बार उनके घर में ठहरा। ऊपर शांति थी, तो मैंने पूछा कि क्या वे लोग चले गए? घर की गृहिणी ने कहा, हां, वे लोग चले गए। पर बड़े अजीब लोग थे। अपना सारा सामान बांट गए। जो नौकरानी बर्तन मलती थी, स्टील के बर्तन थे सब--वह स्त्री मुझसे कहने लगी--असली स्टील के बर्तन थे, वह सब नौकरानी को ही दे गए। रेडियो था, रेडियोग्राम था, वह सब बांट गए। बड़े अजीब लोग थे।
मैंने उस स्त्री को पूछा कि तू तो निरंतर कहती थी कि ये बड़े भौतिकवादी लोग हैं, नाचते हैं, गाते हैं, खाते हैं, पीते हैं और कुछ नहीं करते हैं, बहुत मैटीरियलिस्ट हैं। लेकिन ये सारी चीजें बांट कर चले गए! तू भी इस तरह सारी चीजें बांट सकती है?
उसने कहाः मैं? कैसे बांट सकती हूं! मेरे मन में तो यही लगा रहा कि कुछ हमें भी दे जाएं तो अच्छा है।
मैंने पूछाः वे तुझे कुछ दे गए?
उसने कहा कि मुझे दे नहीं गए क्योंकि उन लोगों ने सोचा होगा, इनके पास
तो सब है, शायद ये लेने से इंकार कर दें।
तो तेरे पास कोई निशानी नहीं?
तो उसने कहाः एक निशानी है, वे एक रस्सी बंधी हुई छोड़ गए थे, वह मैं खोल लाई हूं। कपड़े टांगने की रस्सी थी, लेकिन रस्सी प्लास्टिक की है और बहुत अच्छी है, वह भर मैं खोल लाई हूं, वह भर निशानी रह गई है। वे चले गए तो मैं रस्सी खोल लाई हूं।
यह स्त्री रोज मंदिर जाती है, यह रोज सुबह से उठ कर भक्तांबर पढ़ती है,
यह बड़ी धार्मिक है, यह उपवास भी करती है और यह सोचती है कि मैं भौतिकवादी नहीं हूं और वे लोग जो नाचते थे और गीत गाते थे, वे इसे भौतिकवादी मालूम पड़ते थे।
वे इसे भौतिकवादी क्यों मालूम पड़ते थे?
इसके भीतर भी नाचना, गीत गाना और संपत्ति का मोह है। वह इसे खींचता है
कि काश, यह सब उसके पास भी होता, यह सब वह भी करती। लेकिन नहीं-नहीं, संतोष रखना है। इन सब बातों में नहीं पड़ना है, ये बातें बहुत बुरी हैं। इसलिए गाली देती है, निंदा करती है, कंडेम करती है, अपने मन को समझा लेती है और पीछे से एक रस्सी भी खोल कर ले आती है। अध्यात्मवादी हैं हम!
एक अमरीकन यात्री की मैं किताब पढ़ता था। वह दिल्ली के स्टेशन पर उतरा। स्टेशन पर उतरा है और एक सरदार ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा है कि मैं आपका भविष्य बताऊंगा।
उसने कहा, लेकिन मुझे भविष्य पूछना नहीं है। हम अपना भविष्य खुद बनाते हैं। भविष्य कहीं है यह हम मानते नहीं।
पर सरदार जी ने तो बताना ही शुरू कर दिया। वह तो हाथ जोर से पकड़े हुए है। और वह आदमी बेचारा शिष्टाचार में सिर्फ हाथ पकड़ाए हुए है। छोड़ नहीं रहा, ठीक है। वह कह रहा है कि मुझे पूछना नहीं है, मुझे कुछ जानना नहीं है, लेकिन सरदार जी तो बताना शुरू कर दिए हैं कि यह होगा, यह होगा, यह होगा भविष्य में।
फिर उस आदमी ने कहाः मुझे जाने दीजिए।
तो सरदार जी ने कहाः मेरी फीस? मेरे दो रुपये फीस के हो गए।
उस आदमी ने कहा, ठीक है। हालांकि मैं मना कर रहा था और आपने जबरदस्ती बताया है, लेकिन फिर भी आपने इतना श्रम किया, ये दो रुपये आप ले लें। लेकिन दो रुपये लेकर सरदार जी ने हाथ छोड़ा नहीं। वह और बताने लगे हैं। उसने कहा कि देखिए, अब हाथ छोड़ दीजिए, क्योंकि फिर आपकी फीस हो जाएगी। लेकिन सरदार जी बताए चले जा रहे हैं। उसने कहा कि मुझे जाना है। जबरदस्ती हाथ छुड़ाया, तो सरदार जी ने कहा कि दो रुपये मेरी फीस और हो गई? उस आदमी ने कहा कि अब मैं दो रुपये आपको नहीं दूंगा। यह तो जबरदस्ती की बात है। तो सरदार जी ने

क्या कहा? सरदार जी ने कहा, यू मैटीरियलिस्ट--दो रुपये के लिए मरे जाते हो, भौतिकवादी हो, दो रुपये में जान निकली जाती है!
उस आदमी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि मैं तो दंग रह गया। भौतिकवादी कौन था? मैं था भौतिकवादी?
सारी पृथ्वी पर हमसे ज्यादा भौतिकवादी लोग खोजने मुश्किल हैं, क्योंकि दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है। दरिद्र आदमी कभी भी भौतिकवाद से ऊपर नहीं उठ सकता है, समृद्ध आदमी ही भौतिकवाद से उठ सकता है ऊपर, क्योंकि समृद्धि को पाकर उसे पता चलता है कुछ भी नहीं है समृद्धि में। धन पाकर दिखाई पड़ता है धन में कुछ भी नहीं है। और जिस दिन धन निस्सार दिखाई पड़ता है, असार दिखाई पड़ता है, उस दिन भौतिकवाद के आदमी ऊपर उठता है।
संपत्ति का एक ही बड़े से बड़ा मूल्य है कि संपत्ति से आदमी संपत्ति से मुक्त हो जाता है। धन का एक ही आध्यात्मिक मूल्य है कि धन के उपलब्ध होने से आदमी धन से मुक्त हो सकता है। निर्धन आदमी धन से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। धनी आदमी धन से मुक्त हो सकता है। यह देश दरिद्रता को स्वीकार करने के कारण धनी नहीं हो पाया। धनी नहीं हो पाने के कारण धन से मुक्त नहीं हो पाया; लेकिन हम थोथी बातें अपने ऊपर थोपे चले जाते हैं और बिल्कुल ही जीवन और मन के विपरीत काम किए चले जाते हैं। ऊपर से कुछ, भीतर से कुछ हुए चले जाते हैं। सारा व्यक्तित्व पाखंड हो गया है, सारा व्यक्तित्व धोखा हो गया है। और मैंने इसलिए कहा कि गांधी की दरिद्रता की शिक्षा फिर खतरनाक है, फिर वह हमारी पुरानी शिक्षा का ही फल है। फिर वह पुरानी शिक्षा का फिर से पुनरुक्तिकरण है।
नहीं, गांधी बहुत प्यारे आदमी हैं, गांधी बहुत अदभुत आदमी हैं; लेकिन उनके दरिद्रता के दर्शन को अगर भारत ने स्वीकार किया तो भारत कभी समृद्ध नहीं हो सकेगा और समृद्ध नहीं हो सकेगा तो भारत कभी धार्मिक भी नहीं हो सकता है।
मेरी दृष्टि में धार्मिक होने के लिए देश का समृद्ध होना अत्यंत आवश्यक है। दरिद्र आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है? जिसकी रोटी की जरूरतें पूरी नहीं होतीं वह परमात्मा की जरूरत पैदा ही कैसे कर सकता है? परमात्मा मनुष्य की अंतिम जरूरत है, लास्ट नेसेसिटी है। जब जीवन की सारी प्राथमिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं, तो अंतिम जरूरत का खयाल आता है और हम इस देश में गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षाएं दिए चले जाते हैं। गरीब आदमी को परमात्मा की शिक्षा देना अन्याय है और गरीब आदमी अगर परमात्मा की बातें सुनने भी आता है और परमात्मा के मंदिर में प्रार्थना भी करने जाता है, तो आप यह मत सोचना कि वह परमात्मा के पास जा रहा है। जब वह परमात्मा के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा होता है, तब भी उसके मन में यही प्रार्थना होती है कि कल मुझे रोटी मिल सकेगी न? मेरा बच्चा बीमार है, वह ठीक हो सकेगा न? मेरा काम छूट गया है, मुझे काम मिल सकेगा न? वह परमात्मा के पास भी रोटी-रोजी के लिए ही पहुंचता है, परमात्मा के लिए नहीं पहुंच सकता है। वह परमात्मा के पास भी जाता है तो बुनियादी कारण उसका भौतिक होता है, आध्यात्मिक नहीं हो सकता है। आध्यात्मिक जीवन की जरूरत, जीवन की सामान्य स्थिति, सुविधा उपलब्ध होने पर ही पैदा होती है।
जब भारत थोड़ा समृद्ध था तो भारत धार्मिक था। इधर दो हजार वर्षों से वह निरंतर दरिद्र से दरिद्र होता चला गया है। आज वह दरिद्रता के गड्ढे में खड़ा है। वह धार्मिक नहीं हो सकता है। उसके धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है। इस बात की संभावना है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका धार्मिक हो सके, रूस धार्मिक हो सके, भारत के धार्मिक होने की कोई संभावना नहीं। अमेरिका को धार्मिक होना पड़ेगा, रूस को धार्मिक होना पड़ेगा, क्योंकि जैसे ही जिंदगी की सामान्य जरूरतें पूरी हो जाती हैं, जैसे ही शरीर की जरूरतें पूरी हो जाती हैं, पहली बार आदमी की आंखें उस तरफ उठती हैं जो शरीर के ऊपर है। शरीर की झंझट, जैसे ही छुट्टी हो जाती है शरीर से आदमी की, आदमी आत्मा की तरफ उन्मुख होता है।

शायद आपने कभी खयाल भी न किया हो। पैर में एक छोटा सा कांटा गड़ जाए, तो सारे प्राण उसी कांटे के आस-पास घूमने लगते हैं। सिर में थोड़ा सा दर्द हो, तो आत्मा वगैरह सब भूल जाती है, बस सिर का दर्द ही रह जाता है। जहां पीड़ा होती है, प्राण वहीं अटक जाते हैं। भूखे पेट के प्राण पेट के आस-पास ही अटके रहते हैं, उससे ऊपर नहीं उठ सकते। लेकिन हम एक बहुत मूढ़तापूर्ण, बहुत एब्सर्ड जीवन-दर्शन को पकड़े हुए बैठे हैं। मैं मानता हूं कि समृद्ध आदमी किसी दिन दरिद्र हो सकता है, स्वेच्छा से, वालंटरीली, लेकिन स्वेच्छा से दरिद्रता बात ही और है। वह बात वैसी ही है--
मैं एक आश्रम में गया। उस आश्रम में उपवास करवाते हैं वे महीने-महीने, दो-दो महीने, तीन-तीन महीने और एक-एक महीने के उपवास करने के पांच-पांच सौ रुपये महीने का खर्च पड़ जाता है। पांच सौ रुपये महीने का खर्च एक महीना उपवास करने का! मैंने कहा, उपवास बड़ा महंगा है। इससे तो पेट भरना भी सस्ता पड़ता है। फिर वहां जो लोग उपवास करने वाले थे, वे बड़े ही आनंद से कहते थे कि बीस दिन कर लिए, पच्चीस दिन कर लिए, तीस दिन हो गए, मेरे चालीस दिन हो गए। मैं तो बहुत हैरान हुआ। मैं बिहार भी गया। वहां अकाल में भूखे मरते हुए लोग थे, किसी को चार दिन से रोटी नहीं मिली थी। उसका चेहरा भी मैंने देखा और चालीस दिन इसने उपवास किया था इसका चेहरा भी मैंने देखा। इन दोनों में जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ा। वह चार दिन भूखा रहा था, वह इतना दीन-हीन मालूम हो रहा था! यह जो जिसने चालीस दिन उपवास किया था, यह एक ऐसी आध्यात्मिक गरिमा से भरा हुआ था। बड़ी अजीब बात है। फर्क क्या हुआ? यह उपवास है, वह भूख है। यह उपवास वे लोगे करते हैं जो ज्यादा खा गए हैं और ज्यादा खा रहे हैं। भूखा आदमी, भूखे आदमी को कभी खाने को नहीं मिला। भूख और उपवास में फर्क है।
महावीर की दरिद्रता में और सड़क पर भीख मांगने वाले की दरिद्रता में
भी उतना ही फर्क है। ज्यादा खाने वाले के लिए उपवास भी एक आनंद हो सकता है, भूख से मरने वाले के लिए उपवास कैसे आनंद हो सकता है? क्वालिटेटिव फर्क है, गुणात्मक फर्क है। और हिंदुस्तान पांच हजार वर्ष से इस गलत जीवन-दृष्टिकोण के नीचे जी रहा है कि हमें दरिद्रता में संतोष कर लेना है। गांधी भी फिर पुनः उसी बात को दोहराते हैं और उसी बात को दोहराने के कारण उन्होंने जो उपकरण बताए हैं--चरखा, तकली, वे उपकरण भारत को दरिद्र रखने के उपकरण सिद्ध होंगे। वे भारत को समृद्ध नहीं बना सकते हैं। समृद्धि पैदा होती है टेक्नालॉजी से, समृद्धि पैदा होती है विज्ञान से, तकनीक से। समृद्धि पैदा होती है यंत्र से।
चरखा और तकली से समृद्धि कैसे पैदा हो सकती है?
चरखा और तकली कोई दस हजार पुराने वर्ष के साधन हैं, दस हजार वर्ष पहले
के साधन हैं। अगर दुनिया को दस हजार वर्ष पुरानी दरिद्रता में ले जाना है, दुख में ले जाना है तो चरखे-तकली को प्रतीक बनाओ, अन्यथा चरखे-तकली से मुक्त होने की जरूरत है।
मैं यह नहीं कहता कि गांव में जिन्हें कुछ भी काम नहीं मिल रहा है, वे चरखा न कातें। मैं यह भी नहीं कहता कि जिन्हें खादी पहनने का शौक है वे खादी न पहनें।
मैं कहता यह हूं कि यह भारत के विकास के प्रतीक न बन जाएं, ये हमारे जीवन के देखने के, दृष्टिकोण के सिंबल्स न हों। गांधी ने उन्हें सिंबल बना दिया है। हमें ऐसा लगने लगा है कि नहीं बड़े टेक्नीक की कोई जरूरत नहीं है, बड़ी टेक्नालॉजी की कोई जरूरत नहीं है, बड़े यंत्रों की कोई जरूरत नहीं है, सेंट्रेलाइजेशन की, केंद्रीकरण की कोई जरूरत नहीं है, औद्योगीकरण की, इंडस्ट्रीलाइजेशन की कोई जरूरत नहीं है। हमें ऐसा लगने लगा कि एक-एक आदमी अपना साबुन बना ले, अपना कपड़ा बना ले, अपनी खेती में काम कर ले, स्वावलंबी हो जाए--बस इसकी जरूरत है।
ये खतरनाक बातें हैं। अगर आदमी को हमने इस ढांचे पर ले जाने की कोशिश
की है तो आदमी का जीवन-स्तर पशु के स्तर पर गिर जाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं होगा। आदमी का जो इतना जीवन-स्तर ऊपर उठा है, वह तकनीक का परिणाम है। और जिस दिन सारी मनुष्य-जाति का जीवन-स्तर इतना ऊंचा उठ जाएगा

जितना जीवन-स्तर बुद्ध और महावीर का ऊंचा रहा होगा, तो मैं आपसे कहता हूं, पृथ्वी पर करोड़ों बुद्ध और महावीर एक साथ पैदा हो सकते हैं!
यह आकस्मिक नहीं है कि राजघरानों से इतने बड़े संन्यासी पैदा हुए। इतने बड़े संन्यासी राजघरानों से ही पैदा हो सकते हैं, क्योंकि राजघराने में ही संपत्ति की और शरीर की व्यर्थता का पहला अनुभव होता है और आंखें उस तरफ उठती हैं जहां जीवन की और गहरी सच्चाइयां हैं, जहां और बियांड और दूर और अतीत और ऊपर के शिखर हैं उन तक आंख तभी उठती है, जब जीवन की नीचे से पृथ्वी शांत, सुविधापूर्ण हो जाती है।
तो मैं मानता हूं कि चरखा और तकली को अगर हम प्रतीक मान लेते हैं और अपनी आर्थिक जीवन-व्यवस्था का केंद्र बना लेते हैं और अगर हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि विकेंद्रीकरण करना है, बड़े उद्योग से बचना है, बड़ी टेक्नालॉजी और बड़ी साइंस को नहीं आने देना है तो हम बहुत घातक स्थिति में पहुंच जा सकते हैं।
हम दरिद्र हैं हमेशा से, हम और भी दरिद्र हो सकते हैं। सारी दुनिया समृद्ध होती चली जाएगी, उसके किनारे हम एक दरिद्रता का हिस्सा बन जाएंगे। आज भी हमारी हालत वैसी ही है जैसे किसी करोड़पति के भवन के सामने कोई भिखमंगा खड़ा हो। आज भी हमारी हालत दुनिया के राष्ट्रों के मुकाबले एक भिखमंगे राष्ट्र की हालत है। यह हालत रोज बदतर होती चली जाएगी। एक तरफ टेक्नीक का उपयोग मत करना, केंद्रीकरण की भावना को रोकना, तोड़ना, दूसरी तरफ बिल्कुल हाथ से चलने वाले साधन जो आदिम हैं उनका उपयोग करना और तीसरी तरफ बच्चों को पैदा करते चले जाना! बीस-पच्चीस वर्ष में यह मुल्क अपने हाथ से अपनी सुसाइड कर लेगा, आत्महत्या कर लेगा।
गांधी जी कहते हैं कि संतति-नियमन के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं कि बर्थ-कंट्रोल के पक्ष में भी वे नहीं हैं। वे कहते हैं ब्रह्मचर्य से नियमन होना चाहिए।
ब्रह्मचर्य से कितने लोगों ने कब नियमन किया है? कितने लोग नियमन कर सकते हैं? कितने लोग करेंगे? और हम प्रतीक्षा कब तक करेंगे?
लेकिन गांधी कहते हैं कि नहीं, कृत्रिम उपाय का हमको उपयोग नहीं करना है। बर्थ-कंट्रोल के साधन कृत्रिम हैं, आर्टीफिशियल हैं, उनका उपयोग नहीं करना है। गांधी की ये बातें अवैज्ञानिक हैं।
गांधी भले आदमी हैं, इसका यह मतलब नहीं होता कि गांधी जो भी कहेंगे वह वैज्ञानिक होगा। कई बार बड़े गलत आदमी बड़ी ठीक बातें कहते हैं, कई बार बड़े ठीक आदमी बड़ी गलत बातें कहते हैं और सच तो यह है कि गलत बातें हम तभी स्वीकार कर पाते हैं जब बहुत भले आदमी उनको कहते हैं। अगर चरखे और खादी की बात किसी और ने कही होती गांधी के अलावा, तो हिंदुस्तान कभी मानने की फिकर नहीं करता। वह गांधी इतने अदभुत आदमी हैं कि वह कुछ भी कहेंगे तो हमें लगता है कि इतना बड़ा व्यक्ति, इतना महिमावान व्यक्ति, इतना ओजस्वी, वह जो भी कहता है, ठीक कहता होगा।
अगर हम मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी को देखें, तो मार्क्स की व्यक्तिगत जिंदगी में कुछ भी नहीं है जिसको उद्दात्त कहा जा सके, ऊंचा कहा जा सके। सुबह से सांझ तक सिगरेट पी रहा है, शराब पी रहा है। जिंदगी में कुछ ऐसी ऊंची बात नहीं है। जिंदगी में कोई ऐसा बड़ा भारी प्रभाव नहीं है। नौकरानी से गलत संबंध है, नाजायज लड़का पैदा हो गया मार्क्स को, मार्क्स की जिंदगी में कुछ भी नहीं है। छोटी सी बात में क्रोध से भर जाता है। बहुत ईगोइस्ट है, बहुत ईर्ष्यालु है। लेकिन मार्क्स ने समाज के लिए जो विश्लेषण दिया है वह सत्य है। गांधी बहुत अच्छे आदमी हैं, न सिगरेट पीते हैं, न किसी नौकरानी से कोई गलत संबंध है, न कोई नाजायज बच्चा पैदा हुआ है। जीवन एकदम पवित्र कथा है। जीवन एक शुभ्र कथा है, लेकिन गांधी ने जो विश्लेषण किया है समाज का वह अवैज्ञानिक है और गलत है। गांधी जैसे आदमी चाहिए पृथ्वी पर, लेकिन समाज मार्क्स जैसा चाहिए। गांधी का समाज का विश्लेषण अवैज्ञानिक है।
लेकिन गांधीवादी कहते हैं मैं इस पर बात ही न करूं। वे कहते हैं, इस पर बात ही मत करिए। इस पर बात नहीं करने का मतलब, इस पर बात नहीं करने का मतलब

है कि देश में आग लग रही हो, हम बैठ कर देखते रहें। गांधीवादी मुझे कहते हैं कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप क्यों इन बातों में पड़ते हैं? एक धार्मिक आदमी निकलता है और एक मकान में आग लगी हो और चिल्ला कर कह दे कि मकान में आग लगी है, पानी ले आओ, तो उससे आप कहेंगे कि आप तो धार्मिक आदमी हैं, आप इस झंझट में कहां पड़ते हैं। लगने दो आग। आप अपना भजन-कीर्तन करो। मोरार जी भाई ने मेरे संबंध में बात करते हुए राजकोट में परसों कहा कि पहले तो राजनीतिज्ञ और आर्थिक लोग गांधी जी की आलोचना करते थे। अब आध्यात्मिक लोग भी उनकी आलोचना करने लगे। जैसे कि आध्यात्मिक आदमी का गांधी जी की आलोचना करना अनिवार्यरूपेण कोई अपराध हो।
मैं मोरार जी भाई को कहना चाहता हूं, गांधी जी को राजनीतिज्ञ और आर्थिक लोग तो समझ ही नहीं सकते, आलोचना क्या करेंगे। गांधी को तो आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं और विचार कर सकते हैं, क्योंकि गांधी मूलतः राजनीतिज्ञ नहीं हैं, न आर्थिक विचारक हैं, गांधी मूलतः एक आध्यात्मिक संत हैं। गांधी के आस-पास जो राजनीतिज्ञ इकट्ठे हो गए हैं, उन्होंने ही गांधी को बर्बाद किया है। और गांधी के पास जो राजनीति का जाल खड़ा हो गया, उस जाल ने ही गांधी की प्रतिमा को वह जितनी सुंदर हो सकती थी, जितनी पवित्र हो सकती थी, उसकी पवित्रता और सुंदरता में भी कमी की।
गांधी मूलतः एक आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। राजनीति से उनका कोई बुनियादी संबंध नहीं है। राजनीति एक आपद-धर्म थी, एक मजबूरी थी। मुल्क में एक आग थी, गुलामी थी। उसे दूर करने को उन्हें कूद पड़ना पड़ा। लेकिन मूलतः वे परमात्मा की खोज में जाने वाले एक साधक हैं। और उन पर आध्यात्मिक लोग विचार न करें ऐसा अगर मोरार जी भाई सोचते हों तो बहुत गलत सोचते हैं। गांधी पर हिंदुस्तान के आध्यात्मिक चिंतकों को बार-बार विचार करना पड़ेगा, क्योंकि गांधी ने आध्यात्मिक जीवन और सामान्य जीवन के बीच एक सेतु निर्मित किया है।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गांधी आध्यात्मिक व्यक्ति हैं इसलिए
जो भी कहेंगे वह सत्य होगा। हमारी पुरानी धारणा यह है, हम समझते हैं कि महावीर को चूंकि आत्मज्ञान मिला, परमात्मा का अनुभव हुआ, इसलिए महावीर जो भी कहेंगे वह सच होगा, यह गलत है बात। महावीर का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। बुद्ध का सब कहा हुआ सच नहीं हो सकता। गांधी का सब कहा हुआ भी सच नहीं हो सकता, बल्कि यह भी हो सकता है कि गांधी से बहुत कम हैसियत का कोई विचारक किसी दिशा में जो बात कहे, चाहे उसके पास व्यक्तित्व हो चाहे न हो, वह भी सच हो सकता है। यही मैंने कहा कि मार्क्स गांधी के मुकाबले कोई भी व्यक्तित्व नहीं है मार्क्स का। लेकिन मार्क्स के समाज का जो विश्लेषण है वह गांधी से श्रेष्ठ है, सही है, सच्चा है, वैज्ञानिक है। इसलिए मैं मानता हूं कि गांधी जैसे पृथ्वी पर जितने लोग बढ़ जाएंगे, पृथ्वी उतनी अच्छी होगी, लेकिन गांधी की जो जीवन-रचना की कल्पना है, वह कल्पना अवैज्ञानिक है, आदिम है, प्रिमिटिव है, पिछड़ी हुई है, और उसके आधार पर चल कर इस देश के सौभाग्य का उदय नहीं हो सकता है।
मैं मानता हूं कि यह आलोचना और विचार किया जाना जरूरी है। नहीं, मैं
यह नहीं कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वह सही होना ही चाहिए। वह मैं कभी भी नहीं कहता हूं। यह मैं नहीं कहता हूं कि मैंने जो कहा वह सत्य है ही। वह मैं कभी नहीं कहता हूं। यह भी मैं नहीं कहता कि मेरी बात आपको मान लेनी चाहिए। मैं इतना ही कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वह विचारणीय है, उस पर विचार किया जाना जरूरी है। हो सकता है मेरी बातें गलत हों। तब विचार करके उनको फेंक देना चाहिए। हो सकता है उसमें कोई बात आपके विवेक को सच मालूम पड़े, तब वह मेरी नहीं रह जाती, वह आपकी अपनी हो जाती है। लेकिन जो पंथवादी होते हैं, वे कहते हैं, विचार ही नहीं करना है। विचार की हत्या करना चाहते हैं।
मैं गुजरात गया तो वहां मुझे लोगों ने कहा कि इंदुलाल याज्ञनिक ने कहा कि मेरा बहिष्कार करेंगे, गुजरात में नहीं आने देंगे। मैंने कहा, अगर गुजरात पागल होगा तो इंदुलाल की बात मानेगा। गुजरात पागल नहीं है। बहिष्कार करेंगे मेरा, अगर मैं गांधी के ऊपर कुछ विचार करूंगा तो

बहिष्कार किया जाएगा। गांधी की आत्मा कहीं भी होगी तो इंदुलाल याज्ञनिक को देख कर रो रही होगी कि ये मेरे गांधीवादी हैं! इन्हीं लोगों के लिए मैंने लड़ाई लड़ी, इन्हीं के लिए जीवन कुर्बान किया, इन्हीं के लिए बर्बाद हुआ।
गांधीवादी को अगर थोड़ी भी समझ हो तो मुझे तो उसे गांव-गांव बुला कर ले जाना चाहिए कि मैं गांधी के बाबत बात करूं और गांधी के बाबत विचार को पैदा करूं।
लेकिन वह कहता है कि नहीं, अखबार में मेरी खबर नहीं छपनी चाहिए। मेरी सभा नहीं होनी चाहिए। राजकोट में जितने मैदान गांधीवादियों के हाथ में थे उन्होंने कहा कि नहीं, यहां हम सभा नहीं होने देंगे। स्कूल उनके हाथ में हैं, सभा नहीं होने देंगे। उनके हाथ में तो सभी कुछ हैं। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है, इससे क्या सभा नहीं होगी? लेकिन इस भांति रोक कर वे क्या बताते हैं? वे बताते हैं कि कितना समझे गांधी की अहिंसा को, कितना समझे गांधी के अध्यात्म को, कितना समझे गांधी के विचार को, यही समझे?
दिल्ली में बोला। दूसरे दिन ही मुझे एक पत्र आया। किसी गांधीवादी ने पत्र लिखा और मुझे लिखा कि महाशय आपको फौरन सेंट्रल जेल भेज दिया जाना चाहिए। मैंने आंख बंद करके गांधी को धन्यवाद दिया, मैंने कहा कि मेरी उम्र कम थी, इसलिए आपके सत्संग का मौका नहीं मिला, नहीं तो आपके सत्संग में जेल जाना ही पड़ता। लेकिन आश्चर्य, आप मर गए, फिर भी प्रभाव आपका काफी है। जरा आपसे दोस्ती दिखाई, आपकी बात की कि जेल जाने की बात होने लगी। गांधी अगर जिंदा होते तो इस बात के सौ में से सौ मौके हैं कि गांधीवादियों की जेल में उनको सड़ना पड़ता। ये गांधीवादी उनको जेल में जरूर भेजते।
गांधी बुनियादी रूप से एक विद्रोही क्रांतिकारी थे। वे मुल्क को नरक में ले जाते हुए अपने शिष्यों को नहीं देख सकते थे। वे यह नहीं सोचते कि ये शिष्य मेरे हैं, इसलिए इनसे बगावत कैसे करूं। बगावत की कहानी शुरू हो गई थी। गांधी के हाथ से जैसे ही सत्ता उनके अनुयायियों को मिल गई, वैसे ही गांधी को लगने लगा कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं। मेरा कोई चलन नहीं रहा। मेरी कोई सुनता नहीं। गांधी के शिष्यों को भी लगता था इस बुड्ढे से अब छुटकारा हो जाए तो अच्छा। क्योंकि यह झंझटें खड़ी करेगा। और गोडसे ने मालूम होता है गांधी के अनुयायियों की प्रार्थना सुन ली और गांधी की हत्या कर दी। गांधी से छुटकारा हो गया। अब मजे से उनकी पूजा करो, प्रार्थना करो, यश-गान करो, अब गांधी कोई गड़बड़ नहीं कर सकते। लेकिन इस भ्रम में मत रहना, कि जो देश गांधी पैदा कर सकता है--वह पचास गांधी पैदा कर सकता है।
गांधी पर विचार किया जाना जरूरी है, उनके एक-एक पहलू पर विचार किया जाना जरूरी है। जरूरी नहीं कि जो मैं कहूं वही सच है। नहीं, उतनी कोई भी जरूरत नहीं। मेरा निवेदन इतना ही है कि उस पर सोचने के लिए मुक्त मन का आमंत्रण होना चाहिए। वही आमंत्रण मैं देता हूं।
यह तो प्रारंभिक बात थी आज, आने वाले तीन दिनों में गांधी के अनेक पहलुओं पर मैं आपसे बात करना चाहूंगा।
सुबह आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा।
परमात्मा करे गांधी की कामनाएं सफल हो कि इस देश का भविष्य स्वर्णिम बने। परमात्मा करे कि गांधी जैसी इस देश की मुक्त आत्मा को विचारशील आत्मा को पैदा करना चाहते थे, वह आत्मा पैदा हो सके।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
दूसरा प्रवचन

संचेतना के ठोस आयाम

कुछ मित्रों ने कहा है कि गांधी जी यंत्र के विरोध में नहीं थे। और मैंने कल सांझ को कहा कि गांधी जी यंत्र, केंद्रीकरण, विकसित तकनीक के विरोध में थे।

गांधी जी की उन्नीस सौ अठारह से लेकर उन्नीस सौ अड़तालीस तक की चिंतना
को हम देखेंगे तो उसमें बहुत फर्क होता हुआ मालूम पड़ता है। वे बहुत सजग ऑब्जर्वर थे। वे रोज-रोज, जो उन्हें गलत दिखाई पड़ता, उसे छोड़ते, जो ठीक दिखाई पड़ता उसे स्वीकार करते हैं। धीरे-धीरे उनका यंत्र-विरोध कम हुआ था, लेकिन समाप्त नहीं हो गया था।
अगर वे जीवित रहते और बीस वर्ष, तो शायद उनका यंत्र-विरोध और भी नष्ट
हो गया होता। लेकिन वे जीवित नहीं रहे, और हमारा दुर्भाग्य सदा से यह है कि जहां हमारा महापुरुष मरता है वहीं उसका जीवन-चिंतन भी हम दफना देते हैं। महापुरुष तो समाप्त हो जाते हैं, उनकी जीवन-चिंतना आगे बढ़ती रहनी चाहिए। जहां महापुरुष समाप्त होते हैं वहीं उनका जीवन-दर्शन समाप्त नहीं हो जाना चाहिए। महापुरुष का शरीर समाप्त हो जाता है, उसका जीवन-चिंतन देश को आगे बढ़ाते रहना चाहिए। लेकिन हम इतने भयभीत हैं, हम इतने डरे हुए लोग हैं कि हम चिंतन को आगे ले जाना नहीं चाहते, हम चिंतन को वहीं ठोंक कर रोक देना चाहते हैं, जहां महापुरुष का शरीर गिर जाता है वहीं हम उसके चिंतन को भी दफना देना चाहते हैं। उसके ही विरोध में मैं कह रहा हूं।
यह प्रश्न गांधी जी का ही नहीं है। इस पूरे देश की चिंतना यंत्र-विरोधी रही है। यंत्र-विरोधी हमारी चेतना नहीं होती तो हमने यंत्र बहुत पहले विकसित कर लिए होते। हमारे पास बुद्धि की कमी नहीं थी। हिंदुस्तान में इतने बुद्धिमान आदमी पैदा हुए हैं जितना कोई भी देश गौरव नहीं कर सकता है। बुद्ध और महावीर, नागार्जुन और धर्मकीर्ति, वसुबंधु और दिग्नाग, शंकर और रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क हमारे पास अदभुत बुद्धिमान लोगों का लंबा सिलसिला है। लेकिन इतने बुद्धिमान लोग पैदा हुए, लेकिन एक आइंस्टीन और एक न्यूटन हमने पैदा नहीं किया। तीन हजार वर्ष के इतिहास में हमारे पास एक न्यूटन, एक आइंस्टीन कहने जैसा नहीं है। आइंस्टीन और न्यूटन से भी महत्वपूर्ण विचारक हमारे पास थे, लेकिन हमारे देश के विचार ने कभी भी वैज्ञानिक दिशा में कोई गति नहीं की। यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सिडेंटल नहीं है। इसके पीछे हमारे चिंतन का हाथ है। हमारी मान्यता यह है कि मनुष्य को विस्तार से बचना चाहिए। हमारी धारणा यह रही कि जितनी चादर हो उस चादर के भीतर अपने पैर सिकोड़ कर रखना चाहिए, चादर के बाहर पैर नहीं निकालने चाहिए। बुद्धिमान हम उसको कहते हैं जो चादर के भीतर रहता है। चादर के भीतर हम कितने ही सिकुड़ कर रहें, हम रोज बड़े होते जाते हैं और चादर रोज छोटी होती चली जाती है। जीना एक पीड़ा और कठिनाई हो जाती है लेकिन चादर के बाहर पैर नहीं फैलाने हैं।
जीवन का नियम है विस्तार, और हमने संकोच के नियम को आधार बनाया हुआ है। जो समाज विस्तार के सिद्धांत को स्वीकार किए हैं उन्होंने यंत्र को विकसित किया है, क्योंकि यंत्र है मनुष्य का विस्तार। हमारे पैर हैं, हम पैर से चलते हैं। पैर से हम कितने तेज चल सकते हैं? कार हमारे पैर का विस्तार है, हमने पैर के लिए और विस्तृत किया, और कार तेज गति से दौड़ती है। हवाई जहाज हमारे पैर का और भी बड़ा विस्तार है, अंतरिक्ष-यान हमारे ही पैर का और भी बड़ा विस्तार है।
यंत्र का अर्थ क्या है?
यंत्र का अर्थ है कि जो मनुष्य को उपलब्ध नहीं हैं उपकरण, उनका विस्तार या जो उपकरण उपलब्ध हैं, उनका विस्तार।
अगर हम संकोच को स्वीकार करते हैं कि जीवन जैसा है, जितना है, उतने ही चादर के भीतर उसे जी लेना है, तो हम कोई यांत्रिक, वैज्ञानिक,

टेक्नालॉजिकल माइंड पैदा नहीं कर सकते हैं। यह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि गांधी यंत्र के विरोध में हैं या पक्ष में हैं। चरखा भी यंत्र है। दलील तो दी जा सकती है कि तकली भी यंत्र है। यंत्र तो है ही। किसी दिन वह भी मशीन थी, आज भी मशीन तो है ही। छोटी है, अविकसित है, दस हजार वर्ष पुरानी है, इससे क्या फर्क पड़ता है। यंत्र तो है ही। नहीं, सवाल यंत्र के पक्ष और यंत्र के विरोध का नहीं है, सवाल टेक्नालॉजिकल माइंड और एंटी-टेक्नालॉजिकल माइंड का है। सवाल है कि तकनीकी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं या तकनीक विरोधी मस्तिष्क में हम विश्वास करते हैं।
चीन ने कोई तीन हजार वर्ष पहले मशीनें ईजाद कर ली थीं, लेकिन चीन में
एक विचारक था लाओत्सु, उसका बड़ा प्रभाव था। लाओत्सु ने कहा कि यंत्रों की कोई जरूरत नहीं है। आदमी परिपूर्ण है। परमात्मा ने आदमी को पूरा पैदा किया है। उसे किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। वह अपने सारे अंगों से ही सारा काम कर सकता है। लाओत्सु के दर्शन का इतना प्रभाव पड़ा कि तीन हजार वर्ष पहले जो मशीनें चीन ने विकसित की थीं, वे वहीं रह गईं, उनकी आगे कोई गति नहीं हो सकीं। उन्हीं मशीनों को यूरोप ने पिछले तीन सौ वर्षों में विकसित किया और यूरोप ने धन के अंबार लगा दिए। चीन ने अगर तीन हजार वर्ष पहले वे मशीनें विकसित की होतीं तो चीन शायद आज पृथ्वी पर सयता में अग्रणी हो सकता था, लेकिन लाओत्सु के विचार-प्रभाव के परिणाम में यंत्र वहीं ठहर गए और रुक गए।
हिंदुस्तान बैलगाड़ी पर चल रहा है हजारों साल से। वह जो बैलगाड़ी के चाक का नियम है, वही हवाई जहाज का भी नियम है। उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ गया है, उसका ही विस्तार है। लेकिन हम बैलगाड़ी पर ही रुक गए। हमारा मस्तिष्क यंत्र के विस्तार की कामना से भरा हुआ नहीं है और गांधी जी ने जब फिर हमें विकेंद्रीकरण--और विकेंद्रीकरण का क्या मतलब होता है? डिसेंट्रलाइजेशन का मतलब क्या होता है? विकेंद्रीकरण का मतलब होता है कि छोटे यंत्र; बड़े यंत्र नहीं। क्योंकि जितने बड़े यंत्र होंगे उतना केंद्रीकरण होगा। जितना बड़ा केंद्रीकरण होगा उतने बड़े यंत्रों का हम प्रयोग कर सकते हैं। जितनी विकेंद्रित व्यवस्था होगी उतने छोटे यंत्र होंगे, एक-एक आदमी जिनको चला सके, दो-चार आदमी मिल कर चला सकें, छोटे-छोटे गांव में चलाएं जा सकें। विकेंद्रीकरण का अर्थ होगा कि बहुत बड़े यंत्रों का प्रयोग नहीं हो सकता। और आने वाली जो दुनिया है वह बहुत बड़े यंत्रों पर निर्भर होगी।
फिर मेरा यह कहना है, कि यह सवाल अगर यंत्रों का ही होता तो मैं गांधी
जी का विरोध भी न करता। यह सवाल यंत्रों का ही नहीं मनुष्य की चेतना के विकास का भी है। शायद आपको पता न हो, हम जितने बड़े उत्पादन के यंत्रों का प्रयोग करते हैं, मनुष्य के मस्तिष्क की अभिव्यक्ति और विकास की संभावना उतनी ही बढ़ती है। यह एकदम से आश्चर्यजनक मालूम पड़ेगा। लेकिन आपने कभी खयाल किया कि एक बैलगाड़ी एक आदमी चलाता है जीवन भर। बैलगाड़ी चलाने में कोई बहुत बुद्धिमत्ता कि लिए चुनौती नहीं मिलती। चुनौती का कोई सवाल नहीं है, कोई चैलेंज नहीं है वहां, लेकिन उसी आदमी को कल हवाई जहाज चलाना पड़े, तो हवाई जहाज मस्तिष्क को ज्यादा चुनौती देता है, ज्यादा समझ, ज्यादा अवेयरनेस, ज्यादा होश, ज्यादा कांशसनेस रखनी पड़ती है। ज्यादा जटिल चीजों को समझना पड़ेगा, ज्यादा जटिल चीजों में व्यवहार करना पड़ेगा।
जितनी जटिल, उलझी हुई, जितनी सूक्ष्म, जितनी विस्तीर्ण हमें यंत्र के साथ सामना करना पड़ता है, हमारे मस्तिष्क को उतनी चुनौती मिलती है और मस्तिष्क उसी अनुपात में विकसित होता है। जिन कौमों ने छोटे यंत्रों या गैर-यंत्रों के बिना काम चलाया, उनकी सामाजिक चेतना और मस्तिष्क के विकास में अवरोध पड़ा है।
बंदर पहली दफा जो बंदर जमीन पर खड़ा हुआ होगा दो पैर से, बाकी बंदर उस
पर हंसे होंगे कि यह बिल्कुल नासमझ है, लेकिन डार्विन कहता है कि वह बंदर जो दो पैर पर खड़ा हो गया--पहले तो बंदर हंसे होंगे और उन्होंने समझा होगा कि यह पागल है। वह ऑकवर्ड भी लगा होगा दो पैर से खड़ा हुआ। सब बंदर चार पैर से चलने वाले थे, लेकिन जो बंदर दो पैर से खड़ा हो गया उसने टेक्नालॉजिकल

रेवोल्यूशन को जन्म दे दिया। उसने तकनीक के विकास की पहली सीढ़ी रख दी। उसने यह कहा है कि जो काम दो पैर से हो सकता है उसको चार हाथ-पैर से करना गलत है। तकनीक शुरू हो गया। उसने दो हाथ मुक्त कर लिए और दो पैर से चलने का काम करने लगा।
क्या आपको पता है, अगर उस बंदर ने दो हाथ मुक्त नहीं किए होते तो मनुष्य की कोई सयता का कभी जन्म नहीं हुआ होता। वह जो दो हाथ मुक्त हो गए, वह दो खाली हाथों ने मनुष्य की सारी सयता विकसित की है। बंदर वहीं रुक गए हैं चार हाथ-पैर से चलने वाले। दो हाथ-पैर से चलने वाले बंदर ने जमीन-आसमान का फर्क पैदा कर लिया। आज कोई कहे कि बंदर और हम एक ही जाति के हैं, तो हमारा मन मानने को राजी नहीं होता। हमारे और बंदर के बीच इतना फासला पड़ गया, लेकिन यह फासला एक टेक्नालॉजिकल फर्क से पड़ा कि कुछ बंदरों ने दो हाथ मुक्त कर लिए। दो हाथ खाली हो गए, स्वतंत्र हो गए काम करने को, दो पैर से काम चलने लगा और उन दो स्वतंत्र हाथों ने सारी सयता, मकान, मंदिर, ताज, मस्जिदें, साहित्य, संगीत, धर्म, इन सबकी फिक्र की।
इस बात की संभावना है कि बहुत शीघ्र मनुष्य समस्त यंत्रों को स्वचालित निर्मित कर लेगा। अमेरिका में तो उसका चिंतन और विचार तीव्र हुआ जाता है। वे कहते हैं कि आने वाले पचास वर्षों में हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल यह होगा कि हम यंत्रों से सब पैदा कर लेंगे। मनुष्य के श्रम की कोई जरूरत न रह जाएगी। मनुष्य खाली हो जाएगा। वह खाली मनुष्य क्या करेगा, यह हमारे सामने सवाल है? अगर सारे यंत्र स्वचालित हो गए और मनुष्य का श्रम उनसे मुक्त हो गया, तो मेरी दृष्टि में मनुष्य की चेतना में आमूलभूत परिवर्तन हो जाएगा, क्योंकि पहली दफा चेतना पृथ्वी से पूरी तरह मुक्त हो जाएगी--श्रम से और उस श्रम से शून्य अवस्था में जो खोज, जो यात्रा चेतना की होगी, वह उन्हें किस लोकों में ले जाएगी कहना कठिन है।
शायद आपको पता नहीं कि जगत की सारी संस्कृति लिजर, विश्राम से पैदा हुई है। जगत का सारा साहित्य लिजर, विश्राम से पैदा हुआ है। जगत में जो भी श्रेष्ठतम उपलब्ध हुआ है वह उन लोगों से उपलब्ध हुआ है जो श्रम से किसी भांति मुक्त हो गए। एथेंस में जितनी संस्कृति विकसित हुई, वह इसलिए विकसित हो सकी कि एथेंस में एक वर्ग, गुलामों के वर्ग ने सारा श्रम किया और दूसरे अभिजात वर्ग ने, बुर्जुआ ने कोई श्रम नहीं किया। वे जो श्रमहीन लोग थे, वे भी तो कुछ करेंगे जीने के लिए? उन्होंने फिलासफी लिखी। उन्होंने साक्रेटीज, अरस्तू और प्लेटो को जन्म दिया।
भारत में भी, भारत ने भी ब्राह्मणों ने हिंदुस्तान के सारे साहित्य, सारे विचार को जन्म दिया, क्योंकि ब्राह्मण श्रम से मुक्त हो गया था, अन्यथा कोई उपाय न था। शूद्रों ने एक उपनिषद लिखी? शूद्रों ने एक वेद लिखा? शूद्रों ने आयुर्वेद खोजा? शूद्रों के ऊपर क्या उपलब्धि है भारत में? शूद्र के नाम पर कोई उपलब्धि नहीं है बेचारे के, क्योंकि वह चौबीस घंटे श्रम में लीन है।
हिंदुस्तान की सारी संस्कृति का जन्मदाता ब्राह्मण है। और ब्राह्मण क्यों हैं जन्मदाता? ब्राह्मण इसलिए जन्मदाता है कि उसके हाथ से सारा श्रम समाप्त हो गया, उसका व्यक्तित्व पूरा का पूरा विश्राम में हो गया, चेतना को ऊपर उठने का मौका मिल गया, चेतना आकाश की यात्रा करने लगी। मनुष्य-जाति के जीवन में एक आध्यात्मिक क्रांति हो जाएगी उस दिन, जिस दिन हम सारी मनुष्य-जाति को श्रम से मुक्त कर लेंगे। जब तक हम मनुष्य-जाति को श्रम से मुक्त नहीं करते हैं, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में बहुत बुनियादी रूपांतरण नहीं हो सकता है।
गांधी जी के जो विश्वास हैं, उनके हिसाब से मनुष्य-जाति श्रम से कभी मुक्त नहीं होगी। अगर एक आदमी अपने लायक ही कपड़ा बनाना चाहे तो कम से कम उसे तीन-चार घंटे रोज चरखा चलाना पड़ेगा। वर्ष भर में अपने लायक कपड़ा बनाना चाहे तो उसे तीन-चार घंटे चरखा चला लेना पड़ेगा। अगर उसके ऊपर कोई निर्भर एक व्यक्ति है तो उसके आठ घंटे चरखा चलाने में व्यतीत हो जाने चाहिए। जो आदमी आठ घंटे चरखा चलाएगा--सिर्फ कपड़ा बनाने के लिए! वह और भी कुछ करेगा या नहीं? और इतनी क्षुद्र चीजों में उसकी चेतना को उलझा देना क्या मनुष्य के

भावी विकास के हित में हो सकता है? यह प्रश्न सिर्फ चरखा और तकली का नहीं है, यह प्रश्न मनुष्य-जाति के जीवन में चेतना के जन्म, चेतना के विकास का प्रश्न है।
अभी अमेरिका और रूस ने जो अंतरिक्ष-यान भेजे, उन अंतरिक्ष-यानों में
जो यात्री गए, उनका अनुभव आपको पता है? उन्होंने लौट कर क्या खबरें दी हैं? उन्होंने खबरें दी हैं कि अंतरिक्ष में परिपूर्ण शून्य है, सन्नाटा है। वहां टोटल साइलेंस है, वहां कोई आवाज नहीं, क्योंकि वहां कोई हवा नहीं। अगर बोलिएगा भी तो ओंठ हिलेंगे, आवाज नहीं होगी। वहां कभी कोई आवाज नहीं हुई।
अंतरिक्ष परिपूर्ण शून्य है। उस शून्य में जाकर अंतरिक्ष यात्रियों
को क्या अनुभव हुआ कि यह मस्तिष्क पूरा का पूरा फटने लगता है, घबड़ाने लगता है। इतनी शांति कभी देखी नहीं, इतनी शांति कभी झेली नहीं। हमेशा शोरगुल, आवाज, आवाज, रात सोते हैं तब भी बाहर आवाजें चल रही हैं, उनकी मस्तिष्क को आदत पड़ गई है। मस्तिष्क उनसे कंडीशंड हो गया है।
अंतरिक्ष में जाने पर उनको पता चला कि मस्तिष्क तो फट जाएगा। इतनी शांति को सहना मुश्किल है। तो रूस और अमेरिका में उन्होंने कृत्रिम घर बनाए हैं, कृत्रिम कमरे बनाए हैं जिनमें उतनी शांति पैदा करने की कोशिश की है जितनी अंतरिक्ष में है। वहां यात्री को पहले ट्रेनिंग दी जाएगी, लेकिन उस कमरे में बैठ कर आधा घंटे, पंद्रह मिनट में घबड़ा कर यात्री बाहर आ जाता है कि वहां बहुत घबड़ाहट होती है, लेकिन धीरे-धीरे उस शून्य को सहने की सामर्थ्य उसकी विकसित हो जाएगी। उसका अर्थ आप समझते हैं? उसका अर्थ यह है कि जो लोग अंतरिक्ष-यान में यात्रा करेंगे उनके मस्तिष्क की बनावट में बुनियादी फर्क हो जाएगा उतनी शांति को सहने के कारण और यह हो सकता है कि एक बिल्कुल दूसरे तरह के मनुष्य का जन्म हो जाए जिसकी हमें कोई कल्पना भी नहीं हो सकती।
जीवन और उत्पादन के साधन, वाहन-कम्युनिकेशन के साधन अंततः मनुष्य की चेतना में परिवर्तन लाते हैं। अपने देखा, जो जंगल में आदिवासी रह रहा है, उस आदिवासी ने कोई साक्रेटीज पैदा किया? कोई बुद्ध पैदा किया? कोई महावीर पैदा किया? कोई गांधी पैदा किया? वह कैसे पैदा करेगा? उसके उत्पादन के साधन इतने आदिम हैं कि उन आदिम उत्पादनों के साथ मस्तिष्क इतनी ऊंचाइयां नहीं ले सकता है जितनी ऊंचाइयां विकसित साधनों के साथ ली जा सकती है। आपको खयाल है, आज भी हिंदुस्तान में राधाकृष्णन जैसे व्यक्तियों को हम विचारक कहते हैं। राधाकृष्णन टीकाकार हो सकते हैं, विचारक जरा भी नहीं। एक मौलिक विचार को कोई जन्म नहीं दिया। जर्मनी में हाइडेगर है या जास्पर्स है, या सार्त्र है, या कामू है, या रसल है। इनकी कोटि का एक विचारक आप पैदा नहीं कर कर सकते हैं आज।
आप जिसको विचारक कहते हैं, किसको विचारक कहते हैं? गीता पर एक आदमी टीका लिख देता है तो विचारक हो जाता है? लेकिन गीता पैदा कर सके ऐसा एक विचारक आप पैदा नहीं कर सकते हैं। बस टीकाकार पैदा कर सकते हैं। उन्हीं को विचारक मान कर शोरगुल मचाते रहते हैं। हाइडेगर की हैसियत का एक विचारक हम पैदा नहीं कर सकते। उसका कारण? उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास बुद्धि कम है, उसका कारण यह नहीं कि हमारे पास प्रतिभा नहीं है, उसका कारण यह है कि हमारा पूरा सामाजिक परिवेश उतनी प्रतिभा को चैलेंज देने वाला नहीं है जहां से कि हाइडेगर या जॉस्पर्स जैसे लोग पैदा हो सकें। लेकिन हम बैठे हुए हैं और हमारा विचारक चरखा और तकली की प्रशंसा करता रहेगा और हम विचार करने को राजी नहीं हैं।
इस बात के लिए समझ लेना आप ठीक से कि अगर पचास वर्ष में पश्चिम में सब कुछ स्वचालित यंत्र हो गए, अंतरिक्ष की यात्रा शुरू हुई, तो इस बात का डर है कि पश्चिम में एक नये मनुष्य का, एक नई ह्यूमैनिटी का जन्म हो जाए और पूरब के लोगों और पश्चिम के लोगों में उतना फासला पड़ जाए हजार दो हजार वर्षों में, जितना बंदर और आदमी के बीच फासला पैदा हो गया है। लेकिन हमें कोई बोध नहीं है इस बात का। हम कहेंगे, हम तो स्वावलंबन की बातें कर रहे

हैं। हम हमेशा से इसी तरह की बातें कर रहे हैं और हमेशा नुकसान उठाते रहे हैं, लेकिन हम जानने को भी राजी नहीं होना चाहते।
हिंदुस्तान एक हजार साल तक गुलाम था और हजारों साल से निरंतर हारता रहा है, जीत का उसने कभी कोई सपना नहीं देखा, जीत का कभी मौका नहीं पाया। हम क्यों हारते रहे? कभी आपे सोचा? हम हारते इसलिए रहे हैं कि जब भी दुश्मन हमारे ऊपर आया, उसके पास युद्ध की विकसित टेक्नालॉजी थी। हमारे पास विकसित टेक्नालॉजी नहीं थी। सिकंदर हिंदुस्तान आया वह घोड़े पर सवार होकर आया। पोरस उससे लड़ने गया। पोरस सिकंदर से कमजोर आदमी नहीं था और उसके पास बहादुर सैनिक थे, लेकिन पोरस के पास टेक्नालॉजी जो थी वह अविकसित थी। वह हाथियों पर लड़ने गया था। हाथी कोई युद्ध का अस्त्र नहीं है। हाथी बरात निकालनी हो तो बहुत अच्छे हैं, शोभा-यात्रा निकालनी हो तो बहुत अच्छे हैं, लेकिन युद्ध के मैदान पर हाथी पिछड़ा हुआ साधन है घोड़े के मुकाबले। घोड़ा तेज है, ज्यादा जानवान है, ज्यादा चंचल है, थोड़ी जगह घेरता है, तेजी से गति करता है।
सिकंदर के घोड़ों के मुकाबले पोरस के हाथी हारे। सिकंदर से पोरस नहीं हारा है। और हाथी जब घबड़ा गए युद्ध में तो उन्होंने अपनी सेनाओं को कुचल डाला। बाबर हिंदुस्तान आया। बाबर के पास बारूद थी। हमारे पास बारूद का कोई उत्तर नहीं था। दूसरे मुल्क में हम लड़ने नहीं गए, दूसरे मुल्क के लोग लड़ने आए, हम अपने मुल्क में हारते रहे। इतनी बड़ी जनसंख्या लेकर हम बैठे हैं, परदेश से एक आदमी आएगा कितनी फौजें लाएगा, कितनी फौजें ला सकता है, और हम उससे अपने मुल्क में हार जाएंगे। बारूद का हमारे पास कोई उत्तर न था। बारूद से हारने के सिवाय कोई रास्ता न था। हम बाबर से नहीं हारे; हम बारूद से हारे। बाबर को हराने की हमें हिम्मत न थी, लेकिन हमारे पास कोई टेक्नीक न थी। अंग्रेज हिंदुस्तान में आए, हमारे पास बंदूकें थीं, अंग्रेजों के पास विकसित तोपें थीं। हम अंग्रेजों से नहीं हारे, बंदूकें तोपों से हारेंगी ही, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है।
और अब हम फिर वही बातें किए चले जा रहे हैं कि टेक्नालॉजी, नहीं-नहीं बड़े यंत्रों का क्या करना है, बड़े विकास का क्या करना है, चरखा-तकली से चलाना है। उसी से चला रहे हैं हम पांच हजार वर्षों से और रोज मात खाते रहे, रोज जमीन चाटते रहे, लेकिन वही बातें हम जारी किए हुए हैं। और अगर कोई कहे कि यह गलत है, हमें विकास के सारे साधनों का उपयोग करना है, हमें बहुत शीघ्र बीस वर्षों में सारी दुनिया के साथ खड़े हो जाना है, अन्यथा हम कहीं के नहीं रह जाएंगे, तो हम उसके विरोध में टूट पड़ेंगे कि हमारे महापुरुष की आलोचना हो गई। यह महापुरुष की आलोचना का सवाल नहीं है, यह मुल्क की जिंदगी का सवाल है।
मैं जो विकसित टेक्नीक के पक्ष में बोल रहा हूं वह इसलिए नहीं कि मुझे चरखे से कोई दुश्मनी है, न तकली से मुझे दुश्मनी है, न मैं इस खयाल का हूं कि चरखे और तकली चलने बंद हो जाने चाहिए। जब तक कोई उपाय नहीं है वह चलें, लेकिन मजबूरी हो उनको चलाना, हमारा सिद्धांत नहीं। यह फर्क समझ लेना जरूरी है। मजबूरी हो उनको चलाना, हमारा सिद्धांत नहीं। विवशता हो हमारी, हम मजबूर हैं, इसलिए अभी कुछ नहीं कर पा रहे हैं, तो चला रहे हैं। लेकिन जैसे ही हमें मौका मिलेगा, हम उनसे मुक्त हो जाएंगे। यह हमारी दृष्टि हो। वे हमारे प्रतीक न बन जाएं। हमारी कमजोरी के प्रतीक हों, हम नहीं विकसित हो पाए हैं इसके प्रतीक हों। उनको हम छाती काशृंगार न बना लें और यह न घोषणा करते फिरें कि हम बहुत ऊंचा काम कर रहे हैं।
न ही खादी से मेरा कोई विरोध है, लेकिन खादी को मैं कोई आर्थिक-संयोजन
का सिद्धांत नहीं मानता हूं। खादी कोई आर्थिक चीज नहीं हो सकती। खादी का एक एस्थेटिक मूल्य हो सकता है, एक सौंदर्यगत मूल्य हो सकता है। किसी आदमी को हाथ से बनाई हुई चीज पहनने में रस हो सकता है। दुनिया कितनी ही विकसित हो जाए तो भी घर के उद्योग जारी रहेंगे। दुनिया कितनी ही विकसित हो जाए, होटलों में कितना ही अच्छा खाना बनने लगे, तो भी कोई गृहिणी अपने घर खाना बनाना पसंद करेगी। और यह भी हो सकता है कि घर बनाया हुआ खाना होटल से अच्छा न हो, तो भी घर का खाना खाने का आनंद अलग है। लेकिन उसका मूल्य एस्थेटिक

है। उसका मूल्य आर्थिक नहीं है, उसका मूल्य वैज्ञानिक नहीं है। अगर मेरी मां मुझे कुछ खाना बना कर खिलाती है, हो सकता है होटल के रसोइए उससे बहुत बेहतर बनाते हों, लेकिन होटल के रसोइयों के खाने से मुझे मेरी मां का खाना अच्छा लगेगा। लेकिन मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि यह डाइटीशियन के हिसाब से ज्यादा बेहतर खाना है। मैं इतना ही कहूंगा, यह मेरी मां है और मेरा एक प्रेम है और एक लगाव है इसलिए यह मुझे अच्छा लग रहा है। इसका संबंध फीलिंग से हुआ, डाइट के साइंस से नहीं। लेकिन जब मैं यह घोषणा करने लगूं कि मां के हाथ का बनाया हुआ खाना डाइट की दृष्टि से, भोजनशास्त्र की दृष्टि से ऊंचा होता है, तो फिर मैं गड़बड़ में पड़ गया, तो फिर मैं कठिनाई में पड़ गया।
खादी एक एस्थेटिक मूल्य रखती है। जिन्हें प्रीतिकर हो वे खादी पहन सकते हैं, जिन्हें प्रीतिकर हो वे चरखा चला सकते हैं। किसी को रुकावट डालने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन खादी को आर्थिक-संयोजना का, इकॉनामिक प्लानिंग का हिस्सा नहीं समझा जा सकता और खादी को आर्थिक-सिद्धांत नहीं माना जा सकता।
मैं खुद खादी पहनता हूं। मुझे खुद दूसरे कपड़े के बजाय खादी ज्यादा पोएटिक, ज्यादा काव्यात्मक मालूम पड़ती है। मुझे खुद खादी में ज्यादा पवित्रता, ज्यादा स्वच्छता, ज्यादा सफेदी मालूम पड़ती है। लेकिन यह मेरी पसंद हुई व्यक्तिगत। यह हॉबी हो सकती है, यह अपना सुख हो सकता है। और हॉबी कि लिए महंगे से महंगा खर्च करना पड़ता है--सो खादी काफी महंगा हॉबी है, काफी महंगी हॉबी है। जो धोती दस रुपये में मिल सकती है मील की, वह खादी कि पचास रुपये में मिलेगी। और वह पचास में भी सिर्फ इसलिए मिलती है कि कर चुकाने वालों से पंद्रह रुपये लेकर खादी पहनने वालों को चुकाए जा रहे हैं। पैंसठ रुपये की चीज पचास रुपये में पड़ती है पहनने वाले को। पंद्रह रुपये सरकार दे रही। यह हैरानी की बात है। जिसको शौक हो वह पैंसठ, सत्तर, अस्सी खर्च करे। लेकिन जो खादी नहीं पहनता है, उससे पंद्रह रुपये उसकी जेब में से निकाल कर मुझे खादी पहनाई जाए यह समझ के बाहर है। इसका कोई अर्थ नहीं, यह खतरनाक बात है।
लेकिन हम विचार करने को राजी होने को राजी नहीं हैं। हम सोचने को ही राजी नहीं हैं। इससे क्या पता चलता है? सोचने से इतना भयभीत होने का मतलब क्या होता है? इसका साफ मतलब यह होता है कि हम बहुत भलीभांति जानते हैं कि इन चीजों पर सोचा तो सोचने में ये चीजें बह जाएंगी, ये बच नहीं सकतीं। जब आदमी डरता है कि जिन चीजों पर सोचने से चीजों के मिट जाने का डर है, अनकांशसली वह अनुभव करता है कि हमने सोचा कि ये गईं, तो वह सोचने से भयभीत हो जाता है। फिर वह कहता है सोचो मत, जो है वह ठीक है, आंख बंद रखो। आंख बंद रखने का मतलब यह है कि आप जानते हैं आंख खोलते से जो दिखाई पड़ेगा वह वही नहीं होने वाला है, जो आप समझते रहे हैं। वह तथ्य दूसरा है जो आंख खोलने से दिखाई पड़ेगा। इसलिए कमजोर लोग आंखें बंद करना शुरू कर देते हैं, लेकिन अगर पैर में फोड़ा है और उसे छिपा लें आप, तो आप स्वस्थ नहीं हो जाते और अगर कोई कहे कि जरा आपका कपड़ा उठाइए और आप कहें कि क्यों कपड़ा उठाऊं, क्यों तुमने मेरी कपड़ा उठाने की बात की, तो उससे भी आप स्वस्थ नहीं हो जाते हैं, बल्कि आपकी यह घबड़ाहट बताती है कि कपड़े के पीछे कुछ आप छिपाए हैं जिसे आप जानते भी हैं और नहीं भी जानना चाहते हैं; जिसे आप पहचानते भी हैं लेकिन पहचानना भी नहीं चाहते हैं, मुकरना चाहते हैं, पीठ फेर लेना चाहते हैं।
जब भी कोई कौम विचार करने से डरने लगती है तो समझ लेना उस कौम ने कुछ बेवकूफियां पाल रखी हैं जिनकी वजह से वह विचार करने से डरती है।
सत्य कभी भी विचार करने से भयभीत नहीं होता, असत्य हमेशा विचार करने
से भयभीत होता है।
हमारे महापुरुष असत्य हैं या सत्य, अगर उन पर विचार करने से भय मालूम होता है तो तुम समझ लेना कि तुम बहुत भीतर मन में जानते हो कि ये महापुरुष हमारे बनाए हुए हैं, ये असली महापुरुष नहीं हैं। लेकिन अगर तुम विचार करने की हिम्मत कर सकते हो, तो ही पता चलता है कि तुमने स्वीकार किया है कि महापुरुष में कुछ बल है। तुम्हारे विचार करने से वह नष्ट हो जाने वाला नहीं है। जो व्यर्थ होगा वह जल जाएगा। हम सोने को आग में डालने से डरते

नहीं, क्योंकि जो कचरा होगा वह जल जाएगा और जो सोना है वह बच कर बाहर निकल आएगा। लेकिन कचरा ही कचरा पास में हो तो उसको हम फिर आग में डालने से बहुत डरेंगे।
मैं गांधी को आग में डालने से नहीं डरता हूं, क्योंकि मैं मानता हूं उनमें बहुत कुछ सोना है; कचरा जल जाएगा और सोना निखर कर बाहर आ जाएगा। लेकिन उनके भक्त बहुत भयभीत होते हैं। उनके भक्त क्या डरते हैं कि गांधी जल जाएंगे विचार करने से उन पर? उनके एक भक्त ने अभी चिट्ठी लिखी है कि मैं और कुछ भी करूं, कम से कम गांधी को सिर्फ गांधी न कहा करूं, महात्मा गांधी या गांधी जी कहा करूं।
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। यह थोड़ा सोचना जैसा है कि हम गांधी को गांधी जी कहें, इसमें ज्यादा आदर है या गांधी कहने में ज्यादा आदर है? परमात्मा के साथ हम जी नहीं लगाते कि परमात्मा जी। परमात्मा को हम कहते हैं परमात्मा। परमात्मा को हम कहते हैं तू। आप आएंगे तो मैं आपसे कहूंगा आप। परमात्मा से कभी किसी से "आप" कहा है? परमात्मा से हम कहते हैं "तू", हे परमात्मा तू! तू अनादर नहीं है। तू अनादर नहीं है और न गांधी अनादर है। इतना प्रेम है मेरे मन में कि "जी" लगाने से मुझे नहीं लगता कि गांधी की इज्जत बढ़ती है। ये छोटे-मोटे लोगों के साथ जी लगाने से इज्जत बढ़ती होगी। गांधी के साथ जी लगाने से इज्जत कम होती है। जी हम उनके साथ लगाते हैं जिनके साथ लगाने जैसा भीतर कुछ भी नहीं है, बाहर से जी लगा कर इज्जत जोड़ देते हैं।
महावीर को मैं महावीर कहता हूं, उनको महावीरजी कहने से ऐसा लगेगा कोई किराने की दुकान के मालिक हैं। गौतम बुद्ध को मैं बुद्ध कहता हूं, बुद्धजी लगाने से वे ओछे और छोटे पड़ जाएंगे। गांधी को मैं उसी कोटि में मानता हूं जहां आदमी "आप" के ऊपर उठ जाता है और "तू" में प्रविष्ट हो जाता है। इसलिए मैं जी वगैरह नहीं लगाऊंगा और न महात्मा कहूंगा। लेकिन ये घबड़ाते कैसे हैं लोग कि जी नहीं लगाया तो मुश्किल हो गई। ये अपनी ही बुद्धि से सोचते हैं। वह जितनी उनकी हैसियत है। अगर उनसे कोई जी न लगाए और आप न कहे तो वे बेचैनी में पड़ जाएंगे। बेचारे अपनी ही शक्ल में वे महापुरुषों को भी सोचते रहते हैं। नहीं, मैं नहीं लगाऊंगा और आप लगाते हो तो आपसे कहूंगाः मत लगाना, अपमानजनक है, इनसल्टिंग है।
हम अपने महापुरुष को तो उतने प्रेम से पुकार सकते हैं, बीच में जी और आदर सब लगाने की जरूरत नहीं है। शायद आपको खयाल न हो कि हम जब आदर प्रकट करते हैं तो हम क्यों प्रकट करते हैं? जब हम शब्दों में आदर बताते हैं तो क्यों बताते हैं? शब्दों में आदर इसलिए बताना पड़ता है कि अगर शब्दों में न बताएं तो और तो कोई आदर हमारे पास नहीं है। शब्द ही आदर है।
जब हृदय में आदर होता है तो शब्दों में हम विचार नहीं करते, फिक्र नहीं करते और जब हृदय में आदर नहीं होता तो हम शब्दों की बहुत फिक्र करते हैं कि क्या कहा क्या नहीं कहा, कौन सा शब्द उपयोग किया, कौन सा नहीं किया। बर्नार्ड शॉ, उसका संक्षिप्त नामः जे.बी.एस.। वह कहता थाः जॉर्ज बर्नार्ड शॉ। उसकी मां मर गई, तो उस दिन से उसने जे.बी.एस. लिखना बंद कर दिया, सिर्फ बी.एस. लिखने लगा, बर्नार्ड शॉ लिखने लगा। उसके मित्रों ने पूछा कि तुम जे.बी.एस. क्यों नहीं लिखते हो अब? उसने कहा कि सिर्फ मेरी एक मां थी जिसका मेरे ऊपर इतना प्रेम था जो मुझे जॉर्ज कहती थी। वह चली गई दुनिया से। अब इतना प्रेम मेरे ऊपर किसी का भी नहीं है कि कोई मुझे जॉर्ज कहे। वह सब मुझे बर्नार्ड शॉ कहते हैं। बर्नार्ड शॉ उतना प्यारा नाम नहीं है। मेरी मां उठ गई दुनिया से। उसका इतना प्रेम था कि वह मुझसे जॉर्ज कहती थी। अब वह जॉर्ज मैंने अलग कर दिया। अब कोई भी उससे मुझे बुलाएगा नहीं, कोई भी मुझे जॉर्ज कह कर नहीं कहेगा। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि मेरी मां के मरने से मैं पहली दफा ब.ूढा हो गया हूं। मेरी मां जिंदा थी तो मैं बूढ़ा नहीं था। मुझे लगता था कि मैं अभी बच्चा हूं, क्योंकि मुझे जार्ज कह कर बुलाती थी। इतना प्रेम था उसका। अब मैं बूढ़ा हो गया, अब मेरी मौत करीब आने लगी। अब मुझे लगता है कि अब इतना प्रेम कोई भी मुझे नहीं करता है।

प्रेम के अपने रास्ते हैं, श्रद्धा के अपने रास्ते हैं। लेकिन जो न प्रेम जानते हैं, न श्रद्धा जानते हैं सिर्फ थोथा शिष्टाचार जानते हैं, उनको बेचारों को प्रेम और श्रद्धा के रास्तों का कोई भी पता नहीं हो पाता। वे शिष्टाचार को ही सब कुछ समझते हैं। शिष्टाचार उनके बीच होता है जिनके बीच प्रेम नहीं है। जिनके बीच प्रेम है उनके बीच शिष्टाचार समाप्त हो जाता है। महापुरुष हम उसे कहते हैं जिसके साथ समाज का शिष्टाचार समाप्त हो गया है, उससे हम सीधी-सीधी बात कर सकते हैं। इसलिए मैं क्षमा नहीं मांगूंगा कि गांधी जी को गांधी जी नहीं कहता या महात्मा नहीं लगाता। नहीं, कभी नहीं लगाऊंगा, लगाने की कोई जरूरत नहीं है।
कुछ मित्रों ने पूछा है कि गांधी जी ने, गांधी के विचार ने देश को आजादी दिलाई। मैं मना नहीं करता। यह भी मैं मना नहीं करता कि उन्होंने देश के लिए कितना काम किया। शायद इस देश के पूरे इतिहास में किसी एक मनुष्य ने देश के लिए इतना काम नहीं किया है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है, इसका यह अर्थ नहीं है कि हम उनके प्रति अंधे हो जाएं। वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति अंधे हो जाए, वे भी पसंद नहीं करेंगे कि हम उनके प्रति सोचना- विचारना बंद कर दें। उनका हमारे ऊपर ऋण बहुत ज्यादा है। इसीलिए तो मैं सोचता हूं कि उन पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए। उन पर बार-बार विचार करने का अर्थ ही यही है कि मैं मानता हूं कि उनका ऋण हमारे ऊपर बहुत ज्यादा है और उस ऋण से उऋण होने का एक ही रास्ता है कि हम निरंतर सोचें, सोचें, निखारें उनके विचार को और उनके विचार में जो श्रेष्ठतम है उसके अनुकूल देश को ले जा सकें।
लेकिन श्रेष्ठतम का पता कैसे चलेगा? एक बड़ी जिंदगी बहुत बड़ी जिंदगी है, जिंदगी में हजारों-लाखों घटनाएं होती हैं, उन लाखों घटनाओं में चुनना पड़ता है कि क्या है श्रेष्ठ, क्या है भविष्य के योग्य, क्या व्यर्थ हो गया, क्या अप्रासंगिक हो गया, क्या समय के बाहर हो गया--यह सब सोचना पड़ता है। महापुरुष भी पचास वर्ष, साठ वर्ष, सत्तर वर्ष जीता है, तो सत्तर वर्ष में हजारों घटनाएं घटती हैं। वे सारी की सारी घटनाएं देश के भविष्य के लिए उपयोगी नहीं होतीं, नहीं हो सकती हैं। उनमें से क्या हैं, छांट लेना हैं। लेकिन हम ऐसे अंधे लोग हैं कि जब हम किसी को महापुरुष कहते हैं तो उसके सब कुछ को महापुरुष मान लेते हैं। इससे बड़ी भूल पैदा हो सकती है। इससे बड़ी बुनियादी भूल पैदा हो सकती है।
महापुरुष जो करता है, महापुरुष जिस समय में जीता है, जिस सामयिक प्रसंगों पर चुनौती झेलता है उसमें से बहुत सा उसी दिन व्यर्थ हो जाता है। उसमें से बहुत सा बाद में व्यर्थ हो जाता है। शाश्वत बहुत थोड़ा रह जाता है। अधिकतम तो कंटेम्प्रेरी प्रॉब्लम होता है। इटरनल प्रॉब्लम तो बहुत कम होता है। और गांधी के जीवन में बुद्ध या महावीर की बजाय कंटेम्प्रेरी प्रॉब्लम ज्यादा है। महावीर और बुद्ध की बात में सनातन प्रश्न ज्यादा है, क्योंकि उन्होंने समाज और जीवन के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ ही नहीं। गांधी ने जीवन और समाज के रोजमर्रा के प्रश्नों को छुआ है। गांधी के व्यक्तित्व और विचार में, गांधी के कर्म में और जीवन में नब्बे प्रतिशत सामयिक है, दस प्रतिशत सनातन है। उस सामयिक से हमको छुटकारा करना होगा और सनातन की खोज करनी पड़ेगी, लिखा नहीं है कि क्या सनातन है और क्या सामयिक है, खोज करनी पड़ेगी। सोच करना पड़ेगा, विचार करना पड़ेगा, काट-छांट करनी पड़ेगी। जो गांधी व्यतीत हो गए, अतीत हो गए, उन्हें हटा देना होगा। जो गांधी आगे भी सार्थक होंगे, कल भी साथ होंगे, उनको बचा लेना होगा। अंततः निखरते- निखरते वही सूत्र शेष रह जाएंगे जो सनातन हैं, जिनका समय से कोई संबंध नहीं, जिनका मनुष्य के शाश्वत जीवन से संबंध है। तब हम गांधी को निखार पाएंगे।
लेकिन भक्त अंधा होता है, वादी अंधा होता है। वह कहता है कि हम पूरा स्वीकार करेंगे या पूरा अस्वीकार करेंगे। वह दो बातें मानता है। या तो पूरा स्वीकार करेंगे या पूरा अस्वीकार करेंगे। जीवन में इस तरह हां और न में उत्तर नहीं होते। जीवन में कुछ स्वीकृति होती है, कुछ अस्वीकृति होती है। जीवन कोई इकट्ठा हां और न नहीं है कि हमने कह दिया हां और हमने कह दिया

न। भक्त कहता है कि या तो हम कहेंगे ना, कहेंगे कि नहीं मानते गांधी को या कहेंगे कि मानते हैं तो पूरा मानते हैं। ये दोनों ही दृष्टियां गलत हैं। अंधी दृष्टियां हैं। सोचना होगा, अपने विवेक से खोजना होगा, देखना होगा, परखना होगा, जांच करनी होगी, प्रयोग करने होंगे और तब जो विवेक के अनुकूल बचता जाएगा वही शाश्वत होता चला जाएगा। शेष समय की परिधि में खोता चला जाएगा। खो ही जाना चाहिए। समय के साथ ही वह खो जाना चाहिए जिसे समय ने पैदा किया था। लेकिन हम अपने पागलपन में उसको बचा कर रखना चाहते हैं। उससे हमारे महापुरुष को फायदा नहीं होता, नुकसान होता है, क्योंकि महापुरुष रोज-रोज नया नहीं हो पाता, ताजा नहीं हो पाता, बासा पड़ जाता है, पुराना पड़ जाता है। वह जो-जो बासा पड़ जाता है उसे काट देने की जरूरत है ताकि नया ताजा रोज निखर कर बाहर आता चला जाए और जिसे हमने प्रेम किया हो, जिसे हमने श्रद्धा दी हो वह हमारे लिए सनातन साथी बन सके। लेकिन हम जिस तरह से व्यवहार करते हैं, इस तरह से यह नहीं हो सकता है।
मैं नहीं कहता हूं कि गांधी का हमारे ऊपर कोई ऋण नहीं है, कोई पागल होगा जो ऐसा कहेगा। ऋण उनका महान है। लेकिन उस ऋण के कारण इतने मत दब जाना कि गांधी का जो सामयिक तत्व है वह हमें सत्य जैसा मालूम पड़ने लगे। वह उचित नहीं है।

किसी मित्र ने पूछा है कि आप तो गांधी जितने बड़े नहीं हैं, तो आप उनकी आलोचना क्यों करते हैं?

अभी तक कोई तराजू कहीं दुनिया में नहीं है कि तौला जा सके कि कौन बड़ा
है और कौन छोटा है। कोई तराजू दुनिया में आज तक विकसित नहीं हुआ कि हम तौल सकें कौन बड़ा है, कौन छोटा है। सच बात तो यह है, एक-एक आदमी अपने-अपने जैसा है। कंपेरिजन की कोई संभावना नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई तुलना नहीं है। गांधी की किसी से तुलना नहीं हो सकती। आपकी भी किसी से तुलना नहीं हो सकती। एक साधारण से साधारण आदमी भी अनूठा और अद्वितीय है। न किसी से छोटा है, न किसी से बड़ा, क्योंकि छोटे और बड़े हम तब हो सकते हैं जब हम एक जैसे हों। एक जैसे अगर हम हों, तो पता चल सकता है कौन छोटा है, कौन बड़ा। लेकिन हममें से प्रत्येक अपने जैसा है, दूसरे जैसा है ही नहीं, इसलिए छोटे-बड़े को तौलने की, कंपेयर करने की, तुलना करने की कोई सुविधा नहीं है। गांधी को जब आप बड़ा कहते हैं तब भी आप भूल कर रहे हैं, क्योंकि जैसे ही आपने तौला, बड़ा आपने कहा, तो आपने तौल शुरू कर दी, आपने गांधी को तौल लिया, गांधी आपके हाथ से तुल गए। फिर कल कोई दूसरा मिल सकता है, वह कहेगा, महावीर और बड़े हैं, बुद्ध और बड़े हैं। यही पागलपन तो हजारों साल से चल रहा है। जैन कहते हैं कि महावीर से बड़ा कोई भी नहीं है। बौद्ध कहते हैं, बुद्ध से बड़ा कोई भी नहीं है। मुसलमान कहते हैं, मोहम्मद से बड़ा कोई भी नहीं है। ईसाई कहते हैं, जीसस से बड़ा कोई भी नहीं है। इसी पागलपन से सारी मनुष्य-जाति कट गई और नष्ट हो गई। फिर वही जारी रखोगे कि कौन बड़ा है, कौन छोटा? कैसे तय करोगे? कौन तय करेगा? कौन है निर्णायक? जजमेंट कौन देगा? जजमेंट आप दोगे? अगर आप जजमेंट दे सकते हो कि गांधी बड़े हैं तो आप गांधी से बड़े हो गए, क्योंकि जजमेंट देने वाला हमेशा बड़ा हो जाता है। आप हो निर्णायक? तब तो स्वभावतः गांधी खिलौना हो गए। तराजू पर आपने रख कर तौल लिया। कौन किसको तौलेगा?
ये हमारे सोचने के ढंग, व्यक्तियों को तौलने के ढंग निहायत इम्मैच्योर, अपरिपक्व हैं। कोई मनुष्य तौला नहीं जा सकता है। गांधी तो ठीक हैं, साधारण से साधारण मनुष्य नहीं तौला जा सकता। कोई नहीं जानता है कि छोटे से मनुष्य में क्या घटना घटे।
एक गांव में बुद्ध का आगमन हुआ था। गांव में था एक गरीब चमार। गांव के सम्राट को तो पता चल गया था कि बुद्ध आते हैं, लेकिन गरीब चमार को कहां फुर्सत थी, कहां पता चला, उसे पता भी नहीं था कि बुद्ध आते हैं। बुद्ध के आने का पता चलने की भी सुविधा तो चाहिए। वह बेचारा दिन भर अपने काम में रहा, रात थका-मांदा सो गया। सुबह अपने झोपड़े में उठा। उस चमार का नाम था सुदास। उठा, झोपड़े के पीछे छोटी सी एक गंदी तलैया थी। उठा सुबह तो देखा कि

उसमें एक कमल का फूल खिला है। बे-मौसम का फूल था, अभी मौसम नहीं था कमल का। वह सुदास बहुत हैरान हुआ। फिर बहुत खुश हुआ। फूल तोड़ कर भागा बाजार की तरफ कि कोई न कोई जरूर रुपया दो रुपया इस फूल का दे देगा। फूल बड़ा था, सुंदर था, बे-मौसम का था। जरूर इसके पैसे मिल जाएंगे।
वह बाजार की तरफ भागा चला जा रहा है कि नगर का जो धनपति था, सेठ था, नगर सेठ था, वह रथ पर बैठा हुआ आ रहा है। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। उस धनपति ने कहा कि कितना लोगे इस फूल का? सुदास ने कहाः जो भी आप दे देंगे, आपकी कृपा। उसने अपने सारथी को कहा कि पांच रुपये इसे दे दो। सुदास तो हैरान हुआ, क्योंकि पांच बहुत ज्यादा थे--वह सोचता था एक भी मिल जाए तो बहुत। वह एकदम हैरान हुआ। उसने कहाः पांच रुपये! यह बात ही चलती थी कि पीछे से उस देश का वजीर, मंत्री घोड़े पर सवार आ गया। उसने कहा कि बेचना मत फूल। फूल मैंने खरीद लिया। धनपति जितना देते होंगे उससे पांच गुना मैं दूंगा। सुदास तो हक्का-बक्का हो गया! उसने कहाः पच्चीस रुपये! आप कहते क्या हैं, इस साधारण से फूल के! क्या बात है? आप पांच देते थे, धनपति ने कहा कि फूल मैं खरीदूंगा किसी भी कीमत पर, वजीर जितना बोलता जाए, मैं पांच गुना ज्यादा दूंगा। वह तो मांग बढ़ती चली गई। और सुदास भौचक्का! वह ठहराव मुश्किल हो गया। तभी राजा का रथ भी आ गया और उस राजा ने कहा, फूल खरीद लिया गया। जो भी दाम तू मांगेगा, मुंहमांगा दाम दे दूंगा, जो तू मांगेगा। सुदास कहने लगा कि आप सब पागल हो गए हैं! इस फूल की कोई कीमत नहीं है। हजारों कीमत तो बढ़ चुकी हैं और आप कहते हैं मुंहमांगा, जो मैं मांगूंगा। बात क्या है सम्राट? सम्राट ने कहाः शायद तुझे पता नहीं, बुद्ध का आगमन हो रहा है गांव में। हम उनके स्वागत को जाते हैं। बे-मौसम का फूल उनके चरणों में चढ़ाएंगे, वे भी हैरान हो जाएंगे कि कमल, बे-मौसम का फूल! बुद्ध के चरणों में यह फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। नगर सेठ ने कहा कि नहीं, यह नहीं हो सकेगा, सम्राट! फूल को मैंने पहले देखा है। पहले मैंने खरीद-फरोख्त शुरू की है। मैं पहला ग्राहक हूं। इनका विवाद चलता था। सुदास ने कहाः क्षमा करिए, फूल मुझे बेचना नहीं। जब बुद्ध आते हैं गांव में तो फूल मैं ही चढ़ा दूंगा। पर वे कहने लगे, सुदास तू पागल है क्या? जितना पैसा चाहे ले ले, तेरी चमारी मिट जाए सदा को, गरीबी मिट जाए सदा को। तेरे जन्म-जन्म आगे के बच्चे को भी सुख हो जाएगा। जितना मांगे ले ले। सुदास ने कहा कि नहीं, अब पैसे का क्या करेंगे, मैं ही चढ़ा दूंगा बुद्ध को।
नहीं बेचा फूल। सम्राट नहीं खरीद सके एक गरीब का फूल, एक चमार का। सम्राट तो रथ पर पहुंच गए पहले, नगर सेठ पहुंच गया, वजीर पहुंच गया। उन्होंने बुद्ध से जाकर यह कहा कि आज एक अदभुत घटना घट गई। एक गरीब आदमी, जिसकी कोई हैसियत नहीं, जिसके पास कल का खाना नहीं होता, उसने लाखों रुपये पर लात मार दी और कहता है, फूल मैं ही चढ़ाऊंगा। सुदास आया पीछे पैदल चलता हुआ। बुद्ध के चरणों में फूल रख कर हाथ जोड़ कर सिर पैर पर रख कर रोने लगा। बुद्ध ने कहाः पागल है सुदास तू, फूल बेच देना था।
सुदास ने कहा कि भगवन, संपत्ति ही सब कुछ नहीं है। संपत्ति से भी बड़ा कुछ है और आपके पैरों में फूल रख कर मुझे जो मिल गया वह मुझे कितनी भी संपत्ति से कभी नहीं मिल सकता था।
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि भिक्षुओ, देखो इस सुदास को। एक साधारण से जन में भी, एक साधारण से मनुष्य में भी परमात्मा का इतना प्रकाश पैदा हो सकता है। सुदास है गांव का एक चमार, एक दीन-हीन, लेकिन इतने प्रेम की संभावना, इस सुदास में; इतने प्रेम की संभावना, इतनी श्रद्धा की संभावना, इस सुदास में।
बुद्ध कहने लगे कि मैं घूमता हूं वर्षों से गांव-गांव, कितने-कितने लोग मिले। नहीं सुदास, तू अद्वितीय है। तेरा जैसा बस तू ही है।
कौन कहेगा, कौन है बड़ा, कौन है छोटा? कौन कहेगा, किसके भीतर से क्या प्रकट हो सकता है? कौन जानता है कौन सा बीज कितना बड़ा फूल बनेगा? लेकिन जल्दी से तौलने की हमारी इच्छा बड़ी तीव्र होती है।
नहीं कोई जरूरत है तौलने की। गांधी गांधी हैं, मैं मैं हूं, आप आप हैं।
तौलने का कोई उपाय भी नहीं है। लेकिन यह गांधी को बड़ा कहने का कारण क्या हो

सकता है फिर? अगर हम तौल नहीं सकते, समर्थ नहीं तौलने में, तो यह कहने का कारण क्या हो सकता है कि गांधी महान हैं? शायद आपको इस सीक्रेट का कोई पता न हो, यह एक बड़ा राज है।
जब हिंदू यह कहता है कि हिंदू धर्म महान है तो आप समझते हैं उसका मतलब क्या है? वह यह कहता है कि हिंदू धर्म महान है और मैं हिंदू हूं, मैं महान हूं। यह तर्क है, यह तर्कसरणी है। जब एक आदमी कहता है भारत, भारत पृथ्वी पर सबसे महान देश है, तो मतलब आप जानते हैं क्या है? वह यह कह रहा है कि भारत सबसे बड़ा देश है, मैं भारत का निवासी हूं, मैं बड़ा आदमी हूं। पीछे अहंकार है इस तुलना के पीछे, पीछे ईगो है, आदमी बहुत होशियार है। सीधे वह कहेगा कि मैं बड़ा हूं, तो बड़ी मुश्किल बात है। वह कहता है, मेरा गुरु बड़ा है और बड़े गुरु का मैं बड़ा चेला हूं।
मैंने सुना है, फ्रांस में फिलॉसफी का एक प्रोफेसर था, एक दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर था। पेरिस के विश्वविद्यालय में वह दर्शनशास्त्र का अध्यक्ष था। एक दिन वह सुबह-सुबह आया और उसने क्लास के विद्यार्थियों को कहने लगा कि तुम्हें पता है, मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। उसके विद्यार्थियों ने कहाः आप? बेचारा गरीब शिक्षक था, फटे कपड़े पहने हुए था। समझ गए उसके विद्यार्थी कि हो गए सज्जन पागल। दार्शनिकों के पागल हो जाने की संभावना रहती ही है, दिमाग इनका खराब हो गया मालूम होता है।
एक विद्यार्थी ने पूछाः महाशय आप अपने बाबत कह रहे हैं कि आप दुनिया
के सबसे बड़े आदमी हैं? आप? उसने कहाः हां, मैं कह रहा हूं कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा आदमी हूं। न केवल मैं कह रहा हूं, मैं तर्कशास्त्र का अध्यापक हूं, मैं सिद्ध भी कर सकता हूं।
उसके विद्यार्थियों ने कहाः बड़ी कृपा होगी, अगर आप सिद्ध कर सकेंगे। उसने छड़ी उठाई और नक्शे के पास गया जहां दुनिया का नक्शा टंगा था क्लास में। उसने कहा कि मेरे बच्चो, मैं तुमसे पूछता हूं कि इस सारी बड़ी पृथ्वी पर सबसे महान और सबसे श्रेष्ठ देश कौन सा है? वे सभी फ्रांस के रहने वाले थे। उन सबने कहा कि निश्चित ही फ्रांस, इसमें कोई संदेह है? यह तो सुनिश्चित है कि फ्रांस से महान कोई भी देश नहीं है।
उसने कहाः तब एक बात तय हो गई कि फ्रांस सबसे महान है इसलिए बाकी दुनिया की फिकर छोड़ो। अब अगर मैं सिद्ध कर सकूं कि फ्रांस में मैं सबसे महान हूं तो मामला हल हो जाएगा।
विद्यार्थी तब भी नहीं समझे कि तर्क कहां जाएगा। फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे महान और श्रेष्ठ नगर कौन सा है?
तो विद्यार्थियों ने कहा कि पेरिस। वे सभी पेरिस के रहने वाले थे
उसने कहाः तब फ्रांस की भी फिकर छोड़ दो। अब सवाल सिर्फ पेरिस का रह गया। अगर मैं सिद्ध कर दूं कि पेरिस में मैं सबसे महान हूं तो बात खत्म हो जाएगी। तब विद्यार्थियों को शक पैदा हुआ कि यह तो मामला बहुत अजीब है, यह कहां ले जा रहा है आदमी। और तब उस प्रोफेसर ने पूछा कि अब पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान कौन सा है? युनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, विद्या का केंद्र, मंदिर।
विद्यार्थियों ने कहा कि यह तो ठीक है, विश्वविद्यालय ही सबसे पवित्रतम और श्रेष्ठतम स्थान है। तब उनको तर्क साफ हो चुका था।
उस प्रोफेसर ने कहाः अब मैं तुमसे पूछता हूं, पेरिस को जाने दो, रह गई युनिवर्सिटी का कैंपस। युनिवर्सिटी के इस कैंपस में सबसे श्रेष्ठतम विषय और डिपार्टमेंट कौन सा है?
वे सभी विद्यार्थी फिलासफी के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहाः फिलासफी।
और उसने कहा कि अब तुम समझे कि मैं फिलासफी का हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट हूं।
इतना लंबा तर्क इस छोटे से "मैं" को सिद्ध करने के लिए! लेकिन आदमी की चालाकियां, कनिंगनेस पहचानना बहुत मुश्किल है। वह कहता है, भारत महान देश

है, और उसके भीतर जाकर पूछो उसके प्राणों के प्राण में, तो वह यह कह रहा है कि मैं महान हूं।
बर्नार्ड शॉ ने एक बार अमरीका के दौरे में यह कहा कि यह गैलीलियो, यह कोपेरनिकर, ये वैज्ञानिक सब गलत कहते हैं। सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। पृथ्वी सूरज का चक्कर नहीं लगाती। अब इस बीसवीं सदी में कोई ये बातें करेगा तो पागल समझा जाएगा। बर्नार्ड शॉ को लोगों ने पूछाः आप क्या कह रहे हैं? तीन सौ साल पहले लोग ऐसा जरूर मानते थे कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। लेकिन अब तो यह सिद्ध हो चुका है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है। आपके पास दलील क्या है जो आप कहते हैं कोपेरनिकर, गैलीलियो, सब गलत। बर्नार्ड शॉ ने कहाः दलील साफ है--जिस पृथ्वी पर बर्नार्ड शॉ रहता है वह पृथ्वी किसी का चक्कर कभी नहीं लगाती।
उसने हमारे अहंकार पर बड़ा गहरा मजाक कर दिया। उसने कह दिया कि सूरज ही लगाता होगा चक्कर, क्योंकि मैं बर्नार्ड शॉ इस पृथ्वी पर रहता हूं। मेरे रहने की वजह से यह पृथ्वी किसी का चक्कर लगा सकती? असंभव। यही है सेंटर वर्ल्ड का। यही पृथ्वी सारे जगत का केंद्र है। सारा जगत इसका चक्कर लगाता है। पृथ्वी का केंद्र मैं हूं जॉर्ज बर्नार्ड शॉ।
हर आदमी का तर्क यही है। भारतीय कहता है, भारत महान है। चीनी कहता है, चीन महान है। तुर्की कहता है, तुर्क महान है। मामला क्या है? हिंदू कहता है, हिंदू महान है। मुसलमान कहता है, मुसलमान महान है। जैन कहता है, महावीर महान हैं। ईसाई कहता है, जीसस महान हैं। मामला क्या है? मार्क्सिस्ट कहता है, मार्क्स महान है। गांधीवादी कहता है, गांधी महान हैं। मामला क्या है? न गांधी से किसी को मतलब, न मार्क्स से किसी को मतलब, न महावीर से किसी को मतलब, न भारत से किसी को मतलब, न चीन से किसी को मतलब। मतलब उस "मैं" से है कि मैं जहां हूं जिस केंद्र पर, उस केंद्र से संबंधित सब महान हैं, क्योंकि मैं महान हूं।
नहीं, गांधी को नहीं तौलते हैं आप, न महावीर को, न बुद्ध को। तरकीब से अपने को तौल रहे हैं और अपने को केंद्र पर खड़ा कर रहे हैं। ये तरकीबें बड़ी अधार्मिक हैं। ये तरकीबें बड़ी अपवित्र हैं। लेकिन इनका हमें होश भी नहीं आता। बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी और किताब में उसने यह बात लिखी भूमिका में कि मेरी किताब को पढ़ने वाले आप जो सज्जन हैं, अपने रीडर को, अपने पाठक को उदबोधन किया कि मेरे प्रिय पाठक, आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान कोई भी देश नहीं। उसको कई मुल्कों से पत्र पहुंचे, क्योंकि बर्ट्रेंड रसल की किताबें सारी दुनिया में पढ़ी जाती हैं। उसने भूमिका में लिखा कि मेरे प्रिय पाठक आप जिस देश में पैदा हुए हैं उस देश से महान कोई भी देश नहीं है। कई मुल्कों से पत्र पहुंचे उसके पास।
पोलैंड से एक स्त्री ने लिखा कि तुम पहले आदमी हो जिसने पोलैंड की महानता को स्वीकार किया है। जर्मनी से किसी ने लिखा कि शाबाश, तुमने स्वीकार कर लिया कि जर्मनी महान है। क्योंकि उसने तो मजाक किया था। वह मजाक कोई भी नहीं समझे। वे समझे कि हमारे मुल्क की प्रशंसा की जा रही है। हमारे मुल्क की प्रशंसा नहीं; हमारी प्रशंसा, मेरी प्रशंसा। और जो आपको भय मालूम पड़ता है कि गांधी की आलोचना मत करो, बुद्ध की आलोचना मत करो, मोहम्मद की आलोचना मत करो--नहीं तो दंगा हो जाएगा। वह आपका मोहम्मद, बुद्ध और गांधी के प्रति प्रेम नहीं है। उनकी आलोचना से आपके अहंकार को ठेस पहुंचती है। उसकी वजह से आप पीड़ित और परेशान हो उठते हैं। यह योग्य नहीं है, यह हितकर नहीं है, यह कल्याणदायी नहीं है। इससे मंगल सिद्ध नहीं होता।
मैंने यह जो कुछ बातें कहीं, एक मित्र मेरे पास आए, उन्होंने कहा कि मैं काका कालेलकर के पास गया था, तो काका कालेलकर ने कहा, मेरे बाबत कहा कि अभी उनकी उम्र कम है इसलिए गड़बड़ बातें कह देते हैं। जब उम्र बढ़ जाएगी तो बिल्कुल ठीक बातें कहने लगेंगे। वे मित्र मेरे पास खबर लेकर आए कि काका कालेलकर ने ऐसा कहा है। मैंने उनसे कहाः काका कालेलकर से कहना कि जब शंकराचार्य ने तैंतीस वर्ष की उम्र में बुद्ध का खंडन और आलोचना की, तो लोगों ने कहा इसकी उम्र कम है, उम्र बड़ी हो जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब जीसस ने तीस वर्ष की उम्र में यहूदियों की आलोचना की, तो यहूदियों ने कहा,

यह पागल छोकरा है, आवारा है, इसकी उम्र अभी कम है, उम्र बढ़ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। जब विवेकानंद ने तैंतीस-चौंतीस वर्ष की उम्र में वेदांत की व्याख्या की, तो वेदांत के बूढ़े गुरु ने कहा, अभी नासमझ है, अभी कुछ समझता नहीं, उम्र कम है।
यह उम्र की दलील बड़ी पुरानी है। लेकिन उम्र कम होने से न कोई गलत होता
और न उम्र ज्यादा होने से कोई सही होता है। उम्र से बुद्धिमत्ता का कोई भी संबंध नहीं है। काका कालेलकर यह कह रहे हैं कि अगर जीसस क्राइस्ट अस्सी साल तक जीते तो ज्यादा बुद्धिमान हो जाते। वे यह कह रहे हैं कि जीसस क्राइस्ट तैंतीस साल की उम्र के थे इसलिए मंदिर में घुस गए और मंदिर में ब्याज खाने वाली दुकानों के तख्ते उलट दिए और कोड़ा उठा कर उन्होंने पुरोहितों को मार कर मंदिर के बाहर निकाल दिया। अगर जीसस ज्यादा उम्र के होते तो इस तरह की नासमझी कभी नहीं कर सकते थे। काका कालेलकर उनकी जगह होते तो इस तरह की नासमझी वे कभी भी नहीं करते। उनकी उम्र ज्यादा है, लेकिन उम्र ज्यादा होने से बुद्धिमत्ता नहीं बढ़ जाती है। उम्र ज्यादा होने से सिर्फ चालाकी और कनिंगनेस बढ़ जाती है।
मैं भी जानता हूं, मैंने गांधी की आलोचना की, उसी दिन सुबह दो मित्रों
ने मुझे आकर कहा कि आप यह बात ही मत करिए, अन्यथा गुजरात की सरकार नारगोल में छह सौ एकड़ जमीन देती है, वह बिल्कुल बंद कर देगी, बिल्कुल नहीं देगी। अभी बात मत करिए, पहले जमीन मिल जाने दीजिए, फिर जो आपको कहना हो कहना। वे कहने लगे, आपकी उम्र अभी कम है। आपको पता नहीं जमीन खो जाएगी। मैंने उनसे कहा, भगवान करे मेरी उम्र इतनी ही नासमझी की बनी रहे ताकि सत्य मुझे संपत्ति से हमेशा मूल्यवान मालूम पड़े। वह जमीन जाए, जाने दें। मुझे जो ठीक लगता है, मुझे कहने दें।
भगवान न करे, इतना चालाक मैं हो जाऊं कि संपत्ति सत्य से ज्यादा मूल्यवान मालूम पड़ने लगे। मुझे भी दिखाई पड़ता है, काका कालेलकर को ही दिखाई पड़ता है ऐसा नहीं। मुझे भी दिखाई पड़ता है कि गांधी की आलोचना करके गाली खाने के सिवाय और क्या मिलेगा। अंधा नहीं हूं, इतनी उम्र तो कम से कम है कि इतना दिखाई पड़ सकता है कि गाली मिलेगी। लेकिन कुछ लोग अगर समाज में गाली खाने की हिम्मत न जुटा पाएं, तो समाज का विचार कभी भी विकसित नहीं होता है। कुछ लोगों को यह हिम्मत जुटानी ही चाहिए कि वे गाली खाएं। प्रशंसा प्राप्त करना बहुत आसान है, गाली खाने की हिम्मत जुटानी बहुत कठिन है। श्री देबर भाई ने मुझे उत्तर देते हुए किसी मीटिंग में अभी कहा है कि मैं गांधी जी को समझ नहीं सका हूं, इसलिए ऐसी बातें कर रहा हूं। मेरा उनसे निवेदन है कि प्रशंसा तो बिना समझे भी की जा सकती है, आलोचना करने के लिए बहुत समझना जरूरी होता है। प्रशंसा तो कुत्ते भी पूंछ हिला कर जाहिर कर देते हैं, उसके लिए कोई बहुत बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं है। लेकिन आलोचना के लिए सोचना जरूरी है, विचार करना जरूरी है, हिम्मत जुटानी जरूरी है और अपने को दांव पर लगाना भी जरूरी है। अब गांधी से मेरा झगड़ा क्या हो सकता है, गांधी से झगड़ कर मुझे फायदा क्या हो सकता है? कोई भी तो फायदा नहीं हो सकता। नुकसान हो सकता है। अखबार मेरी खबर नहीं छापेंगे। गांवों में मेरी सभा होनी मुश्किल हो जाएगी। अहिंसक लोग पत्थर फेंक सकते हैं, यह सब हो सकता है। इससे मुझे क्या फायदा हो जाएगा?
लेकिन मुझे लगता है कि चाहे कितना ही नुकसान हो, जो हमें सत्य दिखाई पड़ता हो उसे हमें कहना ही चाहिए, जो हमें ठीक मालूम पड़ता हो, चाहे उसके लिए कितना ही हानि उठानी पड़े, वह हमें कहना ही चाहिए। इस दुनिया को वे ही थोड़े से लोग आगे विकसित किए हैं, जिन्होंने समाज की मान्य परंपराओं की आलोचना की है, जिन्होंने समाज के बंधे हुए पक्षपातों को तोड़ने की हिम्मत की है। जिन्होंने समाज से विद्रोह किया है वे ही थोड़े से लोग इस जीवन और जगत को विकसित कर पाए हैं। जगत को उन्होंने विकसित नहीं किया है जिन्होंने अंधश्रद्धा में अंधी हां भर दी है, जगत को विकास उन्होंने किया है जिन्होंने किसी तरह का विद्रोह किया है।
मेरा आपसे निवेदन है अगर इस देश के हित में आप हैं, अगर इस देश को विकसित होना देखना चाहते हैं तो आपको विद्रोह की, विचार की आलोचना की

हिम्मत जुटानी ही चाहिए, उसके बिना हम अपने देश के भविष्य को स्वर्णिम नहीं बना सकते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि जो मैं कहता हूं वह सही है, इसका यह भी मतलब नहीं कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है, यह तो फिर वही पागलपन हुआ, मेरे अनुयायी आपसे कहने लगेंगे कि जो मैंने कहा वह सत्य है। पहली तो बात मेरा कोई अनुयायी नहीं है, क्योंकि अनुयायी जुटाने का सर्कस करने का मुझे कोई भी रस और कोई भी सुख नहीं। वह सर्कस मुझे पसंद ही नहीं है।
मेरा कोई अनुयायी नहीं, मेरे मित्र हैं। लेकिन फिर मुझे पत्र पहुंचे
कई मित्रों के कि हम तो आपके अनुयायी हैं और आपने हमको बड़ा धक्का पहुंचा दिया। मैंने कहाः तुम अनुयायी बने इससे धक्का पहुंचा। अनुयायी नहीं बनते तो धक्का नहीं पहुंचता। अनुयायी बने क्यों? तुमसे कहा किसने कि तुम मेरे अनुयायी बन जाओ? मैं अकेला काफी हूं। मेरी बात विचार करने के लिए, मेरी बात आलोचना करने के लिए, आप खूब आलोचना करें मेरी बात का, उसका खंडन करना, उसका विरोध करना, उस पर विचार करना, सारी तोड़-फोड़ के बाद अगर कोई बात मजबूरी में आपको ठीक दिखाई पड़े तो मानना। ऐसे मत मान लेना, जल्दी मत मान लेना। जल्दी मानने की कोई जरूरत नहीं है। मैं देश के विचार को गति देना चाहता हूं देश के विश्वास को नहीं। और देश का विचार गतिमान हो जाए, तो वह गांधी की भी आलोचना करेगा, वह मेरी भी आलोचना करेगा, वह किसी की भी आलोचना करेगा। लेकिन ये जो लोग देश के विश्वास को गतिमान करना चाहते हैं, वे कहते हैं, गांधी की भी आलोचना मत करो।
मेरे भी हित में यही है कि मैं गांधी की आलोचना न करूं, तो मैं भी आलोचना किए जाने से बच सकता हूं। लेकिन आलोचना से बचने की इच्छा ही कमजोरी और कायरता का लक्षण है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
तीसरा प्रवचन

एक और असहमति

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं और न ही मैंने अपने किसी पिछले जन्म में ऐसे कोई पाप किए हैं कि मुझे राजनीतिज्ञ होना पड़े। इसलिए राजनीतिज्ञ मुझसे परेशान न हों और चिंतित न हों। उन्हें घबड़ाने की और भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं है। मैं उनका प्रतियोगी नहीं हूं, इसलिए अकारण मुझ पर रोष भी प्रकट करने में शक्ति जाया न करें। लेकिन एक बात जरूर कह देना चाहता हूं, हजारों वर्ष तक भारत के धार्मिक व्यक्ति ने जीवन के प्रति एक उपेक्षा का भाव ग्रहण किया था।
गांधी ने भारत की धार्मिक परंपरा में उस उपेक्षा के भाव को आमूल तोड़ दिया है। गांधी के बाद भारत का धार्मिक व्यक्ति जीवन के और पहलुओं के प्रति उपेक्षा नहीं कर सकता है। गांधी के पहले तो यह कल्पनातीत था कि कोई धार्मिक व्यक्ति जीवन के मसलों पर चाहे वह राजनीति हो, चाहे अर्थ हो, चाहे परिवार हो, चाहे सेक्स हो--इन सारी चीजों पर कोई स्पष्ट दृष्टिकोण दे। धार्मिक आदमी का काम था सदा से जीवन जीना सिखाना नहीं, जीवन से मुक्त होने का रास्ता बताना। धार्मिक आदमी का स्पष्ट कार्य था लोगों को मोक्ष की दिशा में गतिमान करना। लोग किस भांति आवागमन से मुक्त हो सकें, यही धार्मिक दृष्टि की उपदेशना थी। इस उपदेश का घातक परिणाम भारत को झेलना पड़ा।
मोक्ष है, इस जीवन के बाद और जीवन भी हैं, लेकिन यह जीवन भी है और यह जीवन आने वाले जीवनों से जुड़ी हुई अनिवार्य कड़ी है। जो इस जीवन की उपेक्षा करता है, वह आने वाले जीवन के लिए नींव नहीं रखता। वह आने वाले जीवन को भी नष्ट करने का प्रारंभ करता है। इस जीवन के प्रति उपेक्षा नहीं चाहिए। धर्म अब तक उपेक्षा किया था। अब धर्म उपेक्षा नहीं कर सकता है, क्योंकि धर्म की उपेक्षा, इनडिफरेंस का यह परिणाम हुआ कि सारी पृथ्वी अधार्मिक हो गई। यह सारी पृथ्वी के अधार्मिक हो जाने में अधार्मिक लोगों का हाथ नहीं है, इसमें उन धार्मिक लोगों की उपेक्षा है जो जीवन के प्रति पीठ करके खड़े हो गए। अब आने वाले भविष्य में धार्मिक व्यक्ति अगर जीवन के प्रति पीठ करता है, तो उस व्यक्ति को हम पूरे अर्थों में धार्मिक नहीं कह पाएंगे। गांधी के बाद भारत में एक नया युग प्रारंभ होता है और वह नया युग यह है
कि धर्म जीवन के प्रति भी रस लेगा, जीवन के समस्त पहलुओं पर धर्म भी अपना निर्णय देगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति दिल्ली की यात्रा करे, इसका यह अर्थ भी नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति सक्रिय राजनीति में खड़े हो जाएं। लेकिन इसका मतलब यह जरूर है कि धार्मिक व्यक्ति राजनीति के प्रति उपेक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, क्योंकि राजनीति पूरे जीवन को प्रभावित करती है।
मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं लेकिन आंखें रहते देश को रोज अंधकार में जाते हुए देखना भी असंभव है। उतनी कठोरता, उतनी धार्मिक आदमी की कठोरता और पथरीलापन मैं नहीं जुटा पाता हूं। देश रोज-रोज प्रतिदिन नीचे उतर रहा है। उसकी सारी नैतिकता खो रही है, उसके जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी सत्य है, वह सभी कलुषित हुआ जा रहा है। इसके पीछे जानना और समझना जरूरी है कि कौन सी घटना काम कर रही है। और चूंकि मैंने कहा कि गांधी के बाद एक नया युग प्रारंभ होता है, इसलिए गांधी से ही विचार करना जरूरी है। गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे, लेकिन गांधी के आस-पास जो लोग इकट्ठे हुए, वे धार्मिक नहीं थे। और इससे हिंदुस्तान के भाग्य के लिए एक खतरा पैदा हो गया। गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे। गांधी के लिए राजनीति आपद-धर्म थी, इमरजेंसी थी। गांधी का मूल व्यक्तित्व धार्मिक था। मजबूरी थी कि वे राजनीति में खड़े थे, लेकिन उस राजनीति में भी उनके प्राणों को वह राजनीति कहीं भी छू नहीं सकी थी। उससे वैसे ही दूर थे जैसा कमल पानी में दूर होता होगा।

लेकिन उनके आस-पास जो लोग इकट्ठे थे, वे राजनीतिज्ञ थे, वे धार्मिक लोग नहीं थे। राजनीति उनका प्राण थी। गांधी के साथ रहने की वजह से धर्म और नीति उनका आपद-धर्म बन गई थी। उनके लिए नैतिकता मजबूरी थी। गांधी के साथ चलना हो तो नैतिकता की मजबूरी उन्हें ढोनी पड़ी। गांधी के लिए राजनीति मजबूरी थी, उनके आस-पास अनुयायियों के लिए, गांधीवादियों के लिए नैतिकता मजबूरी थी। गांधी के लिए राजनीति बाहर-बाहर थी, भीतर नीति थी। उनके अनुयायियों के लिए राजनीति भीतर थी, नीति बाहर-बाहर थी।
फिर जैसे ही सत्ता आई, एक क्रांतिकारी उलट-फेर हो गया। सत्ता आते ही गांधी का जो आपद-धर्म था--राजनीति--वह विलीन हो गया, गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गए और उनके अनुयायियों का जो आपद-धर्म था--नीति--वह विलीन हो गई, वे शुद्ध राजनीतिज्ञ रह गए। सत्ता के आते ही गांधी शुद्ध नैतिक व्यक्ति रह गए और उनके अनुयायी शुद्ध राजनीतिक व्यक्ति हो गए और उन दोनों के बीच जमीन-आसमान का फासला हो गया। एक इतनी बड़ी खाई हो गई जो आजादी के पहले कभी भी नहीं थी। आजादी के पहले गांधी और गांधी के अनुयायी के बीच खाई बहुत कम थी। झूठी ही सही, लेकिन नैतिकता की एक पर्त थी। और झूठी ही सही, गांधी के आस-पास राजनीति का एक आवरण था। इन दोनों के कारण बीच में एक सेतु था, एक संबंध था। सत्ता आने पर यह सेतु टूट गया और यह सेतु का टूट जाना गांधी को भी दिखाई पड़ गया। और गांधी ने कहाः अब कांग्रेस की कोई भी जरूरत नहीं, उसे लोक-सेवक दल में परिवर्तित हो जाना चाहिए। क्योंकि गांधी की पैनी आंखों को यह दिखाई पड़ना कठिन नहीं हुआ कि अब यह जो राजनीतिक संस्थान खड़ा रह जाएगा, यह मुल्क को नरक की यात्रा करा देगा।
बीस साल में उसने नरक की यात्रा करा दी है। और गांधी को यह भी दिखाई पड़ गया कि मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी कोई बात अब सुनता नहीं है। गांधी, जिसकी आवाज हम चालीस वर्षों से सुनते थे, अचानक सत्ता रूपांतरित हो जाने पर, सत्ता हस्तांतरित हो जाने पर अनुभव करने लगा, मेरी कोई आवाज नहीं सुनता है। मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरा अब चलन नहीं रहा। गांधी ने यह कहा कि पहले मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीना चाहता था, लेकिन अब मेरी जीने की इच्छा भी नहीं रह गई। यह थोड़ा विचारणीय है।
यह गांधीवादी के ऊपर इससे बड़ा और कोई इल्जाम नहीं हो सकता, और कोई बड़ा अपराध नहीं हो सकता है।
गोडसे के ऊपर गांधी को मारने का अपराध छोटा है, इस अपराध के मुकाबले।
कि गांधी जिनके साथ लड़े और जिनके लिए लड़े, जीत हो जाने पर गांधी को यह कहना पड़े कि मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं, अब मुझे ज्यादा जीने की इच्छा नहीं होती। गोडसे ने जो गोली मारी वह तो परमात्मा की इच्छा के बिना गोडसे नहीं मार सकता था। शायद और गांधी को इससे सुंदर मृत्यु मिल भी नहीं सकती थी। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाले लोगों ने गांधी को जिस बुरी तरह से निराश और हताश किया, वह आश्चर्यजनक है। और वे ही सारे लोग गांधी के मर जाने के बाद बीस वर्षों से गांधी का जय-जय गान और गांधी का गुणगान कर रहे हैं। वे कहते हैं, गांधी पर विचार नहीं करना, सिर्फ प्रशंसा करनी है।
वे ऐसा क्यों कहते हैं?
वे भलीभांति जानते हैं कि गांधी की आलोचना शीघ्र ही गांधीवादियों की आलोचना बन जाएगी। इसलिए गांधी की आलोचना मत करो, ताकि पीछे छिपे हुए गांधीवादी की आलोचना संभव न हो सके। गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है। इस खेल को गांधी पर आलोचना और विचार किए बिना नहीं तोड़ा जा सकता। और इसलिए गांधीवादी एकदम भयभीत हो उठा। मैंने थोड़ी सी बातें कहीं और महीने भर से मैं इधर लौटा हूं, तो मुझे पता चला कि महीने भर से सिवाय इसके कोई और बात नहीं है--पत्रों में, चर्चाओं में, घर में, गांवों में, एक ही बात है।
इतनी आतुरता से उसने उत्सुकता क्यों ली है? वह इतनी तीव्रता से मेरे ऊपर क्यों टूट पड़ा?
उसका कारण है। स्पष्ट कारण है। गांधी पर आलोचना अंततः गांधीवादी की आलोचना बन जाएगी। और गांधी तो आलोचना के बाद और निखर कर निकल आएंगे, जैसे सोना आग से निकल आता है। लेकिन गांधीवादी के प्राण निकल जाने वाले हैं। वह

नहीं बच सकता है। उसके प्राण को खतरा है, गांधी को कोई खतरा नहीं है। गांधी को क्या खतरा हो सकता है?
गांधी जैसे सच्चे आदमी को खतरे का कोई सवाल नहीं। खतरा आलोचना से सदा झूठे आदमियों को होता है और उन झूठे आदमियों की कतार गांधी के नाम पर खड़ी हो गई है। हमेशा जहां सत्ता होती है, जहां सत्ता होती है, जहां पद होता है वहां बेईमान और चोरों की कतार इकट्ठी हो जाती है। यह हो ही जाएगी।
गांधी के साथ जो लोग थे आजादी की लड़ाई में, वे धीरे-धीरे बिखर कर अलग होते चले गए। नई शकलें पीछे से आनी शुरू हो गईं। ये जो नये लोग आए थे इन नये लोगों को सत्ता से प्रेम था। वे सत्ता के लिए आए थे। और आज देश में राजनीति के नाम पर सिवाय सत्ता की होड़ के और कुछ भी नहीं हो रहा है। उनमें से किसी को इस बात की फिक्र नहीं है कि देश कहां जा रहा है और कहां जाएगा। उनको एक ही बात की फिक्र है कि उनकी सत्ता, उनका पद, उनका सम्मान, उनकी शक्ति किस तरह बनी रहे। वे इसी विचार में चिंतित, लीन और परेशान हैं। सारे देश का क्या हो रहा है इससे कोई सवाल नहीं है बड़ा, बड़ा सवाल अपने-अपने पद को बचा रखने का है।
गांधी ने कभी कल्पना भी न की होगी कि जिस सेना को उसने खड़ा किया था वह
इस तरह की धोखेबाज साबित हो सकती है। लेकिन वह धोखेबाज साबित हो गई।
और उसमें भूल, एक भूल गांधी की भी थी, और वह भूल समझ लेना जरूरी है, अन्यथा हम उस भूल को आगे भी दोहरा सकते हैं। वह भूल यह थी कि गांधी ने कभी इस बात की फिक्र न की कि ये जो लोग उनके आस-पास इकट्ठे हैं, इनके जीवन में कोई धार्मिक किरण उतरी है? इनके जीवन में कोई परमात्मा का स्पर्श है? इनके जीवन में सत्य की भी कोई गहरी आकांक्षा पैदा हुई है? इनके जीवन में कोई ध्यान है? कोई समाधि है? इनके जीवन में आत्मा से जुड़ने का कोई मार्ग, कोई द्वार खुल गया है? नहीं, इसकी उन्होंने फिकर नहीं की। वे केवल सत्य और अहिंसा की वैचारिक बातें करते रहे। उनके आस-पास का आदमी सत्य और अहिंसा को विचारपूर्वक स्वीकार करता रहा, लेकिन जो विचारपूर्वक स्वीकार होता है, वह जरूरी रूप से आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाता है। विचार बाहर ही रह जाते हैं, भीतर नहीं जाते। भीतर तो निर्विचार जाता है। विचार भीतर नहीं जाता। विचार तो बाहर रह जाता है। गांधी समझाने की कोशिश करते रहे--सत्य अच्छा है, अहिंसा अच्छी है, अपरिग्रह अच्छा है, वह सब समझाते रहे। जो उन्हें अच्छा दिखाई पड़ता था, उन्होंने लोगों को समझाया और जिन्होंने समझा उन्होंने सुना, ठीक समझ में आया और उन्होंने थोड़ा-बहुत उस तरह का आचरण करने का प्रयास भी किया।
लेकिन ध्यान रहे, एक आचरण आत्मा से पैदा होता है, एक आचरण बाहर से थोपा जाता है। जो आचरण बाहर से थोपा जाता है, वह आचरण जब तक हाथ में शक्ति न हो तब तक टिक सकता है, शक्ति के आते ही नष्ट हो जाता है। जो आचरण हम ऊपर से थोपते हैं, इम्पोज्ड जो होता है व्यक्तित्व, अभिनय जो होता है, ऊपर से थोपा हुआ जो होता है, वह प्राणों तक गहरा तो नहीं होता, कपड़ों की तरह बाहर होता है। यह तभी तक हमारे साथ रह सकता है, जब तक इसको टूटने का प्रतिकूल अवसर न मिल जाए। और जैसे ही प्रतिकूल अवसर मिलेगा, यह कचरा बह जाएगा, ये कपड़े बह जाएंगे और भीतर का नंगा आदमी साफ हो जाएगा।
नैतिक आदमी, जो धार्मिक नहीं है सिर्फ नैतिक है, उसके हाथ में सत्ता जाना हमेशा खतरनाक है। सत्ता में जाते ही नीति बह जाएगी और नंगा आदमी प्रकट हो जाएगा। लेकिन गांधी तो धार्मिक व्यक्ति थे, अपने आस-पास विचारपूर्वक जो नैतिक हो गए थे, उन्होंने उन पर ही सारा विश्वास कर लिया। और उस विश्वास के कारण इस देश के साथ एक अनिवार्यरूपेण विश्वासघात हो गया है। आगे भी हम यह भूल कर सकते हैं। यह हमेशा भूल संभव है। क्योंकि धार्मिक और नैतिक आदमी एक जैसे मालूम पड़ते हैं। एक व्यक्ति जिसके प्राणों से अहिंसा उठती हो, और एक व्यक्ति जिसने यह किताबों में पढ़ कर, सदगुरुओं से सुन कर सोच लिया हो कि अहिंसा अच्छी चीज है, मुझे अहिंसा का पालन करना चाहिए। इन दोनों में बुनियादी फर्क होता है। जो आदमी अहिंसा का पालन करता है, उसके भीतर तो हिंसा मौजूद रहती है, नहीं तो पालन करने की कोई जरूरत न

हो। पालन हमें उसे ही करना पड़ता है जिसके विपरीत हमारे भीतर मौजूद होता है।
जिस आदमी को ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है, उसके भीतर कामवासना मौजूद होगी, अन्यथा पालन किस चीज का करेगा?
जिस आदमी को सत्य का पालन करना पड़ता है, उसके भीतर झूठ की लहरें उठती रहती हैं।
संयमी आदमी जिसे हम कहते हैं, नैतिक आदमी, वह ऊपर कुछ होता है, भीतर ठीक उलटा होता है। और अगर प्रतिकूल स्थिति आ जाए तो जो भीतर है वही सच्चा साबित होगा, जो बाहर है वह सच्चा साबित होने वाला नहीं है। बाहर बहुत कमजोर चीजें हैं, भीतर असली प्राण हैं।
धार्मिक मनुष्य भीतर से रूपांतरित होता है, नैतिक मनुष्य बाहर से।
इसलिए नैतिक मनुष्य के हाथ में सत्ता पहुंच जाना हमेशा खतरनाक बात होती है।
गांधी एक धार्मिक व्यक्ति थे, गांधीवादी एक नैतिक व्यक्ति हैं। और इस भेद को नहीं समझ पाने के कारण मुल्क एक अनिवार्यरूपेण एक ऐसी गलती में पड़ गया, जिससे छुटकारा होने में बहुत समय लग सकता है।
इस देश को, इस देश के प्राणों को आगे विकसित करने के लिए नीति और धर्म
का बुनियादी फासला हमें समझ लेना चाहिए, अन्यथा कल हम जिन्हें फिर शक्ति देंगे, फिर सत्ता देंगे, फिर हम नैतिक आदमियों को सत्ता दे सकते हैं। सत्ता में पहुंचते से हर तरह का नैतिक आदमी चाहे वह किसी पार्टी का हो, इसी तरह का साबित होगा जिस तरह क्रांग्रेस का आदमी साबित हुआ। इसमें फर्क नहीं पड़ेगा। चाहे वह समाजवादी हो, चाहे वह साम्यवादी हो। अगर उसका सारा आचरण ऊपर से थोपा हुआ है और उसके प्राणों से कोई सच्चाई नहीं उठी है, तो वह जाकर सत्ता में पहुंच कर एकदम रूपांतरित हो जाएगा। महल के बाहर वह आदमी बहुत सेवक मालूम होता था, महल के भीतर जाकर बहुत शासक हो जाएगा। महल के बाहर वह कहता था, मैं विनम्र हूं, आपके चरणों का दास हूं। महल के भीतर पहुंच कर वह आपको पहचान नहीं सकेगा कि आप कौन हैं और भीतर कैसे आ गए। यह होगा।
अगर भारत को सच में ही सत्य का, समता का, स्वतंत्रता का एक समाज और एक देश निर्मित करना है तो हमें यह जान लेना जरूरी है कि हिंदुस्तान में जिनके हाथ में सत्ता जानी हो उन लोगों के आमूल व्यक्तित्व के रूपांतरण की दिशा में कुछ काम होना जरूरी है।
गांधी वह काम कर सकते थे। शायद गांधी को खयाल नहीं आ सका। उन्होंने केवल नैतिक शिक्षा दी। साथ में अगर उन्होंने योग की शिक्षा पर भी चिंता की होती, समाधि और ध्यान की भी चिंता की होती, अगर उन्होंने सिर्फ रामधुन न करवाई होती, साथ में समाधि और ध्यान के भी गहरे प्रयोग चालीस वर्ष किए होते, तो इस भारत का भाग्य एक स्वर्णभाग्य बन सकता था। लेकिन वह नहीं हो सका। और आज भी वह नहीं हो रहा है।
मैं कल्पना करता हूं इस देश को एक ऐसी पार्टी की जरूरत है, एक ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है, एक ऐसे बड़े आंदोलन की जरूरत है, जो आंदोलन ध्यान और समाधि के मार्ग से सत्ता के द्वार तक पहुंचता हो। तो हम इस देश को सुंदर बना सकेंगे, नहीं तो नहीं सुंदर बना सकते।
भारत की कल्पना बहुत पुरानी है, ऐसे यह है। बहुत बार यूनान में भी प्लेटो ने यह कल्पना की थी कि कब ऐसा समय होगा कि दार्शनिक राज्य कर सकेंगे। गांधी के साथ आशा बंधी थी कि शायद दुनिया में पहली बार दार्शनिकों का राज्य भारत में आ जाएगा। लेकिन गांधी के पीछे आने वाले लोगों ने सारी आशा पर पानी फेर दिया। नहीं, दार्शनिकों का राज्य नहीं बन सका। न बनने का कारण यह है कि हम दार्शनिक ही बनाने में समर्थ न हो पाए--ऐसे लोग जिनके पास अंतर्दृष्टि हो।
अब फिर सत्ता की होड़ चल रही है और सत्ता के बाजार में जितने लोग हैं, उनके पास, किसी के पास कोई अंतर्दृष्टि नहीं है। उनके पास कोई प्रभु के तरफ जाने वाला मार्ग नहीं है। उनके पास कोई प्रकाश की भीतर किरण नहीं है। बस वे सोच-विचार और सत्ता की होड़ में लगे हैं। और तब आप हैरान हो जाएंगे यह

बात जान कर कि आप एक को बदलेंगे दूसरे से और आप बदल भी नहीं पाएंगे और दूसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा, तीसरा भी पहले जैसा सिद्ध होगा।
मैं सुनता था, कोई मुझे कहता था कि अमेरिका में कुछ मनोवैज्ञानिकों
ने एक अध्ययन किया। उन्होंने यह अध्ययन किया कि जो लोग एक पति अपने जीवन में अगर आठ स्त्रियों को तलाक दे देता है या एक पत्नी अपने जीवन में आठ पतियों को तलाक देकर बदलती है, तो हर बार उसे पहले से बेहतर पति या पत्नी मिलती है या नहीं?
और अध्ययन से वे अजीब नतीजे पर पहुंचे। वे इस नतीजे पर पहुंचे कि जो पति पहली पत्नी को खोज कर लाता है, दो साल बाद उसे तलाक देता है, दूसरी स्त्री को खोज कर लाता है, महीने दो महीने में पाता है कि उसने फिर पहली जैसी स्त्री ही वापस खोज ली। पत्नी बदलती है पति को जिंदगी में आठ बार, लेकिन हर बार यह अनुभव होता है कि हर आदमी पुराना जैसा ही पति सिद्ध होता है। थोड़े दिन तक नई रौनक रहती है, फिर पुराना आदमी उसके भीतर से प्रकट हो जाता है।
तो मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे कि यह सवाल व्यक्तियों के बदलने
का नहीं है। जब तक एक पत्नी अपने मन को नहीं बदल लेती, तो जिस मन से उसने पहले पति को चुना था उसी मन से वह दूसरे पति को चुनेगी और इस बात की संभावना है कि दूसरा पति भी उन्नीस-बीस पहले पति जैसा ही सिद्ध होगा, क्योंकि चुनाव करने वाला मन वही का वही है। वह आठ पति चुन ले, तो हर बार वह करीब-करीब उन्नीस-बीस एक जैसे पति चुन लेगी। पति तो बदल जाएंगे, लेकिन चुनाव करने वाला मन, चुनाव करने वाला माइंड तो वही है।
अगर हिंदुस्तान के समाज को नई दृष्टि और नया मार्ग देना हो, तो हिंदुस्तान में जो लोग सत्ताधिकारियों को चुनते हैं, उनके मन का बदल जाना जरूरी है, अन्यथा हम रोज पुराने जैसे लोग चुन लेंगे। हम फिर, नये कपड़े होंगे, नई शक्लें होंगी, नया झंडा होगा, नये नारे होंगे, लेकिन हम फिर वही आदमी चुन लेंगे जैसे हमने पहले चुने थे। और जैसे ही सत्ता में वे लोग जाएंगे, वे फिर पुराने आदमी साबित होंगे। उनमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।
दो बातें ध्यान रखनी जरूरी हैं। गांधी का नैतिक आंदोलन सफल नहीं हो सका। आजादी मिली, लेकिन आजादी जिस कामना से मांगी गई थी वह कामना असफल हो गई है। स्वतंत्रता मिली, उपलब्ध हुई, लेकिन स्वतंत्रता से हमने जो चाहा था, जो सपना देखा था, वह सपना पूरा नहीं हो पाया।
हां, कुछ लोगों का सपना पूरा हुआ। वृहत्तर भारत का सपना पूरा नहीं हुआ। अंग्रेज पूंजीपति के हाथ से सत्ता भारतीय पूंजीपति के हाथ में चली गई। भारतीय पूंजीपति का सपना जरूर पूरा हुआ। लेकिन भारतीय पूंजीपति भारत नहीं है। गांधी के एक शिष्य पूंजीपति ने, और अब दूसरे पूंजीपति पछताते होंगे कि जब गांधी जिंदा थे तो हमने भी सेवा क्यों न कर ली?
उनके एक शिष्य पूंजीपति ने, भारत जब आजाद हुआ तो मैंने सुना, उनके पास संपत्ति तीस करोड़ की थी। बीस साल आजादी के बाद उनके पास संपत्ति तीन सौ तीस करोड़ की है। बीस वर्षों में तीन सौ करोड़! शास्त्रों में लिखा हैः सत्संग का फल होता है। इससे सिद्ध होता है कि सत्संग का फल होता है।
मुझे पहले शक होता था कि सत्संग से फल होता है कि नहीं। अब शक नहीं होता। तीस करोड़ रुपये से तीन सौ तीस करोड़! बीस वर्ष में! संभवतः दुनिया के इतिहास में किसी एक परिवार ने इतने थोड़े समय में इतना धन संग्रह नहीं किया है। प्रत्येक वर्ष पंद्रह करोड़ रुपया! प्रत्येक महीने सवा करोड़ रुपया! प्रत्येक दिन चार और पांच लाख रुपया! पूरे बीस वर्ष से!
लेकिन वृहत्तर भारत गरीब से गरीब होता चला गया। एक तरफ संपत्ति इकट्ठी होती चली गई है, दूसरी तरफ दीनता और हीनता बढ़ती चली गई है। हिंदुस्तान के गांव में गरीब से पूछो, वह कहता है, कुछ फर्क नहीं पड़ा, इससे तो ब्रिटिश राज्य अच्छा था। कोई नहीं कहना चाहता यह कि गुलामी अच्छी थी, लेकिन जब कोई गरीब कहता है कि इससे तो गुलामी अच्छी थी, तो उसकी पीड़ा हम समझ सकते हैं। गरीब भी स्वतंत्र होना चाहता है। लेकिन स्वतंत्रता उसके लिए कुछ भी नहीं लाई। उसने भी सपने बांधे थे, उसने भी कल्पनाएं की थीं,

उसने भी गोली खाई थी, वह भी जेल गया था, लेकिन उसे पता नहीं था कि यह स्वतंत्रता एक तरह के पूंजीपति के हाथ से दूसरी तरह के पूंजीपति के हाथ में रूपांतरित हो जाएगी।
गांधी को भी यह कल्पना नहीं थी। गांधी भी सोचते थे कि पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। अच्छे आदमी हमेशा अच्छी बातें सोचते हैं, लेकिन सभी अच्छी बातें सही सिद्ध नहीं होती हैं। गांधी भले आदमी थे। भले आदमी को कोई बुरा आदमी नहीं दिखाई पड़ता है।
लेकिन ध्यान रहे, बुरे आदमी को कोई भला आदमी नहीं दिखाई पड़ता है। बुरे आदमी को सब बुरे आदमी दिखाई पड़ते हैं, भले आदमी को सब भले आदमी दिखाई पड़ते हैं। लेकिन दोनों की दृष्टियां अधूरी हैं और गलत हैं। दोनों सब्जेक्टिव दृष्टियां हैं, ऑब्जेक्टिव नहीं हैं। जो है उसको नहीं देखतीं, जो हम देख सकते हैं उसको देखती हैं। गांधी को खयाल था कि हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। और गांधीवादी अभी भी कहे चले जाते हैं कि हृदय-परिवर्तन हो जाएगा। लेकिन जरा देखें तो, चालीस वर्ष की मेहनत के बाद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन कर पाए? और अगर खुद गांधी एक पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाए तो गांधीवादी कितने हजार वर्षों में कर पाएंगे? इसका सोच सकते हैं, विचार कर सकते हैं? गांधी नहीं कर पाए, गांधी जैसा महिमावान व्यक्ति पूंजीपति का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाया, बल्कि पूंजीपति ने उसकी आड़ से भी फायदा उठाने की कोशिश की। तो यह गांधीवादी कैसे हृदय-परिवर्तन कर पाएंगे?
नहीं, यह हृदय-परिवर्तन की बात के पीछे शोषण के तंत्र को चलाए रखने का आयोजन चल रहा है। हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। फिर हम चोरों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए कोई व्यवस्था नहीं करते। हम नहीं कहते कि पुलिस नहीं रखेंगे, चोर के लिए दंड नहीं देंगे। हम चोर का हृदय-परिवर्तन करेंगे। नहीं, चोर के हृदय-परिवर्तन की हम फिक्र नहीं करते। हम कहते हैं, कोई चोरी करेगा तो दंड पाएगा, लेकिन शोषक का हम हृदय-परिवर्तन की फिक्र करते हैं। हम कहते हैं, शोषक को दंड नहीं देना है, उसका हृदय-परिवर्तन करना है। और बड़े मजे की बात यह है कि चोर बहुत छोटा चोर है, शोषक बहुत बड़ा चोर है। मैंने सुना है कि चीन में लाओत्सु एक अदभुत विचारक हुआ। और लाओत्सु
एक बार एक राज्य का कानून-मंत्री हो गया था। कानून-मंत्री होते ही पहले दिन अदालत में बैठा तो एक चोर का मुकदमा आया। एक आदमी ने चोरी की थी। चोरी पकड़ गई, सामान पकड़ गया। उस आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैंने चोरी की है। साहूकार भी खड़ा था और कहता था इसे दंड दो, इसने चोरी की है। लाओत्सु ने कहाः दंड जरूर दूंगा और उसने फैसला लिखा, उसने कहा कि छह महीने चोर को सजा और छह महीने साहूकार को भी सजा। साहूकार ने कहाः तुम पागल हो गए हो! दुनिया में कभी साहूकारों को सजा हुई है? जिनकी चोरी हुई उनको सजा दोगे? यह कौन सा कानून है? यह कहां का न्याय है? लाओत्सु ने कहाः जब तक सिर्फ चोरों को सजा मिलती रहेगी, तब तक दुनिया से चोरी बंद नहीं हो सकती, क्योंकि तुमने गांव की सारी संपत्ति एक कोने में इकट्ठी कर ली है। अब गांव में चोरी नहीं होगी तो और क्या होगा। एक आदमी के पास गांव की सारी संपत्ति इकट्ठी हो जाए तो गांव में आदमी कितने दिन तक धर्मात्मा रह सकेंगे? चोरी होगी। चोरी उनकी मजबूरी हो जाएगी। लाओत्सु ने कहा है कि मैं तो छह महीने की सजा चोर को भी दूंगा और छह महीने की सजा तुम्हें भी। क्योंकि चोर पीछे पैदा हुआ है, शोषण पहले है। शोषण पहले है, तब पीछे चोरी है। पूरा हिंदुस्तान चोर होता चला जा रहा है और सारे नेता चिल्लाते हैं कि चोरी नहीं होनी चाहिए, बेईमानी नहीं होनी चाहिए, भ्रष्टाचार नहीं होना चाहिए। भ्रष्टाचार होगा, चोरी होगी, बेईमानी होगी, बढ़ेगी; क्योंकि सबसे बड़ी चोरी और बेईमानी शोषण की जारी है और देश गरीब होता चला जा रहा है। नहीं, गरीब देश चोरी से नहीं बच सकता, बेईमानी से नहीं बच सकता, भ्रष्टाचार से नहीं बच सकता, रिश्वत से नहीं बच सकता।
जब संपत्ति एक तरफ इकट्ठी होती चली जाती हो तो संपत्तिहीन कितने दिन नैतिक हो सकता है, कितने दिन तक धार्मिक हो सकता है। प्राण बचाने को भी उसे अनैतिक होना पड़ता है। और नेता भी भलीभांति जानते हैं कि न चोरी रुकेगी, न बेईमानी रुकेगी। बीस वर्षों में वह रोज बढ़ती चली गई है। बीस वर्षों में

हमारा प्रत्येक व्यक्तित्व का सारा महत्वपूर्ण हिस्सा नीचे गिरता चला गया है और हमारा नंगापन प्रकट होता चला गया है। लेकिन वह कहे चला जाता है कि नीति की शिक्षा दो स्कूलों में और कालेजों में, धर्म की शिक्षा दो, गीता पढ़ाओ, राम-नाम जपाओ। लेकिन सब बेईमानी की बातें हैं। गीता पढ़ाने से, राम-नाम जपाने से कोई चोरी बंद नहीं होगी, भ्रष्टाचार बंद नहीं होगा, अनीति बंद नहीं होगी। इस देश में अनीति उस दिन बंद होगी, जिस दिन इस देश में शोषण का तंत्र टूटेगा। उसके पहले अनीति बंद नहीं हो सकती है।
लेकिन शोषण के तंत्र को तोड़ने की बात करें तो वह गांधी जी की दुहाई देते हैं। वे कहते हैं, गांधीजी कहते थे, हृदय-परिवर्तन करना होगा। वे कहते हैं कि हम गांधी जी के प्रतिकूल नहीं जा सकते। गांधी जी कहते हैं, हृदय-परिवर्तन करना होगा। गांधी जी भले आदमी थे। वे सोचते थे कि हृदय-परिवर्तन हो जाना चाहिए। वे सोचते थे, जैसा उनका हृदय था, वे सोचते थे, सबका हृदय होगा। ऐसा सबका हृदय नहीं है। हृदय-परिवर्तन नहीं होगा। हृदय-परिवर्तन करना पड़ेगा, होगा नहीं। और करना पड़ने का मतलब यह है कि देश के तंत्र को, देश की व्यवस्था को यह निर्णय लेना होगा कि शोषण हमें समाप्त करना है, किसी भी मूल्य पर समाप्त करना है। जैसे हम चोरी समाप्त करते हैं, बेईमानी को तोड़ने की कोशिश करते हैं, हत्याओं की कोशिश करते हैं रोकने की, उसी तरह हमें शोषण को भी रोकना पड़ेगा। तो यह बंद होगा।
कल ही मैं किसी से यह बात कर रहा था तो उन्होंने कहा कि आपके भी बहुत
से पूंजीपति मित्र हैं, उनमें से आपने किसी को बदला अब तक कि नहीं? मैंने उनसे कहा, मैं तो मानता नहीं कि बदला जा सकता है। इसलिए बदलने का सवाल नहीं। फिर मैं यह भी नहीं मानता कि पूंजीपति को बदलना है। पूंजीपति को नहीं बदलना, पूंजीवाद को बदलना है। पूंजीपति को बदलने से क्या होगा? पूंजीपति के बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। बड़ा तंत्र है पूंजीवाद का, पूंजीपति, कसूर भी नहीं है उसका कोई। मजदूर भी विक्टिम है इस तंत्र का, पूंजीपति भी विक्टिम है इस तंत्र का। वे दोनों ही इसके शिकार हैं, इस बड़े तंत्र के जो पूंजीवाद है। इस बड़े तंत्र के, पूंजीवाद के तंत्र का पूंजीपति भी उतना ही परेशान और पीड़ित हिस्सा है, जितना कि मजदूर और दलित पीड़ित हिस्सा है। एक दलित और पीड़ित है संपत्ति के न होने से; एक पीड़ित और परेशान है संपत्ति के होने से और चारों तरफ निर्धन की कतार जुड़ी होने से। एक आदमी अगर एक गांव में स्वस्थ हो और सारा गांव बीमार हो तो सारा गांव बीमारी से परेशान रहेगा और वह आदमी जो अकेला स्वस्थ रह गया है, स्वास्थ्य से परेशान रहेगा कि कब बीमार न पड़ जाऊं। अब बीमार न पड़ जाऊं। चारों तरफ बीमारी ही बीमारी है और ये बीमार सब मिल कर कहीं मुझे बीमार न कर दें। वह स्वास्थ्य का सुख नहीं ले पाएगा, जहां चारों तरफ टी.बी. और कैंसर और घाव भरे लोग घूम रहे हों।
एक गांव में सारे लोग सड़क पर सो रहे हों और एक आदमी महल बना ले तो महल में आराम से सो सकेगा? कैसे सो सकेगा? द्वार पर पहरेदार रखना पड़ेगा। पहरेदार के ऊपर दूसरा पहरेदार रखना पड़ेगा, क्योंकि पहरेदार भी रात को घुस सकता है महल में और छुरा भोंक सकता है। कैसे सो सकेगा आराम से? और इतनी दीनता, दरिद्रता उसके आस-पास फैल जाए तो उसके चित्त पर कोई परिणाम होगा कि नहीं? वह आदमी है या पत्थर? उसके चित्त में शांति कैसे हो सकेगी? मैं बड़े से बड़े धनपतियों को जानता हूं, वे भी मेरे पास आते हैं और कहते हैं मन को शांत करने का कोई उपाय बताएं? मन बड़ा अशांत रहता है। मन अशांत नहीं रहेगा तो क्या होगा। जहां हमारे चारों तरफ इतना दुख होगा, इतना दारिद्रय होगा, इतनी दीनता होगी, हम कब तक अपने महल में यह विश्वास रख सकेंगे कि सब ठीक चल रहा है? यह कैसे हो सकेगा? और वह नीचे जो बढ़ती हुई दीनता और दरिद्रता है, उसकी लहरें, उसकी आहें, उसका रुदन, उसका उपद्रव रोज महलों से टकराएगा। रोज महलों की दीवालें घबड़ाएंगी कि कब गिर जाएं, कब गिर जाएं। उनको बचाने में उसके प्राण लग जाते हैं। जिसको हम पूंजीपति कहते हैं वह भी पीड़ित है, वह भी विक्टिम है।
पूंजीवाद के दो विक्टिम हैं। एक वे जिनके पास पूंजी नहीं है और एक वे जिनके पास पूंजी है। जिस दिन पूंजीवाद जाएगा उस दिन गरीब गरीबी से मुक्त

होगा और अमीर अमीरी से मुक्त होगा। और ये दोनों रोग हैं, ये दोनों ही रोग हैं। इसलिए पूंजीवाद के जाने का मतलब पूंजीपति का अहित नहीं है। पूंजीवाद के जाने पर ही वह जो पूंजीवाद से पीड़ित व्यक्तित्व है वह भी मुक्त होकर मनुष्य का व्यक्तित्व बन सकेगा। जब तक कोई पूंजीपति है, तब तक मनुष्य नहीं हो पाता। तब तक आदमी नहीं हो पाता। तब तक वह खुल नहीं पाता, तब तक वह सहज नहीं हो पाता, तब तक इतने ज्यादा गलत समाज में इतने गलत ढंग से उसे जीना पड़ता है कि वह इतने टेंशन में, इतने तनाव में, इतनी अशांति में जीता है कि वह कैसे सहज हो सकता है? वह सहज नहीं हो पाता।
मैं एक घर में कलकत्ते में ठहरा हुआ था। उस घर में पति और पत्नी के अतिरिक्त कोई भी न था। बस वे दो ही प्राणी थे। बड़ा था महल। सब थी सुविधा। सब कुछ था उनके पास। रात बारह बजे जब मैं थक गया दिन भर के बाद और सोने जाने लगा तो उस घर के गृहपति ने कहा, क्या आप अब सो जाएंगे? मैंने कहा कि अब बारह बज गए, क्या अब भी मैं जागता रहूं? उन्होंने कहाः ठीक है, आप सो जाइए, लेकिन मैं सोचता था थोड़ी देर और बात करते। मैंने कहाः प्रयोजन? कि मुझे रात भर नींद नहीं आती। क्या हो गया तुम्हें, नींद क्यों नहीं आती? इतनी अच्छी गद्दियां तुम्हारे पास हैं। इन पर तो किसी को नींद न भी आ रही हो, जागते आदमी को बिठाल दो, तो नींद आ जाए। इतना अच्छा भोजन तुम्हारे पास है, इतना बड़ा बगीचा तुम्हारे पास है, इतनी ताजी और ठंडी हवा तुम्हारे पास है, तुम्हारी खिड़कियों से आकाश के तारे दिखाई पड़ते हैं, चांद झांकता है, तुम्हें नींद नहीं आती, हुआ क्या है? वे कहने लगे, नींद, नींद मुझे बहुत वर्षों से नहीं आती है। बस दिन-रात चिंता ही चिंता। आज इस फैक्टरी में गड़बड़ है, कल उस फैक्टरी में गड़बड़ है। वहां कम्युनिस्ट उपद्रव कर रहे हैं। वहां सोशलिस्ट उपद्रव कर रहे हैं, वहां ऊपर सरकार गड़बड़ किए चली जाती है, यहां नीचे... सब गड़बड़ ही गड़बड़ है, इस गड़बड़ में कैसे नींद आए?
इसको आप समझ रहे हैं यह आदमी बहुत सुख में है, यह पूंजीपति बहुत सुख में है, तो आप भूल में हैं, बिल्कुल भूल में हैं। संपत्ति सुख ला सकती थी, लेकिन पूंजीवाद के कारण संपत्ति सुख नहीं ला पाती है। संपत्ति उस दिन सुख बनेगी जिस दिन संपत्ति वितरित होगी, समान होगी। संपत्ति उस दिन सुख बन जाएगी। अभी संपत्ति भी दुख है। संपत्तिहीनता तो दुख है ही, संपत्ति भी अभी दुख है। संपत्ति जिस दिन वितरित होगी और समाज में जब दीन-हीन, रुग्ण और अपाहिज का वर्ग विलीन होगा और जब मनुष्य मनुष्य की भांति एक समानता के तल पर खड़ा होगा, तो समाज से बेईमानी मिटेगी, चोरी मिटेगी, गुंडागर्दी मिटेगी, नहीं तो नहीं मिट सकती है। यह सारी की सारी जो व्यवस्था हमें दिखाई पड़ती है, बाई-प्रॉडक्ट है, शोषण की, एक्सप्लायटेशन की। और ऊपर के नेता चिल्लाए चले जाते हैं कि नीति समझाओ बच्चों को। बच्चे कैसे नीति समझेंगे? नहीं समझ सकते हैं। लेकिन वे दलील देते हैं कि गांधीजी कहते थे हृदय-परिवर्तन करना है, इसलिए कोई जोर जबरदस्ती नहीं करनी है। लेकिन तुम हैदराबाद में पुलिस एक्शन ले सकते हो, तुम रजवाड़ों को मिटाने के लिए जोर जबरदस्ती कर सकते हो। तब तुम्हें खयाल नहीं आया कि राजाओं का हृदय-परिवर्तन करना चाहिए। लेकिन शोषण के मामले में एकदम हृदय-परिवर्तन और अहिंसा की ऊंची-ऊंची बातें याद आने लगती हैं।
इसका मतलब है कुछ जरूर। इसका मतलब है, तुम बोलते जरूर हो, वाणी तुम्हारी नहीं है, वाणी शोषक की है जो तुम्हारी पीठ के पीछे खड़ा है और बोल रहा है। यह वाणी तुम्हारी नहीं है गांधीवादियो! यह तुम नहीं बोल रहो हो, तुम्हारी जबान बिकी हुई है, तुम्हारी बुद्धि बिकी हुई है। तुम्हारे पीछे जो खड़ा है वह बोल रहा है और कह रहा है कि अगर यह वाणी नहीं बोले तो अगले इलेक्शन में मुश्किल में पड़ जाओगे। यह दान-धन फिर हमसे नहीं मिलने वाला है। ये पैसे फिर हमसे नहीं मिलेंगे। वह वाणी सत्ता से जो बोल रही है वह संपदाशाली की वाणी है। सत्ता से बोलने वाले के पास अपनी अब कोई जबान नहीं है। और वह अपनी इस झूठी जबान को गांधीवाद का नाम देकर सुंदर, सत्य दिखलाना चाहता है। नहीं, चाहे गांधीजी ने कहा हो, चाहे किसी ने भी कहा हो कि हृदय-परिवर्तन से कुछ होगा, वह नहीं हो सकता है। गांधीजी के चालीस साल का अनुभव यह कहता है कि वह नहीं हो सकता है और अब तो गांधी जैसा व्यक्ति भी हमारे

पास नहीं है जो हृदय-परिवर्तन के लिए जोर डाल सके। अब कौन डालेगा, कौन बदलेगा, हृदय-परिवर्तन कैसे बदलेगा?
विनोबा ने इधर कोशिश की थी एक। गांधी के पीछे गांधी से मिलता-जुलता कोई आदमी था, तो वही है। उन्होंने कोशिश की थी। बहुत श्रम किया, लेकिन कोई परिणाम न निकला। कोई परिणाम न निकला। जमीन मिली, दान मिला। इस देश में दान तो हजारों वर्षों से मिलता है। दान कोई नई बात नहीं है। दान भी मिला, जमीन भी मिली, गरीब को थोड़ी-बहुत राहत भी मिली होगी; लेकिन शोषण का तंत्र इस तरह थोड़े ही टूटता है? जिस आदमी ने दान दिया एक तरफ जमीन का, वह जाकर घर फिर योजना बना रहा है कि जितनी जमीन हाथ से निकल गई है, वह जल्दी से कैसे वापस कितनी कमाई कर लूं। इससे शोषण का तंत्र थोड़े ही बदलेगा कि एक आदमी ने दान दिया यहां दस लाख का और जाकर उसने घर योजना बनाई कि अगले वर्ष दस लाख कैसे वापस कमा लूं! उसका हृदय थोड़े ही बदल गया है। रुपये देने से थोड़े ही यह समाज बदलेगा। यह समाज तो बदलेगा इसके तंत्र के बदलने से। इसकी सिस्टम, इसकी व्यवस्था बदलने से।
तो विनोबा ने दस-पंद्रह साल दौड़-धूप करके बेचारे ने पैदल भाग-भाग कर गांव-गांव अपना जीवन नष्ट किया। कोई परिणाम नहीं हुआ। हां, जमीन मिली, और वह सर्वोदयवादी कहते हैं कि वही परिणाम है। देखो, इतनी लाख एकड़ जमीन मिल गई। जमीन के मिलने से कुछ भी होने का नहीं है। इस पूंजीवाद के तंत्र को, शोषण के तंत्र को जमीन के बंट जाने से, कुछ थोड़ी सी जमीन गरीब को मिल जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि पूंजीपति, पूंजीशाही और गांधीवादी इससे खुश हैं कि विनोबा ने थोड़ी-बहुत जमीन बांटी। थोड़ा-बहुत दान दिलवाया। उससे गरीब को थोड़ी राहत मिली। राहत मिलने से हिंदुस्तान में आने वाली समाजवादी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितनी राहत मिलती है, उतनी क्रांति में रुकावट पड़ती है। जितना गरीब को ऐसा लगता है कि बहुत अच्छा है, सब ठीक है, किसी तरह चल रहा है, चल जाएगा, थोड़ी जमीन भी मिल गई एक-दो एकड़, अब कुछ हो जाएगा, अब कुछ हो जाएगा। उतना ही वह जो सर्वहारा है, वह जिसके पास कुछ भी नहीं, वह क्रांति करने के लिए तत्पर नहीं हो पाता है। विनोबा ने भला काम किया, लेकिन उन्हें पता नहीं, वे हिंदुस्तान की शोषण की व्यवस्था के हाथ में खेल गए। इसीलिए दिल्ली के सत्ताधीश, करोड़पति, उनके चरणों में जाकर बैठते हैं और नमस्कार कर आते हैं। वह नमस्कार विनोबा को नहीं है, वह नमस्कार क्रांति में पड़ती हुई रुकावट को है।
बीस साल के भूदान-आंदोलन ने भारत की क्रांति में बाधा पहुंचाई, समय को लंबा किया है। शोषण का तंत्र नहीं टूटा, लेकिन शोषण का तंत्र सहने योग्य बन जाए, इसकी थोड़ी सी कोशिश भर हो पाई है और कुछ भी नहीं हो सका है। नहीं, इस तरह के कामों से कुछ भी नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान को अपनी पूरी समाजी- व्यवस्था को अनिवार्यरूपेण बदल लेना जरूरी है। और न हृदय-परिवर्तन के लिए प्रतीक्षा करने की जरूरत है, न किसी और बात की प्रतीक्षा करने की जरूरत है। लेकिन सत्ताधिकारी जो सत्ता में है उसके पास अपनी वाणी नहीं है। जब तक इस देश का लोकमत, जब तक इस देश की लोकात्मा, जब तक इस देश के पूरे प्राण इस बात को नहीं समझेंगे कि हम सब चाहे गरीब, चाहे अमीर, एक ही शोषण-तंत्र के परेशान पीड़ित अंग हैं और इस शोषण के तंत्र को हटा देना है तभी कुछ हो सकेगा। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आएगा, लेकिन समाजवाद से सर्वोदय आ सकता है। समाजवाद के बाद ही सर्वोदय आ सकता है, क्योंकि सर्वोदय का अर्थ है सबका उदय, सबका हित। सबका हित तभी हो सकता है जब सबका हित समान हो।
अभी गरीब और अमीर का हित समान नहीं है। इसलिए सर्वोदय नहीं हो सकता है। उनके हित प्रतिकूल हैं, विरोधी हैं, शत्रु के हित हैं। उनके हित में समानता नहीं है, इसलिए अभी समान हित का उदय नहीं हो सकता। अभी सर्वमंगल नहीं हो सकता है। सर्वोदय से समाजवाद नहीं आएगा। सर्वोदय की जितनी बातें चलेंगी, समाजवाद के आने में उतनी देर होगी। उतना समय जाया होगा। लेकिन समाजवाद आए तो सर्वोदय निश्चित आ जाएगा। सर्वोदय समाजवाद की छाया है। जैसे ही शोषण का तंत्र टूटता है, तब सबका समान हित रह जाता है। तब वर्गीय हित नहीं रह जाते। तब श्रेणीगत हित नहीं रह जाते। तब क्लास इंट्रेस्ट नहीं रह जाता। तब हम सब समान हो जाते हैं और तब इस देश का उदय हो सकता है।

इस देश का श्रम भी तभी जागेगा, उत्साह भी तभी जागेगा, प्राण श्रम करने के लिए, सृजन करने के लिए तभी आतुर होंगे जब प्रत्येक को ऐसा मालूम पड़ेगा यह देश हमारा है। अभी प्रत्येक को ऐसा नहीं मालूम पड़ता।
और यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब तक प्रत्येक को यह अनुभव न हो जाए
कि यह देश हमारा है, दीनतम को यह अनुभव न हो जाए कि देश मेरा है--यह उसे कब अनुभव होगा? यह उसे तभी अनुभव होगा कि देश की जो संपदा है--वह मेरी है। देश की संपदा कुछ लोगों की और देश मेरा, यह बात बड़ी गड़बड़ है। यह नहीं हो सकता। संपदा किन्हीं कुछ लोगों की और देश मेरा! देश का मतलब क्या है? देश का मतलब है, देश की संपदा; देश का मतलब है, देश का सब कुछ। भूमि और आकाश, और हवा, संपत्ति और मनुष्य की शक्ति और सब कुछ। मेरा है यह देश तभी कह सकता हूं बल से, जब इस देश की सारी संपत्ति में भागीदार हूं, समान भागीदार हूं। लेकिन जब मैं समान भागीदार नहीं हूं तो यह देश मेरा कैसा है। यह दस-पांच लोगों का होगा देश। यह सत्ताधारियों का होगा देश। यह दीन का, दरिद्र का देश कैसा है? और इसलिए इस देश में एक देश का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है, एक समाज का भाव पैदा नहीं हो पा रहा है। इस देश में एक अटूट एकता पैदा नहीं हो पा रही है। वह नहीं होगी। यह इंटिग्रेशन की सारी बातचीत चलेगी और कुछ भी नहीं होगा। इंटिग्रेशन, एकता, इस देश में समाजवाद का परिणाम होगी। उसके पहले नहीं हो सकती।
ये बातें मैं कहता हूं तो वे कहते हैं कि मैं गांधी जी का दुश्मन हूं। गांधी जी का मैं दुश्मन हूं या दोस्त? अगर गांधी जी की कहीं भी आत्मा होगी तो यह सोचती होगी कि जब आप ताली बजाएं समाजवाद के लिए तो आकाश में अगर वे कहीं भी होंगे तो उन्होंने भी ताली बजाई होगी! आपकी ताली के साथ उनकी ताली रही होगी। और अगर मेरी आवाज उन तक पहुंचती होगी, उन्हें लगता होगा कि मैं कहा रहा हूं कि यह देश तब होगा खुशहाल, जब प्रत्येक व्यक्ति इस देश की संपत्ति का समान मालिक होगा। तो गांधी खुश होंगे या दुखी होंगे? तो मैं गांधी के पक्ष में बोल रहा हूं या विपक्ष में बोल रहा हूं, यह मैं आप पर छोड़ देता हूं। मैं गांधीवादी के विरोध में बोल रहा हूं, गांधी के विरोध में नहीं बोल रहा हूं।
एक बार कराची में एक बड़ी कांफ्रेंस में, कांग्रेस के कुछ लोगों ने गांधी का विरोध किया और काले झंडे दिखाए और उन्होंने काले झंडे दिखा कर नारा लगाया--गांधीवाद मुर्दाबाद। गांधी मंच पर थे, माइक पर थे। उन्होंने उत्तर में कहा कि ध्यान रहे, गांधी मर जाएगा, लेकिन गांधीवाद अमर रहेगा। मैं उनसे कहना चाहता हूं, गलती बात कह दी उन्होंने। मेरा वश होता, लेकिन अब तो कोई उपाय नहीं उनसे शब्द बदलवाने का, लेकिन फिर भी निवेदन तो कर देना चाहिए। मेरा वश होता तो उनसे मैं कहता, लेकिन आज तो कह देना चाहिए। मैं कहना चाहता हूं, गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी अमर रहेंगे, गांधीवाद नहीं। गांधी की प्रतिभा, गांधी का व्यक्तित्व, गांधी की करुणा, गांधी का प्रेम, गांधी की अहिंसा, गांधी का वह महिमामंडित स्वरूप अमर रहेगा, गांधीवाद नहीं। क्योंकि गांधीवाद के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवादी के अमर रहने का मतलब गांधीवादी का अमर रहना है। गांधीवाद की जय नहीं, लेकिन गांधी की जय जरूर। मैं गांधी का शत्रु नहीं हूं, लेकिन गांधीवाद देश को गड्ढे में ले जा रहा है। और गांधीवाद से मुक्त हो जाना अत्यंत आवश्यक है। जितने शीघ्र हम मुक्त हो सकें और जितने शीघ्र हम एक वर्ग-विहीन और शोषण-मुक्त समाज को जन्म दे सकें, उतना हितकर है, उतना उचित है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष के भारत का स्वप्न पूरा हो सकेगा।
भारत के ऋषियों ने, भारत के संतों ने, सपना ही यह देखा है कि एक पृथ्वी ऐसी हो जहां सब बंधु हों, लेकिन शोषण से भरी पृथ्वी बंधुओं की पृथ्वी कैसे हो सकती है? एक सपना देखा है कि प्रत्येक आदमी की आत्मा समान है, बराबर है, लेकिन आत्मा समान और बराबर होगी, जब तक शरीर को समान अवसर और सुविधा नहीं मिलती, तब तक आत्मा की समानता का कोई व्यावहारिक अर्थ नहीं है। आत्मा तभी प्रकट होती है जब शरीर हो। और आत्मा की समानता भी उसी दिन प्रकट होगी जिस दिन शरीर के जगत में समानता की व्यवस्था हो, अन्यथा आत्मा की समानता भी कैसे प्रकट हो सकती है? करोड़ों-करोड़ों वर्ष से जिसने जीवन को सोचा है,

जाना है, उसके प्राणों में एक ही प्रार्थना रही है कि सारे लोगों को समान शांति, समान आनंद उपलब्ध हो। लेकिन वह कैसे उपलब्ध होगा? अभी तो जीवन की समान जरूरतें भी उपलब्ध नहीं हैं, जीवन को विकसित करने का समान अवसर भी उपलब्ध नहीं है। कितने गांधी झोपड़ों में मर जाते होंगे और पैदा नहीं हो पाते होंगे। कितने बुद्ध और महावीर शूद्रों के घर में जन्मते होंगे और क ख ग भी नहीं सीख पाते होंगे। कितने ऋषि और मुनि पैदा नहीं हो सके, क्योंकि जहां वे पैदा हुए वहां ज्ञान की कोई खबर, कोई हवा नहीं पहुंच सकी। हजारों वर्ष से भारत में शूद्र हैं। एक शूद्र बुद्ध की हैसियत को उपलब्ध हुआ? एक शूद्र राम बना? एक शूद्र कृष्ण बना? एक शूद्र पतंजलि बना? नहीं बन सका। क्या शूद्र के घर आत्माएं पैदा नहीं होतीं? प्रतिभाएं पैदा नहीं होतीं? अंग्रेजों की कृपा थी कि एक डाक्टर अंबेदकर पहली बार पैदा हुआ एक कीमत का आदमी शूद्रों में। एक आदमी पूरे इतिहास में। यह भी पैदा नहीं होता। इसे मौका मिला इसलिए पैदा हुआ। कितनी आत्माओं को मौके नहीं मिले, जो पैदा हो सकती थीं। कितना अनंत अपकार हुआ है जगत का। कुछ थोड़े से लोग अवसर पाते हैं। उन थोड़े से लोगों के थोड़े से बच्चे आगे बढ़ पाते हैं। शेष बड़ा समाज जीता है, सड़ता है, मर जाता है। उसके जीवन में न कोई ऊंचाई पैदा होती, न कोई शिखर छूता, न कोई संगीत बजता, न कोई प्रभु के मंदिर की घंटी सुनाई पड़ती। यह कब तक चलेगा?
लोग समझते हैं कि समाजवाद धर्म का विरोधी है। गलत है यह बात। समाजवाद
से ज्यादा धार्मिक और कोई आंदोलन जगत में नहीं है। लोग समझते हैं कि समाजवाद ईश्वर का विरोधी है। गलत है यह बात। जब जमीन पर पूरी तरह समाजवाद होगा तभी हम पहली दफा ईश्वर की तरफ उठ सकेंगे, ईश्वर की तरफ आंख उठा सकेंगे। समाजवाद के बाद ही धार्मिक जीवन का ठीक-ठीक समुचित विकास हो सकता है। लेकिन गांधी जी के सामने स्वतंत्रता का सवाल बड़ा था। आजादी का सवाल बड़ा था। समाजवाद का सवाल बड़ा नहीं था। स्वभावतः परिस्थिति नहीं थी। गांधी जी के सामने सवाल था कि यह देश परदेशी गुलामी से कैसे मुक्त हो जाए। अगर वे जिंदा रहते तो शायद वे आर्थिक गुलामी से, देशी गुलामी से भी मुक्त करने के लिए कोई प्रयास करते। लेकिन वे जिंदा नहीं रहे। आजादी जरूरी थी उस वक्त। इसलिए उन्होंने जो भी चिंतन और विचार विकसित किया, वह मूलतः स्वतंत्रता को ध्यान में रख कर था। उनका चिंतन समानता को ध्यान में रख कर समुचित रूप से विकसित नहीं हो सका। लेकिन उन पर ही हम रुक जाएंगे या आगे बढ़ेंगे? स्वतंत्रता आ गई। जैसी भी समझिए, क्लीव, इंपोटेंट, अधूरी, जैसी भी आ गई। अब इस स्वतंत्रता के अवसर का उपयोग क्या हो सकता है? एक ही उपयोग हो सकता है कि समानता भी आए। और ध्यान रहे, जब तक समानता पूरी तरह न आए तब तक स्वतंत्रता सिर्फ धोखा होती है, कामचलाऊ होती है, नाममात्र होती है। क्योंकि जिनके पास पेट में रोटी भी नहीं है, उनके लिए स्वतंत्रता का क्या अर्थ है, क्या उपयोग है, क्या प्रयोजन है? जिनके पास वस्त्र भी नहीं हैं उनके लिए स्वतंत्रता शब्द सुनाई तो पड़ता है, लेकिन उसका कुछ अर्थ प्रकट नहीं होता कि स्वतंत्रता यानी क्या है। जब तक आर्थिक समानता न हो तब तक राजनैतिक स्वतंत्रता आत्मवंचना है, सेल्फ डिसेप्शन है। लेकिन गांधी के सामने वह सवाल न था। हमारे सामने वह सवाल है और हमें गांधी के आगे सोचना होगा, आगे विचार को ले जाना होगा। देश ने एक आजादी की लड़ाई लड़ी थी। अब देश को फिर एक लड़ाई लड़नी है समानता की। नहीं किसी और से लड़नी है, लड़नी है अपने ही तंत्र से, अपने ही शोषण की व्यवस्था से। नहीं किसी व्यक्ति से; समाज की व्यवस्था से।
और यह व्यवस्था बदले, तो ही गांधी की आत्मा प्रसन्न हो सकती है। लेकिन गांधीवादियों ने गांधी को कहां-कहां बिठा रखा है, पता है? पुलिसथाने में, हेड कांस्टेबल के पीछे गांधी की तस्वीर लगी है। पुलिसथाने में बैठा है हेड कांस्टेबल, मां-बहन की गालियां दे रहा है और पीछे राष्ट्रपिता की तस्वीर लगी है। अदालत में जहां सब तरह की बेईमानियां चल रही हैं, रिश्वतखोरियां चल रही हैं वहां गांधी की तस्वीर लगी है। तुमने गांधी को कोई पंचम जॉर्ज समझ रखा है? तुम गांधी के साथ अच्छा सलूक कर रहे हो? तुम गांधी को कहां बिठा दिए हो? लेकिन तुम्हें गांधी से कोई मतलब नहीं।

तुम्हें स्वयं से मतलब है। तुम गांधी की तस्वीर खड़ी करके अपने को छिपाने की कोशिश कर रहे हो। लेकिन कितनी देर तक इस देश की जनता को धोखा दिया जा सकेगा? तुम तो नहीं छिप सकोगे। खतरा यह है कि कहीं गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाए। तुम नहीं छिप सकोगे, लेकिन कहीं गांधी का सम्मान समाप्त न हो जाए। गांधीवादियों से गांधी को बचा लेना बहुत जरूरी है, अन्यथा गोडसे उनको नहीं मार पाया, गांधीवादी उनको मार डाल सकते हैं।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, इस संबंध में जो प्रश्न होंगे, वह कल सुबह आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
चौथा प्रवचन

लकीरों से हट कर

मित्रों ने बहुत से प्रश्न पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा है कि गांधी जी
ने दरिद्रों को दरिद्रनारायण कहा, इससे उन्होंने दरिद्रता को कोई गौरव-मंडित नहीं किया है, कोई ग्लोरिफाई नहीं किया है।

शायद आपको पता न हो, दरिद्रनारायण शब्द गांधी जी की ईजाद है। हिंदुस्तान में एक शब्द चलता था, वह था लक्ष्मीनारायण। दरिद्रनारायण शब्द कभी नहीं चलता था, चलता था लक्ष्मीनारायण। मान्यता यह थी कि लक्ष्मी के पति ही नारायण हैं। ईश्वर को भी हम ईश्वर कहते हैं, ऐश्वर्य के कारण। वह शब्द भी ऐश्वर्य से बनता है। लक्ष्मी के पति जो हैं वह नारायण हैं। समृद्धनारायण, ऐसी हमारी धारणा थी। हजारों साल से वही धारणा थी। धारणा यह थी कि जिनके पास धन है उनके पास धन पुण्य के कारण है, परमात्मा की कृपा के कारण है। धन का एक महिमावान रूप था, धन गौरव-मंडित था, धन की ग्लोरी थी हजारों वर्षों से। दरिद्र दरिद्र था पाप के कारण, अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण दरिद्र था। धनी धनी था अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण। धन प्रतीक था उसके पुण्यवान होने का, दरिद्रता प्रतीक थी उसके पापी होने का। यह हमारी धारणा थी।
इस धारणा में गांधी ने जरूर क्रांति की और बहुमूल्य काम किया कि उन्होंने लक्ष्मीनारायण शब्द के सामने दरिद्रनारायण शब्द गढ़ा और उन्होंने कहा कि नहीं दरिद्र भी नारायण है। लेकिन जैसा अक्सर होता है, जब भी किसी शब्द, किसी विचार, किसी धारणा की प्रतिक्रिया में, रिएक्शन में कोई धारणा गढ़ी जाती है तो जो भूल इस तरफ होती थी अतिशय में वही भूल दूसरी तरफ हो जाती है। दरिद्र नारायण है, एक समय था समृद्धनारायण से। नारायण तो सभी हैं। न समृद्धनारायण है, न दरिद्रनारायण है। नारायण तो सभी हैं। एक अति, एक इक्सक्सिव यह बात थी कि समृद्ध नारायण है, समृद्धि को ग्लोरिफाई किया गया था। उसकी प्रतिक्रिया में दूसरी अति यह हो गई कि दरिद्रनारायण है, अब दरिद्र को ग्लोरिफाई किया गया। वह जो ग्लोरि, वह जो महिमा समृद्ध के साथ जुड़ी थी, वही महिमा समृद्ध से छीन कर दरिद्र से जोड़ देनी पड़ी। रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है, रवींद्रनाथ ने गीत लिखा हैः कहां खोजते हो प्रभु को, कहां खोजते हो भगवान को, कहां खोजते हो परमात्मा को, मंदिरों में? नहीं है मंदिरों में। मूर्तियों में? नहीं है मूर्तियों में। आकाश में? चांद-तारों में? नहीं है, नहीं है। भगवान वहां है जहां राह के किनारे मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति हो गई। चांद-तारों में भी परमात्मा है, फूलों में भी, सब जगह, मंदिरों में भी, जो भी है वही परमात्मा है। लेकिन कल तक एक अति थी कि इस दीन और दरिद्र में परमात्मा को नहीं देखा जा रहा था, आज उसकी प्रतिक्रिया में, रिएक्शन में दूसरी अति हो गई कि नहीं है वहां। यहां है, जहां मजदूर पत्थर तोड़ता है। यह दूसरी अति है। महिमा बदल दी गई।
गांधी जी ने एक क्रांतिकारी कदम उठाया दरिद्र को नारायण कह कर, लेकिन जैसा कि सदा होता है, एक अति से दूसरी अति पर व्यक्ति चला जाता है, एक अति से दूसरी अति पर विचार चला जाता है। जब किसी ने, गांधी इंग्लैंड गए और गांधी के सेक्रेटरी बर्नार्ड शॉ को मिले और बर्नार्ड शॉ को गांधी के सेक्रेटरी ने कहा कि आपकी गांधी के संबंध में क्या धारणा है? बर्नार्ड शॉ ने कहाः और सब तो ठीक है, लेकिन दरिद्रनारायण शब्द मेरे बरदाश्त के बाहर है। दरिद्र को तो मिटाना है, उससे तो घृणा करनी है, उसे तो समाप्त कर देना है, दरिद्र को बचने नहीं देना है। और सब तो ठीक है, यह दरिद्रनारायण शब्द मेरी समझ के बाहर है।
नेहरू ने भी अपनी आत्म-कथा में लिखा कि गांधी की बहुत सी बातें मेरी समझ में नहीं आती हैं। यह दरिद्रनारायण शब्द मेरी समझ में नहीं आ सका है। यह शब्द ठीक नहीं है। दरिद्र को तो मिटाना है, दरिद्र को तो समाप्त करना

है, दरिद्र को तो बचने नहीं देना है। और उसे जब हम नारायण जैसे महत्वपूर्ण महिमा से मंडित करेंगे तो जाने-अनजाने जिसे हम महिमा देना शुरू करते हैं उसे हम मिटाना बंद कर देते हैं। वह मनोवैज्ञानिक घटना है, जिसे हम महिमा देते हैं उसे नष्ट करने का विचार छूटना शुरू हो जाता है। अगर दरिद्र को महारोग कहें तो मिटाने का खयाल आएगा, दरिद्र को नारायण कहें तो पूजा का खयाल आएगा। यह तो मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन होगा उसका।
सवाल यह नहीं है कि गांधी महिमामंडित करते हैं या नहीं। दरिद्रनारायण कहने से दरिद्रता महिमामंडित होती है और दरिद्रनारायण कहने से ऐसा नहीं लगता कि इसको मिटाना है। दरिद्रनारायण कहने से ऐसा लगता है कि पूजा करनी है। नारायण की हम सदा से पूजा करते रहे हैं, लेकिन हम कहेंगे कि दरिद्र महारोग है तो सीधा खयाल उठता है कि मिटाना है, नष्ट करना है, समाप्त कर देना है। यह प्रश्न तो हमारी मनोवैज्ञानिक प्रतिफलन का है कि हमारे मन पर क्या प्रतिफलन होता है। छोटे-छोटे शब्द भी हमारे मानस को गतिमान करते हैं और हमारे मानस में, हमारे कलेक्टिव मानस में, हमारे अचेतन में, हमारे समूह-मन में शब्दों की करोड़ों वर्ष की परंपरा है और स्थान है। नारायण को मिटाने की हमने कभी कल्पना ही नहीं की है मनुष्य-जाति के इतिहास में। नारायण को सदा हमने पूजा है, उसे मंदिर में उसके चरणों पर सिर रखा है। नारायण को सदा हमने हाथ जोड़े हैं। नारायण को मिटाने की कल्पना ही असंभव है हमारे चित्त को। जब भी हम किसी के साथ नारायण जोड़ देंगे तो स्वभावतः वह जो हमारा हजारों वर्षों का बना हुआ मन है वह नारायण को मिटाने को आतुर नहीं रह जाएगा।
दरिद्रनारायण शब्द दुर्भाग्यपूर्ण है। उससे समृद्धनारायण को उत्तर
तो मिल गया, लेकिन घड़ी का पेंडुलम एक कोने से दूसरे कोने पर पहुंच गया। एक बीमारी से दूसरी बीमारी पर पहुंच गया। न तो समृद्ध नारायण है और न दरिद्र नारायण है। नारायण तो सभी हैं, इसलिए किसी को विशेष रूप से नारायण कहना खतरनाक है। एकदम खतरनाक है। लेकिन प्रतिक्रिया में ऐसा होता है। अब तक ब्राह्मण प्रभु के लोग थे, परमात्मा के लोग थे, गॉड चूजन थे, ईश्वर के चुने हुए लोग थे। गांधी जी ने उसकी प्रतिक्रिया में हरिजन शब्द चुना, शूद्रों के लिए। जो कि कभी भी प्रभु के कृपापात्र नहीं रहे, जिनको प्रभु की कृपापात्र होने का कोई सवाल न था। कृपापात्र थे सवर्ण, कृपापात्र थे ब्राह्मण, क्षत्रिय। शूद्र? शूद्र तो बाहर था जीवन के। उस पर कृपा की कोई किरण परमात्मा की कभी नहीं पड़ी थी। ठीक किया गांधी ने। हिम्मत की कि उसको कहा हरिजन, लेकिन हरिजन कहने से वही भूल फिर दोहरा दी गई। हरिजन थे ब्राह्मण अब तक, परमात्मा के लोग वे थे। उनसे छीन कर महिमा हमने शूद्र को दे दी। लेकिन जरूरत इस बात की है कि महिमा किसी के पास बंधी न रह जाए। महिमा वितरित हो जाए और सबकी हो जाए। हरिजन हैं सब। जब तक ब्राह्मण हरिजन थे तब तक शूद्र हरिजन न था। और अगर हम शूद्र को हरिजन कहते हैं तो हम दूसरी भूल करते हैं। ब्राह्मण के प्रति एक विरोध और वैमनस्य पैदा होगा। वह जो दक्षिण भारत में ब्राह्मण के प्रति वैमनस्य और विरोध पैदा हो रहा है वह दूसरी प्रतिक्रिया है, वह दूसरी प्रतिक्रिया है कि अब नीचे जो शूद्र है वह हो गया हरिजन। अब वह चूजन पिपुल अब वे हो गए। तो अब ब्राह्मण को नीचे, अपदस्थ करना है।
यह खेल कब तक चलेगा? इस खेल को हम समझेंगे, इसके राज को? इसके राज को हम समझेंगे तो यह समझना जरूरी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा है। चाहे वह दरिद्र हो, चाहे समृद्ध हो, चाहे बीमार हो, चाहे स्वस्थ हो, चाहे काला हो, चाहे गोरा हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो--प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। इसे किसी भी वर्ग विशेष को परमात्मा का नाम देना उसे महिमामंडित करना है। मैं जानता हूं कि गांधी की मजबूरी थी। वह एक प्रतिक्रिया में, एक विरोध के लिए उन्होंने एक बात चुनी होगी। लेकिन अब चालीस-पचास साल के बाद उस शब्द को एकदम तत्काल छोड़ देना जरूरी है। अब उस शब्द को पकड़ लिए जाना ठीक नहीं है। और यह भी ध्यान रहे कि दरिद्र को न तो महिमा देनी है और न दरिद्र के साथ सहानुभूति प्रकट करनी है, यह भी ध्यान रहे। दरिद्र के साथ सहानुभूति, दया खतरनाक बातें हैं। दरिद्र के साथ दया नहीं करनी है,

दरिद्रता को मिटाना है ताकि दरिद्र न रह जाए। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता मिटती नहीं है। दरिद्र के साथ दया करने से दरिद्रता चलती है, पोषित होती है। भिखमंगे को हम रोटी दे देते हैं, इससे भिखमंगापन नहीं मिटता। भिखमंगे को दी गई रोटी भिखमंगेपन को दी गई रोटी सिद्ध होती है। वह रोटी भिखमंगे के पेट में ही नहीं पहुंचती, भिखारीपन के पेट में पहुंच जाती है। और भिखारीपन जीता है और मजबूत होता है। भिखारी को मिटाना है। दया पर्याप्त नहीं है, दया बहुत तरकीब की बात है।
शोषक समाज ने हजारों वर्षों में दया का आविष्कार ईजाद किया है; दान और दया का। ये तरकीबें हैं। जिससे नीचे के पीड़ित वर्ग को राहत देने का उपाय किया जाता है। अन्यथा बगावत हो सकती है, क्रांति हो सकती है। इसलिए दया और दान, थोड़ी सी व्यवस्था बनाए रखनी पड़ती है, ताकि वह जो नीचे पीड़ित है उसको ऐसा न लगे कि मुझे बिल्कुल छोड़ दिया गया। उसे लगे कि नहीं दया की जाती है, दान किया जाता है, धर्म किया जाता है। यह दया, दान और धर्म गरीब का अपमान है। और जिस समाज में दान, दया, धर्म की जरूरत पड़ती है, वह समाज स्वस्थ, सुंदर समाज नहीं है, वह समाज रुग्ण है। और जब तक दुनिया में दया, दान और सहानुभूति की जरूरत हम पैदा करते रहेंगे, तब तक हम अच्छे मनुष्य को पैदा नहीं कर सकेंगे।
एक ऐसा समाज चाहिए जहां कोई दया मांगने के लिए तैयार न हो। एक ऐसा समाज चाहिए जो ऐसे लोगों को पैदा न कर देता हो, जिनको आपकी सहानुभूति की जरूरत पड़े। कभी आपने खयाल किया कि जिस पर आप दया करते हैं वह दया आपके अहंकार को मजबूत कर जाती है, वह दया आपको मजबूत कर जाती है कि मैं कुछ हूं, मैंने कुछ किया। और जिस पर आप दया करते हैं उसके मन को पश्चात्ताप, ग्लानि और चोट से भर जाती है कि मेरा अपमान किया गया है। आप ध्यान रखना, जिस पर भी आपने दया की उसको आपने बहुत गहरे में अपना शत्रु बना लिया है, मित्र नहीं। वह आपसे बदला लेगा। क्योंकि कोई भी आदमी अपमानित होता है जब उसे दया मांगनी पड़ती है। पीड़ित होता है, ऊपर से मुस्कुरा कर कहता है कि भगवान तुम्हें सुखी रखे, लेकिन वह जानता है, वह भलीभांति जानता है कि उसे इस हालत में कौन ले आया है? कैसे वह इस हालत में आ गया है? ऊपर से धन्यवाद देता है। लेकिन भीतर? भीतर उसके भी ईर्ष्या पलती है और अपमान पलता है।
नहीं, दया के आधार पर दो व्यक्तियों के बीच मैत्री कभी पैदा नहीं होती। इसलिए अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि मैंने उस आदमी के साथ भला किया और वह मेरे साथ बुरा कर रहा है। नेकी का फल बदी से मिल रहा है। हमेशा मिलेगा। क्योंकि नेकी अपमान करती है किसी का, और नेकी तुम्हारे अहंकार को मजबूत करती है और दूसरे मनुष्य को पीड़ित करती है। नहीं, अब हम दया और धर्म पर नहीं जी सकते हैं और न जीने की जरूरत है। अब तो हमें समझना होगा कि दरिद्र क्यों पैदा होता है? दरिद्रता कहां से जन्म लेती है? उस जड़ को काट देना होगा। एक तरफ जड़ को मजबूत किए चले जाते हैं और शाखाओं और पत्तों को काटते हैं। यह कैसा पागलपन है! एक आदमी रोज पानी देता हो एक वृक्ष में, और फिर पत्तों को काटता हो, और रोज पानी देता हो वृक्ष में। हम जो कर रहे हैं सब मिल कर उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। फिर एक-एक दरिद्र को हम भिक्षा देते हैं, धर्मशाला बनाते हैं, औषधालय खोलते हैं।
इधर ऊपर से हम यह व्यवस्था करते हैं और जो हम कर रहे हैं सारा समाज मिल
कर उससे दरिद्र पैदा हो रहा है। यह बड़ी अजीब बात है कि सारा समाज मिल कर रोग पैदा करे और फिर रोग के इलाज के लिए अस्पताल खोले। यह कुछ समझ में आने जैसी बात नहीं है। लेकिन अब तक हमें समझ में आती थी, क्योंकि हमने व्यक्तिगत संपत्ति को प्रत्येक व्यक्ति के अपने कर्मों का फल समझा हुआ था। वह बात गलत है। कर्मों के फल हैं, जन्म हैं, पुनर्जन्म हैं, लेकिन संपत्ति कर्मों के फल से उपलब्ध नहीं, संपत्ति समाज के वितरण की व्यवस्था पर निर्भर है।
लेकिन अब तक हमारी धारणा यही थी कि गरीब गरीब है अपने कर्मों के कारण, अमीर अमीर है अपने कर्मों के कारण। इस दृष्टिकोण ने, इस कंसेप्ट ने, इस सिद्धांत ने हिंदुस्तान की गरीबी को तोड़ने के सब उपाय मुश्किल कर दिए थे। और आज भी हिंदुस्तान में गरीबी नहीं टूट रही, तो उसके पीछे हमारी फिलासफी

है, हमारा दृष्टिकोण है। वह हमारा दृष्टिकोण यह है कि गरीब समझता है कि मैं गरीब हूं अपने फलों के कारण, अमीर अमीर है अपने फलों के कारण। हमारे दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है, अपने-अपने फलों से संबंध है। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। यह तरकीब बहुत होशियारी की साबित हुई। इससे मेरे पिछले जन्मों को मुझसे जोड़ दिया गया, लेकिन समाज से मुझे तोड़ दिया गया। समाज के ऊपर मेरी गरीबी-अमीरी का कोई सवाल न रहा, कोई प्रश्न न रहा। यह धर्म की धारणा ने निश्चित ही व्यक्तिगत संपत्ति को बचाने का अदभुत उपाय किया है। इसीलिए सारे धर्मशास्त्र दुनिया के कहते हैं, चोरी पाप है, लेकिन दुनिया का एक भी धर्मशास्त्र नहीं कहता कि शोषण पाप है। दुनिया का कोई धर्मशास्त्र कैसे कह सकता है कि शोषण पाप है? वे कहते हैं, चोरी पाप है। कभी आपने सोचा कि इसके इंप्लीकेशंस क्या हैं, इसके मतलब क्या हैं? इसका मतलब यह है कि चोरी हमेशा गरीब का कृत्य है अमीर के खिलाफ, चोरी हमेशा उनका कृत्य है जिनके पास संपत्ति नहीं, उनके खिलाफ जिनके पास संपत्ति है। धर्म संपत्तिशाली की रक्षा कर रहा है। वह कहता है, चोरी पाप है। लेकिन वह यह नहीं कहता कि शोषण पाप है। शोषण अमीर का कृत्य है दरिद्र के खिलाफ। धर्मग्रंथ कोई भी नहीं कहता कि शोषण पाप है। एक अर्थों में मार्क्स की किताब दुनिया का एक नया धर्मग्रंथ है, जो शोषण को पाप कहता है। और अगर मार्क्स हिंदुस्तान में पैदा हुआ होता, तो हमने अपने अवतारों में उसकी गिनती की होती। हम निश्चित उसको अपने अवतारों में गिनते। क्योंकि उसने धर्म और जीवन के संबंध में एक नये सूत्र को स्थापित किया है और वह यह कि शोषण पाप है। और जब तक शोषण का पाप जारी है तब तक चोरी जैसे छोटे पाप पैदा होते रहेंगे। वह उसकी बाई-प्रॉडक्ट है। वह उससे आएंगे और मिट नहीं सकेंगे। मैं यह नहीं कहता हूं कि शोषक पापी है, मैं कहता हूं, शोषण पाप है।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं पूंजीपति में और पूंजीवाद में क्या फर्क करता हूं? क्या मैं कहना चाहता हूं कि पूंजीवाद जिम्मेवार है, पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है?

हां, मैं फर्क करता हूं और कहना चाहता हूं कि पूंजीपति और पूंजीहीन, शोषक और शोषित, दोनों शोषण के यंत्र के परिणाम हैं। शोषण का यंत्र जारी है। उस शोषण के यंत्र में सारे लोग श्रम कर रहे हैं। वे जिनके पास धन नहीं है, आप सोचते हैं, वे धन पाने के लिए श्रम नहीं कर रहे हैं? वे धन पाने के लिए श्रम कर रहे हैं। नहीं कर पा रहे हैं यह दूसरी बात है। जो गरीब है, वह अमीर होने की कोशिश नहीं कर रहा? नहीं हो पा रहा यह दूसरी बात है। जो धनहीन है, वह भी धनाकांक्षी है। जो धनवान है, वह गरीब होने से बचने की कोशिश नहीं रह रहा? वह धनवान है लेकिन गरीब न हो जाए, इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। जो गरीब है वह अमीर कैसे हो जाए, इसकी पूरी कोशिश में लगा हुआ है। कुछ लोग सफल हो गए हैं, कुछ लोग असफल हो गए हैं, यह दूसरी बात है। हम सारे लोग इस कमरे में दौड़ने की कोशिश करें और हमारे इस भवन का यह नियम हो कि जो प्रथम आ जाएगा वह सर्वश्रेष्ठ होगा। हम सारे लोग दौड़ेंगे, लेकिन प्रथम तो एक ही आ सकता है। जो आ जाएगा वह जिम्मेवार है प्रथम आने के लिए या कि वह व्यवस्था जो कहती है कि प्रथम आना श्रेयस्कर है, वह व्यवस्था जिम्मेवार है? जो नहीं आ सके उनका कोई बड़ा पुण्य कर्म है कि वे नहीं आ सके? उन्होंने भी दौड़ने की पूरी कोशिश की है जी जान से। वे नहीं आ सके यह दूसरी बात है। जिनके पास धन है, जिनके पास धन नहीं है उन दोनों की दौड़ समान है। दोनों धनाकांक्षी हैं-- धनाढय भी, धनहीन भी--दोनों धनाकांक्षी हैं।
धनाकांक्षा का यह जो समाज है वह जिम्मेवार है। धनपति जिम्मेवार नहीं
है पूंजीवाद के लिए, पूंजीवाद जिम्मेवार है धनपति को पैदा करने के लिए। हमारी जो चिंतना है पूंजी को संगृहीत करने की, हमारा जो विचार है कि पूंजी को उपलब्ध कर लेना, पूंजी का मालिक हो जाना, पूंजी पर कब्जा कर लेना, श्रेयस्कर है जीवन में। यह जो हमारी पूरी व्यवस्था है... फिर जो आदमी पूंजी को उपलब्ध कर लेता है, उसे हम देते हैं सम्मान। बड़े मजे की बात है, दरिद्र भी उसे सम्मान देता है जो पूंजी उपलब्ध कर लेता है। दरिद्र भी हाथ बंटा

रहा है पूंजी के सम्मान में। दरिद्र पूरा आदर देता है उसे जो जीत जाता है। दरिद्र खुद उसे अपमानित करता है जो उससे दरिद्र है। वह उसको स्वीकार नहीं करता। सम्राट सम्राटों से मिलते हैं, पूंजीपति पूंजीपतियों से मिलते हैं, चमार चमारों से मिलते हैं। चमार भी भंगी से मिलना पसंद नहीं करते। वह नीचे उनका और भी ज्यादा दरिद्र है। उससे मिलने को वह भी राजी नहीं है। वे उसके साथ भी चाहते हैं कि रास्ते पर नमस्कार वह उन्हें करे।
पूरे समाज की मनोवृत्ति धनाकांक्षी है, पूरे समाज का चित्त पूंजीवादी है। गरीब का भी, भिखमंगे का भी, सम्राट का भी, धनपति का भी, इसमें धनपति को जिम्मा देने की जरूरत नहीं है। हम सब जिम्मेवार हैं, हम इकट्ठे जिम्मेवार हैं। निकृष्टतम, दरिद्रतम और श्रेष्ठतम और धनवान, हम सब इकट्ठे जिम्मेवार हैं इस समाज को निर्मित करने में। और इसलिए यह बात गलत है कि कोई कहे कि पूंजीपति जिम्मेवार है। पूंजीपति भी उसी व्यवस्था की पैदावार है, जिस व्यवस्था की पैदावार गरीब है। वे दोनों एक ही व्यवस्था से उत्पन्न हुए। और गरीब भी पूंजीवाद को जमाए रखने में उतना ही सहयोगी है जितना अमीर। पूंजीवाद जिस दिन जाएगा उस दिन अमीरी ही नहीं जाएगी, गरीबी भी चली जाएगी। पूंजीवाद के जाने के साथ ही गरीब-अमीर दोनों चले जाएंगे। वे दोनों पूंजीवाद के हिस्से हैं। उसमें गरीब उतना ही जिम्मेवार है। यह हमें कभी- कभी दिखाई नहीं पड़ता है। हमें यह दिखाई पड़ता है कि एक ताकतवर आदमी एक कमजोर आदमी की छाती पर पैर रख कर खड़ा हो गया है, तो हम कहते हैं, यह ताकतवर आदमी बुराई कर रहा है। लेकिन हम नहीं जानते कि कमजोर आदमी बुराई क्यों करने दे रहा है? दोनों जिम्मेवार हैं। वह कमजोर है, और वह सहने को राजी है किसी को छाती पर। तो छाती पर पैर रखने वाला जितना जिम्मेवार है इस कृत्य में, छाती पर जिसने पैर रखने दिया है, वह भी उतना ही जिम्मेवार है। कमजोर हमेशा से उतने ही जिम्मेवार हैं जितने ताकतवर। कायर हमेशा से उतने ही जिम्मेवार हैं जितने बहादुर। हम कहते हैं कि हमारे ऊपर मुसलमान आए और उन्होंने हमें गुलाम बना लिया, मुसलमान जिम्मेवार है। और आप जिम्मेवार नहीं हैं जो गुलाम बने? गुलाम उतना ही जिम्मेवार है जितना गुलाम बनाने वाला। और जब तक गुलाम ऐसा सोचता है कि गुलाम बनाने वाले जिम्मेवार हैं, तब तक वह बिल्कुल गलत बात सोचता है। गुलामी दोनों के हाथ के जोड़ का परिणाम है। गुलाम बनाने वाले का और गुलाम बनने वाले का। और जब तक दुनिया में गुलाम बनने को लोग मौजूद हैं तब तक गुलाम बनाने वाले लोग भी हमेशा मौजूद रहेंगे। यह जिम्मेदारी दोनों तरफ है।
स्त्रियां कहती हैं कि पुरुषों ने हमें दबा लिया है, लेकिन स्त्रियों
को जानना चाहिए कि वे दबने को तैयार हैं और इसलिए पुरुषों ने दबा लिया है, अन्यथा कौन किसको दबा सकता है। कोई किसी को नहीं दबा सकता। लेकिन हम हमेशा यह देखते हैं कि दूसरा जिम्मेवार है। अंग्रेज जिम्मेवार है, हमको गुलाम बना लिया। और तुम चालीस करोड़ नपुंसक क्या करते थे कि अंग्रेज तुम्हें गुलाम बना सके? हम कम से कम मर तो सकते थे--अगर और कुछ नहीं कर सकते थे। मुर्दों को तो गुलाम नहीं बनाया जा सकता था? कम से कम आखिरी रूप में एक ताकत तो आदमी के हाथ में है कि वह मर सकता है, एक च्वाइस तो कम से कम हाथ में है हर आदमी के कि वह आत्महत्या कर सकता है।
मैंने सुना है कि जर्मनी ने हालैंड पर हमला करने का विचार किया। हालैंड तो बहुत समृद्ध मुल्क नहीं है और हालैंड के पास बहुत सुसज्जित सेनाएं भी नहीं हैं। हालैंड के पास बड़ी शक्ति भी नहीं हैं। जर्मनी से जीतने का तो कोई उपाय भी नहीं है उसके पास। लेकिन हालैंड ने तय किया कि चाहे हम मर जाएंगे, लेकिन हम गुलाम नहीं बनेंगे। पर लोगों ने पूछा कि हम करेंगे क्या? कैसे गुलाम नहीं बनेंगे? तो हालैंड का आपको पता होगा, उसकी जमीन नीची है समुद्र की सतह से। समुद्र के चारों तरफ दीवालें और परकोटे उठा कर उसको अपनी जमीन को बचाना पड़ता है। तो हालैंड के एक-एक कम्यून ने, एक-एक गांव की कौंसिल ने यह तय किया कि जिस गांव पर हिटलर का कब्जा हो जाए वह गांव अपनी दीवालें तोड़ दे और समुद्र को गांव के ऊपर आ जाने दे। पूरा गांव डूब जाएगा, हिटलर की फौजें भी डूब जाएंगी। हालैंड को हम पूरा डुबा देंगे समुद्र के नीचे, लेकिन इतिहास यह नहीं कह सकेगा कि हालैंड गुलाम हुआ।

ऐसी कौम को गुलाम बनाना मुश्किल है। क्या करिएगा? आखिर गुलाम बनाने
के लिए आदमी का जिंदा रहना तो जरूरी है? कमजोर आदमी को भी मरने का हक तो है। कमजोर आदमी भी मरना नहीं चाहता, इसलिए गुलाम बनने को राजी होता है और गुलामी में उसका हाथ है। कोई अपने को बचा नहीं सकता। यह जो पूंजी की व्यवस्था है, यह जो शोषण की व्यवस्था है, इसमें गरीब आदमी का हाथ उतना ही है जितना अमीर आदमी का हाथ है। इसमें भिखमंगों का हाथ उतना ही है जितना शहंशाहों का हाथ। यह तो दोनों के जोड़ का फल है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि पूंजीपति का हाथ है। मैं कहता हूं, हम सबका हाथ है। और जब तक हम यह न समझेंगे कि हम सबका हाथ है, तब तक हम इस शोषण की व्यवस्था को नहीं बदल सकेंगे। अगर पूंजीपति का हाथ है तो किसी पूंजीपति को गोली मार दो, तो कोई फर्क पड़ेगा? दूसरा पूंजीपति पैदा हो जाएगा; क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। किसी पूंजीपति को समझा-बुझा कर उसकी संपत्ति बंटवा दो, तो कोई फर्क पड़ेगा? संपत्ति बंट जाएगी, दूसरा पूंजीपति खड़ा हो जाएगा, क्योंकि व्यवस्था काम कर रही है। व्यवस्था काम कर रही है, सिस्टम काम कर रही है, उस सिस्टम से सारी चीजें पैदा हो रही हैं, उस व्यवस्था से पैदा हो रही हैं।
इसलिए जो समाजवादी पूंजीपतियों के प्रति घृणा फैलाते हैं, वे गलत काम करते हैं। वह काम ठीक नहीं है। समाजवाद पूंजीपति के प्रति घृणा नहीं है। समाजवाद पूंजीपति, दरिद्र, धनवान सबको मिटाने का उपाय है। समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में है, पूंजीपति के विरोध में नहीं है। पूंजीपति के विरोध से कुछ प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन है पूंजीवाद से, वह जो कैपिटलिज्म है, वह जो हमारी पूंजी के प्रति निष्ठा है, वह जो हम पूंजी को मनुष्य से ज्यादा मूल्य देते हैं, वह जो हम पूंजी को जीवन का परमात्मा बनाए हुए हैं, वह जो हम पूंजी के लिए ही जीते और मरते हैं--गरीब भी, अमीर भी, यह जो पूंजी का सारा का सारा इंतजाम है--इस पूंजी के केंद्र को तोड़ देना समाजवाद है। समाजवाद गरीब की लड़ाई नहीं है पूंजीपति के खिलाफ। समाजवाद पूंजीपति की, गरीब की, सबकी लड़ाई है पूंजी के खिलाफ; यह समझ लेना जरूरी है और जिस दिन हम यह समझ सकेंगे की पूंजीवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई है, पूंजीपति के खिलाफ नहीं, तो पूंजीपति भी इस लड़ाई में साथी और सहयोगी होगा। समाजवादियों की इस गलत धारणा ने कि हम पूंजीपति के खिलाफ लड़ रहे हैं, समाज को अजीब हालत में पैदा कर दिया है। उन्होंने एक ऐसी हालत पैदा कर दी कि लड़ाई पूंजीपति के खिलाफ है। तो पूंजीपति समाजवाद का नाम सुन कर ही भयभीत होता है। वह सुनता है कि समाजवाद, यानी मेरी दुश्मनी। समाजवाद पूंजीपति की दुश्मनी नहीं है। समाजवाद गरीब से गरीबी छीन लेगा, अमीर से अमीरी छीन लेगा। और गरीब भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता, अमीर भी ठीक अर्थों में नारायण नहीं हो पाता। अमीरनारायण भी तकलीफ में रहता है पूंजी की, गरीबनारायण तकलीफ में रहता है गरीबी की। जिस दिन हम गरीब की गरीबी छीन लेंगे, अमीर की अमीरी छीन लेंगे, उस दिन हम प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य होने का पूरा हक देंगे, उस दिन मनुष्यनारायण का जन्म होगा। न तो समृद्धनारायण की पूजा जरूरत है, न दरिद्रनारायण की पूजा की जरूरत है। पूजा की जरूरत है नारायण की। और नारायण प्रकट नहीं हो पा रहा है, क्योंकि पूजा पूंजी की चल रही है, नारायण की पूजा कैसे हो सकती है? इसलिए मैंने कहा कि मैं उस शब्द को पसंद नहीं करता हूं।

कुछ एक मित्रों ने यह पूछा है कि समाजवाद की, समानता की मैं जो बात करता हूं, क्या उसका यह अर्थ है कि सबकी संपत्ति बिल्कुल समान कर दी जाए? क्या उसका अर्थ है कि सबको तनख्वाहें बिल्कुल बराबर दे दी जाएं? क्या उसका अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को एक सा मकान दे दिया जाए?

नहीं, उसका यह अर्थ नहीं है। उसका यह अर्थ है कि प्रत्येक आदमी को जीवन में विकास का समान अवसर दे दिया जाए। अभी हम पूंजी के इतने प्रभाव में हैं कि जब भी हम समानता की बात सोचते हैं, तो तत्काल हमारे सामने जो पहला सवाल उठता है वह यह है कि बराबर नौकरी, बराबर तनख्वाह, बराबर मकान। यह

पूंजी का प्रभाव है कि तत्काल हमें पूंजी को समान करने का ध्यान आता है, क्योंकि हम पूंजी से प्रभावित हैं, हम पूंजी के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं सकते। हमें मनुष्य का सवाल ही नहीं है, सवाल पूंजी का है। हजारों साल से पूंजी की धारणा के नीचे जीने से, जब भी समाजवाद की दृष्टि उठती है, तो हम समझते हैं पूंजी।
नहीं, सवाल मूलतः यह नहीं है कि सब आदमियों को बराबर-बराबर तनख्वाह मिल जाए। तनख्वाह का मूल्य नहीं है, मूल्य इस बात का है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन का समान अवसर मिल जाए। अब एक घर में एक आदमी मोटा है और एक आदमी दुबला है, तो समान रोटी खिलाने से बड़ी झंझट पैदा हो जाएगी। कि समाजवाद का मतलब यह नहीं है कि सब लोगों को बराबर रोटी खानी पड़ेगी। अब एक मोटा आदमी है, उसकी कम रोटी में जान निकल जाएगी और पतले आदमी को ज्यादा रोटी खिलाने से जान निकल जाएगी। यह मतलब नहीं है। लेकिन प्रत्येक आदमी को जीवन का समान अवसर उपलब्ध हो सके, जीवन के विकास का, परमात्मा तक पहुंचने का, संगीत तक, सत्य तक, धर्म तक, जीवन की सुविधा का समान अवसर मिल सके। और जितने दूर तक यह संभव हो सके, जितने दूर तक यह उचित हो सके, उतने दूर तक वर्गों का फासला निरंतर कम से कम होता चला जाए।
अब हिंदुस्तान में एक आदमी एक रुपया कमा नहीं पा रहा है रोज और दूसरा आदमी रोज पांच लाख रुपये कमा रहा हो। यह फासला! यह घबड़ाने वाला फासला है। यह अमानवीय है, इनह्यूमन है। और हम कहते हैं कि हम धार्मिक लोग हैं! धार्मिक लोग हम होते, तो इतने अमानवीय, इतने अधार्मिक फासले सह सकते थे? लेकिन हमारा धर्म इसमें है कि हम माला फेरते हैं, वह हमारा धर्म है।
अभी एक बहन ने मुझे आकर कहा कि, किसी धार्मिक को वह साथ में लाई होगी, उन्होंने कहा, अरे, ये तो ब्रह्म की कोई बात ही नहीं कर रहे हैं, ये तो सब संसार की ही बातें कर रहे हैं।
ब्रह्म की बातों को लोग समझते हैं धार्मिक हो गए। ब्रह्म की बात कर ली
तो धार्मिक हो गए। धार्मिक ब्रह्म की बात करने से कोई नहीं होता, धार्मिक होता है इस जगत में ब्रह्म को उतारने की संभावना बढ़ाने से। इस जगत में ब्रह्म अवतरित हो। ब्रह्म की बकवास तो ग्रंथों में बहुत लिखी है, परिभाषा बहुत लिखी है और कोई भी मूढ़जन याद कर सकता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है। इसको याद करने में कोई बहुत बुद्धिमानी की जरूरत नहीं है। लेकिन ब्रह्म सत्य हो कहां पाया है। जगत ही सत्य बना हुआ है। ब्रह्म तो बिल्कुल असत्य है। ब्रह्म सत्य हो सकता है, जब हम इस जगत में ब्रह्म के विकास की अधिकतम सुविधा और समान सुविधा जुटा सकेंगे तो ब्रह्म प्रकट हो सकता है। तो ब्रह्म सत्य होगा और जगत मिथ्या होगा। बुद्ध के लिए, महावीर के लिए ब्रह्म सत्य हो गया, जगत मिथ्या हो गया। लेकिन हमारे लिए? हमारे लिए रोटी सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है। हमारे लिए शरीर सत्य है और आत्मा मिथ्या है।
सूत्र रटने से कुछ भी नहीं होगा, बल्कि हम सूत्र रटते ही इसलिए हैं, जिस आदमी को यह पता चल चुका हो कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है, वह रोज सुबह बैठ कर, आंख बंद करके यह कहेगा कि ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या? पता चल गया हो, तो पागल हो गए हो, उसको कहने की जरूरत? एक पुरुष एक कोने में बैठ कर कहे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं, तो सबको शक हो जाएगा कि यह आदमी पुरुष नहीं है। क्या बात का सबूत है! तुम पुरुष हो यह तुम्हें पता है, बात खत्म हो गई। अब इसको रोज-रोज दोहराने की और सत्संग करने की जरूरत नहीं रही समझने जाने के लिए कि मैं पुरुष हूं या नहीं। जब तक संदेह है तब तक इस तरह की बातों की पुनरुक्ति है। जो लोग सुबह बैठ कर दोहराते हैं ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या, उनको जगत सत्य दिखाई पड़ता है, ब्रह्म मिथ्या दिखाई पड़ता है। इस स्थिति को उलटाने के लिए बेचारे जोर-जोर से रट रहे हैं कि नहीं-नहीं जगत असत्य है, ब्रह्म सत्य है। जो उन्हें दिखाई पड़ रहा है उसको मिटा डालने के लिए, पोंछ डालने के लिए, उलटा कर लेने के लिए ये सारी बातें कर रहे हैं। इन बातों से ब्रह्मज्ञान का कोई संबंध नहीं है। ब्रह्मज्ञान का संबंध ब्रह्म की चर्चा से नहीं, इस जगत में ब्रह्म की कैसे अवतारणा हो, कैसे डिसेंड हो सके वह जो डिवाइन है, वह जो दिव्य है, वह

कैसे इस पृथ्वी पर आ सके, अधिकतम प्राणों में कैसे आकर वह स्पर्श कर सके, अधिकतम प्राणों में कैसे उसका संगीत गूंज सके। लेकिन जिन प्राणों को शरीर से ही मुक्त होने का उपाय न मिलता हो, उन प्राणों में ब्रह्म के अवतरण की संभावना कहां?
इसलिए मैं कहता हूं कि समाजवाद आने पर जगत में ब्रह्मवाद आने के द्वार खुल जाएंगे। अब तक दुनिया में व्यक्ति हो सके हैं ब्रह्मवादी, समाज नहीं हो सका। अरबों-खरबों व्यक्तियों में अगर एकाध व्यक्ति ब्रह्मवादी हो जाता है, इसका मूल्य कितना हो सकता है? अगर हम इतिहास उठा कर देखें दस हजार वर्ष का, तो हम दस-पच्चीस नाम गिना सकेंगे मुश्किल से कि ये ब्रह्मवादी हैं। कितने अरबों लोग पैदा हुए, कितने अरबों लोग मरे, कितने अरबों लोग जीए, कितने अरबों लोग समाप्त हुए, वे सब कहां गए? वे ब्रह्मवादी नहीं हो पाए? दस-पांच लोग ब्रह्मवादी हुए! यह सफलता की बात है?
एक माली एक करोड़ पौधे लगाए और एक पौधे में फूल आ जाए, तो हम माली की प्रशंसा करेंगे? हम कहेंगे कि धन्य हो माली, बड़े कुशल हो, बड़े कारीगर हो, बड़े महान हो। माली के कारण नहीं आए, इंस्पाइट ऑफ, उसके बावजूद आ गए होंगे। करोड़-करोड़ लोग पैदा हों और एक आदमी शंकर हो जाए, करोड़-करोड़ लोग पैदा हों और एक आदमी जीसस हो जाए, यह कथा कोई सौभाग्यपूर्ण है? नहीं, होना उलटा चाहिए। करोड़-करोड़ लोग पैदा हों, कभी एकाध आदमी अधार्मिक हो पाए, तो हम समझेंगे कि पृथ्वी ब्रह्म की तरफ जा रही है। लेकिन हम अपने देश में यह भ्रम लिए हुए बैठे हैं कि हम सब धार्मिक लोग हैं। धार्मिक लोग हैं और इतने फासले हैं जीवन में! नहीं मैं यह कहता हूं कि सारे फासले आज टूट सकते हैं। लेकिन, लंबे अर्थों में, आदर्श की भांति एक दिन सारे फासले भी टूट सकते हैं। लेकिन आज फासले हम जितने कम कर सकें, सुविधा और अवसर को जितना बांट सकें उतना मनुष्यता का पुनरुत्थान होगा, उतनी मनुष्यता परमात्मा की और उठ सकती है।
इसलिए जो बातें मैं कर रहा हूं, कोई भूल कर यह न समझे कि मैं संसार की बातें कर रहा हूं। संसार की बात करने की मुझे सुविधा नहीं है, फुर्सत नहीं है। मैं जो बात कर रहा हूं वह धर्म की ही बात कर रहा हूं, मैं जो बात कर रहा हूं वह ब्रह्मज्ञान की ही बात कर रहा हूं, कोई संसार की बात मुझे करने की रुचि नहीं है। और जो संसार है ही नहीं उसकी बात की भी कैसे जा सकती है? ब्रह्म ही है, उसी की बात की जा सकती है। और ब्रह्म बड़ी मुश्किल में पड़ा है और पूंजीवाद ने ब्रह्म को बहुत झंझट में डाला हुआ है। इस पूंजीवाद से ब्रह्म का छुटकारा होना जरूरी है।
यह जो हमारी दृष्टि अगर रहे कि नहीं-नहीं, संसार असार है, उसकी बात नहीं करनी है। यह बात पूंजीवाद के बहुत पक्ष में है। पूंजीवाद चाहता है कि साधु-संत यही समझाते रहे कि संसार असार है, संसार असार है, इसमें कुछ भी मतलब नहीं है। गरीबी? अरे सह लो, इसमें कुछ सार नहीं है, गरीबी-अमीरी सब बराबर है। भूख सह लो, अकाल सह लो, दरिद्रता सह लो, संतोष रखो, सांत्वना रखो, यह सब सपना है। पूंजीवाद पसंद करता है कि ये बातें, यह जहर, यह पाय.जन लोगों के दिमाग में डाला जाता रहे कि यह सब तो असार है, इसकी फिकर ही मत करो।
एक आदमी आपको लूट रहा है और एक ज्ञानी आपको समझा रहा है कि घबड़ाओ मत; लूटते रहो, यह सब असार है। लेकिन वह लूटने वाला बिल्कुल नहीं सुनता, वह लूटता चला जाता है, उसे असार से कोई फर्क नहीं पड़ता। यह लुटने वाला सुन लेता है कि असार है और खड़ा रह जाता है। यह लुटता है। वह लूटने वाला प्रसन्न होता है। लूट में से थोड़ा हिस्सा वह ज्ञानी को भी देता है। क्योंकि वह जानता है। यह आपको पता है? वह लूट में से थोड़ा हिस्सा उसको देता है।
सारे पंडित, सारे ज्ञानी, सारे साधु-संन्यासी उस लूट में हिस्सेदार होते हैं और उस हिस्से में होने की वजह से वे बेचारे निरंतर यह कहते रहते हैं--सब असार है, सब असार है, कोई सार नहीं है, यह सब माया है, यह सब सपना है, यह सब सपना है। यह सपना है जो चारों तरफ चल रहा है? और अगर यह सपना है, तो ज्ञानी छोड़ कर क्या भागता है? अगर पत्नी सपना है, तो पत्नी से भागने की जरूरत? और धन अगर सपना है, तो धन से भागने की जरूरत? और अगर जीवन सपना है,

तो त्याग किसका करते हो? सपनों के त्याग किए जा सकते हैं? नहीं, लेकिन छोड़ने और भागने के लिए ज्ञानी मानता है कि सपना नहीं है।
लेकिन यह जो चल रही है समाज की व्यवस्था, यह जो समाज की सनातन व्यवस्था चल रही है यह न बदल जाए, इसके बदलने की बात करो, वह कहेगा, कहां संसार की और माया की बात करते हैं। उसे पता नहीं कि माया और संसार को उसकी बातें सुरक्षा दे रही हैं। इस माया और संसार को तोड़ा जा सकता है, इस पृथ्वी को परमात्मा की खोज का एक अपूर्व अवसर बनाया जा सकता है। लेकिन आज तक मनुष्य ने जो समाज निर्मित किया है उस समाज में अधिकतम लोगों की जीवन-ऊर्जा रोटी जुटाने में, शरीर की व्यवस्था करने में ही नष्ट हो जाती है, वह कभी भी इसके ऊपर नहीं उठ पाती है, इसके बियांड, इसके अतीत नहीं जा पाती। एक ऐसा समाज चाहिए संपत्तिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समृद्धिशाली, एक ऐसा समाज चाहिए समान अवसर वाला, एक ऐसा समाज चाहिए जहां पूंजी केंद्र न हो, परमात्मा केंद्र हो, जहां हम जीवन को जीएं सिर्फ इसलिए कि जीवन और ऊपर जा सके। एक वैसा समाज जिस दिन दुनिया में होगा, उस दिन धर्म का जन्म होगा, उस दिन ब्रह्म हमारे निकट आ सकेगा। अभी शरीर के अतिरिक्त, पदार्थ के अतिरिक्त हमारे निकट कुछ भी नहीं है।
एक अंतिम प्रश्न, फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक बहन ने पूछा हैः बहुत ही मजेदार बात पूछी है, उन्होंने पूछा है कि शिविरों में, अभी अखबारों ने कुछ फोटो छाप दिए, एक बहन मेरे गले से आकर लगी हुई है, अखबारों ने फोटो छाप दिया। उन्होंने वह फोटो देख लिया होगा। तो उन्होंने मुझसे पूछा है कि शिविर में आप स्त्रियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार करते हैं। गांधी जी ने तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी भी नहीं किया।

अगर स्त्रियों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना दुर्व्यवहार है, तो मैं जरूर दुर्व्यवहार करता हूं। अब तक साधु-संत स्त्रियों के साथ घृणा का व्यवहार करते रहे हैं, इसलिए वही सदव्यवहार हमें मालूम होने लगा है। साधु- संतों ने आज तक स्त्री को मनुष्य होने की हैसियत नहीं दी है। साधु-संतों ने उसे नरक का द्वार समझा है, साधु-संतों ने उसे कीड़े-मकोड़ों से बदतर बताया है। साधु-संतों ने उसे सांप-बिच्छुओं से खतरनाक समझाया है। साधु-संतों का अगर वह पैर भी छू ले, तो साधु-संत अपवित्र हो जाते हैं और उन्हें उपवास करके पश्चात्ताप करना पड़ता है। और ये साधु-संत स्त्री से ही पैदा होते हैं। इनकी सारी देह स्त्री से ही निर्मित होती है। इनका खून स्त्री का, इनकी हड्डी स्त्री की, इनके जीवन की सारी ऊर्जा स्त्री से आती है और वही स्त्री नरक का द्वार हो जाती है!
मनुष्य-जाति जब तक स्त्रियों के साथ ऐसा असम्मानपूर्ण और ऐसा मूढ़तापूर्ण व्यवहार करेगी, तब तक मनुष्य-जाति के जीवन में कोई ऊर्ध्वगमन नहीं हो सकता है। स्त्री के साथ दुर्व्यवहार अब तक रहा है और उस दुर्व्यवहार का कारण? उस दुर्व्यवहार का कारण स्त्री की कोई खराबी नहीं है। क्योंकि जिन बातों के कारण स्त्री को आप दोष देते हैं, आप उन बातों में स्त्री के सहयोगी नहीं हैं? यह बड़े मजे की बात है! पुरुष नरक का द्वार नहीं है? स्त्री अकेली दुनिया में कामवासना ले आती है, पुरुष नहीं? सच्चाई उलटी है। स्त्री इतनी कामुक कभी भी नहीं है, जितने पुरुष कामुक हैं। और स्त्री की कामवासना को अगर न जगाया जाए, तो स्त्री कामवासना के लिए बहुत आतुर भी नहीं होती। और सारी स्त्रियां जानती हैं कि कामवासना में कौन उन्हें रोज घसीटता है--उनका पति या वे स्वयं! कौन उन्हें घसीटता है? पुरुष चौबीस घंटे सेक्सुअल है। प्रतिदिन सेक्सुअल है, लेकिन दोष है स्त्री का। वह उन्हें नरक ले जाती है।
यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि स्त्री तो पुरुष पर कोई बलात्कार नहीं
कर सकती है, स्त्री तो पैसिव है, स्त्री तो निष्क्रिय है, वह कोई हमला तो कर नहीं सकती पुरुष पर। पुरुष हमला कर सकता है। जो निष्क्रिय है उसको नरक का द्वार कहता है और जो सक्रिय है वासना में, अपने को शायद स्वर्ग का द्वार समझता होगा। स्त्री को दी गईं ये गालियां, यह अपमान, ये अशोभन शब्द अब तक

सदव्यवहार समझे गए हैं। और स्त्रियां इतनी मूढ़ हैं कि पुरुष की इन मूर्खतापूर्ण बातों में सहयोगी रहीं और उन्होंने साथ दिया है। उन्होंने कोई इनकार नहीं किया, उन्होंने कोई बगावत नहीं की, उन्होंने कोई विद्रोह नहीं किया। उन्होंने नहीं कहा कि यह तुम क्या कह रहे हो। उसे सह लिया उन्होंने चुपचाप। उसको उन्होंने मान लिया है चुपचाप। क्योंकि उनका न कोई अपना गुरु है, न उनका अपना कोई शास्त्र है, न उनका अपना कोई धर्म है। वे सब पुरुषों के निर्मित हैं, वे पुरुषों के पक्ष में लिखे गए हैं। वे पुरुषों ने लिखे हैं, अपने पक्ष में लिखे हैं। पुरुषों ने अपने ग्रंथों में लिख लिया है कि अगर पति मर जाए तो स्त्री को सती होना चाहिए, लेकिन किसी पति को भी कभी सती होना चाहिए, यह बात उन्होंने नहीं लिखी। स्वभावतः वर्गीय दृष्टिकोण है, वह पुरुष का अपना दृष्टिकोण है। वैसा उसने लिख लिया है। साधु और संन्यासी स्त्री के प्रति क्यों इतना दुर्व्यवहारपूर्ण रहा है? उसका एकमात्र मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि साधु और संन्यासी को, भीतर उसकी कामना की स्त्री बहुत पीड़ित और परेशान करती है। उसके भीतर स्त्री घूमती है। वह बेचारा परमात्मा को बुलाना चाहता है। जब भी परमात्मा को बुलाता है तभी पत्नी आ जाती है। वह जब भी राम-राम, राम-राम जपता है तभी भीतर काम-काम, कामवासना-कामवासना चलती है। वह घबड़ाया हुआ है भीतर की स्त्री से। वह उस भीतर की स्त्री से परेशान है, उसके बदले में वह स्त्री को गाली देता है, उसके बदले में बाहर की स्त्री से भयभीत होता है कि बाहर की स्त्री ने अगर हाथ छू दिया, तो मरे, जान निकल गई, क्योंकि भीतर जो स्त्री बैठी है वह जग जाएगी, वह खड़ी हो जाएगी।
बाहर की स्त्री के हाथ में ऐसा क्या है जिसे छू देने से किसी संन्यासी में कुछ अपवित्र हो जाएगा? और संन्यासी के शरीर में ऐसा कुछ क्या है जो स्त्री के शरीर से ज्यादा पवित्र है और छूने से अपवित्र हो सकता है? शरीर में क्या है? इतना भय क्या है? इतना भय स्त्री का भय नहीं, अपने भीतर छिपी हुई सेक्सुअलिटी का, कामवासना का भय है।
इसलिए संन्यासी भागता रहा है, घबड़ाता रहा है, दूर-दूर भागता रहा है। स्त्री छू ले तो पाप, स्त्री छू ले तो अपवित्रता। और इसको बाकी पुरुष बहुत आदर देते रहे हैं क्योंकि बाकी पुरुषों का मन स्त्री को छूने के लिए लालायित है। वे देखते हैं कि एक आदमी स्त्री को नहीं छूता है, दूर-दूर भागता है, वे कहते हैंः है महापुरुष, है तपस्वी, क्योंकि हमारा तो मन नहीं मानता बिना छुए हुए। हमारा मन होता है कि छुएं-छुएं-छुएं। किसी तरह रोकते हैं, संस्कार, शिष्टाचार, सब तरह से अपने को सम्हालते हैं, लेकिन मौका मिल जाए, भीड़ मिल जाए, मंदिर हो, मस्जिद हो, गिरजा हो, तो थोड़ा-बहुत धक्का दे ही देते हैं, वह दूसरी बात है। लेकिन सामने शिष्टाचार रखते हैं, दूर-दूर बच कर चलते हैं।
इतना बच कर चलना सबूत किस बात का है? इतना बच कर चलना छूने की इच्छा का सबूत है और किसी बात का सबूत नहीं है। इतनी घबड़ाहट, सबूत किस बात का है? तो बाकी पुरुष देखता है कि यह है संन्यासी, यह महाराज। ये स्त्री को छूने नहीं देते, दूर से ही चिल्लाते हैं, दूर-दूर, दूर-दूर, दस कदम दूर रहना। अभी मैंने सुना कि एक महाराज को यहां बंबई में किसी स्त्री ने छू दिया, तो उन्होंने तीन दिन का उपवास किया। और उससे उनकी इज्जत बहुत बढ़ी। क्योंकि कामवासना से भरे हुए समाज में ऐसे ही लोगों की इज्जत हो सकती है। कामवासना से भरे हुए समाज में ऐसे ही लोगों की इज्जत हो सकती है। क्योंकि हम कामवासना से भरे हैं, हमें लगता है कितना महान त्याग किया कि एक स्त्री ने छुआ और उन्होंने इनकार कर दिया कि नहीं छूने देंगे। यह हमारी सेक्सुअल मेंटेलिटी का सबूत है। और इसको अगर सदव्यवहार समझते हैं, तो मैं स्त्रियों के साथ ऐसा सदव्यवहार करने से इनकार करता हूं। लेकिन बड़े मजे की बात है, बड़ी आश्चर्य की कि एक बहन ने पूछा है, किसी पुरुष ने पूछा होता तो मेरी समझ में आ सकता था। यह बहन बड़ी मर्दानी होगी। इसकी बुद्धि पुरुषों से निर्मित होगी।
वह कैंप में जो बहन मेरे आकर हृदय से लग गई, उस क्षण में उसकी प्रार्थना, उसका प्रेम, उसका आनंद, उसकी पवित्रता अदभुत थी, अन्यथा हजार

लोगों के सामने वह मेरे हृदय से आकर जुड़ जाने की हिम्मत भी नहीं कर सकती थी। उसका पति बगल में खड़ा था, वह घबड़ाता रहा। अभी उनके पति मुझे मिले और कहने लगे, मैंने इससे पूछा कि पागल तूने यह क्या किया? उसने कहा कि मुझे तो पता ही नहीं था। यह तो जब मैं अलग हट गई तब मुझे खयाल आया कि लोग क्या सोचेंगे, लेकिन उस क्षण में मुझे सोच-विचार भी न था। उस क्षण मुझे लगा कि कोई दूर की पुकार मुझे खींच रही है और मैं पास चली गई। उसी स्त्री को मैं धक्का दे दूं इस खयाल से कि कोई अखबार का रिपोर्टर फोटो न उतार ले। उसे कह दूं कि नहीं दूर। उसे दूर कह कर मैं सिर्फ इतना सिद्ध करूंगा कि मेरे भीतर भी वासना उद्दाम वेग से खड़ी है, अन्यथा भय क्या है? अन्यथा डर क्या है? अन्यथा चिंता क्या है? वह स्त्री कहीं कोई एकांत अंधेरे कोने में मुझसे गले आकर नहीं मिली थी। हजार लोग चारों तरफ खड़े थे, वहां फोटो उतारी जा रही थी। मुझमें भी थोड़ी बुद्धि तो है। लेकिन इस निर्बुद्धि समाज के सामने ऐसा लगता है कि चाहे कुछ भी सहना पड़े, जो ठीक है, जो सही है--चाहे अनादर सहना पड़े, चाहे अपमान सहना पड़े--जो ठीक है, सही है वही करना है, वही किए चले जाना है। मुझे नहीं लगता कि कोई पुरुष मेरे पास प्रेम से आकर जब गले मिलता है तो उसे मैं नहीं रोकता, तो एक स्त्री को मैं कैसे रोक सकता हूं। जब कोई पुरुष को मैं नहीं रोकता तो स्त्री को कैसे रोक सकता हूं। और स्त्री और पुरुष के बीच इतना फासला करने की जरूरत क्या है? प्रयोजन क्या है? क्या हमें शरीर के अतिरिक्त कभी कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता? वह जिस फोटोग्राफर ने चित्र उतारा होगा और जिस संपादक ने छापा होगा, वह फोटो मेरे और उस स्त्री के बाबत कम, उस फोटोग्राफर और संपादक के संबंध में ज्यादा बताते हैं। उसकी बुद्धि वहीं अटकी रही, उस घंटे भर के ध्यान के बाद उसे यही दिखाई पड़ा, इतना ही दिखाई पड़ा!
उन बहन ने यह भी पूछा है कि गांधी जी तो ऐसा दुर्व्यवहार कभी स्त्रियों के साथ नहीं करते थे। तो शायद बहन को गांधी जी का कुछ पता नहीं। गांधी जी इस दुर्व्यवहार को शुरू करने वाले महापुरुष हैं। हिंदुस्तान में गांधी ने पहली बार स्त्री को सम्मान दिया है। हिंदुस्तान के महापुरुषों में स्त्री को सम्मान देने वाले गांधी के मुकाबले सिवाय महावीर को और कृष्ण को छोड़ कर और कोई भी नहीं है। बुद्ध भी नहीं। बुद्ध तक भयभीत हो गए इस बात से जब स्त्रियों ने आकर कहा कि हमें भिक्षुणी बना लो, तो बुद्ध ने कहा कि नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। बुद्ध भयभीत हो गए इस बात से कि स्त्रियां अगर भिक्षुणी बनेंगी और भिक्षुओं के साथ रहेंगी, तो खतरा है।
महावीर ने जरूर कोई चिंता नहीं की, बात ही नहीं की, स्त्रियों को भिक्षुणी बनाया। और हैरान होंगे जान कर आप कि महावीर के भिक्षु थे केवल बारह हजार और भिक्षुणियां थीं चालीस हजार। न मालूम कितने लोगों ने महावीर पर एतराज किया होगा कि चालीस हजार स्त्रियों से घिरा हुआ है यह आदमी। जरूर एतराज किया होगा, क्योंकि आदमी सदा आप ही जैसे हमेशा से थे। आपसे बदतर। क्राइस्ट पर लोगों ने शक किया कि मेरी मेग्दलीन नाम की वेश्या इसके चरणों में आकर चरण छूती है। लोगों ने कहा कि नहीं इस स्त्री को चरण मत छूने दो। क्राइस्ट ने कहाः लेकिन स्त्री का पाप क्या है कि चरण न छुए? लोगों ने कहाः स्त्री थी तो भी ठीक, यह वेश्या है। क्राइस्ट ने कहाः वेश्या मेरे पास नहीं आएगी तो कहां जाएगी? और अगर मैं वेश्या को इनकार कर दूंगा, तो फिर वेश्या के लिए उपाय क्या है? मार्ग क्या है?
विवेकानंद हिंदुस्तान लौटे, निवेदिता साथ आ गई, और बस हिंदुस्तान का दिमाग फिर गया। और सारे बंगाल में बदनामी फैल गई कि यह स्वामी और संन्यासी और यह निवेदिता कैसे साथ? निवेदिता की पवित्रता को, निवेदिता के प्रेम को किसी ने भी नहीं देखा! आज जो सारी दुनिया में विवेकानंद का काम फैला हुआ दिखाई पड़ता है, उसमें विवेकानंद का हाथ कम निवेदिता का हाथ ज्यादा है। निवेदिता भी दंग रह गई होगी। कैसे ओछे लोग थे! कैसी छोटी बुद्धि थी! इतना ही उन्हें दिखाई पड़ा! विवेकानंद को इतना ही समझ पाए वे सिर्फ!
गांधी ने तो बहुत हिम्मत की। स्त्रियों को गांधी हिंदुस्तान के घरों
से पहली दफे बाहर लाए। स्त्रियों को पुरुषों के साथ खड़ा किया। आपको शायद

पता नहीं होगा, वह मेरी ही फोटो छप गई, ऐसा नहीं, मैंने सुना है कि गांधी की एक फोटो यूरोप और अमरीका में खूब प्रचारित की गई थी। एक फोटो तो उनकी वह प्रचारित की गई, जिसमें वे अपने ही घर की बच्चियों की, जो उनकी नातनी- पोतनियां होंगी, उनके कंधों पर हाथ रखे हुए दिखाए गए हैं। वह फोटो प्रचारित की गई कि यह गांधी बुढ़ापे में भी छोकरियों के साथ रास-रंग करता है। शायद उन बहन को पता नहीं होगा कि वह फोटो जिसमें वे लड़कियों के कंघे पर हाथ रख कर घूमने जाते हैं या प्रार्थना में जाते हैं। तो यह बताया गया है कि यह बुड्ढा हो गया, अभी लेकिन इसका लड़कियों में रस है, लड़कियों के कंधों पर हाथ रख कर चलता है। और पूछने वाला पूछ सकता है कि लड़कियों के कंधे पर क्यों लड़कों के कंधों पर क्यों नहीं? बिल्कुल ठीक! लेकिन उसे पता नहीं कि गांधी को लड़के और लड़कियों में कोई भी फर्क नहीं भी हो सकता है।
यह मत सोचना कि वह फोटो मेरा ही छाप दिया, वह फोटो हमेशा से छापने वाले लोग रहे हैं और रहेंगे। अपनी बुद्धि के अनुकूल ही वे कुछ कर सकते हैं, उससे ज्यादा करने का उपाय भी तो नहीं है। उन पर नाराज होने का कोई कारण भी तो नहीं है। और शायद उन बहन को पता नहीं होगा कि गांधी अपनी अंतिम उम्र में, बुढ़ापे में, एक बीस वर्ष की नग्न युवती को लेकर छह महीने तक बिस्तर पर सोते रहे। तब उनको पता चलेगा। इतना दुर्व्यवहार अभी मैंने किसी स्त्री से नहीं किया है। छह महीने तक एक नग्न युवती के साथ गांधी बिस्तर पर सोते रहे। किसलिए? इस बात की जांच के लिए कि क्या मन के किसी कोने-कातर में, मन के किसी भी अंधकारपूर्ण कोने में स्त्री की कोई वासना तो शेष नहीं रह गई? जो रात में नग्न स्त्री को अकेले में, एकांत में पाकर, बिस्तर पर साथ पाकर जाग आए, तो मैं परीक्षा कर लूं उससे, उससे मुक्त होने का कोई उपाय कर लूं। और उस स्त्री की पवित्रता की कल्पना करते हैं जो छह महीने तक गांधी के साथ नग्न सो सकी। और उसने पीछे कहा कि गांधी के साथ सो कर मुझे छह महीने में ऐसा लगा--गांधी जैसे मेरी मां हैं।
जल्दी नतीजे लेना ठीक नहीं है। जिंदगी बहुत गहरी है और बहुत समझने को है। जहां हम खड़े हैं जिंदगी वहीं नहीं है, जिंदगी और आगे है। हम मिट्टी के दीये हैं, जिंदगी की ज्योति मिट्टी के दीये से बहुत ऊपर जाती है। जिनको ऊपर की ज्योति नहीं दिखाई पड़ती उन्हें सिर्फ मिट्टी के दीये दिखाई पड़ते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
पांचवां प्रवचन

अतीत के मरघट से मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!
आज ही एक पत्र में मुझे स्वामी आनंद का एक वक्तव्य पढ़ने को मिला। और बहुत आश्चर्य भी हुआ, बहुत हैरानी भी हुई। स्वामी आनंद से किसी ने पूछा कि मैं जो कुछ गांधी जी के संबंध में कह रहा हूं उसके संबंध में आपके क्या खयाल हैं? स्वामी आनंद ने तत्काल कहाः उस संबंध में मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं। शिष्टाचार वश शायद उनके मुंह से ऐसा निकल गया होगा, क्योंकि यह कहने के बाद वे रुके नहीं और जो कहना था वह कहा। ऊपर से ही कह दिया होगा कि कुछ नहीं कहना चाहता हूं, लेकिन भीतर आग उबल रही होगी वह पीछे से निकल आई, इससे रुकी नहीं। आश्चर्य लगा मुझे कि पहले कहते हैं कि कुछ भी नहीं कहना चाहता हूं और फिर जो कहते हैं! आदमी ऐसा ही झूठा और प्रवंचक है। शब्दों में कुछ है, भीतर कुछ है। कहता कुछ है, कहना कुछ और चाहता है। उन्होंने जो कहा वह और भी हैरानी का है।
स्वामी आनंद तो मुझसे भलीभांति परिचित हैं। लेकिन, ऐसी जानकारी भी उनकी होगी, यह मुझे पता नहीं था। उन्होंने कहा कि नहीं कुछ कहना चाहता हूं, और फिर कहा कि अगर एक कौआ मस्जिद पर बैठ कर अपने को मुल्ला समझने लगे, तो इसमें कुछ कहने की बात नहीं। स्वामी आनंद से मैं परिचित हूं। लेकिन मुझे इसका परिचय नहीं था कि उनका कौओं से परिचय है। कौवे मस्जिद पर बैठ कर क्या सोचते हैं, स्वामी आनंद किसी जन्म में कौआ न रहे हों, तो उन्हें पता लगाना बहुत मुश्किल है, एकदम कठिन है। जरूर किसी जन्म में कौआ रहे होंगे, किसी मस्जिद के ऊपर बैठ कर मुल्ला होने की सोची होगी। अन्यथा कौवे क्या सोचते हैं, कैसे पता लगा सकते हैं? कौआ की बुद्धि मुल्ला होने से ऊपर जा भी नहीं सकती। कौओं को छोड़ कर शायद ही कोई और मुल्ला होना चाहता हो। जो मुल्ले हैं वे भी कौवों की बुद्धि से ज्यादा बुद्धिमान नहीं होते। और फिर मुल्ला होने का शायद स्वामी आनंद को पता नहीं कि मुल्ला होना कब संभव होता है। जब कोई किसी पंथ को मानता हो, संप्रदाय को मानता हो, वाद को मानता हो, किसी गुरु को मानता हो, तो मुल्ला हो सकता है। न तो मैं किसी पंथ को मानता, न किसी वाद को मानता, न किसी गुरु को मानता, न किसी संप्रदाय को मानता। मेरा मुल्ला होना बिल्कुल मुश्किल है। लेकिन स्वामी आनंद मुल्ला हैं और कहना चाहिए कठमुल्ला हैं।
गांधीवाद को एक धर्म बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधीवाद को एक चर्च बनाने की कोशिश की जा रही है। गांधी स्वयं जिंदगी भर यह चिल्ला कर कहते रहे कि मेरी मूर्तियां मत बना देना, मेरे मंदिर मत बना देना। लेकिन वह साजिश जारी है, उनकी मूर्तियां बनाई जा रही हैं, उनके मंदिर बनाए जा रहे हैं। अभी एक सज्जन ने गांधी-पुराण भी लिख डाला है। और उसमें उन्होंने इस भांति व्यवस्था की है कि जैसे और पुराण हैं, विष्णु-पुराण, वैसा गांधी को अवतार बताने की कोशिश की है। बहुत शीघ्र गांधी के पास एक धर्म खड़ा करने की कोशिश चल रही है। स्मरण रहे, जब भी किसी व्यक्ति के पास धर्म खड़ा हो जाता है, तो व्यक्ति तो मर जाता है, मुल्लाओं और पंडितों की बन आती है। जीसस के पास ईसाई पादरी इकट्ठा है और जीसस की आवाज को दुनिया तक नहीं पहुंचने देता। महावीर के पास महावीर के गणधर इकट्ठे हैं और महावीर की आवाज, सच्ची आवाज, सत्य की आवाज दुनिया तक नहीं पहुंचने देना चाहते। जैसे ही किसी व्यक्ति के आस-पास संगठन बनता है, संप्रदाय बनता है, सत्य की हत्या हो जाती है।
मैंने सुना है, एक बार एक आदमी को सत्य मिल गया था, तो शैतान के शिष्यों ने, वे जो डिसाइपल्स ऑफ डेविल हैं, उन्होंने भाग कर शैतान को अपने गुरु को खबर दी कि पता है, तुम आराम से सो रहे हो, एक आदमी को सत्य मिल गया है और हमारी सल्तनत डगमगाई जा रही है। कुछ करना चाहिए शीघ्रता से। क्योंकि अगर आदमियों को सत्य मिल जाएगा तो शैतान का क्या होगा? शैतान ने कहा कि क्या करोगे, अब सत्य मिल चुका। तुम पहले कहां थे, क्यों मुझे आकर

पहले नहीं कहा, हम पहले ही सत्य मिलने में बाधा डालते। अब तो एक ही रास्ता है, अब तुम जाओ शीघ्रता से गांव-गांव में और डंडे और घंटी लेकर पीटो, गांव-गांव में यह आवाज कि फलां आदमी को सत्य मिल गया है जिनको भी चाहिए हो चलो। शैतान के शिष्यों ने कहाः इससे क्या होगा? शैतान ने कहाः पंडित और मुल्ले सुन लेंगे यह और जहां भी उन्हें पता चला कि किसी आदमी को सत्य मिल गया है, पंडित और मुल्ले वहां जाकर अड्डा जमा लेते हैं और एजेंट बन जाते हैं। जनता और सत्य के बीच में पंडित से बड़ी दीवाल और कोई भी खड़ी नहीं की जा सकती है। तुम जाओ और जल्दी गांव-गांव में खबर कर दो।
और मैंने सुना है कि शैतान के शिष्य गए और उन्होंने गांव-गांव में खबर
कर दी। हजारों लोग वहां से चलने लगे। उस सत्य के खोजी के पास, उसके आस-पास पंडितों की दीवाल खड़ी हो गई। व्याख्याकारों की, टीकाकारों की। वे कहने लगे, क्या चाहते हो, हम बताते हैं। वह आदमी उस भीड़ में दब गया। मंदिर बन गया वहां एक उसकी लाश पर। हजारों लोग पूजा करते हैं उस आदमी की। उसकी किताबें हैं। लेकिन उस आदमी को, जो सत्य मिला था, उसकी कोई किरण किसी तक अभी तक नहीं पहुंच पाई है। दुनिया में सत्य की हत्या का एक ही उपाय है, सत्य की हत्या करना हो तो शीघ्रता से संप्रदाय बना दो। संप्रदाय बना कर सत्य की हत्या हो जाती है। मैं तो मुल्ला नहीं हो सकता, मुश्किल है, क्योंकि मैं किसी संप्रदाय को नहीं मानता हूं। लेकिन स्वामी आनंद मुल्ला हो सकते हैं। गांधी का एक संप्रदाय बनाए हुए हैं। अन्यथा मेरी बातों से इतनी पीड़ा और परेशानी की जरूरत न थी। मेरी बातों का उत्तर दें, मेरी बातों की चर्चा करें। मैं जो कहता हूं वह गलत हो सकता है, उसे गलत बताएं, समझाएं। लेकिन शांति से, इसमें क्रोध की क्या जरूरत है। क्रोध वहां आता है जहां वेस्टेड इंट्रेस्ट हो, जहां न्यस्त कोई स्वार्थ हो, तब क्रोध आता है, अन्यथा क्रोध की क्या जरूरत है? अन्यथा यह चिल्लाने की क्या जरूरत है कि मेरी किताबों को आग लगा दो। यह कहने की क्या जरूरत है कि मुझे आने मत दो, सभा मत होने दो। ये सारी बातें सुन कर मुझे दादा धर्माधिकारी एक घटना सुनाते थे, वह याद आई। वे मुझे कहते थे, मैं पंजाब में था और पंजाब में सरदारों की एक सभा में बड़ा शोरगुल होता था। जहां दादा को बोलने बुलाया था। जो अध्यक्ष थे उन्होंने डंडा उठा कर पटका जोर से टेबल पर और कहाः चुप होते हो कि नहीं, डंडे से सिर तोड़ दूंगा, चुप हो जाओ। वह सभा एकदम चुप हो गई। फिर डंडा बजा कर उन्होंने कहा कि अब सुनो। अब दादा धर्माधिकारी अहिंसा पर भाषण देंगे। तो दादा मुझसे कहते थे, मैंने अपनी खोपड़ी ठोक ली और मैंने कहाः क्या खाक भाषण देंगे अहिंसा पर! डंडा बता कर कहता है वह आदमी कि चुप हो जाओ, नहीं तो खोपड़ी तोड़ देंगे! और फिर अहिंसा पर भाषण होता है! बड़ा सही अहिंसावादी रहा होगा। गांधी की आलोचना करके अहिंसावादियों की असलियत का मुझे भी पहली दफा पता चलना शुरू हुआ है कि उनकी असलियत क्या है! हाथ में उनके भी डंडे हैं और अगर अहिंसा की बात नहीं मानेंगे आप, तो वे डंडे से आपको अहिंसा की बात समझाएंगे।
लेकिन यह देश अब बहुत दिन इस तरह के धोखों में नहीं रखा जा सकता है। बहुत लंबी कथा है इसके धोखों की। बहुत लंबी यात्रा है इसके दुर्भाग्य की। विचार के लिए आज तक इस देश में परिपूर्ण स्वतंत्रता नहीं मिली। इसलिए हम जगत में पिछड़ गए हैं और पीछे पड़ गए हैं। हिंदुस्तान ने कभी भी तीव्र विचार के लिए निमंत्रण नहीं दिया। कभी भी विचारपूर्ण विद्रोह के लिए साहस नहीं दिखाया। नये विचार से भय दिखाया, घबड़ाहट दिखाई। हमेशा उसने यह मानना चाहा कि जो हमारी पुरानी किताब में लिखा हो, वही सही होना चाहिए। पुराने ने कुछ सही होने का ठेका ले लिया है! पुराना ही सत्य होना चाहिए, जैसे कि सत्य को जानने के लिए आगे कोई पैदा ही नहीं होगा। वे सब लोग पीछे पैदा हो चुके जिन्होंने सत्य जाना। अब आगे? आगे लोग व्यर्थ पैदा हो रहे हैं, उन्हें कोई अनुभव नहीं होगा, कोई सत्य नहीं होगा।
यह हमारी प्रवृत्ति कि सब कुछ पीछे हो चुका--सत्य भी हो चुका, स्वर्ण-युग भी हो चुका, सब तीर्थंकर, सब महावीर, सब पैगंबर, सब पीछे हो चुके। अब आगे कुछ होने को नहीं है। इस विचार ने ही कि सब विचार किया जा चुका, अब आगे कुछ विचार करने को नहीं है--भारत ने विचार की हत्या कर दी।

नहीं, बहुत विचार करने को शेष हैं, बहुत नई खोज होने को शेष हैं, बहुत
से सत्यों का उदघाटन होगा, जो नहीं हुआ। बहुत से पर्दे उठेंगे, बहुत से रहस्य उदघाटित होंगे। जीवन समाप्त नहीं हो गया है, जीवन की यात्रा जारी है। लेकिन अगर कोई कौम ऐसा समझ ले कि सब हो चुका, अब उस पर कोई विचार नहीं करना, आगे कुछ नया विचार हो नहीं सकता, तो उस कौम की अगर प्रतिभा नष्ट हो जाए तो इसमें आश्चर्य है!
भारत के पास अदभुत प्रतिभा थी। आज भी प्रतिभा है सोई हुई। लेकिन उसका नया अवतरण, नया विकास, नया ऊर्ध्वगमन उस प्रतिभा का नहीं हो पाता है, क्योंकि हमारी धारणा यह है कि अब नया कुछ होने को नहीं है। जब नया कुछ होने को नहीं है, तो नया नहीं हो सकेगा। क्योंकि हम जो विचार करते हैं, जो धारणा बनाते हैं वैसा ही हमारा जीवन हो जाता है। न तो महावीर पर रुक गए हैं हम, न कृष्ण पर और न गांधी पर रुकने की कोई जरूरत है। जिंदगी रुकना जानती ही नहीं। लेकिन जहां-जहां गुरूडम खड़ी हो जाती है वहीं जीवन की धारा को बांध बना कर रोकने की कोशिश की जाती है कि बस यहीं, अब इससे आगे नहीं।
गांधी रुक जाएंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। मैं रुक जाऊंगा, जीवन तो नहीं रुकेगा। आप रुक जाएंगे, जीवन तो नहीं रुकेगा। यह मोह बिल्कुल पागल मोह है कि मैं रुकूं, उसी के साथ जीवन भी रुक जाए। यह बिल्कुल पागल मोह है, यह बिल्कुल ही विक्षिप्त मोह है। मैं रुक जाऊंगा, ठीक है, लेकिन जीवन तो आगे जाएगा, जीवन नये किनारे छुएगा, जीवन नये मार्ग चुनेगा, जीवन नये अनुभव करेगा। मेरे अनुभवों के साथ जीवन सदा के लिए रुक जाए, यह जरूरी है, यह उचित है, यह योग्य है? मैं कोई जीवन हूं पूरा? व्यक्ति पैदा होते हैं और विलीन हो जाते हैं। समाज सतत चलता रहता है। लेकिन जिन समाजों के मन में यह धारणा बैठ जाती है कि हम रुक जाएं अतीत पर, वे समाज भविष्य की तरफ गति करना बंद कर देते हैं। उनका जीवन स्टैग्नेंट, रुका हुआ, अवरुद्ध हो जाता है। जैसे गंगा रुक जाए, रुका हुआ पानी गंदा हो जाता है। यह भारत का समाज इतना गंदा इसीलिए हो गया है। यह समाज रुका हुआ पानी है। रुके हुए समाज का फिर जीवन आगे तो नहीं बढ़ता। धूप पड़ती है, ताप पड़ता है, सड़ांध आती है, गंदगी बढ़ती है, भाप बन कर पानी उड़ता है और कीचड़ पैदा होती है और कुछ भी नहीं होता। कभी आपने किसी तालाब को सागर तक पहुंचते देखा है? सरिताएं पहुंचती हैं सागर तक। सरिताएं जो कि भागती हैं अज्ञात की तरफ--खोज करती हैं अनजान की, अननोन की। डबरा तालाब का अपने में बंद होकर बैठ जाता है कहीं नहीं जाता, गोल घेरे में घूमता रहता है। अपना वाद का घेरा है, उसी में घूमता रहता है। फिर वह सागर तक भी नहीं पहुंच पाता है। और जो जल सागर तक न पहुंच पाए वह जल कभी भी असीम अनुभव को उपलब्ध नहीं हो पाता।
जीवन भी अनंत तक पहुंचने को है। व्यक्ति आएंगे, महान से महान व्यक्ति आएंगे और विलीन हो जाएंगे और जीवन की धारा आगे बढ़ती रहेगी। कोई महापुरुष अधिकारी नहीं है कि जीवन की धारा को अपने पास रोक ले। लेकिन महापुरुष रोकना भी नहीं चाहते। महापुरुष तो चाहते हैं कि जीवन की धारा आगे बढ़े। लेकिन महापुरुषों के पास जो लघु मानव हैं, छोटे-छोटे मानव इकट्ठे हो जाते हैं, वे जीवन की धारा को रोकने की कोशिश करते हैं। क्योंकि उनकी कीमत तभी तक है जब तक जीवन उनके महापुरुष के पास रुका रहे। अगर जीवन आगे बढ़ गया और महापुरुष भूल गए तो इन दीन-जनों का क्या होगा जो आस-पास बैठ कर दुकान खोले हुए थे, इनका क्या होगा? इनकी दुकान तभी तक चलेगी, जब जीवन इनके महापुरुष की लाश के पास रुका रहे।
भारत ने यह भूल बहुत कर ली है। आगे यह भूल नहीं की जानी है। भारत का सारा का सारा मस्तिष्क अतीतोन्मुख है, पीछे की तरफ देखता है। आगे की तरफ देखता ही नहीं। रूस के बच्चे चांद पर बस्तियां बसाने का विचार करते हैं और भारत के बच्चे? भारत के बच्चे रामलीला देखते हैं! कब तक हम रामलीला देखते रहेंगे? कितनी बार रामलीला देखी जा चुकी है? राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन कितनी बार? क्या हम यही करते रहेंगे? क्या हमारी चेतना एक वर्तुल में घूमती रहेगी? क्या हम आगे नहीं बढ़ेंगे? कोई नई लीलाएं नहीं होंगी जगत में? कोई नये राम पैदा नहीं होंगे? कोई नया कृष्ण नहीं होगा? बस, पीछे और पीछे? भगवान ने बड़ी भूल की है भारत के साथ, उसकी बड़ी कृपा होती अगर वह भारतीयों

की आंखें खोपड़ी में सामने की तरफ न लगा कर पीछे की तरफ लगाता। उससे हमको बड़ी सुविधा होती। उससे हम निरंतर पीछे की तरफ देखने में समर्थ हो जाते। लेकिन भगवान बड़ा नासमझ है। हम उसकी नासमझी को बरदाश्त थोड़े ही करते हैं, हम अपनी खोपड़ी पीछे की तरफ मोड़ कर, पीछे की तरफ देखते चले जाते हैं, अगर कभी भारत ने अपनी कारें बनाईं, अभी तो पश्चिम की नकल करनी पड़ती हैं हर बात में, तो हम कारों का लाइट पीछे की तरफ लगाएंगे, आगे कभी नहीं लगा सकते। क्योंकि आगे की कार तो पश्चिम की कार है, शुद्ध भारतीय कार में पीछे की तरफ लाइट होगा। चलना आगे है वह तो ठीक है, लेकिन देखना तो पीछे है। जहां उड़ती धूल रह जाती है, उसे देखना है। जहां से रथ गुजर गए, उनकी उड़ती धूल देख रहे हैं। राम का रथ निकल चुका, महावीर का रथ निकल चुका, गांधी का रथ निकल चुका। कब तक उस धूल को देखते रहेंगे? कब तक उस धूल को पूजते रहेंगे? आगे नहीं बढ़ना है?
और ध्यान रहे, जीवन जाता है सदा आगे की तरफ। जीवन कभी पीछे की तरफ नहीं लौटता है, नहीं लौट सकता है। कोई मार्ग नहीं है पीछे, पीछे सिर्फ स्मृति है, कोई मार्ग नहीं। पीछे हम याद कर सकते हैं, पीछे जा नहीं सकते। समय में एक क्षण भी तो पीछे नहीं लौटा जा सकता। एक क्षण को भी तो हम पीछे नहीं जा सकते। जो समय का क्षण बीत गया, उसमें अब हम कभी भी नहीं जा सकेंगे, वह सदा को, सदा को बीत गया, उसमें लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। वह सेतु गिर गया, वह मार्ग नष्ट हो गया। वहां हम कभी भी नहीं जा सकते। पास्ट में, अतीत में जाने का कोई द्वार ही नहीं है और जब अतीत में हम जा नहीं सकते, तो हम एक ही काम कर सकते हैं; अतीत की स्मृति कर सकते हैं, याद कर सकते हैं।
लेकिन ध्यान रहे, जितनी हमारी ऊर्जा अतीत की स्मृति में और याद में नष्ट होती है, उतनी ही ऊर्जा भविष्य में जाने के लिए कम पड़ जाती है। जितनी हमारी दृष्टि अतीत से बंध जाती है, उतना ही हम आगे की तरफ देखने में असमर्थ हो जाते हैं। और यह भी ध्यान रहे, चलना आगे है और देखना अगर पीछे रहा, तो गड्ढों में गिरे बिना कोई रास्ता नहीं रहेगा। गड्ढों में गिरना पड़ेगा। भारत सैकड़ों बार गड्ढों में गिरता रहा है। हजार बार गड्ढों में गिरा है। दुर्घटनाओं के सिवाय हमारी लंबी कथा में और क्या है? कितनी गुलामी, कितनी दीनता, कितनी दरिद्रता! लेकिन हमारी आदत पीछे देखने की कायम, बरकरार है। पीछे देखते हैं, आगे चलते हैं। गिरेंगे नहीं तो और क्या होगा?
एक ज्योतिषी यूनान में एथेंस के पास एक गांव से गुजरता था। सांझ थी। चांद उगा होगा आकाश में आज जैसा। वह चांद को देखता था, तारों को देखता था, एक गड्ढे में गिर पड़ा। आकाश की तरफ देख रहा था, जमीन का गड्ढा नहीं दिखाई पड़ा होगा। एक बूढ़ी औरत ने उसे गड्ढे से निकाला। उसके दोनों पैर टूट गए थे। उसने उस बूढ़ी औरत को धन्यवाद दिया और कहा कि मां, बहुत-बहुत धन्यवाद! मैं तेरी क्या सेवा कर सकता हूं? इतना मैं कहता हूं, शायद तुझे पता नहीं होगा, मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। अगर तुझे चांद-तारों के संबंध में कुछ भी जानना हो तो मेरे पास आ जाना।
उस बूढ़ी औरत ने कहाः पागल, मैं तेरे पास चांद-तारों के संबंध में पूछने आऊंगी? जिसे अभी जमीन के गड्ढे नहीं दिखाई पड़ते, उसके चांद-तारों के देखने का कोई भरोसा है? उसका कोई विश्वास किया जा सकता है? पहले बेटे, जमीन के गड्ढे देखने सीखो, फिर आकाश के चांद-तारे देखना। ठीक ही कहा उस बूढ़ी औरत ने। अभी जमीन का गड्ढा न दिखाई पड़ता हो तो चांद-तारों के ज्ञान का भरोसा क्या है?
जिन्हें आगे हाथ भर नहीं दिखाई पड़ता वे हजारों मील पीछे की यात्रा की कथाएं दोहरा रहे हैं। इतिहास की धूल, बीत गए रथों के चक्कों के चिह्न, उन्हीं पर हम रुके हैं। दुर्भाग्य है, इसीलिए दुर्भाग्य है, इसलिए भविष्य में रोज टकरा जाते हैं। इसलिए भविष्य को हम निर्मित नहीं कर पाते। भविष्य का क्षण आ जाता है और हम बिल्कुल ही अनजान, बेहोश खड़े रह जाते हैं। जब क्षण आकर पकड़ लेता है, तब हम चौंक कर खड़े हो जाते हैं। हमारी समझ में नहीं आता क्या करें? हमारे खयाल में नहीं आता। जब तक हम सोच पाते हैं समय बीत जाता है। समय किसकी प्रतीक्षा करता है? समय रुका नहीं रहता, जो उसे पहले से तैयारी करते हैं, वे उस समय का उपयोग कर पाते हैं। जो उसके सामने बैठे रहते हैं, जब समय आ जाता है... हम उस तरह के लोग हैं, घर में आग लग जाती है तब हम

कुआं खोदने बैठ जाते हैं। हम कहते हैं, आग लग गई है, अब कुआं खोदना चाहिए। जब तक हम कुआं खोद पाते हैं, तब तक घर कभी का जल कर राख हो जाता है। घर में आग लगती हो तो कुआं तैयार होना चाहिए, तब आग बुझाई जा सकती है। लेकिन हमें फुर्सत कहां कि हम भविष्य के कुएं निर्मित करें, हमें फुर्सत कहां, हमें ध्यान कहां, हमारी कल्पना नहीं जाती वहां। पीछे और पीछे!
गांधी ने पुनः पीछे की दृष्टि हमें फिर से पकड़ा दी। गांधी कहने लगे, राम-राज्य चाहिए। बड़ी अजीब बात है। राम बहुत प्यारे हैं, लेकिन रामराज्य? रामराज्य बिल्कुल बात दूसरी है। गांधी को राम से बहुत प्रेम था, उचित ही है। राम जैसे व्यक्ति से प्रेम किया जा सकता है। प्रेम भारी रहा होगा। उनके प्राण में, रग-रग में राम भर गए थे। गोली लगी गोडसे की, तो न तो मां की याद आई, न पिता की याद आई, न गांधीवादियों की याद आई। याद आई राम की। राम! प्राणों के प्राण में वह आवाज घुस गई होगी, वह प्रेम घुस गया होगा। गोली प्राणों में पहुंची तो वहां राम के सिवाय कुछ भी नहीं पाया उस समय। राम से उनका बहुत प्रेम था और उसी प्रेम के वश वे रामराज्य की बातें करने लगे। लेकिन, राम से प्रेम ठीक है, रामराज्य से प्रेम खतरनाक बात है।
रामराज्य पूंजीवाद से भी पिछड़ी हुई व्यवस्था है, फ्यूडेलिज्म है, सामंतवाद है। रामराज्य भविष्य की समाज-योजना नहीं है। अतीत, पिछड़े हुए, बीते हुए, जा चुके जीवन की व्यवस्था है। रामराज्य नहीं लाना है हमें, लाना है भविष्य का राज्य। रामराज्य तो बीत गया। एक तो हम लाना भी चाहें तो नहीं ला सकते। और अगर हम ला भी सकते हों तो हमें कभी लाने का विचार भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि रामराज्य तो पिछड़ा हुआ, आज से भी बदतर समाज और जीवन-व्यवस्था है। करोड़ों-करोड़ों गुलाम हैं। स्त्रियों की इज्जत कितनी रही होगी, वह सीता की इज्जत से पता चल जाता है। एक साधारण से आदमी की आवाज से सीता को उठा कर फेंका जा सकता है जंगलों में। साधारण स्त्री की क्या हैसियत रही होगी? स्त्री की यह हैसियत!
रात बहुत प्यारे हैं। और यह ध्यान रहे, कि यह भूल हम हमेशा करते हैं।
हम क्या भूल करते हैं, वह भूल हमें समझ लेनी चाहिए ताकि आगे हम न कर सकें। दो हजार साल बाद न तो मुझे कोई याद रखेगा, न आपको कोई याद रखेगा, लेकिन गांधी याद रह जाएंगे। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, कितना महान व्यक्ति था गांधी, इतने ही महान लोग गांधी के समाज के लोग भी रहे होंगे। हम तो भूल जाएंगे। हमारी तो कोई रूप-रेखा नहीं छूट जाएगी। हमारे तो कोई पदचिह्न कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेंगे। हमारी तो कोई आकृति कहीं नहीं रह जाएगी। कैसे जीते थे हम, किन वासनाओं से भरे हुए, किन क्रोध से, किन घृणाओं से, किन हत्याओं से भरा हमारा जीवन था, वह सब विलीन हो जाएगा, हवा में धुआं हो जाएगा। गांधी की प्रतिमा रह जाएगी। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे, गांधी का समाज कितना अच्छा रहा होगा। गलती बात सोच लेंगे वे।
गांधी हमारे प्रतिनिधि नहीं थे, अपवाद थे, एक्सेप्शन थे। हम गांधी जैसे नहीं हैं। हमारा गांधी से कुछ लेना-देना नहीं है। हम गांधी से बिल्कुल उलटे हैं। लेकिन दो हजार साल बाद जिससे हम बिल्कुल उलटे हैं उसी आदमी से हम जाने जाएंगे। हमारे युग को गांधी-युग कहा जाएगा। हमें कहा जाएगा, गांधी-युग के लोग कैसे अदभुत रहे होंगे। और गांधी के आधार पर तर्क हमारे बाबत अनुमान करेगा, वह अनुमान जितना झूठा होगा उतना ही राम-राज्य के बाबत हमारा अनुमान झूठा है। राम बहुत प्यारे हैं, राम का समाज नहीं। बुद्ध बहुत प्यारे हैं, बुद्ध का समाज नहीं। क्राइस्ट बहुत प्यारे रहे होंगे, क्राइस्ट का समाज नहीं। एक-एक व्यक्तियों के आधार पर पूरे समाज का निर्णय लेने की भूल बहुत हो चुकी, आगे यह भूल नहीं होनी चाहिए। और फिर ध्यान रहे, हमें यह भी समझ लेना जरूरी है, गांधी इतने बड़े महापुरुष दिखाई पड़ते हैं इसीलिए कि गांधी अकेले हैं। अगर दस-पच्चीस हजार गांधी भारत में हों, तो मोहनदास करमचंद गांधी कौन हैं--पहचानना आसान होगा? राम दिखाई पड़ते हैं हजारों साल के बाद इसीलिए कि राम अकेले रहे होंगे। अगर हजार दो हजार राम जैसे सच्चे और अच्छे आदमी होते तो राम की याद रह जाती?
एक स्कूल में शिक्षक काले बोर्ड पर, ब्लैक बोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखता है, सफेद दीवाल पर क्यों नहीं लिखता है? सफेद दीवाल पर लिखेगा तो

कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। काले तख्ते पर लिखता है तो खड़िया सफेद उभर कर दिखाई पड़ती है। महापुरुष समाज के ब्लैक बोर्ड पर उभर कर दिखाई पड़ते हैं, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ सकते। जिस दिन समाज महान होगा उस दिन महापुरुषों को खोजना बहुत मुश्किल हो जाएगा। समाज क्षुद्र है, नीचा है, इसीलिए महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष इतना बड़ा जो दिखाई पड़ता है, वह हमारी क्षुद्रता के अनुपात में दिखाई पड़ता है। जिस दिन महान मनुष्यता पैदा होगी, उस दिन महापुरुषों का युग समाप्त समझ लेना चाहिए। मनुष्यता क्षुद्र है, दीन-हीन है इसलिए महापुरुष दिखाई पड़ते हैं। महापुरुष तो हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन महान मनुष्य के बीच उनका कोई पता लगाना आसान नहीं रह जाएगा।
तो मैं कहता हूं कि राम दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि समाज राम से विपरीत रहा होगा। बुद्ध दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि बुद्ध से विपरीत समाज रहा होगा। बुद्ध की सफेद उज्ज्वल रेखा किसी काले समाज के ब्लैक बोर्ड के सिवाय दिखाई नहीं पड़ सकती थी। फिर यह भी ध्यान रख लेना जरूरी है कि अगर हम बुद्ध की, महावीर की, राम की, कृष्ण की, लाओत्से की, कनफ्यूशियस की, जरथुस्त्र की शिक्षाओं को देखें, तो उन शिक्षाओं से बहुत-कुछ नतीजे लिए जा सकते हैं। एक बड़े मजे की बात है, वह हम कभी ध्यान ही नहीं देते। महावीर सुबह से सांझ तक लोगों को समझाते हैंः हिंसा मत करो, हिंसा मत करो। अहिंसा! अहिंसा! इससे क्या मतलब है? इसका मतलब है कि लोग अहिंसक थे? लोग अहिंसक थे तो महावीर पागल थे जो उनको समझा रहे थे कि हिंसा मत करो। बुद्ध सुबह से सांझ तक समझा रहे हैंः चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, बेईमानी मत करो, परस्त्री का गमन मत करो। किसको समझा रहे हैं? लोग अगर अच्छे थे, समाज अगर शुभ था, तो ये शिक्षाएं किसके लिए हैं? ये शिक्षाएं बताती हैं कि आदमी कैसे रहे होंगे। जिनको ये शिक्षाएं दी जा रही थीं वे आदमी कैसे रहे होंगे? वे ही शिक्षाएं हमें आज देनी भी पड़ रही हैं। जो शिक्षाएं तीन हजार वर्ष पहले लागू थीं, वे ही आज भी लागू हैं। इससे सिद्ध होता है कि समाज जैसा आज है, तीन हजार वर्ष पहले भी ऐसा ही था। समाज ऊंचा नहीं था। समाज में बुनियादी कोई फर्क नहीं पड़ गया। और यह लेकिन हमारे खयाल में नहीं आ पाता कि शिक्षाएं किन्हें देनी पड़ती हैं, किसको देना पड़ती हैं?
एक चर्च में एक फकीर बोलने गया था। चर्च के लोगों ने कहा था सत्य के संबंध में हमें कुछ समझाओ। उस फकीर ने कहाः सत्य के संबंध में? लेकिन यह तो चर्च है, यहां सत्य के संबंध में समझाने की जरूरत क्या? यहां तो सत्यवादी लोग ही आए होंगे, क्योंकि मंदिरों में, चर्चों में सत्यवादी ही आते हैं। लेकिन लोग नहीं माने, उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, आप तो सत्य के संबंध में हमें समझाइए। वह फकीर खड़ा हुआ। उसने मंच पर खड़े होकर पूछा कि इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, मैं थोड़ी जांच-परख कर लेना चाहता हूं। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि मित्रो, तुम बाइबिल तो सब पढ़ते हो? उन सबने हाथ हिलाया कि हम बाइबिल पढ़ते हैं। उस फकीर ने पूछा कि तब मैं तुमसे यह पूछता हूं, तुमने बाइबिल में ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है? उन सबने हाथ हिलाए, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर जो सामने बैठा था। उन्होंने कहा, हां, हमने पढ़ा है। वह फकीर हंसने लगा, उसने कहा कि अब मैं सत्य के संबंध में बोलूंगा, क्योंकि मैं तुम्हें बता दूं, ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय बाइबिल में है ही नहीं। और तुम सब कहते हो, हमने पढ़ा है। तब ठीक है। फिर सत्य के संबंध में बोलने में कुछ सार है। लेकिन उस फकीर ने कहा, यह जो आदमी सामने बैठा है, यह बड़ा अदभुत आदमी मालूम पड़ता है। आश्चर्य! मेरे दोस्त, तुम चर्च में आ कैसे गए? क्योंकि चर्च में धार्मिक आदमी शायद ही जाते हों। तुम मंदिर में आ कैसे गए? मंदिर का धार्मिक लोगों से संबंध ही नहीं रहा है कभी, तुम आए कैसे? तुम चुप कैसे बैठे हो? तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया? उस आदमी ने कहाः महाशय, जरा जोर से बोलिए, मुझे कम सुनाई पड़ता है। क्या आप कहते हैं उनहत्तरवां अध्याय ल्यूक का? रोज पढ़ता हूं, पढ़ता नहीं; रोज पाठ करता हूं। मैं समझा नहीं, इसलिए मैं चुपचाप रहा कि कोई झंझट में न पड़ जाऊं।
समाज की शिक्षाएं समाज की खबर लाती हैं कि कैसे लोग होंगे। शिक्षाएं उन्हें देनी पड़ती हैं जो शिक्षाओं के प्रतिकूल होते हैं। जिस दिन दुनिया

पर धर्म आ जाएगा उस दिन धर्म की शिक्षाओं को देने की आवश्यकता कम हो जाएगी। जिस गांव में मरीज कम हों वहां डाक्टर बसने की कोशिश नहीं करेंगे। जिस गांव में स्वास्थ्य हो उस गांव में चिकित्सक की क्या जरूरत होगी? हम बहुत गौरवान्वित होते हैं यह बात कह कर कि दुनिया के तीर्थंकर, बुद्ध और अवतार हमारे यहां ही पैदा होते हैं। थोड़ा समझ-सोच कर इसमें गौरव अनुभव करना। यह इस बात का सबूत है कि हमारा समाज एक अधार्मिक समाज है, जहां धार्मिक शिक्षक को बार-बार पैदा होने की जरूरत पड़ती है। यह सबूत गौरव का नहीं है। किसी घर में रोज-रोज डाक्टर आता हो तो मोहल्ले में यह नहीं कह सकता कि हमारे घर में बड़े स्वस्थ लोग हैं, हमारे यहां डाक्टर रोज आता है। धर्मगुरुओं की इतनी लंबी कतारें इस बात की खबर हैं कि यह समाज अधार्मिक समाज है और अगर हम पीछे लौटने की बातें करते हैं तो हम मुल्क को आत्महत्या सिखा रहे हैं, सुसाइड सिखा रहे हैं। मुल्क मर जाएगा पीछे लौटने की बातों में। क्योंकि पीछे तो लौट नहीं सकता, लौटने की कोशिश में और नासमझी के प्रयास में वह आगे नहीं जा सकेगा जहां जा सकता था।
नहीं, राम-राज्य नहीं, चाहिए भविष्य का समाज। लौटा हुआ, बीता हुआ, गया हुआ सामंतवादी समाज नहीं, चाहिए शोषण से मुक्त वर्ग-विहीन आगे का समाज, भविष्य का समाज। लौटना नहीं है पीछे, जाना है आगे। लेकिन, हमारी सारी प्रवृत्ति, हमारा सारा चिंतन, हमारी सारी बुद्धि, हमारे व्यक्तित्व का सारा निर्माण, हमारी सारी कंडीशनिंग, हमारे सारे संस्कार पीछे ले जाने वाले हैं, आगे ले जाने वाले नहीं हैं। इसीलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो पाती है। क्रांति का मतलब होता है आगे जाना। जो आगे जाना ही नहीं चाहते वे क्रांति कैसे करेंगे? इसलिए भारत के पांच हजार वर्षों में क्रांति का कोई भी उल्लेख नहीं है। इतने संत, इतने महात्मा, इतने विचारक! लेकिन विद्रोह? विद्रोह बिल्कुल भी नहीं, विद्रोह जरा भी नहीं, रिबेलियन जैसी चीज ही नहीं। विद्रोह तो वे करते हैं, जो आगे जाना चाहते हैं। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें अतीत को इनकार करना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पिछली जड़ों को काटना पड़ता है। जो आगे जाना चाहते हैं, उन्हें पीछे का मोह छोड़ना पड़ता है, तब वे आगे जा पाते हैं। लेकिन हम? अगर हमारा वश चले तो हम अपनी मां के गर्भ में ही रह जाएं, वहां से भी बाहर न निकलें। अगर कोई बच्चा सच्चा भारतीय हो तो उसे इनकार कर देना चाहिए कि मैं मां के गर्भ के बाहर नहीं आता। मां के गर्भ में बड़ी शांति से जी रहा हूं, संतोष से। इतना सुख कहां मिलेगा? मिलता भी नहीं। कितने ही अच्छे मकान बनाओ, कितनी ही अच्छी कोच बनाओ, कितने ही अच्छे गद्दे और तकिए लगाओ; मां के पेट में जो कम्फर्ट, जो सुख, जो सुविधा, जो शांति है वह कहां मिलेगा?
मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि मां के पेट में बच्चा जो सुख जान लेता है, उसी सुख के कारण वह उसी तरह की चीजें बनाता चला जाता है। ये इतने मकान, अच्छे गद्दे, तकिए, कारें, इन सबके भीतर खोज यह चल रही है कि मां के गर्भ में जैसी शांति और सुख मिलता था, वैसा मिल जाए। लेकिन बच्चे को मां के पेट के बाहर आना पड़ता है। बड़ी रेवोल्यूशन हो जाती है, बड़ी क्रांति हो जाती है, सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता होगा, क्योंकि न वहां खाने की फिकर थी, न नौकरी की, न इंप्लाइमेंट की, न कोई और झंझट थी। वहां सारा जीवन चुपचाप चलता था और चौबीस घंटे तंद्रा में, निद्रा में सोने का आनंद था। वहां कोई दुख न था, सब सुख था। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मोक्ष का खयाल गर्भ के अनुभव से ही पैदा हुआ है। वहां सब कुछ था, कुछ कमी न थी। वही मन में कहीं स्मृति में मनुष्य के गहरे में गूंजता रहता है कि कोई एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहां सब सुख होगा, कोई दुख नहीं होगा। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां सब शांति होगी, कोई अशांति नहीं होगी। कोई एक ऐसा स्थान होना चाहिए जहां कुछ भी नहीं करना पड़ेगा और सब हो जाएगा। वही कहीं बीज में छिपी हुई स्मृति मां के गर्भ की है। लेकिन बच्चा अगर कह दे कि नहीं जाता हूं यात्रा पर जीवन की, तो क्या होगा उसका अर्थ? मां को उसे छोड़ना पड़ता है, मां से अलग खड़ा होना पड़ता है। थोड़े दिन मां से चिपटा रहता है, फिर अपने पैर से चलने लगता है, फिर धीरे-धीरे मां और उसके बीच फासला पैदा होता चला जाता है। फिर कल एक और स्त्री उसके जीवन में आएगी और शायद मां को वह भूल जाएगा। वह अपनी यात्रा

पर जा चुका जहां वह मां से पूरी तरह स्वतंत्र हो गया है। जीवन की यात्रा आगे की तरफ है, आगे की तरफ है, रोज आगे की तरफ है। पिछला छोड़ देना पड़ता है, चाहे कितना ही सुविधापूर्ण रहा हो। आगे की असुविधाएं झेलनी पड़ती हैं ताकि हम और नई सुविधाओं के जीवन को उपलब्ध हो सकें। पिछला कितना ही अच्छा घर रहा हो, उसे छोड़ देना पड़ता है ताकि अनजान और नये घर हम बना सकें।
जीवन की खोज निरंतर अतीत से मुक्त होने की खोज है। और भारत के लिए चिंता करने जैसी बात है। भारत अतीत से चिपटा हुआ है। उसका मन वहीं रुका रह गया है। उसने जोर से पकड़ लिया अतीत को। वह मां के गर्भ को पकड़े है और कहता है कि नहीं, हम यहां से आगे नहीं जाएंगे। इस वजह से हम सिकुड़ गए हैं, इस वजह से हमारी ऊर्जा क्षीण हुई है, इस वजह से हमारी प्रतिभा नष्ट हुई है, इस वजह से हम बौने हो गए हैं, इस वजह से हम सिर उठा कर अज्ञात की यात्रा पर जाने में भयभीत हैं, डर लगता है, अनजान, घबड़ाहट लगती है। अपने घर में रहो। यह प्रवृत्ति ने ही भारत को हिंदुस्तान के भीतर कैद कर दिया। भारत नहीं जा सका विस्तार पर। लेकिन अपने को समझाने की हम बहुत होशियारी की बातें खोजते हैं। हम कहते हैं, हम आक्रमण नहीं करना चाहते हैं, इसलिए हम अपने घर में बैठे रहते हैं। हम अहिंसक हैं इसलिए हम कहीं नहीं जाना चाहते। लेकिन अहिंसक से अहिंसक आदमी को जरा सा उकसा दो और उसके भीतर से खूंखार आदमी खड़ा हो जाता है। अहिंसक आदमी को जरा सा कुछ कह दो और उसके भीतर से क्रोध उबलने लगता है। कैसा अहिंसक आदमी है! कैसी है यह अहिंसा!
चीन का हमला हुआ, पाकिस्तान का हमला हुआ और अहिंसक आदमी को आप देख लेते कि अहिंसा कहां गई। उखड़ आई सारी की सारी। भीतर तो कुछ भी नहीं है। हिंदुस्तान में कवि कविताएं करने लगे कि सिंहों को छेड़ो मत, हम बब्बर शेर हैं। लेकिन घर के बाहर कविता सुना रहे हैं लोगों को, कहीं जा नहीं रहे हैं। सारा हिंदुस्तान कविता कर रहा है जैसे कि कविताओं से कोई युद्ध जीते जा सकते हैं। दुनिया में ऐसा कविताओं का बुखार, जुनून कभी भी नहीं आया होगा जैसा हिंदुस्तान में आया। गांव-गांव में कवि पैदा हो गए, जैसे बरसात में मेढक पैदा हो जाते हैं और वे सब कहने लगे कि हम शेर हैं, सोते हुए शेर को मत छेड़ो। तुम्हारी कविताओं से तुम शेर सिद्ध हो जाओगे? तुम्हारी यह जो बहादुरी तुम कविताओं में बता रहे हो और कवि-सम्मेलन के मंच पर हाथ-पैर फेंक रहे हो, इससे कुछ हो जाएगा? नहीं, हिंसा तो भीतर बहुत है, लेकिन साहस भी नहीं है बाहर जाने का। तो वह हिंसा कहीं कविताओं में निकलती है, कहीं बातचीत में निकलती है, क्षुद्रता में निकलती है। लेकिन, बाहर हम नहीं गए इस देश के। उसका कारण यह था कि हम पकड़ते हैं, रुकते हैं। गांव का आदमी गांव में रुक जाता है, शहर में नहीं जाना चाहता। डरता है, कहां जाए। जो आदमी एक छोटी दुकान करता है उसी पर रुक जाता है। किसी तरह इसी में गुजारा कर लेंगे, कहां जाएं, कहां कौन झंझट ले, कौन अनजान, अपरिचित में उतरे।
सारी दुनिया विकसित हुई है, वह इसलिए कि वह अनजान और अपरिचित में जाने
को आतुर हैं। जब भी उन्हें मौका मिल जाए अनजान में जाने का, वे जाने-माने को छोड़ कर अनजान में चले जाएंगे। और हम हैं, मजबूरी में ही जाना पड़े तो बात दूसरी, जब तक हमारी सामर्थ्य चलेगी हम जाने-माने को पकड़ कर रुके रहेंगे। यह स्थिति शुभ नहीं है, यह मंगलदायी नहीं है। इसी के कारण हम पीछे-पीछे लौट कर पकड़ते हैं। अगर मैं कोई बात कहूं तो आप कहेंगे, यह आदमी अनजाना, पता नहीं यह आदमी कौन है, क्या है? इसकी बात मानना ठीक है क्या? अपने कृष्ण की बात ठीक है, तीन हजार साल से सुनते हैं, वही ठीक होनी चाहिए। और इसलिए हिंदुस्तान में अगर किसी को नई बात भी कहनी हो तो उसको एक झूठ का आडंबर पहनाना पड़ता है। उसे कहना पड़ता है, जो मैं कह रहा हूं यही गीता में भी कहा हुआ है, तब कहीं वह बात स्वीकृत होगी, नहीं तो नहीं। अजीब बेईमानियों करवाना चाहते हैं। जब वह पहले यह सिद्ध करे कि यह गीता में कहा हुआ है तब कोई सुनने को राजी होगा। कि तब ठीक है, तब बोलो, तब पुराना परिचित ही बोल रहे हो, फिर कोई डर नहीं है तुमसे।
इसीलिए हिंदुस्तान में हजारों गीता की टीकाएं हो गईं। गीता की कोई एक टीका की भी जरूरत नहीं है। गीता इतनी साफ किताब है, इतनी स्पष्ट, कि गीता की किसी टीका की जरूरत नहीं है। टीकाकार और धुआं पैदा कर देगा। गीता को

समझाने के लिए टीकाकार की जरूरत है? कृष्ण ने इतनी स्पष्ट बात कही है, इतनी सीधी, कि अब यह टीकाकारों की क्या जरूरत है? लेकिन एक हजार टीकाएं हैं और एक हजार मतलब वाली। इससे क्या सिद्ध होता है? इससे दो ही बातें सिद्ध होती हैं--या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा हो कि एक ही बात में हजार मतलब रहे हों, कोई मतलब ही नहीं रहा, मतलब यह रहा। हजार मतलब जिस बात के हों उसमें कोई मतलब ही न रहा। और या फिर, ये हजार टीकाकार क्या कह रहे हैं? ये जो कहना चाहते हैं उसको जबरदस्ती बेचारे कृष्ण के ऊपर थोप रहे हैं, इसलिए हजार टीकाएं पैदा हो गईं। नहीं तो हजार टीकाओं की क्या जरूरत है? जो इन्हें कहना है, सीधा नहीं कह सकते। क्योंकि यह मुल्क सुनेगा ही नहीं, ये नये को सुनने को राजी नहीं। उसको गीता में प्रवेश करके और उसको गीता की शकल में लाकर खड़ा करना पड़ेगा। जब वह बिल्कुल गीता की बात जंचने लगेगी तब कोई मानेगा। और इसमें गीता के साथ जो हत्या हो रही, जो अत्याचार हो रहा, वह चलेगा। गीता की जो शुद्धि है वह नष्ट होगी।
अभी मेरे खिलाफ जो लोगों ने इधर लिखा, उन्होंने क्या कहा? उन्होंने कहा कि गांधी जी विनम्र थे। वे कभी यह नहीं कहते थे कि यह मैं कह रहा हूं। वे कहते थे, यह गीता में लिखा है, यह महावीर ने कहा है, यह टालस्टाय कहता है, यह रस्किन कहता है, यह श्रीमद्भराजचंद्र कहते हैं। मैं तो वही कह रहा हूं जो सदा कहा हुआ है। यह विनम्रता नहीं है, यह इस मुल्क के बुनियादों रोगों में से एक रोग है। जो मैं कह रहा हूं, वह मुझे कहना चाहिए कि मैं कह रहा हूं, चाहे वह गलत हो, चाहे वह सही हो। मैं जो कह रहा हूं उसे कृष्ण के ऊपर थोपना अन्याय है। यह बिल्कुल क्राइम है कि मैं कहूं कि वह कृष्ण कर रहे हैं। मुझे क्या पता कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? कृष्ण के अतिरिक्त और कोई दावा नहीं कर सकता है इस बात के कहने का कि कृष्ण क्या कह रहे हैं! कौन दावा करेगा? कृष्ण की चेतना जिसके पास न हो, वह कैसे जानेगा कि कृष्ण क्या कह रहे हैं? क्यों फिजूल कृष्ण के ऊपर सवारी करते हो? क्यों किसी के कंधे पर सवार होते हो? अपने दो छोटे पैरों से ही खड़े हो जाओ। यह अहंकार हो गया! अपने पैर पर खड़ा होना अहंकार है और कृष्ण के कंधों पर खड़े हो जाना अहंकार नहीं है। कृष्ण के कंधों पर खड़े होकर आसानी से आप ज्यादा ऊंचे दिखाई पड़ोगे, अपने पैरों पर खड़े होकर उतने ही ऊंचे दिखाई पड़ोगे जितने आप हो। अहंकार किसमें ज्यादा सिद्ध होगा? परंपरा का सहारा अहंकार की पुष्टि
के लिए लिया जा सकता है। और या फिर, लोग इतने नासमझ हैं कि वे सुनने को ही राजी नहीं नये को। इसलिए पुरानी शराब की बोतल में नई शराब भर कर पिलानी पड़ेगी। नहीं, मैं इनकार करता हूं इस बात को, क्योंकि यह पूरे मुल्क की प्रतिभा को नुकसान पहुंचाने की तरकीबें हैं। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि हमें ईमानदारी से, स्पष्टता से यह कहना चाहिए कि यह मैं सोचता हूं ऐसा, वह गलत हो सकता है, वह सही हो सकता है। यह मूल्यवान नहीं है, लेकिन मूल्यवान यह है कि हम अपने तईं सोचना शुरू करें। हम कब तक कृष्ण और महावीर और बुद्ध को सताते रहेंगे। अगर वे कहीं मोक्ष में होंगे तो बहुत परेशान हो गए होंगे। रोज उनकी टांग खींचो और उनको जमीन पर लाओ। उनकी हुज्जत हो गई होगी, घबड़ा गए होंगे कि कहां के दुष्टों के मुल्क में पैदा हो गए कि सुबह-सांझ परेशान किए रहते हैं। नहीं परेशान हो गए होंगे? और कितने हैरान होते होंगे कि क्या-क्या शकल बनाई जा रही है उनकी बातों की। जो उन्होंने कभी भी नहीं कहा होगा, वह हजार दो हजार साल में उनके नाम पर थोप दिया गया। जो उन्होंने सोचा भी नहीं होगा वह उनकी वाणी का हिस्सा बन गया। क्या-क्या हम थोप सकते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। हमारे मन में जो होगा, हमें उनके ऊपर थोपना पड़ेगा।
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर हैं। उनमें एक तीर्थंकर मल्लीनाथ हैं। दिगंबर कहते हैं कि वह पुरुष हैं मल्लिनाथ। श्वेतांबर कहते हैं, वह मल्लीबाई है, स्त्री है। बड़ा मजा है! यह भी संदिग्ध हो गया कि कोई आदमी स्त्री था कि पुरुष? अजीब इतिहास लिख रहे हैं आप! कि यह भी पक्का नहीं है कि एक तीर्थंकर स्त्री था कि पुरुष? नहीं, यह तो पक्का रहा होगा, लेकिन दिगंबरों की मान्यता यह है कि स्त्री मोक्ष जा ही नहीं सकती, तो फिर तीर्थंकर स्त्री कैसे हो सकता है? स्त्री रही होगी तो उन्होंने मल्लीबाई

को मल्लीनाथ कर डाला, क्योंकि वह तो अपनी धारणा के हिसाब से उनको खड़ा होना पड़ेगा, तीर्थंकर को। महावीर की शादी हुई कि नहीं, महावीर को लड़की पैदा हुई कि नहीं, इसमें भी झगड़े हैं। श्वेतांबर कहते हैं, शादी हुई, लड़की हुई, दामाद था। दिगंबर कहते हैं कि यह कभी हुआ ही नहीं। तीर्थंकर जैसा आदमी और शादी करेगा, बाल-ब्रह्मचारी। तो बाल-ब्रह्मचारी की जिसकी धारणा है, तो थोप देगा। मानने को राजी नहीं हैं कि उनकी स्त्री थी या उनकी लड़की हुई। है ही नहीं, यह सवाल ही नहीं, यह गलत बात है। अब एक ही महावीर को मानने वाले दो वर्ग अजीब बातें कर रहे हैं। यह क्या है?
हम अपनी ही धारणा थोपते हैं शास्त्रों पर, सिद्धांतों पर, महापुरुषों पर। हम पूजा कर रहे हैं यह या अन्याय कर रहे हैं? यह क्रिमिनल एक्ट है, यह बिल्कुल अपराधपूर्ण है और मुल्क को सख्ती से मुमानियत होनी चाहिए कि कोई आदमी कृष्ण की तरफ से बोलने का हकदार नहीं है, न महावीर की तरफ से। अपनी बात कहे। अगर महावीर के लिए भी कहना है तो यह कहे कि यह मैं कहता हूं महावीर के संबंध में। महावीर कहते होंगे कि नहीं कहते, मैं मानने को, मुझे कुछ भी पता नहीं है। हम वही समझ सकते हैं, जो हमारी स्थिति है।
एक दिन, एक रात बुद्ध प्रवचन करते थे। प्रवचन के बाद रोज का उनका नियम
था कि वह भिक्षुओं को, श्रोताओं को कहते कि अब जाओ रात्रि का अंतिम कार्य करो। वे भिक्षु दस हजार भिक्षु उनके साथ होते थे, रात्रि का अंतिम कार्य ध्यान था। सोने के पहले ध्यान करो, फिर सो जाओ। तो रोज-रोज यह कहने की जरूरत न थी कि ध्यान करो। तो वे इतना कह देते थे कि अब जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो।
उस दिन एक चोर भी आया था सभा में, एक वेश्या भी आई थी। चोर ने जैसे ही सुना कि जाओ अब रात्रि का अंतिम कार्य करो। अरे, उसने कहा कि बहुत रात हो गई, चांद कितना चढ़ गया, जाऊं, अपना धंधा करूं। ऐसे रात भर गंवा दूंगा धर्म में, तो मुश्किल हो जाएगी। धर्म में थोड़ा-बहुत वक्त गंवाया जा सकता है, फिर धंधा करने जाना ही पड़ता है, चाहे चोर हो, चाहे साहूकार हो। वेश्या ने सुना कि रात्रि हो गई है, अपना काम। वेश्या बोली, अरे, ग्राहक आ चुके होंगे, मैं जाऊं। बुद्ध ने एक ही बात कही थी। भिक्षु ध्यान करने चले गए, चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपनी दुकान पर चली गई। बुद्ध ने जो कहा था, वह एक था, लेकिन व्याख्याएं तीन हो गईं।
जो कहा जाता है वह एक है, जितने लोग सुनते हैं व्याख्याएं उतनी हो जाती हैं। लेकिन कृपा करके अपनी व्याख्या को किसी के ऊपर मत थोपें, इतना ही कहें, ऐसा मैं समझता हूं। लेकिन इस मुल्क में थोपा जा रहा है, निरंतर थोपा जा रहा है। इस मुल्क में कोई गीता की टीका न लिखे तो वह ज्ञानी ही नहीं है। कोई गीता की टीका लिखे तभी ज्ञानी होता है। और अगर कभी भी कहीं कोई अदालत होगी, मोक्ष में, तो ये गीता के टीकाकार एक-एक बंधे हुए नजर आएंगे, क्योंकि कृष्ण इन पर मुकदमा चलाएंगे, कि सज्जनो, तुम मेरे पीछे क्यों पड़े थे? मुझे जो कहना था वह मैंने कह दिया था, तुम कृपा करते। मैंने कह दी थी बात पूरी। मेरी बात साफ थी। तुम कैसे अर्थ समझाने गए थे बीच में कि इसका यह अर्थ है।
यह जो प्राचीनवादिता, यह जो प्राचीन का मोह, यह जो अतीत को जकड़ कर पकड़ लेना, यह हम कब तोड़ेंगे? क्या हमको दिखाई नहीं पड़ता कि सारा जगत आगे बढ़ता चला जा रहा है, भविष्योन्मुख है? हम अतीत के मोह में मर जाएंगे, मर ही गए हैं, करीब-करीब मर गए हैं। इकबाल ने गाया हैः "कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।" अब इकबाल तो जा चुके, अन्यथा उनसे मिल कर कहता कि महाशय, कुछ भी बात नहीं है। बात कुल इतनी है कि हस्ती बहुत पहले मिट चुकी, तो अब मिटे भी तो मिटे क्या? खाक! मिटने के लिए हस्ती चाहिए न पहले? आदमी जिंदा हो तो मर सकता है और मर ही गया हो तो अब क्या मरेगा? मरने के लिए भी जिंदगी चाहिए। मरा हुआ आदमी फिर नहीं मरता। एक दफा मर गया, फिर तो मरता ही नहीं। यह कौम इसलिए नहीं कि हमारी कोई बड़ी खूबी है जिससे हमारी हस्ती नहीं मिटती। हमारी खूबी यह है कि हस्ती हम खो चुके अतीत के साथ। हमारी कोई मौजूदा हस्ती नहीं है, हमारी कोई वर्तमान प्रतिभा नहीं है, हमारी सारी प्रतिभा अतीत में हो चुकी। आज क्या है हमारे पास? अभी क्या है? वर्तमान

संपत्ति क्या है हमारे व्यक्तित्व की? वह हमारी खो चुकी, इसलिए मिटने को अब कुछ बचा नहीं। लेकिन यह दुखद है और गांधी का चिंतन फिर पुरातन की तरफ ले जाने वाला है। देश को ले जाना है आगे, रोज आगे। रोज भूलते जाना है उसको, जो बीत गया है।
एक गांव में एक पुराना चर्च था। वह कहानी कह कर और थोड़ी सी बातें कह कर मैं अपनी बात पूरी करूं।
एक गांव में एक चर्च था। एक बहुत पुराना गांव और बहुत पुराना चर्च। वह चर्च इतना पुराना था कि हवाएं चलती थीं, उसकी दीवालें हिलती थीं कि कब गिरीं, कब गिरीं। बादल गरजते थे तो लगता था गया चर्च, बिजली चमकती थी तो लगती गिरेगी चर्च पर। ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाएगा? कोई प्रार्थना करने नहीं जाता था। प्रार्थना करने वाले जीवन को दांव पर लगा कर तो प्रार्थना करने जाते नहीं। सुविधा होती है तो जाते हैं। जिनको सुविधा होती है वे ज्यादा जाते हैं, जिनको कम सुविधा होती है वे कम जाते हैं। लेकिन वहां तो जान का खतरा था, वहां कौन प्रार्थना करने जाता। चर्च खाली पड़ा रहता। चर्च की कमेटी, संरक्षकों की कमेटी मिली। उन्होंने कहा, बड़ी मुश्किल है। वह कमेटी भी बाहर मिली, वह भी कोई भीतर नहीं मिली, क्योंकि नेता हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जहां अनुयायी नहीं जाता वहां नेता कभी जाता ही नहीं। आप इस खयाल में मत रहना कि नेता अनुयायियों के आगे जाते हैं। यह सिर्फ भ्रम है अखबारों में।
नेता हमेशा अनुयायी के पीछे जाते हैं, फॉलो करते हैं फॉलोअर को। जब देख लेते हैं कि अनुयायी यहां जा रहा है तब वे उचक कर उसके साथ हो जाते हैं। वे आपको आगे दिखाई पड़ते हैं सिर्फ, वे होते हमेशा पीछे हैं। पहले पता लगा लेते हैं कि अनुयायी क्या मानता है, क्या विश्वास करता है, वही कहते हैं जो आप मानते हैं। जो आप मानोगे वही बात करते हैं, उसी तरह जीते हैं। वे भी बेचारे नेता थे, वे काहे के लिए भीतर जाते, जब कोई अनुयायी नहीं जाता था। वे भी बाहर मिले, दूर कंपाउंड से कि कहीं कोई दीवाल गिर न जाए। उन्होंने वहां तय किया कि लोग बड़े खराब हो गए हैं, कोई मंदिर में आता ही नहीं, कोई आता ही नहीं मंदिर में, लोग बिल्कुल नास्तिक हो गए हैं, लोग बिल्कुल अधार्मिक हो गए हैं और सबने सिर हिलाया कि बात सच है। हालांकि उनमें से भी कोई कभी नहीं आता था।
लेकिन एक जवान आदमी पहुंच गया था। उसने कहा कि महाशयो, सिर्फ लोगों को दोष मत दो, चर्च इतना पुराना हो गया है कि उसमें जाना खतरनाक है। देखें, हम भी अपनी कमेटी की बैठक बाहर कर रहे हैं, चलें हम भीतर। वे लोग बोले कि यह तो बात सच है कि चर्च बहुत पुराना हो गया है। क्या करना चाहिए? तो कमेटी ने एक प्रस्ताव पास किया कि अब बहुत हो गई प्रतीक्षा करते हुए पुराने चर्च में कोई नहीं जाएगा। तो हम सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास करते हैं कि पुराना चर्च गिरा दिया जाना चाहिए। उन्होंने दूसरा प्रस्ताव पास किया और पुराने को गिरा कर हमें एक नया चर्च बनाना है, यह भी सर्वसम्मति से। और तीसरा प्रस्ताव पास किया विस्तार से और उसमें लिखा कि हम नया चर्च वैसा ही बनाएंगे जैसा पुराना था, ठीक पुराने जैसा। वैसा ही मकान, उसी नींव पर, नींव पुरानी रहेगी, चर्च नया रहेगा, वैसी ही दीवालें, उन दीवालों में पुरानी ईंटें ही लगाई जाएंगी, नहीं ईंट नहीं, पुराने ही द्वार-दरवाजे निकाल कर लगाए जाएंगे, नये दरवाजे नहीं। ठीक पुराने चर्च जैसा ही, पुरानी जगह पर ही, पुरानी दीवालों के अनुकूल दीवालें, पुरानी नींव पर नई दीवालें, ऐसा हम चर्च बनाएंगे। इसे भी सर्वसम्मति से स्वीकार किया और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक नया चर्च न बन जाए, तब तक पुराना गिराएंगे नहीं।
वह चर्च अभी तक खड़ा हुआ है। वह कब गिरेगा? वह कभी नहीं गिरेगा। जो पुराने को गिराने की सामर्थ्य नहीं रखते वे नये को निर्माण करने की सामर्थ्य खो देते हैं। जो पुराने को विध्वंस करने की हिम्मत रखते हैं केवल वे ही नये का सृजन कर पाते हैं। जो पुराने की मौत देख सकते हैं वे ही केवल नये को जन्म दे सकते हैं। और हम पुराने की मृत्यु देखने में असमर्थ हो गए हैं। हम पुराने को नष्ट करने में असमर्थ हो गए हैं। हम पुराने को गिराने में असमर्थ हो गए हैं, इसलिए नये का कोई जन्म नहीं हो पा रहा है।

लेकिन ध्यान रहे, जीवन नये के साथ है, पुराने के साथ मौत है। अगर मर ही जाना हो बिल्कुल, तो पुराने को कस कर पकड़ लेना चाहिए। घर में मां मर जाती है, पिता मर जाते हैं, बहुत प्यारे हैं, लेकिन फिर लाश घर में रख कर हम नहीं बैठ जाते हैं। बहुत प्यारे हैं, कितना दुख, कितनी पीड़ा आदमी झेलता है--मां चल बसी उसकी, लेकिन फिर भी मरते ही लाश को घर में नहीं रखते। फिर यह नहीं कहते कि मां बहुत प्यारी थी, हम लाश को कैसे घर के बाहर ले जाएं, हम कैसे मरघट ले जाएं, हम तो इसी से चिपटे हुए बैठे रहेंगे। नहीं, फिर लाश को ले जाना पड़ता है, दुख में, पीड़ा में। मरघट पर आग लगानी पड़ती है, जलाना पड़ता है उस मां को जिसे इतना प्रेम किया था, जिससे जन्म पाया था, जो सब कुछ थी। वह भी मर गई तो उसे भी मरघट पर ले जाना पड़ता है, मजबूरी में जलाना पड़ता है। रोते हैं, लेकिन जला कर वापस लौट आते हैं।
अगर किसी घर के लोग पागल हो जाएं और जितने बूढ़े लोग मरते जाएं उनकी लाशें इकट्ठी कर लें, तो उस घर की आप समझते हैं क्या हालत हो जाएगी? उस घर में नये बच्चे पैदा होने के पहले इनकार कर देंगे कि क्षमा करिए, इन लाशों के इस ढेर में हम जन्म नहीं लेना चाहते। और नये बच्चे पैदा भी हो जाएंगे तो पैदा होते से ही पागल हो जाएंगे, क्योंकि जिस घर में इतनी लाशें हों वहां नये बच्चे पागल होने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकते हैं। लेकिन नहीं, लाशें हम जला आते हैं। लेकिन इतिहास की लाशें हम संजोते चले जाते हैं, मस्तिष्क पर रखते चले जाते हैं, रखते चले जाते हैं। इतिहास भी कभी जला देने जैसा हो जाता है, इतिहास भी कभी भूल जाने जैसा हो जाता है, अतीत भी कभी मरघट पर पहुंचाने जैसा हो जाता है, ताकि शक्ति और ऊर्जा नये के जन्म की दिशा में अग्रसर हो सके।
नहीं, धर्म नहीं कहता कि पीछे जाओ। धर्म तो कहता हैः आगे और आगे और अंत में, अननोन, अज्ञात परमात्मा है, वहां चलना है। निकलती है गंगा हिमालय से, गंगोत्री से भागती है, गंगोत्री पर रुक नहीं जाती। अनजान पहाड़ियों में, घाटियों में, वादियों में भागती है, दौड़ती है, पत्थरों से टकराती है। न मालूम कितने रास्ते हैं। रास्ते में न कोई पुलिसवाला मिलता है जिससे पूछ ले कि सागर कहां है, न कोई पुरोहित मिलता है कि पूछ ले कि सागर कहां हैं। कोई नहीं मिलता, कोई गाइड नहीं, कोई मार्गदर्शक नहीं, भागती चली जाती है। अपने भागने पर भरोसा है, अपने प्राणों पर भरोसा है। भागती है, अनजान, भागती रहती है और एक दिन सागर के पास पहुंच जाती है। गंगोत्री में रुक जाती तो सागर नहीं हो सकती थी। गंगोत्री में नहीं रुकी, भागी, तो गंगोत्री में क्षीण सी धारा थी, सागर के पास पहुंच कर विराट धारा हो गई और सागर में गिरते ही तो सागर हो गई। जाना है अनंत तक, जाना है आगे और आगे और भविष्य... वहां जहां अनंत का सागर है। जो पीछे रुक गए हैं, उन्होंने अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।
मैं भविष्य को, उस आने वाले सूरज को जो उगेगा, उस भवन को जो हम बनाएंगे, उसके लिए कामना जगाना चाहता हूं, उसके लिए आकांक्षा और अभीप्सा जगाना चाहता हूं। लेकिन हमारे सारे शिक्षक पुराने से बंधे हैं, हमारे सारे शिक्षक प्रतिगामी हैं, हमारे सारे शिक्षक रिएक्शनरी हैं, हमारे सारे शिक्षक कहते हैं, वह जो था, वही ठीक था। एक बार इस देश को निर्णय करना होगा कि जो था अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हो गए हैं? जो था अगर वह ठीक था तो हम उसी से तो पैदा हुए हैं, हम उसी के तो बाई-प्रॉडक्ट हैं। जो था अगर वह ठीक था तो हम ऐसे क्यों हैं? बेटा सबूत है अपने बाप का। अगर बाप ठीक था तो यह बेटा गड़बड़ कैसे? फल सबूत है, अपने बीज का। अगर बीज मीठा था, तो यह फल कड़वा कैसे है?
फल यह नहीं कह सकता कि बीज तो ठीक था, लेकिन हम गड़बड़ हो गए हैं। नहीं, बीज से ही फल पैदा होते हैं। बीज तो खो गए, उनका तो अब कुछ पता नहीं है। अब तो फल सबूत देंगे कि बीज कैसे थे। हम सबूत हैं, अपने पूरे अतीत के। हमारे अतिरिक्त और कोई सबूत नहीं है। हम कैसे हैं, वह सबूत है हमारे पूरे इतिहास का। क्योंकि उस पूरे इतिहास की यात्रा से हम जन्मे हैं, उस यात्रा से हम पैदा हुए हैं। और अगर वह ठीक था तो हम गलत क्यों हैं? अगर हम गलत हैं तो हमें जानना पड़ेगा, हालांकि इस बात को जानने में बड़ी पीड़ा होती है, बड़ा दुख

होता है कि हम अगर गलत हैं तो हमारे अतीत की प्रक्रिया गलत थी और हमें नई प्रक्रिया और नई जीवन-दिशा को चुनना जरूरी हो गया है।

मेरी इन बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
छठवां प्रवचन

तोड़ने का एक और उपक्रम

मेरे प्रिय आत्मन्!
मित्रों ने बहुत से प्रश्न से पूछे हैं। एक मित्र ने पूछा हैः महापुरुषों की आलोचना की बजाय उचित होगा कि सृजनात्मक रूप से मैं क्या देखना चाहता हूं देश को, समाज को, उस संबंध में कहूं।

लेकिन आलोचना से इतने भयभीत होने की क्या बात है। क्या यह वैसा ही नहीं है हम कहें कि पुराने मकान को तोड़ने की बजाय नये मकान को बनाना ही उचित है? पुराने को तोड़े बिना नये को बनाया कब किसने है? और कैसे बना सकता है? विध्वंस भी रचना की प्रक्रिया का हिस्सा है। तोड़ना भी बनाने के लिए जरूरी हिस्सा है। अतीत की आलोचना भविष्य में गति करने का पहला चरण है और जो लोग अतीत की आलोचना से भयभीत होते हैं, वे वे ही लोग हैं जो भविष्य में जाने में सामर्थ्य भी नहीं दिखा सकते हैं।
लेकिन इतना भय क्या है? सृजनात्मक आलोचना, एक क्रिएटिव क्रिटिसिज्म
से इतना भय क्या है? क्या हमारे महापुरुष इतने छोटे हैं कि उनकी आलोचना से हमें भयभीत होने की जरूरत पड़े। और अगर वे इतने छोटे हैं तब तो उनकी आलोचना जरूर ही होनी चाहिए, क्योंकि उनसे हमारा छुटकारा हो जाएगा। और अगर वे इतने छोटे नहीं हैं तो आलोचना से उनका कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। दोनों हालत में आलोचना कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती है। लेकिन यह हमारा पूरा देश ही आलोचना से भयभीत हो गया है। यह हम आज से भयभीत हैं ऐसा नहीं, यह हम हमेशा से भयभीत हैं। और जो समाज अपने अतीत की आलोचना नहीं करता, वह भविष्य के लिए निर्णय भी नहीं ले पाता है कि कहां कदम रखने हैं, कैसे कदम रखने हैं। उसका सारा अतीत बिना आलोचना के, अनक्रिटिसाइज्ड इकट्ठा हो जाता है। उस सारे अतीत में से चुनाव करना मुश्किल हो जाता है कि क्या चुनना है। उस अतीत में से क्या छोड़ना है, यह जानना मुश्किल हो जाता है। उस अतीत का बोझ इतना हो जाता है कि उस अतीत के नीचे हम दब कर मर सकते हैं, उस अतीत के कंधे पर खड़े होकर भविष्य की ओर उठ नहीं सकते हैं।
भारत का अतीत हमारा चुना हुआ अतीत नहीं है, एक ढेर की भांति हमारे सिर
पर बैठा हुआ है। उसमें सब तरह की बातें बैठी हुई हैं। उसमें विरोधी, कंट्राडिक्शंस बैठे हुए हैं और उन सबको हम झेल रहे हैं और उन सबके साथ हम जीने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए भारत में इतना कंफ्यूजन है, इतना विभ्रम है। हम कोई निर्णय नहीं ले सके। हमारे अतीत में कृष्ण हैं, जो युद्ध के मैदान पर लड़ते हैं, वे भी हमें पूज्य हैं। हमारे अतीत में महावीर हैं, जो कहते हैं, एक कीड़े को भी मारना पाप है, युद्ध में लड़ने की तो बात ही अलग, वे भी हमारे पूज्य हैं। न हमने महावीर पर कभी विचार किया, न कभी कृष्ण पर विचार किया। दोनों हमारे मन में बैठे हुए हैं। और उन दोनों की वजह से हमारे मन में कंफ्यूजन पैदा होना अनिवार्य है।
एक तरफ कृष्ण हैं, जो कहते हैं, न कोई मरता है और न कोई मारा जाता है, इसलिए युद्ध में कोई भय नहीं है। दूसरी तरफ महावीर हैं, जो कहते हैं कि जरा सा भी चींटी का मर जाना नरक जाने का द्वार है, इसलिए युद्ध और हिंसा से बचना।
कुछ हमें तय करना पड़ेगा, कौन है ठीक? कुछ हमें निर्णय लेने होंगे, क्या
है सही?
लेकिन हम कहते हैं कि अतीत की आलोचना मत करो, अतीत का विचार मत करो। तब अतीत के हजारों-हजारों वर्षों में, हजारों-हजारों विचारों का जो संग्रह हमारे ऊपर इकट्ठा हो गया है वह सारा संग्रह हमारे प्राणों पर बैठा हुआ है। उस सारे संग्रह के नीचे हम दबे जा रहे हैं और जी रहे हैं और हम कोई भी निर्णय नहीं ले पाते कि इस देश का व्यक्तित्व एक स्पष्ट निखार को उपलब्ध हो। शायद आपको पता न हो, इस देश में कितनी धाराएं रही हैं विचार की। वे सारी की सारी धाराएं भारतीय मस्तिष्क में इकट्ठी होकर बैठ गईं। वे बहुत

विरोधी धाराएं हैं और उन विरोधी धाराओं के कारण हमारा व्यक्तित्व खंडित हो गया है, स्प्लिट हो गया है।
भारत में किसी आदमी के पास इंटिग्रेटेड पर्सनैलिटी जिसको हम कहें, एक समग्र समूचा व्यक्तित्व कहें, इकट्ठा व्यक्तित्व कहें, एक स्वर वाला व्यक्तित्व कहें, वह नहीं है। उसके भीतर न मालूम कितने स्वर हैं। उन सभी स्वरों के बीच उसे जीना पड़ता है। इससे एक मल्टी-पर्सनैलिटी, एक बहु- व्यक्तित्व भीतर पैदा हो गया है। जिसमें से कुछ निर्णय नहीं हो पाता कि हमारा स्वरूप क्या है, हमारा व्यक्तित्व क्या है, हम कहां खड़े हैं, वह हमें कुछ भी पता नहीं चल पाता। और इस सबके पीछे एक ही कारण है कि हमने अपने अतीत की आलोचना करने से भय दिखलाया है।
और अगर हम आगे भी यह जारी रखते हैं तो भारत की सारी प्रतिभा कुंठित हो
गई है, और कुंठित हो जाएगी। बहुत स्पष्ट विचार होना चाहिए, बहुत स्पष्ट सूझ होनी चाहिए। न कोई गांधी का मूल्य है, न महावीर का, न कृष्ण का, मूल्य है इस देश के भविष्य का। अगर बड़े से बड़े महापुरुष को भी उस भविष्य के लिए छोड़ना पड़े, तो छोड़ने की तैयारी होनी चाहिए। सवाल यह नहीं है कि हम छोड़ दें, सवाल यह है कि इस देश का भविष्य महत्वपूर्ण है या इस देश के अतीत के महापुरुष महत्वपूर्ण हैं? बड़े से बड़े महापुरुष से पैदा होने वाला छोटे से छोटा बच्चा भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह भविष्य है, वह कल आएगा, वह कल जीएगा, कल वह बनेगा। उसको ध्यान में रखना है। लेकिन हमारा मुल्क, हमारी पूरी चिंता उनको ध्यान में रखती है जो जी चुके और जा चुके। यह समादर ठीक है, लेकिन यह समादर महंगा पड़ रहा है। आने वाले बच्चे का सम्मान चाहिए। उस बच्चे के सम्मान, उसके भविष्य, उसके जीवन के लिए विचार चाहिए।
हमें बहुत ही स्पष्ट, बहुत आदरपूर्वक अतीत की आलोचना करनी पड़ेगी। आलोचना का अर्थ निंदा नहीं है। यह भी एक अजीब पागलपन है। इस मुल्क में आलोचना करने का मतलब निंदा समझा जाता है। यह हमारी क्षुद्र बुद्धि का सबूत है। इसका मतलब यह है कि हम निंदा करने को ही आलोचना समझते हैं या आलोचना करने को निंदा समझते हैं।
गांधी की आलोचना, गांधी की निंदा नहीं है। मेरी बात की आप आलोचना करें, तो वह मेरी निंदा नहीं है, बल्कि मेरी बात की आलोचना करने से आप खबर देते हैं कि आपने मेरी बात को मूल्य दिया। इस योग्य समझा कि आप उस पर सोच रहे हैं। नहीं, आलोचना निंदा नहीं है, आलोचना सम्मान है। हम आलोचना हर किसी की नहीं करने बैठे जाते हैं, कोई ऐरे-गैरे की आलोचना करने सारा मुल्क नहीं बैठ जाएगा। जिसकी हम आलोचना करने बैठते हैं, हम यह मान कर चलते हैं कि उस व्यक्ति की आलोचना या उस व्यक्ति का विचार देश के हित या अहित में महत्वपूर्ण हो सकता है।
मार्क्स की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु पर थोड़े से मित्र, दस-बीस मित्र
ही उसकी कब्र पर इकट्ठे थे। एंजिल्स ने उसकी कब्र पर बोलते हुए एक बात कही। एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स एक महापुरुष था। मित्रों को हैरानी हुई, क्योंकि अगर महापुरुष था तो कुल बीस-पच्चीस लोग कब्र पर छोड़ने आए थे। मित्रों ने पूछा कि महापुरुष? तो एंजिल्स ने कहा कि मैं इसलिए कहता हूं महापुरुष मार्क्स को कि जो भी उसकी बात सुनेगा, उसे या तो मार्क्स के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। दो के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। जो भी मार्क्स की बात सुनेगा, उसे या तो मार्क्स के पक्ष में होना पड़ेगा या विपक्ष में होना पड़ेगा। मार्क्स की उपेक्षा कोई भी नहीं कर सकता है। इसलिए मैं कहता हूं, यह महापुरुष है।
यह बड़ी अदभुत बात कही एंजिल्स ने। मार्क्स के महापुरुष होने का कारण
यह कि उसके विचार की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आप इनडिफरेंट नहीं हो सकते उसके विचार के प्रति। आपको कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में। जिस मनुष्य के विचार के संबंध में हमें कोई न कोई निर्णय लेना ही पड़े उसको ही महापुरुष कहा जा सकता है, और किसी को नहीं। और जब आप अपने महापुरुष के विपक्ष में होने की सामर्थ्य तोड़ देना चाहते हैं। गांधी के विपक्ष में कोई न हो सके जब आप ऐसी कोशिश करते हैं, तो आपको पता नहीं, आप अपने हाथ से गांधी की जमीन खींच रहे हैं। क्योंकि जिस आदमी के

विपक्ष में कोई नहीं हो सकता, ध्यान रहे, उसके पक्ष में भी कोई कभी नहीं होगा।
जिसके विपक्ष में कोई कभी नहीं हो सकता उसके पक्ष में भी कोई कभी नहीं होगा। जिसके विपक्ष में होने की जरूरत नहीं पड़ती उसके पक्ष में होने की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती है। और जिसके विपक्ष में हमें होने की आवश्यकता नहीं है, हम तब ऊपरी तौर से कहते रहेंगे कि हम उसके पक्ष में हैं, लेकिन हमारे प्राण कभी उसके पक्ष में नहीं हो सकते हैं। हम पक्ष में उसी के हो सकते हैं, जिसके विपक्ष में होना भी जरूरी मालूम पड़ सकता हो।
एक जमाना था, ईश्वर के विरोध में वे लोग समझे जाते थे जो नास्तिक थे,
जो कहते थे ईश्वर नहीं है। पिछली सदी में एक विचारक ने लिखा कि नास्तिक फिर भी ईश्वर को आदर देते थे, क्योंकि वे ईश्वर को विचारणीय मानते थे। वे ईश्वर पर किताबें लिखते थे, तर्क करते थे और सिद्ध करना चाहते थे कि ईश्वर नहीं है। जमाना नास्तिकता से भी आगे जा चुका है। अब किसी से कहो कि ईश्वर, तो वह कहता है, छोड़ो, यह कोई बात करने योग्य नहीं है। नास्तिक तो ईश्वर को पूरा सम्मान देता है, हो सकता है आस्तिक से ज्यादा सम्मान देता हो। और सच तो यह है कि आस्तिक से ज्यादा सम्मान ही नास्तिक देता है, क्योंकि आस्तिक शायद ही कभी ईश्वर के संबंध में इतना विचार करता हो जितना नास्तिक करता है। और यह भी हो सकता है कि आस्तिक वे ही लोग बने बैठे हुए हैं जो ईश्वर के संबंध में विचार वगैरह नहीं करना चाहते, उस झंझट में नहीं पड़ना चाहते, कहते हैं, ठीक है, है, होगा, जरूर होगा, होना ही चाहिए।
लेकिन नास्तिक प्राणों की बाजी लगाता है ईश्वर के लिए। उसके लिए ईश्वर एक लिविंग प्रॉब्लम है। उसे तय ही करना है कि ईश्वर है या नहीं, क्योंकि उसी तय करने पर उसका जीवन निर्भर करेगा कि वह किस तरह जीए। आस्तिक कहता है कि है, और जीता इस तरह है जैसे नास्तिक को जीना चाहिए। आस्तिक कहता है कि है परमात्मा, मंदिर में पूजा कर आता है और जीता ऐसे है जैसे परमात्मा पृथ्वी पर कहीं भी न हो। यह आस्तिक का सम्मान है या उस नास्तिक का सम्मान है जो ईश्वर को प्राणों की बाजी लगा लेता है। सोचता है दिन और रात, विचार करता है, निर्णय करता है, तर्क करता है, संदेह करता है, सोचता है, खोजता है, ईश्वर है? वह उसके प्राणों का सवाल है। अगर होगा तो उसे जिंदगी बदलनी पड़ेगी, नहीं होगा तो जिंदगी दूसरी तरह की होगी। लेकिन नास्तिक ईश्वर को उपेक्षा के योग्य नहीं मानता।
हमारी नई सदी में लाखों लोग ऐसे हैं जो नास्तिक भी नहीं हैं। वे कहते हैं, ईश्वर, होगा या नहीं होगा, कोई प्रयोजन नहीं है। यह पहली दफा ईश्वर की मौत की खबर है। ईश्वर मरने के करीब पहुंच गया यह इसकी खबर है। नास्तिक ईश्वर को नहीं मरने देगा, लेकिन यह उपेक्षा, यह इनडिफरेंस कि ईश्वर की बात उठे और लोग कहें कि छोड़ो, कोई और बात करें। यह इनडिफरेंस ईश्वर की मौत हो सकती है। और आप जान कर हैरान होंगे, अगर दुनिया में नास्तिक न होते तो आस्तिक कभी के इनडिफरेंट हो चुके होते, उन्होंने कभी की फिक्र छोड़ दी होती ईश्वर की। वह जो नास्तिक विरोध किए जाता है, आलोचना किए जाता है, वह आस्तिक को बल देता रहता है कि वह सोचे, फिर सोचे, फिर सोचे ईश्वर है या नहीं। दुनिया में विचार को जन्माने में, विचार को गतिमान करने में कनफर्मिस्ट जो होते हैं, स्वीकार करने वाले जो लोग होते हैं, आस्थावादी जो होते हैं, उन्होंने कोई भी हाथ नहीं बंटाया है।
आपको शायद पता न हो, वेद और उपनिषद से आकर भारत में विचार की धारा रुक
गई थी, बिल्कुल रुक गई थी। महावीर और बुद्ध, प्रबुद्ध कात्यायन, मक्खली गोशल, संजय वेलट्ठी पुत्त, इन सारे लोग ने वह धारा तोड़ी। इन सारे लोगों ने विरोध किया है--वेद का, उपनिषद का। महावीर जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा दुनिया में? बुद्ध जैसा आलोचक खोजने से मिलेगा? बुद्ध और महावीर और दूसरे लोगों ने तोड़ दी सारी परंपरा। एक तूफान आ गया सारे मुल्क में। सारे मुल्क में चिंतन पैदा हुआ। उस चिंतन की धारा में फिर वसुबंधु और नागार्जुन और दिग्नाग और धर्मकीर्ति और कुंदकुंद और उमास्वाति और सारी परंपरा और शंकर और रामानुज और निम्बार्क।

बुद्ध और महावीर ने जो आलोचना की उस आलोचना को उत्तर देने के लिए, उस आलोचना के पक्ष में खड़े होने के लिए एक हजार साल तक चिंतन चला। एक हजार साल तक जवाब खोजना पड़ा बुद्ध के लिए, महावीर के लिए। या बुद्ध और महावीर के पक्ष में दलील खोजनी पड़ी। एक हजार साल मुल्क की प्रतिभा ने मंथन किया। अदभुत-अदभुत अनुभव उस मंथन से उपलब्ध हुए। उस मंथन से शंकर जैसा आदमी पैदा हुआ, नागार्जुन जैसा अदभुत आदमी पैदा हुआ, उस मंथन से, उस आलोचना के परिणाम से। अगर बुद्ध और महावीर ने आलोचना न की होती तो हिंदुस्तान में शंकर और नागार्जुन के पैदा होने की कोई संभावना नहीं थी। वे उस आलोचना के प्रतिफल थे। लेकिन फिर शंकर के बाद आलोचना क्षीण पड़ गई। फिर शंकर को स्वीकार कर लिया गया। शंकर के बाद फिर आलोचना नहीं हो सकी, फिर एक हजार साल भारत में बुद्धि की दृष्टि से अकाल का समय बीता। फिर एक हजार साल तक आलोचना करने से हम भयभीत हो गए। क्योंकि बुद्ध और महावीर ने आलोचना की थी, तो हमें पंद्रह सौ साल तक उस आलोचना के लिए सोचना पड़ा था।
आदमी सोचना नहीं चाहता। आदमी सुस्त और काहिल है। वह समझता है कि बिना सोचे काम चल जाए तो बहुत अच्छा। तो पंद्रह सौ साल तक टक्कर लेनी पड़ी मस्तिष्क को, श्रम करना पड़ा। तो आदमी ने सोचा कि अब छोड़ो फिक्र, शंकर पर विश्वास कर लो। शंकर पर विश्वास कर लिया गया। हजार साल से फिर आलोचना बंद हो गई। फिर हिंदुस्तान में, इन हजार सालों में उस तरह के लोग पैदा न हो सके कि नागार्जुन, बुद्ध या महावीर पैदा हो सकते। वे नहीं पैदा हो सके।
अब भारत का पुनर्जागरण का युग आया। देश स्वतंत्र हुआ। अगर इस स्वतंत्रता के साथ भारत के मस्तिष्क में आलोचना की शक्ति नहीं जगती है तो हिंदुस्तान की प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, यह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। चाहिए तीव्र आलोचना कि हिंदुस्तान में पचास वर्षों तक दस-पच्चीस तीव्र आलोचक पैदा हों जो हिंदुस्तान की जड़ें हिला दें। उसके मस्तिष्क को हिला दें। तो हम आने वाली सदी में फिर बुद्ध और महावीर और शंकर जैसे लोग पैदा कर सकेंगे। नहीं तो हम पैदा नहीं कर सकेंगे। मगर हम बिल्कुल नपुंसक, इंपोटेंट हो गए हैं। हमारी जान निकलती है जरा सा विचार करने में, जरा सा विचार, जरा सी आलोचना, हमारे प्राण कंपते हैं। इतनी कमजोर कौम प्रतिभा पैदा नहीं कर सकती है। इतनी कमजोर कौम कैसे प्रतिभा पैदा करेगी? प्रतिभा तो एक साधना है, प्रतिभा तो एक श्रम है।
आपको पता है कि तीन सौ वर्षों में यूरोप में जो भी विकास हुआ है वह किन लोगों की वजह से हुआ है? आस्तिकों की वजह से? श्रद्धा करने वालों की वजह से? कनफर्मिस्ट लोगों की वजह से? आर्थोडाक्स लोगों की वजह से? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से? रूढ़िग्रस्त लोगों की वजह से दुनिया में कभी कोई विकास नहीं हुआ। किसके द्वारा विकास हुआ है? उन विद्रोहियों की वजह से जिन्होंने सारी रूढ़ि तोड़ने की हिम्मत की, जिन्होंने संदेह किया, विश्वास नहीं। जिन्होंने आलोचना की, आस्था नहीं।
तीन सौ वर्ष के उन वाल्तेयर, या रूसो, या दीदरो, या नीत्शे, या फ्रायड
और मार्क्स ऐसे लोगों की वजह से पश्चिम की प्रतिभा को झकझोड़ मिला। प्रतिभा चौंक गई। उत्तर खोजना जरूरी हो गया। या तो पक्ष या विपक्ष में होना पड़ेगा। कोई विकल्प न रहा कि आप चुपचाप अपनी सुस्ती में और उपेक्षा में बैठे रहें। अब नीत्शे को सुनिएगा तो उसका पक्ष या विपक्ष, कहीं न कहीं आपको होना पड़ेगा। आप यह नहीं कह सकते कि ठीक है, सुन लिया। आपको यह कहना ही पड़ेगा कि नीत्शे ठीक है या गलत है। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई रास्ता नहीं है।
और जब आपको किसी को ठीक या गलत कहने के लिए सोचना पड़ता है तो आपकी प्रतिभा में अंकुर आने शुरू होते हैं। लेकिन जब आप कहते हैं आलोचना करनी ही नहीं है, आलोचना विध्वंसात्मक है, हमें तो जो कहना है वह कहना चाहिए। तो दुनिया के सभी श्रेष्ठ विचारक विध्वंसात्मक थे, लेकिन बाद में हमें याद भी नहीं रह जाता कि वे कितने बड़े आलोचक रहे होंगे, कितने बड़े आलोचक रहे होंगे! और कैसी तीव्र आलोचना की होगी। हम तो समझते हैं कि आलोचना यानी गाली-गलौज हो गई।

यह जो हमारी आज की धारणा है, इस धारणा को बिल्कुल आग लगा देने की जरूरत है। एक-एक बच्चे को संदेह सिखाया जाना चाहिए, डाउट सिखाया जाना चाहिए। एक-एक बच्चे को क्रिटिकल होने की, आलोचनात्मक होने की प्रेरणा देनी चाहिए। एक-एक बच्चे को--मां-बाप को, गुरु को कहना चाहिए कि हमारी बात मान मत लेना, विचार करना, सोचना, झगड़ना, हिम्मत से हमसे लड़ना। अगर तुम्हारे विवेक को स्वीकार हो तो ही मानना अन्यथा मत मानना। अगर हम इतनी हिम्मत दिखाएंगे तो हिंदुस्तान की प्रतिभा विकसित होगी, अन्यथा नहीं विकसित हो सकती। क्या करूं? आपकी बात मान लूं, आलोचना नहीं करनी चाहिए? या कि यह देखूं कि आने वाले मुल्क का भविष्य आलोचना से ही पैदा हो सकता है?
मैंने कल शायद कहा कि राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं हैं। बस चिट्ठियां
आ गईं कि आपने बहुत बुरा काम कर दिया आपने राधाकृष्णन को ऐसा कैसे कह दिया?
राधाकृष्णन विचारक हैं या नहीं, यह सोचना चाहिए। मैंने कह दिया कोई मान लेने की जरूरत है? मैं कहता हूं कि नहीं हैं विचारक--मैं कहता हूं तो मैं उसके लिए दलील देता हूं। आप सोचिए कि हैं विचारक तो दलील खोजिए। बस इतना ही मैं चाहता हूं कि विचार की प्रक्रिया चले। हो सकता है कि राधाकृष्णन विचारक सिद्ध हों विचार करने से और मेरी बात गलत सिद्ध हो। लेकिन मुझे कहना नहीं चाहिए यह कौन सी बात हुई?
मुझे जो लगता है वह मुझे कहना चाहिए। मुझे लगता है कि राधाकृष्णन कोई विचारक नहीं हैं। केवल एक टीकाकार हैं, एक व्याख्याकार हैं, एक अनुवादक हैं। एक अच्छे अनुवादक हैं, एक अच्छे कमेंटेटर हैं, एक अच्छे टीकाकार हैं। उन्होंने पूरब की सारी धारणाओं को पश्चिम में जितनी सुंदरता से पहुंचाया उतना कोई मनुष्य कभी भी नहीं पहुंचाया। लेकिन विचारक वे नहीं हैं। उन्होंने एक नये विचार को जन्म नहीं दिया। उनकी सारी किताबों में एक भी सूत्र ऐसा नहीं है जो उनकी मौलिक प्रतिभा से जन्मा हो। वे सब गीता, उपनिषद और वेदों के उधार सूत्र हैं। विचारक वे नहीं हैं, विचारक होने का कोई सवाल नहीं है उनका। लेकिन हमने कुछ ऐसी हालत पकड़ ली है कि जिस आदमी की हम प्रशंसा करेंगे उसकी हम सब तरह से प्रशंसा करेंगे। हम फिर कोई हिस्सा नहीं छोड़ सकते उसका कि वह न हो, वह सभी होना चाहिए।
हिंदुस्तान में एक पागल भाव पैदा हो गया है कि हमारे महापुरुष में सभी कुछ होना चाहिए। दुनिया के किसी महापुरुष में सभी कुछ नहीं होता। अगर आप महावीर के पास पूछने जाएंगे कि साइकिल का पंक्चर कैसे सुधारा जा सकता है? तो महावीर नहीं बता सकते। इसके लिए तो साइकिल का जो, कोने पर बैठा हुआ, एक टपरा लगाए हुए बैठा हुआ आदमी वही बता सकेगा। लेकिन हमारी धारणा यह कि महावीर सर्वज्ञ हैं, वे सभी कुछ जानते हैं, ऐसा कुछ भी नहीं जिसको वे नहीं जानते। पागलपन की बातें हैं।
बुद्ध ने मजाक उड़ाया है इस धारणा का जैनियों की। बुद्ध ने कहा है कि
एक ज्ञानी हैं। उनके भक्त कहते हैं कि वे सर्वज्ञ हैं, वे त्रिकालज्ञ हैं, वे तीनों काल जानते हैं। लेकिन उन्हीं ज्ञानी को मैंने ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखा है जहां बाद में पता चलता है घर में कोई है ही नहीं। मैंने उन्हीं ज्ञानी को रास्ते पर चलते हुए कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ते देखा है। बाद में पता चलता है कि अंधेरे में कुत्ता सोया हुआ था और उनके भक्त कहते हैं कि वे त्रिकालज्ञ हैं, तीनों काल जानते हैं!
बुद्ध बड़े महिमाशाली हैं। लेकिन शंकर कहते हैं कि मैंने सुना है कि भगवान ने बुद्ध को इसलिए अवतार दिया, यह कहानी शंकर ने गढ़ी, कहानी शंकर ने गढ़ी कि मैंने सुना है कि नरक और स्वर्ग बनाए भगवान ने। लेकिन नरक में कोई जाता ही नहीं था, तो नरक का जो अधिकारी था उसने भगवान को जाकर कहा, नरक में कोई आता ही नहीं, तो मुझे किसलिए बैठाया हुआ है? तो भगवान ने बुद्ध को अवतार दिया कि तुम जाकर लोगों को भ्रष्ट करो ताकि वे नरक जा सकें।
तो शंकर गलत कह रहे हैं? शंकर गलत कह रहे हैं और सही कह रहे हैं यह सोचने की बात है। लेकिन शंकर को कहने का हक है। शंकर को कहने का हक है, जो उसे ठीक लगता है वह कह रहा है। उसे लगता है कि बुद्ध ने लोगों को भ्रष्ट किया। बुद्ध ने, जिनके लिए हम सोचते हैं उनके जैसा महापुरुष जगत में कोई

पैदा नहीं हुआ। लेकिन शंकर कहता है कि भ्रष्ट किया है। और शंकर की उम्र कितनी है? शंकर ने जब यह बात कही तब उसकी उम्र तीस साल है। लेकिन अच्छे लोग रहे होंगे, शंकर की बात भी उन्होंने सुनी। न तो पत्थर मारे, न कहा कि बहिष्कार कर देंगे। शंकर के समय तक बुद्ध तो भगवान हो चुके थे। और एक छोकरे ने, एक गरीब घर के छोकरे ने कहना शुरू कर दिया कि नहीं, यह भ्रष्ट करने को आदमी पैदा हुआ था। इसने दुनिया को बनाया नहीं, बिगाड़ा। हिम्मतवर लोग थे। जब इतनी हिम्मत होती है तो विचार विकसित होता है।
हमने सारी हिम्मत खो दी है। और फिर हम चाहते हैं कि हम विचारशील हो जाएं। हम विचारशील नहीं हो सकेंगे। विचार का जन्म होता है संदेह से, विचार का जन्म होता है संघर्ष से, विचार का जन्म होता है आलोचना से। इसलिए यह मत कहें मुझसे कि मैं आलोचना न करूं!
मैं तो आलोचना करूंगा और जितना आप कहेंगे उतना खोज-खोज कर करूंगा। और एक-एक महापुरुष का पीछा करूंगा, क्योंकि मुझे जरूरत मालूम होती है। मुझे जरूरत मालूम होती है, मुझे आवश्यकता लगती है कि इस समय देश के लिए सबसे बड़ी जरूरत अगर कुछ है तो वह यह है, इस देश का हजारों साल से रुका हुआ विचार का अवरुद्ध प्रवाह टूट जाए, बहने लगे हमारी सरिता फिर से। फिर से हम सोचने लगें, फिर से हम पूछने लगें, फिर से इंक्वायरी पैदा हो जाए। कैसे अदभुत लोग रहे होंगे। खोजते थे कितने दूर-दूर तक, कितनी दूर-दूर की यात्राएं करते थे। नालंदा में दस हजार विद्यार्थी थे। सारे हिंदुस्तान के कोने-कोने से हिंदुस्तान के बाहर से अफगानिस्तान से और बर्मा से और चीन से हजारों मील की पैदल यात्रा करके आते थे संदेह सीखने, तर्क सीखने, पूछने, जिज्ञासा करने।
एथेंस में जहां विचार का जन्म हुआ यूरोप में, थोड़े से दिनों में एक आदमी ने विचार को जन्म दिला दिया--उस साक्रेटीज ने। क्या किया साक्रेटीज ने? साक्रेटीज ने जिंदगी के सारे मसले फिर से उठा दिए। एक-एक प्रश्न फिर से खड़ा कर दिया। एक-एक प्रश्न को जो हम समझते थे हल हो गया, फिर से जिंदा बना दिया। जब सारे प्रश्न जिंदा हो गए तो सोचना मजबूरी हो गई। उस सोचने से अरस्तू पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ, प्लेटीनस पैदा हुआ। वे सारे के सारे लोग पैदा हुए। सारे यूरोप की धारा पैदा हुई एक आदमी से, साक्रेटीज से। क्योंकि उसने क्वेश्चनिंग पैदा कर दी। उसने एक भी प्रश्न को नहीं रहने दिया। अस्तव्यस्त कर दिए सारे उत्तर। अतीत ने जो भी उत्तर दिए थे, सब गड़बड़ कर दिए और आदमी को वहां खड़ा कर दिया जहां वह पूछेः क्या है सत्य? साक्रेटीज से लोग कहते कि तुम उत्तर दो। तुम तो बताओ कि सत्य क्या है।
वह कहता, यह मेरा काम नहीं। मेरा काम यह है बताना कि सत्य क्या नहीं है। सत्य क्या है वह तो तुम्हारे भीतर जिज्ञासा पैदा हो जाएगी तो तुम खोज लोगे। असत्य क्या है वह मैं बता दूं, मेरा काम पूरा हो जाता।
साक्रेटीज ने कहाः मैं तो एक मिडवाइफ की तरह हूं, एक दाई की तरह हूं।
मेरा काम बच्चे को जन्माना नहीं है, केवल बच्चे के लिए द्वार दे देना है कि वह जन्म जाए। बच्चा तो तुमसे पैदा होगा। मैं बच्चा नहीं पैदा कर सकता हूं। साक्रेटीज ने कहाः मैं तो संदेह पैदा करूंगा।
साक्रेटीज से लोग डरते थे। अगर रास्ते पर मिल जाए तो नमस्कार करने में डरते थे। क्योंकि उससे नमस्कार की कि कोई झंझट खड़ी हो जाए। तो तुमने नमस्कार की, तो वह फौरन पूछेगा, आपने नमस्कार क्यों की? अब आप कुछ तो कहेंगे, आप कुछ कहेंगे और डायलॉग शुरू हो जाएगा।
साक्रेटीज से लोग बचने लगे। वे यह देख लेते कि वह आ रहा है, वे दूसरी गली से निकल जाते। लेकिन उस अकेले आदमी ने मौत पर खेल कर... क्योंकि इसका बदला लिया है एथेंस के लोगों ने उससे। हम उस आदमी से बदला लेते हैं जो हमारा अज्ञान प्रकट कर देता है। इसका पता है आपको? हम उस आदमी से हमेशा बदला लेते हैं जो हमारा अज्ञान प्रकट कर देता है। क्योंकि वह हमारे अहंकार को चोट पहुंचा देता है। जिस बात को हम समझते थे हम जानते हैं, वह आकर बता देता है कि नहीं जानते। बहुत गुस्सा आता उस आदमी पर कि हम तो माने बैठे थे कि हम जानते थे, निश्चिंत हो गए थे, खोज पूरी हो गई थी। इस आदमी ने फिर झंझट खड़ी कर दी। यह फिर इसने ऐसी बातें उठा दीं जिनसे शक पैदा होता है

कि हम जानते हैं या नहीं जानते? गुस्सा आता है उस आदमी पर। ऐसे आदमी से हमने हमेशा बदला लिया है।
सारे एथेंस के लोग परेशान हो गए, क्योंकि साक्रेटीज ने सारे पुराने ज्ञान को भूमिसात कर दिया, पुराने भवन को गिरा दिया। एक-एक आदमी की आस्था की जमीन खींच ली, एक-एक आदमी अंधेरे में लटक गया और एक-एक आदमी कहने लगा, यह आदमी बहुत खतरनाक है। इस आदमी से छुटकारा चाहिए। यह हमें शांति से न जीने देगा।
साक्रेटीज पर उन्होंने मुकदमा चलाया और कहा कि यह साक्रेटीज लोगों का दिमाग खराब करता है। यह हमारे युवकों का दिमाग बिगाड़ता है। इस आदमी को फांसी होनी चाहिए। इसको जहर पिलाना चाहिए। साक्रेटीज से अदालत के अध्यक्ष ने कहा, क्योंकि साक्रेटीज बहुत प्यारा आदमी था। मजिस्ट्रेट ने उसे कहा कि साक्रेटीज अगर तुम यह वचन दे दो कि आगे से तुम सत्य की बातें नहीं करोगे तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं। साक्रेटीज ने कहा कि वह तो मेरा धंधा है सत्य की बातें करना। अगर वह धंधा ही छूट जाए तो मैं जीकर भी क्या करूंगा?
साक्रेटीज से वह अध्यक्ष कह रहा है अदालत का कि तुम सत्य की बातें और जिज्ञासा और प्रश्न खड़े नहीं करोगे। साक्रेटीज वहीं अदालत में पूछता है, क्या महानुभव मैं पूछ सकता हूं, सत्य क्या है? यह तो पक्का हो जाए पहले कि सत्य क्या है, तो फिर मैं सोचूं भी कि उसे छोड़ना कि नहीं छोड़ना। सत्य का अर्थ क्या है? सत्य कहां है?
वह अध्यक्ष बोला कि यही तो हम कहते हैं कि यह सब बकवास तुम छोड़ दो। साक्रेटीज ने कहा कि मैं जिंदगी छोड़ दूंगा, लेकिन यह नहीं छोडूंगा। क्योंकि सत्य से ज्यादा प्यारा कुछ भी नहीं है। और सत्य की खोज में जिसे जाना है, उसे झूठे ज्ञान को छोड़ना पड़ता है। लोग मुझसे नाराज हो गए हैं क्योंकि मैंने उनसे झूठा ज्ञान छीन लिया है और सच्चे ज्ञान पर जाने के लिए वे हिम्मत और साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इसलिए एक वैक्यूम, एक शून्य पैदा हो गया है। लेकिन मैं यह शून्य पैदा करता रहूंगा या मर जाऊं या जिंदा रहूंगा तो सत्य बोलता रहूंगा। सत्य के बिना मैं कैसे जी सकता हूं?
उस आदमी ने मर जाना पसंद किया, लेकिन उसी आदमी ने एथेंस की संस्कृति
को आकाश तक उठा दिया। उस अकेले आदमी ने जिसका खून किया गया, जिसको जहर पिलाया गया, उस एक आदमी की वजह से पश्चिम की सारी संस्कृति की गंगा पैदा हुई। उसकी गंगोत्री साक्रेटीज में है।
हिंदुस्तान में साक्रेटीज, सुकरात जैसे लोगों की जरूरत है ताकि हजारों साल का बंधा हुआ प्रवाह टूट जाए, मुक्त हो सके। हिंदुस्तान फिर सोच सके, फिर विचार कर सके। हमें खयाल ही नहीं, हम जितना विश्वास कर लेते हैं उतना ही विचार करना मुश्किल हो जाता है। विश्वास विचार की हत्या है। जितना हम विश्वास करते हैं उतनी विचार की कोई जरूरत नहीं रह जाती है। विचार की जरूरत तो तब पैदा होती है जब हम विश्वास नहीं करते। जब हम मान लेते हैं कि गांधी महात्मा हैं, काम खत्म हो गया। बच्चे को हमने कह दिया कि वे महात्मा हैं, बात खत्म हो गई। बच्चे को पूछना चाहिए कि महात्मा वे कैसे हैं? क्यों हैं? वही महात्मा क्यों हैं और कोई महात्मा क्यों नहीं हैं? ऐसी बात क्या है जिसे हम महात्मा मानें? लेकिन बाप कहेगा कि नहीं, इतनी बातचीत की जरूरत नहीं है। हम जो कहते हैं वह मानो!
हमेशा पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी से कहती है, हम जो कहते हैं वह मानो! यह पुरानी पीढ़ी की कमजोरी बताती है, ताकत नहीं। क्योंकि जब भी कोई आदमी कहता है, मैं जो कहता हूं मानो, तो वह बता रहा है कि वह कमजोर आदमी है। उसको अपनी बात मनवाने के लिए विवेक को जगाने का विश्वास वह नहीं कर सकता। वह डंडे के बल पर कह रहा है कि मैं जो कहता हूं वह मानो! मानना पड़ेगा! मेरी उम्र ज्यादा है! मेरा अनुभव ज्यादा है! मैंने जिंदगी देखी है! देखी होगी जिंदगी आपने। लेकिन जो जिंदगी आपने देखी, ये बच्चे उस जिंदगी को कभी नहीं देखेंगे। ये दूसरी जिंदगी देखेंगे। कृपा करके अपनी जिंदगी का ज्ञान इनकी छाती पर मत थोपों। इनको मुक्त करो ताकि ये जो नई जिंदगी देखेंगे उसको देख सकें। लेकिन नहीं, हम भयभीत लोग, कहीं ज्ञान न खो जाए, कहीं आस्था न खो जाए,

कहीं विश्वास न खो जाए, कहीं श्रद्धा न खो जाए, कहीं सब खो न जाए। और है हमारे पास कुछ भी नहीं। सब खोया हुआ है। सिर्फ धुआं-धुआं है। कुछ भी नहीं है हमारे पास।
मैंने सुनी है एक कहानी। एक सम्राट के दरबार में एक आदमी ने आकर कहा
था कि मैं स्वर्ग से वस्त्र ला सकता हूं तुम्हारे लिए। उस सम्राट ने कहाः स्वर्ग के वस्त्र? सुने नहीं कभी, देखे नहीं कभी। उस आदमी ने कहाः मैं ले आऊंगा, देख भी सकेंगे, पहन भी सकेंगे। लेकिन बहुत खर्च करना पड़ेगा। कई करोड़ रुपये खर्च हो जाएंगे। क्योंकि रिश्वत की आदत देवताओं तक पहुंच गई है। जब से ये दिल्ली के राजनीतिज्ञ मर-मर कर स्वर्ग पहुंच गए हैं तब से रिश्वत की आदत वहां पहुंच गई। वहां भी रिश्वत जारी हो गई है, क्योंकि देवता कहते हैं हम आदमियों से पीछे थोड़े ही रह जाएंगे। और यहां पांच रुपये की रिश्वत चलती है, वहां तो करोड़ों से नीचे बात नहीं होती, क्योंकि देवताओं का लोक है।
सम्राट ने कहाः कोई हर्ज नहीं, लेकिन धोखा देने की कोशिश मत करना! करोड़ों रुपये देंगे तुम्हें, लेकिन भागने की कोशिश मत करना! मुश्किल में पड़ जाओगे। उसने कहाः भागने का सवाल नहीं है। महल के चारों तरफ पहरा कर दिया जाए, मैं महल के भीतर ही रहूंगा। क्योंकि देवताओं का रास्ता सड़कों से होकर नहीं जाता, वह तो अंतरिक्ष यात्रा है अंदर की। वहीं से अंदर से कोशिश करूंगा। आप घबड़ाइए मत। तलवारें नंगी लगा दी गईं। उस आदमी ने छह महीने का समय मांगा और छह महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट से ले लिए। दरबारी हैरान थे और चिंतित थे। लेकिन सम्राट ने कहा, घबड़ाहट क्या है, जाएगा कहां, रुपये लेकर जाएगा कहां महल के बाहर।
छह महीने पूरे होने पर सारी राजधानी में हजारों लोग इकट्ठे हो गए, लाखों लोग इकट्ठे हो गए देखने को। वह आदमी ठीक समय बारह बजे, जो उसने दिया था, एक बहुमूल्य पेटी लिए हुए महल के बाहर आ गया। अब तो कोई शक की बात न थी। वह सब जुलूस पूरा का पूरा राजमहल पहुंचा। दूर-दूर के राजा, सम्राट, धनपति दरबार में इकट्ठे थे देखने को। उस आदमी ने पेटी वहां रखी और कहा, महाराज यह ले आया। ये वस्त्र आ गए। अब आप मेरे पास आ जाएं। मैं देवताओं के वस्त्र दे दूं। आप पहन लें।
महाराज ने अपनी पगड़ी दी। उसने पगड़ी उस पेटी में डाल दी। वहां से खाली हाथ बाहर निकाला और कहाः महाराज यह पगड़ी दिखाई पड़ती है? हाथ में कुछ भी न था। महाराज ने गौर से देखा। उस आदमी ने कहाः खयाल रहे, देवताओं ने चलते वक्त मुझसे कहा था यह पगड़ी और ये कपड़े उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो। उस सम्राट ने कहाः हां-हां, दिखाई पड़ती है, क्यों दिखाई नहीं पड़ेगी। बड़ी सुंदर पगड़ी है, बड़ी सुंदर पगड़ी है, ऐसी पगड़ी न तो कभी देखी, न सुनी।
दरबारियों ने सुना। किसी को भी पगड़ी दिखाई नहीं पड़ती थी। पगड़ी होती
तो दिखाई पड़ती। लेकिन दरबारियों ने देखा कि इस वक्त यह कहना कि नहीं दिखाई पड़ती है, व्यर्थ अपने मरे हुए बाप पर शक पैदा करवाने से क्या फायदा है। पगड़ी से हमको लेना-देना क्या है। अपने बाप को बचाओ, पगड़ी से प्रयोजन क्या है। वे भी तालियां बजाने लगे और कहने लगे, धन्य महाराज, धन्य! पृथ्वी पर ऐसा अवसर कभी नहीं आया। ऐसी पगड़ी कभी देखी नहीं गई। एक-एक आदमी अपने मन में सोच रहा था कि बड़ी गड़बड़ बात है। लेकिन उसने देखा कि सारे लोग कहते हैं कि पगड़ी है तो उसने सोचा कि हो सकता है अपने बाप गड़बड़ रहे हों, लेकिन यह भी किसी से कहने की बात नहीं है। अपने भीतर जान लिया, वह ठीक है। अपना राज अपने घर में रखो। जब सारे लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे।
हमारी यही दलील है कि सारे लोग कहते हैं तो ठीक कहते होंगे। जब पूरा हिंदुस्तान कहता है कि फलां आदमी महावीर भगवान है, फलां आदमी बुद्ध पैगंबर है, फलां आदमी महात्मा है, तो ठीक ही कहता होगा। जब सब लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। अब अकेले क्यों झंझट में पड़ना। उन लोगों ने सोचा, अपनी झंझट। जिसको जितना डर लगा वह उतना बाहर आगे आ गया और कहने लगा कि अहा महाराज, धन्य हैं। क्योंकि उसे लगा कि कहीं मैंने धीरे-धीरे कहा तो आस-पास के लोगों को शक न हो जाए कि यह आदमी थोड़े धीरे-धीरे बोलता है।

जितने चोर होते हैं दुनिया में उतने जोर से चिल्लाते हैं कि चोरी किसने की है। चोर को पकड़ो। वे चोर चिल्लाते हैं ये बातें ताकि किसी को शक न हो जाए कि यह आदमी कुछ भी नहीं चिल्ला रहा, कहीं चोर न हो। रिश्वतखोर चिल्लाते हैं कि मुल्क से रिश्वत बंद होनी चाहिए, बेईमान नेता मुल्क के सामने भाषण देते हैं और कहते हैं कि भ्रष्टाचार नष्ट करना है। और जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं भ्रष्टाचार नष्ट करना है, जनता समझती है यह बेचारा तो कम से कम भ्रष्टाचारी नहीं होगा, नहीं तो इतना भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलता? और जनता को पता नहीं कि भ्रष्टाचारी को भ्रष्टाचार के खिलाफ बोलना ही पड़ता है।
सम्राट ने देखा कि जब सारा दरबार कह रहा है तो समझ गया वह कि अपने पिता गड़बड़ रहे हैं। अब कुछ बोलना ठीक नहीं। जो कुछ हो, कपड़े हों या न हों, स्वीकार कर लेना ठीक है। पगड़ी पहन ली उसने जो थी ही नहीं। कोट पहन लिया उसने जो था ही नहीं। एक-एक वस्त्र उसका छिनने लगा, वह नंगा होने लगा। आखिरी वस्त्र रह गया तब वह घबड़ाया कि यह तो बड़ी मुश्किल बात है। कहीं कपड़े मालूम नहीं होते। बस आखिरी अंडरवियर रह गया। अब यह भी जाता है।
और उस आदमी ने कहा कि महाराज यह अंडरवियर देवताओं का पहनिए, इसको निकालिए। अब वह जरा घबड़ाया। यहां तक तो गनीमत थी। और दरबारी हैं कि ताली पीटे जा रहे हैं कि महाराज कितने सुंदर मालूम पड़ रहे हैं इन वस्त्रों में आप। और महाराज बिल्कुल नंगे हो गए हैं। वे नंगे खड़े हुए हैं।
उस आदमी ने धीरे से कहाः महाराज घबड़ाइए मत। सबको अपने बाप की फिक्र है। जल्दी निकालिए, नहीं तो झंझट हो जाएगी, लोगों को पता चल जाएगा। उन्होंने जल्दी अंडरवियर निकाल दिया, क्योंकि यह तो घबड़ाहट का मामला था। वे बिल्कुल नग्न खड़े हो गए और दरबारी तो नाच रहे हैं खुशी में कि धन्य हैं महाराज और एक-एक आदमी को राजा नंगा दिखाई पड़ रहा है। लेकिन अब कोई उपाय नहीं है। रानी भी देख रही है कि राजा नंगा है, लेकिन कुछ कह नहीं सकती। वह भी ताली पीट रही, कह रही, महाराज इतने सुंदर आप कभी नहीं दिखाई पड़े।
और तब उस आदमी ने कहा कि महाराज देवताओं ने मुझसे कहा था कि जब यह वस्त्र महाराज पहन लें तो उनकी शोभा-यात्रा, उनका प्रोसेशन निकाला जाना चाहिए। राजधानी में हजारों लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, रास्ते के किनारों पर लाखों लोग खड़े हैं। वे कहते हैं, हम महाराज के दर्शन करेंगे। रथ तैयार है, आप कृपा करके रथ पर सवार होइए। आप बाहर चलिए।
अब महाराज और भी घबड़ाए। अभी तक तो कम से कम दरबारी थे, अपने ही मित्र थे, परिचित थे, घर के लोग थे। यह झंझट। उस आदमी ने राजा के कान में कहा, आप घबड़ाइए मत, आपके रथ के पहले एक डुगडुगी पिटती चलेगी और खबर की जाएगी कि ये वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ। आप घबड़ाइए मत। जैसे आदमी ये भीतर हैं वैसे ही आदमी बाहर हैं। सब तरफ एक से एक बेवकूफ आदमी हैं। आप घबड़ाइए मत। और अगर आपने इनकार किया कि मैं बाहर नहीं जाता हूं, तो लोगों को शक हो जाएगा, आपके पिता पर शक हो जाएगा।
राजा ने कहाः चलो भाई। क्योंकि यह पिता पर ही शक।
एक दफा आदमी झूठ में फंस जाए तो फिर कहां रुके यह बहुत मुश्किल हो जाता है। जो आदमी झूठ में पहले ही कदम पर रुक जाता है वह रुक सकता है। जो दस-पांच कदम आगे चल गया फिर बहुत मुश्किल हो जाती है। लौटना भी मुश्किल, आगे जाना भी मुश्किल। उस बेचारे गरीब सम्राट को नंगा जाकर रथ पर खड़ा होना पड़ा। उसके सामने ही डुगडुगी पिटने लगी कि ये वस्त्र सम्राट के सुंदर वस्त्र देवताओं के वस्त्र हैं। ये वस्त्र उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। और सबको वस्त्र दिखाई पड़ने लगे। एकदम प्रशंसा होने लगी।
गांव में खबर तो पहले ही पहुंच गई थी यह। सब लोग तैयार होकर आए थे कि अपने बाप की रक्षा करनी है और वस्त्र भी देखने थे। वस्त्र तो दिखाई न पड़ते थे। राजा नंगा था। लेकिन सारा जनसमूह कहने लगा कि ऐसे सुंदर वस्त्र सपनों में भी नहीं देखे, लेकिन कुछ छोटे बच्चे अपने बापों के कंधों पर चढ़ कर आ गए थे, वे अपने बाप से कहने लगे, पिताजी, राजा नंगा है! उनके पिताजी ने कहाः चुप नासमझ! अभी तेरा ज्ञान कम है, अभी तेरी उम्र कम है। ये बातें अनुभव से

आती हैं, ये बड़ी गहरी बातें हैं। जब मेरे उम्र का हो जाएगा, अनुभव मिल जाएगा तो वस्त्र दिखाई पड़ने लगेंगे। ये बड़े अनुभव से दिखाई पड़ते हैं। जो बच्चे चुप नहीं हुए, उनके मां-बाप उनका मुंह बंद करके भीड़ के पीछे खिसक गए। क्योंकि बच्चों का क्या भरोसा, आस-पास के लोग सुन लें कि इस आदमी के लड़के ने यह कहा है!
हमेशा भीड़ के भय के कारण हम सत्यों को स्वीकार किए बैठे रहते हैं, भीड़
का भय, फियर ऑफ क्राउड। जिसको हम सत्य मान कर बैठें हैं वह सत्य है? या सिर्फ भीड़ का भय है कि चारों तरफ के लोग क्या कहेंगे? चारों तरफ के लोग जिसको मानते हैं उसको हम भी मानते हैं। ऐसा आदमी सत्य की खोज में कभी भी नहीं जा सकता है, जो भीड़ को स्वीकार कर लेता है।
सत्य की खोज भीड़ से मुक्त होने की खोज है। वह जो पब्लिक ओपिनियन है, वह
जो भीड़ का मत है, उसको जो पकड़ कर बैठ जाता है वह आदमी सत्य की यात्रा में एक कदम भी नहीं उठा सकता, क्योंकि भीड़ एक-दूसरे से भयभीत है। आप जिनसे भयभीत हैं वे आपसे भयभीत हैं, यह म्युचुअल फियर है, इससे छुटकारा बहुत मुश्किल है। और लोग क्या कहेंगे, दुनिया क्या कहेगी, जब सब लोग ऐसा मानते हैं तो ठीक ही होगा। सत्य की ये धारणाएं सत्य की धारणाएं नहीं असत्य को सत्य बनाने की तरकीबें हैं। वह जो फॉल्स है, जो मिथ्या है, जो झूठा है, उसको भीड़ के द्वारा बल इकट्ठा किया जाता है। सत्य तो अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। लेकिन असत्य को भीड़ का मत चाहिए, उसके बिना खड़ा नहीं हो सकता।
इसीलिए तो दुनिया में जब असत्य को फैलाना हो, जब असत्य को प्रचारित करना हो तो एक आदमी हिम्मत नहीं जुटा पाता। भीड़ चाहिए, भीड़ के साथ प्रचार चाहिए, भीड़ के साथ भय चाहिए, क्योंकि भय के बिना भीड़ भी मानने को राजी नहीं होगी। इसलिए वे कहते हैं कि अगर ईश्वर को नहीं माना, तो नरक जाना पड़ेगा। अब नरक जाने की तैयारी किसी की भी नहीं हो सकती। ईश्वर को न मानने की तैयारी बहुत लोगों की हो सकती है, लेकिन नरक जाने की तैयारी और फिर नरक का चित्र कि वहां आग के कड़ाहे जल रहे हैं अनंत काल से, तेल भरा है उनमें, न तेल चुकता है, न आग चुकती है और आदमी उनमें सड़ाए जा रहे हैं, जलाएं जा रहे हैं। आदमी मरता भी नहीं है उस कड़ाह में, सिर्फ जलता है। करोड़ों-करोड़ों कीड़े हैं जो आदमी के जाते ही उसके शरीर में सब तरफ से घुस जाते हैं, हजारों छेद कर देते हैं, चक्कर लगाते हैं उसके शरीर में वे कीड़े, वे कीड़े मरते नहीं, वे कीड़े अमर हैं और आदमी के शरीर भर में छिद्र-छिद्र हो जाते हैं, छलनी हो जाता है, लेकिन वह भी मरता नहीं है और लाखों-करोड़ों कीड़े उसके शरीर में सब तरफ से घुसते हैं और दौड़ते हैं।
इस तरह की घबड़ाहटें पैदा करते हैं वे। वे कहते हैं, अगर नहीं मानोगे, नरक जाना पड़ेगा। तो आदमी सोचता है कि मान ही लो। ऐसा नरक अगर कहीं हुआ, अगर कहीं हुआ, तो कौन झंझट में पड़े।
ठीक है तुम्हारे भगवान हैं। वे कहते हैं, और जो भगवान को मान लेगा, हमारे भगवान को, क्योंकि भगवान बहुत प्रकार के हैं। भगवान का कोई एक प्रकार नहीं, कोई एक क्वालिटी नहीं; बहुत गुण हैं, बहुत भेद हैं, बहुत सी वेराइटी हैं भगवान की। मुसलमान का भगवान अलग तरह का है, हिंदू का अलग तरह का है, ईसाई का अलग तरह का है, इसका इस तरह का है, उसका उस तरह का है। जितने तरह के लोग हैं उतने तरह के भगवान हैं। वे सब कहते हैं कि हमारे भगवान को! अगर दूसरे के भगवान को माना तो फिर तुम समझ लेना, नरक के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह जाएगा। क्योंकि आखिर में जीसस क्राइस्ट ही बचाएंगे, ईसाई कहता है। मुसलमान कहता है, जब मोहम्मद को पुकारोगे तब वही बचाएंगे कोई और बचाने वाला नहीं है। तो ध्यान रखना, अगर मोहम्मद से बचे तो गए दोजख में, अगर जीसस से बचे तो जलना पड़ेगा अनंतकाल तक अग्नि में।
हां, और जो जीसस को मानेंगे, मोहम्मद को मानेंगे उनके लिए स्वर्ग में सारी सुख-सुविधाओं का इंतजाम है। उनके लिए वहां सुंदर महल हैं। और स्वर्ग पता है आपको, यहां तो आप एकाध कमरे को एअरकंडीशन कर पाते हैं, स्वर्ग पूरा का पूरा एअरकंडीशंड है, शीतल मंद बयार वहां बहती रहती है सदा। वहां सूरज निकलता है लेकिन ताप नहीं होता, सिर्फ प्रकाश होता है। वहां वृक्ष कभी कुम्हलाते नहीं, फूल कभी मुरझाते नहीं, वहां पत्ते कभी पीले नहीं पड़ते,

वहां कभी बुढ़ापा नहीं होता। स्त्रियों की उम्र वहां सोलह वर्ष पर रुक जाती है, उसके आगे नहीं जाती। ऐसा सुंदर स्वर्ग! वहां वृक्ष हैं, कल्पवृक्ष, जिनके नीचे बैठ कर जो भी आप कामना करें वह कामना करते ही पूरी हो जाती है। ऐसा नहीं कि फिर उसके लिए कोई श्रम करना पड़ता हो, ऐसा नहीं कि किसी से कहना पड़ता हो। आप वृक्ष के नीचे बैठ गए और आपने कहा कि एक देवी मौजूद हो जाए, देवी मौजूद हो जाएगी। आपने कहा कि पलंग आ जाए, पलंग आ जाएगा, आंख खुली है पलंग सामने मौजूद है। वहां कामना की और पूरी हो जाती है, ऐसे कल्पवृक्ष हैं। जो हमारे भगवान को मानेगा उसको ऐसे कल्पवृक्ष मिलेंगे, जो नहीं मानेगा उसको नरक में डाल दिया जाएगा।
यह भय के आधार पर आदमी को कुछ भी मनाने की कोशिश की जाती है। फिर भीड़
का भय, जिनके साथ जीना है उनके अनुकूल न रहो तो बहुत मुसीबत हो जाती है, वे मुसीबत में डाल देंगे, जीना मुश्किल कर देंगे। लड़की का विवाह होना मुश्किल हो जाएगा, समाज की जिंदगी कठिन हो जाएगी। उसके भय से मानते चलो जो लोग कहते हैं। भीड़ के भय को मान लो। भीड़ जिसको कहे भगवान उसको भगवान, भीड़ जिसको कहे शास्त्र उसको शास्त्र, भीड़ कहे रात है अभी तो कहना रात, भीड़ कहे दिन है तो कहना दिन। लेकिन भीड़ को मानने वाला व्यक्ति कभी भी आत्मा के विकास को उपलब्ध नहीं होता।
आत्मा के विकास को वे उपलब्ध होते हैं जो सत्य की सतत चेष्टा करते हैं खोज की, जो सत्य के लिए कुछ भी खोने को तैयार होते हैं, जो सत्य के लिए सब कुछ दांव पर लगाने का साहस जुटाते हैं, वे लोग सत्य को उपलब्ध होते हैं। लेकिन इस देश ने तो सत्य को पाने की सामर्थ्य और आकांक्षा ही खो दी है। वह कहता है आलोचना ही मत करना, वह कहता है विचार ही मत करना। नहीं, मैं आपसे प्रार्थना करूंगा, विचार करना, संदेह करना, आलोचना करना। आपके महात्मा और आपके महापुरुष इतनी कच्ची मिट्टी के नहीं हैं कि आपकी आलोचना और आपके विचार से नष्ट हो जाएंगे। वे बचेंगे और निखर कर बचेंगे जैसे स्वर्ण आग से गुजर कर और साफ हो जाता है वैसे ही आलोचना की निरंतर धारा से गुजर कर महापुरुष और निखर कर प्रकट हो जाते हैं। उनमें भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं। और जो नहीं प्रकट हो सकेंगे उनसे जितनी जल्दी छुटकारा हो जाए उतना ही अच्छा है। उनके साथ कब तक जीएंगे हम? उनको जिलाने की जरूरत क्या है? इसलिए मैंने जान कर एक उदाहरण की तरह गांधी को चुन कर बात की है और अगर मुझे खयाल आ गया तो मैं एक-एक महापुरुष पर बात करने का विचार करता हूं और एक-एक महापुरुष पर विचार करना पड़ेगा।
मुल्क की प्रतिभा को जगाना जरूरी है। मुल्क के सोए प्राणों को फिर से गति देनी जरूरी है, मुल्क के मन में फिर एक मंथन पैदा करना जरूरी है। अगर मनन पैदा हो जाए, अगर चिंतन पैदा हो जाए, अगर विचार पैदा हो जाए, तो हम हजारों साल के अंधकार को मिटाने में समर्थ हो जाएंगे। एक छोटा सा दीया और हजारों साल का अंधकार मिट जाता है। अंधकार यह नहीं कहता कि मैं हजारों साल पुराना हूं इसलिए इस छोटे से दीये से कैसे मिटूंगा, नहीं मिटता। एक दिन का दीया है इससे मैं कैसे मिटूंगा, मैं हजारों साल पुराना हूं। नहीं, एक छोटा सा दीया, कितना ही पुराना अंधकार हो मिट जाता है। विचार का दीया जले इस देश के प्राणों में तो हजारों साल का अंधकार मिट सकता है।

मेरी बातों को इन तीन दिनों में इतने प्रेम और इतनी शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आपके विचार का दीया जलेगा। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
सातवां प्रवचन

उगती हुई जमीन

एक मित्र ने पूछा कि आप गांधी जी की अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं क्या? और यदि अहिंसा में विश्वास नहीं करते हैं गांधी की, तो क्या आपका विश्वास हिंसा में है?

पहली बात यह कि मेरा विश्वास हिंसा में तनिक भी नहीं है और दूसरी बात
यह कि गांधी की अहिंसा में भी विश्वास नहीं करता हूं। गांधी की अहिंसा में भी बहुत अहिंसा नहीं मालूम देती, इसलिए गांधी की अहिंसा बहुत लचर, बहुत कमजोर है। गांधी की अहिंसा मुझे बहुत अधकचरी इसलिए लगती है क्योंकि पूर्ण अहिंसा में मेरी आस्था है। गांधी जी की अहिंसा के वास्तविक अंतराल में झांकने पर मुझे अचंभा सा होता है।
गांधी जी अफ्रीका में बोर युद्ध में स्वयंसेवक की तरह सम्मिलित हुए। बोर अपनी आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे और गांधी जी गोरों की आजादी की लड़ाई को दबाने के लिए, जो साम्राज्यशाही प्रयास कर रही थी उस साम्राज्यशाही की ओर से स्वयंसेवक की तरह भरती हुए। गांधी जी पहले महायुद्ध में अंग्रेजों के एजेंट की तरह भारत में लोगों को फौज में भरती करवाने का काम करते रहे। यह बहुत अचंभे की बात मालूम पड़ती है कि पहले महायुद्ध में गांधी ने लोगों को फौज में भरती होने और युद्ध में जूझने की प्रेरणा दी।
पंजाब के गांवों में मुसलमानों ने बगावत कर दी। मुसलमानों को दबाने
के लिए अंग्रेजों ने गोरखों की फौज भेज दी थी। अंग्रेजों का न्याय था कि अगर हिंदू किसी गांव में विद्रोह करें तो मुसलमान की सेना की टुकड़ी भेजो और यदि मुसलमानों का गांव विद्रोह करे तो हिंदुओं की टुकड़ी वहां भेजो ताकि दोनों ही संप्रदायों को आग में झोंक कर, उससे हाथ सेंके जा सकें। गोरखों की टुकड़ी ने एक अदभुत ऐतिहासिक कार्य किया। गोरखों की टुकड़ी ने मुसलमान बस्ती पर, मुसलमान लोगों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। वे बंदूकों को जमीन पर टेक कर खड़े हो गए और उन्होंने कहा, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चलाएंगे। यह बड़ी अदभुत और बड़ी अहिंसात्मक घटना थी। उन टुकड़ियों ने अपनी जान बाजी पर लगा कर गोली चलाने से इनकार कर दिया। उन्होंने जाकर अपनी बंदूकें छावनी में जमा करवा दीं और जाकर समर्पण कर दिया और कहा कि हम गोली चलाने से इनकार करते हैं, चाहे जो भी सजा दी जाए, हम अपने भाइयों पर गोली नहीं चला सकते।
हम तो सोच सकते थे कि गांधी जी इन सैनिकों की प्रशंसा करेंगे। लेकिन गांधी जी ने इन सैनिकों की निंदा की। इंग्लैंड में जब गांधी जी से पूछा गया कि आश्चर्य की बात है कि आपने अहिंसक होते हुए इन सैनिकों की निंदा की, जिन्होंने बंदूकें चलाने से इनकार किया। तो गांधी जी ने क्या कहा, आपको पता है?
गांधी जी ने कहाः मैं सैनिकों को आज्ञाहीनता नहीं सिखा सकता हूं क्योंकि कल जब देश आजाद हो जाएगा और सत्ता हमारे हाथ में आ जाएगी तो इन्हीं सैनिकों के सहारे हमें शासन करना है।
यह किस प्रकार की अहिंसा है? यह थोड़ा विचारना है।
वे सैनिक भी दंग रह गए होंगे। अगर गांधी जी ने इन लोगों की प्रशंसा की होती तो हिंदुस्तान भर का सैनिक यह हिम्मत जुटा सकता था, वह हर हिंदुस्तानी चाहे वह किसी भी संप्रदाय का हो, पर गोली चलाने के लिए इनकार कर देता। लेकिन गांधी जी ने इन सैनिकों की निंदा की, आज्ञाहीनता के आधार पर और कहा कि अहिंसा को तोड़ना उचित नहीं है। सैनिकों का कर्तव्य है कि वे आज्ञा मानें। क्यों? क्योंकि कल जब गांधी जी के लोगों के हाथ में देश जाएगा तो इन्हीं सैनिकों के सहारे शासन चलाना है। अब हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि बाईस वर्ष की आजादी के इतिहास में, गांधी जी के पीछे चलने वाले लोगों के हाथ में जब से सत्ता आई है, शासन का दमन बढ़ता ही गया है, गोलियों और संगीनों के आधार पर शासन चला जा रहा है। ये गोलियां सत्ता के चलाए जाने

के काम में लाई जा रही हैं। अब सत्ता गांधीवादियों के हाथ में है। अंग्रेजों ने भी कभी हिंदुस्तान में इतनी गोलियां नहीं चलाई थीं जितनी कि जिसको हम अपना शासन कहते हैं, उन्होंने चलाईं और जिस क्रूरता से गोली चलाई और जितने लोगों की हत्या की!
यह बहुत आश्चर्य की बात है। लेकिन यह भी साथ में समझ लेना जरूरी है कि गांधी जी अहिंसात्मक रूप से जो आंदोलन चलाते थे वह आंदोलन ही दबाव डालने के लिए था और मेरी दृष्टि में जहां दबाव है वहां हिंसा है। चाहे दबाव कहीं से डाला जाए, चाहे आपके घर के सामने आकर अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानोगे। यह दबाव ही हिंसा है। दबाव मात्र हिंसा है। दबाव डालने के ढंग अहिंसात्मक हो सकते हैं लेकिन दबाव खुद हिंसा है। अगर मैं अपनी बात मनवाने के लिए अपनी जान दांव पर लगा दूं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा तो जिसको हम सत्याग्रह कहते हैं और अनशन कहते हैं वह क्या है? वह आत्महत्या की धमकी है और वह धमकी हिंसा है। चाहे दूसरे को मारने की धमकी हो, चाहे अपने को मारने की धमकी हो। धमकी सदा हिंसात्मक है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह धमकी अपने लिए है या दूसरे के लिए है। कई बार यह भी हो सकता है कि मैं आपको मारने के लिए धमकी दूं तो आप मेरा मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन जब मैं अपने को मारने की धमकी देता हूं तो आपको निहत्था कर देता हूं, आप मुकाबला नहीं कर सकते हैं। यह हिंसा ज्यादा सूक्ष्म है और बहुत छिपी हुई है। इसका पता चलाना बहुत मुश्किल है।
अगर अहिंसात्मक सत्याग्रह किसी को करना हो तो न तो खबर करनी चाहिए, न जनता को पता चलना चाहिए, न जिस आदमी के हृदय-परिवर्तन के लिए कोशिश कर रहा हूं उसको खबर करनी चाहिए। मौन, एकांत में मैं अपने को शांत करूं और ध्यानस्थ हो जाऊं, समाधि-मग्न हो जाऊं, अपने को पवित्र करूं, प्रार्थना करूं और हृदय में वे विचार भी हों जो दूसरे व्यक्ति को परिवर्तित करते रहें तब तो यह अहिंसा हुई। लेकिन यदि अखबारों में प्रचार हो, भीड़-भाड़ को पता चल जाए, मेरी जान को बचाने वाले लोग खुश हो जाएं और जिस आदमी को बदलना चाहता हूं उसके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा। यह अहिंसा नहीं है? यह सब हिंसा है, यह हिंसा का ही रूपांतरण है, ये हिंसा के ही श्रेष्ठतम छद्म रूप हैं।
मैंने एक मजाक सुना है। मैंने सुना है, एक युवक एक युवती से प्रेम करता था और उसके प्रेम में दीवाना था, लेकिन इतना कमजोर था कि हिम्मत भी नहीं जुटा पाता था कि विवाह करके उस लड़की को घर ले आए, क्योंकि लड़की का बाप राजी नहीं था। फिर किसी समझदार ज्ञानी ने उसे सलाह दी कि अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों नहीं करता? कमजोर, कायर, वह डरता था। उसको यह बात जंच गई। कायरों को अहिंसा की बात एकदम जंच जाती है--इसलिए नहीं कि अहिंसा ठीक है, बल्कि कायर इतने कमजोर होते हैं कि कुछ और नहीं कर सकते।
गांधी जी की अहिंसा का जो प्रभाव इस देश पर पड़ा वह इसलिए नहीं कि वे लोगों को अहिंसा ठीक मालूम पड़ी। लोग हजारों साल के कायर हैं और कायरों को यह बात समझ में पड़ गई है कि ठीक है, इसमें मरने-मारने का डर नहीं है, हम आगे जा सकते हैं। लेकिन तिलक गांधी जी की अहिंसा से प्रभावित नहीं हो सके, सुभाष भी प्रभावित नहीं हो सके। भगतसिंह फांसी पर लटक गया और हिंदुस्तान में एक पत्थर नहीं फेंका गया उसके विरोध में! आखिर क्यों? उसका कुल कारण यह था कि हिंदुस्तान जन्मजात कायरता में पोषित हुआ है। भगतसिंह फांसी पर लटक रहे थे, गांधी जी वाइसराय से समझौता कर रहे थे और उस समझौते में हिंदुस्तान के लोगों को आशा थी कि शायद भगतसिंह बचा लिया जाएगा, लेकिन गांधी जी ने एक शर्त रखी कि मेरे साथ जो समझौता हो रहा है उस समझौते के आधार पर सारे कैदी छोड़ दिए जाएंगे लेकिन सिर्फ वे ही कैदी जो अहिंसात्मक ढंग के कैदी होंगे। उसमें भगतसिंह नहीं बच सके, क्योंकि उसमें एक शर्त जुड़ी हुई थी कि अहिंसात्मक कैदी ही सिर्फ छोड़े जाएंगे। भगतसिंह को फांसी लग गई। जिस दिन हिंदुस्तान में भगतसिंह को फांसी हुई उस दिन हिंदुस्तान की जवानी को भी फांसी लग गई। उसी दिन हिंदुस्तान को इतना बड़ा धक्का लगा जिसका कोई हिसाब नहीं। गांधी की भीख के साथ हिंदुस्तान का बुढ़ापा जीता,

भगतसिंह की मौत के साथ हिंदुस्तान की जवानी मरी। क्या भारतीय युवा पीढ़ी ने कभी इस पर सोचा है?
उस युवक को किसी ने सलाह दी, तू पागल है, तेरे से कुछ और नहीं बन सकेगा, अहिंसात्मक सत्याग्रह कर दे। वह जाकर उस लड़की के घर के सामने बिस्तर लगा कर बैठ गया और कहा कि मैं भूखा मर जाऊंगा, आमरण अनशन करता हूं, मेरे साथ विवाह करो। घर के लोग बहुत घबड़ाए, क्योंकि वह और कुछ धमकी देता तो पुलिस को खबर करते लेकिन उसने अहिंसात्मक आंदोलन चलाया था और गांव के लड़के भी उसका चक्कर लगाने लगे। वह अहिंसात्मक आंदोलन है, कोई साधारण आंदोलन नहीं है और प्रेम में भी अहिंसात्मक आंदोलन होना ही चाहिए।
घर के लोग बहुत घबड़ाए। फिर बाप को किसी ने सलाह दी कि गांव में जाओ, किसी रचनात्मक, किसी सर्वोदयी, किसी समझदार से सलाह लो कि अनशन में क्या किया जा सकता है। बाप गए, हर गांव में ऐसे लोग हैं जिनके पास और कोई काम नहीं है। वे रचनात्मक काम घर बैठे करते हैं। बाप ने जाकर पूछा, हम क्या करें बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। अगर वह छुरी लेकर धमकी देता तो हमारे पास इंतजाम था, हमारे पास बंदूक है, लेकिन वह मरने की धमकी देता है, अहिंसा से। उस आदमी ने कहा, घबड़ाओ मत, रात मैं आऊंगा, वह भाग जाएगा। वह रात को एक बूढ़ी वेश्या को पकड़ लाया, उस वेश्या ने जाकर उस लड़के के सामने बिस्तर लगा दिया और कहा कि आमरण अनशन करती हूं, तुमसे विवाह करना चाहती हूं। वह रात बिस्तर लेकर लड़का भाग गया।
गांधी जी ने अहिंसात्मक आंदोलन के नाम पर, अनशन के नाम पर जो प्रक्रिया चलाई थी, भारत उस प्रक्रिया से बर्बाद हो रहा है। हर तरह की नासमझी इस आंदोलन के पीछे चल रही है। किसी को आंध्र अलग करना हो, तो अनशन कर दो, कुछ भी करना हो, आप दबाव डाल सकते हैं और भारत को टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा है, भारत को नष्ट किया जा रहा है। वह एक दबाव मिल गया है आदमी को दबाने का। मर जाएंगे, अनशन कर देंगे, यह सिर्फ हिंसात्मक रूप है, अहिंसा नहीं है। जब तक किसी आदमी को जोर जबरदस्ती से बदलना चाहता हूं चाहे वह जोर जबरदस्ती किसी भी तरह की हो, उसका रूप कुछ भी हो, तब तक मैं हिंसात्मक हूं। मैं गांधी जी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं--उसका यह मतलब न लें कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं। अखबार यही छपाते हैं कि मैं अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं।
मैं गांधी जी की अहिंसा के पक्ष में नहीं हूं क्योंकि मैं अहिंसा के पक्ष में हूं। लेकिन उसको मैं अहिंसा नहीं मानता इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं। गांधी जी की अहिंसा चाहे गांधी जी को पता हो या न हो, हिंसा करेगी। यह हिंसा बड़ी सूक्ष्म है। एक आदमी को मार डालना भी हिंसा है और एक आदमी को अपनी इच्छा के अनुकूल ढालना भी हिंसा है। जब एक गुरु दस-पच्चीस शिष्यों की भीड़ इकट्ठी करके उनको ढालने की कोशिश करता है अपने जैसा बनाने की, जैसे कपड़े मैं पहनता हूं वैसे कपड़े पहनो, जब मैं उठता हूं ब्रह्ममुहूर्त में तब तुम उठो, जो मैं करता हूं वही तुम करो--तो हमें पता नहीं है, यह चित्त बड़ी सूक्ष्म हिंसा की बात सोच रहा है। दूसरे आदमी को बदलने की चेष्टा में, दूसरे आदमी को अपने जैसा बनाने की चेष्टा में भी आदमी हिंसा करता है। जब एक बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाने की कोशिश करता है तो बाप को पता है, यह हिंसा है। जब बाप बेटे से कहता है कि तू मेरे जैसा बनना, तो दो बातें काम कर रही हैं। एक तो बाप का अहंकार और दूसरा कि मेरे बेटे को मैं अपने जैसा बना कर छोडूंगा। यह प्रेम नहीं है। सारे गुरु लोगों को अपने जैसा बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उस प्रयत्न में व्यक्ति हिंसा करता है। जो आदमी अहिंसक है वह कहता है कि तुम अपने ही जैसा बन जाओ, बस यही काफी है, मेरे जैसे बनने की कोई जरूरत नहीं है।
कोई अहिंसात्मक व्यक्ति किसी को अपना अनुयायी नहीं बना सकता है, क्योंकि अनुयायी बनाना सूक्ष्म हिंसा है। कोई अहिंसक व्यक्ति किसी को अपना शिष्य नहीं बना सकता है, क्योंकि गुरु बनने जैसी हिंसा खोजनी दुनिया में बहुत मुश्किल है। लेकिन ये सूक्ष्म हिंसाएं हैं जो दिखाई नहीं देतीं और यह भी ध्यान रहे कि जब कोई आदमी दूसरे के साथ हिंसा करना बंद कर देता है तो हिंसा की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती, हिंसा की प्रवृत्ति स्वयं पर लौट आती

है। अपने साथ हिंसा करना शुरू कर देता है। जिसको हम तपश्चर्या कहते हैं, तप कहते हैं, त्याग कहते हैं, सौ में निन्यानबे मौके पर अपने पर लौटी हुई हिंसा के ये दूसरे नाम हैं और कुछ भी नहीं।
एक आदमी दूसरे को सताना चाहता है। अंग्रेजी में एक शब्द सैडिस्ट है,
जो आदमी दूसरे को सताना चाहता है उसको वे कहते हैं सैडिस्ट, उसे वे कहते हैं परपीड़नवादी। एक दूसरा शब्द है मैसोचिस्ट, जो आदमी अपने को सताने में लग जाता है उसको कहा जाता है मैसोचिस्ट, आत्मपीड़नवादी। हम दूसरों को सताने वाले को तो हिंसक कहते हैं, लेकिन खुद को सताने वाले को हिंसक नहीं कहते हैं। और मजा यह है कि दूसरे को सताने में तो दुनिया बाधा डाल सकती है पर स्वयं को सताने में कोई भी बाधा नहीं डाल सकता है। स्वयं को सताने में प्रत्येक आदमी मुक्त है। यह जो तपश्चर्या करने वाले लोग हैं, ये कांटों में खड़े लोग हैं, धूप में खड़े लोग हैं, भूख और उपवास करने वाले लोग हैं-- इनकी पूरी कथा आप समझें। इनके आविष्कारों का पता लगाएं कि कैसे-कैसे अपने को सताने के, आत्मपीड़ा के उपाय निकालते हैं। कैसे उनको साधु कहें जो अपनी जननेंद्रिय काट लेते रहे? ऐसे साधु भी रहे हैं जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं और अंधे हो गए, और ऐसे साधु भी रहे हैं जो पैर के जूते में कीलें लगाते रहे ताकि पैर में घाव बनते रहें। कमर में पट्टे बांधते रहे और कीलें लगाते रहे ताकि कमर में घाव बनते रहें। शरीर को सब तरह से कोड़े मारने वाले साधुओं की बड़ी जमात रही है। वे कोड़े मारने वाले साधु सुबह से उठ कर कोड़े मार रहे हैं और जो जितने ज्यादा कोड़े मारेगा उतना बड़ा साधु हो जाएगा।
ये सारे के सारे लोग हिंसक लोग हैं, ये अहिंसक लोग नहीं हैं, केवल अंतर इतना है कि इनकी हिंसा दूसरे पर न जाकर स्वयं पर लौट आई है। उसने वापस लौटना प्रारंभ कर दिया है अहिंसा बहुत अदभुत बात है, लेकिन हिंसा से बचना बहुत मुश्किल है। हिंसा को बदल लेना बहुत आसान है, हिंसा नये रूपों में खड़ी हो जाती है। दूसरों को बदलने की चिंता, दूसरों को बदलने का दबाव, दूसरों को अपने जैसा बनाने की सारी कोशिश हिंसा है और दुनिया के सारे गुरुओं को दुनिया के इन सारे लोगों को जो अनुयायियों की भीड़ इकट्ठी करते हैं, जमातें खड़ी करते हैं, और अपनी शक्ल के आदमी पैदा करते हैं; उन सबको मैं एक कतार में हिंसक मानता हूं। अहिंसक व्यक्ति दूसरी बात है।
अहिंसक का मतलब है ऐसा व्यक्ति, जो किसी पर भी किसी तरह का दबाव डालने
की कामना से मुक्त हो गया है, क्योंकि दबाव डाल कर हम दूसरे से श्रेष्ठ हो जाते हैं और आपने कभी खयाल किया है, छुरा बता कर आप दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते लेकिन अनशन करके आप दूसरों से श्रेष्ठ हो जाते हैं।
नीत्शे ने एक बात कही है मजाक में जीसस के खिलाफ। कहा है कि जीसस ने कहा है कि कोई गाल पर तुम्हारे चांटा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। नीत्शे ने कहा है, इससे ज्यादा अपमान दूसरे आदमी का और क्या हो सकता है? तुमने उसे आदमी ही नहीं माना, अपने बराबर भी नहीं माना। किसी ने चांटा मारा तुम्हारे गाल पर, तुमने दूसरा गाल कर दिया। उस दूसरे आदमी से देवता हो गया, वह जमीन का कीड़ा हो गया। नीत्शे ने मजाक में कहा है कि दूसरे आदमी का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है! और यह हो सकता है कि कोई आदमी प्रेम के कारण दूसरा गाल न करे, सिर्फ इसलिए दूसरा गाल कर दे कि देख लो, तुम हो जमीन के कीड़े, हम हैं फरिश्ते, हम हैं देवता।
दूसरे से ऊंचा होने की तरकीब इतनी बारीक है कि एक आदमी दूसरे से ऊंचा
हो सकता है सिंहासन पर बैठ कर और एक आदमी दूसरे से ऊंचा हो सकता है त्याग करके। लेकिन दूसरे से ऊंचा होने की कामना अगर भीतर शेष है तो वह कामना हिंसा में ले जाती है, अहिंसा में नहीं। जब भी हम दूसरे से ऊंचा होने की कामना में संलग्न हो जाते हैं, चाहे हमें ज्ञात हो और ज्ञात न हो, चाहे हमें कांशसली पता हो और चाहे अनकांशस माइंड काम कर रहा हो, चाहे अचेतन मन काम कर रहा हो और हमें पता न हो, लेकिन दूसरे को बदलने की कोशिश में स्वयं ही श्रेष्ठता भीतर अनुभव होनी शुरू हो जाती है।
मैं इस सबके बुनियादी रूप से खिलाफ हूं। मैं मानता हूं कि व्यक्ति प्रार्थना कर सकता है, ध्यान कर सकता है, व्यक्ति अंतस को शुद्ध कर सकता है और उसके अंतस की शुद्धि के कारण उसके चारों तरफ के दबावों में परिवर्तन

शुरू हो जाएगा। लेकिन वह परिवर्तन उस व्यक्ति की चेष्टा नहीं है, उस व्यक्ति का प्रयास नहीं है। महावीर और बुद्ध भी अहिंसक थे। गांधी की अहिंसा से मैं उनकी अहिंसा को श्रेष्ठतर और शुद्धतर मानता हूं। गांधी के और बुद्ध के बीच हम कुछ बातें और करें तो पता चलेगा। महावीर और बुद्ध किसी को बदलने के लिए कोई अहिंसक आंदोलन नहीं कर रहे हैं, लेकिन भीतर आत्मा प्रविष्ट हुई है, उसकी किरणें आएंगी और बिना प्रयास के चारों तरफ बदलाहट लानी शुरू करती हैं। अहिंसक आदमी ने दुनिया में पहले भी अपनी हिंसा की किरणें दी हैं लेकिन वे किरणें प्यार करके दी गई हैं और चेष्टा करके नहीं दी गई हैं। वे किरणें उपलब्ध होती हैं। सूरज निकलता है और अंधेरा विलीन हो जाता है। सूरज कोई घोषणा नहीं करता कि अंधेरे को दूर करने मैं आ गया हूं, अंधेरा सावधान!
अहिंसा कुछ करती नहीं है, अहिंसा से परिवर्तन आता है। अहिंसक परिवर्तन चाहता नहीं। गांधी की अहिंसा में परिवर्तन की चाह बहुत स्पष्ट है इसलिए मैं उसे अहिंसा नहीं मानता हूं। गांधी की अहिंसा में मेरी कोई श्रद्धा, कोई विश्वास नहीं है क्योंकि वह अहिंसा ही मुझे दिखाई नहीं पड़ती। मैं कोई हिंसा का पक्षपाती नहीं हूं, मुझसे ज्यादा हिंसा का दुश्मन खोजना कठिन है, क्योंकि अहिंसा में ही मुझे जहां हिंसा दिखाई पड़ती हो उस हिंसा से मैं राजी नहीं हो सकता हूं।

एक दूसरे मित्र ने इसी संबंध में पूछा है कि आप कहते हैं कि क्रांति अहिंसक ही हो सकती है, लेकिन एक मित्र ने पूछा है कि क्रांति तो सदा हिंसक होती है, अहिंसक क्रांति तो कभी नहीं होती।

जिस क्रांति में हिंसा है उसे मैं क्रांति नहीं कहता। वह क्रांति नहीं है, सिर्फ उपद्रव है। उपद्रव और क्रांति में बहुत फर्क है। जिसके साथ हिंसा जुड़ गई वह क्रांति खतम हो गई। हिंसा से क्रांति खत्म है क्योंकि क्रांति का अंतिम अर्थ क्या है? क्रांति का अंतिम अर्थ हैः आत्मिक-परिवर्तन, हार्दिक-परिवर्तन, लोगों की चेतना का बदल जाना और जब हम लोगों की चेतना को नहीं बदल पाते हैं, जब लोगों की चेतना नहीं बदलती है तब हम हिंसा पर उतारू हो जाते हैं। लेकिन जो आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है वह लोगों की चेतना बदल सकेगा? इस संबंध में एक करोड़ लोगों की कम से कम हत्या की गई। करोड़ लोगों की हत्या करके भी क्या किसी व्यक्ति की चेतना को बदला जा सका, किसी को रूपांतरित किया जा सका? हिटलर ने भी करीब अस्सी लाख लोगों की हत्या की, लेकिन क्या रूपांतरण हो गया? कौन सी क्रांति हो गई? सामान बांट दिया गया, संपत्ति व्यक्तिगत न रही, जो एक करोड़ लोगों को बिना मारे भी हो सकता था और एक करोड़ लोगों को मारने के कारण जो परिवर्तन हुआ वह इतना तनावपूर्ण है कि जब तक हिंसा ऊपर छाती पर सवार है तभी तक उसको कायम रखा जा सकता है, अन्यथा परिवर्तन विलीन होना शुरू हो जाएगा।
स्टैलिन के जाने के बाद रूस के कदम विकास की तरफ निश्चित रूप से उठे। स्टैलिन के हटते ही जैसे हिंसा कम हुई है। रूस के कदम विकास की तरफ उठे। रूस में जब से व्यक्तिगत संपत्ति का पुनरागमन हुआ, रूस में कारें व्यक्तिगत रूप से रखी जा सकती हैं, जिसकी वहां कल तक कल्पना नहीं थी। मकान भी व्यक्तिगत हो सकता है, तनख्वाहों में भी फर्क पैदा हुए--जैसे ही हिंसा से लाई हुई क्रांति विलीन हो जाएगी। हिंसा से लाई क्रांति जबरदस्ती है और जबरदस्ती कहीं क्रांति लाई जा सकती है? जबरदस्ती थोड़ी-बहुत देर किसी को रोका जा सकता है।
जिस चीज को जबरदस्ती से रोकना पड़ता है उसके खिलाफ लोगों का विद्रोह होना शुरू हो जाता है। अच्छे काम भी अगर जबरदस्ती करवाए जाएं। आप यहां बैठे हैं, आप अपनी मौज से यहां आए हैं और आपको अभी खबर की जाए कि आप दो घंटे तक बाहर नहीं निकल सकते हैं, बस यहां बैठना असंभव हो जाएगा। आदमी के साथ आत्मा है, आदमी की आत्मा दबाव को इनकार करती है और करनी चाहिए चाहे वह दबाव अच्छे के लिए ही क्यों न डाला गया हो। दबाव, दबाव है। आदमी के अच्छे के लिए भी दबाव डालने पर आदमी विद्रोह करता है। आपको पता है, अच्छे मां-बाप अपने

बेटों को बिगाड़ने का बुनियादी कारण बनते हैं। पता है आपको क्यों? अच्छे मां-बाप जबरदस्ती बच्चे को अच्छा बनाने की कोशिश करते हैं। दुनिया में कभी किसी को जबरदस्ती अच्छा नहीं बनाया गया है और जो मां-बाप अपने बच्चे को जबरदस्ती अच्छा बनाते हैं वे मां-बाप बच्चों के दुश्मन हैं और अपने बच्चे को बिगाड़ने का काम करते हैं; क्योंकि बच्चे विद्रोह करना शुरू करते हैं। बच्चे के पास जो आत्मा है वह इनकार करना चाहती है जबरदस्ती को और अगर अच्छे के लिए जबरदस्ती की गई तो फिर अच्छे को इनकार करना चाहते हैं क्योंकि जबरदस्ती को इनकार करने से हिंसा शुरू हो जाएगी। क्योंकि कोई भी बात जबरदस्ती से नहीं लाई जा सकती और जबरदस्ती से लाने का मतलब यह है कि लाने वाला बहुत कमजोर है, लोगों को समझा नहीं पाता है, लोगों के हृदय को, मस्तिष्क को राजी नहीं कर पाते हैं। और जब आप लोगों को राजी नहीं कर पाते हैं उनके अच्छे के लिए भी तो फिर आपकी वह अच्छाई बड़ी संतुलित है।
दुनिया में कोई क्रांति हिंसा से नहीं हो सकती है। हां, क्रांति के नाम से हिंसा पलती रही है, लेकिन अब तक कौन सी क्रांति को गई है दुनिया में? ... नहीं हिंसा से क्रांति हो ही नहीं सकती है। क्योंकि क्रांति जबरदस्ती नहीं हो सकती है। क्रांति होगी तो हृदय से होगी। हिंसा तो अति जटिल है और क्रांति अति सरल।
मैं उस क्रांति के पक्ष में हूं जिस क्रांति में दमन नहीं होगा, जिस क्रांति में छाती पर दबाव नहीं होगा, जो क्रांति भीतर से फूल की तरह से खिलेगी और व्यक्तित्व को बदल देगी। मनुष्य में उस क्रांति की प्रतिष्ठा चाहिए है। फ्रांस की क्रांति असफल हो गई क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। रूस की क्रांति सफल नहीं हो सकी क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी थी। माओ जो क्रांति करवा रहे हैं चीन में वह सफल नहीं होगी, क्योंकि वह हिंसा पर खड़ी है। गांधी की क्रांति जो कि बड़ी अहिंसात्मक दिखाई पड़ती थी वह भी असफल हो गई क्योंकि बुनियाद में उसके हिंसा थी। हम देख रहे हैं अपने मुल्क में, गांधी की क्रांति, जो कि एक तरह से लाख दर्जे बेहतर क्रांति है, माओ से, जिसका कि अहिंसा की तरफ रुख है, झुकाव है, यद्यपि जो अहिंसात्मक नहीं है बुनियाद में, वह भी असफल हो गई है। बाईस साल की आजादी के बाद की दुखद कथा बताती है कि गांधी की क्रांति असफल हो गई है।
गांधी की क्रांति असफल हो जाती है, क्योंकि मेरा मानना है कि दबाव है, बदलने की तीव्र आकांक्षा है। तो फिर लेनिन और स्टैलिन और माओ की क्रांति कैसे सफल हो सकती है? दुनिया प्रतीक्षा करती थी एक क्रांति की जो क्रांति चेतना की और अहिंसा की क्रांति होती, लेकिन क्रांति की तैयारी में सबसे बड़ी बाधा क्या है? सबसे बड़ी बाधा हिंसा में आस्था है। जिन लोगों की हिंसा में आस्था है वे लोग दुनिया के चित्त को बदलने के अहिंसात्मक विधान में कूदते भी नहीं, विचार भी नहीं करते, चिंता भी नहीं करते। उस दिशा में कोई काम नहीं करते। हमें यह खयाल ही नहीं है। एक गांव में एक हजार लोग, पचास लाख लोगों में से एक हजार लोग भी अगर अहिंसात्मक हों तो पचास लाख लोगों के चित्त में बुनियादी रूपांतरण शुरू हो जाएगा, लेकिन हमें इसका कुछ पता नहीं।
अभी रूस में एक वैज्ञानिक फ्यादोर ने एक प्रयोग किया है। फ्यादोर रूस
का एक मनोवैज्ञानिक है और चूंकि प्रयोग रूस में हुआ है इसलिए महत्वपूर्ण है। हिंदुस्तान में योगी तो बहुत दिन से यह कहता है, लेकिन कोई सुनता नहीं है। हिंदुस्तान का योगी यह कहता है कि विचार इतनी बड़ी शक्ति है कि अगर कोई विचार किसी व्यक्ति के हृदय में पूर्ण संकल्प से स्थापित हो जाए तो चारों तरफ उस विचार की तरेंगे फैलनी शुरू हो जाती हैं और हजारों लोगों को अहिंसा में रूपांतरित कर देती हैं। एक बुद्ध का पैदा होना, एक महावीर का खड़ा होना इतनी बड़ी क्रांति है जिसका कोई हिसाब नहीं, जिसका कि हमें कोई पता नहीं चलता। क्योंकि लाखों लोगों के प्राण-कमल उनकी किरणों से खिलने शुरू हो जाते हैं।
फ्योदोर ने एक प्रयोग किया रूस में विचार-संक्रमण का, टेलीपैथी का, विचार को दूर भेजने का। उसने मास्को में बैठ कर एक हजार मील दूर विचार का संप्रेषण किया। मास्को में बैठा है वह अपनी लेबोरेटरी में और एक हजार मील

दूर किसी गांव के बगीचे में, पब्लिक पार्क में दस नंबर की बेंच पर एक आदमी बैठा है, उसके पीछे एक भाई छिप कर बैठे हैं। उन्होंने उठा कर फोन किया कि दस नंबर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है, आप आपने विचार से प्रभावित करके उसे सुला दें। फ्योदोर एक हजार मील दूर से कामना करता है अपने मन में कि वह जो आदमी दस नंबर की बेंच पर बैठा है वह सो जाए, सो जाए, सो जाए। यहां वह पूर्ण संकल्प से, पूर्ण एकाग्र चित्त से कामना करता है। वह आदमी तीन ही मिनट के भीतर वहां बेंच पर आंख बंद करके सो जाता है। लेकिन हो सकता है, यह संयोग की बात हो। दोपहर तक का थका-मांदा आदमी ऐसे ही सो सकता है। झाड़ियों में छिपे उसके मित्र ने फौरन फोन करके कहा कि यह सो गया है जरूर। तुमने कहा, तीन मिनट में सो जाओ तो तीन मिनट में सो गया। लेकिन यह संयोग भी हो सकता है। अब उसे ठीक पांच मिनट के भीतर उठा दो तो हम समझेंगे।
फ्योदोर फिर सुझाव भेजता है कि उठो, उठो, उठो, जागो, जाग जाओ, ठीक पांच मिनट में जाग जाओ। वह आदमी पांच मिनट में आंख खोल कर बैठ जाता है। मित्र उसके पास जाकर पूछते हैं कि आपको कुछ अजीब सा तो नहीं लगा? वह आदमी कहता है, अजीब सा से मतलब? मैं जब आया तो कुछ विश्राम करने लगा तो जैसे मेरे पूरे प्राण कह रहे हैं कि सो जाओ। मैं रात अच्छी तरह सोया हूं, थका-मांदा नहीं हूं। पूरा व्यक्तित्व कहता है कि सो जाओ। फिर मैं सो गया। लेकिन अभी क्षण भर पहले दूर से एक आवाज आई कि उठो, एकदम जाग जाओ। मैं बहुत हैरान हुआ कि यह क्या हुआ! तो, एक हजार मील दूर भी विचार संक्रमित हो सकता है।
अभी अमरीका की एक प्रयोगशाला में एक और अदभुत प्रयोग हुआ जो मैं आपसे कहना चाहूंगा। वह प्रयोग भी बहुत बहुमूल्य है आने वाले भविष्य में। अंतरिक्ष में किए जाने वाले प्रयोग भी इसके मुकाबले कम मूल्य के सिद्ध होंगे। एटम और हाइड्रोजन के प्रयोग भी कम मूल्य के सिद्ध होंगे। वह प्रयोग बहुत अदभुत है। एक प्रयोगशाला में उन्होंने विचार का चित्र पहली बार लिया था। विचार का चित्र, जो विचार आपके भीतर चलता है उस विचार का, आपका नहीं। एक आदमी को बहुत ठीक से कैमरे के सामने बिठाया गया। बहुत ही संवेदनशील फिल्म लगाई गई है और उस आदमी से कहा गया है कि एक विचार पर सारे चित्त को एकाग्र कर सोचता रह, बस एक ही चित्र पर सोचता रह और उस आदमी ने एक चित्र पर विचार किया, वह आदमी एक छोटे से चित्र पर अंदर विचार करता रहा और उस चित्र को फोटो की फिल्म के भीतर पकड़ लिया। इसका क्या मतलब? इसका मतलब है कि विचार में जो चित्र था भीतर, उसका संप्रेषण, उसकी किरणें, उसकी तरंगें बाहर फिंक रही हैं जो कि फोटो की फिल्म पकड़ सकती थी।
अहिंसात्मक क्रांति का क्या अर्थ है? अहिंसात्मक क्रांति का अर्थ हैः अहिंसात्मक लोग।
थोड़े से भी लोग अहिंसात्मक हों तो उनके व्यक्तित्व से अहिंसा की, प्रेम की, भीतरी परिवर्तन की जो किरण पहुंचेगी वे लाखों के जीवन में क्रांति ले आएंगी, इसका हमें पता भी नहीं होगा। मेरी मान्यता है कि मनुष्य-जाति अहिंसात्मक क्रांति की प्रतीक्षा कर रही है और यह प्रतीक्षा जारी रहेगी जब तक अहिंसात्मक क्रांति नहीं हो जाती है। हम कोई भी हिंसात्मक क्रांति करें, उससे कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। जैसे कोई आदमी मुर्दे को मरघट ले जाते हैं। मुर्दे को मरघट ले जाते वक्त अरथी को कंधे पर लेते हैं। रास्ते में एक कंधा थक जाता है तो अरथी उठा कर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। बस इसी तरह क्रांति में भी फर्क पड़ता है। एक कंधा दुखने लगता है, दूसरे कंधे पर बोझ रख लिया। थोड़ी देर राहत मिलती है। फिर बोझ शुरू हो जाता है। दूसरे कंधे पर बोझ शुरू हो जाता है। अब तक कितनी क्रांतियां हुई हैं, वह अब तक बोझ बदलें हैं, बोझ मिटाया नहीं, आदमी के समाज को रूपांतरित नहीं किया, आदमी के समाज को पुराने गठन में नया ढंग दे दिया है। फिर जिंदगी बड़ी गड़बड़ हो गई, पुरानी जिंदगी आना शुरू हो जाती है। नये सपने देखती है।
रूस में क्रांति हुई, शायद सबसे महत्वपूर्ण क्रांति दुनिया की वही है। रूस की क्रांति ऐसी थी कि वर्ग मिटा दिए जाएंगे, क्लासेस नहीं रहेंगे। वर्ग मिटा दिए गए, निश्चित मिटा दिए गए। अमीर आज ऊंचे नहीं, गरीब आज नीचे नहीं, लेकिन नया वर्ग पैदा हो गया--वह कम्युनिस्ट आफिसर, कम्युनिस्ट पार्टी का आदमी और वह जो आदमी कम्युनिस्ट पार्टी का नहीं है, यों दो वर्ग

पैदा हो गए। अधिकारी सत्ताधिकारी, और सत्तापूर्ण। कल था धनिक और निर्धन और आज है सत्ताधिकारी, सत्तापूर्ण, उसके बीच स्थापना हुई। वर्ग फिर नये खड़े हो गए। रूस में जो क्रांति हुई उस क्रांति से वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ वर्ग बदल गए। पूंजीपति की जगह मैनेजर आ गया। व्यवस्थापकों की क्रांति थी, व्यवस्थापक बदल गए, जहां मालिक था वहां मैनेजर बैठ गया, सत्ताधिकारी बैठ गया; धनी की जगह। और ध्यान रहे, धनी के पास उतनी ताकत कभी नहीं थी जितनी सत्ताधिकारी के पास। धनी के हाथ में लोगों की गर्दन कभी उतनी नहीं थी जितनी कि आज कम्युनिस्ट पार्टी के पास रूस में है--उतनी बिरला के पास थोड़े ही है, न हो सकती है। सत्ता बदल गई, वर्ग बदल गए, नये वर्ग आ गए, क्रांति मर गई, क्रांति का कोई अर्थ न हुआ। फिर कंधा बदल गया।
दुनिया में अब तक क्रांति के नाम पर कंधे बदलते रहे हैं। क्या हम कंधे
ही बदलते रहेंगे या सचमुच कोई क्रांति करेंगे? अगर क्रांति करनी है तो हिंसा पर से आस्था छोड़नी ही पड़ेगी, क्योंकि जो आदमी हिंसा करता है वह आदमी जब मालिक हो जाता है तब हिंसा जारी रखता है और उसकी जो हिंसा जारी रहती है और जिस आदमी ने हिंसा की है और उसके हाथ में हिंसा की ताकत है, उस आदमी से ज्यादा हम कभी आशा नहीं रख सकते। वह आदमी हिंसा को छोड़ देगा, हिंसा को बदल देगा? वह आदमी वही रहेगा। रूस में जिन लोगों के हाथ में ताकत आई वे लोग अच्छे थे। क्रांति के पहले सभी लोग अच्छे होते हैं, क्रांति के बाद जब ताकत हाथ में आती है, तब पता चलता है कि कौन आदमी अच्छा है, कौन आदमी बुरा है। संभावना इस बात की है कि स्टैलिन ने लेनिन को जहर देकर मारा और इस बात की संभावना है कि जितने लोग क्रांति के अग्रणी थे धीरे-धीरे करके एक-एक मारे गए। मैक्सिको में जाकर ट्राटस्की की हत्या की गई। जिन लोगों ने क्रांति की थी स्टैलिन ने चुन-चुन कर एक-एक को मारा, क्योंकि अब सत्ता का खिलवाड़ शुरू हो गया।
हिंदुस्तान में कितने अच्छे लोगों ने गांधी के साथ क्रांति की थी। कितने अच्छे और भले लोग मालूम पड़ते थे, एकदम सफेद, धुले हुए मालूम पड़ते थे। लेकिन जब सत्ता हाथ में आई तो पता चला कि वे लोग बदल गए, वे दूसरे आदमी साबित हुए, वे कपड़े ही सफेद थे, वे आदमी भीतर सफेद नहीं थे। क्या हो गया सत्ता के हाथ में आते ही? सत्ता के हाथ में आते ही भीतर का असली आदमी प्रकट होता है। जब तक हाथ में ताकत नहीं होती तब तक असली आदमी प्रकट नहीं होता। अगर आपके पास पैसे पहीं हैं तो आप फिजूल खर्च हैं, इसका कोई पता नहीं चलता। पैसा हो तो पता चलता है कि फिजूल खर्च हैं या नहीं। अगर आपके हाथ में छुरा हो मारने को तब पता चलता है कि आप हिंसक हैं या नहीं। जब हाथ में ताकत नहीं है तब तो सभी लोग अहिंसक होते हैं। अहिंसक का पता चलता है अवसर मिलने पर, हिंसा का अवसर मिलने पर। जिन लोगों के हाथ में इस मुल्क की ताकत गई, ताकत जाने के बाद ही पता चला कि उनके असली तत्व क्या थे। तो जिन लोगों के हाथ में ताकत जाएगी, अगर वे हिंसा के द्वारा ताकत को पहुंचे हैं तब तो उनकी तस्वीर पहले से ही हिंसा की है और बाद में उनकी क्या हालत होगी? अहिंसकों की हालत क्या हो जाती होगी?
नहीं, हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकती, सिर्फ बोझ बदल जाते हैं, सिर्फ शकल बदल जाती है, नाम बदल जाते हैं, समाज पुराना का पुराना ही जारी रहता है। पांच हजार वर्ष के लंबे प्रयोगों के बाद भी हमें दिखाई नहीं पड़ता कि हिंसा से कोई क्रांति नहीं हो सकी। आगे भी नहीं हो सकेगी और अगर आदमी हिंसा से जाग जाए कि हिंसा से कुछ भी नहीं हो सकता, दबाव से कुछ भी नहीं हो सकता और आदमी की आत्मा प्रेम चाहती है और आदमी की आत्मा रूपांतरित होना चाहती है, लेकिन उन लोगों के द्वारा जो रूपांतरित करने के लिए उत्सुक, आतुर नहीं हैं, जिनका कोई आग्रह नहीं है, जो जीते हुए सत्य हैं, जो जीते हुए प्रेम हैं और उनके जीने के कारण दूसरे में फैलते हैं, उनसे रूपांतरण होता है।
ऐसे रूपांतरण की प्रतीक्षा मनुष्यता को है।
ऐसी क्रांति अहिंसात्मक ही हो सकती है। यह बहुत स्पष्ट रूप से मेरी बात समझ लेना जरूरी है। मैं हिंसा के बिल्कुल विरोध में हूं। हिंसा के कौन पक्ष में हो सकता है? कौन बुद्धिमान, कौन विचारशील व्यक्ति हिंसा के पक्ष

में हो सकता है? हिंसा के पक्ष में होने का मतलब है आदमी में बुद्धि नहीं है। क्योंकि लाठी वे ही लोग उठाते हैं जिनके पास बुद्धि नहीं होती है। जिनके पास बुद्धि होती है उन्हें लाठी पर उतरने की जरूरत नहीं पड़ती। जो लोग हाथ की ताकत में और तलवार की ताकत में विश्वास करते हैं, वे मनुष्य से नीचे दर्जे के मनुष्य हैं, उनके भीतर पापी मौजूद है, पशु ही हिंसा में विश्वास करता है। आदमी हिंसा में कैसे विश्वास कर सकता है और पशुओं के हाथ में बहुत बार सत्ता दी गई है और आदमी ने हर बार भोगा है। आगे भी पशुओं के हाथ में सत्ता नहीं जानी चाहिए, पाशविक हाथों में, हिंसात्मक हाथों में सत्ता नहीं जानी चाहिए। इसलिए आदमी जितना सजग हो, जितना अहिंसा के सार को समझे, जितना अहिंसा के रहस्य को समझे, उतना अच्छा है।
अहिंसा का सार है, एक शब्द में--प्रेम, शुद्ध प्रेम। अहिंसा शब्द बहुत गलत है, क्योंकि नकारात्मक है। उससे पता चलता है हिंसा का। वह शब्द अच्छा नहीं है। शब्द है वास्तविक प्रेम। क्योंकि प्रेम पाजिटिव है, प्रेम विधायक है। जब हम कहते हैं अहिंसा, तो उससे मतलब है हिंसा नहीं करेंगे। लेकिन हिंसा नहीं करना है इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि प्रेम करना है। हिंदुस्तान में धार्मिकों की एक लंबी कतार है। वह सब अहिंसा को मानते हैं। उनकी अहिंसा का मतलब है--पानी छान कर पीना, उनकी अहिंसा का मतलब है-- रात खाना नहीं खाना है, उनकी अहिंसा का मतलब है--किसी को चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन ऐसी अहिंसा बड़ी अहिंसा नहीं है जो कि सिर्फ दूसरे को दुख पहुंचाने से बचती है। असली अहिंसा वही है जो दूसरे को सुख पहुंचाना चाहती है। दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना है। यह ठीक है, लेकिन यह काफी नहीं है। वह बहुत लचर, अधकचरी अहिंसा है। दूसरे को सुख पहुंचाना है और क्यों पहुंचाना है? दूसरे को सुख इसलिए कि मोक्ष जाना है, इसलिए कि स्वर्ग पाना है। जो आदमी दूसरे को इसलिए दुख नहीं दे पाता है क्योंकि स्वर्ग जाना है, मोक्ष जाना है, वह आदमी हद दर्जे का चालाक है, वह आदमी हद दर्जे का हिसाबी-किताबी है। उस आदमी को दूसरे से कोई मतलब नहीं है। वह दूसरे को, दूसरे की अहिंसा को सीढ़ियां बना रहा है अपने स्वर्ग जाने की।
मैंने सुना है, चीन के एक गांव में एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। एक कुआं था मेले के पास जिस पर पाट नहीं था और एक आदमी भूल से उस कुएं के भीतर गिर गया। वह आदमी जोर-जोर से चिल्लाने लगा। किंतु मेले में बहुत भीड़ थी, कौन उसकी सुनता। एक बौद्ध भिक्षु कुएं के पास पानी पीने को रुका। नीचे से आदमी चिल्लाया कि भिक्षु जी, मुझे बचाइए। उस भिक्षु ने कहाः पागल किस-किस को बचाया जा सकता है, सारा संसार कुएं में पड़ा है। जीवन ही दुख है। भगवान ने कहा है, जीवन दुख का मूल है। हम सभी डूब मरेंगे, हम किसको बचा सकते हैं। उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें, पहले मुझे निकाल लें, फिर पीछे करना, क्योंकि ज्ञान की बातें कुएं में गिरे आदमी को अच्छी नहीं मालूम पड़तीं। कृपा करो, मुझे बाहर निकालो। भिक्षु ने कहाः पागल, कौन किसको निकाल सकता है। अपना ही अपना सम्हाल ले आदमी तो काफी है, क्योंकि भगवान ने कहा है, कोई किसी का सहारा नहीं है, अपने सहारे रहो। उसने कहा, वह मैं समझता हूं लेकिन अभी मैं अपना सहारा ढूंढ रहा हूं। तैरना नहीं जानता हूं। मुझे किसी तरह बाहर निकाल लो तो तुम्हारा शास्त्र भी सुनूंगा, तुम्हारा प्रवचन भी सुनूंगा। उस भिक्षु ने कहा, शायद तुम्हें पता नहीं कि भगवान ने शास्त्र में यह भी कहा है कि अगर मैं तुझे बचा लूं और कल तू हत्या कर दे, चोरी कर ले, तो मैं भी तेरे कर्म का भागी हो जाऊंगा। मैं अपने रास्ते पर, तू अपने रास्ते पर। भगवान तेरा भला करे।
वह भिक्षु चला गया। शास्त्रों को मानने वाले लोग खतरनाक होते हैं। उनका शास्त्र ही महत्वपूर्ण है, मरता हुआ आदमी ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है।
उसके पीछे ही कनफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आकर रुका।
उसने भी नीचे झांक कर देखा। वह आदमी चिल्लाया कि मुझे बचाओ, मैं मर रहा हूं। बस मेरी स्थिति है, सांसें टूटी जाती हैं, हिम्मत नहीं रखी जाती है। कनफ्यूशियस के शिष्य ने कहा, देख, तेरे गिरने से साबित हो गया कि कनफ्यूशियस ने जो लिखा है वह सही है। उसने लिखा है कि हर कुएं पर पाट होनी

चाहिए और जिस कुएं पर पाट नहीं होगी और जिस राज्य में कुएं पर पाट नहीं होती वह राज्य ठीक नहीं है। तू घबड़ा मत, हम आंदोलन करेंगे और कुएं पर पाट बनवा कर रहेंगे। उस आदमी ने कहा कि बनेगा, लेकिन मैं तो गया!
आंदोलन करने वाले को आदमी से कोई मतलब नहीं है। उन्हें आंदोलन से मतलब है। वे आंदोलन करेंगे। और वह जो आदमी डूब रहा है, वह गया। वह बहुत चिल्लाया लेकिन आंदोलनकारी किसी की सुनते हैं? वह जाकर मंच पर खड़ा हो गया और मेले में लोगों को समझाने लगा कि देखो, कनफ्यूशियस ने जो लिखा है ठीक लिखा है। सबूत? वह कुआं सबूत है। हर कुएं पर पाट होना चाहिए। जब तक कुएं पर पाट नहीं है तब तक राज्य सुराज्य नहीं है।
उसके पीछे ही एक ईसाई मिशनरी वहां आया। उसने भी झांक कर देखा। वह आदमी चिल्ला भी नहीं पाया कि उसने अपनी झोली से रस्सी निकाली और कुएं में डाली और कुएं के नीचे गया। उस आदमी को निकाल कर बाहर लाया। उस आदमी ने कहाः आप ही एक भले आदमी मालूम पड़ते हैं। लेकिन आश्चर्य कि आप झोली में रस्सी पहले से ही रखे हुए थे। उसने कहाः हम सब इंतजाम करके निकलते हैं क्योंकि सेवा ही हमारा कार्य है और हमें पहले से पता रहता है कि कोई न कोई तो कुएं में गिरेगा और जीसस ने कहा है कि अगर मोक्ष जाना है, अगर स्वर्ग का राज्य पाना है तो लोगों की सेवा करो। सेवा के बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता। हम मोक्ष की खोज कर रहे हैं। तुमने बड़ी कृपा की जो कि कुएं में गिरे। अपने बच्चों को भी समझा जाना ताकि वे कुएं में गिरते रहें और हमारे बच्चे उनको निकालते रहें।
यह जो आदमी है, यह जो मोक्ष में जाने के लिए लोगों के कुएं में गिरने
की प्रतीक्षा कर रहा है, यह आदमी हद दर्जे का पापी है। इन्हें न कोढ़ियों से मतलब है, न बीमारों से। ये सबको सीढ़ियां बना कर अपना मोक्ष खोज रहें हैं। यह आज तक जो लोग अहिंसा की बात करते हैं, उनके लिए अहिंसा भी एक सीढ़ी है। नहीं, अहिंसा जो सीढ़ी बनती है वह अहिंसा नहीं है। अहिंसा शब्द ठीक नहीं है। शब्द तो ठीक है प्रेम, ज्वलंत प्रेम और प्रेम का मतलब है दूसरे को सुख देने की कामना। लेकिन क्यों? इसलिए नहीं कि मोक्ष जाएंगे, इसलिए नहीं कि पुण्य होगा, बल्कि सिर्फ इसलिए कि जो आदमी जितना दूसरे को सुख दे पाता है उतना ही प्रतिक्षण सुखी हो जाता है, तत्क्षण, आगे-पीछे नहीं, कभी भविष्य में नहीं। जो आदमी जितना दूसरे को दुख देता है तत्क्षण उतना ही दुखी हो जाता है। जीवन में जो हम दूसरे के लिए करते हैं वही हम पर वापस लौट आता है। जिंदगी एक बड़ी प्रतिध्वनि है, एक ईको-पॉइंट है।
मैं एक पहाड़ पर गया था। कुछ मित्र मेरे साथ थे। उस पहाड़ पर एक ईको- पॉइंट था जहां आवाज की जाती तो बार-बार वापस लौटती थी हम लोगों के बीच। वहां जो मित्र मेरे साथ थे वे कुत्ते की आवाज करने लगे। सारा पहाड़ कुत्तों की आवाज से गूंज गया। मैंने उनसे कहाः रुको भी। अगर आवाज ही करनी है तो कोयल की करो या कोई गीत गाओ। कुत्ते की आवाज करने से क्या फायदा। वे मित्र गीत गाने लगे प्रेम का। उन्होंने कोयल की आवाज की और पहाड़ियां कोयल की आवाज से गूंज गईं। फिर हम लौटे तो वे मित्र कुछ सोचने लगे और उदास हो गए और रास्ते में कहने लगे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने इशारा किया हो कि यह जो घाटी है, यह जो ईको-पॉइंट है वह भी प्रतीक है जिंदगी का। जिंदगी का ही वह एक रूप है। जिंदगी में भी जो कुत्ते की आवाज फेंकता है, चारों तरफ कुत्ते भोंकने लगते हैं। जिंदगी में भी जो गीत गाता है चारों तरफ गीत की शहनाइयां बजने लगती हैं। जिंदगी में जो हम फेंकते हैं जिंदगी की तरफ वही हम पर वापस लौटना शुरू हो जाता है--हजार-हजार गुना होकर। प्रेम जो जितना बांटता है उतना प्रतिध्वनित होकर उसके ऊपर बरसने लगता है।
एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।
रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है, बहुत प्यारा गीत है और उस गीत में लिखा
है कि एक भिखमंगा सुबह-सुबह उठा है भीख मांगने के लिए, अपनी झोली निकाल कर कंधे पर डाली है, आज त्यौहार का दिन है और भीख मिलने की आशा है। ऐसा मालूम होता है कि त्यौहारों की ईजाद भिखमंगों ने ही की होगी, खोज उन्होंने की होगी। झोली कंधे पर डाल कर उसने अपनी पत्नी से कुछ अनाज, चावल के दाने झोली में डालने के लिए कहा। जब भी कोई भिखमंगा अपने घर से निकलता है, चालाक

भिखमंगा, क्योंकि भिखमंगों में भी नासमझ भिखमंगे होते हैं, समझदार भी होते हैं। सब तरह की दुकानों में समझदार, नासमझ सभी तरह के लोग होते हैं। भिखमंगों की भी एक दुकान है। उसने कुछ दाने घर से डाल लिए हैं और भिखमंगे कुछ दाने डाल कर निकलते हैं ताकि जिसके सामने झोली फैलाएं उसे दिखाई पड़े कि भीख पहले भी दी जा चुकी है। इनकार करने में मुश्किल होती है अगर भीख पहले दी जा चुकी हो, क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि किसी दूसरे आदमी ने दान कर दिया है और अगर हम नहीं करते हैं तो उस आदमी के सामने छोटे हो जाते हैं। इसलिए भिखमंगे पैसे हाथ में बजाते हुए निकलते हैं।
वह भिखमंगा रास्ते पर, राजपथ पर आकर खड़ा ही हुआ था, कुछ सोचता था कि किस दिशा में जाऊं, कि देखा कि सामने से सूरज निकलता है और राजा का स्वर्ण रथ आ रहा है। राजा अपने रथ पर सवार है। सूरज की किरणों में उसका रथ चमक रहा है। भिखमंगे के तो भाग खुल गए। उसने कभी राजा से भीख नहीं मांगी थी। राजाओं से भीख मांगना मुश्किल है, क्योंकि द्वार पर पहरेदार होते हैं, वे भीतर प्रवेश करने नहीं देते। आज तो राजा रास्ते पर मिल गया है, आज तो झोली फैला दूंगा और भीख से छुटकारा जन्म-जन्म के लिए मिल जाएगा। फिर आगे भीख नहीं मांगनी पड़ेगी। इसी सपने में, कल्पना में था और भिखमंगों के पास सिवाय सपने के और कुछ भी नहीं होता। सपने में ही जीना पड़ता है, क्योंकि जिनके पास कुछ भी नहीं है वे सपने में ही जीने का रास्ता खोज लेते हैं। वह महलों में निवास करने लगा सपने में और तभी रथ आकर खड़ा हो गया। सारे सपने टूट गए और हैरान हो गया भिखारी। राजा नीचे उतरा और राजा ने अपनी झोली भिखारी के सामने फैला दी।
भिखारी ने कहाः क्या कर दिया? राजा ने कहाः क्षमा करना। अशोभन है, लेकिन ज्योतिषियों ने कहा है कि राज्य पर खतरा है दुश्मन का और कहा है कि अगर मैं आज त्यौहार के दिन जो पहला आदमी मुझे मिल जाए उससे भीख मांग लूं तो राज्य खतरे से बच सकता है। तुम्हीं पहले आदमी हो, दुखी न होओ, तुमने कभी भिक्षा दी न होगी, इसलिए बड़ी मुश्किल पड़ेगी देने में। लेकिन कुछ भी थोड़ा सा दे दो, इनकार मत कर देना, पूरे राज्य के भाग्य का सवाल है। भिखमंगा कितनी कठिनाई में पड़ गया होगा? उसने हमेशा मांगा था, दिया कभी नहीं था। देने की आदत न थी। झोली में हाथ डालता है और खाली हाथ बाहर निकाल लेता है। इनकार भी कर नहीं सकता। सामने राजा खड़ा है। पूरे राज्य के संकट का सवाल है। हाथ भीतर चला जाता है, मुट्ठी बंधती नहीं। राजा कहता है, इनकार मत कर देना, क्योंकि ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर पहले आदमी ने इनकार कर दिया तो संकट निश्चित है। तो एक दाना ही दे दो। भिखारी ने बामुश्किल एक चावल का दाना निकाल कर राजा की झोली में डाल दिया।
राजा अपने रथ पर बैठा और चला गया। धूल उड़ती रह गई। भिखारी के सब कपड़े धूल से भर गए। उलटा मिला तो कुछ भी नहीं, पास से कुछ चला गया। उसका दुख आप जानते हैं? दिन भर भीख मांगी, बहुत मिली उस दिन भीख। इतनी कभी नहीं मिली। लेकिन मन प्रसन्न नहीं हुआ। क्योंकि जो मिलता है उससे प्रसन्न नहीं होता है मन, जो छूट जाता है उससे दुखी होता है। एक दाना खटकता रहा जो दिया था। सबके मन की यही हालत है, क्योंकि सब छोटे-मोटे भिखारी हैं। जो छूट जाता है वह खटकता रहता है, जो मिल जाता है उसका पता नहीं चलता।
भिखारी के मन का लक्षण यह है--जो मिल जाए उसका पता न चले, जो न मिले, जो छूट जाए, उसकी पीड़ा कसकती रहे।
वह घर पहुंचा है रात, झोली पटक दिया, पत्नी तो पागल हो गई। इतना कभी न मिला था। झोली खोलने लगी। पति तो उदास दिखता था। उदास हैं आप? पति ने कहा, तुझे तो पता नहीं है पागल, झोली में थोड़ा कम है। आज थोड़ा देना भी पड़ा है। ऐसा जिंदगी में कभी नहीं किया आज वह करना पड़ा। पत्नी ने झोली खोली, दाने बिखर गए और पति छाती पीट कर रोने लगा। अब तक उदास था, आंसुओं की धारा बहने लगी। पत्नी ने पूछा, क्या हुआ? पति ने नीचे के दाने उठाए और एक दाना सोने का हो गया था। एक चावल का दाना सोने का हो गया है। चिल्लाने लगा कि भूल हो गई, अवसर निकल गया। मैंने अगर सारे दाने दे दिए होते तो सब सोना हो गया होता। लेकिन अब कहां खोजूं उस राजा को, कहां मिलेगा वह रथ। अवसर चूक गया है वह।

मुझे पता नहीं, यह कहानी कहां तक सच है, लेकिन यह मुझे पता है कि जिंदगी के अंत में आदमी ने जो दिया है वही सोने का होकर वापस लौट आता है। जो दिया है वही स्वर्ण का हो जाता है, जो रोक लिया है वही मिट्टी का हो जाता है। प्रेम का अर्थ है--दान, प्रेम का अर्थ है--बांटना। जितना बंट जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही स्वर्ण की हो जाती है, और जितना अनबंटा रह जाता है व्यक्तित्व, आत्मा उतनी ही मिट्टी हो जाती है।

देख कबीरा रोया
आठवां प्रवचन

अंधेरे कूपों में हलचल

एक मित्र ने पूछा है कि क्या महापुरुष भी कभी भूलें करते हैं?

हां, करते हैं। महापुरुष भी भूलें करते हैं। एक बात है कि महापुरुष कभी छोटी भूल नहीं करते और जब भी भूल करते हैं, बड़ी ही करते हैं। अतः इस भ्रम में रहने की आवश्यकता नहीं है कि महापुरुष भूल नहीं करते। कोई भी महापुरुष इतना पूर्ण नहीं है कि भगवान कहलाने लगे। महापुरुष भूल करता है और कर सकता है। अतः यह आवश्यक नहीं है कि आने वाले लोग उनकी भूलों पर विचार न करें। यह आवश्यक नहीं है कि हम हिंदुस्तान के पांच हजार वर्षों के इतिहास पर विचार करें, वरन यदि हिंदुस्तान के पांच महापुरुषों पर ही ठीक से विचार कर लें तो आने वाले लोग जिस गलत रास्ते पर चलने वाले हैं--उसकी ओर संकेत हो सकेगा। ठीक समय पर भूल सुधार हो जाएगी।
महापुरुष ऊंचाइयों पर चलते हैं, उन ऊंचाइयों पर, जहां आने वाली पीढ़ियां हजारों सालों तक चलेंगी। लेकिन इतना आगे चलने में महापुरुष भी न जाने हजारों साल पहले ही कितनी भूलें कर डालता है और उन भूलों को दुर्भाग्यवश हजारों साल तक आने वाली पीढ़ियां आत्मसात करती रहेंगी। महापुरुष की जातीय भूलें दिखलाई नहीं पड़ती हैं--जातीय भूलों को देखना और समझना कठिन भी है।
मैंने गांधी वर्ष को गांधी की जातीय भूलों की आलोचना का वर्ष माना है। इस एक वर्ष में गांधी पर हम जितनी आलोचना कर सकें, हमें करना चाहिए। हम गांधी की जितनी आलोचना करेंगे, उतना ही परोक्ष रूप से उनके प्रति हमारा प्रेम प्रकट होगा। आलोचना द्वारा हम यह प्रकट करेंगे कि हम गांधी को मुर्दा नहीं समझते हैं, उसे जिंदा समझते हैं। वह और उसके विचार जीवित प्रतीक हैं, तभी तो उस पर विचार करेंगे, उसे समझेंगे और उसकी विचार-परंपरा को आगे बढ़ाएंगे। हम उनकी पूजा नहीं करेंगे। पूजा मरे हुए आदमी की की जाती है, जीवित की नहीं। अतः हम गांधी के विचारों की पूजा नहीं करेंगे।
मैं गुजरात में नहीं था, पंजाब में था। जब लौटा तो मेरी बातों को बड़े- बड़े अजीब अर्थ दे दिए गए थे। इन गलतफहमियों की वजह से मुझे गालियां भी दी जा रही हैं। वैसे गालियों का मुझे कोई भय नहीं है। लेकिन यदि इन गालियों के साथ-साथ गांधी जी के विचारों को लेकर कुछ तर्क हुए हों, कुछ विचार-विनिमय हुआ, तो प्रसन्नता की बात अवश्य हो सकती है और उससे गांधी जी की आत्मा भी शांति अनुभव करेगी।
आज की चर्चा में जिन बिंदुओं पर मैं अपनी बात केंद्रित रखना चाहूंगा, उनमें से पहली बात हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति एवं सयता की है। कहा जाता है कि भारतीय संस्कृति का इतिहास कोई दस हजार साल पुराना है। पांच हजार वर्ष की कथा तो हमें ज्ञात है... जो भी हो, लेकिन दस हजार वर्ष के इतिहास में भारत ने खाने और पहनने में कभी भी योग्यता प्राप्त नहीं की। हमारे दस हजार वर्ष के इतिहास की उपलब्धि यह है कि पृथ्वी पर आज सबसे ज्यादा दरिद्र, दीन-हीन और दुखी लोग हम ही हैं। ऐसा आकस्मिक नहीं हो सकता है। इसके पीछे हमारे सोचने के ढंग में कोई बुनियादी भूल होनी चाहिए।
यह सोचने की बात है कि दस हजार वर्षों से पीढ़ी दर पीढ़ी हम श्रम कर रहे हैं, हर प्रकार से सोच रहे हैं, निरंतर कुछ नया प्रयास कर रहे हैं; फिर भी हम रोजी-रोटी नहीं जुटा पाते हैं। यह बात गंभीर है, विचारणीय है। यदि हमारे मूलभूत दृष्टिकोण में दोष नहीं होता तो इतने धन-धान्य से पूर्ण हमारा देश इतना दरिद्र नहीं होता। अतः हमारे तत्वचिंतन की मूलभूत त्रुटि को हमें अच्छी तरह से समझ लेना है।
भूल यह है कि हिंदुस्तान का मस्तिष्क आज तक वैज्ञानिक एवं तकनीकी नहीं हो पाया है। हिंदुस्तान का मस्तिष्क सदा से अवैज्ञानिक रहा है, तकनीक-विरोधी रहा है। दुनिया में संपत्ति तकनीक और विज्ञान से पैदा होती है। संपत्ति आसमान से नहीं टपकती। अमरीका तीन सौ वर्ष के इतिहास में जगत

का सबसे समृद्ध एवं शक्तिशाली देश बन गया। हम दस हजार वर्ष का इतिहास लिए हुए भी अमरीका जैसे नये देश के सामने हाथ जोड़ कर भीख मांग रहे हैं। हमें शर्म भी नहीं मालूम हुई। हमसे ज्यादा बेशर्म कौम भी खोजनी मुश्किल है। मैंने सुना है, सन उन्नीस सौ बासठ के करीब चीन में एक अकाल पड़ा था। इन अकाल-पीड़ितों की सहायतार्थ इंग्लैंड से उसके कुछ मित्रों ने खाद्यसामग्री, कपड़े, दवाइयां आदि भेजीं, वह जहाज जब चीन भेजा तो किनारे से ही भरा हुआ जहाज लौटा दिया गया और उस जहाज पर लिख दिया कि धन्यवाद, हम मर सकते हैं लेकिन किसी हालत में भीख मांगने को तैयार नहीं हैं। होगा चीन कैसा ही देश, होगा माओ कैसा ही और होंगी उनकी नीतियां कितनी ही घातक! लेकिन बात उन्होंने स्वाभिमान की कही। अमरीका की कौम तीन सौ वर्ष पुरानी है और इन तीन सौ वर्षों में उन्होंने पृथ्वी पर संपत्ति का ढेर लगा दिया। आज वे सारी पृथ्वी के अन्नदाता बन बैठे हैं और हम भिखारियों की तरह खड़े हैं। यूरोप निवासियों के आने के पहले अमरीका में वही जमीन थी, वही आसमान था, वही खेत थे, वैसे ही वर्षा होती थी, वैसे ही सूरज चमकता था, लेकिन अमरीका का आदिवासी संपत्ति पैदा क्यों नहीं कर सका? जब देश वही था तो संपत्ति पैदा क्यों नहीं हुई? अमरीका का आदिवासी भूखा मर रहा था, लंगोटी लगाए हुए था और यूरोप के लोगों के पहुंचने से यह संपत्ति कहां से पैदा हो गई? यह संपत्ति आई थी टेक्नालॉजी से, यूरोपीय लोगों के तकनीकी एवं वैज्ञानिक मस्तिष्क से।
हिंदुस्तान का मस्तिष्क प्रारंभ से ही अवैज्ञानिक रहा है। गांधी जी
ने हिंदुस्तानियों के इस अवैज्ञानिक मस्तिष्क में भरी भूलों को और मजबूत किया है, फिर से उन्होंने तकली और चरखे की बातें की हैं और किसी भी गंभीर व्यक्ति के लिए यह बात बरदाश्त के बाहर है।
अतः हिंदुस्तान को यदि प्रगति करनी है तो चरखा और तकली से मुक्त होना पड़ेगा। मैं आशा करता हूं मेरे कहे का सही अर्थ लगाया जाए और उसे सही माने में समझा भी जाए। मैं यह नहीं कहता हूं जो चरखा-तकली से कमा रहे हैं उनकी कमाई पर हम लात मार दें, यह भी मैं नहीं कहता हूं कि खादी का उत्पादन हम बंद कर दें। मैं कहना यह चाहता हूं कि खादी-तकली हमारे चिंतन का प्रतीक न बनें। हमारे चिंतन के प्रतीक यदि इतने पिछड़े हुए होंगे तो हम आने वाली दुनिया में ऊपर नहीं उठ सकते हैं। हिंदुस्तान यदि भूखा मरेगा तो उसका जुम्मा तकनीक-विरोधी दृष्टिकोण पर होगा। यदि गांधी की पूरी बात मान ली जाए, तो भारत में ही करीब पच्चीस करोड़ लोगों को मृत्यु के फंदे में ढकेलना पड़ेगा। वह मृत्यु अहिंसक गांधी के सिर पड़ेगी।
अल्डुअस हक्सले ने कहीं कहा है कि यदि गांधी की बात सारी दुनिया मान
ले तो पृथ्वी की आधी आबादी को नष्ट हो जाना पड़ेगा। साढ़े तीन अरब लोगों में से पौने दो अरब लोगों को मरना पड़ेगा। क्योंकि तकनीक के विकास के कारण ही मनुष्य की आबादी बढ़ी है। जब तक तकनीकी विकास नहीं हुआ था तब तक दुनिया की आबादी इस भांति बढ़ ही नहीं सकती थी। शायद बुद्ध के समय सारी दुनिया की आबादी दो-अढ़ाई करोड़ से ज्यादा नहीं थी। यदि हमें पीछे राम-राज्य की तरफ लौटना हो तो यह जागतिक आत्मघात, यूनिवर्सल सुसाइड ही कहा जा सकता है। चंगीज, तैमूर, सिकंदर, नेपोलियन, हिटलर, स्टैलिन, माओ--सब मिल कर भी इतने लोगों को नहीं मार सकते हैं जितनों को अकेले गांधी-दर्शन मार डाल सकता है! गांधी का विचार तकनीक-विरोधी है और गांधी का यह तकनीक-विरोधी विचार
ही भारत को दरिद्र बनाए रखने का कारण बनेगा। इसी कारण इस पर ठीक से सोच-समझ लेना आवश्यक है। यह तकनीक-विरोधी हमारी परंपरा तो पांच हजार वर्ष पुरानी है और इसीलिए हमें चारों ओर का सिलसिला भी ठीक-ठीक ही लगता है। इसलिए लगता भी है कि क्या करना है जरूरतें बढ़ा कर, क्या करना है बड़ी मशीनें बना कर, क्या करना है केंद्रीकरण से?
लेकिन हमें यह मालूम होना चाहिए कि केंद्रीकरण के बिना, बिना बड़े उद्योगों के, संपदा पैदा हो ही नहीं सकती है। संपदा पैदा करनी है तो केंद्रीकरण की व्यवस्था करनी ही होगी। गांधी विकेंद्रीकरण के पक्ष में हैं, तो मैं यही कहता हूं कि यह विकेंद्रीकरण ही आत्मघात सिद्ध होगा। सच बात तो यह है कि यदि गांधी को छोड़ कर किसी अन्य आदमी ने विकेंद्रीकरण की और

चरखा-तकली की बातें की होतीं तो हम उस पर हंसते। हम उस आदमी को बेवकूफ कहते। लेकिन गांधी इतने महिमापूर्ण व्यक्ति हैं कि उनकी नासमझी की बातें भी हमें पवित्र मालूम होती हैं।
गांधी के व्यक्तित्व में ही कुछ ऐसी बात थी कि वे हमसे यदि दोषपूर्ण एवं असंगत बातें भी कहेंगे तो भी हम उसे परम, सिद्ध मंत्र की तरह स्वीकार करेंगे। गांधी की ये बातें यदि और कोई करता तो हम उसको सपने में भी स्वीकार नहीं करते, क्योंकि हम जानते थे कि वे न तो विवेकपूर्ण हैं, न बुद्धिमत्ता पूर्ण हैं और न ही भविष्य में उनसे देश का कोई भला ही होने वाला है। इससे सिद्ध होता है कि गांधी अदभुत व्यक्ति थे जो हर प्रकार की बात चाहे वह गलत हो या उलटी, सही प्रमाणित कर सकते थे। यदि कोई साधारण आदमी कहे कि तकली कातो ओर देश आजाद हो जाएगा तो हम मानेंगे ही नहीं, बल्कि उसकी बात पर हंसेंगे। लेकिन गांधी जैसे आदमी पर हंसना कठिन है।
गांधी इतने सच्चे थे, नियत के इतने साफ कि देश के लिए अपना सब कुछ अर्पित करके मरे। वे ऐसे व्यक्ति थे कि उनके रोम-रोम में, प्राण-प्राण में देश की उन्नति के सिवाय और कुछ नहीं बसा था। यही कारण है कि हम यह कल्पना ही नहीं कर सकते कि गांधी कुछ गलत भी कह सकते हैं। गांधी की गलतियों पर किसी ने ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं समझी, क्योंकि गांधी की नियत पर कभी भी किसी को भी शक नहीं था।
गांधी जी को जो ठीक लगा उन्होंने ईमानदारी से उसे निभाया और दृढ़तापूर्वक उसका पालन भी किया। लेकिन गांधी जी ने जो सोचा वह ठीक भी हो सकता है और त्रुटिपूर्ण भी। यह कोई अनिवार्यता नहीं है कि गांधी जी ने जो कुछ सोच लिया, वह ध्रुव सत्य है और वह त्रुटिपूर्ण हो ही नहीं सकता। दुनिया में अनिवार्यता किसी भी चीज की नहीं है। न्यूटन को जो ठीक लगा वह न्यूटन ने किया। आइंस्टीन को जो ठीक लगता वह आइंस्टीन करता है। दोनों का विरोधाभास यदि हो भी जाए तो इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों एक-दूसरे के शत्रु हो जाएंगे। आइंस्टीन तो न्यूटन के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने वाला होगा, उसे गति प्रदान करने वाला होगा और प्रगति का यही क्रम भी रहता है।
मैं कोई गांधी का शत्रु नहीं हूं। मेरे हृदय में उनके प्रति जितना प्रेम है, श्रद्धा है, शायद ही अन्य किसी पुरुष के प्रति हो। लेकिन कठिनाई यह है कि उनके थोथे अनुयायी यह प्रचारित करते हैं कि मैं उनका शत्रु हूं तो यह बच्चों जैसी नादानी और मूर्खता ही कही जाएगी। गांधी के व्यक्तित्व पर मुझे शक नहीं है। लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि गांधी जो कहते हैं वह सब सही हो सकता है, सब उपयोगी हो सकता है। ऐसा सोचना स्वयं को धोखा देना होगा, खतरनाक होगा।
कई लोग व्यक्तित्व के साथ कृतित्व को जोड़ने के आदी हो गए हैं। किसी भी महापुरुष ने मनुष्य के, समाज के रूपांतरण के संबंध में इतना गहरा विचार नहीं किया जितना कि मार्क्स ने किया है। लेकिन मार्क्स सुबह से लेकर शाम तक सिगरेट पीता था। अब अगर कोई समाजवादी यह समझे कि मुझे भी सुबह से शाम तक सिगरेट पीनी चाहिए केवल इसलिए क्योंकि मार्क्स सिगरेट पीता था और मार्क्स ने जो भी व्यक्तिगत स्तर पर गलत काम किए वह भी उन्हें दोहराएगा तो उसे कोई भी संगतिपूर्ण नहीं कहेगा।
हर बड़े आदमी की अपनी कुछ व्यक्तिगत रुझान होती है, अपने जीने का ढंग होता है। उसे जो प्रीतिकर होता है, वह करता है लेकिन पीछे आने वाले लोगों को निरंतर सचेत होकर सोचना जरूरी है कि क्या उसके और देश के लिए, भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है।
मुझे ऐसा दिख पड़ता है कि यदि हम गांधी के इस तकली-चरखा के जीवन-दर्शन में डूबे रहे, उसी में अपनी शक्ति और समय नष्ट करते रहे तो यह देश औद्योगिक क्रांति में से नहीं गुजर सकेगा। यह स्मरण रहे कि आने वाले पचास वर्षों में सारी दुनिया से इतनी बड़ी क्रांति गुजरने वाली है कि हमारे बीच और पश्चिम के बीच इतना बड़ा फासला हो जाएगा कि शायद इस फासले को हमारी आने वाली पीढ़ियां कभी पूरा न कर सकेंगी। हमें जो भी करना है वह आने वाले बीस वर्षों में अत्यंत तीव्रता से तकनीक के मामले में आधुनिक दुनिया के समझ खड़ा होना है। अन्यथा हम हमेशा के लिए पिछड़ जाएंगे जैसा अब तक होता रहा है।

तकनीक यानी मनुष्य की इंद्रियों और क्षमताओं का विस्तार। आंख थोड़ी दूर ही देख सकती है। लेकिन दूरबीन बहुत दूर तक देख सकती है। वह आंख का ही विस्तार है। अब तो राडार आंखें भी हैं। और जिन्हें चांद-तारों पर पहुंचना है, उनके लिए खाली आंखें काफी नहीं हो सकती हैं। ऐसे ही शेष सारी तकनीक का भी दर्शन है। हमारा मकान हमारे शरीर का ही विस्तार है। और हमारे हवाई जहाज हमारे पैरों के। मनुष्य तकनीक के माध्यम से विराट हो गया है। और जो भी उस आयाम में यात्रा करने से इनकार करेंगे वे व्यर्थ ही बौने रह जाएंगे। गांधी की बातें भारत को बौना करने वाली हैं, उनका चले तो हमें आदि- गुफा-मानव की दुनिया में पहुंचा दें। माना कि कोई इतनी दूर तक उनकी बातें नहीं मानेगा। बुद्धि रहते ऐसा करना सुगम भी नहीं है। लेकिन लंबी पराजय और आलस्य से भरी जाति ऐसी बातें अपने अहंकार को बचाने के लिए भी मान सकती है। भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। जिन अंगूरों तक हम नहीं पहुंच पर रहे हैं उन्हें खट्टे कह कर स्वयं का चेहरा बचाया जा रहा है! लेकिन इसमें किसी और का कोई नुकसान नहीं है। हानि होगी तो बस हमारी ही होगी! क्योंकि चाहे झूठे ही सही, बिना स्वाद लिए ही सही, जिसे हम खट्टा मान लेते हैं, उसे पाने की यात्रा बंद हो जाती है। और हमारे खट्टे की घोषणा से दूसरे तो उसे पा नहीं सकते हैं। बल्कि जब उनके चेहरे कहते हैं कि नहीं जो हमने छोड़ा वह खट्टा नहीं था, तो हमारे प्राण और भी संकट में पड़ जाते हैं। लेकिन तब स्वाभिमान बचाने को हम अंगूरों को खट्टे होने का और भी शोरगुल मचाने लगते हैं। यह एक दुष्चक्र है। और भारत इसमें बुरी तरह उलझ गया है।
हिंदुस्तान की दीनता और दरिद्रता की कथाएं यह बतला रही हैं कि हमने कभी टेक्नालॉजी विकसित करने का प्रयास ही नहीं किया। हम यही कहते रहे कि हम झोपड़ों में रह लेंगे, अपना चरखा कात लेंगे, अपना कपड़ा बुन लेंगे और हमें क्या आवश्यकता है अन्य चीजों की? हम अपनी जगह बैठे रहे और दुनिया तेजी से विकसित होती चली गई।
चीन ने हम पर हमला किया तो हम पीछे हट आए और जितनी जमीन हमने छोड़ी उस
पर चीन ने कब्जा कर लिया, वह जमीन उसी की हो गई। अब हम उसकी कोई बात ही नहीं करते। करने की हिम्मत भी करना कठिन है। यह सब इसलिए, क्योंकि तकनीक की दृष्टि से हम चीन से पिछड़े हुए हैं, उससे लड़ने में असमर्थ हैं। एक बड़े गांधीवादी नेता से इस संबंध में मेरी बात होती थी तो उन्होंने कहा, वह जमीन बिल्कुल बेकार है, उसमें घास-फूस भी पैदा नहीं होता है। यह वही खट्टे अंगूरों वाली बात है न?
मनुष्य ने जितनी सयता विकसित की है वह श्रम से मुक्त हो जाने के लिए
की है। जब भी कुछ लोग श्रम से मुक्त हो गए तो उन्होंने काव्य रचे, गीत लिखे, चित्र बनाए, संगीत का सृजन किया, परमात्मा की खोज की। इस प्रकार आदमी जितना श्रम से मुक्त होता है उतना ही उसे धर्म, संगीत और साहित्य को विकसित करने का अवसर भी मिलता है। कभी आपने सोचा है कि जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के ही लड़के क्यों हुए? बुद्ध राजा के ही लड़के क्यों हुए? राम और कृष्ण राजा के लड़के क्यों हुए? हिंदुस्तान के सब भगवान राजाओं के लड़के क्यों हुए? उसका भी कारण है। एक दरिद्र आदमी जो दिन भर मजदूरी करके भी पेट नहीं भर सकता है, खाना नहीं जुटा सकता है, थका-मांदा रात को सो जाता है, सुबह उठ कर फिर अपनी मजदूरी में लग जाता है--उसके लिए कहां का परमात्मा, कहां की आत्मा, कहां का दर्शन?
दरिद्र समाज कभी धार्मिक समाज नहीं हो सकता है। हिंदुस्तान दो-अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व समृद्ध था तो वह उस समय धार्मिक भी था। लेकिन आज हिंदुस्तान इतना गरीब और दरिद्र है कि वह धार्मिक नहीं हो सकता है। मैं आपसे दावे से कह सकता हूं कि रूस और अमरीका आने वाले पचास वर्षों में एक नये अर्थ में धार्मिक होना शुरू हो जाएंगे। उनके धार्मिक होने की प्रक्रिया भी प्रारंभ हो गई है।
जब आदमी के पास अतिरिक्त संपत्ति होती है, जब उसके पास श्रम की कमी के कारण समय बचता है, तब पहली बार आदमी की चेतना पृथ्वी से ऊपर उठती है और आकाश की ओर देखती है।

संतोष एक बहुत ही घातक शब्द है, हमें जड़ करने के लिए। हमारा दर्शन यह
है कि हम अपनी चादर में ही संतुष्ट हैं। हमारे हाथ-पांव बढ़ते जाएंगे, लेकिन हम अपने को सिकोड़ते जाएंगे। चादर तो उतनी ही रहेगी--छोटी की छोटी। तुम भीतर बड़े होते जा रहे हो। रोज कभी हाथ उघड़ जाएगा, कभी पांव उघड़ जाएगा, कभी पीठ उघड़ जाएगी और इस तरह सिकुड़ते-सिकुड़ते जिंदगी कठिन हो जाएगी। सिकुड़ना तो मरने का ढंग है।
तो मेरा यह कहना है कि जीवन के विस्तार का नियम यह नहीं है। जीवन के विस्तार का दर्शन यही कहता है कि हमें चादर का विस्तार करना है। हमेशा चादर के बाहर पैर फैलाओ, ताकि बाहर जाए और हमें यह चुनौती मिले कि चादर को हमें बड़ा करने का निरंतर प्रयास करना है। हिंदुस्तान कायर और सुस्त अकारण नहीं हो गया। हिंदुस्तान के सुस्त एवं कायर होने के पीछे तथाकथित बड़े-बड़े लोगों का दर्शन है। अतः हिंदुस्तान के हर व्यक्तित्व को फैलाव चाहिए। हमें तकनीक विरोधी दर्शन छोड़ना है और प्रतिभाओं को खुला अवसर देना है, साहसपूर्वक उनका फैलाव करना है।
मेरा विरोध गांधी से नहीं, गांधीवादी दर्शन से है। हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञों को गांधी से कोई मतलब नहीं है, मतलब है गांधीवादी से। इसलिए गांधीवाद की इतनी भीमकाय तस्वीरें और रंगमंच खड़े कर दिए हैं ताकि उसके पीछे सब-कुछ खेला जा सके, सब-कुछ सही गलत किया जा सके। बीस वर्ष से गांधी की आड़ में एक खेल चल रहा है, गांधीवाद के नाम पर देश का शोषण चल रहा है और गांधीवादियों ने इन बीस वर्षों में देश को नरक की यात्रा करा दी है। गांधीवाद से हम जितनी जल्दी मुक्त हो जावें उतना ही अच्छा होगा और उसी दिन हम सच्चे अर्थों में गांधी को ज्यादा प्रेम और आदर देने में समर्थ हो सकेंगे। इन गांधीवादियों की वजह से ही गांधी का इतना अनादर हो रहा है। गांधी ने जिस दिन चरखे-तकली की बात की थी तब संभवतः उसकी जरूरत रही होगी। लेकिन वह जरूरत दूसरी थी--न तो औद्योगिक थी, न आर्थिक थी, वरन वह राजनैतिक थी। वे राजनैतिक स्तर पर देश को एकता का प्रतीक देना चाहते थे। लेकिन गांधी के पीछे चलने वाला तबका अभी भी इसी प्रयास में लगा है कि गांधी का वही पुराना प्रतीक हमेशा बना रहे। यह कैसे संभव हो सकता है? आगे चल कर भी वह हमारा प्रतीक कैसे हो सकता है। गांधी के समय की परिस्थितियां उनके साथ ही समाप्त हो गईं और वह बात उन्हीं के साथ चली गई। अब परिस्थितियां और आवश्यकताएं बिल्कुल भिन्न हैं। लेकिन एक गांधीवादी वर्ग अभी भी गांधी के इस चरखे-तकली को हमारी आर्थिक योजनाओं के साथ जोड़ना चाहता है। ऐसा षडयंत्र देश को सदा के लिए अवैज्ञानिक बना देगा। वैसे ही हमारे पास वैज्ञानिक बुद्धि का नितांत अभाव है।
मैं कलकत्ता में एक डाक्टर के घर मेहमान था। डाक्टर के पास बहुत डिग्रियां हैं। वे कलकत्ते के एक प्रख्यात फिजिशियन हैं। शाम को जब वे एक मीटिंग में मुझे ले जाने के लिए निकले तो उनकी लड़की को छींक आ गई। वह डाक्टर मुझसे बोले कि दो मिनट रुक जाइए, लड़की को छींक आ गई है। मैंने उस डाक्टर से कहा कि यदि मेरे हाथ में हो तो मैं अभी तुम्हारे सारे सर्टीफिकेटस में आग लगा दूं और घोषणा कर दूं कि इस आदमी से किसी को भी दवा नहीं लेनी चाहिए। यह आदमी खतरनाक है। इसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। तुम डाक्टर हो और भलीभांति जानते हो कि छींक आने का भीतरी शारीरिक कारण है। उसका, मेरे जाने से कोई संबंध भी नहीं है।
हिंदुस्तान वैज्ञानिक शिक्षा तो ले रहा है, लेकिन उसके पास वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है। हम वैज्ञानिक पैदा कर रहे हैं। विज्ञान की बड़ी-बड़ी डिग्रियां बांट रहे हैं, फिर भी वैज्ञानिक बुद्धि हम पैदा नहीं कर पाए। अतः हिंदुस्तान के लोगों को आने वाले समय में तकनीकी मस्तिष्क का बनाना है, जीवन के लिए अधिक से अधिक साधन पैदा करने हैं ताकि यह देश जो हजारों साल से गरीब रहा है, गरीब न रह सके।
यह जो मुल्क हजारों वर्षों से मानसिक रूप से गुलाम रहा है, गुलाम न रह सके। उसकी दरिद्रता का बोध टूटे। देश में नये सिरे से प्रतिभाओं का विकास हो और संसार के अन्य देशों के समकक्ष खड़ा हो सके। गांधी जिस दिन देश को इस नई हालत में देखेंगे उनकी आत्मा अवश्य ही प्रसन्न होगी। गांधी जी की

आत्मा के पास अब कोई उपाय नहीं कि वह आपको आकर कह दे कि चरखा-तकली से मुक्त हो जाओ। अतः यह काम हम लोगों को ही करना होगा। मैं यह मानता हूं कि जो बात मैं आपसे कह रहा हूं, यदि गांधी जी से कहता तो गांधी उसे आपसे ज्यादा सहानुभूति से सुनने में समर्थ हो सकते थे। लेकिन गांधीवादी मेरी बातों का अजीब अर्थ लगाते हैं, मेरे बारे में न जाने क्या-क्या कहते हैं। कोई कहने लगा कि में चीन का एजेंट हूं, कोई कहता है मुझे रूस से पैसे मिलते हैं, कोई कहता है पुलिस से मेरी जांच करवानी चाहिए। कोई कहता है कि यह व्यक्ति गुरु गोलवलकर से अधिक खतरनाक है, यह निश्चित ही कोई खतरनाक षडयंत्र रच रहा है। तब मुझे एक ही बात कहनी है कि गांधी जिस देश का निर्माण कर गए हैं, जिसके लिए उन्होंने चालीस-पचास वर्ष मेहनत की, जिसके लिए वे मरे-खपे, जिनके लिए उन्होंने इतना श्रम किया, उस सब पर अनेक अनुयायी एकदम पानी फेरे दे रहे हैं। क्योंकि वे देश को विचार तक करने की स्वतंत्रता नहीं देना चाहते हैं। वे विचार का किसी भी भांति गला घोंटने के लिए उत्सुक हैं। विचार को वे देशद्रोह बतलाते हैं और विचार के लिए आमंत्रण देने को वे षडयंत्र की भूमिका बतलाते हैं।
बहुत से गांधीवादी मेरे मित्र रहे हैं, लेकिन जब मैंने गांधीवादी की आलोचना की, तो मैंने सोचा भी नहीं था कि वे मेरे शत्रु हो जाएंगे। मुझे अनेक पत्र आए हैं और उन पत्रों में यही लिखा है कि मैं आत्मा-परमात्मा की ही बात करूं और कोई अन्य बात नहीं और न ही किसी तरह की राजनीति की बात। आह! तब मुझे ज्ञात हुआ कि आत्मा-परमात्मा की ही बात करवाना भी कैसी राजनीति है! राजनीतिज्ञ मुझे सलाह देते हैं कि मैं सिर्फ धर्म की ही बात करूं।
आह! कैसे कुशल राजनीतिज्ञ हैं! वे मुझे कहते हैं कि देश की और समस्याओं पर बोलने में मेरी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी! अर्थात वे मुझे भी राजनीतिज्ञ बनाना चाहते हैं। क्योंकि प्रतिष्ठा को ध्यान में रख कर जीता है, वही तो राजनीतिज्ञ है! मैं ठहरा एक फकीर--मुझे प्रतिष्ठा से क्या प्रयोजन है? सत्य से जरूर प्रयोजन है--लोक-मंगल से जरूर प्रयोजन है और उसके लिए यदि मेरी कुर्बानी भी हो जाए तो कोई हानि नहीं है।
सच तो यह है कि मेरे पास अब कुर्बान करने को भी तो कुछ नहीं है। मैं भी
तो नहीं बचा हूं। उसे भी तो प्रभु को दे चुका हूं। इसलिए अब मैं कुछ कह रहा हूं। ऐसा भी नहीं है। प्रभु की जो मर्जी। वह जो करवाए, मैं उसी के लिए राजी हूं। मैं जो बोलता हूं वह भी तो अब उसी का है। और सलाह ही लेनी होगी तो मैं इन राजनीतिज्ञों से लेने नहीं जाऊंगा। उसके लिए भी तो प्रभु का द्वार मेरे लिए सदा खुला है। इसलिए कोई मेरी या मेरी प्रतिष्ठा की चिंता न करे। चिंता करे उसकी कि जो मैं कह रहा हूं। क्योंकि समय रहते उसकी चिंता करने में देश के भविष्य को व्यर्थ ही गड्ढे में गिरने से बचाया जा सकता है।

एक और मित्र ने पूछा कि मैं गांधी जी को नैतिक ही पुरुष मानता हूं, धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं! धार्मिक और नैतिक में क्या भेद है? फिर मैं गांधीवादियों को भी नैतिक ही कहता हूं तब गांधी जी और उनके अनुयायियों में क्या कोई भेद नहीं है?

साधारणतः ऐसा समझा है कि जो नैतिक है, वह धार्मिक है। यह बड़ी भूलभरी दृष्टि है। धार्मिक तो नैतिक होता है, लेकिन नैतिक धार्मिक नहीं! धार्मिक वह है जिसने जीवन के सत्य को जाना। यह अनुभूति विस्फोट, एक्सप्लोजन की भांति उपलब्ध होती है। उसका क्रमिक, ग्रेजुअल विकास नहीं होता। जीवन के तथ्यों के प्रति समग्ररूपेण जाग कर जीने से जीवन के सत्य का विस्फोट होता है। उस विस्फोट की भूमिका जाग कर जीना है। प्रज्ञा, अमूर्च्छा, या अप्रमाद अवेयरनेस से वह विस्फोट घटित होता है। योग या ध्यान जागरण की प्रक्रियाएं हैं।
विस्फोट को उपलब्ध चेतना का आमूल जीवन बदल जाता है। असत्य की जगह सत्य, काम की जगह ब्रह्मचर्य, क्रोध की जगह क्षमा, अशांति की जगह शांति, परिग्रह की जगह अपरिग्रह या हिंसा की जगह अहिंसा का आगमन अपने आप ही हो

जाता है। उन्हें लाना नहीं पड़ता है। न साधना ही पड़ता है। उनका फिर कोई अयास नहीं करना होता है। वह रूपांतरण सहज ही फलित है।
मूर्च्छा में, निद्रा में, सोये हुए व्यक्तित्व में जो था, वह जागते
ही वैसे ही तिरोहित हो जाता है, जैसे कि प्रकाश के जलते ही अंधकार विलीन हो जाता है।
इसलिए धार्मिक व्यक्ति असत्य, या ब्रह्मचर्य या हिंसा को दूर करने या उनसे मुक्त होने की चेष्टा नहीं करता है। उसकी तो समस्त शक्ति जागने की दिशा में ही प्रवाहित होती है। वह अंधकार से नहीं लड़ता है, वह तो आलोक को ही आमंत्रित करता है।
लेकिन, नैतिक व्यक्ति अंधकार से लड़ता है। वह हिंसा से लड़ता है, ताकि अहिंसक हो सके, वह काम से लड़ता है ताकि अकाम्य हो सके। लेकिन हिंसा से लड़ कर कोई हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता है। न ही वासना से लड़ कर कोई ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है। ऐसा संघर्ष दमन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता है। हिंसा अचेतन अनकांशस में चली जाती है और चेतन मन अहिंसक प्रतीत होने लगता है। यौन, सेक्स अंधेरे चित्त में उतर जाता है और ब्रह्मचर्य ऊपर से आरोपित हो जाता है। इसलिए ऊपर से देखने और जानने पर धार्मिक व्यक्ति और नैतिक व्यक्ति एक से दिखाई पड़ते हैं। लेकिन वे एक से नहीं हैं।
नैतिक व्यक्ति शीर्षासन करता हुआ अनैतिक व्यक्ति ही है, लेकिन सोया हुआ ही। उसके जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। इसीलिए नीति को क्रमशः साधना होता है।
नीति विकास, एवोल्यूशन है, धर्म क्रांति, रेवोल्यूशन है। नीति धर्म नहीं है। वह धर्म का धोखा है। वह मिथ्या-धर्म, सूडो रिलीजन है। और वह धोखा प्रबल है। तभी तो गांधी जैसे भले लोग भी उसमें पड़ जाते हैं। वे धार्मिक ही होना चाहते थे। लेकिन नीति के रास्ते पर भटक गए। और ऐसा नहीं है कि इस भांति वे अकेले ही भटके हों। न मालूम कितने तथाकथित संत और महात्मा ऐसे ही भटकते रहे हैं। इसीलिए जीवन के अंत तक वे "सत्य के प्रयोग" ही करते रहे, लेकिन सत्य उन्हें उपलब्ध नहीं हो सका। और उनकी अहिंसा में भी इसीलिए छिपी हुई हिंसा के दर्शन होते हैं। और स्वयं के ब्रह्मचर्य पर भी वे स्वयं ही संदिग्ध थे। और स्वप्न में उन्हें कामवासना पीड़ित भी करती थी। दमन से ऐसा ही होता है। दमन का यही स्वाभाविक परिणाम है। इसीलिए धार्मिक होने की कामना से भरे हुए गांधी धार्मिक ने हो सके। लेकिन धार्मिक होने की इच्छा तो उनमें थी। और जो उन्हें ठीक लगता था उसे वे निष्ठापूर्वक करते थे। शायद इस जीवन की असफलता उन्हें अगले जीवन में काम आ जाए। आदमी भूल से ही तो सीखता है।
पहली भूल है अनीति। फिर दूसरी भूल है नीति। अनीति से आनंद पाने में असफल हुआ व्यक्ति नीति की ओर मुड़ जाता है। और फिर नीति भी जब असफलता ही लाती है तभी धार्मिक यात्रा शुरू होती है।
मैं मानता हूं कि गांधी ने इस जीवन में नैतिकता की असफलता भी भलीभांति देख ली है। लेकिन, उनके शिष्य यह भी नहीं देख पाए हैं। क्योंकि वे नैतिक भी बे-मन से थे।
नैतिकता गांधी के लिए साधना थी। उससे वे स्वयं धोखे में पड़े, लेकिन उससे वे किसी और को धोखे में नहीं डालना चाहते थे। अनके अनुयायी के लिए नैतिकता आवरण थी, जिससे वे केवल दूसरों को धोखे में डालना चाहते थे। इसीलिए जब सत्ता आई तो गांधी ने सत्ता की बागडोर हाथ में लेने से इनकार कर दिया। क्योंकि उनका दमन हार्दिक था। वे अपने हाथों से अपनी दमित जीवन-व्यवस्था को प्रतिकूल परिस्थितियों में नहीं छोड़ सकते थे। क्योंकि उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उस जीवन भर साधी गई व्यवस्था के टूट जाने का भय था। इसीलिए गांधी सत्ता से बचे। लेकिन उनके अनुयायी सत्ता की ओर अपने सब आवरणों को छोड़ कर भागे। और फिर सत्ता ने उनकी सारी कागजी नैतिकता में आग लगा दी। वे स्पष्ट ही अनैतिक हो गए।
यदि गांधी सत्ता में जाते तो उनकी नैतिक व्यवस्था भी टूटती। लेकिन इससे वे अनैतिक नहीं हो जाते वरन धार्मिक होने की उनकी खोज शुरू होती। तब

नैतिकता भी साधी जा सकती है यह उनका भ्रम टूटता। और वे उस धर्म की ओर बढ़ते जो कि नीति के अयास और अंतःकरण, कांशस के निर्माण से नहीं, वरन जागरण अवेयरनेस और चेतना कांशसनेस को सतत और भी सचेतन करने से उपलब्ध होता है। यही गांधी और गांधीवादियों में भेद था।
गांधी को ऐसा बहुत बार लगता भी था कि उनकी अहिंसा में कमी है या उनके ब्रह्मचर्य में या उनकी पवित्रता में। लेकिन तब वे अपने पूर्व अयास में और भी प्रगाढ़ता से लग जाते थे। काश! उन्हें खयाल आ सकता कि कमी उनमें नहीं, वरन उस मार्ग में ही थी, जिस पर कि वे चल रहे थे, तो उनका जीवन धार्मिक हो सकता था। उस विस्फोट की संभावना भी उनमें थी।
लेकिन नैतिक सफलता से कोई कभी धार्मिक नहीं होता है। नैतिक सफलता तो
और भी प्रगाढ़रूप से आचरण में अटता लेती है। वह आस्तिक तक जाने ही नहीं देती है। वह भी बाह्य संपदा है। और वह भी अहंकार का ही सूक्ष्मतम रूप है। इसीलिए आजादी के बाद गांधी की असफलताएं हो सकता था उन्हें नैतिक साधना की असफलता का बोध करातीं। शायद वह बोध आरंभ भी हो गया था। लेकिन आजादी के पूर्व आजादी के लिए मिलती सफलताओं के धुएं में वह बोध मुश्किल था। वैसे जब वे आजादी के पूर्व भी असफल होते थे तो उन्हें अपने में कमी दिखाई पड़ती थी। लेकिन वह कमी स्वयं में दिखाई पड़ती थी। नैतिक जीवन के अनिवार्य उथलेपन में नहीं। यह भी अकारण नहीं है।
नैतिक व्यक्तित्व जीता है अहंकार के केंद्र पर। इसीलिए जब जीतता है
तो अहंकार जीतता है और जब हारता है तो अहंकार हारता है। इसीलिए गांधी दूसरों के द्वारा किए गए अपराधों को भी अपना मान कर आत्मशुद्धि का उपाय करते थे। यह अहंकार ईगो-सेंटर्डनेस की अति है। इस अहंकार के कारण ही वे कभी तथ्यगत, ऑब्जेक्टिव विचार नहीं कर पाए। उनकी विचारणा सदा ही अहंगत, ईगोइस्ट बनी रही। शायद नैतिक जीवन की पूरी असफलता ही उन्हें जगा पाती। शायद पूरी नाव को टकरा कर टूटते देख ही, वे गलत नाव पर सत्य की यात्रा कर रहे थे, इसका उन्हें बोध होता। पर उनके इस जीवन में यह नहीं हो सका। जो उन्हें प्रेम करते हैं, वे परमात्मा से, उनके अगले जीवन में यह हो, ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं।
वे एक अनूठे व्यक्ति थे। और उनमें धार्मिक व्यक्ति का बीज छिपा था, लेकिन नीति ने उन्हें रास्ते से भटका दिया। शायद उनके अतीत जीवनों की अनैतिकता की ही प्रतिक्रिया, रिएक्शन था। और उनके चित्त की जड़ों में उतरने से ऐसा ही प्रतीत होता है। जैसे प्रारंभ में वे अति कामुक थे। उनके पिता मृत्युशय्या पर थे, लेकिन उस रात्रि भी वे पत्नी से दूर न रह सके। और पत्नी गर्भवती थी। शायद चार-पांच दिन बाद ही उसे बच्चा हुआ। लेकिन होते ही मर गया। शायद यह भी उनके संभोग का ही परिणाम था। और जब वे संभोग में थे तभी पिता चल बसे और घर में हाहाकार मच गया। फिर अति कामुकता के लिए वे कभी अपने को क्षमा नहीं कर पाए। और प्रतिक्रिया में जन्मा उनका ब्रह्मचर्य। निश्चय ही ऐसा ब्रह्मचर्य कामुकता का ही उलटा रूप हो सकता है।
क्योंकि प्रतिक्रियाओं से कभी किसी वृत्ति से मुक्ति नहीं मिलती है। वृत्तियों से, वासनाओं से मुक्ति आती है समझ, अंडरस्टैंडिंग से और जो व्यक्ति प्रतिक्रिया में होता है, विरोध में होता है, शत्रुता में होता है, उसमें समझ कैसे आ सकती है? शायद अंतिम दिनों में, नोआखाली में, एक युवती के साथ सोकर कुछ समझ, कुछ जागरण आया हो तो आया हो। लेकिन जीवन भर जिसे वे संयम की साधना कहते थे, उससे तो कुछ भी नहीं हुआ। हां, वे उस साधना के कारण यौनाविष्ट सेक्स-आब्सेस्ड जरूर बने रहे। इस यौन-चिंता ने उनकी दृष्टि को व्यर्थ ही विकृत किया। और इसके कारण वे अपने अनुयायियों पर भी अत्यधिक दमन थोपते रहे। इसकी भी पूरी संभावना है कि उनके उपवास, उनका तप आदि आत्म-अपराध, सेल्फ-गिल्ट की भावना में जन्मे हों! स्वयं को सताने सेल्फ-टार्चर की प्रवृत्ति भी यौन-दमन से पैदा हुई एक विकृति है। इसी भांति उनके जीवन की और दिशाओं में इस दमन और प्रतिक्रिया का परिणाम हुआ है।
उनका समस्त जीवन-दर्शन ही इस विकृत चित्त-दशा से प्रभावित है। उनकी
इस चित्त-दशा के कारण उनके पास एकत्रित होने वाला बड़ा अनुयायी वर्ग--विशेष

कर उनके आश्रमों के अंतेवासी किसी न किसी भांति के मानसिक विकारों से पीड़ित वर्गों से ही आ सकते थे। इसलिए गांधी के कारण देश यदि मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों के हाथ में चला जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। गांधी के जीवन का पूर्ण मनो-विश्लेषण, साइको एनालिसिस आवश्यक है। उसमें बड़े कीमती तथ्य हाथ लग सकते हैं। उनके प्रारंभिक जीवन में भय, फियर बहुत गहरा बैठा हुआ प्रतीत होता है। मैंने सुना है कि पहली बार अदालत में बैरिस्टर की भांति बोलते हुए वे इतने भयभीत हो गए थे कि उन्हें मूर्च्छित अवस्था में ही घर लाया गया था। और जो वे उस दिन बोलने को थे, उसकी तैयारी उन्होंने रात भर जाग कर की थी।
इंग्लैंड जाते समय जहाज के कुछ यात्री किसी बंदरगाह पर उन्हें किसी वेश्यालय में ले गए थे। वे नहीं जाना चाहते थे। लेकिन साथियों को "नहीं" कहने का साहस नहीं जुटा पाए। वेश्या के समझ जाकर उनकी वही स्थिति हो गई जो कि बाद में अदालत में होने को थी। इंग्लैंड में एक युवती उनके प्रेम में पड़ गई थी लेकिन उससे वे यह कहना चाह कर भी कि मैं विवाहित हूं, कहने का साहस नहीं जुटा पाए थे। उनका इतना भयभीत चित्त--उनका इतना भीरु व्यक्तित्व बाद में इतना निर्भय कैसे हो गया? क्या यह भय की ही प्रतिक्रिया नहीं है? भय की प्रतिक्रिया में व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अभय नहीं। निर्भय उलटा हो गया भय है। इसलिए निर्भयता फिर जान-बूझ कर भय की स्थितियों को खोजने लगती है। भय की स्थितियों में अपने को ढालने में भी फिर एक विकृत रस की उपलब्धि होने लगती है। और फिर ऐसे मन अपने को विश्वास दिलाता है कि अब में भयभीत नहीं हूं। लेकिन यह भी भय ही है।
क्या गांधी की निर्भयता भय ही नहीं है? क्या उनकी अहिंसा में भय ही उपस्थित नहीं है? मेरे देखे तो ऐसा ही है। भय ने निर्भयता के वस्त्र पहन लिए हैं। वह अभय, फियरलेसनेस इसलिए भी नहीं है, क्योंकि गांधी ईश्वर से भलीभांति और सदा भयभीत हैं। उन्होंने अपने समग्र भय को ईश्वर पर आरोपित कर दिया है। वे कहते भी हैं कि वे ईश्वर को छोड़ और किसी से भी नहीं डरते हैं। अभय में ईश्वर का भी भय नहीं होता है।
भय भय है। वह किसका है यह अप्रासंगिक है। फिर ईश्वर का भय तो बड़े से बड़ा भय है। अभय निर्भयता की कवायद भी नहीं करता है। अभय में न भय है, न निर्भयता है। इसलिए अभय अत्यंत सहज है। सांप रास्ते पर हो तो वह सहज ही रास्ता छोड़ कर हट जाता है, लेकिन इसमें भय नहीं है। और समय आ जाए तो वह पूरे जीवन को दांव पर लगा देता है, लेकिन इसमें भी कोई निर्भयता नहीं है।
अभय में न भय का बोध है, न निर्भयता का ही। अभय तो दोनों से मुक्ति है।
पर गांधी की निर्भयता अभय नहीं है। यह भय का ही वेश-परिवर्तन है। उनका जीवन प्रज्ञा से आई मुक्ति नहीं है। वह केवल प्रतिक्रिया है। वह स्वयं से संघर्ष है, द्वंद्व है। वह स्वयं को ही खंड-खंड में बांटता है। वह अखंड की उपलब्धि नहीं है।
नैतिक चित्त अखंड हो ही नहीं सकता है। वह जीता ही है स्वयं को स्वविरोधी खंडों में बांट कर! वह विभाजन ही उसका प्राण है। धार्मिक चित्त अखंड का स्वीकार है। "मैं जैसा हूं," उस समग्र के प्रति जागना धार्मिक चित्त की भूमिका है। और उस जागने से आता है रूपांतरण, ट्रांसफार्मेशन; उस जागने में आती है आमूल-क्रांति, म्यूटेशन। वह पुराने की मृत्यु और नये का जन्म है। वह अहंकार की मृत्यु और आत्मा की उपलब्धि है।
धार्मिक चित्त स्वयं को तोड़ता नहीं है। धार्मिक चित्त शुभ और अशुभ के बीच चुनाव नहीं करता है। वह कहता है "जो है" वह है। वह इस होने को उसकी समग्रता में जानना चाहता है। और स्वयं के होने की समग्रता को जान लेना ही क्रांति बन जाती है।
अनैतिकता अशुभ का चुनाव करती है, नैतिकता शुभ का। धार्मिकता चुनाव रहित जागरूकता, च्वाइसलेस अवेयरनेस है।
गांधी में मैं ऐसी चुनाव रहितता नहीं देखता हूं, इसलिए उन्हें धार्मिक कहने में असमर्थ हूं। वे नैतिक हैं और परम नैतिक हैं। नैतिक महात्माओं में शायद उन जैसा महात्मा कभी हुआ ही नहीं है। वे अनीति के ठीक दूसरे छोर पर हैं। लेकिन जब तक नैतिक हैं, तब तक अनीति से मुक्त नहीं हैं।

अनीति से मुक्त होने को तो नीति से भी मुक्त होना होता है। और दोनों
से ही मुक्त होकर चेतना धार्मिक, रिलीजस हो जाती है।

देख कबीरा रोया
नौवां प्रवचन

गांधी का चिंतन अवैज्ञानिक है

... व्यवहार करते हैं। ये दोनों तरकीबें हैं। जिंदा आदमी को मार डालो
और मरे हुए आदमी की पूजा करो। ये छूटने के रास्ते हैं, ये बचने के रास्ते हैं। फिर पूजा भी हम उसी की करते हैं जिसे हमने बहुत सताया हो। पूजा मानसिक रूप से पश्चात्ताप है। वह प्रायश्चित्त है। जिन लोगों को जीते जी हम सताते हैं, उनके मरने के बाद पूरा समाज उनकी पूजा करता है; ऐसे प्रायश्चित्त करता है। वह जो पीड़ा दी है, वह जो अपराध किया है, वह जो पाप है भीतर, उस पाप का प्रायश्चित्त चलता है, फिर हजारों साल तक पूजा चलती है। पूजा किए गए अपराध का प्रायश्चित्त है। लेकिन वह भी अपराध का ही दूसरा हिस्सा है।
गांधी को जिंदा रहते में हम सताएंगे, न सुनेंगे उनकी, लेकिन मर जाने
पर हम हजारों साल तक पूजा करेंगे। यह गिल्टी कांशियंस, यह अपराधी चित्त का हिस्सा है यह पूजा। और फिर इस पूजा के कारण हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होंगे। पहले भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होते। गांधी जिंदा हों तो हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम गालियां देकर, पत्थर मार कर, गोली मार कर दीवाल खड़ी करेंगे कि उनकी बातें सोचनी न पड़ें। फिर जब वे मर जाएंगे, तब भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम पूजा की दीवाल खड़ी करेंगे और कहेंगे, अब सोचना-विचारना उचित नहीं, अब तो पूजा करनी काफी है। महापुरुषों को या तो गोली मारते हैं हम या फूल चढ़ाते हैं, लेकिन महापुरुषों पर सोचते कभी भी नहीं हैं। मेरा गांधी से कोई विरोध नहीं है। बहुत प्रेम है। और इसलिए रोज-रोज वे मेरे रास्ते में आ जाते हैं। उन पर मुझे बात करनी अत्यंत जरूरी मालूम पड़ती है; क्योंकि इस पचास वर्षों में भारत के राष्ट्रीय आकाश में उनसे ज्यादा चमकदार कोई सितारा पैदा नहीं हुआ। उस सितारे पर आगे भी सोचना और विचार जारी रखना अत्यंत आवश्यक है। लेकिन जहां मेरा उनसे विचार-भेद है, वहां मैं निवेदन जरूर करना चाहता हूं। दो-तीन बिंदुओं को समझाना चाहूंगा।

पहली बात, गांधी का विचार वैज्ञानिक नहीं है, अवैज्ञानिक है। गांधी
का विचार नैतिक तो है, लेकिन वैज्ञानिक नहीं है, साइंटिफिक नहीं है। गांधी का व्यक्तित्व ही, गांधी के व्यक्तित्व में चीजों को समझने की जो प्रतिभा थी, वह प्रतिभा ही वैज्ञानिक नहीं थी।
गांधी जिन दिनों शिक्षा के लिए इंग्लैंड गए, तो यूरोप की हवाओं में बड़ी क्रांति की बातें थीं। डार्विन का "ओरीजन ऑफ स्पीशी.ज" किताब छप गई भी। सारे पश्चिम के जगत में डार्विन की चर्चा थी, विकासवाद की चर्चा थी। विकासवाद ने एक भारी धक्का पहुंचा दिया था दुनिया के पुराने विचार को। अब दुनिया का विचार कभी भी वही नहीं हो सकता था जो डार्विन के पहले था। लेकिन गांधी पर डार्विन के विचार का कोई परिणाम नहीं हुआ। मार्क्स की "दास कैपिटल" छप चुकी थी। एक नई क्रांति, समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था हवा में आ गई थी। चारों तरफ चर्चा थी। लेकिन गांधी पर मार्क्स के चिंतन का कोई संस्कार नहीं हुआ। जहां गांधी थे इंग्लैंड में, वहां फेबियन सोसाइटी निर्मित हो चुकी थी। समाजवाद के न मालूम कितने रूपों में, हवा में खबर थी-- साइमन, पूरिए, ऑबेन, बर्नार्ड शॉ, इन सबकी चर्चा थी हवा में। लेकिन गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा।
पश्चिम में विज्ञान नई क्रांति कर रहा था धर्म के विरोध में। पुराने धर्म की सारी परंपरा क्षीण होकर गिर रही थी। चर्च, मंदिर टूट रहा था। एक नया तर्कयुक्त, एक नया विचारपूर्ण भविष्य पैदा हो रहा था। गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। गांधी पर प्रभाव किस बात का हुआ, आपको पता है? वेजिटेरियनिज्म का। गांधी उस पश्चिम की क्रांति के उस वातावरण में कौन से विचार से प्रभावित हुए? वेजिटेरियनिज्म से, शाकाहारवाद से। गांधी का चित्त वैज्ञानिकता से जरा भी, कभी भी, संबंधित नहीं हो सका। जीवन भर भी

उनका चिंतन नैतिक तो रहा, लेकिन वैज्ञानिक नहीं रहा। और गांधी का हिंदुस्तान में जो भी प्रभाव दिखाई पड़ा, वह भी इसी कारण कि गांधी नैतिक विचारक हैं, वैज्ञानिक नहीं। हिंदुस्तान हजारों साल से अवैज्ञानिक होने की आदत में दीक्षित रहा है। हिंदुस्तान ने हजारों साल से कभी वैज्ञानिक ढंग से नहीं सोचा। हिंदुस्तान में इसीलिए विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया। हिंदुस्तान के पास प्रतिभा की कमी नहीं है। हिंदुस्तान के पास बुद्ध, दिग्नाग और नागार्जुन और शंकर जैसे अदभुत प्रतिभाशाली लोग हुए हैं, लेकिन हिंदुस्तान के पास एक भी आइंस्टीन, एक भी न्यूटन नहीं पैदा हुआ। भारत की प्रतिभा ही पचास पीढ़ियों से, सौ पीढ़ियों से अवैज्ञानिक रही है। तीन हजार वर्षों के लंबे इतिहास में भारत ने वैज्ञानिक प्रतिभा का कोई प्रमाण नहीं दिया है। भारत का सारा सोचना गैर-साइंटिफिक, बल्कि एंटी-साइंटिफिक, विज्ञान-विरोधी है। इस चिंतन की लंबी परंपरा के कारण ही गांधी की अवैज्ञानिक विचारधारा को भी महत्व मिलना शुरू हुआ। गांधी ने कभी भी तर्कयुक्त ढंग से, तथ्ययुक्त ढंग से नहीं सोचा।
बिहार में अकाल पड़ा तो गांधी के अवैज्ञानिक चिंतन ने क्या कहा? कहा कि बिहार में इसलिए अकाल पड़ा है कि वहां के हरिजनों के साथ जो अत्याचार हुआ है, उसका फल मिल रहा है। यह बड़ी अजीब सी बात उन्होंने कही। बिहार के हरिजनों के साथ किए गये अत्याचार का फल मिल रहा है बिहार के लोगों को। और हिंदुस्तान भर में अत्याचार नहीं हो रहा है हरिजनों के साथ? और अगर हरिजनों के अत्याचार के कारण अकाल पड़े, तो हिंदुस्तान में अन्न का एक भी दाना कभी पैदा नहीं होना चाहिए, इतना अत्याचार हो चुका है। लेकिन यह सिर्फ बिहार में क्यों हुआ? बिहार में ही अत्याचार हो रहा है हरिजनों के साथ? नहीं, लेकिन अवैज्ञानिक चिंतन का कोई हिसाब नहीं है। गांधी को कोई बात ठीक लगे तो वे कहेंगे, मेरी अंतर्वाणी कर रही है। अंतर्वाणी आपकी कुछ भी कह सकती है। आपकी अंतर्वाणी किसी चीज के सही होने का सबूत नहीं है। और अगर इस तरह हर आदमी की अंतर्वाणी सबूत बन जाए, तो मुल्क एक पालगखाना हो जाएगा। मैं भी कहूंगा, मेरी अंतर्वाणी यह कह रही है, और आप कहेंगे, मेरी अंतर्वाणी यह कह रही है। अंतर्वाणी के कहने से कोई चीज सत्य नहीं होती। सत्य होने के लिए उसे तथ्यगत और वैज्ञानिक होना पड़ेगा। सत्य होने के लिए उसके सबके तर्क को अपील हो सके, सबके तर्क और बुद्धि को समझ में आ सके, ऐसा होना पड़ेगा। लेकिन गांधी को इतना काफी है। उन्हें कोई बात ठीक लगती है, वे कहेंगे, मुझे ईश्वर की वाणी कह रही है।
कोई ईश्वर की वाणी किसी से कुछ भी नहीं कहती है। हमेशा अपने ही अचेतन चित्त की आवाज सुनाई पड़ती है। हमारा यह भीतर का मन हमसे कुछ कहता है। लेकिन मेरे भीतर का मन कुछ कहे, इस कारण वह सत्य नहीं हो जाता है कि मेरे भीतर के मन ने कहा है। और मेरे लिए सत्य हो भी सकता है, लेकिन दूसरे के लिए सत्य कहने का हकदार मैं नहीं हूं। लेकिन गांधी जीवन भर यह कहेंगे कि मेरी अंतर्वाणी यह कह रही है। और उनकी अंतर्वाणी यह कहेगी और अगर वे उपवास करेंगे और अनशन करेंगे, तो पूरे मुल्क को भी मानना पड़ेगा कि वे जो कह रहे हैं, वह ठीक कह रहे हैं।

नहीं, गांधी की इस अंतर्वाणी के सिद्धांत ने भारत के चित्त को बहुत नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि इससे अवैज्ञानिकता बढ़ती है। एक आदमी की अंतर्वाणी कहती है कि आंध्रप्रदेश अलग होना चाहिए, और वह अनशन कर देता है। अब अंतर्वाणी को मानना ही पड़ेगा। और अगर हम अंतर्वाणियों को इस तरह मान कर चलें तो हिंदुस्तान की क्या गति होगी? लेकिन गांधी जैसे बड़े व्यक्ति ने अंतर्वाणी को इतना बल दिया। तर्क को नहीं, विचार को नहीं, सोच-विचार को नहीं, डायलाग को नहीं, कि हम विचार करें और तय करें। नहीं, उनकी अंतर्वाणी जो कहती है, वह उन्हें सत्य मालूम पड़ता है। फिर उस सत्य के लिए वे दबाव डालते हैं, और उस दबाव को हम समझते हैं, वह अहिंसा है। दबाव किसी भी स्थिति में अहिंसा कभी नहीं होती है। चाहे दबाव किसी भी रूप का हो, दबाव हमेशा हिंसा है।

मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं तो यह भी हिंसा है और मैं आपके दरवाजे पर अनशन करके बैठ जाऊं तो यह भी हिंसा है। मैं आपको हर हालत में दबा रहा हूं। और कई बार छुरे का भय उतना नहीं होता, जितना कोई आदमी द्वार पर आकर मर जाए उसका भय होता है। और गांधी जैसा भला आदमी अगर मरने लगे तो हम गलत न भी होंगे तो भी झुक जाएंगे कि चलो ठीक है। इस आदमी को मरने नहीं देना चाहिए, इतना बहुमूल्य आदमी! लेकिन गांधी की अवैज्ञानिकता के कारण उनको यह भी नहीं सूझता है कि दबाव, सभी तरह का, हिंसा होता है। चाहे दबाव किसी तरह का हो, दबाव मात्र हिंसा है। चाहे आप छुरे से दबाएं किसी को और चाहे मरने की धमकी देकर दबाएं। और मरने की धमकी देकर दबाना और भी खतरनाक है, क्योंकि दूसरा आदमी बिल्कुल निहत्था हो जाता है, वह कोई उत्तर भी नहीं दे सकता। जब तक कि वह भी यही पागलपन न करे कि वह भी अनशन लेकर बैठ जाए और कहे कि मैं भी मर जाऊंगा।
मैंने सुना है, एक मजाक मैंने सुनी है। एक युवक एक लड़की के पीछे दीवाना था। और उसके घर के सामने जाकर उसने अनशन कर दिया और कहा कि मेरी अंतर्वाणी कहती है कि मैं तुमसे ही प्रेम करता हूं और तुमसे ही विवाह करूंगा। और अगर मुझसे विवाह नहीं करोगी तो मैं मर जाऊंगा अनशन करके। सारे गांव के अच्छे लोगों का समर्थन उस युवक को मिलना शुरू हुआ, क्योंकि उसने यह अहिंसात्मक आंदोलन शुरू किया था। प्रेम के लिए यह पहली घटना थी। गांव के लोगों ने कहा, यह तो अहिंसात्मक बात है। यह आदमी धमकी तो नहीं दे रहा है। यह तो अपने प्राण न्योछावर कर रहा है। यह तो शहीद हो रहा है। घर के लोग बहुत घबड़ा गए। अगर वह छुरे से धमकी देता तो उससे लड़ा भी जा सकता था। सारे गांव की नैतिक बुद्धि उसके पक्ष में थी। वे बहुत परेशान हुए। फिर उन्होंने गांव में एक पुराने अहिंसात्मक आंदोलन करने वाले बुड्ढे से सलाह ली कि क्या किया जा सकता है? उसने कहाः घबड़ाओ मत, रात हम इंतजाम कर देंगे। रात वह एक बूढ़ी औरत को लेकर आया। और उस लड़के से उस बूढ़ी औरत ने आकर कहा कि मेरी अंतर्वाणी कहती है कि मैं तुमसे विवाह करूंगी। और मैं अनशन शुरू करती हूं। रात में ही वह लड़का अपना बिस्तर वगैरह लेकर भाग गया। क्योंकि अब कोई उपाय नहीं था।
अंतर्वाणियों पर तय नहीं किया जा सकता है कुछ। अंतर्वाणियों पर छोड़ना बहुत खतरनाक है और देश को गड्ढे में ले जाना है। क्योंकि आपकी अंतर्वाणी आपकी अंतर्वाणी है। और कौन है हकदार यह कहने का कि मेरी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है? यही तो आज तक दुनिया को नुकसान पहुंचाने वाला तत्व रहा है। मोहम्मद कहते हैं कि मेरी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है। वेद के ऋषि कहते हैं कि हमारी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है। सारे दुनिया के लोग यही दावा करते हैं कि हमारी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है। फिर झगड़े का कोई कारण नहीं रह जाता। सत्य निर्णीत हो गया। अब सत्य को निर्णय नहीं करना है। तर्क की कसौटी पर, प्रयोग की शाला में, दस आदमियों के बीच अब सत्य का निर्णय नहीं होना है। सत्य पहले से निर्णीत हो गया। मेरी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है; यह बहुत खतरनाक बात है। यह बहुत अवैज्ञानिक बात है। और अगर यह फैल जाए तो मनुष्य को हितकर नहीं हो सकती। और फिर इस तरह की अंतर्वाणी के लिए दबाव डालना और भी खतरनाक है।
नहीं, किसी भी तरह का दबाव अहिंसात्मक नहीं है। सब दबाव वायलेंस हैं,
सब दबाव हिंसा है। और इसीलिए गांधी के अनशन और सत्याग्रह का परिणाम भारत के लिए अच्छा नहीं हुआ। सारा देश आज किसी भी टुच्ची बात पर सत्याग्रह करता है, किसी भी बेवकूफी की बात पर अनशन शुरू हो जाता है। सारा मुल्क परेशान है। वह गांधी जो तत्व दे गए हैं, वह मुल्क को भरमा रहा है और भटका रहा है और तकलीफ में डाल रहा है। और अगर वह बढ़ता चला गया तो हिंदुस्तान की नौका कहां डूब जाएगी, किन चट्टानों से टकरा कर, कहना मुश्किल है। क्योंकि हिंदुस्तान की नौका तर्क के सहारे नहीं चल रही है, अबुद्धि के सहारे चल रही है। हिंदुस्तान का विचार--विचार और विवेक जाग्रत नहीं हो रहा है। हिंदुस्तान में हर आदमी दावेदार हो गया है कि वह जो कह रहा है, वह सत्य है, और उसको मानना जरूरी है। यह बात हैरानी की मालूम होती है!

लेकिन जितने लोग भी गैर-साइंटिफिक ढंग से सोचते हैं, वे हमेशा अपने भीतर की आवाज को बल देना शुरू कर देते हैं।
मैंने सुना है, बगदाद में एक आदमी ने घोषणा कर दी कि मैं पैगंबर हूं।
अब इसका कोई निर्णय नहीं हो सकता है कि कौन आदमी पैगंबर है, क्योंकि पैगंबर खुद ही कहता है कि भगवान ने मुझे कहा है कि तुम पैगंबर हो। बगदाद के खलीफा ने उसे पकड़ लिया, क्योंकि बगदाद का खलीफा पैगंबरों के खिलाफ नहीं है, लेकिन मोहम्मद नाम के पैगंबर से बंधा हुआ है, दूसरे पैगंबर को वह बरदाश्त नहीं कर सकता। उसने पकड़ लिया उस पागल को और कहा कि तुम पागल हो। मोहम्मद के बाद अब कोई पैगंबर की दुनिया में जरूरत नहीं है। असली पैगंबर हो चुका है। तुम्हारा दिमाग खराब है, अपना दिमाग ठीक करो, अन्यथा फांसी पर लटकने को तैयार हो जाओ। एक महीने का तुम्हें वक्त देते हैं। उसे जंजीरों से बांध कर कारागृह में डाल दिया।
पंद्रह दिन बाद खलीफा उससे मिलने गया कि शायद अब वह दुरुस्त हो गया होगा। भूखा-प्यासा, जंजीरों में बंधा, उस पर कोड़े रोज पड़ रहे थे। खंभे से बंधा था वह आदमी। खलीफा ने जाकर कहा कि महाशय, बुद्धि दुरुस्त हो गई हो तो बोलो, अब तो नहीं है यह ख्याल कि तुम पैगंबर हो? उस आदमी ने कहाः अरे पागल खलीफा, यह तो जब भगवान के पास से मैं चलने लगा, उन्होंने जब मुझे पैगंबर बनाने का आदेश दिया, तभी उन्होंने कहा था कि पैगंबरों को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं। हमेशा से पैगंबरों को मुसीबतें झेलनी पड़ी हैं। मुसीबतों ने सिद्ध कर दिया कि मैं पैगंबर हूं। और तुम अगर मुझे मार डालोगे तो बिल्कुल पक्का सिद्ध हो जाएगा कि मैं पैगंबर हूं, क्योंकि पैगंबर हमेशा मारे जाते रहे हैं। लेकिन तभी सीखचों में बंद एक दूसरा आदमी भीतर से चिल्लाया कि खलीफा, यह आदमी झूठ बोल रहा है, मैंने इसे कभी भी पैगंबर बना कर नहीं भेजा। खलीफा ने कहाः आप कौन हैं? वह आदमी दो महीने पहले पकड़ा गया था उसको खुद परमात्मा होने का वहम था। वह कहता था कि मैं परमात्मा हूं। यह आदमी बिल्कुल झूठ बोल रहा है। मैंने मोहम्मद के बाद किसी को भेजा ही नहीं। इस आदमी को मैंने कभी नहीं भेजा।
अब यह अंतर्वाणियों का द्वंद्व बड़ी मुश्किल बात है। कौन तय करे कि अंतर्वाणी किसकी ठीक है? अंतर्वाणी से समाज नहीं संचालित होते। हां, अगर कोई व्यक्ति को अपनी अंतर्वाणी ठीक मालूम पड़ती है, तो वह अपने जीवन को जिस भांति संचालित करना चाहे करे। लेकिन जैसे ही वह दूसरे व्यक्ति से कोई बात कहता है, वैसे ही तर्क और विवेक और विचार की कसौटी पर बात कही जानी चाहिए। अन्यथा हम समाज को अंधकार में ढकेल देंगे--अंधे अंधकार में, जहां कि पागलपन पैदा हो जाए।
भारत इस तरह की अंतर्वाणी से बहुत दिन से बंधा रहा है। इसीलिए भारत में विज्ञान पैदा नहीं हो पाया। विज्ञान अंतर्वाणियों से पैदा नहीं होता, विज्ञान विचार और तर्क से पैदा होता है। गांधी जी ने फिर तर्क को बहुत नुकसान पहुंचा दिया है। लेकिन वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि हमारी परंपरा इतनी पुरानी हो गई है अतर्क की, तर्क-विरोधी कि हमें ख्याल में नहीं आता कि इस देश का सबसे बड़ा संकट क्या है?
इस देश का सबसे बड़ा संकट है, एक वैज्ञानिक प्रतिभा का पैदा न हो पाना। भारत में कोई वैज्ञानिक चिंतन पैदा ही नहीं हो पाता। हमने कुछ भी ईजाद नहीं की। हमने कोई आविष्कार नहीं किया, हमने प्रकृति के कोई छिपे हुए राज नहीं खोले। इसलिए हम दीन-दरिद्र और हीन होते चले गए। गरीब होते चले गए, गुलाम होते चले गए। और आज भी जमीन पर हमारे पास क्या है? आज जो भी शक्ति हमारे पास दिखाई पड़ती है, वह उधार है। हमारे पास अपनी कोई शक्ति नहीं है। हमारे पास अपनी कोई वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है कि हम अगर दुनिया से टूट जाएं तो हम आज अपना विज्ञान विकसित कर लें। यह असंभव है। हम अपना विज्ञान विकसित नहीं कर सकते। जिनको हम वैज्ञानिक भी कहते हैं, बड़े इंजीनियर, बड़े डाक्टर, उनकी बुद्धि भी अवैज्ञानिक है, वे भी टेक्नीशियंस से ज्यादा नहीं हैं।

मैं कलकत्ते में एक डाक्टर के घर में मेहमान था। सांझ को जब मीटिंग में जाने के लिए वह डाक्टर मुझे लेकर बाहर निकलने लगे, उनकी बच्ची को छींक आ गई। छींक आते ही डाक्टर ने कहा कि दो मिनट रुक जाइए।
मैंने उनसे कहाः आप डाक्टर होकर यह कहते हैं कि रुक जाऊं! आपको भलीभांति पता होना चाहिए कि छींक क्यों आती है! डाक्टर को तो जानना चाहिए? और आपकी लड़की को छींक आने से तीन काल में भी मेरा कोई संबंध नहीं है। मैं क्यों रुकूं आपकी लड़की के छींक आने से?
डाक्टर ने कहाः वह तो मैं समझता हूं, लेकिन फिर भी रुक जाने में हर्ज क्या है? दो मिनट बाद चले चलते हैं। यह अवैज्ञानिक भीतर से बोल रहा है। हर्ज क्या है, यह आदमी कहता है!
हर्ज बहुत बड़ा है। पूरे मुल्क की हत्या हो जाएगी। अगर वैज्ञानिक चिंतन पैदा नहीं होता है तो जिंदगी की समस्याओं का सामना करने की हमारी क्षमता विकसित नहीं हो पाती। हम छींकों से डरने वाले लोग, बिल्लियां रास्ता काट जाएं और हम बैठ जाएंगे। इस तरह नहीं चलेगा।
अभी मैं जालंधर था। एक बड़े इंजीनियर मित्र ने एक बड़ी कोठी बनाई। उसका उदघाटन करने के लिए मुझको ले गए। बड़े इंजीनियर हैं, बड़ी शानदार कोठी बनाई। शायद वैसी कोठी दूसरी न होगी उस नगर में। जब उनकी कोठी का फीता काट रहा था, तो मैंने देखा कि सामने ही कोठी के दरवाजे पर एक हंडी लटकी है। हंडी में आदमी का चेहरा बना है, बाल लटके हैं। मैंने पूछा, यह क्या है? वे इंजीनियर हंसने लगे और कहने लगे, मकान को नजर न लग जाए, इसलिए इसको लटकाना पड़ता है। इन इंजीनियरों और इन डाक्टरों से देश में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा होगी? एक इंजीनियर भी हंडी लटकाता है और सोचता है कि इससे मकान को नजर नहीं लगेगी। फिर इंजीनियरिंग के सारे प्रमाण-पत्रों को लगा दो आग और घर-घर पर हंडियां लटका लो। और अपनी छातियों पर भी लटका लो, जिससे किसी को नजर न लग जाए। यह सारा मुल्क अवैज्ञानिक ढंग से जी रहा है और चिंतन कर रहा है। असल में अवैज्ञानिक ढंग से कोई चिंतन नहीं होता। सिर्फ अंधा अनुगमन होता है। आदमी अंधे की तरह पीछे चल पड़ता है। फिर कोई पूछता नहीं कि यह क्या हो रहा है और क्या नहीं हो रहा है।
गांधी अदभुत व्यक्ति हैं, नैतिक दृष्टि से अदभुत व्यक्ति हैं, चारित्रिक दृष्टि से अदभुत व्यक्ति हैं। बहुत हिम्मत के आदमी हैं; जो उन्हें ठीक लगता है, वे उसे पूरी तरह करते हैं; अपनी पूरी जान लगा देते हैं, अपनी पूरी कुर्बानी दे देते हैं। उनके इस सारे प्रभाव के कारण उनके अवैज्ञानिक चिंतन का भी हमारे ऊपर प्रभाव पड़ गया है। अच्छे आदमी कभी-कभी खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि अच्छा आदमी इतना प्रभावित कर लेता है कि उसकी गलतियां दिखाई पड़नी मुश्किल हो जाती हैं। बुरा आदमी कभी भी अपनी गलतियां किसी पर थोप नहीं सकता, क्योंकि बुरा आदमी दिखाई पड़ता है कि बुरा आदमी है। लेकिन अच्छा आदमी खतरनाक सिद्ध हो सकता है, क्योंकि अच्छा आदमी इतना अच्छा मालूम पड़ता है कि हमारे मन को लगता है कि वह जो भी कर रहा है, जो भी कह रहा है, जो भी सोच रहा है, वह सभी अच्छा होना चाहिए। और तब बहुत सी भूलें सारे देश की प्रतिभा में प्रविष्ट हो जाती है।
गांधी की विचार-दृष्टि वैज्ञानिक नहीं है। इसी अवैज्ञानिकता का परिणाम है कि वे पीछे लौटने की बात करते हैं। कहते हैं, राम-राज्य। राम-राज्य की बातें करनी, आज, तीन-चार हजार वर्ष पीछे लौट जाने की बात करनी है। नासमझी की बात है। समाज को पीछे नहीं लौटाना है, आगे ले जाना है। लेकिन जितने भी अवैज्ञानिक बुद्धि के लोग हैं, वे सब पीछे लौटने की बात करेंगे। क्योंकि आगे तो विज्ञान विकसित होगा, आगे तो विज्ञान और बढ़ेगा, आगे तो बुद्धि और विकसित होगी। आगे दुनिया में महात्माओं की जगह बहुत कम रह जाने की है। लेकिन पीछे की दुनिया में, जहां वैज्ञानिक चिंतन का विकास नहीं हुआ था, जहां सब तरह के अंधविश्वास घर किए थे, और सब तरह के जाल अंधविश्वास ने बुन कर रखे थे, वहीं लौट जाने का मन होता है। राम की दुनिया में ऐसा क्या था जिसके लिए आज हम समाज को लौट चलने के लिए कहें? क्या था ऐसा? ऐसी क्या बात थी जिसके लिए राम-राज्य की चर्चा की जाए?

लेकिन अवैज्ञानिक बुद्धि हमेशा पीछे लौटने वाली बुद्धि होती है। वह कहती है, पीछे लौट चलो, पीछे लौट चलो। आगे जाने में भय लगता है, क्योंकि आगे और समस्याएं होंगी, जिनका सामना करने के लिए बुद्धि को विकसित करना पड़ेगा। उतनी बुद्धि को विकसित करने के लिए जो तैयार नहीं है, वह कहेगा, पीछे लौट चलो। समस्या से ही भाग जाओ। न समस्या रहेगी, न बुद्धि को जन्मने का कारण रहेगा। लौट जाएं अपनी गुफाओं में, बैठ जाएं आकर पीछे लौट कर। लौटते चलो उस समय जब कि बंदर पहली दफे जमीन पर उतरा था। और फिर वापस झाड़ों पर चढ़ जाओ और चार हाथ-पैर से चलने लगो। वह बहुत अच्छा रहेगा, क्योंकि न वहां यंत्रों की जरूरत होगी, न वहां औद्योगीकरण की जरूरत होगी, न वहां किसी आदमी को किसी पर निर्भर होने की जरूरत होगी। स्वावलंबी, बंदर बन जाए एक-एक आदमी लौट कर तो बहुत अच्छा है।
लेकिन समाज ऐसे विकसित नहीं होता। और ये पीछे लौटने वाली चिंतनाएं समाज को हित नहीं पहुंचातीं। क्या था राम के राज्य में, जिसकी इतनी चिंता, जिसके लिए पीछे लौटने की इतनी बात, ऐसी क्या बात थी? और अगर ऐसा सुंदर राज्य था वह और ऐसा स्वर्ण-युग था, तो आदमी उसे छोड़ कर क्यों आ गया? आगे क्यों बढ़ आया?
आदमी हमेशा दुख को छोड़ कर आगे बढ़ता है। सुख को छोड़ कर कभी आदमी आगे नहीं बढ़ता है। यह ध्यान रहे, हम समाज की जिन स्थितियों से गुजर आए हैं, वे स्थितियां आज की स्थितियों से बदतर स्थितियां थीं, इसलिए समाज आगे बढ़ा है उनसे; नहीं तो समाज उनसे कभी आगे नहीं बढ़ता। समाज आगे बढ़ता इसलिए है कि जो पीछे था, वह इस योग्य नहीं रहा कि उसमें जीया जाए। समाज नये द्वार तोड़ता है, नये मार्ग खोलता है। लेकिन प्रतिगामी चित्त, अवैज्ञानिक चित्त हमेशा कहता है, पीछे लौट चलो। मनोविज्ञान में इस वृत्ति को कहते हैंः रिग्रेस, पीछे गिर जाने की वृत्ति।
अगर एक जवान आदमी के घर में आग लग जाए और उस आग को सामना करने की उसकी बुद्धि जवाब दे दे, तो आपको पता है, वह आदमी क्या करने लगेगा? वह दरवाजे पर बैठ कर ऐसा रोने लगेगा, जैसे कोई छोटा बच्चा हो। वह रिग्रेस कर गया। अब जवान होने की हिम्मत उसने छोड़ दी। अब वह बच्चा हो गया, वह रोने लगा। बच्चा जो करता मकान में आग लग जाने पर, वही वह कर रहा है। लेकिन रोने से कोई मकान की आग नहीं बुझती, और पीछे लौट जाने से कोई हल नहीं होता। हां, पीछे लौट जाने से एक सुविधा होती है, समस्या का सामना करने से बच जाने का उपाय मिल जाता है।
पीछे लौटना एस्केपिज्म है, पीछे लौटना पलायनवाद है।
जिंदगी नई समस्याएं खड़ी करती है। उनको हल करने की फिक्र होनी चाहिए, न
कि पीछे लौट जाने की।
नये यंत्रों ने नई मुसीबत पैदा की है, यह सच है। हर नई चीज नई मुसीबत पैदा करती है। क्योंकि पुरानी व्यवस्था में बदलाहट करने की जरूरत आ जाती है। लेकिन हर नई मुसीबत को झेल लेना, सामना करना, मनुष्य की प्रतिभा को विकास करने का अवसर बनता है। और पीछे लौट जाना मनुष्य की प्रतिभा का विकास तत्क्षण रुक जाता है।
क्या आपको पता है, एक आदमी बैलगाड़ी चलाता हो, तो इसके चित्त के बहुत विकास की जरूरत नहीं है, इसकी कांशसनेस बहुत विकसित नहीं होगी। आखिर बैलगाड़ी चलाने के लिए कितनी चेतना की जरूरत पड़ती है? लेकिन एक आदमी अंतरिक्ष यान चलाता हो, तो अंतरिक्ष यान चलाने के लिए बैलगाड़ी वाली बुद्धि काम नहीं दे सकती। इस आदमी की चेतना को विकसित होना पड़ेगा। इस आदमी को इस नये जटिल यंत्र का सामना करने के लिए इतनी ही जटिल, इतनी ही सूक्ष्म बुद्धि भी विकसित करनी होगी। जितना यंत्रों का विकास होगा, उतनी मनुष्य की बुद्धि को चुनौती मिलती है विकसित होने की।
गांधी कहते हैं कि चरखे पर लौट चलो, तकली पर लौट चलो। इससे मनुष्य की चेतना का विकास नहीं होगा, मनुष्य की चेतना का पतन होगा। मनुष्य की चेतना उत्पादन के साधनों के विकास के साथ विकसित होती है। जितने साधन विकसित होते हैं, उतना ही भीतर की चेतना को चुनौती मिलती है और वह विकसित होती है।
साधन छीन लो, और चेतना अविकसित हो जाएगी।

बंगाल के जंगलों में आज से बीस-तीस वर्ष पहले दो बच्चियां पकड़ी गई थीं, जिनको भेड़िए उठा कर ले गए थे। भेड़िए उठा कर ले गए दो आदमियों की बच्चियों को। उन भेड़ियों ने उन्हें पाला। फिर शिकारियों ने उन्हें पकड़ लिया। उनकी दस और बारह साल के करीब उम्र थी, उन बच्चियों की। लेकिन उन बच्चियों में आदमी का कोई भी चिह्न न था। आदमी की चेतना का कोई भी लक्षण न था। वे चार हाथ-पैर से चलतीं, भेड़ियों की तरह चिल्लातीं। मांस देख कर, कच्चे मांस को खा जातीं, आदमी पर झपट्टा मारतीं। बहुत हैरानी हुई कि आदमी की दो लड़कियां, इनकी यह हालत हो गई। भेड़ियों की जीवन-व्यवस्था में जीने पर जो चेतना विकसित होगी, वह आदमी की विकसित नहीं होगी, भेड़ियों की ही होगी। अभी दो-तीन वर्ष पहले उत्तरप्रदेश में भी एक लड़के को पकड़ा गया था जंगल से, जिसकी कोई चौदह या पंद्रह साल की उम्र थी। वह भी भेड़ियों ने पाला था। वह भेड़ियों जैसा हो गया था। उसे छह महीने लग गए सीधा खड़ा होना सिखाने में। दो पैर से खड़ा होना सीखने के लिए उसे छह महीने लगे गए। एक शब्द बोलने के लिए, राम उसका नाम रख दिया था, राम बोलने के लिए उसे डेढ़ साल लग गया। डेढ़ साल में वह उच्चारण कर पाया--राम। क्या हो गया इसकी चेतना को? भेड़ियों की व्यवस्था में रहने पर चेतना भेड़ियों जैसी हो गई।
जितना विकसित समाज, जितनी विकसित यंत्र-व्यवस्था, जितना विकसित विज्ञान, उतना मनुष्य की चेतना को विकसित होने की चुनौती मिलती है। मनुष्य के भीतर अनंत संभावना है विकास की, लेकिन चुनौती मिलनी चाहिए, चैलेंज मिलना चाहिए। गांधी जिस समाज की बात करते हैं, वह चैलेंज देने वाला समाज नहीं है। वह चुनौतीहीन--अपना कपड़ा बना लो, अपने चरखे पर बुन लो, अपनी घर की खेती-बाड़ी कर लो, अपने झोपड़े में रह जाओ, राम-भजन करो और आराम से जीओ। उससे मनुष्य की चेतना को चुनौती नहीं मिलती।
आदमी आगे क्यों बढ़ आया उन स्थितियों को छोड़ कर?
वह इसीलिए आगे बढ़ आया है कि उन स्थितियों में आत्मा के विकास का अवसर नहीं था। विश्व-चेतना मनुष्य की चेतना को विकसित करने के लिए तीव्र संदेश दे रही है। ये यंत्र आकस्मिक रूप से पैदा नहीं हो रहे हैं, ये परमात्मा के खिलाफ पैदा नहीं हो रहे हैं। यह परमात्मा की ही मर्जी होगी। मनुष्य का जो भी विकास हो रहा है, वह परमात्मा की मर्जी से हो रहा है। क्योंकि उसकी मर्जी के बिना और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन महात्मागण परमात्मा की मर्जी के खिलाफ बहुत सी बातें कहते रहते हैं। हालांकि उनकी कोई सुनता नहीं। समाज अपनी ही धारा से बढ़ता है। लेकिन थोड़ा-बहुत विलंब वे जरूर पैदा कर देते हैं। उनका विलंब पैदा करना नुकसान का कारण हो जाता है। हिंदुस्तान में पीछे लौटने और लौटाए जाने वाले लोगों की लंबी परंपरा है। इन संतों-महात्माओं के कारण भारत की आत्मा विकसित नहीं हो पाती है। और भारत की आत्मा जब तक संतों-महात्माओं से मुक्त नहीं होती, तब तक भारत के पास एक वैज्ञानिक प्रतिभा का जन्म नहीं होगा, इसे सुनिश्चित मान लिया जाना चाहिए।
तीन-चार हजार वर्ष से हम क्या कर रहे हैं?
मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिंतन का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं। और
यह विरोध करना इसलिए भी बहुत जरूरी हो गया है कि गांधी इतने महिमाशाली व्यक्ति हैं कि उनकी भूलें और नासमझियां और उनकी झक और उनके फैड्स, वह सब हमारे दिमाग में पकड़ जाएंगे। इसका पूरा खतरा है। वे जो कहेंगे, वे जो करेंगे, वह हमें प्रीतिकर लगने लगेगा। वे आदमी इतने प्रीतिकर हैं। इसलिए बड़ी लड़ाई की जरूरत है कि हम उनके विचार को समझें और देखें कि वह विचार देश को आगे ले जाने वाला सिद्ध होगा कि पीछे ले जाने वाला सिद्ध होगा। और अगर हमें दिखाई पड़ता हो कि वह पीछे ले जाने वाला सिद्ध होगा, तो गांधी को पूरी तरह प्रेम करते हुए भी, गांधी की महिमा के लिए पूरा सम्मान देते हुए, गांधी की सेवाओं के लिए पूरा सत्कार देते हुए भी, गांधी के उन हिस्सों से देश को बचाना पड़ेगा, जो देश को अंधकार में ले जा सकते हैं और गर्त में गिरा सकते हैं।
लेकिन यह बात कहनी ही बहुत मुश्किल हो गई है। क्योंकि यह बात कहने का मतलब है कि न्यस्त स्वार्थों को, वेस्टेड इंट्रेस्ट को नाराज कर देना है।

गांधी ने किसी पत्र में लिखा है कि मेरा वश चले तो न टेलीग्राफ रहने दूं, न रेलगाड़ी रहने दूं। बड़े मजे की बात है! अगर गांधी का वश चले तो टेलीग्राफ, रेलगाड़ी, यह सब वे खत्म कर दें। तो आदमी कहां जाए? आदमी हो जाए गुहामानव। गिर जाए पीछे अतीत के पतन में। हमें पता नहीं है कि इन सारे यंत्रों ने भी बहुत कुछ मनुष्य की आत्मा और धर्म को विकसित होने में सहयोग दिया है। हजारों साल से समझाने वाले लोग नहीं समझा सके थे कि भंगी के पास बैठो, लेकिन रेलगाड़ी ने आपको भंगी के पास बिठा दिया। हजारों महात्मा नहीं समझा सके थे यह बात कि भंगी के पास बैठ कर खाना खा लो, लेकिन रेलगाड़ी में बैठ कर आपने भंगी के पास खाना खा लिया। लाखों महात्मा जो नहीं कर सके वह एक मुर्दा रेलगाड़ी ने काम कर दिया।
जिंदगी बहुत अनूठे ढंगों से विकसित होती है। जिंदगी के रास्ते बहुत अनूठे हैं। और रेलगाड़ी को बंद कर देने का मतलब क्या है? रेलगाड़ी का क्या कसूर है? टेलीग्राफ का क्या कसूर है? बड़े यंत्रों का, हवाई जहाज का क्या कसूर है? एक कसूर है, और वह कसूर यह है कि विज्ञान जितना विकसित होता है, उतना मनुष्य का तर्क विकसित होता है; और जितना तर्क विकसित होता है उतना अंधविश्वास के आधार पर खड़े हुए सारे गढ़ गिरने शुरू हो जाते हैं। विज्ञान का विकास तथाकथित धार्मिक आदमी को भयभीत करता है। विज्ञान का सारा विकास तथाकथित धार्मिक आदमी को भयभीत करता है। क्योंकि उसकी सारी बुनियादें अतर्क पर, अंधेपन पर, विश्वास पर खड़ी हैं। एक तरफ विज्ञान विकसित होगा, तो दूसरी तरफ यह अंधविश्वास पर खड़े हुए मंदिर इनके शिखर गिरने शुरू हो जाएंगे। इसलिए उचित यही है कि विज्ञान विकसित न हो। उचित यही है कि वैज्ञानिक बुद्धि विकसित न हो। उचित यही है कि मनुष्य का तर्क विकसित न हो। उचित यही है कि आंख बंद करके आदमी अंधे की तरह महात्माओं के पीछे चलता रहे। ताकि हजारों साल से जो भी कहा जा जा रहा है--चाहे वह ठीक हो, चाहे वह गलत हो--वह आदमी मानता चला जाए। आदमी को एक मानसिक गुलामी के लिए तैयार किया गया है। विज्ञान ने वह गुलामी तोड़नी शुरू कर दी। इसलिए दुनिया भर के संत-महात्मा विज्ञान के बुनियादी रूप से विरोध में हैं। विरोध वे अनेक-अनेक रूपों में करते हैं, जो ख्याल में नहीं आता। और इतने व्यवस्थित ढंग से वह विरोध चलता है कि शायद उन्हें भी पता न हो कि वे क्या कर रहे हैं?
अब हिंदुस्तान की बढ़ रही है आबादी। विज्ञान कहता है, संतति-नियमन का उपयोग करो, बर्थ-कंट्रोल का उपयोग करो। विज्ञान ने एक अदभुत बात खोज निकाली कि आदमी जन्म के ऊपर अधिकार रख सकता है। पैदा होना आदमी का आदमी के वश में है। लेकिन गांधी जी और विनोबा जी कहते हैं--संतति-नियमन! इससे तो अनाचार फैल जाएगा। संतति-नियमन कभी नहीं, ब्रह्मचर्य का पालन करो। लेकिन पांच हजार वर्ष से तुम समझा रहे हो, कितने ब्रह्मचारी पैदा करवाए? और कब तक तुम इस बकवास को जारी रखोगे? कभी हजार दो हजार आदमी में एक आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। तो उससे हम नहीं कहते कि बर्थ-कंट्रोल का उपयोग करे, उस पर कोई जबरदस्ती नहीं करते। लेकिन जो लोग नहीं उपलब्ध हो सकते हैं ब्रह्मचर्य को, इन सारे लोगों को ब्रह्मचर्य की बातों की आड़ में बच्चे पैदा करते रहने देना, सारे समाज के लिए सुसाइड, आत्मघात सिद्ध होगा। सारी दुनिया ने अपनी संतति पर नियमन पैदा कर लिया है। फ्रांस की संख्या थिर हो गई है। जापान ने अपनी संख्या पर बहुत तीव्रता से काबू पा लिया है। लेकिन भारत अपनी संख्या को पागल की हैसियत से बढ़ाए चला जा रहा है। हम सिवाय मरने के और कहीं भी नहीं पहुंचेंगे। लेकिन गांधी और विनोबा का अवैज्ञानिक चिंतन कहेगा कि नहीं, संतति-नियमन, यह तो कृत्रिम उपाय है। सब उपाय कृत्रिम हैं। उपाय मात्र कृत्रिम होते हैं। उपाय कोई आसमान
से पैदा नहीं होते, आदमी ईजाद करता है। कृत्रिम उपाय का उपयोग मत करो, संयम रखो। लेकिन तुम्हारे संयम की शिक्षा का क्या फल है? तुम्हारी संयम की शिक्षा अगर दस हजार साल भी चले तो कोई परिणाम नहीं होने वाला है। और दस हजार साल में इस देश में कीड़े-मकोड़ों की तरह आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो जाएगी, इस भीड़ को जीना असंभव होगा। सिर्फ मरना ही आसान रह जाएगा। लेकिन आप मरोगे तो वे कहेंगे, इसमें हमारा क्या कसूर? हम तो कहते थे, ब्रह्मचर्य का पालन करो। तुमने नहीं किया, तुम मरो, तुम्हारी जिम्मेवारी, तुम्हारी गलती

है। लेकिन वैज्ञानिक साधनों का उपयोग मत करने देना। और बड़े मजे की बात, वे कहेंगे कि वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने से अनैतिकता बढ़ जाएगी, जैसे कि अनैतिकता बहुत कम है! अब और अनैतिकता क्या बढ़ जाएगी?
अनैतिकता काफी बढ़ गई है, चरम सीमा पर पहुंच गई है। कम से कम इस देश को
तो अब और पतित होने का कोई उपाय नहीं रह गया है। अब तो कोई बहुत ही अदभुत इंवेंटिव माइंड पैदा हो, आविष्कारक, तो भी नहीं बता सकता कि और चरित्रहीनता के नुस्खे क्या हो सकते हैं। सब नुस्खे हमें पूरी तरह मालूम हैं। अब और क्या चरित्रहीनता होगी? लेकिन नहीं, वह अवैज्ञानिक बुद्धि नैतिकता की दलीलों को लेकर अपने अविज्ञान को छिपाए चली जाएगी। और हमको भी वे बातें अच्छी लगेंगी, क्योंकि उन बातों को सुनने की हमारी लंबी आदत हो गई है। जिस बात को हम बहुत बार सुनते हैं, बहुत बार सुनने के कारण वह सही लगने लगती है।
हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि किसी भी झूठ को बार-बार दोहराते रहो, धीरे-धीरे वह सच हो जाता है। बस झूठ को बार-बार दोहराने की जरूरत है, वह सच हो जाएगा। असली सवाल बार-बार दोहराने का है।
और हम तो हजारों साल से कुछ बातें दोहरा रहे हैं। इतनी बार हमने उनको दोहराया है कि वे सच हो गई हैं। और आज उन झूठी बातों को, जो सच दिखाई पड़ने लगी हैं, तोड़ना एक बड़ी मुश्किल बात हो गई है। पहाड़ तोड़ना आसान हो गया; उन झूठी बातों को, जो सच नहीं हैं, तोड़ना बहुत मुश्किल हो गया है। लेकिन अगर किसी को महात्मा बनना हो, तो तोड़ने की कोशिश ही नहीं करनी चाहिए। महात्मा बनने की सरल तरकीब यह है। और इस देश में महात्मा बनने से ज्यादा सरल और कोई भी चीज नहीं है। और कुछ भी बनना बहुत कठिन है, महात्मा बनना एकदम सरल है। और महात्मा बनने का रामबाण नुस्खा यह है कि जो भी नासमझी चलती रही हो, तुम उसका ही गुणगान जारी रखो। जो भी नासमझी चलती रही हो, तुम उसकी ही हां में हां भरते रहो। समाज तुम्हें आदर देगा, क्योंकि तुम समाज की नासमझियों को आदर देते हो। समाज उत्तर में तुम्हारा सम्मान करेगा, क्योंकि तुम समाज का सम्मान करते हो। और अगर थोड़ी सी भी क्रांति की बात कही, कि जिंदगी को बदलना जरूरी है, विचार को बदलना जरूरी है, तो तैयार रहो फिर, फिर महात्मा नहीं हो सकते, फिर साधु नहीं हो सकते।
हिंदुस्तान ने एक तरकीब निकाली है। हिंदुस्तान के सारे विचारशील लोगों को एक तरकीब से, एक रिश्वत देकर क्रांति के विमुख बनाया गया है। और वह रिश्वत यह है कि हम तुम्हें सम्मान देंगे, अगर तुम क्रांति की बात न करो। और अगर तुमने क्रांति की बात की तो अपमान के सिवाय और कुछ भी नहीं मिलेगा। इसलिए हिंदुस्तान में संत-महात्मा पैदा हुए, क्रांतिकारी पैदा नहीं हो सके हैं। हिंदुस्तान के पांच हजार साल के इतिहास में एक भी क्रांति नहीं हो सकी। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण मालूम पड़ता है। हमसे छोटे- छोटे मुल्क सौ दो सौ वर्षों में क्रांति कर लेते हैं, और हमने कोई क्रांति नहीं की। क्या हमारी आत्मा मर गई है? क्या हम कोई भी बदलाहट करने में समर्थ नहीं रहे?
गांधी का चिंतन भी सुधारवादी है, क्रांतिवादी नहीं। यह दूसरा बिंदु मैं आपसे कह देना चाहता हूं।
गांधी क्रांतिवादी चिंतक नहीं हैं, रिफार्मिस्ट, सुधारवादी चिंतक हैं। अगर हिंदुस्तान में अस्पृश्य चल रहा है, अछूत चल रहा है तो उसको अच्छा नाम दे देंगे; कहेंगे, हरिजन। वे यह नहीं कहेंगे कि हिंदू धर्म सड़ा हुआ धर्म है। यह नहीं कहेंगे इस हिंदू धर्म को लगा दो आग, जिस हिंदू धर्म ने यह सब बेईमानी पैदा की। नहीं, वे कहेंगे, हिंदू धर्म तो बहुत महान धर्म है। थोड़ी सी भूल हो गई है। किसी तरह समझा-बुझा कर अछूत को निकट ले जाओ। बीमारी जारी रहने दो। थोड़ी सी भूल रह गई है उसको सुधार लो। कहीं थोड़ा सा पलस्तर बदल दो, कहीं खिड़की बदल दो, कहीं रंग-रोगन बदल दो। समाज तो पुराना बिल्कुल ठीक है।
गांधी क्रांतिवादी नहीं हैं। तो वे कहेंगे, हिंदू भी ठीक है, मुसलमान
भी ठीक है, दोनों भाई-भाई हैं। जब कि दोनों बीमारियां हैं, कोई भाई-भाई नहीं हैं। न हिंदू की जरूरत है, न मुसलमान की जरूरत है; हिंदुस्तान को आदमी

की जरूरत है, हिंदू-मुसलमान की बिल्कुल जरूरत नहीं है। लेकिन गांधी कहेंगे, हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई।
यह सुधारवादी, समझौतावादी दृष्टिकोण, यह क्रांति लाने वाला दृष्टिकोण नहीं है। वे कहेंगे कि दोनों ठीक हैं। वे कहेंगे, अल्ला-ईश्वर तेरे नाम। भगवान का कोई भी नाम नहीं है। न अल्ला उसका नाम है और न ईश्वर उसका नाम है। वह अनाम है और सब नाम लेने वाले, सब नाम झूठे नाम हैं, आदमी के दिए हुए नाम हैं। लेकिन किसी झूठ को खोलने की वह हिम्मत नहीं जुटाएंगे। वे कहेंगे, तुम्हारा झूठ भी ठीक, तुम्हारा झूठ भी ठीक। झगड़ा मत करो, दोनों भाई-भाई हो।
और भाई-भाईयों का नतीजा हम देख रहे हैं, क्या हुआ?
हिंदुस्तान-पाकिस्तान कटा। और इस कटने में गांधी जी ने हिंदू- मुसलमान को भाई-भाई बनाने की जो बात कही, वह बुनियादी आधार बनी। अगर हिंदुस्तान के नेताओं ने और विचारशील लोगों ने हिंदू और मुसलमान को बीमारी कहा होता और हिंदू और मुसलमान दोनों तत्वों के खिलाफ लड़ाई जारी रखी होती, तो हिंदुस्तान के बंटवारे का कभी कोई सवाल नहीं उठ सकता था। देश भी बंट गया, बीमारी जारी है और हजारों साल तक वह बीमारी जारी रहेगी। हिंदुस्तान को वैसे क्रांतिकारी लोग चाहिए, जो इसे बीमारियों से छुटकारा दिलाएं, जो बीमारियों के साथ एडजस्ट होने की, समायोजित होने की बातें न करें। जो समझौते की बातें न करें, जो जिंदगी को बदलने के लिए हिम्मत जुटाएं।
और यह हिम्मत जुटानी हो तो गांधी के समझौतावादी रुख के खिलाफ सारे देश के मन में एक आवाज पैदा होनी अत्यंत जरूरी है।
गांधी एक समझौतावादी हैं।
हिंदुस्तान हमेशा से समझौतावादी रहा है। समझौतावादी होने से यह हमने
सब खो दिया है। अब कब यह मौका आएगा कि हिंदुस्तान समझौतावादीपन की पुरानी आदतें छोड़ दे। वह हिम्मत से जो ठीक हो उसको करने की कोशिश करे। जो सही दिखाई पड़े, जो मुल्क के चिंतन में सही आए, उसके साथ समझौता न करे। क्योंकि समझौता करने वाली कौम धीरे-धीरे इंपोटेंट, नपुंसक हो जाती है। उसका बल चला जाता है, उसका आग्रह चला जाता है, उसका वीर्य चला जाता है, उसकी लड़ने की क्षमता चली जाती है, उसकी बदलाहट की ताकत खो जाती है। वह सब खो गई है। गांधी क्रांतिकारी नहीं हैं। गांधी की जो बात बहुत क्रांतिकारी मालूम पड़ती है, वह बात भी उतनी क्रांतिकारी नहीं है, जितनी की घोषणा की जाती है। गांधी कहते हैं कि अहिंसा--और अहिंसा की बात सच में बड़ी क्रांतिकारी है। लेकिन गांधी के अनशन और सत्याग्रह को मैं अहिंसक नहीं मानता हूं। अगर कोई भी अनशन जाहिर रूप से किया जाए तो हिंसात्मक हो जाता है। अगर मुझे किसी व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन करना है, तो मौन में, एकांत में बिना किसी को पता चले, ध्यान में, समाधि में मुझे उसके हृदय-परिवर्तन की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर मैं बड़ौदा में घोषणा करके कि मैं फलां आदमी का हृदय-परिवर्तन करूंगा, और अनशन करता हूं, और सारा बड़ौदा मेरे अनशन के आस-पास घूमता है, और अखबारों में खबरें छपती हैं तो मैं उस आदमी पर दबाव डाल रहा हूं। यह दबाव अहिंसात्मक नहीं है।
सत्याग्रह अहिंसात्मक हो सकता है, लेकिन वह होगा मौन में, एकांत में, अंधेरे में जहां किसी को पता भी न चले। उस आदमी को भी पता न चले, जिसका हृदय-परिवर्तन करने की मैं कोशिश कर रहा हूं। और तब उस मौन में भी हृदय बदले जाते हैं, उस मौन में भी हृदय से हृदय तक आवाज पहुंचाई जाती है। वह तो अहिंसात्मक हो सकता है।
लेकिन इस तरह के सत्याग्रह और अनशन अहिंसात्मक नहीं है; ये हिंसा के नये रास्ते हैं, नये रुख हैं। यह हिंसा की नई तरकीब है।
नहीं, गांधी के द्वारा जो क्रांति हो गई, वह अहिंसात्मक क्रांति नहीं है। और वह क्रांति संभव हो सकी, वह इसलिए नहीं की भारत अहिंसात्मक आंदोलन कर रहा था, बल्कि इसलिए कि भारत इतना कायर, इतना कमजोर और इतना निर्वीर्य हो गया है कि उसमें लड़ने की कोई हिम्मत नहीं रही। गांधी ने भी आजादी मिलने के बाद यह बात स्वीकार की। गांधी ने यह बात स्वीकार की कि अब मैं समझता

हूं, क्योंकि आजादी मिलते ही जो हिंसा का दौर छूटा पूरे मुल्क में, उससे सब बात पता चल गई कि यह मुल्क कितना अहिंसक है। गांधी ने भी यह बात स्वीकार की कि मैं समझता हूं अब कि हिंदुस्तान ने कमजोरी की वजह से अहिंसा की बातें मान ली थीं। हिंदुस्तान अहिंसक नहीं है।
कौन सी अहिंसात्मक क्रांति हो गई! लेकिन वह जो क्रांति गांधी के साथ चली भी, वह क्रांति भी बहुत अदभुत थी। वह क्रांति, वह विरोध, वह बगावत अंग्रेजों के तो खिलाफ थी, लेकिन हिंदुस्तान की सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ नहीं थी। अगर अंग्रेजों की खिलाफत चले तब तक तो ठीक था...
अब आगे नहीं बढ़ना। इसलिए हिंदुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गई। हिंदुस्तान आजाद नहीं हुआ। हिंदुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गई और हिंदुस्तानी पूंजीपति के हाथ में हुकूमत आ गई। हिंदुस्तान की गुलामी जारी है। अंग्रेज पूंजीपति की जगह हिंदुस्तानी पूंजीपति आ गया, लेकिन हिंदुस्तान की गुलामी में कोई फर्क नहीं पड़ा है। और इसीलिए हिंदुस्तान का पूंजीपति गांधी के आस-पास चक्कर लगाता रहा, क्योंकि गांधी से उसे आशा थी कि इस आदमी के कारण न तो जनता हिंसा कर सकेगी, क्योंकि हिंसा की अगर क्रांति होती तो हिंदुस्तान का पूंजीपति भी उस क्रांति में बह जाता, यह निश्चित था।
गांधी के कारण हिंसात्मक क्रांति नहीं हो सकेगी, पूंजीवादी सुरक्षित है। और गांधी की समझौतावादी प्रवृत्ति के कारण अंग्रेज पूंजीपति से सत्ता हमारे हाथ में आ जाएगी, यह भी हिंदुस्तान की पूंजीवादी व्यवस्था को पता है। इसलिए जैसे ही हिंदुस्तान को आजादी मिल गई, हिंदुस्तान के पूंजीपतियों और हिंदुस्तान के नेताओं ने गांधी को एक तरफ फेंक दिया। काम खत्म हो गया था, वह चली हुई कारतूस सिद्ध हो गए थे। काम पूरा हो गया था। जो काम होना था, हो चुका था। अब गांधी खतरनाक थे, अब गांधी की कोई जरूरत न थी। इसलिए गांधी ने मरने के कुछ दिन पहले कहा कि मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं। अब मेरी कोई पूछ नहीं है, अब मुझे कोई नहीं पूछता है। लेकिन फिर भी वह यह नहीं समझ पाए कि उन्हें अब कोई क्यों नहीं पूछता है? इसलिए नहीं पूछता है कि जो उन्हें पूछ रहे थे लोग, उनका काम पूरा हो गया है। अंग्रेज के हाथ से सत्ता हिंदुस्तानी पूंजीपति के हाथ में आ गई है। गांधी का काम पूरा हो गया। अब गांधी की कोई भी जरूरत नहीं है। और गांधी का मौजूद रहना खतरनाक सिद्ध हो सकता है।
यह जो क्रांति हुई, यह क्रांति नहीं थी। यह केवल सत्ता का एक पूंजीपति वर्ग से दूसरे पूंजीपति वर्ग के हाथ में स्थानांतरण था, यह ट्रांसफर था, यह कोई क्रांति नहीं थी। समाज की जिंदगी वैसी की वैसी है, बल्कि बदतर हो गई है। बीस सालों में आजादी के बाद हिंदुस्तान का चित्त, हिंदुस्तान की चेतना और आत्मा पतित हुई है, विकसित नहीं हुई है। असल में अपना पूंजीपति और भी खतरनाक सिद्ध हुआ है।
और मैं आपसे कहता हूं कि अंग्रेज पूंजीपति तो गांधी के प्रति सदय रहा, भारतीय पूंजीपति गांधी के प्रति सदय भी नहीं रह सकता था। और गांधी की हत्या इसका सबूत है। अंग्रेज हुकूमत के बीच गांधी जिंदा रह सके। अंग्रेज ने गांधी की हत्या नहीं की है। मुसलमान ने गांधी को गोली नहीं मारी। एक हिंदू ने और हिंदुस्तान के आजाद होने के बाद गोली मारी, यह आकस्मिक नहीं है, एक्सीडेंटल नहीं है। यह बताता है कि हमारा पूंजीपति, हमारे देश का सत्ताधिकारी पश्चिम के सत्ताधिकारियों से भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है। हम ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। वह जो काला पूंजीपति है, वह गोरे पूंजीपति से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो रहा है।
गांधी के एक भक्त ने, जब हिंदुस्तान आजाद हुआ, तो उन सज्जन के पास केवल तीस करोड़ की पूंजी थी। आज उनके पास तीन सौ तीस करोड़ की पूंजी है। बीस वर्ष में तीन सौ करोड़ की पूंजी का इकट्ठा हो जाना मिरेकल है, चमत्कार है। लेकिन मानना चाहिए कि सत्संग का फायदा होता है। ग्रंथों में लिखा है, सत्संग से बहुत फायदा होता है। उनको भी गांधी के सत्संग से फायदा हुआ है।
नहीं, गांधी कोई क्रांतिकारी विचार-द्रष्टा नहीं हैं, गांधी एक सुधारवादी, समझौतावादी चिंतक हैं।

और उन्होंने जो समाज की रूप-रेखा दी है, वह कोई क्रांति की रूप-रेखा नहीं है। और इसलिए मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिंतन का, उनकी क्रांति- विरोधी दृष्टि का, उनके प्रतिगामी और पीछे लौट चलने वाली प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूं।
लेकिन यह गांधी का विरोध नहीं है। गांधी व्यक्ति के प्रति मुझे समादर है, लेकिन गांधी के विचार अगर गलत हैं तो चाहे कोई भी परिणाम हो, मैं उन विचारों को गलत कहना चाहता हूं। और मैं इतनी आशा करता हूं मुल्क की नई पीढ़ियों से, मुल्क के विचारशील लोगों से कि वे सिर्फ मुझे गालियां कोई अगर दे तो इससे मेरी बात को गलत नहीं समझ लेंगे। बल्कि मुझे दी गई गालियां यह बताती हैं कि मैंने जो भी कहा है उसका एक भी उत्तर नहीं दिया जा रहा है, सिर्फ मुझे गालियां दी जा रही हैं और गालियां कमजोर देते हैं। जो मैं कह रहा हूं उसका उत्तर दिया जाना चाहिए। मैं उत्तर के लिए तैयार हूं।
और मेरा दावा नहीं है कि जो मैं कहता हूं, सही है, क्योंकि मैं तो विचार और तर्क में विश्वास करता हूं। मैं दावा नहीं करता कि मेरी अंतर्वाणी जो कहती है, वह सही ही होना चाहिए। वह गलत हो सकता है, लेकिन मेरी बातों का उत्तर चाहिए। मुझे गालियां देने से कुछ परिणाम नहीं निकल सकता, और गालियां देकर जनता को बहुत दिन तक गुमराह भी नहीं रखा जा सकता है। जनता से मुझे आशा है और इस बात की आशा नई पीढ़ियों से और भी ज्यादा है कि भविष्य सोचने वाला भविष्य होगा भारत का। बहुत दिन हम बिना सोचे जी लिए अंधेरे में। क्या कभी भगवान वह मौका नहीं देगा कि यह देश भी विचार करे, यह देश भी जागे और सोचे?
उसी विचार की दिशा में मैं प्रयत्न कर रहा हूं। एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है? जिसके पास न कोई संगठन है, न कोई संस्था है, न कोई साथी है, न कोई संपत्ति है। एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है? लेकिन मैं इस आशा में आवाज दिए ही चला जाऊंगा, जब तक कि वह मेरी आवाज बिल्कुल बंद ही न कर दें। जब तक मुझे यह ख्याल है कि कुछ लोग अगर आवाज सुन लेंगे और अगर आवाज में कोई सत्य होगा, तो यह आवाज रुकवाई नहीं जा सकती, यह गांव-गांव, कोने- कोने, एक-एक आदमी तक जरूर पहुंच जाएगी। अगर परमात्मा की यह मर्जी होगी कि भारत सत्य के प्रकाश में जगे, तो यह होकर रहेगा। इसे कोई भी रोक नहीं सकता है।
और बहुत सी बातें रह गईं, वह कल सुबह मैं बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
दसवां प्रवचन

मेरी दृष्टि में रचनात्मक क्या है?

मेरे प्रिय आत्मन्!
बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मैं बोलता ही रहूंगा, कोई सेवा-कार्य नहीं करूंगा, कोई रचनात्मक काम नहीं करूंगा, क्या मेरी दृष्टि में सिर्फ बोलते ही जाना पर्याप्त है?

इस बात को थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। पहली बात तो यह कि जो लोग सेवा को सचेत रूप से करते हैं, कांशसली, उन लोगों को मैं समाज के लिए अहितकर और खतरनाक मानता हूं। सेवा जीवन का सहज अंग हो छाया की तरह, वह हमारे प्रेम से सहज निकलती हो, तब तो ठीक; अन्यथा समाज-सेवक जितना समाज का अहित और नुकसान करते हैं, उतना कोई भी नहीं करता है।
समाज-सेवा भी अहंकारियों के लिए एक व्यवसाय है। दिखाई ऐसा पड़ता है कि समाज-सेवक विनम्र है; सबकी सेवा करता है; लेकिन सेवक के अहंकार को कोई देखेगा तो पता चलेगा कि सेवक भी सेवा करके मालिक बनने की पूरी चेष्टा में संलग्न होता है।
मेरी दृष्टि में जीवन में शांति हो, अंतस्तल पर प्रेम का उदघाटन हो,
तो आदमी जो भी करता है, वह सेवा है। और बुहारी लगाना ही रास्ते पर रचनात्मक नहीं है; आपकी खोपड़ी में बुहारी लगाना ज्यादा रचनात्मक है। मैं सिर्फ बोल नहीं रहा हूं। विचार से बड़ी और कोई रचना जगत में नहीं है। विचार से महीन, विचार से ज्यादा अदभुत, विचार से ज्यादा शक्तिशाली कोई क्रांति नहीं है। क्योंकि मूलतः विचार के बीज ही हृदय में जाकर अंततः आचरण को, जीवन को, समाज को, रूपांतरित करते हैं। लेकिन अगर गांधी जी और विनोबा जी के कारण एक ऐसी बात फैल गई है कि कोई सड़क पर बुहारी लगाए या कोई जाकर किसी बीमार आदमी का हाथ-पैर धो दे, या कोढ़ी के पैर दबा दे, तो वह विचार देने से भी बड़ी सेवा कर रहा है, यह बात निहायत नासमझी से भरी हुई है।
इस जगत में जो कुछ भी फलित हुआ है, इस जगत में जो भी श्रेष्ठ है, इस जगत में जो भी सुंदर है, मनुष्य के जीवन ने जो भी ऊंचाइयां छुई हैं, वे ऊंचाइयां अंततः विचार की ऊंचाइयां हैं। और ये जो सेवा में रत लोग हैं, ये भी सेवा के किसी बहुत विचार-बीज के कारण अनुप्राणित हैं। इसलिए मुझे यह समझ में नहीं पड़ता, मैं इसको नितांत मूढ़ता की बात समझूंगा कि मैं बैठ कर किसी गांव की बुहारी लगाऊं और मैं जाकर किसी झोपड़े की सेवा करूं। जो मैं कर सकता हूं, उसके मुकाबले वह करना देश के लिए नुकसान पहुंचाना होगा। मेरी दृष्टि में तो भारत के विचार की शक्ति खो गई है; भारत के पास विचार की ऊर्जा नष्ट हो गई है। भारत ने हजारों साल से सोचना बंद कर दिया है। भारत सोचता ही नहीं है। यह इतना बड़ा पत्थर भारत के प्राणों पर है कि अगर कुछ हजार लोग अपने सारे जीवन को लगा कर इस पत्थर को हटा दें, तो भारत का जितना हित हो सकता है, उतना ये तथाकथित रचनात्मक कहे जाने वाले कामों से नहीं। और जो लोग इन रचनात्मक कामों के लिए अति बात करते हुए प्रतीत होते हैं, उनको भी समझ लेना जरूरी है।
समाज को बदले बिना सारे रचनात्मक काम पुराने समाज को बचाने वाले, टिकाने वाले सिद्ध होते हैं। समाज की जीवन-व्यवस्था में आमूल रूपांतरण न हो, तो समाज में चलने वाली सेवा, समाज में चलने वाला रचनात्मक आंदोलन पुराने समाज के मकान में ही पलस्तर बदलने, रंग-रोगन करने, खिड़की-दरवाजों को पोतने वाला सिद्ध होता है। नहीं, आज समाज को रचनात्मक काम की नहीं, विध्वंसात्मक काम की जरूरत है; आज समाज को कंस्ट्रक्शन की नहीं, एक बहुत बड़े डिस्ट्रक्शन की जरूरत है। आज समाज के पास इतना कचरा, इतना कूड़ा है हजारों साल का कि उसमें आग देने की जरूरत है। इस वक्त जो लोग हिम्मत करके विध्वंस करने को राजी हैं, वे ही लोग एकमात्र रचनात्मक काम कर रहे हैं। यह समाज जाए, यह सड़ा-गला समाज नष्ट हो, इसके लिए सब कुछ किया जाना आज जरूरी है।

मुझे दिखाई पड़ता है कि ये जो रचनात्मक काम करने वाली बातें हैं, ये पुराने दकियानूस समाज को किसी तरह बचाए रखने की चेष्टाओं से ज्यादा नहीं हैं। सब सुधारवाद अंततः सड़ गए। जाते हुए, बिदा होते समाज को बचाने की अंतिम चेष्टा का फल होता है। और जो लोग सेवा के लिए उत्सुक होते हैं, जैसा कि विनोबा कहते हैं, सेवा धर्म है, यह बात निहायत गलत है।
धर्म सेवा हो सकता है, लेकिन सेवा कभी भी धर्म नहीं हो सकती।
इस फर्क को समझ लेना जरूरी है। सेवा करने से कोई धार्मिक नहीं हो सकता। हां, धार्मिक व्यक्ति सेवा करता है। असल में तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति जो भी करता है, वह सेवा है। धर्म से तो सेवा पैदा होती है, लेकिन सेवा से कोई धर्म पैदा नहीं होता। और हम देख रहे हैं कि दुनिया में दो-तीन हजार वर्षों से जिन लोगों ने भी सेवा को धर्म करने की बात बताई है, उन्होंने धर्म को भी नष्ट किया है और सेवा को भी विकृत किया है।
मैंने एक छोटी सी घटना सुनी है। मैंने सुना है, एक चर्च में मोहल्ले- पड़ोस के बच्चे रविवार की सुबह इकट्ठे होते थे। चर्च के पादरी ने उन बच्चों को कहा कि एक सेवा का कार्य जरूर रोज करना चाहिए, क्योंकि यही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना है। उन बच्चों ने पूछाः कैसा सेवा का कार्य? उस पादरी ने कहा कि जैसे कोई नदी में डूबता हो तो उसको बचाना चाहिए; कोई बीमार हो तो उसके लिए दवा ला देनी चाहिए; कोई बूढ़ा आदमी रास्ता पार न कर पाता हो तो उसको सहारा देकर रास्ता पार करवा देना चाहिए। और अगले रविवार को जब तुम आओ, तब एक सेवा का कार्य जरूर करके आना। मैं पूछूंगा।
अगले रविवार को बच्चे इकट्ठे हुए। उस चर्च के पादरी ने पूछाः तुममें
से किसी ने सेवा का कार्य किया? उन तीस-पैंतीस बच्चों में से तीन बच्चों ने हाथ उठाए कि हमने सेवा का कार्य किया है। उस पादरी ने कहा, बहुत अच्छा! कम से कम तीन ने किया, यह भी अच्छा है। सेवा ही प्रार्थना है। सेवा ही परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है। जो सेवा करेंगे, वे ही असली धन को, आत्मिक धन को उपलब्ध होते हैं।
तुमने बेटे कौन सी सेवा की?
पहले लड़के ने खड़े होकर कहा कि मैंने एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
उसने कहाः बहुत अच्छा किया। बूढ़े आदमियों को रास्ता पार करवाना चाहिए।
दूसरे से पूछा कि बेटे, तुमने क्या किया?
उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
वह पादरी थोड़ा हैरान हुआ! उसने कहा कि दोनों को बूढ़ी औरतें रास्तों पर मिल गईं? लेकिन कोई आश्चर्य नहीं, बहुत बुढ़िया हैं, मिल सकती हैं।
तीसरे से पूछाः बेटे, तुमने क्या किया?
उसने कहाः मैंने भी एक बूढ़ी औरत को रास्ता पार करवाया।
उसने कहाः बड़ी हैरानी की बात है! तुमको तीन बुढ़िया मिल गईं?
उन तीनों ने कहाः तीन नहीं, बूढ़ी एक ही थी। हम तीनों ने उसी को पार करवाया।
पर उसने कहाः क्या बूढ़ी इतनी बूढ़ी थी कि तीन आदमियों की जरूरत पड़ी तुम्हें पार करवाने के लिए?
उन तीनों ने कहाः पार नहीं होना चाहती थी, जबरदस्ती पार करवाया है। वह
तो भागती थी इस तरफ कि हमें वहां जाना नहीं है। लेकिन आपसे कहा था कि बिना सेवा किए परमात्मा नहीं मिल सकता। तो हमने उसे जबरदस्ती पार करवा दिया। वह बहुत चिल्लाती थी कि मुझे उस तरफ नहीं जाना है।
यह जो सेवा को पकड़े हुए प्रोफेशनल सेवक, ये जो धंधा बनाए हुए हैं सेवा का, इनको तो बुढ़ियों को रास्ता पार करवाना है, इनको तो कुछ भी करवाना है-- डूबतों को बचाना है--यहां तक भी, अगर डूबते न मिलें तो किसी को डुबा कर भी बचाने का इंतजाम किया जा सकता है। नहीं, ऐसी सेवा वगैरह के समर्थन में मेरे मन में कोई भी बात नहीं है। इन तथाकथित सेवकों को मैं मिस्चीफ मांगर्स कहता हूं, ये समाज में सबसे ज्यादा मिस्चीवियस एलिमेंट हैं, ये

समाज में सबसे ज्यादा उपद्रवकारी तत्व हैं। इसको सेवा करनी है। इसको सेवा करनी ही है, चाहे कुछ भी हो जाए।
इस तरह की सेवा से हित नहीं हुआ है। मैं नहीं कहता हूं कि सेवा धर्म है। मैं जरूर कहता हूं कि धर्म सेवा है। अगर कोई व्यक्ति धर्म को उपलब्ध हो, तो उसके जीवन में जो भी है, वह सब सेवा बन जाता है। लेकिन तब वह कांशस नहीं होता; तब वह सुबह से निकलता नहीं है खोज करने कि किसकी सेवा करे। तब वह जीवन में जीता है, और उसके जीने से, जितना भी उसका जीना है, उसकी चर्या है, उसकी श्वास भी लेनी है, वह सब अनजाने ही, बिना पता चले, सेवा बन जाती है। जहां हृदय में प्रेम है, वहां व्यक्ति में सेवा है। फिर वह सेवा दिखाई पड़े, अखबारों में उसकी खबर छपे, फोटो निकाला जाए, फोटोग्राफर तैयार रहे जब सेवक सेवा करता हो। क्योंकि आजकल कोई सेवक बिना फोटोग्राफर के सेवा नहीं करता, यह आपको मालूम है। फोटोग्राफर को पहले खबर कर आता है कि आज हम सेवा करने जा रहे हैं। फिर इसी तरह के धोखेबाज सेवकों की जमात नेता बन जाती है। हम तो देख रहे हैं, हिंदुस्तान में यह हो गया। जिनको हम उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले सेवक की तरह जानते थे, उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद एक आधी रात के परिवर्तन में, पंद्रह अगस्त के बाद वे सब एकदम मालिक हो गए। और तब उनका असली रूप हमें दिखाई पड़ा कि ये जो सेवक मालूम पड़ते थे, ये सुबह बैठ कर चरखा चलाते थे, हरिजन कालोनी की सफाई करते थे, ये आदमी बिल्कुल दूसरे सिद्ध हुए। जब इनके हाथ में ताकत आई, तो ये आदमी बिल्कुल और हो गए। इनको पहचानना मुश्किल हो गया कि वे वही लोग हैं! यह कैसा चमत्कार हो गया! यह पंद्रह अगस्त की रात बड़ी मिरेकल्स, बड़ी चमत्कारी मालूम पड़ती है। और अंग्रेज बड़े जादूगर थे, मालूम होता है। जरा सी तरकीब और हिंदुस्तान के सारे सेवक क्या से क्या हो गए!
नहीं, यह आकस्मिक नहीं है। लेकिन न गांधीजी इस बात को पहचान पाए और न भारत अभी इस बात को पहचान पाया है कि सेवा करना भी प्रिस्टीज, इज्जत पाने की तरकीब है। और अगर दूसरी तरकीब मिल जाए इज्जत पाने की तो सेवक फौरन सेवा छोड़ कर मंच पर आसीन हो जाएगा, कुर्सियों पर बैठ जाएगा।
वह सेवा भी अहंकार की तृप्ति का मार्ग है। इसलिए दो सेवकों से अगर आप
कह दो कि फलां सेवक आपसे बड़ा सेवक है, तो उसे दुख हो जाता है, कि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे बड़ा कोई सेवक हो। सेवक भी मानता है कि मुझसे बड़ा कोई भी नहीं है। यह सब अहंकार की चेष्टा है। अहंकार से जब सेवा पैदा होती है, तो सेवा सिर्फ बहाना है। अंततः भीतर गहरे में यशाकांक्षा, पद-प्रतिष्ठा, अस्मिता, अहंकार की ही यात्रा चलती है।
नहीं, ऐसी किसी सेवा के मैं पक्ष में नहीं हूं।
मैं जरूर उस सेवा के पक्ष में हूं जो व्यक्ति के आत्मिक रूपांतरण से उपलब्ध होती है, जो सहज हो जाती है। उसे पता भी नहीं चलता। उसे पता भी नहीं चलता कि वह सेवा कर रहा है। अगर आप उससे कहने जाएं कि आप सेवा कर रहे हैं तो वह हैरान होगा। वह कहेगा, कैसी सेवा? मैंने तो कुछ भी नहीं किया। मैं जो कर सकता था, वह हुआ है।
मैंने सुना है, एक संन्यासी भारत आया। वह अफ्रीका में था। वह हिमालय
की यात्रा, बद्री-केदार की यात्रा को गया। जब वह पहाड़ चढ़ रहा था, तेज धूप थी, आकाश से आग बरसती थी, पहाड़ की चढ़ाई थी, हांफ रहा था, पसीना बह रहा था। तभी उसे एक पहाड़ी लड़की भी दिखाई पड़ी, जो पहाड़ चढ़ रही है। वह लड़की की उम्र ज्यादा नहीं है, तेरह-चौदह साल की होगी। बहुत नाजुक, उसके चेहरे पर आग झलक रही है, पसीना बह रहा है, वह थक गई है, वह हांफ रही है और कंधे पर अपने भाई को बिठाए हुए है। वह भी तगड़ा है, छोटा है लेकिन मजबूत और वजनी। संन्यासी उसके पास पहुंचा, तो सिर्फ दयावश उसने कहा कि बेटी, बहुत बोझ लग रहा होगा तुझे? उस लड़की ने बहुत चौंक कर संन्यासी को देखा और कहा, स्वामी जी, बोझ आप लिए हुए हैं; यह तो मेरा छोटा भाई है। बोझ आप लिए हुए हैं। संन्यासी अपना बिस्तर-विस्तर बांधे हुए है। यह मेरा छोटा भाई है, बोझ नहीं!
संन्यासी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि मेरी जिंदगी में मुझे इतना अमृत-वचन पहले कभी सुनने को नहीं मिला था। बहुत शास्त्र मैंने पढ़े थे,

लेकिन यह अदभुत! पहली दफे मुझे पता चला, उस पहाड़ी लड़की ने कहा, यह भाई है मेरा छोटा, यह बोझ नहीं है!
छोटा भाई बोझ नहीं होता। तो इस कंधे पर छोटे भाई को ले जाना सेवा भी नहीं हो सकती। यह सिर्फ प्रेम का कृत्य है। इसमें कहीं कोई सेवा नहीं है। इस छोटी लड़की को पता भी नहीं है कि वह सेवा कर रही है। जिस दिन सेवा इतनी अनकांशस, इतनी सहज, बिना जाने, बिना पता चले जब सेवा होती है तो वैसी सेवा धर्म है।
लेकिन वैसी सेवा तभी होती है जब भीतर धर्म का उदय हो। भीतर धर्म का जागरण हो तो जीवन सेवा बन जाता है।
लेकिन इधर उलटा चल रहा है। इधर समझाया जा रहा है कि तुम बाहर जीवन को सेवा का बना लो तो भीतर धर्म का जन्म हो जाएगा। यह सरासर व्यर्थ और गलत बात है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप लाख सेवा करो, मन धार्मिक नहीं हो जाएगा। जीवन में जो क्रांतियां हैं, वे बाहर से भीतर की तरफ नहीं होती हैं। जीवन की सारी क्रांतियां भीतर से बाहर की तरफ होती हैं। अगर हम यहां एक दीया जलाएं इस भवन में, तो अंधेरा बाहर निकल जाएगा, यह सच है। लेकिन अगर कोई यह कहे कि तुम अंधेरा बाहर निकाल दो, तो दीया जल जाएगा, तो वह बिल्कुल ही फिजूल बातें कह रहा है। न तो आप अंधेरे को बाहर निकाल सकते हैं, और अंधेरे को आप कितना ही बाहर निकालने की कोशिश करें, अंधेरा बाहर नहीं निकलेगा। और निकल भी जाए तो भी दीया नहीं जल जाएगा, दीया जल जाए तो अंधेरा बाहर निकल जाता है। लेकिन अंधेरा बाहर निकलने से कोई दीया नहीं जलता है। भीतर प्रकाश जले धर्म का तो उसकी किरणें जीवन को, आचरण को सेवा बना देती हैं। लेकिन इस भूल में आप मत रहना कि हम जीवन को सेवा बना लेंगे और भीतर की आत्मा रूपांतरित हो जाएगी। लेकिन यह बहुत बुनियादी भूल है। और यह बुनियादी भूल इस देश के चरित्र को हजारों साल से विकृत कर रही है। इसको थोड़ा समझ लेना और भी उपयोगी होगा, क्योंकि इस संबंध में दो प्रश्न और हैं। वे भी इस संदर्भ में समझ में आ सकेंगे।
महावीर को हमने देखा; महावीर का आचरण हमें दिखाई पड़ा। आत्मा तो किसी
की दिखाई नहीं पड़ती है, आचरण ही दिखाई पड़ता है। आचरण बाहर होता है, आत्मा तो भीतर होती है। सिर्फ व्यक्ति को दिखाई पड़ती है, बाहर से नहीं दिखाई पड़ सकती। मैं भीतर क्या हूं, वह तो नहीं दिखाई पड़ सकता, मेरे बाहर मैं क्या करता हूं, वही दिखाई पड़ सकता है। लेकिन जो भी मैं करता हूं, वह मेरे होने से आता है। मेरे करने से मेरा होना नहीं निर्मित होता, मेरे होने से, मेरे बीइंग से मेरी डूइंग निकलती है। मैं जो हूं, वह मेरे करने में आता है। लेकिन मेरे करने से मेरा बीइंग, मेरी आत्मा निर्मित नहीं होती।
महावीर को हमने देखा उदाहरण के लिए; उनकी जिंदगी में दिखाई पड़ी अहिंसा। वे पांव भी फूंक-फूंक कर रखते हैं कि कोई कीड़ी न दब जाए। वे पलक भी ख्याल से झपते हैं कि कोई कीटाणु न मर जाए। वे रात करवट भी नहीं बदलते सोने में कि कहीं करवट बदलने में कोई कीड़ा-मकोड़ा आ गया हो और दब न जाए। वे अंधेरे में चलते नहीं कि कहीं किसी के जीवन को चोट न पहुंच जाए। उनके जीवन में हमें दिखी अहिंसा कि वे फूंक-फूंक कर जी रहे हैं। हमको आचरण दिखाई पड़ गया, महावीर की आत्मा तो दिखाई नहीं पड़ी। आप महावीर को देखे कि यह आदमी फूंक-फूंक कर चलता है, पानी छान कर पीता है, रात करवट नहीं बदलता। आपने तय किया कि हम भी अहिंसक होंगे; रात करवट नहीं बदलेंगे, पांव फूंक-फूंक कर रखेंगे, पानी छान कर पीएंगे।
आप पीओ पानी छान कर जिंदगी भर, सारे समुद्र छान डालो और आप पांव फूंक-फूंक कर रखो, और चाहो तो पांव रखो ही मत, और करवट मत बदलो, और चाहो तो करवट लो ही मत, लेटो ही मत; लेकिन महावीर की आत्मा पैदा नहीं हो जाएगी। लेकिन हजारों संन्यासी महावीर के पीछे इसी नासमझी को दोहराए चले जा रहे हैं। महावीर के पांव फूंक-फूंक रखने के कारण आत्मा का जन्म नहीं हो गया है। आचरण से आत्मा निर्मित नहीं होती, आत्मा से आचरण प्रवाहित होता है। महावीर भीतर आत्मा को जाने हैं, इसलिए यह आचरण पैदा हुआ है। और हम? हम आचरण करेंगे और आत्मा को जानना चाहेंगे, जो कि उलटा हो गया। उलटा नहीं हो सकता है। तो हजारों साल से महावीर के पीछे अहिंसक खड़े हो रहे हैं, लेकिन

महावीर की सुगंध किसी को भी उपलब्ध नहीं हुई। ठीक महावीर जैसे नंगे खड़े हो जाते हैं; नंगे खड़े होने से कोई महावीर बन जाएगा? महावीर जैसा बाल-वाल घुटा कर खड़े हो जाते हैं, महावीर जैसा चलते हैं, महावीर जैसा बैठते हैं। यह सब एक्टिंग है, अभिनय है। इससे कोई महावीर पैदा नहीं हो सकता। यह आचरण का आरोपण है। इसको थोपते चले जाओ, इससे कुछ भी नहीं होगा। महावीर की ऊर्जा इससे पैदा नहीं होगी। इसलिए हजारों संन्यासी हैं महावीर के। लेकिन कहां महावीर की सुगंध, कहां वह ज्योति, कहां वह जीवन, कहां वह संगीत? उसकी कोई खबर नहीं मिलती। नहीं मिल सकती है।
ठीक ऐसा सारे तत्वों के संबंध में होता है। हम देखते हैं आचरण, और वैसा आचरण करने लगते हैं। गांधी चरखा चलाते हैं, नकलचोर पीछे बैठ कर चरखा चलाने लगेंगे और सोचेंगे बन गए गांधी! इतना सस्ता और आसान नुस्खा होता तो दुनिया में सब कभी का ठीक हो गया होता। हां, यह आदमी धोखे में पड़ गया, यह आदमी बिल्कुल धोखे में पड़ गया है। यह बिल्कुल खड़ा हो जाएगा। अभी विनोबा के पास जाएं, तो उनके आस-पास दो-चार विनोबा की शकल-सूरत के आदमी मिल जाते हैं। ठीक वैसा ही दाढ़ी-वाढ़ी बनाए हैं, कपड़ा-वपड़ा लपेट कर वैसे ही खड़े हो गए हैं। इन नासमझों के कारण जिंदगी को फायदा नहीं होता, नुकसान होता है।
नहीं, बाहर की नकल से कभी भी कोई भीतर का असल पैदा नहीं होता है। भीतर
का असल कैसे पैदा होता है, वह सवाल है। आचरण से नहीं, भीतर का असली तत्व पैदा होता है समाधि से, ध्यान से। वह कल रात मैं आपसे बात करूंगा कि वह ध्यान कैसे पैदा हो सकता है। अभी इतना ही कहना चाहता हूं कि सेवा नहीं है महत्वपूर्ण, महत्वपूर्ण है वह हृदय जहां से सेवा प्रवाहित होती है। और अगर वह हृदय न हो, तो आप सेवा कर सकते हैं; लेकिन आपकी सेवा हितकर नहीं होगी, अमंगल सिद्ध होगी, अहितकर सिद्ध होगी। और दुनिया में जितने सेवक कम हों इस तरह के, उतनी दुनिया शांति से जी सकती है। दुनिया को शांति से नहीं जीने देते, उन्हें सेवा करनी है।
मैं कोई सेवक नहीं हूं और मुझे किसी की कोई सेवा नहीं करनी है। अपनी
ही कर लूं तो पर्याप्त है। लेकिन अगर आप अपनी ही सेवा कर रहे हैं तो आपकी जिंदगी में वह सुगंध पैदा होगी कि उससे बहुतों की सेवा हो जाएगी। लेकिन उसका कभी आपको पता भी नहीं चलेगा।
तो सचेतन रूप से सेवा करने वालों के पक्ष में मैं नहीं हूं।
"और आप पूछते हैं कि रचनात्मक कार्य क्या करूंगा?"
किस बात को रचनात्मक कार्य कहते हैं आप? किस बात को रचनात्मक कार्य कहते हैं? जो गोरख-धंधा रचनात्मक कार्यों के नाम से चलता है, इसको रचनात्मक कार्य कहते हैं? यह रचनात्मक कार्य है?
रचनात्मक कार्य एक ही है मनुष्य की चेतना में, वह ध्यान में रख कर और
वह यह कि मनुष्य की चेतना का आविर्भाव कैसे हो, मनुष्य कैसे स्वतंत्र हो, मनुष्य की आत्मा सोई हुई कैसे जागे, मनुष्य के भीतर जो छिपा हुआ है, वह कैसे प्रकट हो। उसके अतिरिक्त कोई रचनात्मक कार्य नहीं है। और वह प्रकट हो जाए तो हजार-हजार रचनात्मक कार्य उस जागी हुई चेतना के आस-पास संगठित होने शुरू होते हैं, प्रकट होने शुरू होते हैं।
लेकिन हमारी पकड़ में क्षुद्र चीजें एकदम आती हैं। हम इतने मैटीरियलिस्ट हैं, हम इतने पदार्थवादी हैं कि हमको यही समझ में आता है। हमको समझ में नहीं आएगा कि श्री अरविंद भी कोई सेवा कर रहे हैं पांडिचेरी में बैठ कर। हम कहेंगे, क्या सेवा कर रहा है यह आदमी? यह आदमी सेवा नहीं कर रहा है, बैठा है पांडिचेरी के भवन में बंद होकर, यह क्या सेवा कर रहा है? सेवा विनोबाजी कर रहे हैं जो कि पैदल-पैदल चल रहे हैं, गांव-गांव घूम रहे हैं। यह आदमी क्या सेवा कर रहा है, श्री अरविंद? अपनी अंधेरी कोठरी में बैठ कर यह क्या कर सकता है?
लेकिन आपको पता नहीं कि अरविंद जितनी सेवा कर रहा है उतना आपके सेवकों में से कोई भी सेवा नहीं कर रहा है। लेकिन वह जरा फिर खोज की बात है कि अरविंद क्या कर रहा है वहां बैठ कर?

क्या आपको पता है कि विचार की क्रांति, क्या आपको पता है कि विचार की तरंगें सारे जगत को आंदोलित और प्रभावित करती हैं? क्या आपको पता है कि मैं अपने मौन में बैठ कर भी आपके प्राणों को प्रवाहित कर सकता हूं?
अभी रूस में एक वैज्ञानिक प्रयोग हुआ। क्योंकि अरविंद की बात को पचाना मुश्किल होगा, लेकिन रूस के वैज्ञानिक प्रयोग को समझना आसान हो जाएगा। फ्योदोर नाम के एक वैज्ञानिक ने एक बहुत अदभुत प्रयोग किया। और रूस में हुआ, इसलिए और भी महत्वपूर्ण है; क्योंकि रूस तो इस तरह की बातों को मानने को एकदम राजी नहीं होता। फ्यादोर ने यह प्रयोग किया कि दूर, कितनी ही दूर व्यक्ति हों, विचार की तीव्र तरंगों से उन व्यक्तियों को प्रभावित किया जा सकता है।
मास्को में बैठ कर तिफलिस में, एक हजार मील दूर, मास्को में फ्यादोर बैठा हुआ है अपनी प्रयोगशाला में और तिफलिस में विचार की तरंगें भेज रहा है। सिर्फ विचार से। तिफलिस के बगीचे में एक दस नंबर की सीट पर... आस-पास लोग छिपे बैठे हैं देखने को कि क्या परिणाम होता है? एक अजनबी आदमी आकर दस नंबर की सीट पर बैठा है। फोन से खबर की गई फ्यादोर को कि दस नंबर की सीट पर एक आदमी बैठा है; तुम उसे वहां से विचार के द्वारा सो जाने की सलाह दो। फ्यादोर ने एक हजार मील दूर आंख बंद करके उस दस नंबर की सीट पर बैठे आदमी को आंतरिक सुझाव दिया कि तू सो जा! तीन मिनट के भीतर वह आदमी सो गया! लेकिन यह भी डर है कि संयोग की बात हो कि वह थका-मांदा यात्री सो गया हो। तो वहां जो लोग छिपे बैठे, उन्होंने फोन से खबर की कि आदमी सो गया है। लेकिन तुम ठीक पंद्रह मिनट बाद उसे उठा दो, तब हम समझेंगे कि तुम्हारे विचार से कुछ हो रहा है। फ्योदोर ने ठीक पंद्रह मिनट, घड़ी पर, उस आदमी को एक हजार मील दूर, उठा दिया कि उठ जाओ। वह आदमी चौंक कर उठा। मित्र हैरान हो गए! ठीक पंद्रह मिनट में वह उठा था। उस आदमी से जाकर पूछा कि आपको कुछ लगा? उसने कहा, मैं बड़ा हैरान हुआ। जब मैं आया था तो मुझे ऐसा लगा कि कोई मुझसे कह रहा है सो जाओ, बहुत थके हुए हो। मैंने समझा कि मैं ही कह रहा हूं। लेकिन अभी अचानक मुझे नींद में आवाज सुनाई पड़ी कि उठ जाओ, इसी वक्त उठ जाओ। तो मैं उठ आया हूं।
अमेरिका की एक प्रयोगशाला में एक छोटा सा प्रयोग चलता था। डिलाबार लेबोरेटरी में उन्होंने एक अदभुत प्रयोग किया। एक आदमी को बहुत ही संवेदनशील कैमरे के सामने बिठाया गया और उससे कहा गया कि तुम बहुत केंद्रित रूप से मन में कोई विचार करो--किसी एक चीज का। उस आदमी ने आंखें बंद करके छुरी का विचार किया। वह पांच मिनट तक छुरी का चित्र मन में सोचता रहा। उस सामने के फोटो प्लेट पर, निकलने पर छुरी का चित्र अंकित हो गया। डिलाबार लेबोरेटरी में हुए प्रयोग ने सारी दुनिया को चकित कर दिया कि क्या मन के भीतर सोचे गए विचार का भी प्रतिबिंब फोटो कैमरे में पकड़ा जा सकता है? फ्यादोर के प्रयोग ने सारे रूस में हवा पैदा कर दी कि यह क्या हुआ? कि क्या एक हजार मील दूर बैठा हुआ आदमी भी विचार की तरंगों से किसी को प्रभावित कर सकता है?
मैं आपसे कहता हूं, अरविंद यह प्रयोग कर रहे थे। और हिंदुस्तान की चेतना को उन्होंने जितना प्रभावित किया है; न गांधी ने और न किसी ने प्रभावित किया है। लेकिन वह जरा इसोटेरीक, वह कंस्ट्रक्टिव काम जरा और तरह का है। तो जो लोग बुहारी लगाने को कंस्ट्रक्टिव काम समझते हैं, वे अरविंद के काम को कंस्ट्रक्टिव नहीं समझेंगे। लेकिन कितनी ही बुहारी लगाओ, क्या होता है?
मनुष्य की चेतना पर असली काम किया जाना जरूरी है। बुद्ध और महावीर रचनात्मक कार्यकर्ता नहीं थे। तो अगर कभी रचनात्मकवादियों ने कभी कोई इतिहास लिखा, तो बुद्ध, महावीर और जीसस के नाम उनमें नहीं लिखे जाएंगे। ये सब फिजूल के लोग थे। इन्होंने कोई रचनात्मक कार्य नहीं किया। न तो किसी कोढ़ी के पैर दाबे और न कोई अस्पताल बनाया और न सड़कें साफ कीं और न भंगी कालोनी में निवास किया; ये सारे लोग रचनात्मक नहीं थे। ये सब फिजूल के लोग थे। इन्होंने समय खराब किया और लोगों का समय खराब किया।

नहीं साहब, ये रचनात्मक काम करने वाले लोग उस अर्थ में दो कौड़ी के भी नहीं हैं; जिन अर्थों में बुद्ध, जीसस, शंकर और महावीर का काम है। लेकिन उस काम को देखने के लिए भी समझ चाहिए, आंखें चाहिए। उसको पहचानने के लिए भी थोड़ी प्रबुद्ध प्रज्ञा चाहिए।
मैं कोई रचनात्मक कार्य में नहीं लगा हुआ हूं, न लगूंगा।
मेरी दृष्टि में विचार की क्रांति इस देश को इस समय एकमात्र जरूरत है। तो सारी चेष्टाओं से कोशिश करूंगा कि सोया हुआ विचार जग जाए। सब तरह के शॉक्स दूंगा, सब तरह के धक्के पहुंचाऊंगा, सब तरफ से आपको हिलाऊंगा कि नींद टूट जाए। आप नाराज भी होंगे। क्योंकि नींद किसी की भी तोड़ो तो वह नाराज होता है। आप क्रोध से भी भर जाएंगे। आप मुझ पर पत्थर भी फेंक सकते हैं, मुझे गालियां भी दे सकते हैं कि हम सो रहे हैं आराम से, सपना देख रहे हैं सुखद और यह आदमी आकर जगाए चला जा रहा है।
नहीं, लेकिन इस समय देश को तीव्रता से जगाने वाले कुछ लोगों की जरूरत है। इस नींद से भरे देश में अभी किसी रचनात्मक काम से कुछ भी न होगा। अभी एक ही काम की जरूरत है कि देश की चेतना जागे। और दूसरे काम की जरूरत है कि देश के पास जो लाखों वर्षों की जंजीरें इकट्ठी हो गई हैं अतीत की, उनको नष्ट करने का कोई तीव्र आंदोलन हो कि उन सब जंजीरों को तोड़ कर मुल्क की चेतना को हम नये जगत के साथ खड़ा कर दें। लेकिन नहीं, हमारे नेता, हमारे धर्मगुरु, हमारे समाज-सुधारक, वे सब पीछे की कड़ियों से बांधने की कोशिश करते हैं। वे मुक्त नहीं होने देते वहां से।
क्या आपको पता है कि रूस ने पचास वर्षों में जो काम किया, वह हम एक हजार वर्षों में भी नहीं कर सकते। लेकिन क्यों किया यह काम? क्या आपको पता है कि अमेरिका ने तीन सौ वर्षों में जो काम किया, वह तीन हजार वर्ष में भी कोई कौम नहीं कर सकती। क्या कारण है लेकिन? एक कारण है, जो ख्याल में नहीं आता। और जिस दिन इस देश के ख्याल में आ जाएगा, हम भी उतना ही विकास करने में तत्काल समर्थ हो जाएंगे। और वह कारण यह है कि रूस ने उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति के बाद अपने अतीत से सारे संबंध विच्छिन्न कर लिए, एकदम से संबंध विच्छिन्न कर लिए। अतीत जैसे खत्म हो गया; भविष्य रह गया, वर्तमान रह गया, अतीत जैसे नहीं रहा। उन्नीस सौ सत्रह के बाद एक अंतराल पैदा हो गया; नहीं है कोई अतीत, बस है भविष्य, बस है वर्तमान। और अमेरिका के पास तो कोई अतीत है ही नहीं। उनकी तो कौम की उम्र ही तीन सौ वर्ष है। उनके पास अतीत नहीं है, अतीत का बोझ नहीं है। इसलिए अमेरिका की सबसे नई कौम सबसे ज्यादा समृद्ध, सबसे ज्यादा विकासशील, सबसे ज्यादा जवान हो गई। उसका और कोई राज नहीं है-- उसके पीछे मुर्दों का बोझ नहीं है, हजारों वर्ष की लाशें नहीं हैं, कब्रिस्तानों की लंबी कथा नहीं है। उसमें अटकाव नहीं है, भविष्य है सिर्फ। और भविष्य की तरफ चेतना को विकास का मौका है।
भारत के सामने एक ही रचनात्मक काम है कि अतीत से कैसे संबंध भारत का क्षीण हो, कैसे भविष्य की तरफ भारत की आंखें उन्मुख हों।
लेकिन हमारे समझदार लोग समझाते हैं कि हमारा अतीत तो सतयुग था, स्वर्णयुग था--राम हुए, बुद्ध हुए, कृष्ण हुए। हमारे सब तीर्थंकर, सब अवतार हो चुके। हमारी सब श्रेष्ठ रचनाएं हो चुकीं, गीता लिखी जा चुकी, बुद्ध-वचन कहे जा चुके, रामायण हो गई, महाभारत हो गया। सब हो चुका हमारा। हमारा भविष्य? भविष्य हमारा कुछ भी नहीं है। सब अतीत है।
क्या आपको पता है, बूढ़ा आदमी हमेशा अतीत की तरफ देखता है, क्योंकि भविष्य में मौत होती है, और कुछ भी नहीं होता। बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं, क्योंकि पीछे कुछ भी अतीत नहीं होता। बच्चे की जो चेतना है, वह हमेशा भविष्योन्मुखी होती है। बूढ़े की जो चेतना है, वह हमेशा अतीतोन्मुखी होती है। बूढ़ा हमेशा पीछे की तरफ देखता है। वह हमेशा पीछे जो हो चुका-- जवानी के गीत, जवानी के प्रेम, बचपन की स्मृतियां, वह उनका ही गुणगान करता रहता है, वह उन्हीं की स्मृति में खोया रहता है, आगे कुछ भी नहीं है। ध्यान रहे, जो कौम आगे देखना बंद कर देती है, उस कौम की आत्मा भी बूढ़ी
हो जाती है। बूढ़े होने का लक्षण यह है--पीछे देखना। युवा होने का, विकासमान होने का लक्षण यह है--आगे देखना। लेकिन हमारी गर्दन तो पीछे मुड़ी है, और

इतने दिनों से मुड़ी है कि हमारी हड्डियां मजबूत होकर ज.ुड़ गई हैं, पैरालाइज्ड हो गई हैं। अब आगे की तरफ हम देख नहीं सकते, पीछे मुड़े हुए हैं। जैसे किसी कार में पीछे की तरफ लाइट लगा हो और आगे चल रही हो गाड़ी, वैसी हमारी स्थिति हो गई है। वह तो भगवान बहुत नासमझ है हिंदुस्तान के लिए। अगर उसमें थोड़ी भी अक्ल हो, तो हमारी आंखें खोपड़ी पर लगानी चाहिए, आगे लगाने की कोई जरूरत नहीं है। आगे आंखों की कोई आवश्यकता ही नहीं हैं, आंखें पीछे होनी चाहिए। उस रास्ते को हमें देखने में बड़ा मजा आता है जो रास्ता गुजर चुका और जिस रास्ते पर अब कभी भी गुजरना नहीं हो सकता है। उड़ती हुई धूल को देखते रहते हैं पीछे।
आपको पता है? पीछे लौटना असंभव है। लेकिन गांधीजी कहते हैं, राम-राज्य चाहिए। पीछे लौटना इम्पॉसिबिलिटी है। कोई कभी पीछे नहीं लौट सकता। समय बचता ही नहीं पीछे जाने को; एक क्षण पीछे नहीं लौटा जा सकता। हमेशा आगे ही जाना होता है। जाने का अर्थ हैः आगे। लेकिन पीछे की याद की जा सकती है। और जितनी ज्यादा आप याद करेंगे पीछे की, उतना आगे चलने वाले कदमों में बाधा पड़ेगी। क्योंकि पीछे की याद करने वाला मन आगे चलने वाले कदमों से टूट जाता है, उसमें विसंगति पैदा हो जाती है। उसमें जोड़ नहीं रह जाता है। आगे चलने वाला मन भी चाहिए आगे चलने वाले पैरों के लिए। पैर आगे चल रहे हैं हिंदुस्तान के, मन पीछे चल रहा है। यह विसंगति हिंदुस्तान के प्राणों को जड़ किए दे रही है, नष्ट किए दे रही है।
नहीं, चित्त को ले जाना है आगे।
एक विध्वंस की जरूरत है। यह शब्द बहुत कठोर मालूम पड़ेगा। लेकिन हमें पता ही नहीं है कि जो विध्वंस की क्षमता खो देते हैं, वे सृजन की क्षमता भी खो देते हैं। विध्वंस का मतलब सिर्फ विध्वंस नहीं होता। विध्वंस का मतलब होता है कि तोड़ना, ताकि बनाया जा सके। लेकिन तोड़ने की हिम्मत खो दी है, इसलिए हमें बड़ा अच्छा लगता है, जब कोई कहता है, रचनात्मक कार्यक्रम। तो हम बड़े प्रसन्न होते हैं। लेकिन कभी आपने कोई देखा कि किसी ने कहा हो विध्वंसात्मक कार्यक्रम। हमें रचनात्मक कार्यक्रम बड़ा अच्छा लगता है। लेकिन रचना कौन कर सकते हैं? वे जो तोड़ सकते हैं।
मैंने सुना है, एक गांव में एक बहुत पुराना चर्च था। वह इतना पुराना
था कि उस चर्च के भीतर कोई भी जाने में डरता था। वह कभी भी गिर सकता था। हवाएं चलती थीं, तो चर्च कंपता था। आकाश में बादल गरजते थे, तो चर्च कंपता था। जोर का तूफान आता था, तो लगता था, अब गिरा, अब गिरा। अंधेरी रात में जरा आवाज होती थी, तो गांव के लोग बाहर निकल कर देखते थे कि चर्च गिर तो नहीं गया! अब ऐसे चर्च में कौन प्रार्थना करने जाए। प्रार्थना करने वाले लोगों ने जाना बंद कर दिया। फिर चर्च की कमेटी ने बहुत विचार किया कि क्या करें। फिर चर्च की कमेटी बुलाई गई। पादरी और कमेटी और ट्रस्टी सब इकट्ठे हुए। वे भी चर्च के भीतर इकट्ठे नहीं हुए। वह भी चर्च के बाहर ही उन्होंने बैठक रखी, क्योंकि वहां भीतर कौन जाता? और नेता तो हमेशा अनुयायियों से ज्यादा होशियार होते हैं। जब अनुयायी तक नहीं जा रहे हैं, तो नेता कैसे जा सकता है?
और यह तो आपको पता है कि नेता हमेशा अनुयायी के पीछे चलते हैं। दिखाई आगे पड़ते हैं, चलते हमेशा पीछे हैं। क्योंकि कोई नेता इतना हिम्मतवर नहीं होता कि अनुयायी के आगे चले। क्योंकि नेता की जान अनुयायी के वोट और हाथ पर निर्भर रहती है। अगर अनुयायी पीछे से खिसक जाए तो नेता की जान निकल गई। नेता की अपनी कोई जान होती है? अनुयायियों को देख कर चलना पड़ता है। जब अनुयायी तक भीतर नहीं आते तो नेता कैसे भीतर आ सकते हैं? हालांकि नेता गांव में लोगों को जाकर समझाते थे कि चर्च में जरूर आना चाहिए। और गांव के लोग मन ही मन में हंसते थे कि बड़ी अदभुत बात है, नेता खुद कभी नहीं जाते, लेकिन हमको समझाते हैं। जैसा हिंदुस्तान में होता है सब जगह। नेता समझाते हैं, यह करना चाहिए। और जनता सुनती है और ताली पीटती है और समझती है कि नेता भी नहीं करते हैं यह और हमसे कहते हैं कि करना चाहिए। लेकिन जनता समझती है कि ठीक है, कभी हम भी नेता हो जाएंगे तो हम भी मंच पर चढ़ कर यही

कहेंगे कि यह करना चाहिए। करना-वरना तो किसी को है नहीं। एक पाखंड, एक धोखा चल रहा है पूरे देश में। वह उस गांव में भी चलता होगा।
कमेटी बाहर बैठी, और कमेटी सोचने लगी, क्या किया जाए? कोई प्रार्थना करने नहीं आता। बड़े दुख से उन्होंने एक प्रस्ताव पास किया कि पुराने चर्च को गिराना चाहिए। सर्वसम्मति से यह तय किया। लेकिन पुराने को गिराने में बड़ा दुख होता है। मुर्दा लोग पुराने को गिरा ही नहीं सकते। मरे-मराए लोग इतना डरते हैं पुराने को गिराने से! लेकिन डरते क्यों हैं?
डरते इसलिए हैं कि नये को बनाने की क्षमता नहीं है। अगर पुराना गिर गया तो फिर क्या होगा? डरते हैं इसलिए। जिनको नये को बनाने की क्षमता है, वे पुराने को गिराने से कभी भी नहीं डरते। बल्कि वे आतुर होते हैं कि जल्दी पुराना गिरे तो नये का निर्माण किया जा सके। बहुत डरे थे, बहुत दुखी थे। फिर दूसरा प्रस्ताव किया कि नया चर्च बनाना जरूरी है। सर्वसम्मति से उसे भी स्वीकार किया। फिर तीसरा प्रस्ताव जल्दी से स्वीकार किया कि नया चर्च ठीक पुराने जैसा बनाएंगे। नक्शा वही रहेगा, जरा भी फर्क नहीं करेंगे। नींव पुरानी रहेगी, नींव नई नहीं डालेंगे। नींव तो पुरानी ही रखेंगे, क्योंकि अपने बापदादों ने जो नींव डाली थी, उसको हम कैसे बदल सकते हैं? वह बापदादे तय कर गए हमेशा के लिए नींव, अब कोई नहीं बदल सकता उसको। बापदादे भविष्य को भी तय कर गए? अपने वक्त को तय करते तो ठीक था, लेकिन आने वाले लोगों की आत्मा को भी कैद कर गए। नींव डाल गए हैं वे, अब उसी नींव पर मकान बनेगा। उन्होंने कहा, हम तो पुरानी नींव पर ही बनाएंगे। और ध्यान रहे, पुराने दरवाजे, पुरानी ईंटें, पुराना कूड़ा-कबाड़ सबका उपयोग करेंगे। क्योंकि वह साधारण कूड़ा-कचरा नहीं, वह सैक्रेड है, पवित्र है। पुरखों के द्वारा लगाई गई ईंटें हैं। साधारण ईंटें नहीं हैं। हम सब मकान का सामान वही लगाएंगे।
उसी जगह मकान बनाएंगे, उसी नींव पर बनाएंगे। सर्वसम्मति से, बड़ी खुशी
से यह भी उन्होंने स्वीकार किया।
और फिर चौथा प्रस्ताव स्वीकार किया, वह भी सर्वसम्मति से, कि जब तक नया न बन जाए, तब तक पुराने को गिराएंगे नहीं।
बस, वह पुराना खड़ा हुआ है चर्च वहीं का वहीं। अभी भी हवाएं आती हैं, अभी भी प्राण कंपते हैं। वह नया कभी नहीं बनेगा। वह नया कैसे बन सकता है? कहीं पुराने के आधार पर दुनिया में नया बना है? यह ऐसे ही है कि जैसे एक आदमी बूढ़ा होकर मर जाए और भगवान उसमें नई आत्मा डाल दे। नहीं, पुराने शरीर में नई आत्मा नहीं डाली जा सकती। नई आत्मा फिर नया शरीर ग्रहण करती है। फिर नया बच्चा, फिर नई आत्मा। पुराने शरीर को दफना देना पड़ता है। पुराने में पुराने के आधार पर नया निर्मित नहीं होता। बल्कि पुराने के आधार पर नया निर्माण करने का वह जो पागल मोह है, उसकी वजह से नया कभी निर्मित नहीं हो पाता है।
नहीं बना वह नया चर्च, नहीं बनेगा। ऐसा ही भारत में हो रहा है। हजारों साल से पुराना इकट्ठा होता चला जाता है। वह इतना भारी हो गया है, आज की भारत की आत्मा एकदम बोझिल हो गई है, उठ भी नहीं सकती। जैसे एक-एक आदमी के ऊपर हजारों मुर्दे बैठे हों, उसकी खोपड़ी पर मुर्दों का अंबार लगा हो, उसके कारण हमने नये के निर्माण की क्षमता खो दी है।
दूसरा महायुद्ध हुआ, जर्मनी तहस-नहस हो गया। रूस के नगर बर्बाद हो गए। जापान मिट्टी में मिल गया। लेकिन जाकर देखो अब। पता भी नहीं चलेगा कि दूसरा महायुद्ध कभी हुआ था। सब निर्मित हो गया। वे जो बर्बाद हो गए थे, फिर आबाद हो गए--और पहले से ज्यादा अच्छे।
मेरे एक मित्र ने जापान से मुझे लिखा कि नागासाकी और हिरोशिमा जो बिल्कुल मिट्टी हो गए थे, बर्बाद हो गए थे। जहां आज से बीस साल पहले देख कर कोई कहता कि अब कभी यहां पौधे में अंकुर नहीं निकलेगा, अब कभी कोई फूल नहीं खिलेगा, अब कभी कोई प्राण यहां आबाद नहीं हो सकेगा, अब कभी यहां कोई बस्ती नहीं बसेगी, सब जल कर राख हो गया था। बस्तियां आबाद हो गईं। और उन बस्तियों में रहने वाले लोग खुशी से यह कहते हैं कि बड़ा अच्छा हुआ कि एटम गिर गया; पुराना सब समाप्त हो गया, सब नया हो गया। नये रास्ते हैं, नये मकान हैं, नये

स्कूल हैं। पुराना कचड़ा-कबाड़ एकदम नष्ट हो गया, जिसको नष्ट करना बहुत मुश्किल था। सारा सब नया हो गया। अदभुत लोग हैं। जवान मालूम होते हैं।
और हम बूढ़े हैं, हमारी बड़ी अदभुत हालत है। महाभारत के बाद कोई युद्ध
ही नहीं हुआ बड़ा हमारे यहां। लेकिन अभी भी उसका जो नुकसान हुआ है, वह जारी है। वह बदलता नहीं। महाभारत के युद्ध में जो मकान गिर गया होगा, खोज करना, वह अभी भी वहीं गिरा हुआ पड़ा होगा। उसमें कोई फर्क नहीं हुआ होगा। क्योंकि महाभारत में युद्ध हो गया न, उसका हम दुख अभी तक झेल रहे हैं। अब उस युद्ध से कभी छुटकारा होने वाला नहीं है। अब हम हमेशा के लिए बर्बाद ही रहेंगे। महाभारत में युद्ध हुआ न। उसकी वजह से सब तकलीफ चल रही है। वह कब हुआ था युद्ध?
पुराने का मोह नये के निर्माण की क्षमता का विनाश बनता है। नये का आग्रह और नये का मोह चाहिए। नये का आमंत्रण चाहिए। नये की खोज चाहिए। लेकिन नहीं, अगर कोई मुसीबत आ जाए तो खोलो गीता और निकालो उत्तर! अजीब बात है। कोई हमने पागल होने का ठेका ले रखा है? जिंदगी में समस्या आज खड़ी है। बेचारे कृष्ण को क्यों परेशान करना? हमारे पास कोई बुद्धि नहीं है? हम फेस नहीं कर सकते किसी समस्या का? गीता-माता में खोजने जाते हैं सब कुछ। कृष्ण भी होंगे कहीं तो सिर ठोकते होंगे आकाश में कि कहां के मूढ़ों के बीच मैंने उपदेश दिया? अभी तक पीछा पकड़े हुए हैं। कृष्ण को एक जिंदगी में एक समस्या खड़ी थी अर्जुन के सामने, दिया उत्तर। लेकिन उत्तर सबके लिए बांधने वाला नहीं है। लेकिन हम उत्तरों से बंध गए हैं।
और जब भी मुसीबत आए, मुसीबत हमेशा नई होती है। परिस्थितियां हमेशा नई होती हैं। वे हमेशा नया जवाब मांगती हैं और हमारे पास जवाब रेडीमेड, पुराने हैं। नई परिस्थिति, पुराना जवाब, कोई तालमेल नहीं बैठता। हम हारते चले जाते हैं।
मैंने सुना है, जापान के एक गांव में दो मंदिर थे। एक दक्षिण का मंदिर कहलाता था, एक उत्तर का मंदिर कहलाता था। दोनों मंदिरों में झगड़ा था; जैसा कि मंदिरों में होता है। मंदिरों में दोस्ती तो कभी होती नहीं, झगड़े ही होते हैं। वे अड्डे ही झगड़े के हैं। और जब तक रहेंगे जमीन पर, तब तक झगड़े जारी रहेंगे। बड़ा झगड़ा था उत्तर के, दक्षिण के मंदिरों में। इतना झगड़ा था कि पुरोहित एक-दूसरे को देखते भी नहीं थे। रास्तों पर से भी नहीं गुजरते थे कि एक-दूसरे का मुकाबला न हो जाए।
दोनों पुरोहितों के पास दो छोटे बच्चे थे, सेवा-टहल के लिए, काम-धाम के लिए। दोनों ने समझा रखा था कि कभी भी भूल कर दूसरे मंदिर के बच्चे से बात मत करना। वे हमारे दुश्मन हैं। लेकिन बच्चे तो बच्चे होते हैं, ब.ूढे बिगाड़ने की कोशिश भी करते हैं तो एकदम से तो नहीं बिगाड़ पाते हैं। थोड़ा वक्त लग जाता है। बच्चे कहीं एकदम बूढ़ों की मानते हैं? और बच्चे अगर ब.ूढों की मान लें, तो समझना कि बच्चे से वे बूढ़े हो गए, अब बच्चे नहीं रहे। वे बच्चे भी नहीं मानते थे। कभी-कभी मौके-बेमौके अकेले में मिल जाते थे तो बात कर लेते थे। बच्चों को भी पुरानी दुश्मनी देने में, टरंसफर करने में थोड़ा समय लगता है बूढ़ों को--समझाने में कि तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो, तुम इस मंदिर के हो, तुम उस मंदिर के हो। बच्चों को कुछ पता नहीं होता। भगवान इस तरह की बातें सिखा कर भेजता नहीं है। उन बच्चों को नहीं लगता था कि झगड़ा क्या है मंदिरों में?
एक दिन उत्तर के मंदिर का बच्चा जा रहा था रास्ते से; दक्षिण के मंदिर
का बच्चा वहां से निकला और उसने पूछा कि दोस्त, कहां जा रहे हो? दक्षिण का पुजारी छत पर से देख रहा था कि दोनों बात कर रहे हैं। उसको आग लग गई। हिंदू- मुसलमान बात करें तो पुजारी को बड़ी आग लग जाती है, पता है आपको? पुरोहित को बड़ी आग लग जाती है, धर्मगुरु के प्राण जलने लगते हैं, क्योंकि उसका धंधा टूटा। अगर हिंदू-मुस्लिम में बात हुई तो उसका धंधा गया। उनमें झगड़ा रहे तो धंधा चलता है, नहीं तो धंधा नहीं चलता है। यह धंधा धर्म का पूरा का पूरा झगड़े पर खड़ा है, नहीं तो यह चल नहीं सकता। पुजारी नीचे आया, उस लड़के को बुलाया कि तुमने क्या बात की? उस लड़के ने कहा कि आज तो मैंने बात की, और मैं हार भी गया। तो मुझे बड़ा दुख है। मैंने उस लड़के को पूछा कि दोस्त, कहां जा

रहे हो? उसने कहा, जहां हवाएं ले जाएं। फिर मेरी समझ में नहीं आया कि अब मैं और क्या बातचीत आगे चलाऊं।
उस पुजारी ने कहा कि हमारे मंदिर का कोई आदमी कभी उस मंदिर से नहीं हारा। यह इतिहास में पहली घटना घटी है कि तू हार कर आया, यह बहुत बुरी बात है। उसको उत्तर देना जरूरी है, उसको हराना पड़ेगा। यह हमारी इज्जत का सवाल है, यह हमारी पुरखों की इज्जत का सवाल है। एक हजार साल पुराना झगड़ा है। कल तू फिर जाना और उससे पूछना कि कहां जा रहा है और जब वह कहे कि जहां हवाएं ले जाएं, तो कहना कि अगर हवाएं बंद हों दोस्त, तो कहीं जाओगे कि नहीं? तब वह भी ठप्प रह जाएगा। वह भी समझ नहीं पाएगा।
दूसरे दिन लड़का उत्तर तैयार करके गया। और आप पक्का समझ लेना, जो उत्तर तैयार करके जाते हैं उनके पास बुद्धि कभी नहीं होती है। क्योंकि तैयार उत्तर हमेशा मिडियाकर माइंड का लक्षण है, क्षीण बुद्धि आदमी का लक्षण है। बुद्धिमान आदमी को सवाल सामने खड़ा होता है, उत्तर आता है। आना चाहिए। उत्तर तैयार का क्या मतलब होता है? जब अभी सवाल ही नहीं उठा तो उत्तर तैयार कैसे हो सकता है? लेकिन हम सभी उत्तर तैयार करने वाले लोग हैं। वह लड़का भी उत्तर कंठस्थ करके बिल्कुल चला गया कि पूछूंगा आज यह। खड़ा रहा रास्ते पर; निकला वह लड़का। पूछा, कहो दोस्त कहां जा रहे हो? लेकिन वह लड़का बड़ा बेईमान था। उसने कहा कि जहां पैर ले जाएं। अब बड़ी मुश्किल हो गई। बंधा हुआ उत्तर, वह गीता-माता का उत्तर। अब क्या होगा? अब वह फिर खड़ा रह गया। गुरु ऊपर से देखता था कि वह फिर हार गया। लौट कर आया, पूछा क्या हुआ? उसने कहाः वह लड़का तो बहुत बेईमान मालूम होता है। बदल गया वह तो। उस पुजारी ने कहाः उस मंदिर के लोग सदा से बेईमान रहे हैं। उनका कोई भरोसा नहीं है। सुबह कुछ कहेंगे, सांझ कुछ कहने लगते हैं। लेकिन उसे हराना जरूरी है। उसने क्या कहा? उसने कहाः वह लड़का तो कहने लगा, जहां पैर ले जाएं। अब मैं क्या कहता, उतर तो तैयार था। उस उत्तर की कोई संगति न थी। उसने कहा, कल फिर तू पूछना। जब वह लड़का कहे कि जहां पैर ले जाएं, तो कहना, भगवान न करे कि लंगड़े न हो जाओ। अगर लंगड़े हो गए तो कहीं जाओगे कि नहीं? वह लड़का खुश हुआ, लेकिन फिर भी उसे पता नहीं कि फिर वही भूल कर रहा है कल वाली। फिर तैयार उत्तर! दूसरे दिन वह फिर खड़ा हो गया रास्ते पर जाकर। उत्तर तैयार है, घोख रहा है मन में। आया है लड़का दूसरे मंदिर का, पूछा--कहां जा रहे हो? उसने कहाः सब्जी लेने बाजार जा रहा हूं। वे सब उत्तर फिजूल हो गए।
तैयार उत्तर हमेशा फिजूल हो जाते हैं। और जिन कौमों के पास उत्तर तैयार हैं, वे सारी कौमें नपुंसक हो जाती हैं। जिंदगी मांगती है सीधा एनकाउंटर, जिंदगी मांगती है मुकाबला। जिंदगी कहती है आओ, नई हैं परिस्थितियां, खड़ी करो अपनी चेतना को; नई परिस्थितियों का उत्तर दो। और नई परिस्थितियों का उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब पुराने उत्तर मन पर बोझिल न हों।
लेकिन यहां सारा चित्त मुल्क का बोझिल है। महात्मा, साधु, संन्यासी, तीर्थंकर, अवतार इतने हो चुके हैं हमारे, और वे सब उत्तर दे गए हैं, और सबके उत्तर हमारे सिर पर बैठे हुए हैं। हमारा अपना कोई उत्तर नहीं है। हमारा अपना कोई प्रेजेंट, हमारा कोई वर्तमान व्यक्तित्व नहीं है। हमारी कौम की आज कोई वर्तमान आत्मा नहीं है। और यह सारी आत्मा सिर्फ रटे हुए उत्तर दोहरा रही है। इसलिए हम दुनिया में पिछड़ते चले जाते हैं, रोज पिछड़ते चले जाते हैं। और जब पिछड़ जाते हैं, तब भी हम अपनी किताब में खोजते हैं कि जरूर हमने कुछ गलती याद कर लिया होगा। किताब तो गलत हो नहीं सकती। फिर हम अपनी किताब में खोज कर नई व्याख्या निकालते हैं कि नहीं, यह मतलब रहा होगा, इसलिए हार गए।
और जिंदगी रोज बदलती जाती है, जिंदगी बड़ी बेईमान है। जिंदगी रुकी नहीं है, जिंदगी ठहरी नहीं है, जिंदगी भागती चली जाती है। जैसे गंगा रोज बदल रही है। जो पानी कल था गंगा में, वह आज नहीं है। जो अभी था, वह अभी नहीं है। वह हेराक्लतु ने कहा है कि एक ही नदी में दुबारा उतर नहीं सकते--यू कैन नॉट स्टेप ट्वाइस इन दि सेम रिवर। वह ठीक कहा है; जिंदगी की नदी में भी

दुबारा नहीं उतर सकते हो। जो हो चुका, वह हो चुका। जो नहीं हुआ है, वह होगा।
इसलिए जो हो चुके उत्तर, वह जो नहीं हुआ है उसके लिए कारगर नहीं होंगे।
इसलिए भारत पुराना पड़ता जाता है; उत्तर पुराने हैं उसके पास।
कब छुटकारा होगा हमारा शास्त्रों से? कब छुटकारा होगा अतीत से? कब मुक्त होंगे हम पीछे से? और कब हम जागेंगे और देखेंगे भविष्य को?
इसका मतलब यह नहीं है कि मैं यह कहता हूं कि गीता मत पढ़ना। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि रामायण मत पढ़ना। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कहता हूं कि गांधी को मत समझना। इसका यह मतलब है कि समझना, लेकिन उत्तर किसी के कंठस्थ मत करना। उत्तर अपने आने देना और जैसा युग, जैसा समय और जैसी परिस्थिति, उसके अनुकूल अपने चित्त को दर्पण बनाना कि वह हर तरह उत्तर ला सके। बैलगाड़ियों के जमाने में दिए गए उत्तर अंतरिक्ष-यान के जमाने में सही साबित नहीं हो सकते। लेकिन जो जिद्द करेंगे कि हमने, बैलगाड़ियों के जमाने में जिन पुरखों ने बैलगाड़ियों में बैठ कर उत्तर दिए थे, हम तो कसम खा लिए हैं कि हम पुरखों के आगे नहीं जाएंगे। हमने तो लक्ष्मण-रेखा खींच दी है उसके आगे, सीता अब मत निकलना। सारे मुल्क को सीता बनाए हुए हैं ये पुरखे और लक्ष्मण-रेखा खींचे हुए हैं कि आगे मत जाना। इससे आगे जाओगे तो बड़ा खतरा हो जाएगा। और देखो, सीता गई थी तो कितने खतरे में पड़ गई। इसलिए जाना मत आगे रेखा के।
और सारी दुनिया सब रेखाएं छोड़ कर अंतरिक्ष की यात्राओं पर निकल जाएगी
और तुम पिछड़ जाना इस जमीन पर। तुम इसी गंदी जमीन पर रह जाना। और सारी दुनिया अंतरिक्ष के दूर-दूर के लोगों को खोजेगी, सत्यों के न मालूम कितने अनजान पर्तें उठाएगी, न मालूम सत्य की कितनी प्रतिमाओं को उघाड़ेगी, न मालूम कितने दुस्साहस के काम करेगी? न मालूम कितने एडवेंचर करेंगे दूसरी दुनिया के बच्चे, दूसरे मुल्कों के बच्चे? और हमारे बच्चे? हमारे बच्चे क्या कर सकते हैं? हनुमान जी के मंदिर पर नारियल फोड़ेंगे! क्या करेंगे? जब तुम चांद-तारों पर चले जाना दूसरे मुल्कों के लोगो, तब भी हमारे बच्चे हनुमान जी के मंदिर पर नारियल फोड़ते रहेंगे और किसी सड़क के किनारे बैठे बेवकूफ से हाथ की रेखाएं दिखलाते रहेंगे और ताबीज बांधते रहेंगे! हमारे बच्चे यही करते रहेंगे?
यह बहुत हो चुका। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। यह नहीं होना चाहिए। यह नहीं होने दिया जा सकता है। लेकिन कौन रोकेगा इसे? कौन इस धारा को तोड़ेगा? कौन इस बंधे प्रवाह को मिटाएगा? कौन इन जंजीरों को तोड़ेगा? मन बहुत शंकित हो उठता है। कौन करेगा यह?
लेकिन एक आशा बंधती है, एक आशा बंधती है कि शायद वक्त आ गया है कि हमारी चेतना इसके लिए तैयार हो। और वक्त शायद इसलिए आ गया है कि या तो हमें तैयार होना होगा या हमें मिट जाना होगा। दो के अतिरिक्त तीसरा कोई उपाय नहीं रहा है। शायद इतने दबाव में, इतने प्रेशर में, मिटने की स्थिति में शायद हमें होश आ जाए, शायद हम जाग जाएं, शायद हम आंख खोल कर देखें कि दुनिया कहां चली गई है! इतिहास कहां चला गया है!
हम कंटेम्प्रेरी नहीं हैं, इस भूल में मत रहना कि हम बीसवीं सदी में
रह रहे हैं। हम बीसवीं सदी में नहीं रह रहे हैं। हम कोई दस सदियां पीछे हैं। हम दसवीं सदी में होंगे। और हमारे बीच भी जो दसवीं सदी में होंगे, वे बड़े प्रोग्रेसिव मालूम पड़ेंगे; क्योंकि हमारे बीच पांचवीं सदी के और पहली सदी के लोग भी हैं। हम इस जगत के, आज के काल में कंटेम्प्रेरी नहीं हैं और इसलिए हमें जितनी पिछड़ी बात हो उतनी ज्यादा अपील करती है, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि हमारा चित्त पिछड़ा हुआ है।
अगर विनोबा पैदल चलते हैं तो हमारा हृदय गदगद हो जाता है कि धन्यभाग, कितना अच्छा किया जा रहा है। वे अंतरिक्ष-यानों पर यात्रा करेंगे और तुम पैदल चलने वाले महात्मा की इसलिए प्रशंसा करोगे कि वह पैदल चलता है। पिछड़ जाओगे, मर जाओगे, बच नहीं सकोगे। भविष्य तुम्हारे साथ खड़ा नहीं होगा। कोई पैदल चले, उसकी खुशी है, मजे की बात है, फायदे की बात है विनोबा के लिए पैदल चलना, स्वास्थ्यपूर्ण है, लेकिन पैदल चलने का आदर दुर्भाग्यपूर्ण है। वह

आदर गलत है, वह पिछड़ेपन का आदर है। वह जिंदगी को नये-नये रास्तों पर ले जाने का द्वार उससे नहीं खुलता।
यह हमारी कठिनाई कब छूटेगी? यह कैसे छूटेगी?
एक ही रास्ता दिखता है कि लोगों के मन को झकझोरा जाए, लोगों को हिलाया जाए, उनकी नींद तोड़ी जाए, उनको चोट की जाए कि शायद चोट से वे तिलमिला उठें। लेकिन कुछ लोग तो इतने मर गए हैं कि चोट ही नहीं लगती, तिलमिलाते भी नहीं। वे गुस्से में भी नहीं भरते, ऐसी कुछ मौत आ गई है। गुस्से में भी भर जाएं तो भी कुछ हो जाए। इसकी जरूरत है। वह मैं कर रहा हूं। जो मुझे रचनात्मक मालूम पड़ता है, वह मैं कर रहा हूं। जो मुझे सेवा मालूम पड़ती है, वह मैं कर रहा हूं।
लेकिन सेवा के नाम से और रचना के नाम से जो सब चल रहा है, वह मैं नहीं
कह रहा हूं। नहीं कर रहा हूं इसलिए कि उसे न मैं सेवा मानता हूं और न रचना मानता हूं।
विचार इस देश में जग जाए, इसके लिए जो भी किया जा सकता है, वह सब किया जाना जरूरी और अत्यंत आवश्यक है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
ग्यारहवां प्रवचन

गांधीवाद ही नहीं, वाद मात्र के विरोध में हूं

प्रश्नः आपके प्रवचनों से जो सारा ही गुजरात में एक हलचल मच गई है, तो इसमें आप कुछ खुलासा कर सकते हैं?

किस संबंध में? कुछ एक-एक बात...

प्रश्नः अगर गांधी जी के बारे में बोलेंगे और किसी व्यक्ति के बारे में बोलेंगे, तो आपको बोला है, इसे गैर-संदिग्ध होगी यह। आज तो हमने सुना, तो इसमें कुछ गैर-संदिग्ध नहीं होती है। न आपने गांधी जी की निंदा की है, न क्राइस्ट की है। मगर यह गैर-संदिग्ध हो गई है सारा ही गुजरात में कि आपने गांधी जी की निंदा की या नेहरू जी की निंदा की, तो इसमें आप कुछ खुलासा कर सकते हैं? क्या बातें हैं?

किसी व्यक्ति की निंदा करने का मेरे मन में कोई सवाल ही नहीं है। और व्यक्ति की निंदा का कोई प्रयोजन भी नहीं है। वाद की जरूर मेरे मन में बहुत निंदा है। वाद, संप्रदाय--चाहे वह राजनैतिक हो, चाहे धार्मिक हो, सब तरह के बाड़े टूटने चाहिए, और मनुष्य का मन सोचने-समझने के लिए मुक्त होना चाहिए।
रूस मैं जाऊंगा तो मार्क्सवाद का विरोध करूंगा; हिंदुस्तान में गांधीवाद का विरोध करूंगा। गांधीवाद से भी विरोध नहीं है; वाद से ही मेरा विरोध है।
और अब तक दुनिया में जैसा भी हुआ है, चाहे क्रांतियां हुई हैं, सब क्रांतियां वाद आधारित थीं। इसलिए सारी क्रांतियां असफल हो गईं, कोई क्रांति सफल नहीं हो सकी। और प्रत्येक वाद मनुष्य के मन को मुक्त करने में सहयोगी नहीं हुआ, बांधने का कारण बना। और जरूरत इस बात की है कि मनुष्य की समझ इतनी मुक्त हो, समझ विकसित होनी चाहिए, और इतनी विकसित होनी चाहिए कि हम प्रत्येक समस्या का सीधा साक्षात्कार कर सकें।
गांधी का उपयोग मेरे लिए यह समझ में आता है कि वह देश को... गांधी को हम समझ कर इस योग्य बनें कि देश के सामने जो समस्या आए, उसका हम साक्षात कर सकें। लेकिन हमेशा यह होता है कि वाद से घिरा हुआ जो मन है, वह समस्या का सीधा साक्षात्कार कभी नहीं भी करता; उसका वाद ने उत्तर पहले दे रखा है। समस्या नई है, उत्तर पुराना है। उस उत्तर, पुराने उत्तर को थोपने की कोशिश करता है समस्या के ऊपर। उससे समस्या तो हल नहीं होती, और उलझती चली जाती है।
प्रत्येक महापुरुष अपनी समस्या का साक्षात्कार करने की कोशिश करता है; लेकिन न तो वह समय रह जाता है पीछे, न वह समस्या रह जाती है। अनुयायी उस समस्या और समाधान को लेकर पीछे की परिस्थितियों में जो उपद्रव खड़ा करते हैं उससे नुकसान पहुंचता है। गांधी ने अपनी समझ, अपनी सूझ के अनुसार किन्हीं स्थितियों में कुछ प्रयोग किए; जैसे कि चरखे का प्रयोग था। गांधी की समझ के लिए जो भी उपयोगी मालूम पड़ा, उन्होंने किया। शायद उस स्थिति में कुछ और किया जाना कठिन भी था। लेकिन अब पीछे खादी और चरखा सिद्धांत की तरह हमारे पीछे पड़ गया। और अब आने वाले समय में हम उसका उपयोग आर्थिक सिद्धांत की तरह करना चाहेंगे तो हम नुकसान पहुंचाते हैं मुल्क को।
इसीलिए मैंने कहा कि अगर हम वाद को पकड़ कर चलते हैं तो हम देश की हत्या
कर देते हैं। और लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि मैंने कह दिया कि गांधी जी देश के हत्यारे हैं। मैंने कहा कि अगर गांधी के वाद को हम आगे भी मानते हैं तो देश की हत्या हो जाएगी।
और यह सवाल गांधी के वाद का नहीं, किसी भी वाद को... वह अपनी समय की और परिस्थिति का उत्तर होता है। समय और परिस्थिति रोज बदल जाती है और वाद कभी बदलता नहीं है। वाद जिद्द करता है कि हम वही रहेंगे, जैसे हम थे। और हर नई

परिस्थिति में हर पुराना वाद उपद्रव का कारण होता है। इसलिए जिस देश को जितनी तीव्रता से विकसित होना हो, उसको वाद से उतना मुक्त होना चाहिए। समझ विकसित होनी चाहिए। और हम नई परिस्थिति का सामना कर सकें, उसके योग्य हमें बनना चाहिए। तो जैसे मेरा कहना है कि आने वाले भविष्य में भारत में टेक्नालॉजी का जितना विकास हो उतना हितकर है। और अगर हम चरखा और खादी जैसी बातों पर अटकते हैं तो वे टेक्नालॉजी के विरोध की बातें हैं, उनसे टेक्नालॉजी विकसित नहीं होती, टेक्नालॉजी को नुकसान पहुंचेगा।
यानी संक्षिप्त में यह कि हर महापुरुष परिस्थिति का उत्तर होता है। परिस्थिति बदल जाती है, महापुरुष मर जाता है, लेकिन उत्तर पकड़ जाता है। और फिर हम उत्तर को थोपते चले जाते हैं। और अगर उत्तर का कोई विरोध करे तो हम समझते हैं कि वह उस महापुरुष का विरोध हो गया। यह इतनी नासमझी की बात है, जिसका कोई हिसाब नहीं है, जिसका कोई हिसाब नहीं है।

प्रश्नः आज की जो देश की परिस्थिति है, इसमें आप क्या मार्ग बतलाते हैं? जो सारा ही देश में रुकावट हो गई यह। और न लोगों की समस्या का उत्तर होता है। सब आदमी समस्या के... पड़े कि क्या करना, क्या नहीं करना, सोच सकता ही नहीं है। तो आपने बताया कि हमको सोच कर समस्या का हल करना चाहिए। एक-दो रास्ता बताया है। और कुछ रास्ता है?

हां, असल बात जो है, असल बात जो है, एक-एक परिस्थिति का सवाल नहीं है, परिस्थिति का सामना करने की वृत्ति का सवाल है। वह मुल्क के पास नहीं है। मुल्क के पास समस्याएं हैं, परिस्थितियां हैं, लेकिन कैसा व्यक्तित्व इन परिस्थितियों का मुकाबला कर सकता है, वह व्यक्तित्व नहीं है मुल्क के पास। और उस व्यक्तित्व को बनाने की न हम कोई चेष्टा कर रहे हैं और न ही हमने तीन हजार वर्षों में वह व्यक्तित्व बने इसके आधार रखे हैं। बल्कि वह व्यक्तित्व न बने, इसकी हमने सारी कोशिश की है। और अब हम क्या करते हैं कि हम एक-एक परिस्थिति का मुकाबला करने की कोशिश करते हैं, जो कि गलत है। इससे... वह जो आप कहते हैं, उलझन पैदा हो गई है।
यानी मामला ऐसा है--जैसे एक बच्चे के सामने गणित के पचास प्रश्न रख दिए। वह इस प्रश्न को हल करने की कोशिश करता है और पूछता है, इसको हल कैसे करूं? इसको हल कर लेता है तो दूसरा उसके सामने रख देते हैं, वह उसके सामने सवाल उठता है हल कैसे करूं? सवाल असल में एक सवाल हल करने का नहीं है, सवाल गणित को हल करने की बुद्धि पैदा करने का है। तो एक-एक पर्टीकुलर सवाल नहीं है महत्वपूर्ण, महत्वपूर्ण मुल्क के व्यक्तित्व में सवालों को हल करने की क्षमता का है। राजनीतिज्ञ को सवाल होता है एक-एक सामने उसका कि आज यह भाषा का सवाल आ गया, इसको हल कैसे करें? कल प्रांत का सवाल आ गया, इसको कैसे हल करें? परसों यह सवाल आ गया... ये सवाल रोज आते रहेंगे। अगर आप हल भी कर लेंगे तो पच्चीस दूसरे सवाल आ जाएंगे।
असली सवाल यह है कि मुल्क के पास सवालों का साक्षात्कार करने की, हल करने की प्रतिभा नहीं है। और प्रतिभा को विकसित करने के जो उपाय हैं, उनका हम कोई उपयोग नहीं कर रहे हैं। जैसे मेरा ख्याल, मेरा कहना यह है कि प्रतिभा को विकसित करने का पहला तो उपाय यह है कि भारत के मन को सब तरह के अंधविश्वास से मुक्त करना चाहिए। क्योंकि अंधविश्वास सोचने नहीं देता। वैज्ञानिक दृष्टि पैदा की जानी चाहिए। भारत के पास कोई वैज्ञानिक दृष्टि नहीं है। तो किसी भी सवाल से हम जूझते हैं, हमारी दृष्टि बिल्कुल अवैज्ञानिक होती है। जैसे उदाहरण के लिए, जिनकी वजह से विवाद सारे खड़े हो गए हैं, जैसे मेरा कहना है कि भारत के सामने पिछले पचास वर्षों में एक सवाल था हिंदू-मुसलमान का। हमने उस सवाल के साथ जो भी व्यवहार किया, बिल्कुल अवैज्ञानिक था। उसके परिणाम में हिंदुस्तान-पाकिस्तान बंटा। और वह सवाल खत्म भी नहीं हुआ। वह सवाल अपनी जगह खड़ा है। और पूरा मुल्क बंट गया, वह एक अलग बेवकूफी हो गई। और वह पूरा मुल्क बंट कर हमेशा के लिए सवाल खड़ा कर गया जो कि अब चलेगा, जिसका कि अंत नहीं सूझता अब क्या होगा। तो हमने उस सवाल के साथ जो भी किया, वह अवैज्ञानिक था। जैसे मेरा कहना है कि... और यही सारी की

सारी बातें लोगों को लगती हैं कि मैंने गांधी जी के खिलाफ कह दिया। गांधी जी से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।
लेकिन हमने पचास साल में क्या किया, वह हमें सोचना पड़ेगा। मेरा कहना
है कि हिंदू-मुस्लिम एकता की बात उठा कर हमने मुल्क को नुकसान पहुंचाया। सवाल था भारतीय एकता का, सवाल हिंदू-मुस्लिम एकता का था ही नहीं कभी। लेकिन जैसे ही हमने कहा कि हिंदू-मुस्लिम यूनिटी, वैसे ही हमने हिंदू और मुसलमान को बहुत महत्व दे दिया; जो महत्व अतिशय हो गया। और जितना हम यह कहते चले गएः हिंदू-मुस्लिम एकता, उतना मुसलमान को भी दिखाई पड़ने लगा कि मेरी एकता के बिना कुछ होता नहीं है, मैं महत्वपूर्ण हूं। हमने एक सिग्निफिकेंस दिया मुसलमान को और हिंदू को, और दोनों को हमने उपद्रव बना लिया। जरूरत इस बात की थी कि हम कहते--भारतीय एकता; न हिंदू का सवाल है, न मुसलमान का। और हम इस बात पर जोर देते कि जो आदमी हिंदू होने का दावा करता है और मुसलमान होने का दावा करता है, वह भारतीय एकता को तोड़ता है। तो हमने उलटा किया।
हमने कहाः हिंदू-मुस्लिम दोनों भाई-भाई हैं, अल्ला-ईश्वर तेरे नाम हैं। और हमने जो-जो प्रक्रिया की उसमें हमने हिंदू-मुस्लिम को मिटाने की कोशिश नहीं की, हिंदू-मुस्लिम को स्वीकार कर लिया, उनको स्वीकृति दे दी। फिर उनको स्वीकार करके मिलाने की कोशिश की। और मेरा कहना यह है कि यह स्वीकृति खतरनाक हो गई, यह महंगी पड़ गई। और गांधी जैसे भले आदमी भी इस भूल को नहीं पकड़ पाए और अपने को हिंदू कहते रहे निरंतर कि मैं हिंदू हूं। अगर गांधी ने भी हिम्मत कर ली होती यह कहने की कि मैं सिर्फ आदमी हूं और मैं भारतीय हूं, मैं हिंदू-विंदू नहीं हूं, तो हिंदुस्तान का इतिहास दूसरा होता। लेकिन वह नहीं हो सका। और जो हमने कोशिश की, वह कोशिश तोड़ने वाली सिद्ध हुई, वह कोशिश बनाने वाली सिद्ध नहीं हुई।
अब भी वही हाल है। अब भी हम वही सब कहे चले जाते हैं। और दूसरी समस्याएं खड़ी होती हैं तो उनके सामने भी हम वही पुराने हल मौजूद करते हैं। यह जो... और कोई दो-तीन हजार साल से... भारत की कुछ दृष्टियां हैं जो उसको सवाल हल नहीं करने देती। जैसे भारत मानता है कि जो भी हो रहा है, वह भाग्य से हो रहा है। और जो कौम भी मानती है कि भाग्य से हो रहा है, वह परिस्थितियों का मुकाबला करने में असमर्थ हो जाती है। वह कैसे समर्थ होगी? परिस्थिति सामने आ जाती है और वह भाग्य को मानने वाली कौम है! जब तक हिंदुस्तान के दिमाग से भाग्य की धारणा नहीं मिटती, तब तक पुरुषार्थ की संभावना पैदा नहीं होगी। यानी यह मेरा कहना है कि ये बेसिक सवाल हैं। ये कोई आज की राजनीति के सवाल नहीं हैं, कल की राजनीति के सवाल नहीं हैं। भारत की प्रतिभा को भाग्यवादी होने से बचाने की जरूरत है। लेकिन स्कूल में बच्चों को हम आज भी भाग्यवाद के खिलाफ कुछ भी नहीं समझा रहे हैं। और हम चाहते हैं कि समस्याएं हल हो जाएं।
अगर बीस साल आने वाली पीढ़ी को हम भाग्यवाद के खिलाफ समझा सकें और पुरुषार्थ के लिए तैयार कर सकें और आने वाली पीढ़ी के दिमाग में यह बात बिठाई जा सके कि जो भी हो रहा है वह अन्यथा हो सकता है, बदला जा सकता है, वह हमारे हाथ में है, और कोई भगवान तय नहीं कर रहा है, कोई भाग्य तय नहीं कर रहा है, तो बीस साल के भीतर भारत की प्रतिभा में खूबी आ जाएगी कि वह समस्याओं का सामना कर सके। पश्चिम में समस्या खड़ी होती है तो वे उसको हल करने की कोशिश करते हैं। हमारे सामने समस्या खड़ी होती है तो हम उसके कारण खोज लेते हैं और खत्म हो जाती है बात कि वह समस्या क्यों है। यानी वह कैसे बदलेगी, यह सवाल नहीं है।
अगर भारत गुलाम हो गया, तो हम कहते हैं, फूट थी, इसलिए गुलाम हो गया। बस जैसे कि एक्सप्लेनेशन मिल गया, कारण मिल गया और बात खत्म हो गई। और एक हजार साल तक हम गुलाम नहीं रहते कभी भी; वह हमारा भाग्यवादी दृष्टिकोण था, जिसने हमको गुलाम रखा। फूट-वूट का कारण नहीं है। मेरी अपनी समझ यह है; क्योंकि जितनी फूट हममें है, दुनिया की सब कौमों में है। ऐसा कोई फूट हममें ही है, ऐसा नहीं है। वह प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक उतना ही लड़ता है जितना हिंदू-मुसलमान लड़ते हैं। सारी दुनिया लड़ती है। फूट-वूट हममें ही

नहीं है कोई। हममें और उनमें एक ही फर्क है कि वे चीजों को बदलने का विश्वास रखते हैं कि हमारे हाथ में है, और हम मानते हैं कि चीजें हो रही हैं, हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है।
और आज भी साधु-संन्यासी समझाए चला जा रहा है; ये ही बातें समझा रहा है गांव-गांव में वह। अब मेरा कहना यह है कि पचास साल के लिए हिंदुस्तान को साधु-संतों से बचाने की कोशिश करनी चाहिए, नहीं तो हिंदुस्तान मर जाएगा। मगर अब यह खतरे की बात है, यह झगड़े की बात है। मेरा कहना यह है कि साधु, जिसको संन्यास लेना है वह छोड़ कर चला जाए, जंगल में बैठे, जिसको जाना हो वह वहां जाए; लेकिन अब गांवों में साधु-संन्यासी को शिक्षा देने का उपाय बंद किया जाना चाहिए। जिसकी मर्जी हो, संन्यास लेना हो वह जंगल में जाए, उनके पास बैठे, सीखे, कोई मनाही नहीं है। लेकिन अब भारत की जो पिटी-पिटाई परंपरा है, उसको यहां सिखाने के स्रोत बंद होने चाहिए। और नहीं तो वे फिर नई पीढ़ी को बिगाड़ जाते हैं।
अब एक स्कूल का लड़का है, वह भी जाकर ज्योतिषी को चार आना देकर हाथ दिखलाता है। तो भारत का भविष्य अच्छा नहीं है। यह स्कूल का बच्चा, युनिवर्सिटी में पढ़ने वाला लड़का है, एम.एससी. पढ़ता है, लेकिन परीक्षा के वक्त हनुमान जी पर जाकर नारियल चढ़ाता है। इससे भारत की प्रतिभा विकसित नहीं हो पाएगी। इससे भारत की प्रतिभा को नुकसान पहुंच रहा है।
और इसलिए मेरे सामने इमिजिएट सवाल नहीं है कि यह सवाल कैसे हल हो। मेरे सामने सवाल यह है कि हमारा माइंड किसी भी सवाल को हल क्यों नहीं कर पाता है? और फिर वह हम उसमें उलझ जाते हैं। हल होता नहीं है, सवाल खड़ा रहता है, हम उलझते चले जाते हैं। और यह जो एक साइंटिफिक आउटलुक कैसे पैदा हो? सारे मुल्क के विचारशील लोगों को इस दिशा में लग जाना चाहिए कि साइंटिफिक आउटलुक कैसे पैदा हो।
अब अभी मैं कलकत्ते में था। एक मित्र डाक्टर के घर ठहरा। निकलने लगा, डाक्टर एफ.आर.सी.एस. हैं, पढ़ा-लिखा आदमी है, यूरोप से लौटा हुआ है। उसकी लड़की को छींक आ गई और उसने मुझे कहा कि दो मिनट रुक जाइए।
तो मैंने उसको कहा कि तुम डाक्टर हो, तुम्हें समझना चाहिए कि छींक क्यों आती है? तुम भी नहीं समझते?
उसने कहाः वह सब मैं समझता हूं, लेकिन हर्जा क्या है? दो मिनट रुक गए
तो हर्ज क्या है?
अब यह जो माइंड है, यह मुल्क की समस्याएं हल नहीं होने देगा, यह नहीं होने देगा। क्योंकि समस्या के लिए एक संघर्ष करने वाला मन चाहिए, जो चीजों को बदलने की सोचे, तोड़ने की सोचे, नया करने की सोचे। वह हमारे पास नहीं है।

प्रश्नः बंबई में आपने बताया था कि एक विचार की प्रकिया शुरू होने की जरूरत है। और उसके लिए समाज को एक शॉक दिया जाए। गांधी जी और सेक्स के विचार... अनुसंधान जाग जाए। और बाद में जो हलचल मची थी, इसके पश्चात आपको तो ऐसा नहीं लगता कि समाज अभी तक पूरा तैयार नहीं हुआ। क्या आप जिन दिनों की इंतजार कर रहे थे, वह अभी तक नहीं आया?

यह तो ठीक कहते हैं न। समाज तो तैयार है ही नहीं। यानी मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ है जो हलचल मची उससे। वह तो मैं जानता था कि वह मचेगी। आश्चर्य मुझे इससे नहीं हुआ कि हलचल मची, आश्चर्य मुझे इससे हुआ कि जो लोग मेरे पक्ष में हैं, उनकी हिम्मत मुझे बिल्कुल नहीं मालूम पड़ी। मेरे विपक्ष में जिन्होंने कहा, उन्होंने तो हिम्मत से कहा, उन्होंने हलचल भी मचाई। लेकिन जो मेरे पक्ष में हैं, वे प्राइवेट में तो मुझसे कहते कि हम आपके पक्ष में हैं। मुझे पत्र लिखते हैं, लेकिन खुले में वे कहने की तैयारी में नहीं हैं। आश्चर्य मुझे इससे नहीं हुआ कि हलचल मची। मैं तो चाहता हूं कि हलचल मच जाए। उसमें क्या हर्जा होने वाला है? मुझे दस-पच्चीस गाली पड़ती हैं, इससे क्या बनता-बिगड़ता है? इस मुल्क में कुछ लोगों को गाली खाने के लिए तैयार होना चाहिए, नहीं तो हलचल होगी ही नहीं। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

आश्चर्य मुझे इससे हुआ कि जिन लोगों से हम आशा कर सकते हैं--जो सोचते हैं, विचारते हैं, इंटेलेक्चुअलस हैं, वे भी हिम्मत करके बाहर पक्ष में खड़े हो सकते हैं, वह मुझे नहीं दिखाई पड़ी। वह जो प्रतिक्रियावादी वर्ग था, वह तो शोरगुल मचाएगा जोर से, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। वह तो मचाना चाहिए उसको, न मचाता तो आश्चर्य होता। वह तो बिल्कुल ही ठीक हुआ, उसमें तो कुछ अड़चन नहीं हुई। और वह चीजों को तोड़-मरोड़ कर भी मचाएगा, क्योंकि उसके सिवाय मचा नहीं सकता। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं सीधे-सीधे उसका विरोध नहीं किया जा सकता। उसका तो उपाय एक ही है कि प्रसंग के बाहर मेरी बातों को निकाल कर और उनको नये अर्थ देकर उसका विरोध किया जाए। वह भी मेरी समझ में आता है कि हमेशा का रास्ता वह है। उससे कोई हैरानी नहीं हुई। हैरानी मुझे इससे हुई कि यह जो विरोध में इतना शोरगुल मचा है, इसके विरोध में जो एक इंटेलेक्चुअल, सोच-विचारशील लोगों का मुझे साथ मिलना चाहिए, वह हिम्मत से पब्लिक में साथ देने को तैयार नहीं हैं। उससे मुझे आश्चर्य हुआ।
लेकिन उसकी भी चिंता नहीं है; क्योंकि मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता
कि मेरे साथ कोई है कि नहीं। इससे मुझे कोई भी फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि न तो मुझे किसी की पूजा चाहिए, न कोई संप्रदाय बनाना है, न कोई आर्गनाइजेशन बनाना है। मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। न मेरा कोई स्वार्थ है जो कि नुकसान होगा या फायदा होगा। वह कुछ भी नहीं है। इसलिए कितने लोग मुझे गाली देते हैं, कितने लोग स्वीकार करते हैं, इससे भी फर्क नहीं पड़ता। एक ही मुझे फर्क मालूम पड़ता है कि विचार की प्रक्रिया अगर पैदा हो, तो वह हमेशा शॉक से ही पैदा होती है, और कभी पैदा नहीं होती।

प्रश्नः लेकिन मेरी समझ यह है कि आप कब से इंतजार कर रहे थे, कब वह समय आएगा तब करेंगे। आप इन्हीं बातों को आप पहले कह सकते थे--दो साल पहले।

न, न, न। मेरा जो कहना है कुल जमा, मैं समय का इंतजार नहीं कर रहा। दो साल में क्या फर्क पड़ने वाला है? बीस साल में इस मुल्क में फर्क नहीं, इस मुल्क में दो हजार साल में फर्क नहीं पड़ता तो दो साल में क्या फर्क पड़ना है? यानी हमारी चिंतन की प्रक्रिया भी इतनी अवरुद्ध हो गई कि दो हजार साल में भी हम में कोई खास फर्क नहीं पड़ता। तो वैसे ही चलता है। वह सवाल नहीं था। मैं तो केवल प्रतीक्षा कर रहा था इसका कि मुझे सुनने वाला वर्ग तो हो जिससे मैं कह सकूं, तो मैं एक दफा घूम लूं, लोग मुझे सुन लें। आखिर... नहीं तो इतना शोरगुल भी नहीं मच सकता था। इतना शोरगुल मचा, वह भी इसलिए मच सका कि मुझे सुनने वाला एक वर्ग पैदा हुआ है और स्वार्थी तत्व को घबड़ाहट पैदा हुई कि मुझे सुनने वाला वर्ग मुझे सुनेगा तो खतरा है। सुनने वाला वर्ग ही न हो तो मेरी बात को कहने की क्या जरूरत है? मैं कह भी दूं तो कौन उसे सुनने की फिक्र करता है? जो मैं कह रहा हूं, हिंदुस्तान में हजारों लोग कहते हैं। आपमें से कई लोग कहते होंगे, वह शोरगुल नहीं मचता है। शोरगुल मचने का कारण तब होता है, जब कि मुझसे कोई खतरा पैदा हो। नहीं तो नहीं होता। शोरगुल मचता है, वह एक लिहाज से अच्छा लक्षण है। उसको मैंने अच्छा लक्षण माना। मैंने समझा कि वे मुझे खतरनाक मानते हैं। यह अच्छा है। यानी वे इतना मानते हैं कि मेरी लोगों तक कोई पहुंच हो सकती है, लोग मेरी बात सुन सकते हैं। और उनको डर पैदा हुआ कि मेरी बात न पहुंचे। तो मैं समझता हूं कि यह अच्छा हुआ है, यह शुभ लक्षण है।
अब सवाल यह है कि इसका कैसा उपयोग किया जा सके?
अब मैं देख कर हैरान हुआ, बंबई के पत्रकार जिन्होंने इंटरव्यू लिया मुझसे, वे एक-एक मुझसे कह कर गए कि आपकी बात हमें बहुत पसंद है। पीछे भी हमसे कहे कि हमें बहुत दुख है कि जो निकला, वह हम नहीं चाहते थे। बड़े मजे की बात है, यह बड़े मजे की बात है। फिर तो बड़ी कठिन बात हो गई न। फिर तो बड़ी कठिन बात हो गई। चंद्रकांत वोहरा मुझे कह कर गए पीछे कि यह हमें बहुत दुख है कि हम जो चाहते थे, वह नहीं हुआ, कुछ और हुआ। अब यह जो है न... लेकिन यह अच्छा है एक लिहाज से, एक लिहाज से अच्छा है। इसमें मुझे कोई दुख का कारण नहीं दिखाई पड़ता है। मैं तो चाहता ही यह हूं कि वह जो हलचल मची है, वह बंद न हो जाए।

उसको जारी रखिए। कुछ फिकर नहीं कि मेरे विरोध में भी चले तो कोई हर्जा नहीं है, वह जारी रहे। वह जारी रहे तो मैं निबटारा कर लूंगा। वह तो आखिर अगर कोई पत्र मेरे संबंध में गलत भी लिख कर भी प्रचार करे तो कितनी देर चल सकता है? आखिर मैं जनता को जाकर मैं सीधी भी तो बात कर लूंगा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
तो मैं तो, मेरे खिलाफ अभी एक किताब लिखी किसी ने सूरत से। तो उनको मैंने चिट्ठी लिखा, उन्होंने मुझे जवाब भी नहीं दिया। उनको मैंने चिट्ठी लिखा कि बहुत मैं धन्यवाद करता हूं तुम्हारा, इसको गांव-गांव पहुंचाओ, ताकि जगह-जगह लोग प्रश्न पूछने लगेंगे, तो मैं उत्तर दे सकूं। वे पूछें तो मुझसे। वे जिस संबंध में भी पूछना चाहें तो मैं उत्तर देने को तैयार हूं। तो वह जो हलचल चली है, उसको जारी रखिए।
और यह मैं चाहता हूं कि शॉक जोर से लगे। वह सिर्फ गुजरात में ही हुआ, मैं चाहता हूं कि पूरे मुल्क में हो। वह अभी सिर्फ गुजरात में हुआ, मैं चाहता हूं कि पूरे मुल्क में होना चाहिए। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह शॉक लगने में मैं बिल्कुल खत्म हो जाऊं। तो भी हर्जा नहीं है। अगर इतना भी काम हो जाए कि लोग सोचने लगें कुछ मुद्दों पर, तो भी काम पूरा हो जाता है। तो भी काम पूरा हो जाता है। कुछ लोगों को तो कुर्बानी देनी पड़ेगी, सिर्फ इसलिए कि लोग सोचने लगें। वह मैं जो चाहता हूं, वह सोचेंगे, यह तो बहुत दूर की बात है; लेकिन वे सोचें तो भी काफी है।
क्योंकि मेरी अपनी समझ यह है कि एक बार आदमी सोचना शुरू कर दे तो गलत चीज के साथ बहुत देर तक राजी नहीं रह सकता है। उसमें टूट शुरू हो जाएगी। और यह आप ख्याल कर लें कि हिंदुस्तान में शॉक देने की व्यवस्था ही नहीं है। यहां प्रशंसा की इतनी लंबी परंपरा है हमारी कि वह शिष्टाचार का हिस्सा हो गया है। कि अगर मुझे कोई बोलता है कि गांधी जी के संबंध में बोलूं, तो यह शिष्टाचार का हिस्सा है कि मैं उनकी प्रशंसा करूं। अगर मेरे संबंध में आपको बोलने के लिए लाया जाए तो आप शिष्टाचार मान कर मेरी प्रशंसा करेंगे। यह बड़ी झूठ बात हो गई है। इससे चिंतन पैदा नहीं होता है। तो मैं तो चाहता हूं कि कुछ लोग शॉक दें, कुछ लोग चीजों को तोड़ें, कुछ जो बहुत दिन से कहा चला जा रहा है उसके खिलाफ कुछ कहें। यह भी हो सकता है कि शॉक देने में उनको थोड़ी अतिशयोक्ति भी करनी पड़े। यह भी हो सकता है। मैं उसके लिए भी राजी हूं। एक दफा शॉक लगे, चिंतन शुरू हो, तो अतिशयोक्ति तो मिट जाएगी। उसमें कितनी देर लगती है, वह जो डायलॉग पैदा हो जाएगा, मिट जाएगी। लेकिन यह जो रटी-रटाई परंपरा चल रही है प्रशंसा करने की, प्रशंसा करने की, यह बहुत खतरनाक और महंगी पड़ गई है। बहुत महंगी पड़ गई है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अब मजा यह है कि आखिरी उपाय वही रह जाता है। मैं जो कह रहा हूं, अगर उसका कोई उत्तर देने का उपाय न रह जाए, जो मैं कह रहा हूं, उसको खंडन करने का कोई मार्ग न हो, या सीधा मुझसे बात करने का कोई उपाय न रह जाए, तो फिर एक ही उपाय रह जाता है कि मेरे चरित्र को कुछ कहना शुरू किया जाए। और मेरे चरित्र को बहुत-कुछ कहा जा सकता है। क्योंकि मैं चरित्र के मामले में बंधा हुआ आदमी नहीं हूं। क्योंकि मैं तो किसी मामले में बंधा हुआ आदमी नहीं हूं।
तो वहां जो घटना हुई, मनु भाई को मैंने वहीं कहा था कि यह घटना हो गई तो मैं इसकी कल सुबह पब्लिक मीटिंग में बात कर लूं। आप भी यहां मौजूद हैं, वह बहन भी यहां मौजूद है, वे सारे लोग भी मौजूद हैं जिनके सामने घटना हुई। तो अभी यह बात करना बहुत साफ होगा। पीछे दो महीने, चार महीने बाद आप बात शुरू करेंगे, यह मैं जानता हूं, फिर साफ करना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि वे सारे लोग नहीं होंगे, मैं नहीं होऊंगा, वह बहन नहीं होगी।
घटना कुल इतनी हुई कि एक बनारस युनिवर्सिटी की प्रोफेसर, और वह कोई-- जैसा उन्होंने लिखा है कि जवान स्त्री--जवान-अवान नहीं, वह कोई पैंतालीस साल की। पच्चीस साल का तो उसका जवान लड़का है। पैंतालीस साल की महिला, और

कोई साधारण शिक्षित नहीं, हिस्ट्री की प्रोफेसर बनारस युनिवर्सिटी में। वह मेरे साथ आई हुई थी। जैसे हिम्मत भाई मेरे साथ आए हुए हैं, तो वह मेरे साथ आई हुई थी। तो वह मेरे साथ रुकी। एक दिन कोई बात नहीं हुई। वह मेरे साथ रुकी थी, जहां मैं रुका हुआ था वहां उसे रोका हुआ था। एक दिन कोई बात नहीं हुई।
दूसरे दिन दोपहर को प्रेस-कांफ्रेंस हुई, और उसमें गांधी जी के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे गए, और मैंने उत्तर दिया। तो वह जो संस्था है, वह तो गांधीवादियों की संस्था है। लाला लाजपतराय भवन में मैं रुका था। और वह सर्वेंटस ऑफ पीपुल सोसाइटी है, जिसके मनु भाई भी सदस्य हैं। और वे सारे लोग थे। वे सारे लोग जिन्होंने आयोजन किया था--क्योंकि मुझे तो एक कठिनाई पड़ गई--मेरे सारे आयोजक नब्बे प्रतिशत तो गांधीवादी थे--सारे मुल्क में। क्योंकि आजकल आयोजक भी वे हैं, नेता भी वे हैं, सब कुछ वे हैं। जो भी करना है, वे ही करते हैं। तो वे आयोजक दिल्ली की मीटिंग के सारे गांधीवादी थे, मनु भाई भी एक आयोजक थे उसमें। वह जो प्रेस-कांफ्रेंस में मैं सारी बातें कहा, उससे उनको बेचैनी हुई। उस रात...
अब मुझे पता नहीं उन्होंने सबने सोच कर निकाला? दूसरे दिन शाम को मैं मीटिंग से लौटा, तो उन्होंने उस स्त्री का सामान और बिस्तर सब बाहर निकाल दिया। वह खड़ी दरवाजे पर रो रही। मैं आया, तो मैं हैरान हुआ। और दस-पच्चीस लोग मेरे साथ आए थे, वे सब पूछे, क्या हुआ? तो उस स्त्री ने कहा कि कुछ हुआ नहीं, मुझे कुछ कहना नहीं, आपके पैर छूने के लिए मैं रुकी हूं, मैं पैर छू लूं और मैं जाऊं, मैं जा रही हूं। तो मैंने कहा, अभी तो तेरे जाने की बात नहीं थी, दो दिन और रुकने का था, हुआ क्या? तो उसने कुछ कहना पसंद नहीं किया, क्योंकि एक भद्र और शिष्ट महिला है। उसने कहा कि मुझे कुछ भी नहीं कहना है, अब इस बात को खत्म कर देना है। लेकिन यह मुझे अच्छा नहीं मालूम पड़ा कि वह बिना कुछ पता चले वह चली जाए। तो मैंने पूछने की कोशिश की, तो उसने मुझे अंततः बताया कि मेरा सामान बाहर निकाल दिया है और मेरे साथ अभद्र व्यवहार किया है, और मुझसे कहा कि आप हमारी संस्था से बिना पूछे उनके साथ कैसे रुकीं?
तो यह तो पहले दिन जब वह मेरे साथ आई थी तब बात उठानी थी, उठानी थी तो।
और अगर कुछ भी कहना था तो मुझसे कहना था। क्योंकि मैं उनका मेहमान था, वह मेरे साथ थी। तो आप उनके साथ क्यों रुकी यहां? और यह अनुचित है उनके साथ यहां रुकना? और इसलिए हम आपको दूसरे कमरे में ले जाते हैं। यहां से आपको ले जाएंगे। तो उसका जबरदस्ती सामान निकाला तो वह हैरान हो गई। और वह एक भद्र महिला को अजीब सा मालूम पड़ा। मैंने कहा भी आकर कि यह तो मुझे कहना था आकर। और यह भी डेढ़ दिन बाद आप कह रहे हैं, जैसा अभी दो महीने बाद वक्तव्य दिया। ऐसा डेढ़ दिन बाद वह काम किया। फिर भी मैंने कहा, कोई हर्ज नहीं है। तो मैंने उसको समझाने की कोशिश किया कि अभी फिलहाल... लेकिन वह महिला
भी जिद्द पकड़ गई कि मेरा अपमान हुआ है, अब मैं रुकूंगी तो यहीं रुकूंगी, मैं दूसरे मकान में जाने में राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने न कोई पाप किया है, और न कोई बुराई की है। क्षमा इन्हें मांगनी चाहिए कि मेरा सामान बाहर निकाला। वह यह जिद्द पकड़ गई। और ये सारे लोग यह जिद्द पकड़ गए कि इसको इस कमरे में रुकने नहीं देंगे। मेरी समझ के बाहर हो गया। मैंने कहा कि इसमें कुछ भी निबटारा होना चाहिए। और मैंने इनसे कहा कि इसमें मनु भाई भूल मैं आपकी समझता हूं। क्योंकि यह बात मुझसे कहनी थी--पहली बात, डेढ़ दिन पहले कहनी थी। और अभी भी कहनी थी तो मुझसे कहनी थी आकर, तो इसका कोई भी रास्ता हो सकता था। उससे सीधा आपको बात नहीं करनी थी। और यह अशोभन बात हुई है। और इसलिए मैं उसके पक्ष में हूं, मैं उसके पक्ष में हूं कि वह ठीक कह रही है। उसको जिद्द करनी चाहिए। और मैंने कहा कि उसको आज रात रुकने दें, कल सुबह मैं उससे कहूंगा कि तू दूसरे कमरे में चली जा। वह मेरी समझ की बात होगी, लेकिन अब यह गड़बड़ मत करें। पर ये सारे लोग जिद्द पकड़ लिए। वह तो पूरा का पूरा, जैसे एक कांस्प्रेसी हो, जिद्द पकड़ लिए कि नहीं, इसको हम यहां रुकने नहीं देंगे।

तो फिर मैंने कहा, फिर इसका एक ही रास्ता है कि मैं भी आपकी संस्था छोड़
कर चला जाऊं, और मैं प्रोटेस्ट में आपकी संस्था छोड़ कर जाता हूं। क्योंकि यह अभद्र व्यवहार आपने किया है। रह गई मेरी बात, तो मैंने उनसे कहा कि मुझे कोई कठिनाई नहीं है, मेरे कमरे में कौन आकर रुक जाए। मैंने कहा, आप भी आकर रुक जाएं, बहुत तकलीफ हो कि यह महिला यहां सो रही है, तो रात में आपको इसकी बहुत चिंता हो तो आप भी इसी कमरे में आकर रुक जाएं। यह मेरी समझ में आता है कि और दो जन भी इसी कमरे में आकर रुक जाएं, ताकि आपको चिंता न रहे, परेशानी न रहे।

फिर मैंने कहा कि दूसरे दिन कल सुबह मैं पब्लिक मीटिंग में इसकी बात
कर लूंगा, ताकि यह बात जाहिर हो जाए, क्योंकि यह बात तो चलेगी; क्योंकि चलने के लिए आयोजन किया गया है, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। तो मुझे रोका कि नहीं, इसकी बात मत करिए, यह संस्था का अपमान होगा, ऐसा होगा, वैसा होगा। माफ करिए, जो हो गया वह हो गया।
दूसरे दिन जो सब्जेक्ट था, वह था "सेक्स एण्ड लाइफ।" तो उस सब्जेक्ट
को बदल दिया। कहा कि इस सब्जेक्ट को ही बदल दें। क्योंकि वह डर हुआ कहीं मैं इसके सिलसिले में वह बात न कर लूं। उसको भी बदल दीजिए, धर्म पर ही बोलिए। यह सारा हुआ। तीसरे दिन सांझ को चलते वक्त ये सारे लोग मुझसे क्षमा मांगने आए हैं कि माफ करिए, वह जो हो गया, गलती हो गई, यह हो गया, वह हो गया। मैंने कहा कि उसकी मुझे चिंता नहीं, जो हो गया है। अब पीछे इसकी क्या चर्चा चलाइएगा, वह थोड़ा सोचने का है। क्योंकि चर्चा तो यह चलेगी, यह तो रुकने वाली नहीं है। और आपने मुझे चलाने नहीं दी। मैं चला देता तो वह अच्छा होता।
दो महीने वे चुप रहे। अब वे प्रेस-कांफ्रेंस बुला कर वह सारी बात कहते हैं। और पीछे जो हिस्सा उन्होंने जोड़ दिया वह भी। मैं नहीं सोचता था कि मनु भाई को वैसी शिष्टता करनी चाहिए।
मुझसे तीसरे दिन सांझ को बैठक में यह बात हुई कि अगर कोई स्त्री आपका आलिंगन करे तो आपको एतराज है? मैंने कहा कि मुझे कोई स्त्री, भूत-प्रेत कोई भी आकर आलिंगन करे तो मुझे कोई एतराज नहीं है। मैं किसी का आलिंगन करने नहीं जाता हूं। मेरा कोई आलिंगन करे तो मुझे कोई एतराज नहीं है। तो फिर उन्होंने मुझसे पूछा कि आप क्या मानते हैं कि आलिंगन सेक्सुअल नहीं है? मैंने कहाः आलिंगन सेक्सुअल हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है; यह करने वालों पर निर्भर है। एक मां अपने बेटे का आलिंगन कर सकती है, एक बहन अपने भाई का कर सकती है, एक पत्नी अपने पति का कर सकती है। यह तो इस पर निर्भर है कि करने वाले क्या कर रहे हैं। वह सेक्सुअल हो भी सकता है, और स्प्रिचुअल भी हो सकता है। यह कोई जरूरी नहीं है कि वह कैसा है, यह करने वालों पर निर्भर है।
और मैंने कहा कि तीसरा आदमी कभी तय नहीं कर सकता कि दो करने वालों का आलिंगन कामुक था कि नहीं था। और मैंने कहाः तीसरा आदमी अगर तय करने जाता है तो वह तो सेक्सुअल है, यह पक्का है। उसको तो नहीं कम से कम तय करने जाना चाहिए। यानी अगर मनु भाई से कोई आलिंगन कर रहा है तो मैं कैसे तय करूं कि वह आलिंगन सेक्सुअल है कि नहीं। और मैं करूं भी क्यों। और अगर मैं करता हूं तो मैं सेक्सुअल हूं, इतना तो पक्का हो जाता है, और उनका आलिंगन हो या न हो, यह मुझे कुछ पता नहीं।
वह सारा का सारा उसके पीछे जोड़ दिया कि मैं आलिंगन को, चुंबन को, कामुक नहीं मानता हूं। बच्चों जैसी बात है, लेकिन कोई बहुत समझदारी की बात नहीं है। समझदारी की बात नहीं मालूम पड़ी मुझे थोड़ी कि यह कोई बहुत समझदारी की बात। और फिर मेरे जैसे आदमी के लिए जो कि पब्लिक में सारी बातें करने को हमेशा राजी है, उसके लिए फिर ऐसा दो महीने छिपा कर फिर अहमदाबाद में, जहां मैं मौजूद नहीं हूं, वहां वक्तव्य देना। लेकिन चलेगा, यह सब चलेगा।

तो आप... सुना रिफ्यूट करते हैं।

रिफ्यूट क्या, बात तो ठीक ही है वह। बात तो ठीक, जो मैंने कहा न, रिफ्यूट क्या करता हूं? रिफ्यूट का क्या मतलब? घटना तो बिल्कुल ठीक है कि वह महिला मेरे साथ रुकी थी। इसमें कोई झूठ बात नहीं है। मैंने कहा कि उसको रुकना चाहिए, इसमें भी झूठ बात नहीं है। उसके प्रोटेस्ट में मैं महिला को लेकर दूसरे घर में चला गया, वह भी बात सच है। इसमें कुछ बात झूठ नहीं है। इंटरप्रिटेशन को रिफ्यूट करता हूं। बात झूठ नहीं है, बात तो बिल्कुल ही सच है, लेकिन व्याख्या उसकी... जो अब वह जैसे कि नारगोल के चित्र को छाप दिया। अब वह तो हजार लोगों के सामने वह महिला आकर मेरे से गले मिल गई। उसका फोटो निकाल लिया, फिर उस फोटो को छाप दिया। सैकड़ों लोगों का मन हो सकता है गले मिलने का। और मैं नहीं मानता कि गले मिल लेने में कोई पाप हो गया।
लेकिन हमारा जो दिमाग है, सोचने का जो ढंग है, वह तो ठीक है, वे जिस ढंग
से सोचते हैं वह हमको ख्याल में आ गई बात कि यह बहुत पाप हो गया, बहुत गलत हो गया। और मैं तो... चूंकि सेक्स के संबंध में भी मेरी दृष्टि बहुत और तरह की है। और जो सप्रेसिव माइंड है उसके मैं बिल्कुल विरोध में हूं। तो मैं इस पक्ष में भी नहीं हूं कि आदमी और स्त्री के बीच इतना फासला हो, जितना फासला हमने बना कर रखा है। क्योंकि मेरा मानना है, यह फासला आदमी को कामुक बनाने का कारण बनता है। स्त्री और पुरुष जितने नजदीक होंगे, जितने निकट होंगे, स्त्री और पुरुष के बीच जितना फासला कम हो, और स्त्री-पुरुष स्त्री- पुरुष होने के लिए जितने कम कांशस रह जाएं, बच्चे और बच्चियां इस तरह पाले जाएं कि उन्हें पता ही न चले कि वे लड़के हैं या लड़कियां हैं। इतने निकट खेलें और कूदें, साथ तैरें और दौड़ें कि उनके बीच में एक दीवाल खड़ी न हो जाए। उतना ही अच्छा और कम सेक्सुअल समाज हम निर्मित कर सकेंगे। जितना फासला होगा, जितनी दीवाल होगी, जितनी हम दूरी को बनाए रखने की कोशिश करेंगे, उतनी सेक्सुअलिटी समाज में पैदा होती है।
यह जो हमारा समाज है, मेरी दृष्टि में, पश्चिम से भी ज्यादा सेक्सुअल भारत का समाज है। हालांकि पश्चिम में हमें दिखाई पड़ता है कि लोग साथ नाच रहे हैं और नंगे घूम रहे हैं और तालाबों पर तैर रहे हैं, लेकिन उनसे ज्यादा कामुक हमारी दृष्टि है। हम ऊपर से तो दूर-दूर दिखाई पड़ते हैं और चित्त भीतर से निरंतर यही सोचता है।
यही मैंने मनु भाई और उन मित्रों को वहां कहा था कि मैं वहां सोया हूं
उस कमरे में, चिंता मुझे होनी चाहिए, या चिंता उस महिला को होनी चाहिए। लेकिन मनु भाई अपने कमरे में सो रहे हैं और रात भर नहीं सो पाए और चिंतित हों तो बड़ी तकलीफ की बात है। तुम यहीं आ जाओ, तुम भी यहीं सो जाओ, यह भी समझ में आता है। लेकिन तुम अपने कमरे में क्यों परेशान हो? और दो महीने तक परेशान रहो और दो महीने तक तुम्हें नींद न आए और चलता रहे दिमाग में, तो यह सेक्सुअल माइंड का लक्षण हुआ। यह कोई बहुत स्वस्थ, यह कोई अच्छे चित्त का लक्षण नहीं है।

प्रश्नः अपने से तो पश्चिम का समाज अच्छा है न?

इतना एकदम नहीं कह देता हूं, क्योंकि पूरा समाज की बाबत नहीं कह रहा हूं। यानी इतना हां और न में जवाब नहीं दे सकता हूं कि हमसे अच्छा है या बुरा है। कुछ मामलों में हमसे अच्छा है, कुछ मामलों में हमसे बहुत बुरा है।

प्रश्नः सेक्स के बाबत में तो...

हां, हमसे अच्छा है, हमसे अच्छा है। लेकिन जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। यानी जो मैं कह रहा हूं, हमसे अच्छा है, लेकिन जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। क्योंकि हमसे अच्छा जो है वह सिर्फ इसी कारण है कि सप्रेशन उठ गया है। लेकिन सप्रेशन इतना पुराना था कि इतनी तेजी से उठ गया है कि दूसरी अति पर डोलने की स्थिति पैदा हो गई है। वैसे जैसे एक आदमी बीस दिन उपवास कर ले और फिर एकदम से उसको भोजनालय में छोड़ दिया जाए लाकर तो वह एकदम से पागल

की तरह खाने लगे और बीमार पड़ जाए। फिर भी मैं कहूंगा कि भूखे मरने की बजाय ज्यादा खाकर मर जाना अच्छा है। फिर भी मैं यह कहूंगा। भूखे मरने की बजाय ज्यादा खाकर मर जाना अच्छा है। यह मैं कहूंगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं ज्यादा खाने वाले की तारीफ कर रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि खाना सम्यक होना चाहिए, लेकिन अगर बहुत दिन तक समाज को भूखा रखा जाए तो लोग ज्यादा खाकर मरने की हालात में पैदा हो जाते हैं।
हिंदुस्तान का समाज उतना सप्रेसिव नहीं था, जितना ईसाइयत सप्रेसिव रही पश्चिम में। उस सप्रेशन की वजह से जब सप्रेशन टूटा तो लोग पागल की तरह सेक्स की तरफ दौड़ पड़े। लेकिन वह सम्यक हो जाएगा। कितनी देर तक दौड़ेंगे? वह एक आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में पश्चिम की हालत सम हो जाएगी। लेकिन हमारी हालत सम कभी नहीं हो सकती। वह हमारा रिप्रेशन जारी है। जारी है। हम सिखाए चले जा रहे हैं वही। हमारा बूढ़ा आदमी भी सेक्स से मुक्त नहीं हो पाता है। वह अस्सी साल का भी हो जाए तो भी मुक्त नहीं हो पाता है। उसका माइंड वही काम करता है। वह जिंदगी भर का दबाया हुआ हिस्सा पीछा करता है। तो मेरी दृष्टि यह है कि चित्त की जो सरलता और सहजता है, उसकी स्वीकृति होनी चाहिए। उसको ऊंचाई की तरफ रूपांतरण करने की चेष्टा होनी चाहिए। लेकिन दमन के मैं पक्ष में नहीं हूं। और उसी को लेकर भी काफी आपके गुजरात में, उसको लेकर भी काफी चला है कि मैंने कहा कि बच्चे और बच्चियों को बहुत देर तक, जहां तक हमसे बन सके, उन पर वस्त्र पहनने का आग्रह नहीं लगाना चाहिए। मेरा कहना यह कि जब छोटे बच्चे, सात-आठ साल के बच्चे तो घर में हों तब तक तो हमें बिल्कुल आग्रह नहीं लगाना चाहिए--कि वे नंगे घर में घूम सकें, खेल सकें। तेरह-चौदह साल के भी बच्चे हो जाएं और घर के बाथरूम में वे नंगे नहाना चाहें तो उनको नहाने देना चाहिए। अगर तेरह-चौदह साल तक के बच्चे, लड़के और लड़कियां एक-दूसरे के शरीर से परिचित हों तो शरीर के प्रति जो जुगुप्सा पैदा होती है, बाद में वह विलीन हो जाएगी। नहीं तो आज बहुत जुगुप्सा है, बहुत तीव्र इच्छा है एक-दूसरे को देखने की। बूढ़े से बूढ़ा आदमी भी स्त्री को देखेगा तो उसकी आंखें उसके कपड़ों में घुस जाएंगी। वह उसकी बचपन से अटकी रह गई इंक्वायरी, वह पकड़ी है उसके दिमाग में, वह उसको खाए जा रही है।
आदिवासी के पास जाकर देखें, तो उसको कोई फिकर नहीं है।
यानी यह हालत थी कि मेरे एक मित्र कोई तीस वर्ष तक आदिवासियों के बीच रहे। उन्होंने कहा, जब शुरू-शुरू में मैं गया, तो आप आदिवासी स्त्री के स्तन पर हाथ रख कर पूछो कि यह क्या है, तो वह कहेगी, यह बच्चे को दूध पिलाते हैं। बस वह इतना कहेगी, वह एक इंक्वायरी की बात है। हमने पूछा कि यह क्या है? तो वह कहेगी कि हम इससे बच्चे को दूध पिलाते हैं, थन हैं। अब यह स्वस्थता, लेकिन यह हमारे मन में कैसे हो सकती है? हमारी कल्पना के बाहर है। और होना यही चाहिए कि शरीर के बाबत यह दृष्टि हो कि वह काम का एक उपकरण है।
फिर एक तरफ हम दमन करते हैं और दूसरी तरफ नंगी तस्वीरें बनाते हैं, नंगी फिल्में बनाते हैं, नंगे पोस्टर बनाते हैं, नंगी किताबें छापते हैं। फिर उनमें हम तृप्ति करते हैं देख-देख कर। अब मेरा कहना यह है कि अगर नंगा ही देखने की इच्छा है तो नंगा आदमी ही देख लो; वह अच्छा है, स्वस्थ है बजाय नंगी तस्वीर के। क्योंकि यह मेरी समझ है कि नंगा आदमी देख कर आप नंगा देखने की इच्छा से मुक्त हो जाओगे, नंगी तस्वीर देख कर आप कभी मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि तस्वीर बहुत तरकीब से नंगी बनाई गई है। उससे आप मुक्त कभी नहीं हो सकते। वह आपको और पकड़ेगी, और खींचती चली जाएगी।
तो उसको भी शोरगुल मचाया। उसको यह कि मैं यह कहता हूं कि तेरह-चौदह साल के बच्चों को नंगा घुमाया जाना चाहिए। यह तो मैंने कभी नहीं कहा कि नंगा घुमाया जाना चाहिए। मेरा कहना यह है कि वस्त्रों पर रोक-टोक कम होनी चाहिए और कम से कम घर में भाई-बहिन तो नंगे बाथरूम में नहा सकें, इकट्ठे कुएं पर नहा सकें घर में। घर में तो इतनी बाधा न हो कि घर में बहन या भाई कपड़ा बदलें तो बहुत डरें और दीवाल के पीछे जाएं। अगर बच्चे देख लें मां- बाप को नंगा, बच्चे एक-दूसरे को नंगा देख लें, तो नंगा देखने की जो तीव्र

आकांक्षा है, वह क्षीण हो जाती है। और वह क्षीण हो जाए तो नंगा पोस्टर विलीन हो जाएगा अपने आप, नंगी फिल्म विलीन हो जाएगी।
अब एक तरफ हमारे साधु-संत कहते हैं कि नंगा पोस्टर नहीं होना चाहिए,
एक तरफ कहते हैं कि नंगी फिल्म नहीं बनना चाहिए, नंगी किताब नहीं लिखी जानी चाहिए, और दूसरी तरफ आदमी को ढांकते चले जाते हैं। और इन दोनों बातों में विरोध है। वह इसी नंगे आदमी को देखने की इच्छा वहां पूरी की जा रही है। तो यह जो... पर इनको बिगाड़ कर तो रखा ही जा सकता है, इन सबको तो बिगाड़ कर रखा ही जा सकता है।
अभी कल मुझे किसी ने बंबई में एक कार्टून दिखाया, किसी गुजरात के अखबार में निकला होगा। गांधी जी का एक चित्र है और एक बूढ़ी चरखा कात रही है उसकाः दर्शनीय लिखा हुआ है। और मेरा एक चित्र है और दो नंगे लड़के और लड़कियां खड़े हुए हैंः दार्शनिक। मैं यह चाहता हूं कि आदमी नंगे खड़े हो जाएं। अब मजा यह है कि मैं यह चाहता हूं कि आदमी का नंगापन मिट जाए।
और नंगापन पैदा किया है हमारे छिपाने ने। जितना हमने छिपाया, आदमी उतना नंगा हो गया। और कपड़े, हम सोचते हैं कि छिपाने के लिए हैं तो आप बिल्कुल गलती में हैं। अब कपड़े हजारों साल से उघाड़ने के काम में आ रहे हैं। एक नंगी औरत इतनी खूबसूरत कभी नहीं होती, जितनी कपड़ों में बांध कर, खड़ी होकर दिखाई पड़ती है। नंगी औरत से आप घबड़ा जाएंगे, थोड़ी देर में कहेंगे, देवी, कपड़ा पहनो। लेकिन वह जो कपड़े में छिपी औरत है, वह आपकी जिज्ञासा को जगाती चली जाती है, जगाती चली जाती है। कपड़े औरत को पचास परसेंट सौंदर्य तो कपड़े देते हैं। और जितनी समझ बढ़ती जा रही है कपड़े के बाबत, उतनी औरत सुंदर होती चली जा रही है। औरत इतनी सुंदर-वुंदर नहीं है, शरीर में क्या सुंदर जैसा होने वाला बहुत-कुछ है? कपड़े उघाड़ रहे हैं शरीर को, छिपा नहीं रहे हैं। और कपड़े उभार-उभार कर शरीर को बता रहे हैं।
और सारी कपड़ों की टेक्नीक अब जो है, वह यह है कि कपड़ा शरीर को कितना नंगा कर दे। इसकी तरकीब है पूरे कपड़े के साथ। नंगा शरीर इतना नंगा कभी भी नहीं होता, जितना कपड़ों में तरकीब से दिखाया गया शरीर नंगा होता है। क्योंकि कुछ मामले हैं, आदमी की क्युआरिसिटी जगाने के लिए कुछ रास्ते हैं। कुछ दिखाओ और कुछ छिपा लो तो आदमी की क्युआरिसिटी बढ़ जाती है। पूरा दिखा दो तो क्युआरिसिटी खत्म हो जाती है। तो शरीर की अब जो तरकीब चली रही है सारी दुनिया में, वह यह है कि उसको कुछ छिपाओ, कुछ दिखाओ। वह जो कुछ दिखाओ, उससे जो छिपा है, उसको देखने की प्रवृत्ति और...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, वह सब निकलेगा, वह सब निकलेगा। वह निकलेगा ही। क्योंकि शरीर
को हम देखना भी चाहते हैं नंगा और दिखाना भी चाहते हैं। ये दोनों बातें ख्याल रख लेना। वह हमारे स्वभाव का हिस्सा है। हम देखना भी चाहते हैं और दिखाना भी चाहते हैं। और इन दोनों स्वाभाविक इच्छाओं को दबाए हुए हैं, तो फिर हम तरकीब निकालेंगे। अब झूठे स्तन बाजार में बिकते हैं, जिनको स्त्री लगा ले और दिखाई पड़ें वे। आप हैरान होंगे कि यूनान में झूठी पुरुष की जननेंद्रियां भी बिकती हैं, जो वह फुलपैंट के अंदर लगा ले और फुलपैंट के ऊपर उसको दिखाई पड़े कि उसकी जो जननेंद्रिय है वह बहुत बड़ी है।
अब यह इसको मैं नंगापन कहता हूं। यह हद्द पागलपन हो गया है कि आप यह सब-कुछ करें। बजाय इसके... यानी यह तो एकदम पागलपन की बात हो गई। ये जो कपड़े चुस्त होते जा रहे हैं, वह शरीर को दिखाने के लिए हैं कि शरीर दिखना चाहिए भीतर से कि शरीर कैसा है। और कपड़े चुस्त से चुस्त होते चले जा रहे हैं। और उन चुस्त कपड़ों में नंगे शरीर को दिखाने की आकांक्षा तीव्र होती चली जा रही है। देखने की भी इच्छा है, दिखाने की भी आकांक्षा है। और इस सबको जाल में छिपाते हैं और सीधी-साफ बात करना नहीं चाहते हैं। जो कि सीधी और साफ बात, उसको करने में बहुत घबड़ाते हैं।
तो वह कठिनाई तो है, जो मैं कह रहा हूं वह कठिनाई तो है। उसको बिगाड़ कर
भी रखा जा सकता है, उसके खिलाफ भी चलाएंगे। लेकिन मेरी इच्छा है उसको मैं

कहूंगा, जो मुझे ठीक लगता है वह कहना चाहिए। और कुछ लोगों को हिम्मत करनी चाहिए कि वे कहें। शायद समाज धीरे-धीरे सोचने-विचारने को राजी हो, कुछ तो समझ बढ़े।

प्रश्नः अभी जो धर्म के अंदर... हिंदू धर्म है, ईसाई धर्म है, तो एक-दूसरे पर जो अग्रेशन करते हैं, उसके विषय में आपका क्या ख्याल है?

वे तो करेंगे ही। जब तक वाद चलेगा, तब तक वाद अग्रेसिव होगा। क्योंकि वाद के लिए संख्या चाहिए, अनुयायी चाहिए। और वह बाजार है अनुयायियों का। अगर आप दस अनुयायी हैं और तीन संस्था वाले हैं तो तीनों कोशिश करेंगे कि ये ग्राहक किसको मिल जाएं। और ग्राहक के लिए चेष्टा में आक्रमण होगा। दुनिया में जब तक वाद हैं, तब तक आक्रमण जारी रहेगा। अगर वाद ही मिट जाएं तो आक्रमण मिट सकता है। और वाद मिट सकते हैं।
अगर हम एक-एक व्यक्ति को यह समझाने की कोशिश करें कि तुम वाद में मत बंधना तो वाद मिट सकते हैं। हिंदू रहेगा तो मुसलमान पर आक्रमण जारी रहेगा। मुसलमान रहेगा तो हिंदू पर आक्रमण जारी रहेगा। क्योंकि दोनों दुकानदार एक ही बाजार में हैं और ग्राहक सीमित हैं। और उन्हीं को लाना है, ले जाना है। वह जारी रहेगा। अच्छी दुनिया पैदा करनी हो, तो वाद, धर्म, संप्रदाय, सब जाने चाहिए।
और कुछ कठिनाई नहीं है। अगर बीस साल के लिए मुल्क तय कर ले, और स्कूल
और कालेजज में बच्चों के दिमाग से हिंदू-मुसलमान और ईसाई और जैन होने का भाव मिटा दे, तो बीस साल में खतम हो जाए दो हजार साल का पागलपन। उसमें कोई ज्यादा दिक्कत की बात नहीं है। लेकिन वह नहीं होगा, वह तो उधर भी धर्म-शिक्षा देने की चेष्टा चलती है। वहां भी उनको पकड़े रहो अपने जाल में, निकल न जाएं, इसकी कोशिश चलती है। वे तो अग्रेसिव हैं।

प्रश्नः जो चरखा और ग्रामोद्योग वाली बात है, उनके विपक्ष में बोलते हैं। तो व्यक्ति जो आज माली हालत है, ग्राम-समाज में जो गरीबी है, बेकारी है, उस हालत में आप क्या उसका विकल्प सोच सकते हैं?

नहीं, मैं उसका विकल्प नहीं कहता हूं, और न मैं उसके खिलाफ हूं। मेरा कहना है कि अगर ग्रामोद्योग और चरखा चले तो वह हमारी मजबूरी हो, सिद्धांत नहीं। आप मेरी बात समझ रहे हैं न? वह मजबूरी है हमारी। यानी अगर गांव में कोई दवा उपलब्ध नहीं है और आप होमियोपैथी की गोली खाते हैं, तो मैं कहता हूं, यह मजबूरी है आपकी। लेकिन वह एलोपैथी का सब्स्टीट्यूट नहीं है। मेरा मतलब आप समझे न? कोशिश तो हमारी एलोपैथी पैदा करने की होनी चाहिए। नहीं मिलती है तो हम राख भी खा लेते हैं जाकर किसी गुरु की। ठीक है, नहीं मिलने की हालत में ठीक है। भारत की मजबूरी हो अगर चरखा, तो मैं समझता हूं ठीक है। लेकिन सिद्धांत नहीं है वह कि हमको उसके आधार पर इकोनॉमी खड़ी करनी है। वह हमें जानना चाहिए कि इकोनॉमी तो हमें इंडस्ट्री की ही खड़ी करनी है और आज नहीं कल चरखा चला जाए, इसकी कोशिश करनी है। चरखा रह न जाए। यानी हमारी चेष्टा तो यह रहेगी कि चरखा विलीन होता चला जाए। चेष्टा हमारी यह रहेगी कि ग्रामोद्योग न रहे। उद्योग इतना केंद्रित हो, इतना विकसित हो, इतना आटोमैटिक हो, इतना टेक्नालॉजिकल हो कि छोटे-छोटे उद्योग न रह जाएं। चेष्टा हमारी यह होनी चाहिए। मेरा मतलब आप समझे न?
लेकिन मेरी बात को गलत समझा जाता है। मैं यह नहीं कहता कि आप चरखों को
आग लगा दो अभी। चरखे कुछ काम कर रहे हैं, उनको करने दो। लेकिन चरखा मजबूरी है, जैसे बैलगाड़ी मजबूरी है। चेष्टा तो हमारी यह होनी चाहिए कि बैलगाड़ी नहीं बचने देंगे मुल्क में। हमारा लक्ष्य तो यह होना चाहिए कि बैलगाड़ी नहीं बचने देंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि आज बैलगाड़ी जो भी कर रही है उसको हम आग लगा दें। लेकिन ध्यान में रहे कि हमको बैलगाड़ी हटा देनी है। उसकी जगह नये वाहन ले आने हैं।

लेकिन विनोबा और गांधी का मामला मजबूरी का नहीं है। विनोबा और गांधी
को तो बड़ी इंडस्ट्री मजबूरी है। वह मिट जाए, इसकी चेष्टा... । आप मेरा फर्क समझ रहे हैं न? विनोबा और गांधी के लिए जो बड़ी इंडस्ट्री है, वह मजबूरी है। छोटी इंडस्ट्री ही होनी चाहिए।
और धीरे-धीरे बड़ी इंडस्ट्री विकृत हो जाए, टूट जाए, बिखर जाए, विकेंद्रित हो जाए और छोटी इंडस्ट्री आ जाए, अवैज्ञानिक मानता हूं। पांच सौ परिवारों के लिए पांच चौके काफी हो सकते हैं। और पांच केंद्रित चौके कम खर्च के होंगे, ज्यादा सुविधा के होंगे। ज्यादा वैज्ञानिक हुआ जा सकता है। एक डाइटिशियन रखा जा सकता है जो सारी जानकारी रखता हो खाने के बाबत। कम श्रम लगेगा, कम औरतें उलझेंगी वहां। और औरतों को दूसरे काम में लगाया जा सकता है। सारी चीजें जितनी केंद्रित होंगी, उतना कम श्रम लेती हैं, ज्यादा सुविधा लाती हैं, ज्यादा वैज्ञानिक हो जाती हैं। अब हिंदुस्तान भर में कारें बनें, यह बिल्कुल फिजूल बात है। एक नगर को कार बनानी चाहिए; पूरे मुल्क के लिए कार का काम पूरा हो जाता है। उस गांव का शिल्प भी विकसित होगा जब वहां कार बनेगी दस-पांच पीढ़ियों तक, तो वहां के लोग पैदाइश से कार बनाने के शिल्प को लेकर पैदा होंगे। दृष्टि होगी, खोज होगी, बीन होगी। सारे मुल्क में पचास कारखाने खड़े करने की जरूरत नहीं है।
जगत का जो विकास है, वह केंद्रीकरण की तरफ है। और जितनी केंद्रित व्यवस्था होगी उतनी धन उत्पन्न करने वाली व्यवस्था होती है। हिंदुस्तान हमेशा से विकेंद्रित है, इसलिए दरिद्र है। और अगर आगे भी विकेंद्रित रहेगा तो दरिद्र ही रहेगा। क्योंकि धन पैदा होता है केंद्रित टेक्नालॉजी से।
चरखे से धन पैदा नहीं होता, सिर्फ किसी तरह कपड़ा पैदा हो सकता है। किसी तरह से तन ढंक सकते हैं आप। लेकिन चरखा धन पैदा नहीं कर सकता है, यह ध्यान रहे। और तन भी बहुत महंगा है ढंकना। क्योंकि अगर एक आदमी अपने लायक कपड़ा पैदा करना चाहे तो कम से कम चार घंटे रोज उसको चरखा चलाना चाहिए, तब वह अपने लायक कोट, कमीज, पायजामा, चादर, साल भर की पैदा कर पाएगा। चार घंटे आदमी की जिंदगी के सिर्फ कपड़े पहनने के लिए खर्च हो जाएं, यह बहुत महंगा हो गया। आदमी की जिंदगी के साथ खिलवाड़ हो गया। मेरा मतलब आप समझे न? तो मेरा कहना...

प्र्रश्नः आधे घंटे चरखा चला कर एक-एक आदमी अपना पूरा कपड़ा बना सकता है।

पूरा कपड़े का मतलब फिर जरा दूसरा हो जाएगा। फिर गांधी जैसा कपड़ा पहनना पड़ेगा। मेरा आप मतलब समझे न? फिर पूरे कपड़े का मतलब होगा गांधी जैसा कपड़ा। मेरा आप मतलब समझे न? मैं समझ गया आपका, आधा घंटा क्या आदमी बिल्कुल चरखा न चलाए, महावीर जैसा कपड़ा पहन सकता है कि नंगा खड़ा रहे। यह तो हमारे सिकोड़ने का सवाल है।
अगर आदमी को सिकोड़ना है... मैं सिकोड़ने के पक्ष में भी नहीं हूं। मेरा कहना है, आदमी का स्वभाव विस्तार का है और आदमी प्रफुल्ल होता है विस्तार से। सिकोड़ने से कभी प्रफुल्ल नहीं होता। इसलिए साधु-संन्यासी आपको कभी प्रफुल्ल नहीं मालूम पड़ेंगे। हमेशा उदास और रोते हुए मालूम पड़ेंगे। जितना चित्त को आप सिकोड़िएगा, उतने आप उदास होते चले जाएंगे। मैं इसमें गांधी जी से सहमत नहीं, रवींद्रनाथ से सहमत हूं। मैं रवींद्रनाथ से सहमत हूं। रवींद्रनाथ का कहना है कि कपड़ा उतना पहनो जिससे ज्यादा पहना न जा सके। तो कोट पहनेंगे वह तो जमीन छूना चाहिए। रवींद्रनाथ, और मुझे लगता है कि बात ठीक है।
आदमी को विस्तार का मौका देना चाहिए। बड़ा मकान होना चाहिए। छोटा मकान आदमी के दिमाग को भी छोटा करता है। कपड़े भी ढीले और बड़े होने चाहिए। बंधे हुए और छोटे कपड़े आदमी को सिकोड़ते हैं। एफ्लुएंस होना चाहिए आदमी के चारों तरफ, उसे लगे कि सब है। लेकिन भारत की अब तक की दृष्टि जो है, वह है अपरिग्रह की--कम से कम, कम से कम, कम से कम। कम से कम की दृष्टि मुल्क को

दरिद्र बनाती है। मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है कि ज्यादा से ज्यादा की दृष्टि मुल्क को समृद्ध बनाती है। क्योंकि जो दृष्टि होगी, वही हम करेंगे। अगर ज्यादा लाना है मुल्क में तो हम ज्यादा की चेष्टा करेंगे। अगर लाना ही नहीं है तो चेष्टा किसलिए करेंगे?
तो मैं गांधी जी और विनोबा जी की सिकोड़ने की बात के विरोध में हूं। मैं सिकोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। मेरा कहना है, मुल्क फैलना चाहिए। यह मैं जानता हूं कि मुल्क गरीब है। और हमारे कहने से नहीं फैल जाएगा, यह भी मैं जानता हूं। यह भी मैं जानता हूं कि मजबूरी में हमें उन साधनों का भी उपयोग करना पड़ेगा दस-बीस वर्ष। लेकिन ध्यान रहे कि वह हमारी मजबूरी है और उनको मिटा देना है। उनको बचने नहीं देना है। यानी एक मुल्क हमें पैदा करना है जिसमें चरखे की जरूरत नहीं होगी, जिसमें बैलगाड़ी की जरूरत नहीं होगी। यह मेरी दृष्टि है, जो मैं कह रहा हूं।
सिद्धांततः मैं पक्ष में नहीं हूं उनके। मजबूरी की तरह उनको स्वीकार करता हूं, इनकार नहीं करता हूं। और यही फर्क है विनोबा और मेरी दृष्टि में। विनोबा के लिए वह सिद्धांत है। और ऐसा होना चाहिए सारी दुनिया में, यह ख्याल है। और यह भी ख्याल है कि ऐसा होगा तो दुनिया में शांति होगी, यह मेरा ख्याल नहीं है।

प्रश्नः विनोबा यंत्र को तीन प्रकार के मानते हैं। एक है उनका, मारक होता है, एक तारक होता है, एक समझ वाला होता है।

कोई यंत्र न तो मारक होता है, न तारक होता है। आदमी के हाथ में तय होता
है कि क्या होगा। अभी यह पेंसिल से मैं मारक बना सकता हूं, आपकी आंख फोड़ सकता हूं। यह पेंसिल अभी मारक हो जाएगी। मेरा आप मतलब समझे न? कोई यंत्र न तो मारक होता है और न तारक होता है। आदमी की बुद्धि यंत्र का उपयोग करती है। और आदमी मारक हो तो कोई भी यंत्र मारक है--कोई भी यंत्र। आप यह फोन उठा कर किसी की जान ले सकते हैं, खोपड़ी खोल सकते हैं। यह सवाल नहीं है। ये सब जो तरकीबें हैं न, ये यंत्रों से बचाव के लिए सब हिसाब बांधते हैं वे कि इतने यंत्रों से बचो, इतने यंत्रों से बचो। एटम बम भी मारक नहीं है। वह किनके हाथ में है, यह सवाल है।
और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि कोई यंत्र मारक नहीं हो सकता। यंत्र कैसे मारक हो सकता है, जब तक आप नहीं मारोगे? सारे यंत्र साधन हैं। आदमी को हमें बनाने की जरूरत है; आदमी को विकसित करने की जरूरत है। उसकी शांति और प्रेम को बढ़ाने की जरूरत है, कि वह यंत्रों का मारक उपयोग न करे। और नहीं तो संन्यासी भी जो डंडा लेकर चलता है, उससे आपकी खोपड़ी खोल सकता है। यह सवाल नहीं है। यह जो विनोबा जी कहते हैं कि मारक-तारक वगैरह यह सब कुछ मतलब की बातें नहीं हैं बहुत। कुछ कोई मारक-वारक नहीं है।

प्रश्नः यंत्रों में शोषण की शक्ति है।

यंत्र में क्या, शोषण की शक्ति आदमी में है, यंत्र में नहीं है। यंत्र में नहीं है शोषण की शक्ति। यह भी विनोबा और गांधी गलत बातें कहते हैं। किसी यंत्र में शोषण की शक्ति नहीं है। शोषण की शक्ति आदमी मैं है। वह यंत्र अगर समाजवादी समाज हो तो शोषक नहीं होगा, और पूंजीवादी समाज है तो शोषक होगा। तो पूंजीवादी समाज को मिटाना नहीं चाहते हैं, यंत्र को मिटाना चाहते हैं? ये फिर बेईमानी की बातें हैं। अगर यंत्र शोषक है तो उसका मतलब है कि शोषकों के हाथ में है। तो शोषकों के हाथ से तो छीनना नहीं है, उनको तो ट्रस्टी बनाना है और यंत्र को मिटाना है। बड़ी अजीब बातें कर रहे हैं आप! यंत्र रूस में शोषक नहीं है, हिंदुस्तान में शोषक है, तो हिंदुस्तान में यंत्र कोई खास ढंग की चीज हो जाती है? यंत्र शोषक रहेगा, अगर शोषकों के हाथ में है। तो यंत्र शोषकों के हाथ में नहीं रहना चाहिए, समाज के हाथ में रहना चाहिए। मगर गांधी और विनोबा इसके लिए राजी नहीं होते कि यंत्र समाज के हाथ

में आए। वे इसके लिए राजी हैं कि यंत्र ही न रह जाए। यह बड़ी अजीब बात है! यह बड़ी अजीब बात है!

प्रश्नः गांधी और विनोबा का यह कहना है कि जो कोई यंत्र है उसको समाज
का हो, इसीलिए तो हम-आप बात कर रहे हैं कि व्यक्तिगत मालकियत नहीं होनी चाहिए, समाज की मालकियत होनी चाहिए। इसीलिए वे कहते हैं कि आज हमारा यंत्र है। उसमें हमने बहुत... रखी थी तो यह रखा। तो आज एक आदमी अपना कपड़ा...

मेरी आप बात समझे कि नहीं? मेरा कहना यह है कि आदमी के पास जिंदगी बहुत छोटी है और बेवकूफी में गंवाने के लिए नहीं है। मेरा आप मतलब समझे न? कि वह अपनी साबुन भी बनाए, वह अपना जूता भी बनाए, वह अपना कपड़ा भी बनाए, ये पागलपन की बातें हैं। आदमी के पास जिंदगी इतनी थोड़ी है, उस थोड़ी जिंदगी को हमें लंबा करना चाहिए। अगर एक आदमी पचास-साठ साल जीता है तो बीस साल तो सोने में निकल जाते हैं। बीस साल उसके दाढ़ी बनाना और कपड़ा धोना और जूता साफ करना और बाजार जाना इसमें निकल जाते हैं। बीस साल बचते हैं उसमें वह दफ्तर में नौकरी करता है, पत्नी से लड़ता है, मित्रों के साथ ताश खेलता है, इसमें गंवाता है। आदमी के पास वक्त नहीं बचता है कि ऊंची उड़ान ले सके।
आपको पता है कि दुनिया में जो भी समृद्ध घर हैं, या समृद्ध परिवार हैं,
या समृद्ध समाज हैं, उन्होंने ऊंची उड़ान ली है। बुद्ध कोई भिखमंगे के घर में पैदा नहीं होते हैं। और न महावीर भिखमंगे के घर में पैदा होते हैं। ये सारे के सारे करोड़पतियों के घर में पैदा होते हैं, जहां लक्.जरी की पूरी व्यवस्था है। तो मन को उड़ने का मौका है। आप पक्का समझ लीजिए कि अमेरिका में वैज्ञानिक पैदा होगा, विचारक पैदा होगा, वह रूस में पैदा होगा। यहां कहां से पैदा होगा? यहां रोटी खाने की तकलीफ है। समाज एफ्लुएंट होता है तो माइंड ऊपर जाता है। और गांधी-विनोबा की बात आप मान लो तो आदमी जूते की कीले ठोंकता, साबुन बनाता और चरखा चलाता रह जाएगा। इससे ऊपर नहीं जा सकता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरी आप बात समझ रहे हैं न? मेरा कहना यह है कि समाज का जितना उत्पादन है, वह सारा का सारा उत्पादन धीरे-धीरे आटोमैटिक टेक्नालॉजी के हाथ में चला जाना चाहिए।

प्रश्नः जितना यंत्रीकरण बढ़ेगा; इतनी बेकारी, बेरोजगारी बढ़ेगी।

बेकारी बढ़ेगी अगर पूंजीवादी समाज रहेगा। मेरी आप बात समझे न? अगर समाज पूंजीवादी है तो यंत्र के बढ़ने से बेकारी बढ़ेगी। अगर समाज समाजवादी है तो यंत्र के बढ़ने से आदमी को समय की सुविधा बढ़ेगी, बेकारी नहीं बढ़ेगी। जो आदमी आठ घंटे काम करता था, वह छह घंटे करेगा, चार घंटे करेगा, तीन घंटे करेगा। लेकिन अगर पूंजीवादी समाज है, तो यंत्र काम कर देगा, तो दस आदमियों को बेकार कर देंगे, वह अब एक ही आदमी से काम चल जाएगा। अगर समाजवादी समाज है तो जितना काम दस आदमी करते थे, वही दस आदमी अब काम करेंगे, लेकिन कल आठ-आठ घंटे करते थे, अब दो-दो घंटे करेंगे। तो समाज बदलना चाहिए, यंत्र नहीं। यंत्र तो समाज के लिए बड़ा हितकारी है, बड़ा हितकारी है। हमें जो तकलीफ हो रही--जैसे आपका अभी कहीं गुजरात में उपद्रव चलता है कि कोई मिल में अगर लाना है कंप्यूटर और लगाना है, फलां करना है, या इंश्योरेंस वाले लाना चाहते हैं, तो हमको तकलीफ होती है। वह तकलीफ पूंजीवादी समाज की है। कंप्यूटर की नहीं है वह तकलीफ। कंप्यूटर आएगा तो काम हलका हो जाएगा, कम हो जाएगा और आदमी के पास सुविधा बचेगी कि कुछ ज्ञान सीखे, कुछ खोजे, कुछ ध्यान करे, कुछ और करे, कुछ उसको सुविधा हो संगीत ही सीखे।
आप एक बात ध्यान रखिए कि आदमी जो काम भी रोटी कमाने के लिए करता है, वह काम कभी आनंदपूर्ण नहीं हो सकता। चाहे कोई विनोबा समझाएं, दुनिया में कोई भी समझाएं, रोटी कमाने वाला काम कभी भी आनंदपूर्ण नहीं हो सकता। जो काम

आदमी हॉबी की तरह, सुख की तरह करता है, वह आनंदपूर्ण हो सकता है। एक आदमी सितार बजाए खुशी से तो एक बात है, और आप दो घंटे की नौकरी देकर सितार बजवाएं, बिल्कुल बात दूसरी हो गई, बिल्कुल बात दूसरी हो गई। आदमी की जिंदगी में उतना ही आनंद बढ़ता है जितना वह अपनी मौज से कुछ कर सके। और मौज से कर सके इसके लिए जरूरी है कि दुनिया में यांत्रिकता का अधिकतम विस्तार हो।
लेकिन यांत्रिकता खतरनाक सिद्ध होगी पूंजीवाद के लिए। पूंजीवाद में यांत्रिकता बढ़ेगी तो बेकारी बढ़ेगी। बेकारी बढ़ेगी तो क्रांति की संभावना बढ़ती है। और इसीलिए मैं कहता हूं, गांधी-विनोबा की बात पूंजीवाद को बचाने के लिए सबसे कारगर तरकीब है। अगर समाज को पुराने यंत्रों पर ले जाया जा सके तो समाज पूंजीवाद के पीछे लौट जाएगा।
समाजवाद पूंजीवाद के आगे की मंजिल है। पीछे की मंजिल नहीं है वह। जब
तक केंद्रित उद्योग न हो, पूंजीवाद पैदा नहीं होता है। और पूंजीवाद पैदा न हो तो समाजवाद भी नहीं आता। अगर चरखा और यह सब मान लिया जाए, हालांकि कोई मानेगा नहीं, न कोई मानता है, अगर यह मान लिया जाए तो समाज की स्थिति पूंजीवाद से पिछड़ी स्थिति हो जाएगी।
और अगर एक-एक आदमी चरखा कातने लगे, तो जो प्रोलिटेरिएट का, मजदूर का वर्ग है, वह खत्म हो जाएगा। वह तो इसलिए पैदा हुआ है कि एक केंद्रित उद्योग पैदा हुआ है। एक इंडस्ट्री है, तो वहां दस हजार मजदूर इकट्ठे हैं। वह दस हजार मजदूर की ताकत हो गई है इकट्ठी। अगर घर-घर में चरखा हो जाए, तो मजदूर की ताकत खत्म हो जाएगी फौरन, उसका इकट्ठा होना खत्म हो जाएगा। वह कहीं रह नहीं जाएगा। और अगर हम इस तरह सारे उद्योग को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ दें तो पूंजीवाद की जो व्यवस्था है वह पीछे लौट जाती है, सामंतवादी हो जाती है। उस सामंतवादी व्यवस्था से समाजवाद कभी नहीं आ सकता।
तो एक लिहाज से विनोबा से भी ज्यादा बिड़ला समाजवाद के लाने में सहयोगी हैं। अगर समझा जाए ठीक से तो। विनोबा और गांधी से ज्यादा बिड़ला और डालमिया और साहू सहयोगी हैं समाजवाद के लाने में। क्योंकि जितना पूंजीवाद तीव्र होता है, जितना यंत्र बढ़ता है, बेकारी बढ़ती है, नीचे का मजदूर बढ़ता है, उतनी क्रांति होने की संभावना बढ़ती है। और वह क्रांति आएगी ही। क्योंकि या तो यंत्र कम करने पड़ेंगे और या क्रांति लानी पड़ेगी। क्योंकि बढ़ते हुए यंत्र समाज को बदलने के लिए मजबूर कर देते हैं। और आपको एक व्यवस्था लानी पड़ेगी, जिसमें कि यंत्र आदमी को बेकार न कर सके, बल्कि आदमी को समय दे।
तो वह आप ठीक कहते हैं। अभी तो बेकारी बढ़ती है, अभी तो बढ़ती है। लेकिन हमको समाज बदलना चाहिए, यंत्र नहीं रोकना चाहिए। समाज बदलना चाहिए। बीमार को नहीं मार डालना चाहिए, बीमारी बदलनी चाहिए। यह तो बात ठीक है कि बीमार मर जाए तो बीमारी अपने आप खतम हो जाती है। यह बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन इससे बीमार को मार डालने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। यंत्र को नहीं मार डालना है। यंत्र के कारण जो बीमारी पैदा हो रही है, वह यंत्र के कारण नहीं हो रही, वह पूंजीवाद की वजह से पैदा हो रही है। यानी संक्षिप्त मैं यह कहना चाहता हूं कि यंत्र न तो खराब है, न मारक है, न विध्वंसक है। यंत्र का हम कैसा उपयोग करें और कैसा समाज हो, इस पर निर्भर करेगा सब कुछ। यंत्र तो बढ़ते जाना चाहिए, समाज को बदलना चाहिए। समाज को बदलने से जो डरते हैं, वे कहेंगे कि यंत्र को ही मत लाओ बीच में। क्योंकि वह आएगा तो बदलाहट आनी जरूरी हो जाएगी।

देख कबीरा रोया
बारहवां प्रवचन

समाजवाद का पहला कदमः पूंजीवाद

जैसे ही समाज में सुविधा बढ़ती है, सुख बढ़ता है, धन बढ़ता है, वैसे ही परेशानी बढ़ती है। जब आप भी सुखी थे तो आपमें भी परेशान आदमी पैदा हुआ है। हरे राम जो आप भज रहे थे, वह आपके सुखी समाज ने पैदा किया था, वह गरीब आदमी ने पैदा नहीं किया था। वह बुद्ध या महावीर जैसे अमीर घर के बेटे जाकर हरे राम कर रहे थे। एक गरीब आदमी इतना परेशान है कि और परेशान होने का उसे उपाय नहीं है। इसलिए यह जो आप सोचते हैं, एस्केपिज्म नहीं है, यह सुविधा है जो कि आपको... होता क्या है, कठिनाई क्या है, मुझे एक तकलीफ है, मुझे खाना नहीं मिल रहा, तो मेरा चौबीस घंटा तो खाना जुटाने में व्यतीत होता है। मुझे रहने को मकान नहीं है, तो मैं उसमें परेशान हूं, और मेरे सारे सपने इसके होते हैं कि मुझे खाना कैसे मिल जाए, मकान कैसे मिल जाए, कपड़ा कैसे मिल जाए, एक औरत कैसे मिल जाए?
जब मुझे यह सब मिल जाता है, तब असली परेशानी शुरू होती है कि अब क्या? क्योंकि जब तक यह नहीं मिला है तब तक तो आशा रहती है कि एक अच्छी औरत मिलेगी, एक अच्छा मकान मिलेगा, एक कार होगी, तो सब स्वर्ग हो जाएगा। जब सब मिल जाता है तब पहली दफे सवाल उठता है कि अब क्या? अब मिलने को कुछ भी नहीं, अब क्या करेगा? सारी कठिनाइयां तब शुरू होती हैं--अगर भगवान आपकी सारी इच्छाएं पूरी कर दे तो आप फौरन स्युसाइड कर लेंगे। और कोई उपाय नहीं रह जाएगा। आत्महत्या जो है वह पूरी इच्छा हो जाने के बाद की इच्छा है। फिर करिएगा क्या? फिर करने को कुछ भी नहीं बचता है। तो जहां-जहां समाज एफ्लुएंट होगा, वहां-वहां तकलीफ शुरू होगी।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि एफ्लुएंट समाज न हो। इसका मतलब यह है
कि एफ्लुएंट समाज नई तरह की तकलीफें पैदा करेगा। उसमें थोड़ा वक्त लग जाता है और वह जो बीच का गैप है वह तकलीफ का गैप होता है। और तकलीफों के भी स्तर होते हैं। एक गरीब आदमी की तकलीफ है, एक अमीर आदमी की तकलीफ है। अगर दोनों में से चुनना हो, तो मैं कहूंगा, अमीर आदमी की तकलीफ चुननी चाहिए। गरीब आदमी की तकलीफ कभी नहीं चुननी चाहिए। एक गरीब आदमी की अनैतिकता है, एक अमीर आदमी की अनैतिकता है। अगर चुनाव करना हो तो मैं अमीर आदमी की इम्मॉरेलिटी को चुनना पसंद करूंगा। आप जो कह रहे हैं मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। आप कहते हैं, हमारा आदमी बड़ा अच्छा है। हमारा आदमी बड़ा अच्छा है, वह गरीबी की वजह से है, और गरीबी की वजह से बड़ा अच्छा होना इतना बुरा होना है जिसका कोई हिसाब नहीं। आप मेरा मतलब समझे न?
आपको सारी सुविधा हो और आप अच्छे आदमी हों, तब तो कुछ समझ में आता है। यानी मेरी छाती पर एक बंदूक लगी हो और मैं चोरी न करूं, तब मेरी नैतिकता का कोई मतलब नहीं है। मेरी छाती पर बंदूक भी नहीं है और मैं चोरी नहीं करता, तब कुछ मतलब है। आपके, जिसको आप अच्छा आदमी कह रहे हैं, उसको बुरा होने का उपाय कहां हैं? बुरा होने के लिए सुविधा चाहिए। बुरा होने का उपाय नहीं है। आप सिर्फ उपाय से रोके हुए हैं। मैं नहीं मानता हूं कि यह कुछ बहुत अच्छी बात है। और फिर दूसरी बात यह है कि जब बेचैनी बढ़ती है, तो नई दिशाओं में खोज शुरू होती है।
जिस दिन हम सारी दुनिया में आदमी की सब सामान्य तकलीफों को दूर कर देंगे उस दिन हम बड़ी-बड़ी नई तकलीफों की ईजाद करेंगे, और वे नई तकलीफें हमें नई दिशाओं में खोज में ले जाएंगी। चांद पर ले जाएंगी, तारों पर ले जाएंगी, नये संगीत में ले जाएंगी, नये केमिकल्स और नये ड्रग्स में ले जाएंगी। धर्म, और फिलासफी, और पोएट्री, और पेंटिंग सब में ले जाएंगी। वह सब सुविधा संपन्न आदमी की तकलीफें हैं जो अपने हाथ से वह पैदा कर रहा है।
लेकिन बड़े मजे की बात है, जो तकलीफ हमारे सिर पर आती है, वह बहुत दुखद होती है। जो हम पैदा करते हैं, वह फिर भी सुखद है। वह हमारी च्वाइस है। अब एक आदमी है जिसको कुछ करने को नहीं। वह पेंट कर रहा है। हो सकता है पेंट करने में वह उतनी मेहनत कर रहा है जितना कि मजदूर सड़क पर गड्ढा खोदने में न

कर रहा हो। वह मजदूर कभी-कभी मौका देख कर आराम भी करता है, कोई नहीं देखने वाला होता है तो सुस्ताता भी है। यह आदमी दिन-रात लगा हुआ है। इसको कोई नहीं कह रहा है कि तुम यह करो, लेकिन यह इसका अपना चुनाव है। और मैं मानता हूं कि सबसे अच्छा समाज वह है, जहां तकलीफें भी हमारे चुनाव से हम चुनते हों, जो हमारे ऊपर से न आती हों, हमारे ऊपर न गिर पड़ती हों। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर मुझे कोई जबरदस्ती सुख भी दे दे तो भी दुख हो जाएगा। और अगर मैं अपनी मौज से दुख को भी चुन लूं तो वह सुख हो जाएगा। बहुत गहरे में मेरी च्वाइस असली चीज है।
आज अमरीका में आपको जो दिखाई पड़ता है... अगर आज एक अमरीकी लड़का सड़क पर खड़े होकर और हिप्पी होकर, बीटल होकर भीख मांग रहा है, यह उसकी च्वाइस है। अगर हम भीख मांग रहे हैं, हमारी मजबूरी है। इन दोनों में इतना फर्क है कि इन दोनों को कभी आप एक साथ मत तुलना करना, ये एक चीजें नहीं हैं। ये बिल्कुल एक चीजें नहीं हैं। अगर बुद्ध, एक राजा के लड़के को शौक आ जाता है और वह सड़क पर भीख मांगने लगता है तो यह उसकी मौज है। लेकिन एक गरीब का लड़का जब सड़क पर भीख मांगता है तो यह मौज नहीं है। इसलिए गरीब का लड़का जब भीख मांगेगा तो उसके चेहरे पर वह चमक नहीं हो सकती जो बुद्ध के चेहरे पर है। क्योंकि दोनों भीख मांग रहे हैं। और गरीब का लड़का सदा धोखे में पड़ेगा कि बुद्ध के चेहरे पर जो चमक है वह मेरे चेहरे पर क्यों नहीं आती? वह आ नहीं सकती।
बुद्ध ने तकलीफ को भी चुना है। यह कोई मजबूरी न थी, यह कोई जबरदस्ती न थी। मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? मेरा कहना यह है कि वह जिसको हम अपने मुल्क की गरीबी, और सदाचार, और बड़ा अच्छा आदमी, और... ये सब झूठी बातें हैं। और हम नाहक अपने को धोखा देने की कोशिश करते हैं और हमने बहुत सालों तक, हजारों साल तक यह धोखा दिया है, और यह धोखा हम अभी भी जारी रखना चाहते हैं। यह धोखा जारी नहीं रखना चाहिए। मैं नहीं कहता, किसी आदमी को गरीब होने का शौक है, वह हो, लेकिन वह भी उसका चुनाव होना चाहिए। यानी अगर मुझे एक झोपड़े में रहना है, तो मुझे रोकना नहीं चाहिए किसी को, मैं झोपड़े में रहूं। लेकिन यह मेरा चुनाव होना चाहिए। झोपड़े में मुझे रहना न पड़े। तब मजबूरियां शुरू हो जाती हैं, तकलीफ शुरू हो जाती है।
इस दफा पहली दफा ऐसा हुआ है अमेरिका जैसे मुल्कों में, पहली दफा समृद्ध समाज पैदा हुआ है। इसलिए जो तकलीफें कभी-कभी कुछ लोगों को अनुभव हुई थीं, वह पूरे समाज को अनुभव हो रही हैं। यह बिल्कुल ही फेनामिनल है। इसकी हमें कल्पना भी नहीं थी कि यह जो हो रहा है यह बहुत नया मौका है दुनिया में। इसलिए उनको भी समझ में नहीं पड़ रहा कि क्या करें? और आज जो सुनते हैं कि उनका जो भारी रस है आपके संन्यासी में, सूडो संन्यासी में भी रस है, उसका कुल कारण इतना है कि वह अनुभूति के, सुख के नये रास्ते खोजने में संलग्न है। और वह एल.एसड़ी. से कह रहा है कि इससे मिलेगा, मैस्कलीन से, तो इससे मिलेगा। कोई कह रहा है ध्यान करने से, तो वह इस पर भी प्रयोग करने को राजी है।
असल में पुराने सब दुख खतम हो गए हैं। अब नया दुख पैदा करना जरूरी है, नहीं तो एवोल्यूशन रुक जाती है। और पुराने सब सुख मिट गए हैं। अब वह नये सुख खोजने बहुत ज्यादा जरूरी हैं। वह नये सुखों की खोज है। और मैं मानता हूं कि एक बड़ी क्रांति करीब है वहां, जो कई तरह के नये सुख ला देगी, कई तरह के नये सुख जो आदमी ने कभी नहीं जाने। अब जैसे एल.एसड़ी. का सुख भी बहुत नये तरह का सुख है, जो आदमी को ठीक उसकी पहचान कभी भी न थी। और बहुत बड़ी संभावना है, बिल्कुल एक केमिकल्स रेवोल्यूशन हो जाने की। और कुछ न कुछ करना पड़ेगा, नहीं तो आदमी करेगा क्या? आदमी खाली नहीं बैठ सकता, उसको कुछ चाहिए करने को। हरि भजन करेगा, ध्यान सीखेगा।
और मेरा मानना है, जब तक गरीब आदमी हरि भजन करता है, तब वह हरि भजन भला करता हो, मन में उसके रुपया ही होता है। और वह मंदिर में जाकर भी जो झांझ-मजीरा पीटता है, तो वह पीटता इसीलिए कि मेरे लड़के को नौकरी मिल जाए, मेरी पत्नी की बीमारी ठीक हो जाए। मेरे घर में पैसा नहीं, पैसा कैसे मिल जाए?

मैं ट्रेन में जाता हूं, इधर मुझे सब मित्र छोड़ने जाते हैं, तो वे जो हमारे ए.सी. कोच के जो सरवेंट होते हैं, वे समझते हैं कि जरूर मेरे आशीर्वाद से कुछ हो सकता है। इधर से आप मुझे छोड़ते हैं, उधर वे मुझे पकड़ लेते हैं। कुछ न कुछ जरूर आपके पास होना चाहिए, इधर लोग क्यों आपको छोड़ने आए। बंबई में तो भला जब तक कोई लाटरी का नंबर न बताता हो... आपको क्यों छोड़ने आए? एक नंबर एक दफा बता दीजिए। और आप जिस भगवान की पूजा के लिए कहें, वह हम करने को राजी हैं। अब इस आदमी को क्या मतलब है हरि भजन से?
हरि भजन जो है वह लास्ट लक्जरी है जो आदमी कर सकता है, यानी ऐसा आदमी जिसको करने को कुछ भी नहीं रहा। अब बैठ कर झांझ-मजीरा पीट सकता है, सिर हिला सकता है, गीत गा सकता है, कोई तकलीफ नहीं है। इनमें बहुत बुनियादी फर्क है। जब एक आदमी को कुछ भी करने को नहीं है, तब वह परमात्मा से एक तरह का संबंध जोड़ सकता है, जो गरीब आदमी कभी भी नहीं जोड़ सकता है। बीच में उसकी गरीबी खड़ी ही रहेगी। और अगर वह परमात्मा भी उसे मिल जाएगा तो वह उससे कहेगा कि एक पांच रुपये का नोट मुझे दे दीजिए। तो करेगा क्या? परमात्मा का भी क्या करेगा आखिर? आखिर करेगा क्या?
तो मैं मानता हूं कि गरीब आदमी धार्मिक हो ही नहीं सकता। वह जो रिलीजस होना है, वह बहुत समृद्ध चित्त की संभावना है। गरीब आदमी की संभावना नहीं है। गरीब आदमी रिलीजस नहीं हो सकता है। रिलीजस का मेरा मतलब यह कि जिंदगी जहां काम नहीं रह जाती और खेल हो जाती है, एक लीला हो जाती है। लीला हमारा शब्द है न! हम कहते हैं, रामलीला या कृष्णलीला।
लीला का मतलब यह है कि जहां जिंदगी खेल हो गई है। अब जहां जिंदगी कोई काम नहीं है, अब जहां जिंदगी एक आनंद हो गई है। जहां जिंदगी का कोई साध्य नहीं है पाने को, जहां होना ही आनंद है। तो रिलीजस माइंड ऐसा आदमी, जो जहां है, वहां आनंद में है। अगर वह पानी पी रहा है तो पानी पीना आनंद है और नाच रहा है तो नाचना आनंद है। ये किसी चीज के मीन्स नहीं हैं। आगे कोई एण्ड नहीं है, जिसको पाना है उसे, परमात्मा भी नहीं पाना है उसे। और जब कोई आदमी इस भांति जीने लगे कि उसका एक-एक क्षण आनंद हो जाए। और वह तभी तो सकता है, जब मीन्स न रहें। जो कुछ भी, सभी एण्ड्स हो जाएं। तो रिलीजस माइंड मैं उस आदमी को कहता हूं, जिसकी पूरी जिंदगी एक खेल हो गई है, जस्ट ए प्ले। लेकिन यह गरीब आदमी की नहीं हो सकती, यह बनाना बहुत मुश्किल है। इसलिए मैं मानता हूं...

प्रश्नः आर यू श्योर दिज जर्नलाइजेशन इ.ज कैन बी ट्रू? आई एग्री विथ
यू बेसिकली, आई एग्री वॉट बर्नार्ड शॉ से दैट पावर्टि इ.ज ए क्राइम। ही वेंट टू दिस एक्सटेंट ऑफ सेइंग दिस। बिकाज ही एक्सपीरिएंसड दिस पावर्टि। बट एट द सेमटाइम यू राइटली से--महावीर एण्ड गौतम दे कम फ्रॉम वेरी हाइली अपवर्ड स्टफ। बट एट द सेमटाइम... एक्सेप्टेड रिलीजिअस लीडर एण्ड सेंट्स दे कम आलसो फ्रॉम दि पुअर...

मैं आपकी बात समझा। एक व्यक्ति के संबंध में यह संभव है। समाज के संबंध में संभव नहीं है। जो मैं कह रहा हूं, वह समाज के लिए कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि हमें सभी लोगों को संगीत सिखाना पड़ेगा, तब वे संगीत सीखेंगे। आप कहते हैं, एक ऐसा आदमी भी है जिसने कभी नहीं सीखा है, लेकिन कुछ भी बजा कर संगीत पैदा कर लेता है। उसको मैं स्वीकार करता हूं। लेकिन वह इंडिविजुअल एक्सेप्शन है। सोसाइटी उसको मान कर नहीं चल सकती। मैं मानता हूं कि एक राममूर्ति जैसा आदमी हो सकता है, लेकिन अगर किसी दूसरे व्यक्ति को होना है तो हमें...

प्रश्नः लेकिन आचार्य श्री, ये तो परस्पर विरोधी हैं। आप यह भी मानते हैं कि जैसे-जैसे समृद्धि बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे दुख बढ़ता जाएगा। और आपका यह भी मानना है कि गरीबी भी एक दुख की अवस्था है। और ये दोनों बातें अब परस्पर विरोधी हो गई हैं।

हां, ये लग सकती हैं। गरीबी जो है वह दुख नहीं है, कष्ट है। और मैं इन दोनों में थोड़ा फर्क करता हूं। गरीबी कष्ट की अवस्था है, दुख की नहीं, अभाव की। पेट में रोटी नहीं है, शरीर पर कपड़ा नहीं है, दवा चाहिए, दवा नहीं है। गरीबी अभाव की अवस्था है, दुख की नहीं, कष्ट की। कष्ट जो है बिल्कुल फिजिकल बात है और दुख बिल्कुल ही साइकोलॉजिकल बात है। जब कष्ट हमारे खतम हो जाते हैं, तब दुख शुरू होता है। एक आदमी दुखी हो सकता है, कष्ट उसे बिल्कुल नहीं है। उसके पास मकान अच्छा है, खाना अच्छा है, कपड़ा अच्छा है, सब है उसके पास, और दुखी है। और वह कहता है, मैं बहुत परेशान हूं।
गरीबी को मैं मानता हूंः कष्ट की अवस्था। अमीरी को मैं मानता हूंः दुख की अवस्था। और दुख की अवस्था को मैं कष्ट की अवस्था से श्रेष्ठ मानता हूं, क्योंकि वह ज्यादा भीतरी दुख है। जिस तल पर हमारा दुख होता है, उसी तल पर हम सुख भी पा सकते हैं। अगर गरीब को कोई सुख मिलेगा, तो वह सुख नहीं सुविधा है। जैसे उसको भूख लगी है, भूख में तकलीफ हो गई। आपने उसको रोटी दे दी, तो रोटी से कोई सुख नहीं मिलने वाला है, सिर्फ दुख मिट जाने वाला है। सुविधा मिलेगी। लेकिन अगर दुख है आपके भीतर और वह दुख हल हो जाए, तो आपको सुख मिलेगा।
जितने ऊंचे तल पर हमारा दुख होगा उतने ही ऊंचे तल पर हमारे सुख की संभावना भी खुलती है। गरीबी को मैं मानता हूं कि वह कष्ट है, और कष्ट में किसी भी आदमी का होना क्राइम तो है। हम सब भी जिम्मेवार हो जाते हैं उसके। हां, दुख में किसी आदमी का होना उसकी बिल्कुल निजी बात है। इसलिए दुख के लिए, मैं आपके दुख के लिए मैं जिम्मेवार नहीं रह जाता। आपके कष्ट के लिए मैं जिम्मेवार हो सकता हूं। तो समाज को ऐसी व्यवस्था तो करनी चाहिए कि वहां कष्ट में कोई न रह जाए। लेकिन समाज ऐसी व्यवस्था कभी भी नहीं कर सकता है कि दुख में कोई न रह जाए। क्योंकि दुख बिल्कुल आपकी व्यक्तिगत और निजी बात है। और उसके लिए समाज कुछ भी नहीं कर सकता है। आपको कुछ करना पड़ेगा। और इसमें विरोध नहीं है। विरोध इसलिए है कि वह हम दुख और कष्ट को एक समझ लेते हैं। यानी मेरी अपनी समझ यह है कि मुझे दुख का अनुभव ही तब होता है, जब कष्ट समाप्त हो जाएं।
समझ लीजिए कि मैं यहां बैठा हूं और यह आवाज आ रही है, बिजली की आवाज आ रही है और मेरे पैर में भारी दर्द है, तो मुझे यह आवाज सुनाई पड़ने वाली नहीं है। और मेरे पैर का दर्द ठीक हो गया, तो मुझे यह आवाज सुनाई पड़नी शुरू हो जाएगी। हमारे जो दुख हैं उनको अनुभव करना भी एक ऊंचाई की बात है।
अब जैसे बुद्ध को यह लगता है कि जीवन का क्या अर्थ है? यह हमेशा भरे पेट आदमी को सवाल उठता है। यह खाली पेट आदमी को सवाल नहीं उठता कि जीवन का क्या अर्थ है? उसे सवाल उठता है कि रोटी कहां है? लाइफ के मीनिंगफुल होने, नहीं मीनिंगफुल होने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि लाइफ के बचाने का सवाल है। जब लाइफ बच जाएगी तब हम पूछेंगे कि मीनिंग क्या है? अभी तो मेरी लाइफ का अगर बचाने का सवाल हो, तो मैं यह पूछने नहीं जाता। किसी गरीब ने कभी नहीं पूछा कि जीवन का अर्थ क्या है? गरीब आदमी पूछता है कि रोटी कहां है? कपड़ा कहां है? मकान कहां है? हां, जब ये सब मिल जाएंगे, जब सब मिल जाएंगे तब वह पूछेगा कि जीवन का क्या अर्थ है? क्योंकि हमारे जिंदगी के भी तल हैं और इसलिए मैं मानता हूं कि गरीब तो इस पृथ्वी पर नहीं रह जाना चाहिए।

प्रश्नः कष्ट की परिभाषा क्या है आचार्य श्री? तुलनात्मक नहीं चाहिए मुझे...

मैं समझा, मैं समझा आपकी बात। कष्ट का मतलब है, अभाव। जो चीजें जरूरी हैं आदमी के लिए--जैसे भोजन है, कपड़ा है, छाया है, जरूरी चीजें हैं, जिनके बिना जिंदगी सरवाइव नहीं करेगी। यानी ऐसा समझ लीजिए कि उस सीमा तक मैं कष्ट कहूंगा, जब तक आप लाइफ का मीनिंग नहीं पूछते हैं। मेरा मतलब यानी जब तक आप यह नहीं पूछने आ जाते हैं कि जिंदगी का मतलब क्या है? तब तक मैं कहूंगा, आप कष्ट में हैं। और जैसे ही आपको खाना, कपड़ा, रहना, सारी सुविधा मिल गई, आप पूछने ही वाले हैं कि जिंदगी का मतलब क्या है? जिंदगी का अर्थ

क्या है? क्या है, हम किसलिए जीएं? जब तक आप पूछते हैं हम कैसे जीएं, तब तक मैं कहूंगा, आप कष्ट में हैं। जिस दिन आप पूछने लगें कि हम कैसे जीएं? अब जीना तो हमें मिल गया है, लेकिन अब कैसे जीएं? बड़ी तकलीफ हो गई, जीने से मिलेगा क्या? होगा क्या? तब मैं कहूंगा कि आप कष्ट के बाहर आए और दुख की दुनिया शुरू हुई। दुख के भी बाहर जाया जा सकता है। दुख के भी बाहर...
जो मैंने कहा न सुरेश जी कि रिलीजस आदमी मैं उसको कहता हूं जो दुख के
भी बाहर गया। अमीर आदमी उसको कहता हूं जो कष्ट के बाहर गया। और धार्मिक आदमी उसको कहता हूं जो दुख के भी बाहर गया। लेकिन दुख के बाहर जाने के लिए दुख में होना तो पहली शर्त है। हां, इसलिए गरीब आदमी दुख के बाहर नहीं जा सकता। वह अभी दुख में ही नहीं आया। दुख के रेल्म से भी गुजरना जरूरी है, वह भी एक सफरिंग है अनिवार्य, जिससे हमारी मैच्योरिटी आती है। अब आज तो यह संभावना हो गई है कि अब दुनिया में कोई आदमी कष्ट में न रहे। पहले तो यह संभव नहीं था। आज यह संभव है।
आज अब इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई कि आदमी कष्ट में न रहे। इसका अब उपाय हो सकता है। और मैं मानता हूं कि दुख में होना बड़ी भारी घटना है। हर आदमी को दुख से गुजरना ही चाहिए, क्योंकि तभी वह दुख के पार जा सकेगा, नहीं तो बियांड जाएगा कैसे? उसे दुख से गुजरना चाहिए। उसे जिंदगी के सारे गहरे सवाल उठने चाहिए, जिनका कोई उत्तर नहीं है। उसे ऐसे जिंदगी के सवाल उठने ही चाहिए जो कि कुछ भी मिलने से पूरे नहीं होंगे। उसे किसी ट्रांसफार्मेशन से गुजरना पड़ेगा, इसलिए वह रिलीजस हो पाएगा।
यानी मैं यह मानता हूं कि गरीब समाज धर्म का ढोंग कर सकता है, धार्मिक
हो नहीं सकता। अमीर समाज में ही धर्म के होने की संभावना खुलती है। लेकिन यह जब मैं कह रहा हूं तो समाज को ध्यान में रख कर कह रहा हूं। एकाध व्यक्ति के लिए नहीं कह रहा हूं। इतने ज्यादा सेंसिटिव लोग हो सकते हैं कि दूसरे आदमी को अमीर देख कर भी उनके लिए अमीरी बेकार हो जाए, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। यह व्यक्ति के लिए संभव है। यह व्यक्ति के लिए संभव है कि मैं आपकी अमीरी देख कर ही अमीरी के चक्कर के बाहर जो जाऊं। क्योंकि मैं पाऊं कि आदमी तो दुख में ही है। मगर इतना संवेदनशील होना बहुत मुश्किल बात है। इसलिए कभी-कभी घटना घटती है, कभी-कभी घटना घटती है। और जिनको आप कहते हैं कि आमतौर से माने हुए हमारे जो रिलीजस सेंट्स हैं, उसमें सौ में से नब्बे तो माने हुए ही हैं।

प्रश्नः असल में नहीं है।

नहीं, असल में नहीं है। क्योंकि हमारे मानने की भी हमने मापदंड ईजाद किए हुए हैं।
एक गरीब समाज है--तो गरीब समाज उस आदमी को आदर देना शुरू कर देता है, जो अपने हाथ से अपने ऊपर कष्ट ले। उसको गरीब समाज आदर देगा। क्योंकि गरीब आदमी के लिए जो सबसे बड़ी कठिन चीज है, वह कष्ट को झेलना है। अगर कोई भी आदमी अपने आप कष्ट झेलने लगे, तो गरीब समाज उसको बहुत आदर देगा। अगर कोई आदमी पैदल चलने लगे, तो वह उसको महात्मा कहेगा। कोई आदमी भूखा रहने लगे, उपवास करने लगे, तो वह उसके पैर छुएगा। कोई आदमी नंगा खड़ा हो जाए तो वह कहेगा, यह परम ज्ञानी है।
उसका कारण कुल इतना है कि जो चीजें वह नहीं सह पा रहा है और बड़ी तकलीफ
दे रही हैं, उस आदमी को यह आदमी सहज स्वीकार कर रहा है। इस तरह के जो लोग हैं, जो अपने को कष्ट देने की चेष्टा में लगे हुए हैं, मैं मानता हूं, पैथालॉजिकल हैं।
मनुष्य अगर ठीक से स्वस्थ हो तो न अपने को कष्ट देना चाहेगा, न दूसरे
को कष्ट देना चाहेगा। और अगर आदमी के दिमाग में कुछ बीमारी हो, तो दो ही रास्ते हैं उसके--या तो वह दूसरों को तकलीफ दे या खुद को तकलीफ दे। पैथालॉजिकल है वह आदमी। तो उसके दो ही रास्ते हैं, या तो वह किसी को सताने की कोशिश करेगा, या तो वह हिटलर जैसा हो जाए, या गांधी जैसा हो जाए। ये दोनों ही मेरे हिसाब से एक ही तरह के लोग हैं।

प्रश्नः यानी कोई आदमी... है दुनिया में?

जरूर है, जरूर है, बिल्कुल ही जरूर है और उसी को मैं मैच्योर कहूंगा।
जो आदमी न किसी दूसरे को तकलीफ देने की कोशिश में लगा है, न अपने को तकलीफ देने की कोशिश मैं लगा है। लेकिन इस तरह के आदमी को आपको पहचानना मुश्किल हो जाता। पहचानना इसलिए मुश्किल हो जाता, हम दो तरह के आदमी पहचान लेते हैं। हम पहचान लेते हैं कि यह आदमी दूसरे को सता रहा है, तो भी हम पहचान लेते हैं कि बुरा आदमी है। और इसी बुरे आदमी से हमने एक परिभाषा निकाली है कि जो अपने को सता रहा है, वह अच्छा आदमी है।
लेकिन जो सता रहा है, वह मेरी दृष्टि में बुरा आदमी है, चाहे वह किसी
को सता रहा हो, चाहे अपने को, चाहे दूसरे को।

प्रश्नः बट यू विल एग्री दैट बोथ द एक्सपीरिएंस कैन बी साइमलटेनियस, नेमलि ऑफ सफरिंग एण्ड... इट इ.ज नॉट नेसेसरी दैट सफरिंग मस्ट बी ओवर विफोर दैट डिवाइन डिसकंटेंट। कैन बी ए साइमलटेनियस प्रोसेस।

साइमलटेनियस ही होगी। असल में जिंदगी में सब प्रोसेस साइमलटेनियस है। बातचीत में हमें उनको टुकड़ों में तोड़ लेना पड़ता है। जिंदगी में सब प्रोसेस साइमलटेनियस है। जब आप जवान हो रहे हैं, तब आप बूढ़े भी हो रहे हैं, साइमलटेनियसली। आप सिर्फ जवान नहीं हो रहे हैं, साथ में बूढ़े भी हो रहे हो रहे हैं। और जब आप जिंदा हैं, तब आप मर भी रहे हैं, साइमलटेनियसली। यहां जिंदगी जो है वह तो साइमलटेनिटी है। वहां तो सब चीजें एक साथ हो रही हैं। और इसलिए जब हम बातचीत करते हैं, बातचीत साइमलटेनियस नहीं हो सकती। उसमें हमें टुकड़े तोड़ लेने पड़ते हैं। जब हम एक आदमी से कहते हैं, यह जिंदा है, तो एक मतलब होता है। जब हम कहते हैं, फलां आदमी मर गया है, तो दूसरा मतलब होता है। हालांकि ये दोनों घटनाएं एक साथ ही घट रही हैं।
यह जो पैथालॉजिकल माइंड है, या तो किसी को सता रहा है, या खुद को सता रहा है। अब तक हमने पूरे इतिहास में इसी तरह के लोग पैदा किए हैं बड़ी संख्या में--दूसरे को सताने वाले लोग पैदा किए हैं और खुद को सताने वाले लोग पैदा किए हैं। दूसरे को सताने वाले को हम गालियां दे रहे हैं, बुरा कह रहे हैं। अपने को सताने वाले को हम भला कर रहे हैं।
वह जो सौ में से नब्बे हमारे जो महात्मा हैं, वे इस तरह के बीमार लोग हैं। असल में इतना कष्ट रहा है समाज में कि हम किसी महात्मा को भी सुखी नहीं देख सकते। महात्माओं को हम हंसने नहीं देते। हंसना बड़ा जुल्म हो जाए। अब जीसस के बाबत ईसाई कहते हैं, ही नेवर लाफ्ड, हंसे ही नहीं कभी। और मैं मानता हूं कि अगर जीसस नहीं हंस सकते तो कौन हंसेगा? यानी जीसस को हंसना चाहिए, जरूर हंसते होंगे। लेकिन ईसाई नहीं हंसने देंगे। अगर महावीर हंसते हुए मिल जाएं, तो जैन नाराज हो जाएंगे। वे कहेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गई। हमारा तीर्थंकर कुछ बिगड़ गया, कुछ गलत सोहबत में पड़ गया। बिल्कुल असंभव है यह कि हम महावीर को हंसता हुआ सोचें। हमें कठिन हो जाएगा। इतने कष्ट में समाज गुजरा है कि हम एक तरह से सफरिंग की पूजा कर रहे हैं। जीसस की हम पूजा कर रहे हैं सूली पर लटका कर! वह हमारे मन में जो कष्ट इतना भारी है कि उसने पूजा की जगह ले ली, वह वर्शिपिंग सेंटर बन गया है। और इसे किसी तरह तोड़ना पड़ेगा। किसी तरह हमें दुख की जगह सुख को केंद्र पर लाना जरूरी है।

प्रश्नः शायद कष्ट से सुख में आना या दुख में जाना, मेरे ख्याल से आसान है, लेकिन दुख से सुख में आना शायद अधिक कष्टकर है?

नहीं-नहीं, सोमानी जी, बात बहुत उलटी है। कष्ट से दुख में जाना या कष्ट
से सुख में जाना बहुत कठिन है, क्योंकि आप अकेले पर निर्भर नहीं करता है, पूरी समाज की व्यवस्था पर निर्भर करता है, पूरे ढांचे पर निर्भर करता है।

प्रश्नः आज के समाज में भी?

हां, हर हालत में, हर समाज में। धीरे-धीरे कम होता जाएगा, लेकिन हर समाज में अब तक यह हालत रही है कि आपको अगर धनी होना है तो यह बड़ा संघर्ष है। जिस संघर्ष में दूसरे पर भी ध्यान रखना जरूरी है। अगर आपको एक बड़ा मकान बनाना है, तो आपके चारों तरफ जो छोटे मकान हैं उनको गिराना पड़े, या न गिराना पड़े, तो उनसे रक्षा का इंतजाम करना पड़े, पुलिस वाले बीच में खड़े करने पड़ें, हुकूमत ऐसी बनानी पड़े कि वह आपके मकान में न घुस आएं, सारा इंतजाम करना पड़ेगा।
मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि कठिन है कष्ट से सुख में जाना, क्योंकि कष्ट से सुख में जाने में दूसरे भी इनवाल्व हैं। लेकिन दुख से आनंद में जाना बहुत सरल है क्योंकि वह बेसिकली इंडिविजुअल अफेयर है, उसमें कोई इनवाल्व नहीं है। किसी से मुझे पूछना नहीं है, किसी सरकार से नहीं, किसी समाज से नहीं, किसी पड़ोसी से नहीं। वह बिल्कुल निजी मेरी बात है। इसलिए उससे ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है। लेकिन होता क्या है, हमें वह कठिन मालूम पड़ता है। और कठिन हमें इसलिए मालूम पड़ता है कि हमने कष्ट से सुख में जाने के लिए जो-जो तरकीबें अख्तियार की हैं, वे कोई भी तरकीबें वहां लागू नहीं होगी। और वह हमारी आदत बन गई है, वह हमारी टेक्नालॉजी है। जिससे हम कष्ट से सुख में चले आए उसमें जिंदगी गुजर जाती है और हमारी खास तरह की आदत बन जाती है। वह आदत तोड़नी मुश्किल हो जाती है।

प्रश्नः मैं यह तर्क कर रहा हूं कि देखा नहीं जाता है--शायद एक करोड़ में एक आदमी दुख से सुख में जाता हो?

उसका कारण वही है, उसका कारण वही है। और भी बहुत कारण हैं। जैसे कि अभी एस्केपिज्म की आपने बात की--आमतौर से जिसको हम दुखी आदमी कहें, वह आनंद की तलाश कम करता है, दुख को भुलाने की तलाश करने लगता है, तब वह कभी भी नहीं जा पाएगा। लेकिन दुखी आदमी--मन में चिंताएं हैं, परेशानियां हैं, जिंदगी में कोई अर्थ मालूम नहीं पड़ता, ऊब मालूम पड़ती है। कल क्यों उठूं सुबह, यह भी समझ में नहीं आता, कोई जरूरत भी नहीं मालूम पड़ती। कोई नहीं मालूम पड़ता जिससे प्रेम करो और कोई नहीं मालूम पड़ता जिसके प्रेम से कोई आनंद मिल जाएगा, कुछ भी नहीं मालूम पड़ता।
तो ऐसे आदमी के सामने दो ऑल्टरनेटिव हैं। इसीलिए शराब और धर्म की बहुत गहरी लड़ाई है, और कोई कारण नहीं है। दो ही ऑल्टरनेटिव हैं उसके सामने, या तो यह है कि वह अपने भूलने की किसी तरकीब में लग जाए कि कल सुबह जब वह उठे तो उसे पता ही न हो कि वह कौन है? वह फिर सुबह उठ जाए। सांझ होते-होते जब तक उसे पता चले कि मैं वही चिंतित और परेशान आदमी हूं, तब तक वह फिर शराब पी ले, फिर कुछ कर ले और फिर सो जाए। शराब हो, सेक्स हो, सिनेमा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भजन-कीर्तन हो, उसमें भी अगर वह भुलाने की कोशिश कर रहा है तो एक ही बात है। दो ऑल्टरनेटिव हैं दुखी आदमी के सामने, या तो वह दुख को भुलाने में लग जाए; अगर वह दुख को भुलाने में लग गया, तो जितनी देर नशे में होगा, डूबा रहेगा, फिर वापस दुख खड़ा हो जाएगा। फिर यह जिंदगी भर एक सर्कल चलता रहेगा। या फिर वह दुख को मिटाने में लग जाए।
जो दुख को मिटाने में लग जाए तो मामला बहुत कठिन नहीं है। मगर हमें आमतौर से ख्याल जो आता है सबसे पहले, वह भुलाने का ख्याल आता है। अगर मुझे कोई तकलीफ है तो मैं भूल जाना चाहता हूं। भूलने से कुछ मिटता नहीं है, सिर्फ मैं मिटता हूं। लेकिन दुख है, उसे भूलने की कोई जरूरत नहीं है। और मेरी अपनी समझ है कि दुख सौभाग्य है। क्योंकि कष्ट दुर्भाग्य है, दुख तो बड़ा सौभाग्य है। वह मिला है, इसका मतलब है कि हम कष्ट के बाहर आ गए हैं। अब इस सौभाग्य को खो देने की जरूरत नहीं है। अब इस दुख का पूरा सामना और इसका एनकाउंटर करने की जरूरत है। और इसका मुकाबला करने की जरूरत है।
और इस दुख के मुकाबले अगर हम थोड़े भी खड़े होने की कोशिश करें, तो इसी
को मैं साधना कहता हूं। दुख के सामने खड़े होने की, भूलने की नहीं। और अगर

दुख के सामने खड़े होने की थोड़ी सी भी कोशिश हो, तो इतना सरल है, क्योंकि मजे की बात यह है कि कष्ट का वास्तविक अस्तित्व है, दुख का सच में कोई अस्तित्व नहीं है। वह बिल्कुल साइकोलॉजिकल इल्यूजन है। दुख जो है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है। कष्ट का तो अस्तित्व है। अगर मेरे पेट में रोटी नहीं पड़ी है, तो भूख का अस्तित्व है। गरीब की तकलीफें तो वास्तविक हैं, अमीर की तकलीफें काल्पनिक हैं। इसलिए काल्पनिक तकलीफ को मिटाना तो बहुत आसान है। और एक दफा उसे हम भुलाने में लग गए, तो बहुत मुसीबत हो जाएगी।
जैसे समझ लें कि मेरे पीछे एक छाया है, और मैं उससे डर कर भाग रहा हूं। मैं आंख पर पट्टी बांध लेता हूं, तो मुझे वह छाया दिखाई न पड़े। इससे वह छाया मिटने वाली नहीं है। जब भी पट्टी उघाडूंगा, तब वह छाया मौजूद होगी। मुझे उस छाया का मुकाबला कर ही लेना चाहिए। लौट कर मुझे ठीक से जांच-पड़ताल कर लेनी चाहिए वह है कहां। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर आप दुख को खोजने जाइएगा, तो दुख जितना आप खोजेंगे, उतना विलीन हो जाता है। और अंत में आप अचानक पाते हैं कि दुख नहीं है। दुख को जितना आप खोजिएगा, जितना ऑब्जर्व करिएगा, जितना उसके पीछे लग जाइएगा उतना आप पाते हैं कि वह हमारी कल्पना था, वह है ही नहीं, वह गया।
जिस दिन आप अपने मन के सारे कोने-कोने में उसकी खोज कर लेते हैं कि कहां है, उस दिन दो घटनाएं घटती हैं--दुख को खोजने से आदमी सेल्फ-नालेज को उपलब्ध होता है। लोग आमतौर से कहते हैं कि सेल्फ-नालेज को उपलब्ध होने वाला आदमी दुख के बाहर हो जाता है, वह उलटी बात है। दुख की जो खोज करता है, वह सेल्फ-नालेज को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि दुख की खोज में उसे अपने भीतर एक-एक कोना देखना पड़ता है कि कहां है दुख? और जैसे-जैसे वह खोजने जाता है, ऐसे ही हो जाता है--जैसे दीया लेकर मैं अपने घर में अंधेरे को खोजने जाऊं। जब तक दीया लेकर न जाऊं, तब तक कमरे में अंधेरा है और दीया लेकर खोजने जाऊं कि कहां है अंधेरा, तो मेरा दीया ही उस अंधेरे को मिटाने का कारण हो जाता है। वह जो हमारा ऑब्जर्वेशन है, वह जो हमारी खोज है, वह दुख को मिटा देती है। क्योंकि वह वस्तुतः है नहीं, वह सिर्फ ख्याल है। उसका भी एक कारण है।
मेरी अपनी समझ यह है कि आदमी इतने कष्टों में रहा है कि जब उसके कष्ट मिट जाते हैं, तो वह काल्पनिक कष्ट पैदा करना शुरू करता है; क्योंकि यह मान ही नहीं पाता है कि बिना कष्ट के हो कैसे सकता हूं? आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? हम इतने कष्टों में रहे हैं कि अगर सारे कष्ट एकदम से मिट जाएं, तो मैं नये कष्ट ईजाद कर लूंगा; क्योंकि मैं बिना कष्टों के हो कैसे सकता हूं? यह कैसे हो सकता है कि कोई कष्ट हो ही न?

प्रश्नः तो दुख त्याग से जा सकता है?

दुख त्याग से नहीं जा सकता। दुख त्याग से कैसे जाएगा? दुख त्याग से नहीं जाएगा, त्याग से आप कष्ट में पहुंच जाएंगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह बहुत अच्छा सवाल पूछा है। यह बहुत ही बढ़िया सवाल है। अभी-अभी जो मैं कह रहा था, मैं यह कह रहा था कि अगर आप त्याग करने लगते हैं, तो आप दुख से नीचे उतर कर कष्ट की दुनिया में वापस आ गए, जहां आप थे। वहां दुख नहीं था। एक गरीब आदमी है, वह रात गहरी नींद सोता है। गहरी नींद सोने का कारण शांति नहीं है। गहरी नींद सोने का कारण यह है कि अभी वह उस जगह नहीं पहुंचा है, जहां अशांति को जान सके। अभी वह अशांति की सीमा के पहले है।

प्रश्नः लेकिन कोई चीज का त्याग बड़ा अस्तित्व की चीज तो है ही न?

न-न, जरा भी नहीं है।

अगर आदमी सम्हल कर और समझ कर नहीं चले तो त्याग कैसे कर सकता है?

न-न, यह मैं कह नहीं रहा। मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप दुख में हैं, साइकोलॉजिकल सफरिंग में हैं, तो त्याग से आप वापस वहां पहुंच जाएंगे, जहां आप साइकोलॉजिकल सफरिंग के पहले थे। पहले की अवस्था में पहुंच जाएंगे, नीचे गिर जाएंगे। क्योंकि आप ऐसे कष्ट पैदा कर लेंगे--समझ लें एक आदमी उपवास करने लगे...

प्रश्नः त्याग के बाद तो कष्ट होता ही नहीं।

न-न-न। यह आप जो कह रहे हैं, त्याग खुद ही कष्ट है और कष्ट को जब आप चुनते हैं, तो निश्चित ही आप दुख से नीचे की अवस्था में आ जाते हैं, जहां गरीब आदमी है। जहां कष्ट में भरा हुआ आदमी है। मैं त्याग करने को नहीं कहता। मैं यह कह रहा हूं कि अगर आप दुख के ऊपर उठ गए--दुख के नीचे नहीं आना है--अगर आप दुख के ऊपर उठ गए हैं और आपने पाया, दुख है ही नहीं। तब आपकी जिंदगी से बहुत सा त्याग फलित होगा, लेकिन आपको पता भी नहीं चलेगा।

प्रश्नः हमें अस्तित्व का ध्यान ही नहीं रहता।

हां, अस्तित्व का ध्यान ही दुख है अगर बहुत गौर से देखें तो। जब तक हमें ध्यान रहता है, तब तक दुख। मेरे पैर में कांटा गड़ता है तो मुझे पता चलता है कि पैर है।

प्रश्नः अगर पैर ही नहीं हैं, समझ लें, तो फिर कांटा लगता ही नहीं।

नहीं, नहीं, नहीं, पैर नहीं हैं, यह अगर आपने समझा है सिर्फ, तब तो आपको कांटा लगता ही रहेगा, सिर्फ आप भुलाते रहेंगे। न-न, यह इससे नहीं मिटने वाला।

प्रश्नः त्याग करने में बड़ी और...

मैं भूलने को नहीं कह रहा हूं।

प्रश्नः भूल त्याग नहीं है और त्याग भूल भी नहीं है। त्याग अस्तित्व है, भूल अस्तित्व है

नहीं, आप मेरी बात नहीं समझे। जिस त्याग को आप करते हैं, वह तो कष्ट है, लेकिन जो त्याग आपसे हो जाता है, वह बड़ा आनंद है। और इन दोनों में फर्क है।

प्रश्नः त्याग हो कब जाता है?

हां, त्याग तब हो जाता है--जैसे समझ लें, मैं हाथ में कंकड़-पत्थर लिए हुए चला जा रहा हूं और मैंने समझा हुआ है कि ये हीरे हैं। रंगीन पत्थर हैं, और कल मुझे एक खदान मिल गई, जहां हीरे-जवाहरात मिल गए। मुझे ख्याल नहीं रहा, मैंने हाथ खाली करने के लिए पत्थर छोड़ दिए और हीरे उठा लिए। त्याग हो गया, किया नहीं गया। त्याग तभी होता है, जब आपके लिए बड़ा आनंद उपलब्ध होता है, तो आप पुराने हाथ खाली करते हैं।
त्याग तब होता है, जब आपको कुछ विराट मिलता है, तो क्षुद्र छूटता है।
और त्याग करना तब पड़ता है जब आपको लगता है कि यह हीरा ही है और फिर भी आप छोड़ते हैं। अभी आपको लगा नहीं कि यह कंकड़-पत्थर है। अगर कंकड़-पत्थर लग गया, तब तो त्याग की बात करने की जरूरत नहीं।

प्रश्नः यानी कि हीरा समझ ले और त्याग करे, वह सबसे बड़ा त्याग है। और अगर हीरा न समझे और त्याग करे, उसको त्याग नहीं कहा जाएगा?

हां, इसीलिए तो मैं कह रहा हूं कि ज्ञानी त्याग करता ही नहीं, सिर्फ अज्ञानी त्याग करते हैं और इसलिए दुख उठाते हैं। मैं यही कह रहा हूं, ज्ञानी त्याग नहीं करता। जो व्यर्थ है, वह छूट जाता है, जो सार्थक है, वह रह जाता है। अज्ञानी सिर्फ त्याग करता है और तब वह दोहरे दुख झेलता है। मैं जो कह रहा हूं, यह कह रहा हूं आपसे कि दो तरह से यह संभावना हो सकती है--या तो यह चादर मैं इसलिए हटा दूं कि नग्न होने का आनंद मुझे अनुभव हो जाए।

प्रश्नः अगर वह चादर को आप चादर न समझो।

न समझूं कैसे। न समझूं, मैं ही न समझूंगा न। अगर मैं यह भी कहता हूं कि
यह चादर नहीं है, तो भी मैं भलीभांति समझ रहा हूं कि यह चादर है। नहीं तो यह भी कहने का कोई मतलब नहीं है। न समझने के पीछे भी... अगर मैं यह कहता हूं कि यह धन नहीं है, यह धन नहीं है, तो भी मैं समझ रहा हूं कि यह धन है, नहीं तो कह किससे रहा हूं? बात खत्म हो गई, मुझे उठ जाना चाहिए।

प्रश्नः अगर धन न होने से अगर यह समझे कि धन नहीं है तो बात अलग है। अगर धन समझने के बाद वह समझे कि धन नहीं है तो बात अलग है।

कैसे समझेगा? न, न, न। यही मैं कह रहा हूं कि कैसे समझेगा। यह संभव ही नहीं है। अगर मैं यह कहता हूं कि यह धन है और मैं इसको धन नहीं मानता, तो यह बिल्कुल इंपासिबल है। मेरी समझ में कुछ चीजें आपको जब दिखाई पड़ती हैं, जैसे रोज सुबह आप घर के बाहर कचरा फेंक देते हैं, वह त्याग नहीं है, क्योंकि आप जानते हैं कि कचरा है। जिस दिन जिंदगी में आपको ऐसी ही बहुत सी चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं व्यर्थ और छोड़ देते हैं, उस दिन तो छोड़ना अर्थपूर्ण है, और उस दिन उसका कोई घाव नहीं छूटता पीछे। और अगर आप... तब ऐसे छूट जाती हैं चीजें जैसे सूखा पत्ता गिर जाता है वृक्ष से। और कच्चे पत्ते को अगर आप तोड़ते हैं तो पत्ते में भी घाव होता है, वृक्ष में भी घाव होता है, पूरे वृक्ष के प्राणों को खबर मिलती है कि कोई चीज टूट गई। और इसलिए जो लोग त्याग करते हैं, उनको त्याग का घाव सदा बना रहता है।

प्रश्नः अगर वह कच्चे पत्ते को कच्चा पत्ता समझ कर छोड़ दे तो तभी त्याग होता है?

वह कैसे छोड़ेगा? कच्चा पत्ता कच्चा ही है। आप नहीं समझ रहे। यानी मैं
यह कह रहा हूं, कच्चा पत्ता कच्चा ही है और पका पत्ता पका ही है। आपके समझने का सवाल नहीं है। पकना चाहिए।

प्रश्नः वह पकना कब चाहिए?

आपकी समझ से पकेगा। आप जितना जिंदगी को समझेंगे, उतना पकेगा। इसलिए आपको त्याग करने को मैं नहीं कह रहा। जब पक जाएगा, तो गिर जाएगा। आपको कुछ नहीं करना है, आपको करना ही नहीं है। और अगर आपने कुछ किया तो आप मुसीबत में पड़ जाएंगे और दूसरे को भी मुसीबत में डालेंगे। अब एक आदमी है, वह चार दिन का उपवास कर ले। तो फिर वह चार दिन उसने उपवास किया, तो वह आपने अगर चार दिन खाना खाया तो आपकी गर्दन पकड़ने को तैयार बैठा हुआ है। वह हजार तरकीब से आपको जतलाएगा कि मैंने चार दिन उपवास किया और आप चार दिन खाना खाए।

प्रश्नः वह अगर चार दिन खाना खा लिया और समझा कि मैंने खाना नहीं खाया तो?

यह कैसे समझेगा, यह बताइए मुझे?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तब तो सवाल ही नहीं है। तब तो सवाल ही नहीं है। आप मेरी बात नहीं समझे।
तब तो सवाल नहीं है।

प्रश्नः वह नैचुरल नहीं रहेगा?

नहीं-नहीं, वह नैचुरल भी नहीं है। और न सवाल है। और वह आदमी कोई बहुत अच्छी हालत में नहीं रहेगा, वह आदमी पागल होगा। आप मेरी बात समझ रहे हैं न? मैं यह कह रहा हूं, ...

प्रश्नः ज्ञानी हो गया बहुत तो भी पागल जैसा ही है।

नहीं, नहीं, नहीं। पागल जैसा नहीं है। पागल जैसा नहीं है। पागल जैसे
हम हैं, जिनको ज्ञान नहीं हो गया है।

रामकृष्ण जी जब थे, वह अवस्था में तो पागल जैसे ही थे।

रामकृष्ण को मत फंसाइए। इसलिए मत फंसाइए कि रामकृष्ण सच में ही बहुत देर तक हिस्टेरिक, और अगर किसी दिन उनका इलाज हो सकता, तो वे हिस्टेरिया में फंसते। हमारी तो तकलीफ यह है कि हमने तो अपने साधु-संतों की भी कोई जांच-परख तो कभी की नहीं कि कौन साधु-संत कहां है और क्या है? और हम इतनी डरी हुई कौम हैं कि हम कभी पूरे फोकस में अपने साधु-संत को खड़ा भी नहीं करते कि हम पूरा उस आदमी को समझने की कोशिश करें कि मामला क्या है? हम खुद ही डरते हैं कि कहीं समझने में मामला सब गड़बड़ न हो जाए। ये जो हमारी तकलीफें हैं... यह जो आप कह रहे हैं न कि अद्वैत हो गया, सब एक हो गया। यह सब एक हो जाएगा, तो दीवाल मुझे दीवाल दिखाई पड़ेगी, दरवाजा दरवाजा दिखाई पड़ेगा कि नहीं दिखाई पड़ेगा? तो फिर मैं दीवाल से निकल सकूंगा? फिर मैं कुर्सी पर बैठूंगा कि कुर्सी को ऊपर रखूंगा, क्या करूंगा? कुर्सी तो मुझे दिखाई पड़ेगी कि इस पर मैं बैठूंगा, इसको कुर्सी मानूंगा। आपसे बात तो करूंगा कि बोलने वाला और सुनने वाला अलग-अलग होगा।
अद्वैत का मतलब क्या है? अद्वैत का मतलब यह तो नहीं कि मुझे दीवाल दरवाजा हो गई, दरवाजा दीवाल हो गई। और पानी को छोड़ दूंगा और गिलास को पी जाऊंगा। ऐसा तो नहीं अद्वैत का मतलब हो जाएगा? ऐसा हो जाएगा तब तो मैं पागल हूं। और ऐसा अद्वैत कभी नहीं हुआ और न हो सकता है। हां, पागलखाने में हो जाता है। पागलखाने में संभव है। या एल.एसड़ी. के बहुत ज्यादा गहरे प्रभाव में हो जाता है।
अभी एक आदमी कूद पड़ा, क्योंकि उस आदमी को रात सपने आते रहे निरंतर कि मैं पक्षी होकर उड़ जाता हूं। उसने एल.एसड़ी. लिया और जब उसने एल.एसड़ी. लिया तो एल.एसड़ी. तो, जो भी आपके ख्याल में है, उनको पक्का कर दिया। वह अपने तीस मंजिल के मकान की खिड़की से उड़ गया। यह समझ कर कि वह पक्षी हो गया। यह जो आदमी है, यह आदमी परम-ज्ञान को उपलब्ध हो गया? इस आदमी का बोध ही चला गया, इसको कुछ बोध ही नहीं रहा।
और जिसको हम अद्वैत कहते हैं--अद्वैत का मतलब ही कुल इतना होता है कि बुनियाद में, आधार में चीजें एक ही मूल उत्स से आती हैं। तो बुनियाद में तो आती हैं। गिलास भी वहीं से आता है, उन्हीं एटम से, उन्हीं हाइड्रोजन से, उन्हीं अणुओं से, जिनसे पानी आता है, लेकिन फिर भी पानी प्यास बुझाता है और गिलास पीने से प्यास बुझने वाली नहीं है। ओरिजिनल सोर्स जो है, वह एक है चीजों का। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि चीजें एक हैं। दीवाल दीवाल है, दरवाजा दरवाजा है। इसलिए यह मतलब नहीं होता। और सोना सोना है, मिट्टी मिट्टी है। और जब कोई आदमी कहता है कि नहीं, सोना भी मेरे लिए मिट्टी हो

गया; तो वह अभी उसको सोना मिट्टी हुआ नहीं, नहीं तो कहता कैसे कि सोना मेरे लिए मिट्टी हो गया? अभी भी मिट्टी मिट्टी है, सोना सोना है। अभी भी मिट्टी उसके सामने रख दो तो वह यह नहीं कहता कि यह सोना है। अभी भी सोना उसके सामने रखो तो वह कहता है कि यह मेरे लिए मिट्टी है। उसकी कांशसनेस पूरी की पूरी उसे बता रही है कि यह सोना है। मैं इसको सोना नहीं मानता, वह यह कह रहा है। वह कह रहा है कि मैं इसको मिट्टी मानता हूं। लेकिन आपके मिट्टी मानने से सोना मिट्टी नहीं हो जाता।
और रामकृष्ण के पास भी सोना ले जाइए तो वे चिल्ला कर खड़े हो जाते हैं
कि मुझे छुआ मत देना। और मिट्टी ले जाइए तो बिल्कुल नहीं चिल्लाते। तब तो सवाल यह है, सोचने जैसा है कि मिट्टी नहीं हो गया सोना। रामकृष्ण दिन भर सुबह से शाम तक समझा रहे हैं कि कांचन-कामिनी से बच कर रहना। सोने से, स्त्री से बच कर रहना। और फिर... वह बोध कहीं चला नहीं गया। अभी जब तक आप यह कह रहे हैं कि सोना छोड़ो, तब तक सोना मिट्टी नहीं हो गया है। नहीं तो मिट्टी को कोई छोड़ता है? मिट्टी को छोड़ने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती। कोई ने नहीं सिखाया अब तक, किसी शास्त्र ने कि मिट्टी का त्याग करो। वे सिखाते नहीं और फिर भी कोई मिट्टी को पकड़े हुए नहीं बैठा है। सब शास्त्र सिखाते हैं कि सोने का त्याग करो। सब शास्त्र मानते हैं कि सोना सोना है, मिट्टी नहीं है। और त्याग करने के लिए यह इल्यूजन पैदा करो कि सोना जो है वह मिट्टी है। इसको पहले सिर में थोपो कि यह सब मिट्टी है, यह सब मिट्टी है। लेकिन अगर कोई आदमी बार-बार सोच कर, ऑटो-सजेशन से निरंतर चिल्ला-चिल्ला कर यह समझ ले कि सोना मिट्टी है।

प्रश्नः यह त्याग इल्यूजन तो नहीं है?

त्याग जब आप करते हैं, तब इल्यूजन है। जब होता है, तब बड़ी सच्चाई है।
जब आप करते हैं, तब तो इल्यूजन है।

प्रश्नः "करते हैं" और "होता है" में क्या फर्क है?

हां, करते में आपको विल का उपयोग करना पड़ता है। आपको कहना पड़ता है, यह सोना है, मैं इसको छोड़ता हूं, और जब होता है तब होने में आपको विल का उपयोग नहीं करना पड़ता है। आप कहते हैं, मेरे लिए बेकार हो गया, बात खत्म हो गई। छोड़ना-वोड़ना कुछ भी नहीं, बात खत्म हो गई है। मैं जाता हूं। आप पीछे लौट कर यह भी नहीं कहते कि हिसाब रखना कि मैंने इतना सोना छोड़ दिया। इसका कोई सवाल ही नहीं रहा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कुछ नहीं, माइंड भी ठीक समझ रहा है, हार्ट भी ठीक समझ रहा है। कोई गलत नहीं समझ रहा है। सोना सोना ही है और मिट्टी मिट्टी ही है। इसमें कोई गलत नहीं समझ रहा है। सोना सोना ही है, मिट्टी मिट्टी ही है। अब सवाल यह नहीं है कि सोने को मिट्टी बनाना है। सवाल यह है कि सोने के प्रति हमारी जो इतनी गहरी पकड़ है, इस पकड़ को समझना है। अगर समझने से छूट जाए, छूट जाए। समझने से न छूटे, न छूटे। यह मैं समझता हूं कि समझने से छूट जाता है। लेकिन वह छोड़ना नहीं पड़ता है। छोड़ना हमेशा नासमझी का कृत्य है। अगर मैं समझता हूं, मुझे लगता है कि यह ठीक है, इसमें कुछ अर्थ नहीं है। यह मुझे दिखाई पड़ता है, यह मेरी समझ में आता है।

प्रश्नः जब आदमी समझने जाता है, तो पकड़ ज्यादा होती है।

नहीं, कभी नहीं हुई।

प्रश्नः समझने जाता है तब। जब आदमी समझने जाता है कि तो पकड़ क्या चीज
है, तो पकड़ ज्यादा होती है।

क्यों ज्यादा होगी पकड़।

प्रश्नः क्योंकि आदमी समझता है कि यह पकड़ है।

न, न, न। अगर समझता है कि यह पकड़ है, अगर समझता है कि यह पकड़ अर्थ की है
कि व्यर्थ की है, सार्थक है कि निरर्थक है। समझ अगर उसे दिखा देती है कि मैं व्यर्थ की चीज को पकड़े हुए हूं तो छूट जाती है। अगर दिखा देती है कि सार्थक है तो और जोर से पकड़ लेता है।

प्रश्नः समझाने वाला भी तो चाहिए?

नहीं, समझाने वाला नहीं, समझने वाला। समझाने वाला नहीं, वह समझाने वाले का भी बहुत बड़ा चक्कर है। समझने वाला। आपकी जिंदगी है, मैं क्यों समझाने आऊंगा?

प्रश्नः जिंदगी तो आपकी भी है और हमारी भी है?

हां, तो मैं अपनी जिंदगी समझूंगा।

प्रश्नः आपकी जिंदगी समझाने से हमारी जिंदगी समझ सकती है?

न, न, न। बिल्कुल नहीं। जरा भी नहीं। अगर ऐसा हो जाता, अगर ऐसा हो जाता
तो दुनिया में बहुत समझदार लोग पैदा हो चुके होते।

प्रश्नः अभी उसी की वजह से ज्यादा समझदार लोग पैदा हुए।

कुछ समझ नहीं बढ़ी उससे दुनिया की। उससे आपकी समझ नहीं बढ़ती है। एक कृष्ण समझ लेते हैं, एक बुद्ध समझ लेते हैं, एक क्राइस्ट समझ लेते हैं।

प्रश्नः इट इ.ज आलवेज गाइडेंस व्हिच... दि ह्यूमन माइंड।

गाइडेंस सदा आपकी अपनी जिंदगी की तकलीफ से आती है। गाइडेंस कहीं से
भी नहीं।

प्रश्नः जिंदगी की तकलीफ से तो तकलीफ आती है, गाइडेंस नहीं आती है।

गाइडेंस आती है।

प्रश्नः गाइडेंस तो जब आती है, कोई आदमी बताता है कि यह मंदिर है, यह मस्जिद नहीं है। यह सब तो पदार्थ है, यह मंदिर है।

न-न-न। मजा तो यह है, मजा यह है कि बताने वाले तो पचास हैं। कोई कह रहा
है यह मंदिर है, कोई कह रहा है यह मस्जिद है, कोई कह रहा है यह दोनों नहीं है।

प्रश्नः समझने वाले को समझना चाहिए कि यह आदमी बराबर समझा रहा है कि गलत समझा रहा है।

आप ही समझेंगे न, आखिर में।.

प्रश्नः समझाने वाला तो चाहिए न?

अल्टीमेट चूजर तो आप ही होने वाले हैं न।

प्रश्नः वह तो बात सही है।

फिर क्या फर्क फर्क पड़ता है। मेरी आप बात नहीं समझे? अगर अंततः आपको
ही निर्णय करना है कि यह आदमी ठीक कह रहा है कि गलत कह रहा है, तब फिर क्या बात रह गई?

प्रश्नः हाउ वुड यू स्टाइज योर फिलासफी। वुड यू कॉल इट प्योरली रेशनेलिस्ट फिलासफी?

नहीं। नहीं कहूंगा इसलिए क्योंकि आदमी अकेला रीजन अगर हो, तब तो ठीक है। आदमी अकेला रीजन नहीं है। आदमी इमोशन भी है। और अकेली रेशनेलिस्ट फिलासफी की जो खराबी है, वह यह है कि आदमी का आधा हिस्सा उससे तृप्त ही नहीं हो पाता। और जब वह तृप्त नहीं हो पाता है, वह बदला लेता है। और इसलिए अक्सर यह हुआ कि बहुत रेशनेलिस्ट आदमी बूढ़ा होते-होते बिल्कुल इररेशनेलिस्ट हो जाएगा।
अक्सर यह होगा कि एक मजिस्ट्रेट है, चीफ जस्टिस है, फलां है, ढिकां है; आखिर में आप देखो, वह एक बिल्कुल नासमझ के पैर पकड़े हुए है किसी संन्यासी के पास बैठा होगा। और वह संन्यासी लोगों को समझा रहा है कि यह चीफ जस्टिस है। यह बड़ा एडवोकेट है। यह बड़ा डाक्टर है, देखो, यह भी हमारा पैर पकड़े हुए बैठा है। रेशनेलिस्ट आदमी के साथ खराबी है कि जब रीजन थक जाएगा, और आधा हिस्सा अतृप्त रह जाएगा सदा, जो कि रीजन है ही नहीं, तब वह मुश्किल में पड़ जाएगा। इसलिए मैं बेसिकली रेशनेलिस्ट अपने को नहीं कहता। मैं तो टोटेलिस्ट हूं। टोटेलिस्ट का मतलब यह कि आदमी की टोटल पर्सनैलिटी हो। उसमें इमोशन है और इमोशन बिल्कुल इररेशनल है। इमोशन कोई रीजन नहीं है। या ऐसा कहें कि इमोशंस के अपने रीजन हैं। जिनको कि हम बुद्धि के रीजन नहीं कह सकते हैं और उनकी हमें जगह बनानी चाहिए। यानी मैं यह मानता हूं कि अगर मैं किसी को प्रेम करने लगूं और आप मुझसे पूछें कि क्यों प्रेम करते हो? तो मैं कहूंगा कि आपका पूछना गलत है। क्योंकि प्रेम के साथ क्यों नहीं लगाया जा सकता। और जिस दिन हम प्रेम के साथ क्यों लगाएंगे, उस दिन प्रेम भी समाप्त हो जाएगा, उस दिन प्रेम के कोई उपाय नहीं रह जाएंगे। लेकिन प्रेम भी मेरी एक जरूरत है जो कि रीजन के बिल्कुल बाहर है। मुझे भूख लगती है, वह न इमोशन है, न रीजन है। वह बिल्कुल ही फिजिकल डिमांड है।

प्रश्नः यह जो आप, प्रेम करते, तो कहते हैं कि आपका प्रेम करना भी गलत है, तो फिर क्या सवाल है?

यह सवाल नहीं है। अगर मैं प्रेम करता हूं तो मैं कहूंगा कि यह गलत प्रेम बहुत अच्छा है। ठीक प्रेम मुझे करना नहीं है। उसका कारण यह है, उसका कारण यह है कि प्रेम होना ही अपने आप में ठीक होना है। गलत प्रेम जैसा कोई प्रेम ही नहीं होता। गलत प्रेम जैसा प्रेम नहीं हो सकता। या तो प्रेम होता है या नहीं होता है। और अगर कोई आदमी जवाब देने आए कि मेरे प्रेम का यह-यह कारण है, तो वह आदमी प्रेम नहीं कर रहा है। वह अभी बुद्धि से ही जी रहा है। जिंदगी हमारी बड़ी है रीजन से। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम जिंदगी को इररेशनल आधार दें। यानी मेरा मानना यह है कि हमें रीजन का पूरा उपयोग करना चाहिए, लेकिन लिमिटेशंस जब रीजन के आ जाएं, तो जिद्द नहीं करनी चाहिए कि इसके आगे हम न जाएंगे, क्योंकि रीजन आगे नहीं जाता। रीजन का हमें पूरा उपयोग कर लेना चाहिए, ताकि हम बियांड रीजन भी जा सकें। बिलो रीजन के मैं पक्ष में नहीं हूं, लेकिन बियांड रीजन के मैं बिल्कुल पक्ष में हूं। घड़ियां हैं जब कि आप रीजन के बाहर जाएंगे, और जाना जरूरी है। शायद जिंदगी

का सारा रस आपको वहीं से मिलेगा। अगर एक फूल मुझे बहुत अच्छा लग रहा है, तो रीजन तो कुछ भी नहीं है। और चांद अगर मुझे प्यारा लग रहा है, तो रीजन तो कुछ भी नहीं है।

प्रश्नः स्वामी जी, उसमें तो फिर क्रोध भी आ सकता है।

मैं मानता हूं कि बराबर आएगा। बराबर आएगा।

प्रश्नः और उसको तो आप एप्रूव नहीं करेंगे?

न-न, मैं बिल्कुल एप्रूव करूंगा। एप्रूव इस अर्थों में करूंगा कि मैं
यह मानता हूं कि आप क्रोध से इसीलिए परेशान हैं कि उसको आप एप्रूव नहीं कर पाए अब तक। अगर उसे एप्रूव कर लें तो उससे छुटकारा हो जाए। मेरा मतलब यह है कि जैसे क्रोध है हमारा, हमने कभी क्रोध किया ही नहीं। जिसको क्रोध की इंटेंसिटी कहें, वह हमने कभी की नहीं।
अगर मेरे हाथ में शिक्षा हो तो मैं बच्चे को क्रोध करना सिखाऊं और इंटेंस क्रोध करना सिखाऊं, ताकि वह अपने क्रोध से पूरी तरह से परिचित हो। वह जाने कि क्रोध क्या है और एक दफा वह जान ले कि क्रोध क्या है, क्रोध में कंप जाए और जल जाए और पसीना आ जाए उसको क्रोध में, वह जान ले, तो हमें किताबें पढ़ाने उसे न जाना पड़े, जिनमें लिखा है कि क्रोध जहर है। इसे वह जान ले। इसे वह जान ले फिर उसकी जिंदगी... फिर जहर पीने का हकदार हर आदमी फिर भी है। फिर भी मैं मानता हूं कि अगर मुझे जहर ही पीना है तो दुनिया में मुझे कोई रोकने का हकदार नहीं है। फिर वह पीए। लेकिन अपने को कष्ट कोई देना नहीं चाहता। लेकिन क्रोध आपको कभी कष्ट ही नहीं दे पाया, आपकी शिक्षाओं ने उसको इतना डिसएप्रूव किया है कि वह कभी आपको पकड़ नहीं पाया पूरा कि आप उसका पूरा जहर समझ लेते, उसका दंश समझ लेते, उसकी लपट से जल जाते, हाथ पर फफोला पड़ जाता, वह नहीं हुआ। इसीलिए आप धीमा-धीमा, मरा-मरा...
मैं मरी-मराई चीज के खिलाफ हूं। क्रोध ही करना हो तो ठीक से करना और पूरा करना, ताकि एक दफा निपटारा हो कि यह क्या है। ऐसा कुनकुना, जिसको ल्यूकवार्म कहते हैं, वैसा कुछ नहीं होना चाहिए जिंदगी में। उसकी वजह से हम किसी चीज से कभी नहीं छूटते। न हम कभी प्रेम पूरा करते हैं, न कभी सेक्स पूरा करते हैं, न कभी क्रोध पूरा करते हैं। किसी भी चीज को उसकी पूरी गहराइयों में हम कभी नहीं उतरते। अगर हम उतर जाएं और अगर गहराइयां आनंदपूर्ण हों और किसी आनंद के मंदिर तक ले जाती हों, तो हम बार-बार उतरें। और गहराइयां अगर नरक में ले जाती हों, तो नमस्कार कर लें। वह हमारा छुटकारा हो जाए।
तो मैं तो प्रत्येक चीज को, परमात्मा ने जो भी दिया है या प्रकृति ने
जो भी दिया है, सबको एप्रूव करता हूं। जब उसने एप्रूव किया है तो मैं क्यों झंझट डालूं? आपको क्रोध मिला हुआ है। वह आपने पैदा नहीं किया है। और निश्चित ही प्रकृति के कोई गहरे अर्थ हैं उस क्रोध के साथ। अगर किसी बच्चे में हम बचपन से क्रोध को निकाल लें, तो उसमें रीढ़ ही निकल जाएगी उस बच्चे की। उस बच्चे में कभी जिंदगी नहीं आएगी, वह बच्चा इतना मरा हुआ हो जाएगा। क्रोध आपका तेज भी है, क्रोध आपका बल भी है।
एक छोटा सा बच्चा भी जब क्रोध में पैर पटकता है तो उसकी शान देखने लायक है। इतना छोटा सा, कोई ताकत नहीं है। मगर जब वह पैर पटक कर खड़ा हो जाता है, तो ऐसा लगता है कि चांद-तारों को चुनौती दे देगा। दुनिया की कोई ताकत उसको रोक नहीं सकेगी। तो मैं मानता यह हूं कि जिंदगी में जो भी है, मेरे लिए बुरा नहीं है। बुराई मेरे लिए सिर्फ एक है कि जब हम किसी चीज को अधूरा छूते हैं तो न तो हम जान पाते हैं कि वह अच्छा है, न हम जान पाते हैं कि वह बुरा है। इसलिए हमेशा बीच में अटके रह जाते हैं। न तो आप कभी क्रोध कर पाए और न प्रेम कर पाए। मैं मानता हूं कि जो भी करने को लगता है उसे पूरा करना। फल भोगना उसका, उसकी तकलीफ भोगना, उसकी पीड़ा को झेलना।

प्रश्नः स्वामी जी, कभी क्रोध में आदमी किसी का खून कर दे, तो फिर आप... ?

कर डालिए न, तो जो फल होगा वह भोगिएगा! मैं आपसे यह कह रहा हूं कि आप चूंकि क्रोध नहीं कर पाए इसलिए आपके द्वारा किसी का खून हो जाने की संभावना है। इसको आप समझ लें। आमतौर से जो लोग खून करते हैं, आप जान कर हैरान होंगे कि वह रोज-रोज छोटा-छोटा क्रोध करने वाले लोग नहीं होते। जो लोग खून करते हैं, वे वे लोग होते हैं जिन्होंने बहुत क्रोध इकट्ठा कर लिया है और सप्रेस कर लिया है और किसी दिन सारा क्रोध फूट पड़ा और किसी का खून कर दिया। अगर एक आदमी सुबह छोटी सी बात पर अपनी पत्नी पर नाराज होकर गिलास पटक कर फोड़ देता हो, तो ऐसा आदमी जितनी तेजी से जाता है उतनी तेजी से वापस लौटता है। पांच मिनट बाद वह कहता है कि यह तो भूल हो गई। यह आदमी कभी हत्या नहीं कर पाएगा। मेरी आप बात समझ रहे हैं?
मैं यह कह रहा हूं कि अगर... जिसको मैं कह रहा टोटल इंसेंसिटी अगर हम किसी को सिखाएं, तो दुनिया में हत्याएं कम हो जाएं। हत्याएं हो इसीलिए रही हैं कि हम सप्रेशन सिखा रहे हैं लोगों को। सप्रेशन सिखा रहे हैं। और आप इतना क्रोध इकट्ठा कर लेते हैं धीरे-धीरे कि एक दिन किसी की हत्या किए बिना कुछ काम ही नहीं चलता, कांच तोड़ने से काम नहीं चलता फिर। फिर तो दीवाल पर मुक्का मारने से काम नहीं चलता, फिर तो किसी की गर्दन मरोड़ने से ही काम चलता है। उसके बिना काम नहीं चलता। वह आपको करना ही पड़ेगा फिर किसी दिन। आपने इतना अकुमुलेट कर लिया क्रोध कि अब छोटा-मोटा काम नहीं हल होने वाला है।
दुनिया में जितनी सयता बढ़ती है उतनी हत्याएं बढ़ती हैं। और सयता बढ़ने
का अनिवार्य हिस्सा है कि हम किसी भी इमोशन को पूरा नहीं प्रकट होने देते, सबको दबा देते हैं।

प्रश्नः स्वामी जी, एक दूसरी बात है कि ये हिप्पी.ज हैं, आपका क्या एक्सप्लेनेशन है? यह हिप्पी का टूमच सप्रेशन हैज ब्राड देम...

बिल्कुल ही, यह क्रिश्चिएनिटी का फल है। पश्चिम में जो सप्रेशन क्रिश्चिएनिटी ने किया है उसका फल है, उसका रिएक्शन है। हिंदुस्तान में हिप्पी नहीं हैं। उसका कारण है कि हिंदुस्तान में अगर जैनी प्रभावी होते तो हिप्पी पैदा होता। जैनी प्रभावी नहीं हो सके हिंदुस्तान में। नहीं तो हिंदुस्तान में भी हिप्पी पैदा हो जाता। वह उनसे भी ज्यादा सप्रेसिव है, क्रिश्चिएनिटी से भी ज्यादा। लेकिन वे प्रभावी नहीं हो सके। हिंदुस्तान में जो धर्म प्रभावी रहा है, वह बहुत सप्रेसिव नहीं है। इसलिए हम खजुराहो के अंदर भगवान भी बना सकते हैं, बाहर सेक्स की प्रतिमा भी बना सकते हैं। लेकिन किसी क्रिश्चिएन चर्च में आप कल्पना नहीं कर सकते कि बाहर हो मैथुन की प्रतिमा, इंटरकोर्स करती हुई प्रतिमा बनी हो, यह असंभव है। चर्च इसको बर्दाश्त नहीं करेगा।
तो चर्च ने जो पश्चिम में दबाव डाला है आदमी के मन पर, वह इतना भयंकर
हो गया है कि उसके परिणाम होने वाले थे। वे परिणाम हुए, वे परिणाम हो गए। पश्चिम में इधर तीन सौ वर्षों में जितने तरह के भी रिएक्शंस हुए हैं, उस सबकी जिम्मेवार पश्चिम में क्रिश्चिएनिटी का सप्रेशन है। उन्होंने इस बुरी तरह दबाया हर चीज को कि हर चीज एक सीमा से बाहर टूटने के लिए तैयार हो गई। और फिर हिप्पी, और भी कारण हैं, मल्टी-का.जल मामला है।
दूसरा बड़ा कारण यह भी है कि जब भी कोई समाज एफ्लुएंट हो जाएगा, जहां समृद्धि बहुत हो जाएगी, वहां बच्चों को करने जैसा कुछ भी नहीं सूझेगा।

प्रश्नः आप यह जो सप्रेशन की बात कह रहे हैं, आपने जब यहां... जो भाषण किए थे वह सेक्स के ऊपर, तो कितना अपरोर हो गया था। क्योंकि वे सब सप्रेस्ड लोग हैं, आप मानते हैं न तो यहां तो अपने हिप्पी लोग नहीं हो रहे हैं?

न, न, न, आप नहीं समझे मेरी बात को। मेरी बात को आप नहीं समझे। आप हिप्पी होना, हिप्पी होने के लिए जो सारी सुविधाएं आपको चाहिए, वह आपको नहीं हैं। और आप हिप्पी अपने ढंग से हो रहे हैं। आपका लड़का कहीं लड़की को धक्का मार रहा है, कहीं पत्थर मार रहा है, कहीं गिलास फेंक कर मार रहा है, कहीं एसिड फेंक रहा है, कहीं शोरगुल मचा रहा है। वह कर रहा है, जो वह कर सकता है, जो उसकी सीमा में संभव है। असल में हिप्पी होने का मतलब हिप्पी होने के योग्य हम अभी समृद्धि को उपलब्ध नहीं हुए हैं। जब हम होंगे तब होने वाला है। बिल्कुल होने वाला है। मेरे लिहाज से अच्छा लक्षण है। अच्छा लक्षण यह नहीं है कि मैं चाहता हूं कि दुनिया में हिप्पी रहें। मेरे लिहाज से यह हमारी सप्रेसिव मॉरेलिटी को तोड़ने का एक बीच का वक्त है। जब वह सप्रेशन टूटेगा, हमको फिर से विचार करके समाज को नया आधार देना पड़ेगा। हिप्पी तो चला जाएगा। वह कोई सदा रहने वाली चीज नहीं है। वह कोई सदा रहने वाली चीज नहीं है। वह बीच का...

प्रश्नः पर हिप्पी है तो भी क्या, कुछ बाधा नहीं। आइ थिंक पीपुल आर अननेसेसरिली क्रिटीसाइजिंग देम।

नहीं, वह रह नहीं सकता। वह रहे तो हर्जा कुछ भी नहीं है। वह रह नहीं सकता, वह रह इसलिए नहीं सकता कि वह बिल्कुल टरंजीशन के पीरिएड की घटनाएं हैं, जो कि स्थायी नहीं होतीं।
अभी भी जो पांच साल पहले हिप्पी था, वह जब एक लड़की को प्रेम करने लगता है, तो हिप्पी होना बंद हो जाता है उसका फौरन। क्योंकि जैसे ही वह एक लड़की को प्रेम करना शुरू करता है, कल उसके एक बच्चा होता है, वह एक घर बनाना चाहता है। उसको नौकरी करनी है, उसको दफ्तर जाना है, बस वह वापस लौट आया। अभी आप हिप्पीज में कोई पैंतीस साल के बाद का आदमी नहीं पाएंगे। बस पैंतीस साल के बाद वे सब वापस लौट आएंगे। मेरी बात आप समझ रहे हैं न? मैं जो कह रहा हूं, वह जो पैंतीस साल के बाद लौट आएगा। अभी तो हिप्पी नई घटना थी। पंद्रह साल के भीतर हिप्पी बाप होंगे और उनके बच्चे हिप्पी कभी नहीं होंगे। उनके बच्चे हिप्पी कभी नहीं होंगे, क्योंकि हिप्पी होने के लिए आपका बाप होना जरूरी था। सप्रेसिव माइंड का बाप होना जरूरी था। अगर बाप हिप्पी हो गया तो बेटा फिर हिप्पी होने वाला नहीं है, क्योंकि वह सप्रेशन गया, वे चीजें खुली हो जाएंगी। एक फे.ज है, जो पंद्रह-बीस साल, पच्चीस साल टिकेगा, इससे ज्यादा टिकने वाला नहीं है। अच्छा फे.ज है। और हम तो अभागे हैं, हमारे पास अभी ऐसा फे.ज नहीं है। हो भी नहीं सकता। हमारा लड़का कुछ करता भी है तो बिल्कुल बेहूदा है और बिल्कुल अर्थहीन है।

प्रश्नः लेकिन आचार्य श्री, क्या प्रेम और क्रोध की परिपूर्णता आसक्ति है? परिभाषा में आ सकती है?

नहीं, बिल्कुल नहीं। तभी आप अनासक्त होते हैं। प्रेम की परिपूर्णता बिल्कुल अनासक्ति है। आपकी जो प्रेम की कमी है वही आसक्ति पैदा करती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह सवाल तो बहुत कीमती है। दो-तीन बातें ख्याल में लेनी चाहिए। एक तो सेल्फ रियलाइजेशन कोई ऐसी चीज नहीं है कि कोई कह सके कि अचीव कर लिया। सेल्फ रियलाइजेशन कोई एंड नहीं है, जहां आप पहुंच जाते हैं और कह सकते हैं, पा लिया। यानी सेल्फ रियलाइजेशन को कभी भी आप पास्ट नहीं बना सकते हैं। आप ऐसा नहीं कह सकते हैं कि वह फलां दिन पा लिया और बात खतम हो गई। सेल्फ रियलाइजेशन कांसटेंट प्रोसेस है। आप उसमें प्रवेश तो करते हैं, उसके बाहर आप कभी नहीं होते। क्योंकि बाहर होने का उपाय नहीं है। सेल्फ के और बाहर कहां जाइएगा?

तो जो आदमी भी कहता हो कि मैंने पा लिया सेल्फ रियलाइजेशन, गलत ही बात
कह रहा है। गलत इसलिए कह रहा है कि यह कोई पाने की चीज नहीं है कि आपने पा लिया। यह तो प्रतिपल प्रवेश की बात है और यह अंतहीन प्रवेश है। ऐसा कभी भी नहीं है कि आप किनारे पर पहुंच जाएंगे। ये पहुंचते ही चले जाएंगे। इसमें पहुंचना कभी नहीं आता, पहुंचना होता ही रहता है। कोई स्टेटिक स्थिति नहीं है जिसमें आप पहुंच जाते हैं।
यानी समझ लें कि एक आदमी मुझसे कहे, क्या आपने प्रेम पा लिया? इसका क्या मतलब होता है? कोई मतलब नहीं होता है। वाक्य तो बिल्कुल ठीक है कि क्या आपने प्रेम पा लिया? मैं इतना ही कह सकता हूं कि प्रेम पा रहा हूं। पा लिया जिस दिन कह दूंगा, उस दिन तो सब मर जाएगा। प्रेम खतम हो जाएगा। मैं बाहर हो जाऊंगा। मैं तत्काल बाहर हो जाऊंगा। एक डेड चीज हो जाएगी मेरे हाथ में, जिसको मैं बता सकूं कि यह रहा प्रेम, मैंने पा लिया।
धन आप पा सकते हैं, मकान आप पा सकते हैं, लेकिन जीवन में जो भी जितना गहरा और महत्वपूर्ण है उसको आपको निरंतर पाना होता है। ऐसा कभी भी नहीं आता है कि आप कह दें पा लिया, कभी भी नहीं कह सकते। जितना ही आप पाएंगे उतना ही आप पाएंगे और विराट खुल गया। यानी आप जितना आगे जाएंगे, आप पाएंगे क्षितिज और बड़ा हो गया। पाने को सदा शेष है। तो हम जिसको आत्म साक्षात्कार और सेल्फ रियलाइजेशन कहें, वह शब्द ही गलत है। क्योंकि शब्द रियलाइजेशन जो है उसमें ऐसा भाव है कि कोई चीज पूरी हो जाती है। कुछ पूरा नहीं होता। इसलिए हम परमात्मा को अनंत कहते हैं।
अनंत का मतलब यह है कि जिसे आप पा भी लेंगे और फिर भी न कह सकेंगे कि पा लिया। आप पाते ही रहेंगे, पाते ही रहेंगे, और फिर भी ऐसा न कह सकेंगे कि वह कुछ कम हो गया, इतना मैंने पा लिया और इतना अभी बाकी है। आप पाते ही रहेंगे।
क्या आपने जीवन को पा लिया? क्या कहिएगा? अगर पा लिया तो आप मर गए। क्योंकि अगर जीवन को पा लिया है, तो अब आप कहां हैं? अब आप मर गए। नहीं, जीवन को पाते ही रहते हैं, और जीवन अनंत है।
और सेल्फ रियलाइजेशन शब्द और भी कई लिहाज से बड़ा बेहूदा है, एकदम एब्सर्ड है। एक तो जब आप इस अनंत गहराई में उतरते हैं तो सेल्फ खो जाता है। जैसे-जैसे आप उतरते हैं, वैसे-वैसे आप मिटने लगते हैं। कुछ होने लगता है, लेकिन आप मिटने लगते हैं। जिसको आप पहचानते थे, जिसका नाम-धाम पता-ठिकाना था, जो एक एनटाइटी थी। किसी का लड़का था, पति था, यह था, वह था, वह खोने लगता है। वह तो खो जाता है। और जो बच रहता है, वह इतना अनंत है कि उसका कोई ओर-छोर नहीं है। इसलिए पा लेने की भाषा में कहा ही नहीं जा सकता। वह जो लैंग्वेज ऑफ अचीवमेंट है, वह वहां कारगर नहीं है, बिल्कुल कारगर नहीं है। और अगर कभी कोई कहे, पा लिया, तो वह सिर्फ ईगोइस्ट की घोषणाएं हैं, वह सिर्फ अहंकार की घोषणाएं हैं। उनसे कोई आत्म-साक्षात्कार का संबंध नहीं है।
सवाल बिल्कुल बढ़िया है, लेकिन उत्तर नहीं हो सकता। और कोई उत्तर देगा,
तो दे रहा है, इसलिए गलत हो जाएगा, उसका उत्तर वह देने से ही गलती हो जाएगी।

प्रश्नः देश की जो परिस्थिति है, उस पर आपका क्या विचार है? और पोलिटिकली आपका क्या ख्याल है? यानी क्या होना चाहिए और क्या करने जैसा है? आइ पर्सनली विलीव दैट आई थिंक ए रिलीजियस हैड ऑर पिपुल ऑफ योर... कैन प्ले ए वेरी इंपार्टेंट रोल इन... नेशन।

इसमें बहुत सी बातें हैं। एक तो भारत की जो मनःस्थिति है, वह अत्यंत अप्रौढ़ है, इम्मैच्योर है। और हम बहुत समय से सिर्फ नारों पर जी रहे हैं, स्लोगनस पर जी रहे हैं। और ऐसा लगता है कि जोर से कोई नारा लगा देंगे, तो सब हल हो जाएगा। ऐसे ही हम आजादी के नारे लगाते रहे कि आजादी आ जाएगी सब ठीक हो जाएगा। हमारा बड़े से बड़ा बुद्धिमान आदमी भी ऐसे ही मानता रहा कि बस जो गड़बड़ है, वह इतना है कि आजादी नहीं है। बाकी तो सब ठीक हो जाएगा। बस आजादी आ जाए तो सब ठीक हो जाएगा। जैसे आजादी जो थी, वह शुरुआत न थी, अंत था। उसके आ जाने से सब ठीक हो जाने वाला था। और हमने इस तरह के सपने मुल्क में जगाए, और

लोगों के मन में इस तरह की कल्पनाएं पैदा कर दीं कि आजादी आ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा।
आजादी आ गई, और लोगों ने सोचा कि अब कल सुबह उठेंगे तो सब ठीक हो जाएगा। इस मुल्क में जो आजादी के बाद बीस साल का फ्रस्टेशन है, उसके लिए जनता जिम्मेवार नहीं है, उसके लिए पिछले पचास साल की लीडरशिप जिम्मेवार है। उसने वह पैदा करवाने का इंतजाम कर रखा था। उसने यह कहा था, आजादी आने से सब आ जाएगा। उसने यह कहा था कि अंग्रेज के होने की वजह से हमारी सारी तकलीफ है। अंग्रेज गया कि सब तकलीफ मिट गई। वह मंत्र की तरह हो जाने वाली बात थी।
अंग्रेज तो चला गया, आजादी आ गई, कोई तकलीफ नहीं मिटी। बल्कि हमने पाया कि हम और नई तरह की तकलीफों में खड़े हो गए हैं, जो कि स्वाभाविक था। स्वतंत्रता नई तरह की तकलीफें लाती है, लाएगी ही। क्योंकि दायित्व लाएगी, इंसान का अपने ऊपर जिम्मा लाएगी, और एक गुलाम कौम, जो हजार साल तक गुलाम रही हो, उसके हाथ में स्वतंत्रता मुसीबत बन सकती है। यह हमें जगाना था यह ख्याल, यह साफ करना था कि स्वतंत्रता एक दायित्व होगा, रिस्पांसिबिलिटी होगी और एक उपद्रव हो जाएगा। स्वतंत्रता हम चाहते हैं, लेकिन स्वतंत्रता सुख नहीं ले आएगी, सिर्फ स्वतंत्र प्रकार के दुख लाएगी।
यानी दुखों का चुनाव फिर हम ही करेंगे। फिर कोई हमारे लिए निर्णय नहीं करेगा कि कौन सा दुख हम झेलें? हम ही अपने दुख का चुनाव करेंगे। वह हमने कभी बताया नहीं था। हम आजादी का एक सपना लेकर जीते रहे। अब बीस साल में वह नारेबाजी खतम हो गई, क्योंकि अब आजादी आ गई, और कुछ भी न हुआ। अब हमको नये नारे चाहिए। और फिर हम नये नारे पकड़ रहे हैं सोशलिज्म के।
एक शब्द पकड़ लिया है कि समाजवाद आ जाएगा, सब ठीक हो जाएगा। अब हम उससे
भी बड़ी भूल कर रहे हैं। क्योंकि फिर हम वही पागलपन कर रहे हैं। फिर एक हवा पैदा कर रहे हैं मुल्क में कि समाजवाद आ जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा। जैसे कि समाजवाद नहीं है, बस यही एक, उसके आ जाने से सब ठीक हो जाने वाला है। अब फिर बीस-पच्चीस साल, पचास साल हम इस नासमझी में गवां देंगे। और मजा यह है कि वह जो पुरानी नासमझी थी, वह इतनी खतरनाक नहीं थी।
आजादी किसी भी स्थिति में आ सकती है। क्योंकि आजाद होने का प्रत्येक व्यक्ति हकदार है। चाहे वह योग्य हो, चाहे अयोग्य हो। आजादी के लिए कोई यह नहीं कह सकता है कि आप अभी योग्य नहीं हैं, इसलिए आजादी नहीं मिलेगी। आजादी की कोई योग्यता नहीं होती, होना ही आजादी के लिए काफी योग्यता है। लेकिन समाजवाद बड़ी और बात है। अब मैं समझता हूं कि जब तक कोई मुल्क ठीक से पूंजीवादी न हो जाए तब तक उसे समाजवाद की बातें करना खतरे में और बहुत गड्ढे में ढकेल देती हैं। मेरी नजर में पूंजीवाद और समाजवाद विरोधी व्यवस्थाएं नहीं हैं। मेरी नजर में पूंजीवाद का अंतिम परिणाम समाजवाद है। वह बिल्कुल सहज व्यवस्था है। उसके लिए किसी क्रांति में से गुजरने की जरूरत नहीं है। असल में पूंजीवाद ही वह क्रांति है जिसके फल में समाजवाद आता है। पूंजीवाद ही वह क्रांति है जिससे समाजवाद आ जाता है, अनिवार्यरूपेण। क्योंकि पूंजीवाद एक काम कर देता है, संपत्ति को पैदा करने का। और यह इतना बड़ा काम है जो पूंजीवाद के अलावा कोई भी नहीं कर सकता है।
न तो फ्यूडल सिस्टम्स कर सकती हैं, क्योंकि फ्यूडल सिस्टम जो थी सामंतवादी राजाओं की, रजवाड़ों की, वह लूट की व्यवस्था थी। किसी सम्राट ने कोई संपत्ति पैदा नहीं की। सम्राट लुटेरा है। वह लूटता है। संपत्ति कोई और पैदा करता है, किसान पैदा करता है, कोई और पैदा करता है, सम्राट सिर्फ लूटता है। सम्राट क्रिएटिव फैक्टर नहीं है। वह संपत्ति को पैदा नहीं करता। तो सम्राट जो है वह बड़े किस्म का लुटेरा है, बड़ा डाकू है, जिसके पास बड़ी ताकत है।
लेकिन पूंजीवाद बहुत भिन्न तरह की क्रांति है। वह संपत्ति को पैदा करने की व्यवस्था है। और पहली दफा दुनिया में पूंजीवाद ने वेल्थ को क्रिएट किया है। जो संपत्ति नहीं थी जमीन पर, उसको पैदा किया है। अगर पूंजीवाद पूरी तरह संपत्ति पैदा न कर पाए और हम बीच में समाजवाद की बातें

करें, तो फिर संपत्ति कभी पैदा नहीं हो पाएगी। समाजवाद संपत्ति बांट सकता है, और संपत्ति अगर पैदा हो गई हो, तो बहुत ही धीमी गति से संपत्ति पैदा भी कर सकता है।

प्रश्नः स्वामी जी, आज जो अपनी जनता है, वह ऐसा कहती है कि ये पूंजीवादी हैं, ये भी लुटेरे हैं।

यह गलत बात है।

प्रश्नः अच्छा, तो उनको कैसे समझाएं?

इसको बिल्कुल ही समझाया जा सकता है, क्योंकि यह बात ही गलत है। और बड़ी मजे की बात तो यह है कि गलत बात अगर समझाई जाए तो वह समझ में आ गई है। यही ख्याल है समाज को, और गरीब का यही ख्याल बहुत स्वाभाविक मालूम होता है कि उसको लगे कि मुझको लूट कर आप अमीर हो गए हैं। लेकिन हालत बिल्कुल उलटी है। हालत ऐसी है कि वह गरीब भी जो जिंदा है, वह सिर्फ इसलिए जिंदा है कि संपत्ति पैदा की गई, नहीं तो वह जिंदा नहीं होता।
बुद्ध के जमाने में हिंदुस्तान की आबादी दो करोड़ थी। और दो ही करोड़ रहती, इससे ज्यादा नहीं हो सकती थी। सारी दुनिया की आबादी पिछले डेढ़ सौ वर्षों में एकदम आकाश की तरफ गई है। दस बच्चे पैदा होते, तो आठ बच्चे मरते थे। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो एक बच्चा मर रहा है। और कल वह भी शायद नहीं मरेगा। अभी जो बात उठी थी कि एक बड़ा मकान बनता है, तो वह दूसरे मकानों को छोटा करके बनता है। असलियत बिल्कुल उलटी है।
असलियत यह है कि जब एक बड़ा मकान बनता है, तो दस छोटे मकान भी बन जाते हैं। अगर बड़े मकान को यहां से हटा दिया जाए तो दस पास के जो मकान हैं, वे विदा हो जाएंगे। क्योंकि इस बड़े मकान को उठाने में वे बने थे। जब एक बड़ा मकान बनता है, तब एक राज काम करता है, एक मिट्टी लाने वाला काम करता है, एक ईंट जोड़ने वाला काम करता है। एक बड़ा मकान जब बनता है तो दस छोटे मकान बिना बनाए बन ही नहीं सकता। दस छोटे मकान बन ही जाएंगे। लेकिन जब बन कर खड़े हो जाएंगे तो सड़क पर से देखने वाला यह कह सकता है कि यह बड़ा मकान जो है इन दस को लूट कर बड़ा हो गया है। जब कि ये दस होते ही नहीं, अगर यह बड़ा मकान नहीं बनता।
पूंजी पैदा की है, पूंजी थी नहीं। आज अमरीका में जो पूंजी है, वह कभी
भी न थी। वह सब पैदा हुई है। और पूंजी पैदा हो जाए और इतनी पैदा हो जाए कि उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अर्थ न रह जाए, तब तो समाजवाद सहज अपने आप आता है। लेकिन पूंजी बहुत थोड़ी हो और समाज बांटने का आग्रह करने लगे, तो पूंजी पैदा करने की जो व्यवस्था विकसित हो रही थी, वह भी टूट जाती है। और समाज संपत्ति पैदा नहीं कर सकता। तो हिंदुस्तान के सामने जो बड़े से बड़ा सवाल है, वह यह है कि अगर हम समाजवादी व्यवस्था को आज स्वीकार करते हैं, जैसा कि लगता है कि पागलपन है और वह स्वीकृत हो जाए तो हिंदुस्तान सदा के लिए गरीब होने के लिए जिम्मा ले लेगा, ठेका ले लेगा।

प्रश्नः आचार्य श्री, हिंदुस्तान के जो पूंजीवादी हैं, और देशों से
आप उस देश के पूंजीवादियों को बुलाएं। जैसे एक आर्टिस्ट है, देहात में चीज बनाता है दो रुपये की। मेरा अपना यह खुद का अनुभव है। क्योंकि मैं एक कला- केंद्र चलाती हूं। उसको लाकर के यहां पूंजीवादी दो सौ रुपये में बेचता है। और उस आदमी के लिए दो रुपया भी नहीं।

हां, मैं आपसे यह पूछता हूं, यह आदमी दो सौ रुपये में न बेचे तो वह आदमी
दो रुपये में क्या दो आने में भी बेच लेगा? यह आदमी दो सौ रुपये में न बेचे तो वह जिसको आप कलाकार कह रही हैं गांव के, वह उसे दो आने में भी बेच लेगा? यह आदमी उसे दो रुपये दे रहा है, यह आपको दिखाई नहीं पड़ता। गांव में एक आदमी है उससे दो रुपये की चीज लेकर एक आदमी दो सौ रुपये में बेच रहा है।

साफ दिखाई पड़ रहा है कि एक सौ अट्ठानबे रुपये इसने लूट लिए। इसने किससे लूट लिए, उस गांव के आदमी से लूट लिए? वह दो सौ रुपये में बेच लेता? मैं जो पूछता हूं, मैं दूसरी बात कह रहा हूं। मैं इसलिए कह रहा हूं ऐसा कि यह आदमी अगर उसे दो सौ रुपये में बेच रहा है, तो वह गांव वाले को दो रुपये दे रहा है जो कि उसको मिलने वाले थे ही नहीं। वह जो दो रुपये उसको मिल गए हैं न... हमारी नजर में जो सबसे बड़ा मजा यह है कि हम तो कह सकते हैं कि यह जो दो सौ रुपये लेने वाला है, इसको मिटा दो।
यह बड़ा सीधा तर्क है। मेरी बात समझ लें पूरी। यह पूरी बात समझने जैसी है। इसलिए समझने जैसी है कि सोशलिज्म का तर्क तो इतना सहज मालूम होने लगा है हमें कि हम उसके बिना कुछ... सोशलिज्म की बात नहीं है, हमारे मन में यह बहुत सीधा हो गया है कि एक गरीब आदमी की दो रुपये की चीज लाकर आपने दो सौ रुपये में बेच ली और आपने एक सौ अट्ठानबे रुपये बचा लिए। आपने लूट लिया। पूंजीवाद की जो व्यवस्था है, व्यवस्था कुल इतनी है कि कुछ लोग संपत्ति को पैदा करने की कुशलता में लगे हुए हैं।

प्रश्नः नहीं, पैदा नहीं करते हैं।

आपको ख्याल में नहीं है।

प्रश्नः पैदा करने वाले दूसरे हैं। जो पैदा कर रहे हैं वे दूसरे हैं।

यह हमारा ख्याल है।

प्रश्नः दूसरों की मेहनत पर ये लोग पैसा बनाते हैं। वे कुछ नहीं करते।

यह तो बिल्कुल ठीक कह रही हैं आप। और मजा यह है कि वह जो दूसरे की मेहनत है, अगर यह पैसा बनाने वाला न हो, तो न तो दूसरे की मेहनत बचती है, न मेहनत करने वाला बचता है। वे दोनों नहीं बचते। मेरी पूरी बात समझ लें। मैं जो कह रहा हूं अभी, वह यह कह रहा हूं कि वह जो हमें दिखाई पड़ रहा है कि शोषण किया जा रहा है कुछ लोगों का, उन लोगों का शोषण जो हमको दिखाई पड़ रहा है, उस शोषण में दो तरह की भ्रांति हो रही है। एक तो यह भ्रांति हो रही है कि अगर यह शोषण की व्यवस्था टूट जाए तो वे बड़े सुखी हो जाएंगे। क्योंकि जिससे आप मुफ्त में ले आए थे चीज, वह उसको दो सौ में बेच लेगा। एक तो हमको यह ख्याल हो रहा है। अगर वह दो सौ में बेच सकता होता तो उसने दो सौ में बेच ली होती। और तब वह पूंजीपति हो गया होता। यह नहीं हुआ होता, वह हो गया होता। जो संपत्ति पैदा हो रही है, वह भी हमें दिखाई पड़ती है कि संपत्ति पैदा हो रही है। एक मजदूर गड्ढा खोद रहा है, वह संपत्ति पैदा कर रहा है। एक आदमी खेत में गेहूं पैदा कर रहा है, वह संपत्ति पैदा कर रहा है। ये संपत्ति पैदा नहीं कर रहे हैं। और अगर इनके ही हाथ में समाज छोड़ दिया जाए तो समाज भूखा मर जाएगा।
संपत्ति पैदा करना बहुत और तरह की बात है। इन सबका उपयोग किया जा रहा
है, संपत्ति पैदा करने में, लेकिन ये संपत्ति पैदा नहीं कर रहे हैं। संपत्ति पैदा और ढंग से की जा रही है, उसमें इनका उपयोग हो रहा है। और मैं मानता हूं, इनका उपयोग ही होगा। अगर कल सोशलिज्म आ जाता है, जैसे रूस में, तो वह गड्ढा खोदने वाला आज भी गड्ढा खोद रहा है। उसको कोई दो सौ रुपये मिल गए हैं, इस ख्याल में आप मत रहना। अब वह जो पेंटिंग उसकी दो सौ में किसी ने बेची थी, वह उसकी अब दो में भी नहीं बिक रही है। क्योंकि हुआ क्या है, हुआ यह है, होगा यह कि ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि हम कुछ लोगों के हाथ से यह सारी व्यवस्था छीन कर राज्य के हाथ में दे दें और राज्य इस पर हावी हो जाए।
अभी मैं जो कह रहा हूं, वह मैं यह कह रहा हूं कि पूंजीवाद का एक ऐतिहासिक रोल है। पूंजीपति से मुझे मतलब नहीं है। पूंजीपति का कोई मूल्य

नहीं है, क्योंकि पूंजीपति आज "अ" है, कल "ब" होगा, कल "स" होगा। आज "अ" मजदूर है, कल "ब" पूंजीपति हो सकता है, कल "स" मजदूर हो सकता है। यह कोई सवाल नहीं है। पूंजीपति से कोई प्रयोजन नहीं है। पूंजीवाद की जो व्यवस्था है वह व्यवस्था ने पूंजी पैदा करने के हजारों रास्ते ईजाद किए हैं। उन रास्तों का इतना उपयोग हो सकता है कि संपत्ति इतनी पैदा हो जाए कि संपत्ति पर व्यक्तिगत मालकियत रखने में कोई अर्थ न रहे। व्यक्तिगत मालकियत का अर्थ तभी तक है, जब तक संपत्ति न्यून है। जब तक संपत्ति इतनी कम है।

प्रश्नः स्वामी जी, प्रश्न तो ऐसा है कि अब यह जनता को कैसे समझाया जाए?

यह बड़ा सवाल जनता को समझाने का उतना नहीं है, जितना आपको समझने का है। पहली तो कठिनाई क्या है, बड़ी कठिनाई क्या है कि आज हिंदुस्तान में जिसको हम समझदार वर्ग कहते हैं, उसको भी कुछ ख्याल में साफ नहीं है कि बात क्या है। किसी के ख्याल में बात साफ हो, तो भी साहस नहीं है कि वह सीधी और साफ बात कहे।
मैं मानता हूं कि समाजवाद अनिवार्य है, लेकिन हिंदुस्तान में पचास-साठ, सत्तर साल बाद। और पचास-साठ साल हिंदुस्तान को इतनी संपत्ति पैदा करनी चाहिए, और संपत्ति पैदा करने के लिए इतनी सुविधाएं जुटानी चाहिए कि पचास साल हमें तय कर लेना चाहिए कि हम संपत्ति ही पैदा करेंगे। और जो लोग भी संपत्ति को पैदा करने में किसी तरह सहयोगी हो सकते हैं, उनके लिए सारी सुविधाएं देंगे। और हमें फिक्र इसकी करनी चाहिए। और इसका मतलब यह होगा कि एक बार इस मुल्क के पास--यह मुल्क कोई हजारों साल से गरीब है। इसकी गरीबी इतनी क्रानिक है, इतनी लंबी है कि अगर इस मुल्क को सौ पचास वर्ष का पूंजीवाद का ठीक से संपत्ति पैदा करने की व्यवस्था न मिले तो यह मुल्क स्थायी रूप से गरीब हो सकता है।
अगर आज हम समाजवाद ले आएं, तो जो थोड़ी सी संपत्ति कहीं-कहीं पैदा हो रही है, वह तो बंद हो जाएगी। और संपत्ति पैदा करने के लिए नया कोई--आज जितना गवर्नमेंट इंटरप्राइज है, गवर्नमेंट कुछ भी हाथ में ले ले, वहीं नुकसान लगना शुरू हो जाता है। उसका कारण है कि मुल्क इतना गरीब रहा है कि संपत्ति पैदा करने का उसे बोध नहीं है। तो जब सरकार के हाथ में चला जाता है मामला, तो संपत्ति पैदा करने की बात खतम हो जाती है। संपत्ति तो पैदा होती नहीं, उलटा नुकसान लगना शुरू हो जाता है। सरकार जो भी हाथ में लेती है, उसमें नुकसान लगता है।

प्रश्नः सरकार को यह महसूस क्यों नहीं है?

सरकार के साथ मजा यह है कि मुल्क का बड़ा हिस्सा गरीब है। गरीब की ईर्ष्या को जगा कर उससे कुछ भी करवाया जा सकता है। आज राजनीतिज्ञ के पास जो ताकत है, वह गरीब की ईर्ष्या को जगाने में है। और जो समझ सकते हैं, वह पता नहीं, उनको साफ नहीं है। हिंदुस्तान में अगर पूंजीवाद बिना लड़ाई लड़े मर जाता है, तो हिंदुस्तान के लिए इससे बड़ा दुर्भाग्य कुछ भी नहीं होगा। और यह सवाल पूंजीपति का है ही नहीं। यह सवाल पूंजीपति का नहीं है, यह व्यवस्था का है कि पचास साल यह व्यवस्था इस मुल्क को इतनी तीव्रतम रूप से चलानी चाहिए कि संपत्ति हमारे पास इतनी हो... । अभी तो मजा यह है कि संपत्ति है नहीं, हम बांटने की बातें करते हैं। ये सब नासमझी की बातें हैं।
आज हिंदुस्तान में बीस हजार परिवार भी नहीं हैं, जिनको हम कह सकें कि
ये समृद्ध हैं। बीस हजार परिवार भी नहीं हैं, जिनको हम समृद्ध कह सकें। और दस-पांच परिवार हैं जिनको कि हम कह सकें कि भई हां, इनको हम किसी तल पर करोड़पतियों में गिनें। इनकी सारी संपत्ति उठा कर भी आज बांट दी जाए तो मेरे पास दो-चार आने ही पड़ता है, जिसका कि कोई अर्थ नहीं रह जाता। और ये सारे बंटवारे में गरीब की उत्सुकता है। क्योंकि गरीब की समझ कितनी है?

पहली तो बात यह है, वह नासमझ है, इसलिए गरीब है। उसकी गरीबी के होने में वह भी हिस्सा है कि वह नासमझ है। अब उसकी ईर्ष्या को तो भड़काया जा सकता है। उसकी ईर्ष्या के साथ बहुत खेल खेला जा सकता है। वह ईर्ष्या जगा दी गई है। इस वक्त मुल्क को बहुत स्पष्ट रूप से समझाने की जरूरत है कि पूंजीवाद का रोल क्या है और पूंजीवाद क्या कर सकता है? पूंजीवाद को अपनी पूरी फिलासफी साफ रखने की जरूरत है। और मैं नहीं मानता कि कठिन है मामला। मैं नहीं मानता कठिन है समझाना मामला।

प्रश्नः मैं इतना मानता हूं कि आप जैसे लोग ही इसको समझा सकते हैं। हम जैसे समझाने जाएं तो लोग गलत समझते हैं।

यह तो आप ठीक कहते हैं। बेसिक सवाल जो है, सबसे बड़ा वह यह है कि एक तो
आज पूंजीवाद की पूरी फिलासफी को मुल्क के सामने रखने की जरूरत है। समाजवाद के सीधे कंट्रास्ट में कि समाजवाद क्या करेगा? पूंजीवाद क्या कर सकता है? पूंजीवाद क्या कर सकता है मुल्क के लिए, इसकी पूरी स्पष्ट फिलासफी मुल्क के सामने रखने की जरूरत है। उसको जोर से प्रचारित करने की जरूरत है। और समाजवाद क्या करेगा, उसको भी बहुत साफ रखने की जरूरत है कि क्या कर सकेगा, क्या हो सकता है? इसके बाबत तो पूरा का पूरा, सारे आंकड़े, सारी व्यवस्था; रूस में क्या हुआ, चीन में क्या हुआ, हिंदुस्तान में क्या होगा समाजवाद के नाम से, उस सबकी सारी की सारी रूपरेखा स्पष्ट करनी चाहिए। अब रूस में कोई एक करोड़ लोगों की हत्या करनी पड़ी--अस्सी लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की। और इसके बावजूद भी उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस अपना अन्न खुद पैदा कर रहा था। और इसके बाद निरंतर पूंजीवादी मुल्कों से खरीद रहा है। दूसरे महायुद्ध के बाद रूस सारा निर्भर है केनेडा पर, भोजन के लिए। और रूस में अभी सबसे बड़ा जो प्रॉब्लम है, वह यह है कि इंसेंटिव खत्म हो गया है, कोई काम नहीं करना चाहता है। तो रूस जैसे मुल्क में इंसेंटिव खत्म हो जाए, तो हिंदुस्तान जैसे मुल्क में, जिसमें इंसेंटिव है ही नहीं, खतम करने का तो कोई सवाल ही नहीं है यहां। वह कभी था ही नहीं। वह होता तो हम कुछ कर लिए होते, वह कभी था ही नहीं। कुछ थोड़े से लोगों में वह पैदा हुआ है, तो उनको हम काट दे सकते हैं। उनको काटने में कोई कठिनाई नहीं है।
दूसरी बात, हमको यह समझाना पड़ेगा मुल्क को कि पचास साल का प्रयोग रूस में असफल हुआ है। रूस अमीर नहीं हो सका। रूस आज भी गरीब मुल्क है। और इसलिए रूस रोज कदम उठा रहा है कि अमरीका के निकट कैसे पहुंच जाए? और कैसे धीरे- धीरे पूंजीवादी व्यवस्था का जो लाभ है वह लेने लगे? इसकी पूरी फिक्र चल रही है।
अब एक बहुत बड़ा मिरेकल घट रहा है। अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है, रूस रोज पूंजीवादी होता जा रहा है। और हम बड़े नासमझ है।

प्रश्नः अमरीका कभी समाजवादी होता है तो उनकी पूंजी सबसे पहले समाज में ही आती है।

वह आती है। अमरीका का समाजवादी होना बहुत ही और बात है। मेरा मानना है
कि अमरीका जिस दिन समाजवादी होगा, वह स्वागत के योग्य उसका समाजवाद होगा। क्योंकि उसने पूंजी पैदा कर ली है और वह बांटने की बातें कर सकता है। अब बांटने का कोई सवाल नहीं है, बंटी जा रही है। उसमें कोई सवाल नहीं, उसको करिएगा क्या? पूंजी का अर्थ क्या है? तो मैं मानता हूं कि अमेरिका के ही रास्ते से कोई मुल्क समाजवादी होगा तो ही शुभ है, अन्यथा अशुभ है। वह दिक्कत में पड़ जाने वाला है बहुत। हम तो बहुत दिक्कत में पड़ जाने वाले हैं। हमारा तो कोई हिसाब ही नहीं है। क्योंकि मुल्क में कोई काम करने की प्रेरणा रही नहीं है कभी। संपत्ति पैदा करने की प्रेरणा नहीं है मुल्क में, क्योंकि हजारों साल से हमने संपत्ति के विरोध में लोगों को समझाया है।

हमने समझाया, आवश्यकताएं कम रखना। गरीब की हमने पूजा की है। दरिद्रनारायण को भगवान बना कर बिठाया हुआ है। तो हमारा जो पूरा का पूरा मुल्क है, जहां कि आवश्यकताओं को कम रखने पर जोर है, गरीबी की महानता है, दीनता का गौरव है, गुणगान है। और जहां प्रेरणा नहीं है काम करने की कुछ भी, उस मुल्क को समाजवाद की बात करनी, इतने खतरे में ले जा सकती है जितनी दुनिया में किसी को भी नहीं ले जा सकती है।
फिर दूसरे मजे की बात यह है कि लोकतांत्रिक ढंग से हम समाजवाद लाने के ख्याल में हैं। माओ जैसा आदमी या स्टैलिन जैसा आदमी जो दस-पचास लाख लोगों की हत्या करने को सीधा तैयार हो, तो इंसेंटिव की जगह बंदूक के कुंदे से काम ले सकता है। वह भी असफल हो गया। रूस में बंदूक का कुंदा भी असफल हो गया। और स्टैलिन के साथ उन्होंने जो मरने के बाद व्यवहार किया, वह उसकी खबर है कि जिस आदमी ने सोशलिज्म लाया, जो आदमी पूरी जिंदगी खपा कर, इतना मुश्किल में डाल कर मुल्क को समाजवाद लाया, उसकी उन्होंने लाश निकाल कर उसकी कब्र से फिंकवा दिया। क्योंकि उसने पचास साल पूरे रूस को एक कारागृह बना कर रखा। लेकिन फिर भी कोई फल नहीं हुआ। और भी कुछ बुनियादी बातें हैं, जो बुनियादी बातें हमें सीधे तथ्यों की तरह सामने पूरे मुल्क के रखनी चाहिए, उसके व्यापक प्रचार की जरूरत है।
मेरा मानना ऐसा है कि समाजवाद की जो नारेबाजी है, उसके खिलाफ कोई व्यापक प्रचार नहीं है। मजा तो यह है कि जो उसके खिलाफ हैं, वे भी समाजवाद का ही नाम लेंगे। उनकी भी दहशत इतनी ज्यादा है कि वह भी समाजवाद का नाम लिए बिना काम नहीं करेंगे। उनको भी समाजवाद का नाम लेना पड़ेगा।

प्रश्नः पंडित जी ने ब्रेन-वाशिंग कर लिया सोशलिज्म का।

कुछ भी सवाल नहीं है। उसको मिटाया जा सकता है। उसमें कुछ भी मामला नहीं है। और जब मामला यह है कि तथ्य उसके विपरीत हैं, इसलिए मिटाने में कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्नः पूंजीवादियों से ही सबसे बड़ा सहयोग उनका है। अगर वे लोग इस चीज को सोचें तभी ठीक बन सकती है।

बिल्कुल ठीक कहती हैं। इसके लिए पूरा मंच बनाने की जरूरत है। अखबार चाहिए, अखबार हैं, प्रचार के लिए मंच चाहिए, वह मंच बनानी चाहिए, पब्लिकेशंस करनी चाहिए।

प्रश्नः यह तो सब तरह से सबको मालूम है। हमारी इसमें एक विनती है कि
आप जैसे आचार्य, जो आपके भाषण में कभी-कभी ये ऐसे सब्जेक्ट को भी टच करें...

इधर मैं ले ही रहा हूं लोकल में।

प्रश्नः सबको समझाएं। और इधर ही नहीं, हर गांव में, तो ही कुछ होने वाला है असर। क्योंकि नहीं तो कोई किसी का सुनने वाला नहीं है। पोलिटिकल लीडर्स आकर यह कह जाते हैं, तो वह सोचता है, ये तो इनकी खुद की बात कर रहा है, वह स्वार्थ के वास्ते बात कर रहा है।

मैं समझा। वह लगेगा।

प्रश्नः दिस इ.ज दि इंपॉरटेंट थिंक। बट आई थिंक दि रिलिजिएस दैट हू कैन ओनली गाइड दिस काइंड ऑफ नेशन। व्हिच इ.ज टुडे अकार्डिंग टु मी ए ब्लाइंड मैन।

है ही। है ही।

प्रश्नः स्वामी जी, आपने यह बताया समाजवाद की बात और पूंजीवाद... कि समाजवाद इ.ज आल्सो इकोनॉमिक, कैपिटलिज्म इ.ज आल्सो इकोनॉमिक फिलासफी, इट इ.ज द मेटर ऑफ च्वाइस।

मैं समझा, मैं समझा आपकी बात। यह आप बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं कि दोनों इकोनॉमिक सिस्टमस हैं, चुनाव की बात है। लेकिन एक बुनियादी फर्क ख्याल में होना चाहिए। वह यह है कि समाजवाद पूंजीवाद के बाद की स्टेट है, पूंजीवाद के पहले की नहीं है। दोनों ही इकोनॉमिक फिलासफीज हैं, बिल्कुल ही ठीक बात है और दोनों में से चुनने की बात है, वह भी बिल्कुल ठीक है। लेकिन पूंजीवाद के बाद की अवस्था है, पहली तो बात यह ख्याल में लेनी चाहिए। और क्यों बाद की है? कि पूंजीवाद को जो काम पूरे कर देने हैं सोसाइटी में, वे पूरे हो जाने चाहिए। तब तो एक नेचरल ग्रोथ सोशलिज्म की तरफ जाती है।

प्रश्नः... पीपुल आर टायर्ड।

नहीं-नहीं, यह आपके टायर्ड होने से। एक बच्चा अगर टायर्ड हो जाए और बूढ़ा होना चाहे जवान हुए बिना, तो भला टायर्ड हो गया हो... इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन एक स्टेट को पार होने के लिए जरूरी है। आप टायर्ड हो गए हों यह दूसरी बात है। लेकिन टायर्ड होने से जो आप करेंगे वह ठीक नहीं हो जाएगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, मैं समझा। यह मैं नहीं कह रहा हूं। इतना आसान नहीं है चुनाव।
जब मैं यह कह रहा हूं कि पूंजीवाद जब तक संपत्ति को इतना पैदा न कर ले कि हम एक समाजवादी ढांचे में उस संपत्ति का उपयोग कर सकें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, डिफरेंस हो सकता है, डिफरेंस होने में कोई कठिनाई नहीं है। जब तक
यह संभव न हो जाए, तब तक प्रि-मैच्योर कुछ भी करना खतरे में ले जाएगा, वह मेरा कहना है। और दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह मैं यह कहना चाहता हूं कि इस मुल्क की जो गरीबी है, इस मुल्क की गरीबी का कारण पूंजीपति का होना तो है ही। इस मुल्क की गरीबी के जो दूसरे कारण हैं, वे कारण मद्देनजर हो जाते हैं, सिर्फ एक ही ख्याल सामने रह जाता है कि किसी तरह शोषण बंद हो जाए, तो सब गरीबी मिट जाएगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जब भी हम समाजवाद की बात करते हैं तो एक बुनियादी भूल हो जाती है, और
वह बुनियादी भूल यह हो जाती है कि बात तो समाजवाद की होती है, लेकिन जाने- अनजाने वह सारी बात के पीछे स्टेट खड़ी है, राज्य खड़ा हुआ है। समाजवाद की बात होती है, लेकिन स्टेट कैपिटलिज्म तक बात जाती है। इससे आगे कहीं जाती नहीं है।
क्योंकि जब भी आप समाजवाद की बात करते हैं--जब आप कहते हैं सोसाइटी के हाथ में रहे, तो सोसाइटी शब्द बड़ा भ्रांत है। सोसाइटी का मतलब होता है, स्टेट। और जब भी आप सोचते हैं कि प्रोडक्शन के मीन्स जो हैं वे सोसाइटी के हाथ में चले जाएं, तब वह नाम सोसाइटी का होता है, पहुंच जाते हैं स्टेट के हाथ में। समाजवाद के नाम से जो हम ला सकते हैं वह ज्यादा से ज्यादा राज्य-पूंजीवाद, स्टेट कैपिटलिज्म ही हो सकता है, इससे भिन्न होने वाला नहीं है कुछ। क्योंकि सोसाइटी कहां है, जिसके हाथ में चले जाएं--राज्य के हाथ में चले जाएंगे।

और जिस मुल्क में--हमारे जैसे मुल्क में--जहां पोलिटिकल ताकत राज्य के हाथ में इस बुरी तरह से उपयोग हो रही है, वहां उसके हाथ में सारी इकोनॉमिक फोर्सेस की ताकत भी पहुंचा देना, दोहरी सुसाइड कर लेने का काम होने वाला है। एक तो सच यह है कि जब राज्य के हाथ में दोनों ताकतें एक साथ इकट्ठी हो जाएं, तो उसके हाथ में देश की संपत्ति की मालकियत भी चली जाए, और देश की राजनैतिक ताकत भी उसके हाथ में चली जाए, तो हम राज्य को इतनी ताकतें दे रहे हैं, जो ताकतें खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। खतरनाक सिद्ध हुई हैं।
जरूरत तो यह है कि राज्य के हाथ से ताकत धीरे-धीरे कम हो। और बड़े मजे
की बात यह है कि ख्याल तो यही था, रूस में जैसा हुआ, ख्याल यही था कि पूंजीवाद मिटेगा तो क्लासेस मिट जाएंगी, लेकिन दो नई क्लासेस पैदा हो गईं। एक मैनेजर्स की क्लास पैदा हो गई है और एक मैनेज्ड की क्लास पैदा हो गई है। अमीर और गरीब तो चला गया, लेकिन उसकी जगह दो नई क्लासेस हो गईं-- मैनेजर्स की एक क्लास। पचास आदमियों का छोटा सा ग्रुप पिछले पचास सालों से हुकूमत कर रहा है। उस पचास आदमी में से आदमी बदल जाता है, लेकिन वह पचास आदमी का एक छोटा सा ग्रुप है, जो पूरी हुकूमत कर रहा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यानी मेरा जो कहना है वह यह है कि समाजवाद जो है वह पूंजीवाद जब संपत्ति को पैदा कर ले, तभी वह समाजवाद की व्यवस्था में रूपांतरित हो सकता है, नहीं तो नहीं हो सकता। और अगर हमने पहले से रूपांतरित करने की कोशिश की, तो पूंजीवाद जो काम कर सकता है, वह रुक जाता है और समाजवाद पूंजी पैदा नहीं कर सकता है। उसके पास कोई इंसेंटिव नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं तो यह कहता ही हूं कि समाजवाद पूंजी पैदा करने में समर्थ नहीं है।
और यह भी मेरी समझ है कि समाजवाद अगर लाया जाएगा, चेष्टित, थोपा जाएगा ऊपर से, तो उससे फायदे तो होने वाले नहीं हैं, नुकसान हो जाने वाले हैं। वह अगर एक आउट ग्रो हो, समाज के भीतर से धीरे-धीरे विकसित हो, जो कि होना चाहिए, तब बहुत और स्थिति होगी। और जितने भी नुकसान उससे होने वाले हैं, तब वे नहीं होंगे। जैसे उदाहरण के लिए--अगर हम समाजवाद को ऊपर से थोपते हैं, तो वह सब तरह की स्वतंत्रता की हत्या किए बिना नहीं थोपा जा सकता। वह असंभव है। स्वतंत्रता की हत्या करनी पड़े तो हम उसे ऊपर से थोप सकते हैं।

प्रश्नः उसके सामने ऐसा भी सवाल है कि जैसे समाजवाद लादा जाए किसी पर, देश में, तो नुकसान है, किसी तरह पूंजीवाद भी लादा जाए...

न, न, न। मैं नहीं कहता, लादा जाए, मैं अगर कहूं कि पूंजीवाद लाना है, तब
तो गलती बात हो जाए। पूंजीवाद है। वह आया है, लादा नहीं गया। जो भी है यहां, वह लादा नहीं गया है। वह आया है। आने और लादे जाने में फर्क है। इसी तरह समाजवाद भी किसी दिन आए, यह मैं चाहता हूं। यह मैं चाहता हूं, जिस तरह जो भी व्यवस्था आज है या कल होगी, वह आनी चाहिए, वह नेचरल ग्रोथ होनी चाहिए। वह फोर्सड इंप्लीमेंटेशन नहीं होना चाहिए। फोर्सड इंप्लीमेंटेशन जो है, वह गलत है। वह वाइलेंस होगी ही उसमें और गहरे में स्वतंत्रता की हत्या भी होगी।
और यह भी मेरी समझ है--इसको अलग से थोड़ी बात कर लेना चाहूंगा आपसे, यह
भी मेरी समझ है कि मौलिक रूप से समाजवाद जब थोपा जाए, तो व्यक्ति की हत्या करेगा, इंडिविजुअल को मिटाएगा, और जब आए, तो वह इंडिविजुअल को मिटाने वाला सिद्ध होने वाला नहीं है। तब इंडिविजुअल को मिटाने की कोई जरूरत नहीं होगी। एफ्लुएंट सोसाइटी की जरूरत है कि हमारे पास इतनी समृद्धि हो कि संपत्ति बांटना किसी भी तरह की कठिनाई की बात न रह जाए। किसी को राजी करने की जरूरत ही न हो कि संपत्ति बांटने के लिए आप राजी हो जाएं। बल्कि हमें

संपत्ति रखना मुसीबत का कारण हो जाए। उसे बांटना ही सरल हो जाए। इसलिए मैंने कहा कि अमेरिका अगर आने वाले तीस-चालीस वर्षों में रोज समाजवादी होता चला जाएगा, तो वह नेचरल ग्रोथ होगी। और अमरीका में जो समाजवाद आएगा, उसका सौंदर्य बहुत अलग होगा। वैसा सुंदर समाजवाद हम गरीब मुल्कों में नहीं ला सकते। वह कुरूप होगा और अग्लि होगा।

प्रश्नः ओशो, हिंदुस्तान के बारे में आपका क्या विचार है?

यही मेरा कहना है कि हिंदुस्तान को पचास वर्ष तो कम से कम व्यवस्थित पूंजीवाद में बिताने चाहिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में मुझसे कोई कहे, मनुष्यता को प्रेम करो, तो मैं किसको प्रेम करूं? मनुष्यता कहीं मिलती नहीं। जहां मिलता है, कोई आदमी मिलता है। एब्स्ट्रेक्ट शब्दों में कहीं भी कुछ है नहीं। आप जब किसी को प्रेम करेंगे तो किसी कांक्रीट इंडिविजुअल को प्रेम करेंगे, मनुष्यता को कैसे करेंगे? मनुष्यता को प्रेम नहीं किया जा सकता। क्योंकि मनुष्यता तो बड़ी ठंडी चीज है, है ही नहीं पहली तो बात। कहां मनुष्यता को गले लगाइएगा? तो मनुष्य का जो स्वभाव है, वह स्वभावतः एब्स्ट्रेक्ट और हवाई बातों के लिए नहीं है, न हो सकता है, इसलिए जितना जिंदा आदमी होगा, उतना कांक्रीट होगा। जितना मरा हुआ आदमी होगा, मुर्दा आदमी होगा, उतना एब्स्ट्रेक्ट बातें करेगा।
अगर आपको किसी आदमी से प्रेम नहीं करना है, तो फिर आप मनुष्यता से प्रेम कर सकते हैं। फिर कोई दिक्कत नहीं है, फिर कोई कठिनाई नहीं है। और मनुष्य की सीमा है। जितनी सीमा से दूर होती जाती है बात, उतने उसके हाथ के पहुंच के बाहर होती जाती है। अब राष्ट्र है, वह मेरी हाथ के पहुंच के बाहर हो जाता है। अब सारे राष्ट्र को स्वच्छ करने की बात हो, तो हाथ के बाहर हो जाती है, क्या करूं, कैसे करूं? लेकिन इस कमरे को स्वच्छ करना हो, तो मेरे हाथ के भीतर होती है बात। हमें मनुष्य के स्वभाव को समझना चाहिए। सोशलिज्म जो है, वह मनुष्य के स्वभाव को बिल्कुल ही समझने के लिए तैयार नहीं है। वह मनुष्य के ऊपर एक तरह का स्वभाव लाद रहा है, जो कि सच नहीं है। जैसे कि अभी आपने कहा, वह गलत कहते हैं आप। आप कहते हैं कि एवरीबडी इ.ज सोशलिस्ट, कोई नहीं है। जो सोशलिस्ट कहता है वह भी नहीं है। उसको भी एक बड़ी कार दे दो, एक बड़ा बंगला दे दो और एक खूबसूरत औरत दे दो, वह भी नहीं है। वह भी नहीं है। आप कहते हैं कि सब आदमी सोशलिस्ट हैं, बिल्कुल गलत कहते हैं। सब आदमी इंडिविजुअलिस्ट हैं। सोशलिस्ट होना आसान मामला कहां है? सोशलिस्ट होने का मतलब ही क्या होता है? कोई आदमी सोशलिस्ट नहीं है। सोशलिस्ट होने का कोई मतलब नहीं होता।
हर आदमी इंडिविजुअलिस्ट है और बुराई भी नहीं है इसमें। मैं कहता भी नहीं कि बुराई है। बिल्कुल स्वाभाविक यही है। और न ही यह बात सच है कि आप सब लोगों को समान मानते हैं। कोई आदमी नहीं मानता है। और न मैं यह कहता हूं कि सब आदमी समान हैं। कोई आदमी है भी नहीं। हो भी नहीं सकता। और हर आदमी की अपनी जिंदगी है।
मैं एक स्त्री को प्रेम करता हूं, तो उसके लिए मैं एक घर सजाना चाहता हूं। घर का सजाना अपने आप में मूल्यवान है ही नहीं। आपकी जिंदगी में कोई स्त्री नहीं है तो आप कैसे भी कपड़े पहने हुए बैठे हुए हैं। और एक स्त्री आपकी जिंदगी में आ गई, आपके कपड़े संवर गए, सुधर गए, आपके कपड़े देख कर समझा जा सकता है कि स्त्री जिंदगी में है या नहीं। कोई जिंदगी में आ रहा है, तो आपकी जिंदगी में एक प्रेरणा आ रही है। और उस प्रेरणा की... ऐसा जैसे हम एक नदी में पत्थर फेंकते हैं, तो जो पहला वर्तुल उठता है, वह बड़ा होता है, फिर उसके बाद छोटे होते जाते हैं, फिर जितने दूर वर्तुल फैलते जाते हैं उतने सर्किल छोटे होते चले जाते हैं। ऐसा ही मनुष्य है।

हर आदमी अपने केंद्र पर गहरा से गहरा वर्तुल उठा रहा है। फिर वह जैसे- जैसे दूर होता जाता है, उतना छोटा होता जाता है। यह स्वाभाविक है। इसलिए अगर आपने बहुत बड़े वर्तुल बना लिए और आपने कहा कि उनके लिए जीओ, तो वह तो बेमानी हो जाएगी, वह आपके हाथ के बाहर हो जाएगी। इसलिए सोशलिज्म के पास इंसेंटिव नहीं है। सोशलिज्म के पास एक वाइलेंस है। तो वाइलेंस तभी तक काम करती है, जब तक जिनके पास है, उनसे आप नहीं छीन लेते हैं। जब आप छीन लेंगे, तब वह खत्म हो जाती है। तब क्या करिएगा? अभी यह बात है बिल्कुल पक्का, जिस दिन उन्नीस सौ सत्रह में रूस में जार के महल पर हमला किया, तो उसके घर का, बड़ा बहुमूल्य कालीन था उसके महल में। अब उसको सैकड़ों लोग इकट्ठा खींचने लगे, उस कालीन को ले जाने के लिए। उसे कैसे ले जाएंगे, इतने लोग कैसे ले जाएंगे। तो फिर यह हुआ कि लोगों ने उसके टुकड़े काट-काट कर, कोई जरा-जरा सा टुकड़ा अपने-अपने घर ले गए। अपने घर में टांग लिया कि हमारे घर में भी लाखों रुपये के कालीन का एक टुकड़ा है। वह तो उन्होंने बांट लिया। वह घर जो सुंदर था, वह भी उजड़ गया, लेकिन उससे उनका घर सुंदर नहीं हो गया, उधर एक वह चीथड़ा भर लटक गया, जिसका कोई मतलब नहीं है, जिसका कोई अर्थ नहीं है। और मजे की बात यह है कि वह जब टुकड़ा वे घर ले गए, तो लटकाया अपने ही घर में। उसको भी जाकर किसी पब्लिक प्लेस में नहीं जोड़ आए। वह अपने ही घर में लटकाया न। वह जाकर अपने घर में लटकाया।
आदमी का जो दिमाग है, आदमी का दिमाग वह स्वाभाविक है यह कि उसके अपने वर्तुल हैं, उनके भीतर वह जीता है। इसलिए मैं मानता हूं कि संपत्ति पैदा करवाने की जो दौड़ है, वह पूंजीवाद तो आपको इसलिए दे देता है कि आप एक घर चाहते हैं, कार चाहते हैं, अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा चाहते हैं, एक मकान चाहते हैं। इसलिए आप में एक इंसेंटिव है। लेकिन यह इंसेंटिव आपसे छीन लिया जाए, तो फिर अब आप किसलिए? सोसाइटी, समाज, देश, मनुष्यता, सारी मनुष्य-जाति, ये शब्द सुनने में आते हैं, लेकिन कहीं छूते हैं, ये कहीं छूते हैं।
आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि आप छह शब्द, जो आपकी जिंदगी में सबसे कीमती हैं, बता दें। उसने "पत्नी" पहला शब्द रखा और "ईश्वर" अंतिम। उसने कहा कि ईश्वर सबसे कम छूता है, वह इतना दूर पड़ता है कि कहीं मेरी पकड़ में नहीं आता। पत्नी, मैं समझता हूं वह आदमी बड़ा ईमानदार था। हमारे मुल्क में शायद ही कोई आदमी पत्नी को नंबर एक रख सकता, यह सीधी साफ बात है। उसने कहाः पत्नी पहला। फिर ऐसा बढ़ता चला गया वह। आखिर में उसने कहा, परमात्मा। आखिरी वर्तुल मेरा वह है, जिसको मैं छू नहीं पाता, लेकिन है मेरे मन में एक वर्तुल कि कभी उसको भी छू लेना है। लेकिन निकट तो मेरे पत्नी ही पड़ती है। तो हमारे वर्तुल हैं व्यक्तित्व के। समाजवाद जो वर्तुल पैदा करता है,
वह इतने फासले पर हैं कि वे आपको कहीं छूते नहीं हैं। तो जो हमारी कठिनाई है। और इसलिए जैसे यह मुल्क है। और हमारा मुल्क तो, अब जैसे कि हम रोज देखते हैं, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आता है। हमारे ख्याल में नहीं आता, हमारा पूरा मुल्क बहुत छोटे वर्तुल बनाता है। बहुत छोटे वर्तुल बनाए हुए, महाराष्ट्र का वर्तुल है, मैसूर का वर्तुल है। राष्ट्र का वर्तुल तक नहीं है यहां, है ही नहीं कोई वर्तुल राष्ट्र का। कोई ऐसा भाव ही नहीं है, जो राष्ट्र को बनाता हो। ब्राह्मण का है, भंगी का है, चमार का है, जैन का है, मुसलमान का है, ईसाई का है। ये वर्तुल हैं। फिर उनमें भी छोटे वर्तुल। आखिर में आप हैं, आपका छोटा सा परिवार है, और उस परिवार में भी अगर चुनाव का मौका आ जाए तो अंत में आप अकेले ही हैं, वह परिवार भी नहीं है। वह आखिरी आपका व्यक्ति का जहां सबसे ज्यादा सोर्स है ताकत का वहां है। उस पर हमें मेहनत करनी पड़ेगी। यानी मेरा मानना यह है कि पूंजीवाद का भरोसा व्यक्ति के ऊपर है और व्यक्ति एक सच्चाई है। और समाजवाद का भरोसा समाज पर है।
समाज सिर्फ एक शब्द है। जो कहीं है नहीं। इसलिए पूंजी पैदा करने की सामर्थ्य नहीं है उसमें। हां, पूंजी एक दफा पूंजीवाद पैदा कर दे, तो समाज बांट लेगा और फिर कामचलाऊ ढंग से चलता भी रहेगा, एक दफा एफ्लुअंस आ जाएगा तो फिर दिक्कत भी नहीं है, यानी फिर कोई कठिनाई भी नहीं है। जैसे अमरीका

जैसे मुल्क में अगर पचास साल बाद समाजवाद आता है तो काम चल जाएगा, इसलिए कि पचास साल में सब आटोमैटिक हो जाने वाला है। मजदूर की कोई जरूरत भी नहीं रह जाने वाली है बड़े पैमाने पर। सारी मशीनें काम करने लगेंगी। आदमी के काम की भी जरूरत नहीं है। मशीन को इंसेंटिव की भी जरूरत नहीं है। मशीन पूछती नहीं कि हम किसलिए पैदा कर रहे हैं। मशीन पैदा करती चली जाती है।
तो जैसे-जैसे मशीन के हाथ में व्यवस्था आ जाएगी पैदावार की, वैसे-वैसे समाजवाद सरल हो जाएगा। जब तक व्यक्ति के हाथ में पूंजी पैदा करने की व्यवस्था है, तब तक समाजवाद संभव नहीं है। और अगर संभव हम बनाएंगे तो हम व्यक्ति की हत्या कर देंगे। और मजा यह है कि सारे व्यक्तियों में भी एक सा नहीं है। संपत्ति पैदा करना भी वैसा ही है, जैसे हमारे... बड़े मजे की बात है, इस संबंध में हमने बड़ा दुर्भाव लिया हुआ है।
अगर आदमी एक कवि है, तो हम कहते हैं, यह जन्मजात है। लेकिन एक आदमी संपत्ति पैदा करता है, तो हम नहीं कहते कि वह आदमी जन्मजात संपत्ति पैदा करने में समर्थ है। वह भी है। एक आदमी पेंट करता है, तो हम कहते हैं, यह जन्मजात पेंटर है। पेंटर बनाया नहीं जा सकता, पेंटर पैदा होता है।
मैं कहता हूं, पूंजीपति भी नहीं बनाया जा सकता है। वह भी पैदा होता है। पूंजी पैदा करना भी एक प्रतिभा है। किसी की पेंट करना प्रतिभा है, किसी का वीणा बजाना प्रतिभा है। जैसे, मेरे जैसे आदमी को कितनी ही पूंजी दे दो, दूसरे दिन नदारद हो जाएंगे। कुछ पैदा ही नहीं कर सकता। उसमें कुछ पैदा कर ही नहीं सकता। पैदा करने का मन में ख्याल ही नहीं आने वाला, वह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। उसे मैं बांट सकता हूं। उसे लुटा सकता हूं। उसे चोर ले जाएं, उसे कोई कुछ करे, यह हो सकता है।
पूंजी भी कुछ थोड़े से लोगों ने ही पैदा की है, सारी मनुष्यता ने पैदा नहीं की है। अगर अमरीका में हम आठ-दस नाम अलग कर दें, फोर्ड है, मार्गन है, रॉकफेलर है, फलां-ढिंका, दस नाम अलग कर दें; अमेरिका भी वैसे ही दरिद्र है, जैसे हम हैं। एक दस आदमी ने पूंजी का वर्तुल पैदा कर दिया है। और जब उन्होंने पैदा करना शुरू किया तो उस वर्तुल में छोटे-छोटे वर्तुल पैदा हुए; और छोटे-छोटे लोग आए, और छोटे-छोटे लोग आए; और एक-एक... संपत्ति पैदा हुई।
अब पूंजीवाद को हटा कर आप जब राज्य के हाथ में यह बात दे देते हैं, तो राज्य के पास ऐसा कोई वर्तुल नहीं है, इंसेंटिव नहीं है, कहीं कुछ बात नहीं है। तब फिर जबरदस्ती एक रास्ता रह जाता है कि हम कोड़े के बल पर काम करवा लें, बंदूक लगा दें छाती के पीछे, उसके बल पर काम करवा लें। संपत्ति पैदा करने के लिए अगर बंदूक लगानी पड़े, तो मैं समझता हूं, वह ज्यादा खतरनाक है, बजाय इसके कि जो हो रहा है इसको हमें सुधारना है, और व्यवस्था देनी चाहिए। मेरा मानना ऐसा नहीं है कि पूंजीवाद जैसा चल रहा है वैसा ही चले, यह भी मेरा मानना नहीं है। क्योंकि जैसा चल रहा है, वह बिल्कुल अंधी दौड़ है। उसे हमें सुनियोजित करना चाहिए, वेल प्लैंड करना चाहिए और सीलिंग हमें नीचे से बनानी चाहिए, ऊपर से नहीं। हमें यह नहीं कहना चाहिए कि फलां इससे ज्यादा संपत्ति आदमी नहीं रख सकेगा। हमें सीलिंग यह बनानी चाहिए कि इससे कम संपत्ति के आदमी को हम बरदाश्त न करेंगे। इसको हम मिटा कर रहेंगे। इससे कम संपत्ति हम न रहने देंगे किसी आदमी के पास। सीलिंग नीचे बनानी चाहिए। कि हम कहें कि हम सौ रुपये से कम किसी आदमी को न मिलने देंगे चाहे कुछ भी हो जाए। सारा मुल्क ताकत लगाएगा कि हम सौ रुपये से कम न मिलने देंगे, किसी आदमी को।
एक आदमी करोड़ रुपया कमाता है, उसकी हमें फिकर नहीं है। बस सौ से कम कोई आदमी न रह जाए। सीलिंग नीचे लानी चाहिए। और हमें एक वेल प्लैंड... क्योंकि अभी हम जो जिसे हम पूंजीवाद कह रहे हैं वह बहुत हैप्हैजर्ड है, कंफ्यूज्ड है, वह साफ नहीं है। तो हमें सारी व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि संपत्ति कैसे अधिकतम पैदा हो जाए। जो लोग पैदा कर सकते हैं, उन्हें सारी सुविधा देनी चाहिए। तो अभी उलटी हालत हो गई है। सोशलिज्म का भूत सवार है। तो जो संपत्ति पैदा करते हैं, उसको सारी असुविधा का इंतजाम किया जा रहा है कि उसको सब असुविधा दे दो। उसको असुविधा दे देना। जो पैदा नहीं कर सकता वह

करेगा नहीं, जो कर सकता था वह कर न पाएगा। यह पूरी की पूरी बात मुल्क की चेतना के सामने रख देने की जरूरत है।

प्रश्नः मगर अपने देश में हरेक को गर्व में जीने का अलाउ किया है। उस तरह दो बात में अलाउ क्यों नहीं करें। समाजवादी जिसको होना हो समाजवादी हो, कैपिटलिस्ट होना हो वह कैपिटलिस्ट हो।

यह जो आप कहते हैं न, यह जो बात है, मामला यह है कि पूंजीवाद तो यह कर सकता है कि जिसको समाजवादी होना हो, हो। समाजवादी यह नहीं कर सकता। तकलीफ यह है। इसलिए पूंजीवाद में ही डेमोक्रेसी हो सकती है। सोशलिज्म में डेमोक्रेटिक नहीं हो सकता। तो पूंजीवाद तो यह कर सकता है कि भई जिसको समाजवादी होना... कल्याणजी को फितूर चढ़ जाए समाजवादी होने का, हो जाएं। बांट दें अपनी संपत्ति, इन्हें कोई मना नहीं करता। लेकिन समाजवादी बरदाश्त नहीं करेगा कि आपको पैसा इकट्ठा करना है। इसलिए समाजवादी बुनियादी रूप से एंटी डेमोक्रेटिक है। वह डेमोक्रेटिक हो नहीं सकता। क्योंकि वह तो किसी चीज को जबरदस्ती थोपना चाहता है। समाजवादी डेमोक्रेटिक तब हो पाएगा, जब पूंजी इतनी ज्यादा हो जाए कि उसको इकट्ठा करना पागलपन हो।
जैसे कि आज हवा बहुत ज्यादा है, तो आप अपने घर में हवा बंद करके नहीं रखते। हम कहते हैं, भई जिसको बंद करना हो वह बंद करके रख ले, कोई दिक्कत नहीं है। लेकिन कोई बंद करके नहीं रखता। क्योंकि बंद की तो और सड़ जाएगी। खिड़की खुली रखो, वह आ ही जा रही है। लेकिन कल अगर हवा कम हो जाए, आक्सीजन कम हो जाए, तो जिसके पास सुविधा है वह हवा बंद कर लेगा, जिसके पास सुविधा नहीं है, वह मरने लगेगा बिना हवा के।
न्यून चीजें जब तक हैं, तब तक व्यक्तिगत दावे का सवाल उठता है। जब चीजें इफरात हो जाती हैं तो सवाल नहीं उठता। अगर दुनिया में कभी समाजवाद लाना हो, तो संपत्ति इतनी कर देनी चाहिए कि संपत्ति पर मालकियत का कोई अर्थ न रह जाए। मैं जो कह रहा हूं, मेरा जोर इस बात पर है कि संपत्ति इतनी एफ्लुएंट कर दो कि उसकी कोई मालकियत का सवाल न रह जाए। तुम अभी एक अपनी कार पर मालकियत रखते हो कि यह मेरी कार है। लेकिन कल अगर हर आदमी के पास कार हो जाए, तो क्या कहने का मतलब है कि मेरी कार है? कोई मतलब नहीं है। वह है मेरी कि नहीं है, कोई पूछता भी नहीं, कोई मतलब नहीं। मेरे का जो मजा है वह तभी तक है। तो इधर मेरा मानना ऐसा है कि हिंदुस्तान के लिए कोई रास्ता है, तो वह वाया वाशिंगटन है, वह वाया मास्को नहीं है।

प्रश्नः मिक्स्ड इकोनॉमी के बारे में आपका क्या ख्याल है?

मिक्स्ड इकोनॉमी कैपिटलिस्ट ही होगी। वह सोशलिस्ट नहीं हो पाएगी।

देख कबीरा रोया
तेरहवां प्रवचन

समाजवादः पूंजीवाद का विकास

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरे ख्याल में तो अगर कोई बात सत्य है, उपयोगी है, तो सत्य अपना माध्यम खोज ही लेता है। नहीं अखबार थे तब की दुनिया में, सत्य मरा नहीं। बुद्ध के लिए कोई अखबार नहीं था, महावीर के लिए कोई अखबार नहीं था, क्राइस्ट के लिए कोई अखबार नहीं था। तो भी क्राइस्ट मर नहीं गए। अगर बात में कुछ सच्चाई है, तो सत्य अपना माध्यम खोज लेगा। अखबार भी उसका माध्यम बन सकता है। लेकिन अखबार की वजह से कोई सत्य बचेगा, ऐसा नहीं है। या अखबार की वजह से कोई असत्य बहुत दिन तक बच सकता है, ऐसा भी नहीं है। माध्यम की वजह से कोई चीज नहीं बचती है, कोई चीज बचने योग्य हो तो माध्यम मिल जाता है। अखबार भी मिल ही जाएगा। नहीं मिले, तो भी इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। हम जो कह रहे हैं, वह सत्य है, इसकी चिंता करनी चाहिए। अगर वह सत्य है तो माध्यम मिलेगा। और नहीं मिला तो भी क्या हर्ज है, तो भी कोई हर्ज नहीं है। लेकिन इस युग में फर्क पड़ा है, और वह फर्क यह है कि थोड़ी-बहुत देर तक प्रचार के द्वारा असत्य को भी चलाया जा सकता है। प्रोपेगेंडा असत्य को भी थोड़ी देर तक तो चला ही सकता है। सत्य जैसा दिखा ही सकता है। और थोड़ी देर तक प्रोपेगेंडा सत्य को भी प्रचारित होने से रोक भी सकता है। लेकिन यह चरम बात नहीं है, यह थोड़ी देर की ही बात है।

प्रश्नः कैसे भी दे सकता है अखबार।

सभी माध्यम दे सकते हैं।

प्रश्नः जब आप यहां आते हैं तो कुछ एलिमेंट आपके पीछे लग जाते हैं लोगों के सामने। और फिर जाते हैं तो इतना ज्यादा बोलते हैं। इतनी प्यारी ताकत को वे लोग इसको न्यूट्रलाइज करने का प्रयास करते हैं। तो हमको जो डाउट रहता है वह यह रहता है कि एक रजनीश अगर दो साल में एक दफे राजकोट में आए और ये कुछ एलिमेंट यहां छोड़ कर चले गए, इसके बाद तो वे हर साल में आते हैं, न्यूट्रलाइज करते हैं, तो आज का जो आदमी है वह हमेशा... । वे जो एलिमेंट्स हैं उसको पकड़...

दो-तीन बातें हैं। एक तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, वह बहुत से न्यस्त-स्वार्थों के विपरीत है। जो मैं कह रहा हूं, वह बहुत सी दुकानों, बहुत से पुरोहितों, बहुत से वादों के विपरीत है। जो मैं कह रहा हूं, वह जो पुराना है, उसके विपरीत है। तो पुराना अपनी रक्षा के उपाय करेगा। लेकिन मेरी समझ यह है कि जब भी कोई विचार रक्षा की, डिफेंस की हालत में आ जाता है, तो उसकी मौत करीब है। जब भी कोई विचार डिफेंसिव हो जाता है और रक्षा करने लगता है अपनी, तब उसकी मौत करीब है। जब विचार जीवंत होता है, तब वह आक्रामक होता है और जब मरने लगता है, तब वह रक्षात्मक हो जाता है। इसलिए मेरे लिहाज से वह शुभ लक्षण है। और अगर एक आदमी को न्यूट्रलाइज करने के लिए दो साल मेहनत करनी पड़ी हो, तो ये बड़े शुभ लक्षण हैं। और एक आदमी को अगर मुल्क भर में सारे लोगों को एक आदमी से लड़ना पड़ता हो, सारे गुरुओं को, और मैं एक दिन के लिए आऊं और उनको फिर साल भर लड़ाई चलानी पड़ती हो, तो ये बड़े शुभ लक्षण हैं। साधारण लक्षण नहीं हैं। ये बड़े शुभ लक्षण हैं। इसका मतलब यह है कि वह एक बात उनकी समझ में आ गई है कि वे डिफेंस में हैं।
दूसरी बात यह है कि जो मैं कह रहा हूं, और जो वे कह रहे हैं, हम दोनों के
बल अलग हैं। अलग का मेरा मतलब यह है कि मेरा बल भविष्य में है, आने वाली पीढ़ी में है, उनका बल अतीत में है, जाने वाली पीढ़ी में है। उनका जो बल है, वह

जाने वाली पीढ़ी में है और अतीत में है। उनका बल डूबते हुए सूरज में है। मेरा बल उगते हुए सूरज में है।
इसलिए मुझे उनकी कोई बहुत चिंता लेने जैसी बात नहीं है। अगर बीस साल
हम इसी तरह भी लड़ते रहे, तो भी आप देखेंगे कि उनका सूरज डूबता है। क्योंकि जिन पर उनका बल है वे बीस साल में विदा हो जाएंगे, जिन पर मेरा बल है वे बीस साल में शक्तिशाली हो जाएंगे। इसलिए लड़ाई आज भला ऐसी लग सकती है कि मैं कुछ कह कर जाता हूं, फिर साल-छह महीने में उसको लीप-पोत दिया जाता है, लेकिन ऐसा बीस साल पहले नहीं कहा जा सकता है। और एक बड़े मजे की बात यह है कि जब मुझे गलत सिद्ध करने में या मैं जो कह गया हूं, उसे लीप-पोंछ डालने में उनको सारी ताकत लगानी पड़ रही है, तो वे कुछ दे नहीं पाएंगे और बीस साल में उनका काम सिर्फ इतना ही रह जाएगा, जैसा कि घर में सुबह नौकर घर को साफ करता है, कचरा साफ करता है, उससे ज्यादा उनका मूल्य नहीं रह जाएगा। वे क्रिएटिव देने की हालत में कुछ भी नहीं हैं।
मैं उनकी चिंता नहीं लेता। मुझे जो कहना है, वह मैं कहे चला जाऊंगा। मुझे जो ठीक लगता है, वह मैं दोहराए चला जाऊंगा। मुझे जो अच्छा लगता है, उसे मैं बनाए चला जाऊंगा। मेरा भरोसा क्रिएटिविटी में है। मेरा भरोसा इसमें नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं, मैं उनसे जूझने जाऊं, क्योंकि मैं मानता हूं कि वे हारी हुई बाजी लड़ रहे हैं। इसलिए उनकी चिंता लेने की जरूरत नहीं है।
और फिर एक बात है कि कुछ चीजें हैं, जो मर चुकी हैं--सिर्फ कुछ स्वार्थ उनको जिंदा रखे हुए हैं, लाशें हो चुकी हैं। मकान गिर चुका है; लेकिन कुछ लोग बल्लियां लगाए हुए सम्हाले खड़े हैं। क्योंकि उनका सारा स्वार्थ उसमें है। और हम इतने बड़े संक्रमण के समय में हैं, इतना बड़ा टरंसफार्मेशन करीब है, इतने जोर से सारी दुनिया बदल रही है कि बल्लियां बहुत ज्यादा देर नहीं रोकी जा सकती हैं। और न बहुत ज्यादा देर मुर्दे को अब जिंदा रखा जा सकता है। वह तो गिरेगा।
तो मेरा काम इतना ही है कि मैं यह बता जाऊं कि यह जो लाश पड़ी है, यह जिंदा नहीं है। और मैं मानता हूं कि अगर एक दफा आपको दिखाई पड़ जाए कि लाश है और जिंदा नहीं है, तो फिर पचास गुरु भी आपको समझा कर नहीं बता सकते हैं कि यह जिंदा है। एक दफा दिखाई पड़ जाना चाहिए, बहुत मुश्किल है। और फिर... अब जैसे राजकोट जैसी जगह है, अगर दो लाख आदमी रहते हैं। दो लाख लोग तो मुझे नहीं सुनते हैं। थोड़े से लोग मुझे सुनते हैं। जरूरी नहीं है कि वे ही लोग उनको सुनते हों, जो मेरा विरोध कर जाते हैं। लेकिन एक मेरी समझ है और मेरी समझ यह है कि मुझे सुनने में रोज-रोज, नये से नया युवक उत्सुक हो रहा है। उस पर मेरी यात्रा है। और अगर कोई वृद्ध भी मेरी इन बातों में उत्सुक हो रहा है, तो मैं मानता हूं कि किसी गहरे अर्थ में वह वृद्ध नहीं है, क्योंकि मेरे साथ वृद्ध खड़ा ही नहीं रह सकता। अगर कोई बूढ़ा आदमी भी मेरे पास आ रहा है, तो किसी न किसी अर्थों में उसकी आत्मा जवान है, तो ही मेरे पास आ रहा है, नहीं तो नहीं आ रहा।
और वे जो मेरे विरोध में काम कर रहे हैं, उनके पास अगर आप देखेंगे, तो वहां आपको बिल्कुल कब्र में जिनका एक पैर चला गया है, वे लोग आपको दिखाई पड़ेंगे। मंदिर में, मस्जिद में, पुरोहित के पास, गुरु के पास, मरा हुआ आदमी दिखाई पड़ता है। उससे आशा नहीं बांधी जा सकती है। और यह भी मेरी समझ है कि दुनिया में जब भी कोई क्रांतियां होती हैं तो कोई सारा मुल्क क्रांति नहीं करता। एक चुना हुआ वर्ग, एक सोच-विचारशील वर्ग, एक इंटेलिजेंसिया, यह जो बहुत छोटा सा हिस्सा होता है, वह क्रांति करता है। यह मेरी समझ है कि वह जो इंटेलिजेंसिया है, वह जो सोच-विचारशील वाला वर्ग है, वह पुराने गुरुओं के पास नहीं है, न हो सकता है, उससे उसकी टूट हो गई है, वह उससे चला गया है, वह उसके पास नहीं है। चित्रकार हो, मूर्तिकार हो, कवि हो, लेखक हो, विचारक हो, दार्शनिक हो, चिंतक हो, वह वहां नहीं है, जो मेरे विरोध में लगे हुए हैं। लेकिन वह धीरे-धीरे मेरी बात में उत्सुक हो रहा है।
तो मेरी अपनी समझ यह है कि देश की जो इंटेलिजेंसिया है, वह जो देश का सोचने वाला वर्ग है, जरूरी नहीं है कि सोचने वाला वर्ग धनी हो। अक्सर ऐसा

नहीं होता है। अक्सर सोचने वाला वर्ग धनी नहीं होता। सोचने वाला वर्ग अक्सर मध्य वर्ग से आता है। सारी दुनिया की जो क्रांति है, सब मध्यम वर्ग से आती है। तो मेरी नजर में ख्याल में है कि वह वर्ग मुझमें उत्सुक हो रहा है, और यह भी बड़े मजे की बात है कि वह वर्ग मुझमें ही उत्सुक हो सकता है, वह उनमें उत्सुक नहीं हो सकता है। उनके और उनके बीच के सेतु टूट गए हैं। इसलिए मुझे चिंता नहीं है।
मैं अपनी बात कहे चला जाता हूं, और फिर मुझे इसका भी फर्क नहीं पड़ता कि क्या परिणाम होगा? इतनी बड़ी जिंदगी में हमें परिणाम की चिंता में नहीं पड़ना चाहिए। मैं जो कर रहा हूं वह ठीक होना चाहिए, इतना मुझे भरोसा होना चाहिए, परिणाम क्या होगा इसकी चिंता नहीं करनी चाहिए। वह कोई हिसाब-किताब भी नहीं किया जा सकता। मुझे ठीक लग रहा है, उसे कहने में मैं आनंदित हूं, बात खतम हो गई। अगर वह कुछ उपयोग का होगा तो लोग उसका उपयोग कर लेंगे, नहीं उपयोग का होगा तो लोग उसे भूल जाएंगे।
ऐसा भी मेरा आग्रह नहीं है कि जो मैं कह रहा हूं, उसे लोगों को मानना
ही चाहिए। ऐसा भी मेरा आग्रह नहीं है कि मेरी बात मान कर ही सब कुछ हो जाना चाहिए। अगर वह ठीक होगी तो वह मान लेंगे, अगर ठीक नहीं होगी तो अच्छा ही है कि न मानें। संघर्ष तो चलेगा, और इसलिए मैं मानता हूं कि जो आदमी आकर कहता है कि मैं गलत कह रहा हूं, वह भी मेरे काम में सहयोगी है। क्योंकि हो सकता है, मैं गलत ही कह रहा हूं। तब देश के हित में ही है कि कोई पूछेगा कि मैं गलत हूं। और हो सकता है मैं सही कह रहा हूं, तो उसके गलत कहने से बहुत देर तक यह बात चलने वाली नहीं है। लोग भी सोचेंगे, समझेंगे। जो ठीक होगा, उन्हें दिखाई पड़ेगा। इसलिए मैं आग्रहशील नहीं हूं।
इसलिए जैसा आप कहते हैं कि आपके मिशन का क्या होगा? एक अर्थ में मेरा कोई मिशन नहीं है, क्योंकि मिशन का मतलब आग्रह होता है। यानी मैंने कोई ठेका ले रखा हो कि नहीं ऐसा ही हो जाना चाहिए दुनिया में, ऐसा मेरे मन में कोई भाव नहीं है, मिशनरी में नहीं हूं। मुझे जो ठीक लग रहा है, वह मैं आपसे कह देता हूं। इतना मैं अपना दायित्व समझता हूं कि मुझे ठीक लग रहा हो और मैं आपसे न कहूं, तो थोड़ी मनुष्यता की मुझमें कमी है।
मुझे ठीक लग रहा था वह मैंने आपसे कह दिया है, मेरा काम पूरा हो गया है। आप रास्ते से जा रहे हैं और मैंने देखा कि एक पास में गड्ढा है जिसमें मैं गिर चुका हूं। और मैंने आपसे कहा कि पास में गड्ढा है, बात खतम हो गई। फिर भी आप गिरते हैं, वह आपकी मौज है, उसका मुझ पर कोई जिम्मा न रहा। लेकिन में बैठा हूं और आप गड्ढे में जा रहे हैं और मैं बैठा देखता रहूं और आप गड्ढे में गिर जाएं और मैं देखता रहूं, तो आपके गड्ढे में गिरने में मैं भी जिम्मेवार था। इसका दायित्व मुझ पर भी हो जाएगा। तो मेरा काम इतना है कि मैं चिल्ला कर आपको कह दूं कि ऐसा हो रहा है। फिर आपकी मर्जी।
और हर आदमी स्वतंत्र है कि अपनी मर्जी से तय करे। और इतने हजारों करेंट चलते हैं जिंदगी में कि कोई एक करेंट निर्धारक हो भी नहीं सकता। इन सबके चिंतन का इकट्ठा परिणाम अंत में निर्धारक होता है। अगर हम बीस लोग यहां बैठ कर बात करें, तो न तो मैं सत्य का निर्धारक हो सकता हूं, न आप। लेकिन अगर हम सत्य के खोजी हों और बीस लोग विवाद करें, बात करें, संवाद करें, चर्चा करें, तो अंत में जो सत्य बीस लोगों की चर्चा से निकलेगा, वह न तो मेरा होगा, न आपका होगा। लेकिन अगर इन बीस लोगों ने ईमानदारी से सत्य की खोज की है--तो वह मैं जिसे सत्य कहता था उससे वह ज्यादा सत्यतर होगा, आप जिसे सत्य कहते थे उससे ज्यादा सत्यतर होगा।
तो जिंदगी तो एक बड़ा डायलाग है। उसमें जो गलत कह रहा है, सही कह रहा है,
वह सबका उपयोग है। और मुल्क एक स्थिति में है, जहां हमें कुछ निर्णय लेने हैं, जो हमने हजारों साल तक पोस्टपोन किए हैं। तो उन निर्णय लेने की स्थितियों में मेरे विचार मुझे सामने रख देने हैं। आपको अपने रख देने हैं, किसी को अपने रख देने हैं। एक डायलाग होगा, पूरा मुल्क सोचेगा, समझेगा, उससे कुछ निकलेगा। वह निकला हुआ न मेरा होगा, न आपका होगा, न किसी का होगा। वह हम सबका सम्मिलित फल होगा। और उस सम्मिलित फल के लिए मेरी चिंता है। इसलिए मेरा कोई मिशन नहीं है। अगर मिशन की भाषा में कहें तो मेरा यही मिशन

है कि मुल्क में एक संवाद चल पड़े, एक बात चल पड़े, एक चर्चा होने लगे, लोग सोचने लगें, लोग खोजने लगें, लोग बात करने लगें, लोग तय न रह जाएं, लोगों के पुराने कनक्लूजंस न रह जाएं। वह मेरा काम मैं पूरा कर रहा हूं और वह जो मेरे विरोध में बोल रहे हैं वे भी मेरे काम में सहयोगी हो रहे हैं।
मैं चाहता हूं कि मुल्क ऐसी स्थिति में आ जाए, नो कनक्लूजन की, जिसके पास निष्कर्ष नहीं है, क्योंकि जिस कौम के पास निष्कर्ष पक्के हो जाते हैं, वह सोचना बंद कर देती है। फिर सोचने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। हमेशा हमारा कनक्लूजन पहले से तय होता है, सोचने की कोई जरूरत नहीं है, हमने कोई दो-तीन हजार साल से सोचा नहीं है। इसलिए मैं मानता हूं कि मुल्क अगर संदिग्ध हो जाए, इतना काम मैं कर दूंगा। इतना मैं हर मुद्दे पर संदिग्ध कर दूंगा, इतना काम हो जाएगा। इसमें कोई शक ही नहीं है। मैं संदेह में डाल दूंगा। और जो मेरे विरोध में आएंगे, वे भी मेरा काम कर जाएंगे, क्योंकि वे मेरे साथ भी आपको निस्संदिग्ध न होने देंगे, वे मेरे साथ भी संदिग्ध कर देंगे।
मुल्क संदेह की स्थिति में आ जाए--ए मूड ऑफ डाउट पैदा हो जाए, तो काम पूरा हो गया। उस संदेह से बहुत कुछ पैदा हो सकता है। बहुत सृजनात्मक विचार का जन्म हो सकता है।
और दुनिया में जो भी ऐसे युग हुए हैं, जिन्होंने कुछ दान किया, वे संदेह के युग थे। जैसे बुद्ध और महावीर के वक्त, आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले बिहार ने कुछ दान किया था। वह बड़े संदेह का युग था, बिहार के लिए। बिहार में कोई आठ तीर्थंकर थे और वे आठों अपनी बात कह रहे थे, और आठों बाकी सात के विरोध में थे। तो बिहार ने एक दान किया। एथेंस में साक्रेटीज और प्लेटो और अरस्तू के जमाने में एक संदेह का युग था। पच्चीसों विचारक थे, जो अपनी बात कह रहे थे। तो एथेंस जो उस समय दे गया, फिर नहीं दे सका कभी भी दुबारा।
आज मैं मानता हूं कि उस तरह का संदेह जहां भी है, जिस देश में भी है। जैसे रूस में नहीं है, तो पिछले पच्चीस साल में रूस की बुद्धिमत्ता ने कोई बहुमूल्य चीज नहीं दी। बल्कि आश्चर्यजनक है कि उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस में एक संदेह का युग था, तो दोस्तोवस्की पैदा हुआ, उसी से लेनिन पैदा हुआ, उसी से टरटस्की पैदा हुआ, उसी से टाल्सटाय पैदा हुआ, उसी से गोरखी पैदा हुआ, उसी से तुर्गनेव पैदा हुआ, उसी से चेखव पैदा हुआ। बहुत अदभुत लोग पैदा हुए। उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस ने कोई बीस ऐसे अदभुत आदमी दिए, जो कि किसी भी कौम को हजारों साल के लिए गौरव दे सकेंगे। लेकिन उसके बाद नहीं हो सका यह। उसके बाद जड़ हो गए, क्योंकि रूस के पास कनक्लूजन हो गया, उसके पास पक्का कनक्लूजन हो गया। उसको कोई अब सोचने की जरूरत न रही।
तो मैं यह चाहता हूं कि यह जो मुल्क है जो कि कोई दो-तीन हजार साल से एक अंधेरे में जी रहा है। या एथेंस, या उन्नीस सौ सत्रह के पहले का रूस, या बुद्ध के जमाने का बिहार, ऐसी इस मुल्क की स्वतंत्रता हो जाए, जो शुभ है, शुभ ही शुभ है। इतना काम भी पूरा हो जाए तो बहुत बड़ा काम है।

प्रश्नः आज का जो इंडिया है वह एक क्लाइमेक्स आ गई है--निगेटिव क्लाइमेक्स।... क्लाइमेक्स पर अब हम सोचें... अगर वह यही स्थिति है, तो अगर और कोई पंद्रह-बीस साल पहले थे, तो ऐसा नहीं होगा कि वह जो कहते हैं--समटाइम टू लेट इ.ज एवर टू लेट।

हां, हो सकता है, बिल्कुल हो सकता है। इसलिए जल्दी करने की जरूरत है। इसलिए मुल्क जल्दी चिंतन करे, इसकी चिंता करने की जरूरत है। और जो आप कहते हैं, क्लाइमेक्स पर पहुंच गए हैं, वह मैं नहीं मानता। क्योंकि क्लाइमेक्स पर पहुंच कर सदा क्रांति हो जाती है। हम क्लाइमेक्स पर नहीं पहुंचे हैं। बल्कि हम इतनी कमजोर कौम हैं कि छोटी सी गड़बड़ होती है, उसको हम क्लाइमेक्स कहते हैं। हम इतने भयभीत लोग हैं, जरा सी गड़बड़ होती है और क्लाइमेक्स। वह कुछ गड़बड़ नहीं होती। कोई क्लाइमेक्स नहीं हो गया है। क्लाइमेक्स पर पहुंच जाएं तो सौभाग्य है हमारा। क्योंकि क्लाइमेक्स के बाद परिवर्तन अनिवार्य

है। सौ डिग्री पर पानी उबलने लगे तो भाप बनेगी ही, लेकिन भाप बनती नहीं है और हम कहते हैं क्लाइमेक्स पर पहुंच गए! भाप-वाप नहीं बनती।

प्रश्नः अभी आपने फरमाया कि उन्नीस सौ सत्रह तक रूस में संदेह का युग
था और उसे कनक्लूजन मिल गया, निष्कर्ष पर आ गई वह कौम, वह मुल्क, तो अब उसे जड़ता आ गई विचारों में। तो आप यह कह सकेंगे कि रूस का जो निष्कर्ष है वह किसी स्वरूप में भारत के लिए लाभप्रद बन सकता है?

एक ही अर्थ में लाभप्रद बन सकता है, एक ही अर्थ में। और वह यह कि भारत में जो संदेह की हवा चाहिए, उसमें वह सहयोगी हो सकता है। लेकिन कनक्लूजन की तरह लाभप्रद नहीं हो सकता। अगर भारत सोचता हो कि कम्युनिज्म हमारा निष्कर्ष बन जाए तो मूढ़ता होगी। एक ही अर्थ में उपयोगी हो सकता है यह कि हमारी जो चिंतन की हवा पैदा हो रही है, इसमें वह भी चिंतन का एक मुद्दा हो। हम उस पर भी सोचें, उसको भी हम कनक्लूजन की तरह न पकड़ लें और ऐसा मुझे डर लग रहा है कि हम पकड़े ले रहे हैं। हम पकड़े ले रहे हैं।
एक तो चिंतन से पकड़ी गई बातें होती हैं, जो चिंतन से निष्कर्ष की तरह निकलती हैं। और एक घबड़ाहट में पकड़ी गई बातें होती हैं, जो कि कोई सहारा न मिलने से हम कुछ पकड़ लेते हैं। भारत के साथ जो डर है वह यह है कि यह सदा का विश्वासी मुल्क है। यह बड़ा खतरा है। यह इतना बड़ा खतरा है कि अविश्वास तक में विश्वास कर सकता है। यह इतना विश्वासी मुल्क है कि अगर यह महावीर को, कृष्ण को छोड़ेगा, तो मार्क्स को, स्टैलिन को, माओ को पकड़ सकता है, उतने ही पागलपन से। इसका जो पकड़ने का ढंग है वह अंधा है। चिंतन का इसके पास ढंग नहीं है।
और मैं मानता हूं कि कम्युनिज्म पर भी चिंतन होना चाहिए--चिंतनीय है।
और इस समय सबसे ज्यादा चिंतनीय है। लेकिन मुझे डर ऐसा लग रहा है कि धीरे- धीरे वह हमारे मन में स्वीकृत होता जा रहा है। चिंतनीय नहीं हो रहा है। समाजवाद की जो हम बातें कर रहे हैं, साम्यवाद की जो हम बातें कर रहे हैं, उसको हम इस तरह मान रहे हैं जैसे कि कोई तैयार कनक्लूजन है, जो कि हमने स्वीकार कर लिया तो सब हल हो जाएगा।
कोई चीज तैयार नहीं है। और किसी एक मुल्क का अनुभव किसी दूसरे मुल्क
के लिए रेडीमेड नहीं होता है, न हो सकता है। क्योंकि हर मुल्क की हालतें इतनी भिन्न हैं, चित्त-दशा इतनी भिन्न हैं, सोचने के ढंग इतने भिन्न हैं कि जो रूस के लिए संभव था, वह हमारे लिए संभव नहीं हो सकता है। जो चीन के लिए संभव, वह हमारे लिए संभव नहीं हो सकता। लेकिन विचारणीय है। तो हम चीन पर भी सोचें, हम रूस पर भी सोचें। न तो हम स्टैलिन पैदा कर सकते हैं, न हम माओ पैदा कर सकते हैं। हम पैदा नहीं कर सकते। आखिर पैदा करने के लिए हमारी भूमि में वह क्षमता चाहिए, वह क्षमता हमारे पास नहीं है। हम और तरह के लोग पैदा कर सकते हैं। हम महावीर पैदा कर सकते हैं, हम बुद्ध पैदा कर सकते हैं। वह हमें आसान है पैदा करना। लेकिन सारे जगत में जो हो रहा है, वह हमें सोचने जैसा है।
मेरी अपनी समझ यह है कि हमें सिर्फ कम्युनिज्म ही सोचने जैसा नहीं है। एक चीज जिस पर हम बिल्कुल नहीं सोच रहे हैं, हमें कैपिटलिज्म भी सोचने जैसा है। यानी हमारे लिए मास्को ही सोचने जैसा नहीं है, वाशिंगटन भी हमारे लिए बहुत सोचने जैसा है। जिस पर हम सोच ही नहीं रहे और हमने एक भ्रांति समझ रखी है कि हम यह बात मान कर बैठ गए हैं कि हम पूंजीवादी हैं, हम पूंजीवादी भी नहीं हैं अभी। समाजवादी होना तो बहुत दूर की बात है, हम अभी पूंजीवादी भी नहीं हैं।
अभी हम करीब-करीब फ्यूडेलिज्म में रह रहे हैं, करीब-करीब सामंतवादी हैं। पूंजीवाद भी आज पूरे मुल्क को नहीं हो गया है संभव। न कोई नेशनेलाइजेशन हुआ है, न औद्योगीकरण हुआ है, न मुल्क के पास पूंजी है, न हमारे पास इतनी संपत्ति है जिसको हम बांट सकें। इसलिए हम बड़े चक्कर में पड़ सकते हैं। चक्कर में हम इसलिए पड़ सकते हैं कि हमारी हालत ऐसी है कि अगर आज

हम इस भाषा में सोचने लगें कि साम्यवाद, समाजवाद कैसे आए, तो हम गलती में भी पड़ सकते हैं।
क्योंकि साम्यवाद या समाजवाद पूंजीवाद की एक क्लाइमेक्स के बाद की स्थिति है। पूंजीवाद जब परिपूर्ण हो जाए, या पूंजीवाद इतनी पूंजी पैदा कर ले कि बांटी जा सके, तब तो बंटवारे की बात अर्थ रखती है। अभी भारत की हालत ऐसी है कि अगर हम बांटेंगे भी तो सिर्फ गरीबी बांट सकते हैं। अमीरी तो हमारे पास है ही नहीं, जिसको हम बांट लें। तो मेरी अपनी समझ यह है कि भारत न केवल मास्को को सोचे, बल्कि वाशिंगटन को और भी ज्यादा सोचे।
और बड़े मजे की बात यह है कि मास्को आज निरंतर वाशिंगटन के करीब सरक रहा है। क्योंकि मास्को के पचास साल का अनुभव यह है कि अभी भी रूस गरीब है। रूस अमीर नहीं हो सका। पचास साल की निरंतर मेहनत के बाद भी रूस अमीर मुल्क नहीं है। रूस आज भी गरीब देश है, और उसको यह भी समझ में आ रहा है कि अमरीका ने पचास वर्ष में इतनी संपत्ति पैदा कर ली, तो यह विचारणीय है कि मामला क्या है? रूस में रोज इंसेंटिव नीचे गिरा है, लोगों की प्रेरणा कम हुई है काम करने की।
ख्रुश्चेव ने सत्ता से जाने के पहले जो सबसे बड़ी चिंता प्रकट की थी,
वह यह थी कि रूस का कोई युवक काम करने के लिए उत्सुक नहीं है। रूस में रोज उत्पादन नीचे गिर रहा है। अब यह हैरानी की बात है कि रूस पचास साल की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी अपना गेहूं पैदा करने में समर्थ नहीं है। उसे पूंजीवादी मुल्कों से आज भी खाना लेना पड़ रहा है।
तो रूस तो चिंतन कर रहा है रोज कि कुछ न कुछ गड़बड़ हो गई है, हमारा उत्पादन नीचे गिर रहा है और अमरीका का उत्पादन रोज बढ़ रहा है कि वह आज सारी दुनिया के भूखे लोगों को भी खाना दे पा रहा है। संपत्ति भी रोज बढ़ती जा रही है। और बड़े मजे की बात यह है कि जिसको अमरीका में गरीब कहते हैं, वह जो आदमी अमरीका में गरीब है, वह आदमी रूस में अमीर है उतनी हैसियत का आदमी। यानी रूस के अमीर के पास भी कार नहीं है और अमरीका के गरीब के पास भी कार है। जो हम सोच रहे हैं न, वे सारी बातें हैं, क्योंकि जब कोई मुल्क को कोई निर्णय लेना हो तो उसे जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।
मेरी अपनी समझ तो यह है कि हिंदुस्तान को पचास साल सुनियोजित पूंजीवाद की जरूरत है, प्लैंड कैपिटलिज्म की जरूरत है। हिंदुस्तान पचास साल इतनी संपत्ति पैदा करने में संलग्न हो कि बांट सके। हिंदुस्तान के लिए समाजवाद की बात पचास साल बाद अर्थ की होगी, और अभी आत्मघाती है, सुसाइडल है। अभी हमने बात की कि हम मरे। और अगर हमने अभी समाजवाद पकड़ लिया, जैसा कि हमें डर लग रहा है कि हम पकड़ लेंगे, क्योंकि नीचे जनता का, जो गरीब जनता का दबाव है, वह दबाव हमें समाजवाद पकड़वाने के लिए राजी कर रहा है। समाजवाद पकड़ने के लिए हमारा चिंतन हमें राजी नहीं कर रहा है, नीचे की गरीब जनता का दबाव हमें राजी कर रहा है। यानी वह गरीब जनता की नीचे की ईर्ष्या हमसे कह रही है कि बांट डालो पूंजी को। नहीं बांटोगे तो हम तुम्हें हटाते हैं सत्ता से। तो सत्ता में जो बैठा है, वह गरीब क्या मांग कर रहा है, वह उसको पूरा करने को उत्सुक है। उसको यह कोई ख्याल नहीं है कि मुल्क की अर्थ व्यवस्था से यह संभव हो सकता है कि नहीं हो सकता है। यह आज संभव भी नहीं हो सकता। हिंदुस्तान में मुश्किल से बीस हजार परिवार हैं जिनको समृद्ध कहा जा सके। पचास करोड़ के मुल्क में बीस हजार परिवार समृद्ध हों, तो उनको बांट दो, तो बीस हजार परिवार और गरीब होंगे, और कुछ भी होने वाला नहीं है। इससे कुछ अंतर ही नहीं पड़ने वाला है। अभी हिंदुस्तान ने पूंजी ही पैदा नहीं की।
मेरी अपनी समझ यह है कि हिंदुस्तान को तो अभी मास्को पर भी सोचना चाहिए, जो वहां हुआ है पचास सालों में। जो दस सालों में चीन में हुआ है उसे भी सोचना चाहिए, और जो पचास सालों में वाशिंगटन में हुआ है, अमरीका में हुआ है, उसे भी बहुत गौर से सोच लेना चाहिए। और इस सबको सोच कर निर्णय लेने चाहिए। निर्णय नीचे के दबाव से नहीं लेने चाहिए, निर्णय भविष्य की दिशा से लेने चाहिए। यानी यह हो सकता है कि एक भूखा आदमी आज ज्यादा खा जाए और

निर्णय ले ले कि चूंकि मैं भूखा हूं, इसलिए ज्यादा खाने का हकदार हूं।
लेकिन ज्यादा खाने से मर जाए और भूख से चाहे न मरता।
अभी मुझे जैमल जी बता रहे थे कि यहां गऊएं पड़ी हैं आपके अकाल से आई हुईं। वेबता रहे थे कि अभी कोई संत आए और उन गऊओं को लड्डू खिला गए। डोंगरेजी महाराज उनको लड्डू खिला गए और बड़ी प्रशंसा पा रहे हैं। और उन लड्डुओं से कई गाएं मर गईं। क्योंकि एक तो लड्डू से गाय का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि लड्डू से क्या मतलब? अब महाराज लोग लड्डू खाते हैं, तो वे सोचे होंगे, गाय को खिला देने चाहिए। और भूखी गाय, जो अकाल पीड़ित जगह से आई हो, वह ज्यादा खा जाएगी। और उसको कुछ पता नहीं है। वह मरेगी खाकर, चाहे वह अभी भूखी दो-चार दिन जिंदा भी रह जाती। लेकिन ज्यादा खाकर मर जाएगी। उस गाय के संबंध में समझदारी बरतने की जरूरत है।
भूखे आदमी को कैसा देना, इसकी फिकर करनी चाहिए। भूखे का ख्याल नहीं करना चाहिए कि भूखा क्या मांगता है! इस समय सबसे बड़ा सवाल है मुल्क का कि नीचे का गरीब क्या मांगता है! ऊपर की लीडरशिप उसको पूरा करने को उतारू है। क्यों? क्योंकि नहीं तो नीचे का आदमी कहता है, फिर लीडरशिप से नीचे उतरो, नेतृत्व से नीचे हटो, हम उसको नेता बनाएंगे जो हमारी बात पूरी करता है। इसलिए नेता इस वक्त अनुयायियों का अनुयायी हो गया है। वह नीचे का आदमी जो कह रहा है, उसको पूरा करने के लिए हर हालत में तैयार है। अब उसको कोई फिक्र नहीं कि इसका फल क्या होगा, इसका परिणाम क्या होगा! मेरी अपनी समझ यह है कि अगर हिंदुस्तान समाजवाद का कदम उठाता है, तो हिंदुस्तान अपने इतिहास का सबसे दुभार्ग्यपूर्ण कदम उठाएगा अभी। पचास साल बाद यह सार्थक बात हो सकती है। पचास साल हम पहले इंडस्ट्रीलाइज कर लें मुल्क को, औद्योगीकृत कर लें, सारे मुल्क को कृषि व्यवस्था से मुक्त करके उद्योग व्यवस्था पर ले जाएं। संपत्ति इतनी पैदा हो जाए कि बांटी जा सके, तब तो समाजवाद अर्थ रखता है, नहीं तो अर्थ नहीं रखता है। इसलिए मैंने इधर कहना शुरू किया हैः सोशलिज्म वाया वाशिंगटन।
मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान में जो समाजवाद आएगा, आना चाहिए, लेकिन
वह आएगा वाया वाशिंगटन। वह वाया मास्को नहीं आ सकता।

प्रश्नः आप इस विचार से सहमत होंगे कि सक्रिय राजनीति में आपका प्रवेश देश के लिए लाभप्रद साबित हो सकता है?

नहीं, अभी नहीं हो सकता है। अभी नहीं हो सकता है। क्योंकि मेरी समझ यह
है कि सक्रिय राजनीति में प्रवेश की जो शर्तें हैं--सक्रिय राजनीति में प्रवेश की शर्तें हैं, वह तो कंडीशंस हैं। अगर मुझे सक्रिय राजनीति में प्रवेश होना है, तो मुझे भी नीचे के आदमी की बात की फिक्र ज्यादा करनी पड़ेगी, बजाय बात की फिक्र करने की। हां, क्योंकि सक्रिय राजनीति की तो शर्तें हैं न! इसलिए मुझे तो निष्क्रिय राजनीति में ही रहना होगा, ताकि मैं वह कह सकूं जो मुझे कहना है, मुझ पर कोई दबाव न हो, मुझ पर किसी पद का, किसी सत्ता का, कोई दबाव न हो। मैं अकेला आदमी रहूं तो भी कह सकूं, पचास करोड़ लोग मेरे खिलाफ हों तो भी कह सकूं।
तो मुझे अगर वही कहना है, जो मुझे ठीक लगता है, तो मुझे सारी तरह की सक्रियता से बाहर रहना पड़ेगा। मेरा आप मतलब समझे न? हां, लेकिन जो लोग सक्रिय हैं, वे मेरी बात सुन सकते हैं और मेरी बात के ढंग से सक्रिय हो सकते हैं। जो लोग निष्क्रिय हैं, वे मेरी बात सुन सकते हैं और मेरे ढंग से सक्रिय हो सकते हैं।
लेकिन मेरा काम इस वक्त तो उस आदमी की तरह है--कि मकान में आग लग गई हो,
तो बजाय इसके कि वह जाकर कुएं से एक बाल्टी पानी भर कर लाए, क्योंकि एक बाल्टी से कुछ होने वाला नहीं है, ज्यादा बेहतर है कि वह गांव में चिल्ला कर पूरे गांव को जगा दे। और उनसे कहे कि तुम कुएं से बाल्टी भर कर पानी से मकान को बुझा दो। हालांकि हो सकता है कि जिसको मैं जगाने जाऊं वह मुझसे कहे कि आप क्यों नहीं पानी भर कर कुएं से मकान को बुझाते? मैं कहूंगा कि मैं जा सकता हूं, तो मैं एक ही बाल्टी ले जा सकूंगा। तो मुझे तो यह ज्यादा

उपयोगी लग रहा है कि पूरे गांव को जगा दूं। अभी बाल्टी ले जाने की उत्सुकता मेरी नहीं है, क्योंकि वह काम कोई और भी कर लेगा। गांव को जगाने का काम मेरे ख्याल में है।
तो इसलिए मैं किसी सक्रिय राजनीति में उपयोगी नहीं हो सकता हूं। न मेरा कोई अर्थ है। मेरा अर्थ हो सकता है इस देश को एक चिंतना देने का, और जिसको भी चिंतना देनी हो, उसे सक्रियता के बाहर होना चाहिए, क्योंकि सक्रियता की अपनी शर्तें हैं, जो चिंतन में बाधा डाल देती हैं। तो मेरी समझ में तो यह है कि मुल्क के पास एक पोलिटिकल फिलासफी भी नहीं है। मुल्क के पास कोई राजनैतिक दर्शन भी नहीं है।
तो आप ध्यान रखें कि मार्क्स ने जिसने कि कम्युनिज्म दिया, वह बिल्कुल ही निष्क्रिय व्यक्ति है। जिसने कम्युनिज्म दिया सारी दुनिया को और आधी दुनिया आज कम्युनिस्ट है, और कल पूरी दुनिया भी हो जाएगी, हो सकती है, वह आदमी एक लाइब्रेरी में बैठ कर ही काम करता रहा, उसने और कोई काम नहीं किया। वह इलेक्शन भी लड़ सकता था, वह कम्युनिज्म लाने की कोशिश भी करता था, बहुत बड़ा नुकसान होता दुनिया का। दुनिया को कम्युनिज्म कभी मिलता ही नहीं। वह आदमी तो दस-दस, बारह-बारह, अट्ठारह-अट्ठारह घंटे ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में बैठ कर ही काम करता रहा। वह तो एक विचार दे गया। उस विचार की सक्रियता फैलती चली गई।
तो मेरा काम एक विचार की भूमिका खड़ी कर देने का है। उससे ज्यादा मेरी उत्सुकता नहीं है। मैं मानता हूं उसमें जो उत्सुक होंगे, जो सक्रिय हो सकेंगे वे हो जाएंगे। लेकिन उसका भी मुझे हिसाब नहीं है कि कोई सक्रिय हो या न हो। इतना मेरे ख्याल में है कि मुल्क अगर गड्ढे में गिरे तो जानते हुए गिरे कि गड्ढे में गिर रहा है। और गड्ढे में गिर कर उसे अनुभव हो कि बात कही गई थी और गड्ढे में हम गिर गए। यानी ऐसा न हो कि कल यह कहने को हो कि कोई कहने वाला भी नहीं था कि गड्ढे में हम गिर रहे थे और किसी ने आवाज भी नहीं दी कि गड्ढे में गिर रहे हो। वह काम मुझे करने जैसे लगता है, वह मैं कर रहा हूं। सक्रिय राजनीति में मेरा कोई उपयोग नहीं हो सकता।

प्रश्नः आज की डेमोक्रेसी का अपना जो है फिलासफी उसमें तो छोटे से छोटे आदमी का भी महत्व है, और वह अनिवार्य है। तो पचास करोड़ आदमियों को एजुकेट करने का काम न तो इतना इजी है। उसके लिए तो काफी काम करना पड़ेगा। और एक आदमी कैसे कर सकता है?

कठिन है। एजुकेट करने का काम बहुत कठिन है, लेकिन मिस-एजुकेट करने से
कम कठिन है। तो जब मिस-एजुकेट कर सकते हैं लोग, एजुकेट भी किया जा सकता है। लेकिन मेरा कहना यह है कि गाइड करना बहुत कठिन है। लेकिन मिस-गाइड करना जब आसान पड़ रहा है, तो गाइड भी किया जा सकता है। और यह भी मेरी समझ है कि आज मुल्क को कोई भी आदमी गाइड कर रहा है, और कहीं भी ले जा रहा है, कहीं भी मुल्क जा रहा है। बल्कि अब पक्का ही नहीं है कि कोई गाइड कर रहा है कि नहीं कर रहा है। अब यह भी पक्का नहीं है कि वह जो आगे दिखाई पड़ रहा है, वह आगे किस वजह से है। मैं एक कहानी कहता रहता हूं।
एक स्कूल में बच्चों का एग्जिबिशन हो रहा है, बच्चों का एक प्रदर्शन
हो रहा है। तो बच्चों ने जो परेड की है, वह ऊंचाई के हिसाब से बच्चे खड़े किए गए हैं। छोटा बच्चा आगे है, उससे बड़ा पीछे है, उससे बड़ा पीछे है। ऐसी दस कतारें हैं, लेकिन एक कतार में बड़ा बच्चा आगे है, और उसके बाद छोटा बच्चा और फिर बड़े। तो ऐसा लगता है कि कुछ भूल हो गई है। तो वह प्रिंसिपल से एक आदमी पूछता है, जो देखने आया एक अभिभावक, कि यह क्या मामला है? यह लड़का आगे क्यों है? क्या यह सबका नेता है? उसने कहा, यह बात नहीं है। इसको आगे रखना पड़ता है, क्योंकि इसको किसी के पीछे नहीं रखा जा सकता है। बात क्या है? कि पीछे से च्यूंटी लेता है लड़का किसी की भी। इसको पीछे रखा ही नहीं जा सकता। इसको आगे रखना पड़ता है। तो इसको सिर्फ आगे इसलिए रखा हुआ है कि इसके आगे कोई न हो। यह कोई लीडर नहीं है, मगर इसका कोई उपाय नहीं है। इसको आगे ही

रखना पड़ता है, इसको पीछे रखने में तकलीफ देता है, किसी को भी तकलीफ देता है।
मुल्क की हालत करीब-करीब ऐसी हो गई है कि जो लीडरशिप है, वह करीब-करीब
उस तरह के लोगों की है जो पीछे रहेंगे तो तकलीफ देंगे। उनको आगे रखना जरूरी है। तो उनको आगे कर दो।

प्रश्नः नुकसान ही हो रहा है।

नुकसान हो रहा है, नुकसान होगा ही, क्योंकि जिसको नेतृत्व कहें, वह नहीं है। और इतना बड़ा मुल्क है और इस बड़े मुल्क में आपका कहना ठीक ही है कि यह एक आदमी कैसे एजुकेट करेगा? यह बात बिल्कुल ही ठीक है कि एक आदमी कैसे एजुकेट करेगा? लेकिन एक आदमी यह कर सकता है कि एजुकेट...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो न चलने दो न पता, पता चला कर भी क्या हो गया है तुम्हें? यानी मजा तो
यह है कि पता चला कर क्या हो गया है? सबको पता है कि क्या बुरा है और क्या अच्छा है। हो क्या गया है इससे? बुरा मिट गया है? अच्छा आ गया है? कुछ भी तो नहीं हो गया है। पता चला कर हो गया होता, तो मेरे पास आने की जरूरत नहीं थी।

प्रश्नः बुरा-अच्छा तो हमने ही उस पर रखा है न मन पर।

हां, हम थोपे हुए हैं, हम थोपे हुए हैं।

प्रश्नः जैसे कि एक आदमी को एक पत्नी है और दूसरे की पत्नी की ओर जाता
है, तो यह तो व्यभिचार हो गया?

क्यों हो गया व्यभिचार? एक औरत के सात चक्कर तुमने लगवा लिए तो व्यभिचार नहीं हुआ। और जिसके नहीं लगाए सात चक्कर, उससे व्यभिचार हो गया। तो व्यभिचार का मतलब इतना ही रहा कि जिसके साथ सात चक्कर लगाए हों उसके साथ व्यभिचार नहीं होता, जिसके साथ सात चक्कर न लगाए हों उसके साथ व्यभिचार हो जाता? तो व्यभिचार बड़ा बचकाना हो गया।

प्रश्नः तो फिर इन सबमें सब्लिमेशन...

तुम्हारी तकलीफ जो है न, तुम्हारी तथ्य को जानने की तकलीफ नहीं है। तुम्हारी तकलीफ आदर्श को पाने की है। सब्लिमेशन कैसे हो? व्यभिचार से कैसे बचें? मैं यह कह रहा हूं कि व्यभिचार को जानो भी तो कि कहां है? नहीं, व्यभिचार दूसरे की पत्नी को प्रेम करने में उतना नहीं है, जितना अपनी पत्नी को प्रेम न कर पाने में है। व्यभिचार, अगर खोजोगे तो यह मिलेगा। कि मैं अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करता, ऐसे भी कोई पत्नी को प्रेम करोगे, वह तो सेकेंडरी है सदा। लेकिन हमारा समाज अदभुत है, वह कहता है कि दूसरे की पत्नी की तरफ देखना व्यभिचार है, और अपनी पत्नी की तरफ बिल्कुल मत देखो, यह व्यभिचार नहीं है। लेकिन यही मूल व्यभिचार है, वह दूसरा इसके बाद पैदा होगा।
अगर मैं अपनी पत्नी की तरफ न देख पाऊं, तो फिर दूसरे की पत्नी की तरफ देखना ही पड़ेगा। आखिर पुरुष तो स्त्री की तरफ देखेगा। तो वह जो देखना है, वह आएगा। अच्छा, मगर समाज कहेगा कि दूसरे की तरफ देखना व्यभिचार है। और अपनी की तरफ बिल्कुल मत देखो, तीस साल बैठे रहो पीठ किए उसकी तरफ, चालीस साल, वह व्यभिचार नहीं है। अगर कुछ भी व्यभिचार है, तो वह प्रेम की कमी व्यभिचार है। अगर कुछ भी व्यभिचार है तो। जिस स्त्री को तुमने प्रेम नहीं किया, उसके साथ तुम सो रहे हो, तो व्यभिचार है; भला तुमने सात की जगह सत्तर

चक्कर लगाए हों। और जिस स्त्री को तुमने प्रेम किया है और उसके साथ अगर तुम सो गए हो, तो मैं नहीं समझता कि व्यभिचार कैसे है।
तो व्यभिचार को तुम्हें खोजने जाना पड़ेगा। मैं यह कह रहा हूं, तुम इसको मान मत लेना। यानी यह तो मैं तुमसे सिर्फ इसलिए कह रहा हूं कि तुम्हें खोजना पड़ेगा कि व्यभिचार क्या है? मैं नहीं कह रहा कि ऐसा मान लेना। मेरी आप बात समझ रहे न? मैं तो सिर्फ खोज के लिए धक्के देने की कोशिश करता हूं कि थोड़ा धक्का तुमको दे दूं, तो शायद तुम अपनी जगह से हिल जाओ और थोड़े यहां-वहां चल कर देखो, इससे ज्यादा... । हम पहले से ही मान कर बैठे हुए हैं। अब हम कितने व्यभिचार कर रहे हैं वे हमको दिखाई नहीं पड़ते। क्योंकि जिस समाज ने हमको बताया है कि व्यभिचार क्या है। एक स्त्री को तुमने कभी प्रेम नहीं किया था, उससे तुमने विवाह कर लिया, यह व्यभिचार नहीं है? जिस स्त्री को तुमने कभी प्रेम नहीं किया था, उससे विवाह व्यभिचार नहीं है? जिस स्त्री को तुमने कभी देखा नहीं था, दो पंडितों ने मिल कर जन्मपत्री मिला दी थी, उससे तुम्हारा विवाह हो गया, तुम चालीस साल उसके साथ रहोगे, यह व्यभिचार नहीं है? इसमें पंडित भी भागीदार, तुम्हारे बाप भी भागीदार, तुम्हारी मां भी, तुम्हारी पूरी सोसाइटी। जिस स्त्री को प्रेम ही नहीं किया, उस स्त्री के साथ तुम्हारा संबंध वेश्या से ज्यादा का कैसे हो सकता है? चाहे तुम उसको पत्नी कहो। इतना ही हुआ है न, सेंक्टिफाइड वेश्या हुई। सोसाइटी ने मान रखा कि भई इसको तुमने स्थायी... । एक वेश्या के पास तुम रात में जाते हो, चार रुपये फेंक कर आ जाते हो। इस स्त्री के सामने तुमने जिंदगी भर का खाना, कपड़ा, रोटी फेंक दिया है, यह जिंदगी भर के लिए स्थायी वेश्या है, यह परमानेंट वेश्या है, और क्या होगा इससे ज्यादा मतलब? हां, फर्क इतना ही है कि सोसाइटी ने बैंडबाजा बजा कर, मंत्र इत्यादि फूंक कर कह दिया कि यह सेंक्टिफाइड है, यह पवित्र वेश्या है। इसको हमने सबने मान लिया है कि इसमें कोई पाप नहीं है।
व्यभिचार क्या है? अब इस व्यभिचार से हजार व्यभिचार पैदा होंगे, क्योंकि मौलिक व्यभिचार हो गया। मेरी दृष्टि में जिस विवाह में प्रेम नहीं है, वह मौलिक व्यभिचार है। इसलिए जिस समाज में बिना प्रेम के विवाह हो रहा है, वह समाज व्यभिचारी होगा। वह बच नहीं सकता। वह इधर वेश्या भी खड़ी करेगा, इधर दूसरे की पत्नी से भी प्रेम करेगा, इधर यह भी होगा, उधर वह करेगा, यह सब फैलेगा। और फिर वह समाज इस सबको कहेगा कि यह व्यभिचार है, और इसका जो ओरिजिनल सोर्स है उसको वह कहेगा कि वह तो विवाह है। और विवाह तो भगवान की साक्षी में हुआ है, बड़ा पवित्र है।
मैं नहीं कहता कि मैं जैसा कह रहा हूं, वैसा मान लेना। मैं सिर्फ इसलिए कह रहा हूं कि ऐसा खोजने जाओ, जल्दी से तय मत कर लो कि क्या व्यभिचार है। खोजने जाओ, उस खोज से तुम्हें जिस दिन तथ्यों का दर्शन होगा, उसी दिन बदलाहट भी होगी। न हो बदलाहट तो समझना कि दर्शन न हुआ। न हो दर्शन तो समझना कि तुम दर्शन की शर्तें पूरी नहीं कर रहे हो। और पहली शर्त है, तटस्थता। पहली शर्त है कि पहले से तय मत कर लेना कि यह बुरा है, यह अच्छा है। तुमने पहले ही तय कर लिया तो अब क्या खोजोगे? अब खोजने को क्या बचता है? अब खोजने को कुछ भी नहीं बचता।
मेरे पास तुम आए और तुम तय करके आए कि यह आदमी संत है, अब मुझसे समझने
को क्या बचता है? तुम तय करके आए कि यह आदमी शैतान है, अब मुझसे समझने को क्या बचता है? तुम तो समझ कर ही आए हो, और तुम जो समझ कर आए हो, तुम उसी में थोड़ा सा और एडीशन करके लौट जाओगे। अगर तुम संत मान कर आए हो तो और थोड़ा सा उसमें जोड़ कर लोगे कि हां भई, है संत जरूर। क्योंकि तुम वही देख लोगे, जो संत की मान्यता वाला देख सकता है। उसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। तुम और मुझे बड़ा संत बना कर लौट जाओगे। अगर शैतान समझ कर आए हो, तुम थोड़ा और मुझसे बड़ा शैतान बना कर लौट जाओगे। और हो सकता है कि दो आदमी साथ ही मेरे पास आएं और मैं एक के लिए बड़ा संत होकर लौटूं, और एक के लिए बड़ा शैतान बन जाऊं। और मेरा कुछ लेना-देना नहीं है, मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि मैं जो हूं, हूं। उसमें संत और शैतान का हिसाब तुम्हारा है। अब वह तुम अपना हिसाब लगा रहे हो। तुम पहले से तय करके चले आ रहे हो।

नहीं, एक ओपन माइंड चाहिए जिंदगी को समझने के लिए, जहां हमने कुछ भी तय नहीं किया। और अगर आज तुम मेरे पास आओ तो निश्चित ही, अगर घंटे भर मेरे पास रहोगे तो कुछ न कुछ तय करोगे। लेकिन थोड़ा सोचना कि एक आदमी को सत्तर साल जीना है, उसकी जिंदगी में हमने एक घंटे झांका, एक घंटा झांक कर क्या हम तय कर सकते हैं? यह ऐसा ही है जैसे कि हजार पृष्ठ की किताब है और हमने आधा पन्ना फाड़ कर पढ़ लिया, और हमने पूरी किताब के बाबत कुछ तय कर लिया। पता नहीं, सब गड़बड़ हो जाए। इस आधे पन्ने में जो है, वह उससे कुछ पक्का नहीं होता कि आगे-पीछे क्या होगा? कुछ भी पक्का नहीं होता है। हम किसी आदमी को कभी पूरा नहीं जानते हैं, किसी तथ्य को कभी पूरा नहीं जानते हैं।

प्रश्नः आपने अपने लेक्चर में पहले बताया कि वह... कहते हैं कि आत्मा कुछ नहीं कर सकती। जो करता है, वह कोई और करता है। और जैसा सोच कर सब पागल लोग जा कर कुछ भी कर्म करते हैं, उसकी वजह से उनको भला या बुरा नतीजा कुछ मिलता है।

यह सब मैंने नहीं कहा, तुम कब सुन लेते हो, पता नहीं!

प्रश्नः यह जो कहा वह गलत था उसका कहना। यह जो कहते हैं जो। उसका कहना अगर गलत है, तो आज आप ही कहते हैं कि आत्मा अकर्म है।

हूं-हूं, बिल्कुल कहता हूं, बिल्कुल कहता हूं।

प्रश्नः तो इसमें कनफ्यूजन हो गया।

हां, कनफ्यूजन तो करता हूं पूरी तरह। वही हमारा काम है। असल कठिनाई क्या होती है कि हमारी सोचने की जो आदतें हैं, वह जिंदगी के साथ बहुत दुर्व्यवहार करने की हैं। दुर्व्यवहार का मेरा मतलब यह है कि हम जिंदगी के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं कि जैसे जिंदगी कोई बंधी हुई पटरियों पर चलती हो। तो हम कहते हैं कि यह आपने कहा गलत और यह आपने कहा सही। मैं यह कह रहा हूं कि एक स्थिति में वह बात गलत हो सकती है, एक स्थिति में सही। स्थिति को बिना देखे जल्दी से निर्णय मत लेना।
समझ लें, अगर मेरे पास एक पापी आए, तो मैं तो उससे कहूंगा कि हां, आत्मा पाप करती है, क्योंकि पापी के पास पाप के ऊपर कोई आत्मा ही नहीं होती है। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? पापी के पास पाप के अतिरिक्त कोई आत्मा ही नहीं होती, उसको और कुछ पता नहीं होता है--पाप ही उसकी आत्मा है। उससे तो मैं कहूंगा कि आत्मा पाप करती है। अगर पापी से मैंने यह कहा कि आत्मा तो कुछ करती ही नहीं, आत्मा तो शुद्ध-बुद्ध है, तो पापी बड़ा प्रसन्न होगा। वह कहेगा, फिर हमने कभी कुछ भी नहीं किया। तो फिर हम जो कर रहे हैं, वह जारी रह सकता है, क्योंकि हमने तो वह कभी किया ही नहीं। उससे हमारा कोई संबंध ही नहीं। नहीं, पापी से मैं यह नहीं कहूंगा। पापी से मैं यह नहीं कहूंगा--पापी से तो मैं यही कहूंगा कि यह तुम कर रहे हो।
और मजे की बात यह है कि जब पापी यह समझेगा कि यह मैं कर रहा हूं और इसका दंश पाप का उसके पूरे प्राणों को घेर लेगा, सब तरफ से छिद जाएंगे शूल की तरह उसके पाप उसको, और मुश्किल हो जाएगा करना, और न करने की वजह से सारा पाप गिर जाएगा। उस दिन वह जान पाएगा कि आत्मा क्या है, उस आत्मा को जो कभी कुछ नहीं करती, उसी दिन जान पाएगा।
तो मैं किससे कह रहा हूं, यह सदा ध्यान में रखने की बात है, कब कह रहा हूं, यह भी ध्यान में रखने की बात है। अकर्म जो है, वह अंतिम बात है, प्रथम नहीं है। अकर्म जो है, वह अंतिम अनुभूति है। लेकिन पहले तो मैं तुमसे कहूंगा कि तुम हिंसा कर रहो हो। न केवल यह कहूंगा कि हिंसा कर रहे हो, बल्कि कहूंगा तुम हिंसा हो। मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम ब्रह्म हो। यह जानते हुए कि तुम ब्रह्म हो, मैं तुमसे नहीं कहूंगा कि तुम ब्रह्म हो। मैं तो तुमसे कहूंगा कि तुम हिंसा हो। इसलिए कहूंगा कि अगर यह तथ्य तुम्हें

पूरी तरह दिखाई पड़ जाए, तो छलांग लग जाए, तुम हिंसा के बाहर हो जाओ, उससे तुम जान लोगे कि तुम ब्रह्म हो। यानी मेरा कहना यह है कि आदमी का ब्रह्म होना या शूद्र होना या सत्य होना, उसके मानने की बात नहीं है, यह तो छलांग के बाद का हुआ अनुभव है। इस अनुभव को अगर तुमने नीचे दोहराया, तो उस तल पर जो सारा वर्ग इकट्ठा हुआ, वह बड़े मजे से जी रहा है।
हिंदुस्तान में, आज हिंदुस्तान में मैं समझता हूं पृथ्वी पर सबसे ज्यादा अनैतिक देश है। कोई पूछता नहीं कि इसके बुनियादी कारण क्या हैं, इसके इतने अनैतिक होने के! जहां इतने हजारों साल से धर्म की चर्चा होती हो, जहां ब्रह्मज्ञान से नीचे बात न उतरती हो, जहां नीति पर इतना मंथन हुआ हो, वहां अनैतिकता इतने बड़े विस्फोट की तरह क्यों प्रकट होती है? उसका कारण है। उसका कारण है कि हिंदुस्तान दो तल पर जी रहा है।
हिंदुस्तान ने एक तल पर परम बातें कह दीं, और परम बातों की वजह से नीचे
का तल बिल्कुल व्यर्थ हो गया है। उस व्यर्थ के तल पर उसको कोई चिंता ही नहीं है। यानी जब उसे आत्मा की बात करनी है, तब वह कहता है, आत्मा शुद्ध-बुद्ध है, अजर-अमर है, उस पर कभी कर्म का लेप नहीं चढ़ता, उस पर कर्म कभी लगता ही नहीं, उसको कर्म कभी छूता ही नहीं। इधर वह यह बात कर लेगा। और तब फिर वह मुक्त हो गया है, तब वह नीचे कुछ भी करे--चोरी करे, व्यभिचार करे, भ्रष्टाचार करे, रिश्वत ले, दे, ले--यह सब नाटक है, यह सब लीला है! वह कहेगा, यह सब तो खेल चल रहा है, इसमें कुछ मामला नहीं है। असली बात तो वहां है, वहां तो कुछ होता ही नहीं कभी।
हमने इस तरह का अदभुत समझौता किया है। पहली दफा जब उपनिषदों का अनुवाद हुआ जर्मनी में, तो जर्मनी में अनुवाद के बाद जो सबसे बड़ा सवाल उठा, वह यह उठा कि इन उपनिषदों में नीति की कोई चर्चा नहीं है। इसमें तुम ब्रह्म हो, तुम यह हो, यह हो, ये सब बातें हैं, इसमें और तो कोई बात नहीं है! वे परम निष्पत्तियां हैं। तो उनको हैरानी हुई कि ऐसी किताब को मानने वाली कौम अनैतिक हो सकती है। चूंकि यह किताब जो है, यह परम अनुभव की तो बात कहती है; लेकिन परम अनुभव तो उसका है, जिसको हुआ है। और सुनने वाले का तो नहीं है। उसका तो कोई अनुभव नहीं है। यह ऐसा ही है, जैसे कि एक बीमार आदमी हमारे पास आए और हम उससे कहें कि आत्मा तो सदा स्वस्थ है। सब बीमारों को हम समझा दें कि आत्मा सदा स्वस्थ है। अस्पताल बंद कर दिए जाएं, क्योंकि आत्मा सदा स्वस्थ है। और यह बात सच है कि आत्मा कभी बीमार नहीं पड़ती। लेकिन आत्मा के लिए अस्पताल भी कौन बना रहा है, अस्पताल भी तो हम शरीर के लिए बना रहे हैं, जो बीमार पड़ता है। समझे न?
तो जो सारी नैतिकता का चिंतन है, वह मन के लिए ही हो रहा है, वह उसको बदलना पड़े। और बड़े मजे की बात यह है कि वह जो स्वस्थ आत्मा है, उसे भी बीमार शरीर वाला नहीं जान सकता है। क्योंकि बीमार शरीर वाला बीमारी में इतना उलझ जाता है कि नजर ही उसके पीछे नहीं जाती। स्वस्थ शरीर जरूरी है, ताकि तुम भीतर जा सको। बीमार आदमी बाहर अटक जाता है। अगर तुम्हारे पैर में एक कांटा गड़ा है तो तुम्हें ब्रह्म, आत्मा किसी की याद न आएगी, कांटे की याद आती रहेगी। एक छोटा सा कांटा, ब्रह्म वगैरह को नदारद कर देगा एकदम। एक छोटा सा कांटा पैर में गड़ा है, फिर न उपनिषद बचा, न ब्रह्म बचा, न कुछ बचा, न वेदांत रहा, कांटा रह गया। अब तुमको कांटा चुभ रहा है।
जीसस के जीवन में एक उल्लेख है कि जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस रात एक आदमी का दांत दुखता रहा। तो रात उसकी पत्नी उसे दो-चार बार कहती है कि मुझे आज नींद नहीं आ रही, कल सुबह जीसस को सूली लग जाएगी। वह कहता है, नींद तो मुझे भी नहीं आ रही है, मेरे दांत में बहुत दर्द है। बार-बार यह बात चलती है, लेकिन वह कभी जीसस का नाम नहीं लेता है, वह कहता है, बहुत तकलीफ है मेरे दांत में। करवट बदलता है, दवा लगाता है, लेकिन दांत का दर्द नहीं जाता। सुबह से लोग आते हैं, बाहर से निकलते हैं, वे कहते हैं कि सुना तुमने, जीसस को सूली होने वाली है। वह कहता है, रात भर नींद नहीं आई, मेरे दांत में बहुत दर्द है। फिर जीसस की सूली को लिए हुए जीसस का जुलूस भी निकल जाता है, फिर भी वह अपने दांत के दर्द की बातें करता चला जाता है।

जिसके दांत में दर्द है, उसको जीसस की सूली कैसे याद आए? दांत की तकलीफ इतनी बड़ी है कि कहां जीसस और कहां क्या? अभी कांटा गड़ जाए तो आत्मा एकदम तिरोहित हो जाती है। कठिनाई जो है, अगर कोई कौम यह समझ ले कि आत्मा सदा स्वस्थ है। और है ही। आत्मा बीमार भी कैसे पड़े। बीमार भी पड़ना चाहे तो कैसे बीमार पड़े। आत्मा सदा स्वस्थ है। फिर वह कौम मेडिसिन विकसित नहीं कर पाएगी, क्योंकि मेडिसिन विकसित तो तभी की जाती है जब हम स्वीकार कर लें कि बीमारी है। तो विकसित करते, नहीं तो नहीं करते।
यह जो हमारी कठिनाई है--हमारी कठिनाई यह है कि जो परम निष्पत्तियां हैं, जो कनक्लूजंस हैं, जो अनुभूति के आखिरी छोर हैं, उनको हमने शिक्षा का पहला कदम बनाया हुआ है। वह सब गड़बड़ हो जाएगा। कनफ्यूजन तुम्हें ही नहीं है, कनफ्यूजन तो सारे मुल्क में है। और कनफ्यूजन इतना स्थायी हो गया है कि अब किसी को चाहिए कि इसको उखाड़ने के लिए सबको कनफ्यूज्ड कर दे एक दफा पूरी तरह से, नहीं तो यह कनफ्यूजन टूटने वाला नहीं है। यह टूटने वाला नहीं है, क्योंकि यह बिल्कुल मजबूत हो गया है।
हम पूरे वक्त दो तल पर जी रहे हैं, और वह जो तल, जिसकी हम बातें कर रहे हैं, उसको हमने कभी जाना नहीं है, और जिसको हमने जाना है, उसको इनकार किए चले जा रहे हैं। इनकार करने की वजह से उसको सुधार भी नहीं पाते हैं।
जिस बोकोजू की मैं बात किया हूं, उसका गुरु मर गया। गुरु से भी ज्यादा प्रसिद्ध था उसका यह शिष्य बोकोजू। तो लाखों लोग आए, इसकी वजह से गुरु की प्रसिद्धि थी। लाखों लोग आए और बोकोजू दरवाजे के सामने छाती पीट कर रो रहा है। तो लोगों ने उससे कहा, जो निकट के डिसाइपल्स थे उनको बड़ी फिक्र होती है, उनको भारी फिक्र होती है कि कहीं गुरु की बदनामी न हो जाए, कहीं यह न हो जाए, कहीं वह न हो जाए। गुरु की रक्षा करते रहते हैं वे। वे सब इकट्ठे हो गए। उन्होंने कहा, रोओ मत तुम! अभी लाखों लोग आ रहे हैं, अगर उन्होंने देख लिया कि बोकोजू रोता है, तो लोग कहेंगे कि कैसा ब्रह्म-ज्ञानी है! तो उसने कहा, ऐसे ब्रह्म-ज्ञान को मैं लात मारता हूं, जिसमें रो भी न सकूं। ऐसे ब्रह्मज्ञान से मुझे क्षमा कर दो। अब मुझे रोना आ रहा है, तो मैं तो रोऊंगा।
उन्होंने कहा, लेकिन यह तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा। लोग तो आपको समझते हैं कि आप परम-ज्ञान को उपलब्ध हो गए। लोग क्या कहेंगे? तो उसने कहा, ये लोग क्या कहेंगे अगर इसकी भी फिकर परम-ज्ञानी को है, तो अज्ञानी कौन है? लोग क्या कहेंगे, इसकी फिक्र मैं करूं? लोग जो कहेंगे, सो कहेंगे, इससे मुझे क्या लेना-देना? उन्होंने कहा कि नहीं, नहीं, नहीं। तो उन्होंने जल्दी से घेरा बना लिया, ताकि और आम जनता न देख ले कि उनका गुरु रो रहा है। उन्होंने कहा कि तुम जल्दी चुप हो जाओ। क्योंकि तुम तो कहते थे, आत्मा अमर है, और तुम रो रहे हो? तो उसने कहा, मैं आत्मा के लिए रो कहां रहा हूं? जो अमर है, उसके लिए रोने से फायदा क्या है? लेकिन वह शरीर भी बहुत प्यारा था और वह शरीर अब इस जगत में दुबारा नहीं होगा। मैं तो उसी के लिए रो रहा हूं। पर उन्होंने कहा, शरीर के लिए? मगर हम तो समझते हैं कि तुम आत्मवादी हो। उसने कहा कि मैं आत्मवादी हूं, इसीलिए तो शरीर के लिए भी रो सकता हूं। क्योंकि मैं समझता हूं कि शरीर सीढ़ी बना था, शरीर मंदिर बना था, उसमें निवास हुआ था, उसमें यह आत्मा इतने दिन तक रही थी, और यह अदभुत आत्मा जिस शरीर में रही थी, अभी हम उसको मिट्टी में मिलाएंगे, फिर आग में जलाएंगे। एक मंदिर गिरने के करीब है, जिसमें एक अदभुत आदमी पचास-साठ, सत्तर वर्ष तक रहा था। मैं तो रोऊंगा।
अब यह जो आदमी है, तुम कहोगे कि यह आदमी बड़ा कंट्राडिक्ट्री है। यह कहता है, आत्मा अमर है, और रोता है। कुछ कंट्राडिक्शन नहीं है। कंट्राडिक्शन इसीलिए है कि तुम समझ नहीं पा रहे हो कि जिंदगी बहुत अदभुत है और बहुत रहस्यपूर्ण है। उसमें आत्मा को अमर मानने वाला भी रो सकता है। बल्कि मेरी अपनी समझ यह है कि यह आदमी अदभुत ही था।
अब तिलक जैसे आदमी--तिलक की पत्नी मर गई। तो खबर आई दफ्तर में कि पत्नी
मर गई है। उन्होंने घड़ी देखी, उन्होंने कहा कि पांच के पहले तो मैं दफ्तर से कैसे जा सकता हूं! तो तिलक पर लिखने वाले लोगों ने कहा कि यह

स्थितप्रज्ञ है। क्योंकि इस आदमी को कोई मतलब ही नहीं है कि कौन मरता है, कौन जीता है! यह तो सब पार हो गया है! अगर मुझे चुनना हो, तो मैं बोकोजू को चुनूंगा कि यह आदमी अदभुत है। और अगर तुमने तिलक को चुना, तो दुनिया को तुम उदास कर डालोगे, खराब कर डालोगे। अगर तुमने तिलक को चुना, तो तुम मार डालोगे दुनिया को। क्योंकि मेरी नजर में नहीं इसका मूल्य है, मेरी नजर में कुछ भी मूल्य नहीं है। और ये बहुत बातें हो सकती हैं इसमें। यह तिलक का दिमाग बिल्कुल दुकानदार का दिमाग है। कहता है, पांच बजे दफ्तर बंद करेंगे! और हो सकता है इसने अपनी पत्नी को कभी प्रेम न किया हो, और हो सकता है कि पक्का सिद्धांत बांध कर बैठे हुए हैं, तो सिद्धांत का पालन करना पड़ेगा, तो पांच बजे उठ कर जाएंगे! मैं नहीं मानता। अगर धर्म इतना अमानवीय बनाता हो, तो मनुष्य होना बेहतर है, धार्मिक होना बेहतर नहीं है। मेरी बात समझ रहे हो न तुम? मनुष्य होना बेहतर है, धार्मिक होना फिर बेहतर नहीं है।
और धर्म ने बहुत तरह की अमानवीयताएं पैदा की हैं। लेकिन उनका ऐसा गार्बेज है, ऐसा उनका शब्दजाल है उस सबके पीछे... अगर धर्म प्रेम और करुणा और आनंद और दुख और पीड़ा, इन सबसे ही आदमी को निकाल देता हो और पथरीला कर देता हो, पत्थर बना देता हो, तो ऐसे धर्म की कोई जरूरत नहीं है। ऐसा धर्म चाहिए जो सब तलों पर क्रांति कर देता हो, सब तलों पर।
अब तुम रुको, उनके सवाल हो जाएं, नहीं तो फिर रह जाएंगे। अब तुम रुको।

प्रश्नः परसों मैंने अखबार में पढ़ा, जिसमें आपने सोशलिज्म के बारे में कहा कि भारत में सोशलिज्म की आवश्यकता नहीं है--ऐसा अखबार का... है। आइ डोंट नो व्हाट यू सेड। यू आर फॉर प्लैंड कैपिटलिज्म, सुनियोजित पूंजीवाद कहा है। तो उनको कोई रहस्यवाद की बात मिली। कैपिटलिज्म क्या औचित्य है? प्लैंड कैपिटलिज्म, सुनियोजित पूंजीवाद हो भी सकता है। पर कैपिटलिज्म की बुनियादी स्वभाव यह है--वह अनार्किक है। तो फिर हिंदुस्तान में अगर कैपिटलिज्म चलता है, तो इससे तो हिंदुस्तान का बुरा न होगा? पचास वर्ष तक चलाने की बात कर रहे हैं आप। और फिर बात में सोशलिज्म लाने की बात कर रहे हैं।

असल में, जिसको हम सोशलिज्म कहते हैं, जिसको कम्युनिज्म कहते हैं, वह
सब प्लैंड कैपिटलिज्म है--चाहे रूस में हो, चाहे चीन में हो, चाहे कहीं और हो। सोशलिज्म तो दुनिया में कहीं भी नहीं है। जो भी हैं, वे दो तरह के कैपिटलिज्म हैं। एक कैपिटलिज्म है, जो अनप्लैंड है, जैसा अमरीका में है। वह भी अब पूरा अनप्लैंड नहीं है, उसमें भी प्लानिंग प्रवेश कर रही है। और एक तरह का रूस में है, जो प्लैंड है। प्लैंड कैपिटलिज्म का मतलब है, स्टेट कैपिटलिज्म। पहली बात तो यह समझ लें।
असल में, समाजवाद तो कहीं भी नहीं है और संभावना भी नहीं दिखती कि जिसको हम समाजवाद कहें वह कभी हो सके, वह बहुत उटोपियन है। हो सिर्फ यह सकता है कि व्यक्तियों के हाथ से संपत्ति का अधिकार राज्य के हाथ में चला जाए, तो राज्य पूंजीवाद हो जाए पूंजीवाद की जगह। व्यक्ति पूंजीवाद की जगह राज्य पूंजीवाद हो जाए। यही हो सकता है, यही हुआ है। तो राज्य पूंजीवाद ही समाजवाद हमको दिखाई पड़ने लगता है, क्योंकि हम शोरगुल मचाते हैं कि समाजवाद है, लेकिन होता राज्य पूंजीवाद है। पूंजिपतियों की व्यक्तिगत जो सामर्थ्य है या व्यक्तिगत जो उत्पादन के साधनों पर उनकी मालकियत है, वह राज्य के हाथ में चली जाती है। राज्य दोनों हो जाता है, सत्ताधिकारी भी और पूंजीवादी भी। दोनों काम राज्य करने लगता है। स्टेट कैपिटलिज्म है सब जगह जिनको हम सोशलिस्ट कंट्रीज कहते हैं--एक।
दूसरी बात, जब मैं कहता हूं कि प्लैंड कैपिटलिज्म, तो मेरा मतलब यह है
कि समाजवाद जो है वह पूंजीवाद ऐसा समाजवाद जिसको कि राज्य पूंजीवाद कहें, ऐसा समाजवाद भी पूंजीवाद के एक विकसित अवस्था के बाद ही संभव है। इसलिए संभव है कि राज्य पूंजी अपने स्वामित्व में ले, या पूरे मुल्क को स्वामित्व का अधिकार दे--इसके पहले पूंजी होनी जरूरी है। जिस देश के पास पूंजी न हो, जैसे भारत जैसा देश--भारत जैसा देश अभी भी नब्बे परसेंट

सामंतवादी है, अभी भी। अभी भी वह दस परसेंट ही पूंजीवादी है। अभी भी हम यह नहीं कह सकते कि वह पूंजीवादी है। क्योंकि जिसको औद्योगिक क्रांति कहें, ऐसी कोई चीज से हम अभी गुजर नहीं गए। बंबई देखने से भ्रम पैदा हो जाता है, लेकिन इस बड़े मुल्क को देखने से पता चलता है कि पूंजीवाद कहां? हमारा गांव तो हजार साल पहले जैसा था, वहीं जी रहा है, वहीं खड़ा हुआ है।
हिंदुस्तान अभी पूंजीवादी भी नहीं है। यानी यह ऐसा ही है कि जैसे कोई बच्चा अभी जवान भी नहीं हुआ है और बूढ़ा होने की बातचीत हमने शुरू कर दी कि हम इसको बूढ़ा कैसे करें।

प्रश्नः यह रूस में भी हुआ।

मैं बात करता हूं। रूस में जो हुआ, वह भी प्रि-मैच्योर हुआ। रूस में भी मार्क्स की कल्पना के बाहर था कि रूस में, और समाजवाद आ जाएगा। और अगर कोई मार्क्स को कहता है कि रूस में समाजवाद आ जाएगा, तो वह भी थोड़ी हैरानी से देखता है कि रूस में कैसे आ जाएगा। क्योंकि रूस उन्नीस सत्रह में दुनिया के अविकसित देशों में एक था। वहां समाजवाद की मार्क्स के हिसाब से भी संभावना कम दिखती थी।

प्रश्नः रेवोल्यूशन हुआ।

हां, रेवोल्यूशन हुआ, इसलिए प्रि-मैच्योर है, जैसे कि पांच महीने का बच्चा पैदा हो जाए, पांच महीने का बच्चा पैदा हो जाए, तो जो पांच महीने के बच्चे के साथ ब्लीडिंग हो, वह रूस में हुई अच्छी तरह से। कोई एक करोड़ आदमियों की हत्या हुई पूरी क्रांति में। और इसके बाद भी रूस समृद्ध नहीं हो सका, आज भी रूस गरीब ही है।
और इतने पचास साल की क्रांति के बाद भी, आज भी अपने भोजन के लिए पूंजीवादी मुल्कों पर निर्भर है, आज भी! और पचास साल के निरंतर प्रयोग के बाद ख्रुश्चेव ने जाने के पहले यह कहा कि हमारे सामने अभी भी सवाल यही है कि हम इंसेंटिव पैदा नहीं कर पाते कि लोग काम कैसे करें? और रोज इंसेंटिव कम हुआ है। काम करने की वृत्ति कम हुई है। या तो काम को जबरदस्ती लेना पड़ता है, कोड़े के बल पर, या बंदूक के बल पर, या साइबेरिया के डर से काम लेना पड़ा है। स्टैलिन ने काम उसी तरह लिया। और या फिर इंसेंटिव खो जाता है।
आज भी रूस पूंजी नहीं पैदा कर पाया है। और उसका कारण है, उसमें रूस की गलती नहीं है। उसकी गलती यही है कि जैसे पांच महीने का बच्चा पैदा कर लिया और उसको किसी तरह पाल-पोस कर जिंदा भी रख रहे हैं, लेकिन फिर भी वह पिछड़ गया बुरी तरह से। पचास साल में अमरीका ने जितनी पूंजी पैदा की है, पचास साल में रूस उतनी पूंजी पैदा नहीं कर पाया। उससे बहुत पीछे छूट गया है, पूंजी पैदा करने के मामले में। और बड़े मजे की बात यह है कि अमरीका में जिसको गरीब कहते हैं हम, वह आदमी रूस में आज अमीर मालूम पड़ सकता है। अमरीका का गरीब भी रूस में आज अमीर मालूम पड़ सकता है, हालतें ऐसी हैं।
तो मेरी अपनी समझ यह है कि समाजवाद तो अनिवार्य है। अनिवार्य इस अर्थों में है कि जैसे जवानी के बाद बुढ़ापा अनिवार्य है। पूंजीवाद विकसित हो जाए तो समाजवाद में अपने आप परिवर्तित होना अनिवार्यता है। मैं जो कह रहा हूं वह मैं यह कह रहा हूं कि पूंजीवाद का ठीक विकास अनिवार्यरूपेण समाजवाद में ले जाता है। तो समाजवाद और पूंजीवाद में विरोध नहीं है। पूंजीवाद की अग्रिम अवस्था है समाजवाद, अनिवार्य अवस्था है, जिसमें उसको जाना पड़ेगा, वह बच नहीं सकता। लेकिन हम चाहें तो जोर-जबरदस्ती से, जल्दी भी ले जा सकते हैं।
नौ महीने में बच्चा पैदा हो, यह तो ठीक है, लेकिन जोर-जबरदस्ती आपरेशन करके हम पांच महीने में ही बच्चे को निकाल ले सकते हैं, इसमें कोई ऐसी अड़चन नहीं है। गर्भपात करवाया जा सकता है। इसमें कोई बहुत अड़चन नहीं है। तो यह जो गर्भपात है, इसके मैं पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं कि भारत में अभी

जो होगा समाजवाद, वह गर्भपात होगा। क्योंकि भारत पूंजीवादी मुल्क ही नहीं है।
दूसरी बात यह है कि रूस का जो अनुभव है, अगर उस अनुभव का हम पूरा उपयोग करें, और न करें तो नासमझ हैं। रूस ने एक बड़ा प्रयोग किया है और उस बड़े प्रयोग से सारी दुनिया को अनुभव लेना जरूरी है। चीन भी एक बड़ा प्रयोग कर रहा है, उससे भी अनुभव लेना जरूरी है। अगर हम वह अनुभव करें, तो रूस में पिछले दस वर्षों से निरंतर व्यक्तिगत संपत्ति की तरफ ढलाव आ रहा है। निरंतर व्यक्तिगत संपत्ति को धीरे-धीरे छूट देने की बात आ रही है। चीन और रूस के बीच आज झगड़ा ही वही है। माओ को लगता ही यह है कि रूस जो है वह किसी तरह से पूंजीवादी कैंप में सम्मिलित होता जा रहा है। और रूस पचास वर्ष के अनुभव से यह कर रहा है। क्योंकि पचास वर्ष के अनुभव ने यह बताया कि मनुष्य और व्यक्ति को व्यक्तिगत संपत्ति कुछ ऐसी अनिवार्य बात है कि अगर वह उससे छूट जाती है, तो व्यक्तित्व किसी अर्थ में फीका और खाली और एंप्टी हो जाता है। और काम करने की जो प्रवृत्ति है और श्रम करने का जो आग्रह है और पैदा करने का जो नशा है, वह सब खो जाता है। वह आदमी खड़ा सा रह जाता है, ठप्प हो जाता है। यानी व्यक्तित्व में व्यक्तिगत संपत्ति का कोई अनिवार्य रोल है, यह रूस को इधर पचास वर्ष में समझ में आया है। तो अभी उन्होंने इधर पांच-सात वर्षों में व्यक्तिगत कार रखने के लिए भी छूट दे रहे हैं। ये सब छूट दे रहे हैं।

प्रश्नः आप उन लोगों के कनक्लूजन से सहमत हैं?

न-न, मैं सहमत नहीं हूं। मैं यह कह रहा हूं कि पचास वर्ष के रूस के ये अनुभव यह बताते हैं कि अब किसी मुल्क को समाजवादी जरा सोच-समझ कर होना चाहिए, क्योंकि पचास साल के बाद यह जो परिणाम हुआ है--और यह चीन में भी होगा। अभी माओ उसी नशे में है, जिस नशे में स्टैलिन आज से चालीस साल, पचास साल पहले था। नशा वही है, भूल वही होने वाली है वहां भी, क्योंकि वही सब होने वाला है।

प्रश्नः तो फिर तो ऐसा हुआ कि कैपिटलिज्म भारत से जाएगा।

मेरी जो समझ है, मेरी समझ जो है वह यह है कि यह तो सौ वर्ष में तय होगी बात। मेरी समझ यह है कि सिर्फ अमरीका आज इस हालत में आता जा रहा है कि समाजवादी हो सके--सिर्फ अमरीका। और अमरीका जिस दिन समाजवादी होगा, तो उस समाजवाद की गरिमा ही और होगी। वह बहुत ही पीसफुल सोशलिज्म होगा। कब आ गया चुपचाप, उसके पदचिह्न भी सुनाई नहीं पड़ेंगे।
मैं यह इसलिए कह रहा हूं--इसलिए मेरी नजर में जो मैंने कहा है, उसमें
वह मैंने यही कहा है कि मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान में समाजवाद जो आएगा, वह वाया वाशिंगटन ही आएगा। वाया वाशिंगटन से मेरा मतलब है कि हिंदुस्तान को पूंजीवाद विकसित करना पड़ेगा। वाशिंगटन--वह वाया वाशिंगटन ही आने वाला है, वाया मास्को का अब कोई रास्ता नहीं है। यह मेरी समझ है। तो पचास वर्ष जो मैं कह रहा हूं कि पचास वर्ष हमें पूरी मेहनत करनी चाहिए पूंजीवाद को विकसित करने की। तो स्टेट कैपिटलिज्म के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं तो व्यक्तिगत पूंजीवाद के लिए कह रहा हूं कि पचास वर्ष हमें व्यक्तिगत पूंजीवाद को...
और जब मैं प्लैंड कह रहा हूं, तो प्लैंड से मेरा मतलब यह है कि हम पूंजीवाद को एक मजबूरी की तरह नहीं ढोते हैं पचास साल, हम जान कर ढोते हैं, एक अनिवार्य प्रक्रिया की तरह ढोते हैं। हम क्रोध और गुस्से में नहीं ढोते हैं, हम जान कर ढोते हैं कि समाजवाद के लिए यह कदम है। तब हम पूंजीवादी को गाली देकर नहीं ढोते हैं, बल्कि हम पूंजीवादी को पूरा प्रोत्साहन देकर ढोते हैं। और इस तरह मेरी दृष्टि यह है कि सीलिंग अगर प्लैंड कैपिटलिज्म की कल्पना हो, तो सीलिंग ऊपर की तरफ नहीं होगी, नीचे की तरफ होगी। ऐसी सीलिंग करना खतरनाक है, जिसमें हम तय करें कि एक लाख रुपये

से ज्यादा किसी के पास नहीं होंगे। मेरी दृष्टि में सीलिंग ऐसी होगी कि सौ रुपये से कम हम किसी आदमी के पास नहीं होने देंगे। सीलिंग नीचे की तरफ से-- प्लैंड कैपिटलिज्म की मेरी जो नजर होगी।
और कैपिटलिज्म को कैसे विकसित किया जाए...

प्रश्नः ऐसा अमरीका में भी नहीं है।

नहीं है। नहीं इसलिए है कि अमरीका में कैपिटलिज्म भी धीरे-धीरे विकसित हुआ है। अमरीका में कोई प्लैंड कैपिटलिज्म विकसित नहीं हुआ, धीरे- धीरे विकसित हुआ है। लेकिन हिंदुस्तान जैसे मुल्क को जिसे सारी दुनिया के साथ आने वाले पचास वर्षों में कदम मिलाना हो, वह अगर उतने धीरे-धीरे का इंतजाम करे, तो तीन सौ साल उसको लगे, और तीन सौ साल में अमरीका किन चांद-तारों पर हो, तब फिर हमारा हिसाब कभी मिलने वाला नहीं है। तो हमें तो पचास साल में तीव्र गति करनी पड़ेगी, एक इंटेंसिटी लानी पड़ेगी। अब वह इंटेंसिटी और प्लानिंग किस तरह की हो। वह सोशलिज्म के लिए हो सीधी? मैं मानता हूं गलत होगी, वह कैपिटलिज्म के लिए ही हो, वह उद्योग को मौका दे, उद्योग को बढ़ने का मौका दे, उसको फलने-फूलने का मौका दे, सारी दुनिया की पूंजी को निमंत्रित करे।

प्रश्नः... कैपिटलिज्म शुड बी डवलप।

बिल्कुल ही।

प्रश्नः मुक्त पूंजीवाद।

बिल्कुल। मुक्त पूंजीवाद पचास साल तक।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वे समझ नहीं पाए, मैं जो कहा वह नहीं समझ पाए। मैं कुछ और कहा। मैं कुछ
और कहा, वे समझे नहीं। मैं कहा यह कि वह, जैसे कि माओ को पैदा करने की बात हो...

प्रश्नः नहीं, मैंने कभी कहा ही नहीं।

न-न, आपकी नहीं कह रहा।

प्रश्नः क्योंकि माओ, चीन में भी दुबारा नहीं हो सकता।

नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। वही मैं कहा कि यह संभव नहीं है। और इसलिए
जो प्रयोग हमें करना है, वह एक अर्थ में नया ही प्रयोग होगा। सदा नया ही प्रयोग होता है वह। हम दूसरे के प्रयोग से थोड़ा-बहुत लाभ ले सकते हैं, किसी प्रयोग को पुनरुक्त नहीं कर सकते। पुनरुक्त करना असंभव भी है, क्योंकि सब बदल चुका होता है, सब बदला होता है। लेकिन होती क्या है कठिनाई, अब जैसे यह सब--क्लाइमेट और हवा, यह उन्होंने जोड़ लिया, यह तो मैंने कभी बात ही नहीं किया। उसमें कैनेडी भी नाम मैंने नहीं लिया, वह कैनेडी भी उनकी जोड़ है। वह ख्याल में आ जाता है, जुड़ जाता है। वे बेचारे, समझ में जो उनके आता है, वह लिखते हैं। इंप्रेसन हो जाता है, इंप्रेसन हो जाता है।

प्रश्नः मार्क्स के बारे में आपने कहा कि वह निष्क्रिय राजनीति में रहा। तो निष्क्रिय पोलिटीशियन मार्क्स है, ऐसा आप कैसे मानते हैं? क्योंकि मार्क्स की बायोग्राफी तो आपने पढ़ी होगी। फिर वह कैसे?

नहीं, मैं जो जिस अर्थ में कहा हूं, वह इस अर्थ में कहा हूं कि मार्क्स
की जिंदगी का महत्वपूर्ण हिस्सा तो ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में बैठ कर गुजरा--बड़ा हिस्सा। बड़ा हिस्सा तो उसका, बीस साल तो कैपिटल में लिखने में गुजरा। मार्क्स का जो दान है--उसमें छोटी-मोटी पॉलिटिक्स में भाग ले रहा था वह। वह पूरे यूरोप के सारे रेवोल्यूशनरी के बीच संबंधित था; विवाद चल रहे थे, कांफ्लिक्ट थी, सब था, वह सब चल रहा था। लेकिन मार्क्स का जो कंट्रीब्यूशन है--मार्क्स का सारा कंट्रीब्यूशन एक थ्योरीटिशियन का है। और हो भी यही सकता है। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि मार्क्स जो है, वह कम्यूनिज्म की फिलासफी का जन्मदाता है। और स्वाभाविक है कि जब भी फिलॉसफी पैदा होती है, कोई तत्व-दर्शन पैदा होता है, और जब एक आदमी अपनी छोटी सी जिंदगी में, इतने बड़े विचार को जन्म देता है, तो बहुत स्वाभाविक है कि उसकी अधिकतम जिंदगी निष्क्रिय हो। और निष्क्रिय इस अर्थों में नहीं कि वह विचार में तो सक्रिय है ही, वह भी सक्रियता है। जो मैंने कहा, वह मैंने यही कहा कि जरूरत होती है ऐसे लोगों की भी, जो सक्रिय राजनीति के बाहर खड़े रह कर विचार को जन्मा पाएं। और विचार जन्म जाए, तो विचार की अपनी सक्रियता है। विचार की अपनी सक्रियता है।
जैसे मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान में पोलिटिकल फिलॉसफी जैसी चीज पैदा नहीं हो पा रही है। उसका एक बड़ा कारण यह है कि हिंदुस्तान के पास, जिसको कहें थ्योरीटिशयन, वह नहीं पैदा हो पा रहा है।
हिंदुस्तान के पास जितनी पॉलिटिक्स है, और जितना पोलिटिशियन है, वे
डे टु डे पॉलिटिक्स में इस भांति उलझा हुआ है कि उसको कोई न मौका है, न फुर्सत है। चौबीस घंटे इलेक्शन में खड़ा हुआ है। कुर्सी पर पहुंच गया है, तो कुर्सी बचाने में लगा हुआ है। अब मैं हिंदुस्तान के राजनीतिज्ञों के पास कभी ठहरता हूं, तो मैं हैरान हो जाता हूं। वे न कुछ पढ़ पाते हैं, न सोच पाते हैं, वह कुछ गुंजाइश नहीं उनके पास।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं समझ गया आपकी बात। मूवमेंट का तो मामला ऐसा है। मैं जब एक्टिव पॉलिटिक्स की बात कह रहा हूं, तो मैं एक्टिव मूवमेंट में नहीं था, ऐसा भी नहीं कर रहा हूं। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं। मेरा कहना यह है कि ऐसे तो अगर मैं भी तीस-चालीस साल घूमता रहूंगा, चिल्लाता रहूंगा, एक मूवमेंट खड़ा कर दूंगा। और एक्टिव मूवमेंट में हूं चौबीस घंटे--मैं तो किसी लाइब्रेरी में बैठ कर भी नहीं लिख पा रहा हूं--आप से लड़ ही रहा हूं, किसी से लड़ रहा हूं, वह चल रहा है। एक्टिव ही हूं पूरे वक्त। लेकिन जब मैं कहता हूं एक्चुअल पॉलिटिक्स, तो मेरा मतलब कुल इतना था कि कोई सरकार का इलेक्शन लड़ रहा हो, कि किसी की हुकूमत को चला रहा हो, कि किसी हुकूमत पर बैठ गया हो, यह सब सवाल नहीं था, बड़ा सवाल मार्क्स के लिए यह था कि एक विचार-दृष्टि जन्म जाए। वह निश्चित ही...

प्रश्नः अब आपकी कुछ रिलीजस बात हो। मैंने कुछ पढ़ा। क्योंकि मैं आपमें दिलचस्पी ले रहा हूं। तो कुछ आपके विचार से मैं सहमत नहीं हूं। और मैं मानता हूं कि उसकी सामने लड़ाई करनी चाहिए।

करनी चाहिए।

प्रश्नः और आप तो वह चाहते हैं।

बिल्कुल चाहता हूं।

तो इसलिए मैं आपके साथ यह फिलॉसफिकल डिस्कशन...

मैं समझा। मैं आपकी बात समझा। पहली तो बात यह है कि जो मैं कहूं, अगर
वह उपनिषद से मेल खाए, इसलिए उपनिषद की ईको नहीं हो जाता। वह मेरा भी अनुभव हो सकता है। उपनिषद की ईको होना जरूरी नहीं है उसको। और इसमें मेरा कोई कसूर नहीं है कि जो मेरा अनुभव है वह उपनिषद में भी है, उसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। वह उपनिषद के लेखक को भी नहीं पकड़ा जा सकता कि उसका कोई कसूर है। तो एक तो यह है कि वैसा मेरा अनुभव है, और जो अनुभव है वही रियलिटी है। आप कहते हैं कि वह अनरियल हो जाता है, अनरियल नहीं हो जाता। क्योंकि अनुभव ही रियल है। अगर मेरा ऐसा अनुभव है कि मैं यह नहीं हूं, या मेरा ऐसा अनुभव है कि मैं ब्रह्म हूं, तो अनरियल कैसे हो जाएगा? क्योंकि अनुभव ही रियलिटी है। और अनुभव के अतिरिक्त रियलिटी का कोई और मापदंड भी नहीं है।
हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐसी रियलिटीज भी हैं, जो हम सबके अनुभव में नहीं आती। इतना ही हम कह सकते हैं। यानी अगर मुझसे आप आकर कहें कि मैं ब्रह्म हूं, तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि इस रियलिटी को मैंने नहीं जाना। मैं यह नहीं कह सकता कि अनरियलिटी है, और अनरियलिटी कहूं, तो भी इतना ही मतलब होता है उसका कि मेरे लिए अनरियल है अभी। लेकिन अनरियलिटी कहना जरा ज्यादा नतीजा ले लेना है। इतना ही हम कह सकते हैं कि यह मेरा अनुभव नहीं है, मेरे लिए अभी यह यथार्थ नहीं है। यह आपके लिए हो सकता है। तो मैं तो रियलिटी की ही बात कह रहा हूं।

प्रश्नः यह समझ गया मैं आपका मीनिंग। वह तो ऐसा कि ईश्वर है, ऐसा कोई कहे, तो बोलेगा कि अनुभूति है। लेकिन वह साबित करना मुश्किल है।

न, न, न। अब यह जो मामला है न, यह जो मामला है कि साबित करना मुश्किल है,
यह जो कहना है न आपका, साबित करना तो यह भी मुश्किल है कि आपके सिर में दर्द है। तो साबित करना तो यह भी मुश्किल है।

प्रश्नः यह तो साबित हो सकता है।

नहीं हो सकता।

प्रश्नः फिजिकली।

नहीं, बिल्कुल नहीं, वह फिजिकल नहीं हो सकता, यह हो नहीं सकता। अब यह अनुभव करना मुश्किल है कि आपके हृदय में प्रेम है। इसके लिए कोई उपाय नहीं साबित करने का।

प्रश्नः वह तो क्या हुआ के डिस्कशन के सामने डिस्कशन... ।

डिस्कशन नहीं कर रहा हूं। न-न, डिस्कशन नहीं कर रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि दे ऑर रियलिटी व्हिच कैन नॉट बी प्रूव्ड, पर है। अगर मेरे हृदय में किसी के लिए प्रेम है, तो वह इतना हो सकता है कि मैं अपनी जान गंवा दूं। और आप अगर मेरी सारी जांच-पड़ताल करने बैठें और मुझे सिद्ध करना पड़े तो मैं कुछ भी सिद्ध न कर पाऊं। मगर इससे फिर भी मैं राजी न होऊंगा कि मुझे प्रेम जो था वह अनरियल था या प्रेम नहीं था। मैं किसी भ्रम में पड़ा हुआ था या मेरे भीतर प्रेम जैसी कोई घटना नहीं घट रही थी। वह घट रही थी।
जिंदगी में अनुभव हैं, जिन अनुभवों को पकड़ना जरूरी नहीं है कि प्रूफ में संभव हो जाए। और मजा यह है कि जो अनुभव प्रूफ में नहीं आता, वह डिसप्रूफ में भी नहीं आता।

देख कबीरा रोया
चौदहवां प्रवचन

पूंजीवाद का दर्शन

... तो रिस्पांस का सवाल नहीं उठता। उससे कहना शुरू करिए, उसे कुछ बातें साफ हों, तो कठिनाई नहीं है। इस वक्त तकलीफ यह है कि समाजवादी तो कह रहा है, समाजवादी विरोधी चुप है, वह सिर्फ देख रहा है। अपने घर में बैठ कर कहता है कि ठीक नहीं हो रहा है। तो मर ही जाएंगे, उसके तो कोई उपाय नहीं है।

प्रश्नः मगर समाजवादी आपके पास आकर कहता नहीं है कि आप गलत बात कर रहे हैं, ऐसी कुछ चर्चा नहीं हो रही है?

मुझसे कोई आकर कहे तो मैं तो सदा तैयार हूं उससे समझने को, अपनी बात समझाने को। मेरे पास कोई नहीं आता। अगर आप ठीक से किसी बात को कह रहे हैं और ठीक है बात, तो बहुत कठिनाई है, बहुत कठिनाई है। और एंटी सोशलिज्म की बात को एक फिलासफी नहीं बना सकेंगे आप, इसलिए तकलीफ है। जब तक आपके पास अपने आर्ग्युमेंट्स न हों, सोशलिज्म के पास अपने आर्ग्युमेंट्स हैं। इसलिए आप परेशानी में पड़ जाते हैं। आपके पास आर्ग्युमेंट नहीं हैं और बिना आर्ग्युमेंट के जब आप कुछ कहते हैं तो ऐसा लगता है कि सिर्फ आपका इंट्रेस्ट है इसलिए बकवास कर रहे हैं। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः तो ये लोग ऐसे नहीं कहते हैं कि कैपिटलिस्ट का सब...

वे कहेंगे, इससे क्या फर्क पड़ता है। वे कहते हैं। और मैं कहूंगा कि ठीक कहते हैं। उसमें हर्ज क्या है कहने में। असल में कैपिटलिस्ट खुद ही डिफेंस के मूड में है। यह उसकी तकलीफ है। वह खुद ही मान रहा है कि कैपिटलिज्म है तो खराब चीज, इसलिए वह लड़ नहीं पाया।

प्रश्नः वह आपने बराबर एक्सप्लेन किया। आपकी मीटिंग में वह आपने बहुत अच्छी तरह से कहा कि भाई कैपिटलिस्ट लोग खुद ही ऐसा कह रहे हैं कि भई सोशलिज्म... कैपिटलिस्ट की यह तकलीफ है वही मूड में नहीं है।

उसका कारण है यह कि यह सारा का सारा जो है--हमारे मन तो बहुत कुछ प्रोपेगेंडा से चलते हैं। सोशलिज्म का प्रोपेगेंडा सौ साल का है और जब भी कोई व्यवस्था बनी होती है, उसके विरोध में यह प्रोपेगेंडा करता है। वह तो प्रोपेगेंडा करता है ठीक से, लेकिन जिसकी व्यवस्था बनी होती है, वह सोचता है क्या कर लोगे? इसलिए वह कुछ प्रोपेगेंडा करता नहीं, इसलिए अंत में हारता है।
सोशलिज्म ने सौ साल अपनी बात कही। उसके पास अपनी फिलासफी है, अपना रिलीजन है, अपनी साइंटिफिक थिंकिग के आर्ग्युमेंट्स हैं और कैपिटलिज्म चुपचाप देखता रहा है। कैपिटलिज्म को अपनी फिलासफी डेवलप करनी चाहिए। और अगर आप डिफेंस के मूड में हैं तो हार निश्चित है। इस दुनिया में डिफेंस से कोई नहीं जीतता। जीतना हो तो एक अग्रेसिव फिलासफी चाहिए। आप यह न कहें कि सोशलिज्म गलत है। आपको यह भी कहने की हिम्मत करनी पड़ेगी कि कैपिटलिज्म सही है। और उससे मनुष्यता का कुछ हित होने वाला है, यह आपको साफ करना पड़ेगा। तो डिफेंस की भाषा ही हारने की भाषा है। उसमें तो आप, जिस आदमी ने डिफेंस की भाषा बोलनी शुरू की, उसको समझना चाहिए कि वह हारेगा, वह जाएगा, वह बच नहीं सकता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कैपिटलिज्म के लिए कुछ फिलासफी चाहिए कि वह कह सके कि हम इसलिए खड़े हैं। वह फिलासफी न हो तो सिर्फ मालूम पड़ता है आप अपना पैसा बचाना चाहते

हैं, इसलिए सारी बात कर रहे हैं। पैसा बचाने के लिए इस दुनिया में बहुत उपाय नहीं हैं, बहुत उपाय नहीं है। और दूसरी बात है कि प्रोलिटेरिएट ऐज ए क्लास कांशस हो गया है, कैपिटलिस्ट ऐज ए क्लास कांशस नहीं है। कैपिटलिस्ट की कोई क्लास नहीं है।

प्रश्नः तो उसमें ऐसा कहना चाहिए कि हम जो कमा रहे हैं, वह आखिर बांटने के लिए कमा रहे हैं।

पहली तो बात यह है, यह बांटने की बात जो वह शुरू करता है न, वहीं से उसने सोशलिज्म को स्वीकार करना शुरू कर दिया। उसे यह कहना चाहिए कि जो कमा रहा है, वह कमाने का मालिक है। बांटना उसकी खुशी है। किसी का अधिकार नहीं है। जो मामला है न, जिस दिन आप कहते हैं कि हम बांटने के लिए कमा रहे हैं, उस दिन तो यही कहा जा सकता है कि आप काहे के लिए मेहनत कर रहे हैं नाहक? मेरा तो कहना यह है कि बांटना खुशी है, किसी का अधिकार नहीं। और जिस दिन हम कमाने वाले को मजबूर करते हैं कि वह गैर-कमाने वाले को बांट दे, उस दिन हम एक अनजस्टिस कर रहे हैं। और ऐसी सोसाइटी अनजस्ट सोसाइटी है।
सच्चाई यह है कि जो नहीं कमा रहा है, उसको भी इंसेंटिव दो कि वह भी कमा सके। और मेरी अपनी समझ यह है कि जिस दिन कैपिटल एफ्लुएंट हो जाती है, उस दिन वह बंटना शुरू हो जाती है। आपको बांटना नहीं पड़ता। कोई बांटता नहीं, वह बंटती है। मेरा कहना यह है कि सोशलिज्म जो है, इट विल कम ऐज ए बाई-प्रॉडक्ट।
कैपिटलिज्म ठीक से विकसित हो तो सोशलिज्म बाई-प्रॉडक्ट की तरह आता है, बल्कि तभी आता है। और कोई रास्ता ही नहीं है उसको लाने का। जिस दिन संपत्ति ज्यादा हो जाए, वह बंटेगी; क्योंकि संपत्ति का उपयोग करना पड़ता है। उपयोग से वह बंटती है। और जिस दिन ज्यादा हो जाती है उस दिन करिएगा क्या? अभी असल में उसको पकड़ने का मजा ही यह है कि वह बहुत कम है। दो के पास है और हजार के पास नहीं है। तो वे दो सब तरह का इंतजाम करते हैं उसको पकड़ने का। कल को हजार के पास हो तो पकड़ ही खो जाती है। तो असली सवाल यह नहीं है कि कैपिटलिज्म कैसे जाए? असली सवाल यह है कि एफ्लुएंट कैपिटल कैसे पैदा हो? यह जो असली सवाल है, वह यह है कि इतनी संपत्ति पैदा हो जाए कि संपत्ति
पर पकड़ खो जाए। और अगर ऐसा नहीं होता है, तो सोशलिज्म संभव ही नहीं है। और जब आप भी कहते हैं कि हम बांटने के लिए ही कमा रहे हैं, तभी आप गलत बात करना शुरू कर देते हैं, जो आपकी भी कांशियंस नहीं रहेगी। वह झूठी बात आप कह रहे हैं। और यह ध्यान रखिए कि झूठी बात में कोई बल नहीं होता। और जो मैं कह रहा हूं वह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि कैपिटलिस्ट बचना चाहिए। अगर बचाने के लिए कह रहा हूं तो वह बचने वाला नहीं है मामला।
नहीं, मुझे तो लगता यह है कि कैपिटलिज्म के पास अपनी वैल्यूज हैं, जो सोशलिज्म के पास नहीं है। और उन वैल्यूज को बचना चाहिए। वे वैल्यूज सोशलिज्म में नहीं बचेगी। यानी मुझे कैपिटलिज्म से कोई मतलब नहीं है। कुछ वैल्यूज हैं--डेमोक्रेसी है, फ्रीडम है। ये वैल्यूज इतनी कीमती हैं कि मनुष्य-जाति में हजारों साल की बामुश्किल तकलीफ के बाद हम उन तक पहुंचे हैं। और उनको हम दो मिनट में खो सकते हैं।

प्रश्नः आप लोगों को बोलने को तैयार नहीं है। यह तकलीफ है।

मैं बोलने को तैयार हूं।

प्रश्नः आप कैपिटलिस्ट नहीं हो।

यही सुविधापूर्ण है। आप समझ रहे हैं न? यह सुविधापूर्ण है। मैं अगर कैपिटलिस्ट हूं तब मेरा बोलना बहुत अर्थपूर्ण नहीं है।

प्रश्नः आचार्यश्री, एक बात है कि सारी दुनिया सोशलिज्म की बात करती
है और वही नारा लगा रहे हैं।

उसका कुछ मामला नहीं है। सौ साल से प्रचार कर रहे हैं। और दूसरी बात
यह है कि धनपति अल्प मत है, माइनारिटी है। दुनिया में इस समय सबसे छोटी माइनारिटी धनपति की है। और गरीब मेजारिटी है। तो गरीब की ईर्ष्या को भड़काया जा सकता है। उसमें कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन सवाल यह है कि गरीब की ईर्ष्या के भड़काने से गरीब का हित होगा? यह सवाल है। यानी मेरी अपनी समझ यह है कि उसकी ईर्ष्या भड़का सकते हो, पूंजीपति को मिटा भी सकते हो, पूंजीवाद की पूरी सिस्टम भी तुड़वा सकते हो। अब इसमें कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन इससे गरीब का कोई हित नहीं होगा। यह गरीब को कहना पड़ेगा। और गरीब को भड़काया जा रहा है जिस बात से वह यही है कि उसका हित होगा।
अगर हम गरीब को यह समझा पाएं कि उसका हित नहीं, अहित होगा, तब तो मामला खतम हो जाए। लेकिन आप सोचते हों कि कैपिटलिज्म के हित के लिए गरीब को राजी किया जा सके, तो आप गलती में हैं। वह तो गरीब को यह ख्याल साफ होना चाहिए कि कैपिटलिज्म उसका हित है। और इसलिए मैं कह रहा हूं कि कैपिटलिज्म की पूरी फिलासफी, पूरा आर्ग्युमेंट, वह कैसे विकसित हुआ है, उसने क्या दुनिया के लिए दिया है, उसका क्या हिस्टोरिक रोल है, उस सबको हमें साफ करना चाहिए। और उसको खोकर क्या खो जाएगा, इसकी बात जाहिर करनी चाहिए--कि फ्रीडम खोएगी, कि आदमी के व्यक्तित्व की सारी हैसियत खो जाएगी। ये सारी बातें उसको साफ करनी चाहिए।

प्रश्नः जब आपने अपने लेक्चर में जो समझाया कि आदमी एक मशीन हो जाता है, वह बहुत अच्छी बात की। क्योंकि यू नो... इ.ज बॉडी इंपॉरटेंट।

हां, उसकी हमें बात करनी चाहिए, साफ बात करनी चाहिए। क्योंकि सोशलिज्म का सबसे बड़ा खतरा तो यही है कि सोशलिस्ट फिलासफी बेसिकली मैटीरियलिस्ट है। अब यह बड़े मजे की बात है कि हम आमतौर से कैपिटलिस्ट को मैटीरियलिस्ट कहते हैं। यानी यह बड़े मजे की बात है। बेसिक मैटीरियलिस्ट सोशलिस्ट है।

प्रश्नः तो उसकी ईर्ष्या कम हो जाए, ऐसा भी कुछ रास्ता।

उसके रास्ते जरूर बनाने पड़ेंगे। उसकी ईर्ष्या बढ़ाने में भी हम रास्ते बनाते हैं। कम करने के रास्ते भी हो सकते हैं। असल में मेरी समझ यह है कि पहली तो बात यह है कि कैपिटलिस्ट ऐज ए क्लास कांशस होना चाहिए। अगर आज कैपिटलिस्ट उत्सुक भी होता है तो एक-एक कैपिटलिस्ट इंडिविजुअल की हैसियत से अपने को बचाने में उत्सुक है। अगर "अ" नाम का कैपिटलिस्ट उत्सुक है तो वह अपने को बचाने में उत्सुक है। और अगर "ब" नाम के कैपिटलिस्ट को नुकसान पहुंचता है तो वह खुश हो रहा है। बल्कि वह सारी कोशिश कर रहा है कि "ब" को कैसे नुकसान पहुंच जाए।
कैपिटलिस्ट ऐज ए क्लास कांशस नहीं है। उसके अपने-अपने इंडिविजुअल हित हैं, उनके लिए उत्सुक हैं। अगर बिरला उत्सुक है तो टाटा को नुकसान पहुंचाने में उत्सुक हो जाएगा। कैपिटलिज्म, यह जो तकलीफ है, जो नीचे का वर्ग है, दीन है, दरिद्र है, वह क्लास की तरह कांशस हुआ है--एक। अगर आप क्लास की तरह कांशस होते हैं, तो आप फिर सोच सकते हैं कि ह्यूमन रिलेशनशिप हमारी जो आज है, हैव और हैव नाट्स के बीच जो संबंध हैं, वे हमें बदलते पड़ेंगे। और थोड़ी सी बदलाहट से बहुत कुछ बदलेगा। यानी मेरी अपनी समझ यह है कि कैपिटलिज्म में जो अभी जो मैनेजमेंट है, वह ईर्ष्या जगाने वाला है। उस मैनेजमेंट में बहुत रेवोल्यूशनरी चेंज की जरूरत है, बहुत रेवोल्यूशनरी चेंज की जरूरत है। और ह्यूमन एलिमेंट की कीमत बढ़ाने की जरूरत है बजाय पैसे की।

मजदूर की हैसियत सिर्फ मजदूरी से नहीं नापी जानी चाहिए। एक मनुष्य की हैसियत से भी उसकी हैसियत है। और उस मामले में वह बिल्कुल आपके बराबर है। एक तो ह्यूमन साइकोलॉजी और ह्यूमन रिलेशनशिप, और ह्यूमन इंजीनियरिंग पर बहुत काम करने की जरूरत है। सोशलिज्म का सारा प्रभाव गरीब और अमीर के बीच के गलत संबंधों का परिणाम है। उन संबंधों को बिल्कुल बदला जा सकता है, उनको बिल्कुल बदला जा सकता है।

प्रश्नः मजदूर और जो फार्मर्स हैं, उनको कैपिटलिस्ट की फिलासफी में
जो एक दफा इंवाल्व कर दें, ऐसा कोई आइडिया लगाएं, तो मेजारिटी कनवर्ट नहीं हो जाएगी। टुवर्ड्स कैपिटलिस्ट यानी सोसाइटी फॉर दि कम्युनिटी ऑर सोसाइटी फॉर इंडिविजुअल?

यह तो बात ठीक ही है। यह तो बात ठीक ही है। लेकिन यह बात बहुत पीछे की है।

प्रश्नः लंबी सी है।

न, लंबी सी नहीं है। एक दफा कैपिटलिज्म ए.ज ए फिलासफी पूरा मुल्क स्वीकार कर ले, तब यह हो सकता है, जो आप कह रहे हैं। जब तक पूरा मुल्क कैपिटलिज्म को ए.ज ए फिलासफी स्वीकार न कर ले, एज ए मोड ऑफ लीविंग स्वीकार न कर ले, तब तक जो आप कह रहे हैं, वह नहीं हो सकता।

प्रश्नः स्वामी जी, वी कम बैक टु द बेसिक "समाजवाद से सावधान" जो आपकी सीरीज है, उसी के साथ हम लोग को मिल कर करने को इच्छुक हैं कि अभी उसको आगे कैसे बढ़ाएं?

यह जो क्लास कांशसनेस पैदा करने की बात है न, उसके लिए निश्चित ही कुछ बातें की जा सकती हैं कि वह क्लास कांशस कैसे हो? उसके लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। एक तो कुछ छोटे ग्रुप सेमिनार्स--जैसे किसी हिल स्टेशन पर दस-बीस मुल्क के खास लोग एक सात दिन के लिए इकट्ठे हो जाएं। एक बार यह ख्याल आ जाए कि क्लास की तरह आप बच सकते हैं और कोई रास्ता बचने का नहीं है। और सवाल एक कैपिटलिस्ट के या दूसरे कैपिटलिस्ट के बचने का नहीं है, सवाल कैपिटलिज्म के बचने का है। यह एक बार ख्याल आ जाए। और यह ख्याल लाया जा सकता है। इसके लिए निर्देशक पैदा किया जा सकता है, चिंतन पैदा किया जा सकता है, उसके लिए कैंप्स रखे जा सकते हैं। ये सारी बातें की जा सकती हैं। इसके लिए डिस्कशन ग्रुप हो सकते हैं जो इस पर सारी खोजबीन करें। इकोनॉमिस्ट हो सकते हैं, जिस पर सारी की सारी बात करें। और एक पूरी की पूरी फिलासफी, सोशलिज्म जो भी कह रहा है, उसके ठीक मुकाबले, पॉइंट टु पॉइंट, ठीक मुकाबले एक फिलासफी खड़ी करने की बात है। उसको प्रचारित करने की बात है। सारे मुल्क में उसका साहित्य फैलाने की बात है।
अब क्या मजा हो रहा है? मजा यह हो रहा है कि सोशलिस्ट कंट्री से, कम्युनिस्ट कंट्री से हिंदुस्तान में जो भी प्रचार करते हैं, उनकी डायरेक्ट एजेंसी है प्रचार करने की। बीच में गवर्नमेंट नहीं है मामले में। बीच में कोई और नहीं है। हिंदुस्तान का कम्युनिस्ट है, हिंदुस्तान का सोशलिस्ट है। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट कंट्री से उसका सीधा संबंध है। साहित्य पहुंचाना है, प्रचार-साहित्य पहुंचाना, वह सब कर रहा है। कैपिटलिस्ट कंट्री अगर कुछ भी हिंदुस्तान के लिए करती है तो वह वाया गवर्नमेंट करती है। कैपिटलिस्ट कंट्री सोशलिस्ट मुल्क के लिए करोड़ों रुपया खपा दे--चीन में अमरीका ने करोड़ों रुपया, अरबों रुपया खपाया। वह फिजूल गया। और हिंदुस्तान में भी फिजूल जाएगा। उसका कोई मतलब होने वाला नहीं है।
यानी, बल्कि अमेरिका का रुपया अमेरिका के प्रति सदभाव पैदा नहीं करता है, बल्कि यह भाव पैदा करता है कि यह बदमाशी है, यह हमको लूटने के लिए है,

हमको बिगाड़ने के लिए सारा का सारा है। पैसा हम उनका खा जाएंगे, गेहूं उनका खा जाएंगे। लाइब्रेरीज उनकी आएंगी वह सब डूब जाएंगी और उसका कोई परिणाम नहीं होगा। तो मेरा मानना है, वर्ल्ड कैपिटलिज्म भी ऐज ए क्लास कांशस नहीं है। सारी दुनिया के कैपिटलिस्ट को यह फिकर करनी चाहिए कि जिन-जिन मुल्कों में कैपिटलिज्म डूब रहा है, वहां उसके डायरेक्ट प्रोपेगेंडा एजेंसीज होनी चाहिए, डायरेक्ट, वाया गवर्नमेंट नहीं। क्योंकि गवर्नमेंट तो, एशिया की सभी गवर्नमेंट आज नहीं कल सोशलिस्ट हो जाएंगी। क्योंकि जहां गरीब की मेजारिटी है, वहां की कोई गवर्नमेंट ज्यादा देर तक कैपिटलिस्ट नहीं रह सकती। वह संभव ही नहीं है। क्योंकि उसको वोट जिससे लेना है, उसकी उससे बात करनी पड़ेगी। और आज नहीं कल कंपलशन बढ़ता जाएगा। यह सवाल कोई हिंदुस्तान का नहीं है, पूरा एशिया एक न एक दिन कम्युनिस्ट हो जाने वाला है। इसलिए गवर्नमेंट के माध्यम से जो भी पैसा आएगा, वह कैपिटलिज्म के किसी काम में आने वाला नहीं है। उसका कोई मूल्य नहीं है।
अब जैसे समझ लें कि अभी बिहार में कल्पना थी कि दो करोड़ लोग मरेंगे बिहार के अकाल में, लेकिन अकाल से चालीस ही लोग मरे। सारी दुनिया से उसके लिए पैसा आया, लेकिन उससे बिहार के गरीब में आप पैसे वाले के प्रति प्रेम पैदा नहीं कर सके। उससे कुछ मतलब नहीं हुआ, वह बेकार गया। वह एक इतना बड़ा मौका था कि सारे हिंदुस्तान के जो गरीब हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं, उसके प्रति कैपिटलिज्म के प्रति सदभाव पैदा हो सके। या अगर किसी ने कुछ किया-- समझ लीजिए योगेंद्रजी कुछ करते हैं या कोई कुछ करता है, तो वह योगेंद्रजी को पर्सनल आदर मिलता है उसका, कैपिटलिज्म के लिए कुछ नहीं होता। कोई कुछ करता है जाकर, तो वह एक आदमी को आदर मिलता है कि फलां आदमी ने इतना काम किया, बहुत अच्छा काम किया।

प्रश्नः ए.ज ए क्लास नहीं मिला।

ए.ज ए क्लास नहीं आपको मिलता। आप जो कुछ करते भी हैं उसका ए.ज ए क्लास कोई मतलब नहीं होता है। आप एक कालेज बनाएं, एक युनिवर्सिटी बनाएं, एक हास्पिटल खोलें, वह एक आदमी का होता है। और गरीबी जो है वह आपके प्रति क्लास की तरह दुश्मन हो रही है। यह आपको ख्याल में नहीं आ रहा है। जो कांफ्लिक्ट सारी की सारी है, वह कांफ्लिक्ट यह है कि गरीब ऐज ए क्लास और कैपिटलिस्ट ऐज ए इंडिविजुअल। इस फाइट में जीत होनी असंभव है। जीत नहीं हो सकती।
दूसरा मेरा मानना यह है कि वर्ल्ड कैपिटलिज्म को भी कांशस किया जाना चाहिए। हिंदुस्तान दस साल में डूब जाएगा और डूब जाने के बाद निकालना असंभव है। एक दफा माओ के हाथ में चीन गया तो अब कोई उपाय नहीं है, अब कोई भी उपाय नहीं। एक दफा रोकता था तो कोई उपाय नहीं था। और आप हैरान होंगे कि दो साल से ज्यादा बंगाल नहीं रुकेगा अब। रोकना असंभव हो जाएगा। मगर बंबई में जो बैठा है, वह सोचता है कि बंगाल जा रहा है, क्या मतलब है? और उसको पता नहीं है कि बंगाल जाता है तो हिंदुस्तान जाने का दरवाजा खुल जाता है। और बंगाल जाएगा लेकिन आप बैठे देखते रहेंगे। उसके लिए पूरे हिंदुस्तान का कैपिटलिस्ट क्या कर रहा है कि बंगाल न जाए? उसको कोई ख्याल में नहीं है बात। यानी सारी ताकत बंगाल में लग जानी चाहिए। सारी फिकर छोड़ दें। कि वहां के गरीब के लिए हम क्या कर सकते हैं? वहां रिलेशनशिप बदलने के लिए क्या कर सकते हैं? वहां जो गैंग्स पैदा हो रहे हैं उनके तोड़ने के लिए क्या कर सकते हैं? सारी ताकत बंगाल पर लगा देनी चाहिए। वह दरवाजा खुला जा रहा है। लेनिन ने आज से पचास साल पहले कहा था कि मास्को से लंदन तक कम्युनिज्म
का जो रास्ता है, वह पेकिंग और कलकत्ता होता हुआ जाएगा। और उसकी भविष्यवाणी बड़ी अदभुत है। पेकिंग तो गया और कलकत्ता तक पगडंडियां आ गईं, रास्ता बन जाएगा दो साल में। ज्यादा देर नहीं लगेगी। और मजा यह है कि जब भी आप चिंतित होते हैं या विचार करते हैं, जब भी मैं किसी ऐसे आदमी से बात करता हूं तो मुझे लगता है कि वह इसी में उत्सुक है कि वह कैसे बच जाए? यह बात ही फिजूल है। आपके बचने का कोई मतलब नहीं है। यानी आप कहीं आते नहीं,

इररेलेवेंट हैं। आप बचते नहीं बचते यह बहुत मूल्य की बात नहीं है। एक सिस्टम बचती है कि नहीं यह सवाल है। तो जब आप उत्सुक होते हैं तो आप सोचते हैं कि मैं कैसे बच जाऊं?
इधर मार्क्स का एक उसमें तो सौ वर्ष पहले जो कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो
की आखिरी लाइन लिखी थी, उसमें लिखा थाः दुनिया के गरीबो, इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास खोने को सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं है। क्योंकि तुम्हारे पास खोने को कुछ है ही नहीं। तो मैं अभी था दिल्ली, तो मैंने वहां कहा कि दुनिया भर के पूंजीपति इकट्ठे हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास सब कुछ खोने को है सिवाय जंजीरों के। सिवाय जंजीरों के और सब कुछ खोने को है। और सब खो दोगे तो जंजीर ही बचेगी तुम्हारी और कुछ बचने वाला नहीं है।
मेरी समझ यह है कि हमें क्लास कांशसनेसली सारे एफर्ट करने चाहिए और एफर्ट बिल्कुल हो सकते हैं। आज की दुनिया में जहां कि प्रोपेगेंडा बिल्कुल ही साइंटिफिक मैथडालॉजी हो गई है, जहां कि कोई भी फिजूल चीज दिमाग में डाली जा सकती है, जहां कोई भी चीज बेची जा सकती है। आज जब हमारे पास साइंटिफिक मीडिया है सारा का सारा... यानी बड़ा मजा यह है कि गरीब जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह जीतेगा और अमीर जिसके पास सब कुछ है, वह हारेगा। जिसके पास सब इंतजाम है, जो सब कर सकता है, वह लेकिन, वह हारेगा सिर्फ इसीलिए कि उसको ख्याल ही नहीं है कि वह जीतने के लिए एक कलेक्टिव एफर्ट ऐज ए क्लास जरूरी है।
एक तो क्लास कांशसनेस के लिए मेहनत करनी है। दूसरा, ज्यादा लंबा वक्त नहीं है। अगर आप दो-चार साल में कुछ करते हैं तो करते हैं, अन्यथा फिर करने का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। उसे बहुत तीव्रता से करना है। और हिंदुस्तान में सीधी पोलेरिटी खड़ी करने की जरूरत है।
हिंदुस्तान की पॉलिटिक्स में भी पोलेरिटी लाने की जरूरत है। हिंदुस्तान की पॉलिटिक्स में भी क्या बेवकूफी हो रही है कि वह जो सोशलिज्म की बात कर रहा है, वह तो कर ही रहा है। जो सोशलिज्म नहीं चाहता है, वह भी बात सोशलिज्म की कर रहा है। वह भी यह सोचता है कि सोशलिस्ट शब्द की कीमत है, क्रेडिट है, इसका उपयोग ले लो। उसको पता नहीं है कि इसका उपयोग तुम न ले पाओगे, सोशलिस्ट शब्द तुम्हारा उपयोग ले लेगा। यह जो सारी तकलीफ है, सोशलिस्ट शब्द इतना बड़ा है कि कैपिटलिस्ट भी सोचता है कि हम भी सोशलिज्म की बात करके और इस शब्द की आड़ में बचा लें अपने को। उसे पता नहीं, वह शब्द का प्रचार करके शब्द उसको भी ले डूबेगा।
तो पोलेरिटी साफ होनी चाहिए कि कौन सोशलिस्ट है, कौन एंटी-सोशलिस्ट है। और इस पोलेरिटी को साफ करने की फिकर करिए। कौन सी पोलिटिकल पार्टी एंटी-सोशलिस्ट है, इनको साफ बात होनी चाहिए। क्योंकि वह सोशलिस्ट पार्टी साफ बात बोलती है। वह कंफ्यूज नहीं है। आप मेरी बात समझ रहे हैं न? वह कंफ्यूज नहीं है। आप कंफ्यूजन क्रिएट करते हैं, आप लफ्फाजी करते हैं। आप जानते हैं कि सोशलिज्म नहीं आने देना है, लेकिन बात फिर भी सोशलिज्म की करनी है। और जब दुश्मन के शब्द का आप उपयोग करें तो समझें, आपकी हार शुरू हो चुकी है, आप हार चुके हैं वस्तुतः, अब आपके जीतने की आशा बहुत नहीं है।

प्रश्नः आचार्यश्री, इसका रिएक्शन क्या हो गया? आप साफ बात करने की सलाह देते हैं। अब रिएक्शन क्या करोगे? मॉसेज के ऊपर रिएक्शन क्या होगा?

आप नहीं समझते, मॉसेज के ऊपर सत्य का सदा रिएक्शन अच्छा होता है। और कंफ्यूज्ड आदमी का और धूर्त और दोहरे चेहरे वाले आदमी का रिएक्शन अंततः बुरा होता है। आज भला थोड़ा सा धोखा दे ले, लेकिन कल देखेंगे कि आपकी सब टैक्टिक्स तो कैपिटलिज्म को बचाने की, बात आप सोशलिज्म की करते हैं। आप बेईमान आदमी हैं। और कैपिटलिस्ट के बाबत जो सबसे बड़ा ख्याल है वह उसकी बेईमानी का है। कैपिटलिस्ट के बाबत आनेस्ट होने का ख्याल नहीं है मॉसेज को कि बेईमान हैं ये लोग। आप अपनी ईमानदारी की कोई छाप भी नहीं छोड़ पाते हैं। और उसका कारण यह है कि आप जिसको कहना चाहिए दोहरी चालें, डबल बाइंड

खेल खेलना चाहते हैं, वह सब गलत बात है। मैं कहता हूं, हारते हैं तो आनेस्टली हारें। यानी अगर कैपिटलिज्म हारता है तो आनेस्टली हारे--यह जानते हुए कि हम हारे, और हम लड़े थे और हमने पूरी फाइट की थी। और दस साल बाद जब हिंदुस्तान मरे सोशलिज्म में, तब आप कह तो सकेंगे कि हमने फाइट पूरी की और तुम गधे थे, तुम अपने हाथ से गए। लेकिन आप भी सोशलिज्म की बातें करेंगे तो कल आप लौट कर यह भी नहीं कह सकते कि हमने तुम्हें इनकार किया था, हमने तुम्हें बचाना चाहा था, हमने तुम्हें रोकना चाहा था--यह कहने का आपके पास मुंह नहीं रहेगा।
मैं यह मानता हूं कि फाइट आनेस्ट हो। इस वक्त आपको पॉलिटिक्स न बचा सकेगी, आनेस्टी बचा सकेगी। फाइट आनेस्ट हो और वह इतनी साफ हो तो हमको पता चले कि पोलेरिटी क्या है, और तब हम पोलेरिटी पैदा भी कर सकेंगे। आज तकलीफ यह है कि आप किसी राजनीतिज्ञ का पक्का नहीं जानते कि वह क्या है? वह जब देखता है कि आपसे कुछ फायदा है तो आपके पास खड़ा होता है, जब वह देखता है गरीब से कुछ फायदा है तो गरीब के पास खड़ा होता है। वह देखता है उसका क्या फायदा है। उसे न आपसे मतलब है, न गरीब से मतलब है। आपको साफ करना पड़ेगा कि कैपिटलिस्ट क्लास से एक पैसा नहीं जाएगा उस पोलिटिकल पार्टी को जिसके बाबत हमें जरा भी शक है कि वह सोशलिज्म की बात करेगी, जरा भी, शक भी है तो बात बंद, उस तरफ से एक पैसा नहीं जाएगा, समर्थन नहीं जाएगा। हम अपने कुछ, अगर हमें इंट्र्रेस्ट भी खोने पड़ेंगे तो वह हम खोएंगे। लेकिन कैपिटलिस्ट क्लास ऐसी किसी पार्टी को, पोलिटिकल लीडर को, पोलिटिकल प्रोग्राम को साफ फाइट देगी। ऐसा नहीं कि वह पीछे-पीछे से चलाएगी कि वह चैंबर का बैठक हो तो उसको भी इंदिरा गांधी ही इनॉगरेट करेगी। यह गधा-पचीसी से काम नहीं चलेगा। यह नहीं चल सकता, क्योंकि ये दोहरी तरकीबें हैं। और मतलब यह है कि वह आपको ही गाली देगी और करेगी क्या?
यह जो मेरा कहना है, एक आनेस्ट फाइट की तैयारी करनी चाहिए। डिसआनेस्ट फाइट का तो मुझे कुछ मतलब नहीं मालूम पड़ता है। उसमें तो आप हारेंगे। और सारी दुनिया में हार गए। मजा यह है कि जो आप यहां कर रहे हैं, वही चीन का कैपिटलिस्ट भी कर रहा था और हार गया--वही टैक्टिक्स। वही बर्मा का भी कर रहा है, हार रहा है; वही रूस में भी हो रहा था, वह भी हारा; वही इंग्लैंड में भी हो रहा है, वह भी जाएगा। यानी मजा यह है कि हम कभी-कभी इतिहास से बिल्कुल नहीं सीखते हैं, ऐसा मजा है। हम करीब-करीब रूटीन ट्रिक्स उपयोग करते हैं और देख लेते हैं कि वह दस जगह हार नहीं पाते हम, फिर भी हम वही करेंगे।

प्रश्नः स्वामी जी, आप आनेस्ट फाइट की बात करते हैं, पर पहले आनेस्टी
तो आनी चाहिए?

आनेस्टी का मामला ऐसा है कि वह आपके लाने से ही आने वाली है। और कम से
कम फाइट तो बिल्कुल ही आनेस्ट हो सकती है। इसमें आप क्या कर रहे हैं अपनी फैक्ट्री में इससे कोई संबंध नहीं है। फाइट तो बिल्कुल आनेस्ट हो सकती है। एक दफा यह ख्याल आपको साफ हो जाए, मैं मानता हूं कि आपको भी साफ नहीं है, यानी मेरी तकलीफ जो है वह यह है कि मानता हूं, आपको भी यह साफ नहीं है कि कैपिटलिज्म के पास कोई वैल्यूज है। आपको भी साफ यह है कि कैपिटलिज्म है तो हमारे पास एक बड़ा मकान है, बड़ी गाड़ी है, बड़ा इंतजाम है।
कैपिटलिज्म के पास कोई वैल्यूज हैं बचाने योग्य, जिनसे मनुष्यता का कोई हित होगा। और सोशलिज्म के पास कुछ एंटी-वैल्यूज हैं, जो मनुष्यता को नुकसान पहुंचाएगी, यह आपको ही साफ नहीं है। यानी मेरी तो दिक्कत है, मैं जो समझता हूं वह यह है कि फिर तो कैपिटलिस्ट को ही समझाने की जरूरत है कि कैपिटलिज्म कुछ मूल्यवान चीज है, जिसको तुम मर मत जाने देना। बड़ा मामला उलटा है। यानी मामला ऐसा नहीं है कि आपको पता ही है। और जब आप कहते हैं कि हां, बचाना चाहिए तो आपका अपना ही ख्याल है कि यह बच जाए तो मैं बचता हूं, नहीं तो मैं डूब जाऊंगा। और कुछ मतलब नहीं है आपका। इसलिए मैं कह रहा हूं कि कैपिटलिज्म ऐज ए फिलासफी ऑफ लाइफ खड़ी नहीं हो पाएगी। उसकी हमें फिकर कर

लेनी चाहिए। और वह फाइट न केवल हिंदुस्तान के लिए मूल्यवान होगी, वह फाइट सारे वर्ल्ड के कैपिटलिज्म के लिए मूल्यवान हो सकती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कंट्री का ख्याल ही नहीं है आज। असल में बात यह है कि कंट्री का अब सवाल ही नहीं है। कैपिटलिज्म या सोशलिज्म कंट्री का सवाल नहीं है। जैसा कि मार्क्स ने मजदूरों को समझाया कि तुम्हारी कोई कंट्री नहीं है, तुम मजदूर हो सिर्फ और दुनिया में दो ही कंट्री हैं--एक वह गरीब है और एक वह अमीर है। और कोई कंट्री नहीं है दुनिया में। फाइट सीधी है मजदूर की। लेकिन कैपिटलिस्ट अभी भी आउट ऑफ डेटेड बातें कर रहा है। वह कह रहा है, कंट्री फलां... । उसको भी साफ होना चाहिए कि दुनिया में दो ही क्लास हैं और दो ही कंट्री हैं। मेरी आप बात समझ रहे हैं न? उसको भी साफ होना चाहिए कि उसका भी हिंदुस्तान के मजदूर से उतना संबंध नहीं है, जितना अमेरिका के कैपिटलिस्ट से उसका संबंध है। और कल अगर एग्झिस्टेंस को एक नया ढंग... या बदलना है, तो सारा वर्ल्ड कैपिटलिस्ट को एक ख्याल होना चाहिए कि उसके पास एक फिलासफी है जिसको बचाना है।
और यह जो आप पिछले अतीत की बाद की बातें करते हैं, उसके तो बहुत दूसरे कारण हैं। कैपिटलिज्म के ऊपर कभी हमला ही नहीं हुआ। हमला पहली दफा सौ वर्षों में पैदा हुआ है। यह ऐतिहासिक घटना पहले कभी थी नहीं। हमला था एक मुल्क का दूसरे मुल्क के ऊपर। एक वर्ग का दूसरे वर्ग के ऊपर दुनिया में कभी हमला ही नहीं हुआ। यह हमला बिल्कुल पचास साल की ईजाद है। और ईजाद इसलिए हो सकी, और वह जो, कारण भी हैं साफ उसके।
दुनिया में मजदूर कभी भी एक जगह इकट्ठा नहीं था। तो उसमें क्लास कांशसनेस कभी पैदा न हो सकी। एक आदमी आपके घर में काम करता था, एक मेरे घर में काम करता था। एक आपके बर्तन मांजता था, एक किसी के घर में रोटी बनाता था। वह इकट्ठा कभी था नहीं क्लेक्टिवली। इंडस्ट्रीयलाइजेशन के बाद एक-एक जगह लाख-लाख मजदूर इकट्ठा होता है। जब एक लाख मजदूर इकट्ठा हुआ तो सारा मामला बदल गया। अच्छा, कैपिटलिस्ट फिर भी अकेला रहा। मजदूर कल अकेला था, कैपिटलिस्ट भी अकेला था। तब कैपिटलिस्ट मजदूर से ज्यादा ताकतवर था। मजदूर तो इकट्ठा हो गया लाख की तादाद में एक जगह, और कैपिटलिस्ट चार रह गए एक जगह। और उन चारों के भी आपस के इंट्रेस्ट एक-दूसरे के विपरीत होने से वे कभी साथ खड़े नहीं हुए। और मजदूर इकट्ठा खड़ा हो गया। आप समझ रहे हैं न? दुनिया में जो डायनामिक्स है, वह बड़ी अजीब है। जैसे कि यूथ का प्रॉब्लम है, वह कभी भी नहीं था, क्योंकि यूथ इकट्ठी नहीं थी। यूनिवर्सिटीज में इकट्ठी हो गई। और कोई प्रॉब्लम ही नहीं है ज्यादा। एक बाप था, उसका बेटा था। बाप हमेशा बेटे को दबा लेता था। आज दस हजार बेटे एक जगह इकट्ठे हैं और दस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हैं, फाइट मुश्किल हो गई है। जो सारी कठिनाई है, बाप अकेला पड़ गया है और दस हजार बेटे इकट्ठे हैं। वे कहते हैं, कौन? तो दस हजार बेटे बाप की बात मानने वाले नहीं हैं। एक बेटा तो एक बाप को मानता ही था, मानना ही पड़ता था, कोई उपाय नहीं था उसका। क्योंकि उस फाइट में बाप हमेशा जीत जाता था। इसलिए दुनिया में जेनरेशन की फाइट कभी भी नहीं थी। यूनिवर्सिटीज की वजह से जेनरेशन की फाइट पैदा हो गई। अब वहां दस हजार लड़के हैं जो कि एक जेनरेशन के हैं। और दस हजार बाप कहीं इकट्ठे नहीं हैं जो कि एक जेनरेशन के हैं। वे लड़ेंगे कैसे? बाप हारेगा। बाप बच नहीं सकता। बाप की कोई क्लास नहीं है, बेटे की क्लास है। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? यह सारी बात साफ करनी पड़ेगी। अगर यह सारी बात साफ हो तो बात हल हो सकती है। इसमें कोई अड़चन नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह जो बात है न, इसमें दो-तीन बातें ख्याल में लेने की हैं। पहली बात
यह है कि जो आप कहते हैं कि सोशलिज्म के बहुत से मोड्स हैं और उसमें पचास

साल में बहुत फर्क हुआ है। ये दोनों बात ठीक हैं। लेकिन बेसिकली सोशलिज्म की आत्मा एक है और जो मोड्स का फर्क है वह केवल सिचुएशंस का फर्क है। असल में जिस मुल्क में पेजेंट्री ज्यादा है, वहां सोशलिज्म दूसरे तरह का होगा, क्योंकि उसको किसान को भड़काना है। जिस मुल्क में डिसलाइजेशन हो गया और मजदूर है मेन क्लास, वहां सोशलिज्म दूसरा रुख लेगा, क्योंकि वहां प्रेजेंट्री नहीं है, वहां किसान को नहीं भड़काना, वहां मजदूर को भड़काना है। जिस मुल्क में मिडिल क्लास ज्यादा बड़ी है, वहां सोशलिज्म कम्युनिज्म की शक्ल न लेगा। वहां सोशलिज्म डेमोक्रेटिक सोशलिज्म और दूसरी शक्लें लेगा। क्योंकि उसको मिडिल क्लास पर निर्भर रहना पड़ेगा। लेकिन बेसिक स्पिरिट सोशलिज्म की एक है। और यह जो जितने फर्क आपको दिखाई पड़ रहे हैं पचास साल में, और अलग-अलग कंट्रीज में, ये अलग-अलग कंट्रीज की सोशल सिस्टम, उसका मोड ऑफ एग्झिस्टेंस और वहां कौन से क्लास को एक्सप्लाइट करके कम्युनिज्म लाना है, इस पर निर्भर कर रहा है। बाकी बेसिक फर्क नहीं है, जरा भी फर्क नहीं है। बेसिक बुनियाद एक है।
और पचास साल में जो भी फर्क पड़े, वह फर्क फाइट के अनुभव से पड़े। उससे स्पिरिट में कोई फर्क नहीं पड़ा है। फाइट से अनुभव में फर्क पड़ा है। यह समझ में आया है कि अब जरूरी नहीं है कि तलवार के द्वारा और बंदूक के द्वारा ही क्रांति की जाए। अब डेमोक्रेसी का भी उपयोग किया जा सकता है। इसलिए अब डेमोक्रेसी की बात डाल दी जाए बीच में।
सवाल यह है कि सोशलिज्म के सामने एक सवाल है कि किसी भी तरह उसे शासन हाथ में होना चाहिए, स्टेट हाथ में होना चाहिए। वह उसकी बेसिक मांग है, क्योंकि स्टेट के बिना वह कुछ भी कर नहीं सकता। और एक दफा स्टेट उसके हाथ में हो तो वह नेशनेलाइजेशन कर सकता है सारी व्यवस्था का। वह कैपिटलिस्ट को ऐज ए क्लास विदा कर सकता है। स्टेट कैसे हाथ में हो इसकी टैक्टिक्स में फर्क पड़ता है। लेकिन स्टेट हाथ में हो यह बेसिक ख्याल छूटता नहीं। और स्टेट हाथ में आते ही देश की कैपिटल स्टेट की हो जाए, यह भी ख्याल में भेद पड़ता नहीं।
तो मैं जो बेसिक बातें मानता हूं वह दो हैं--एक तो प्रोडक्शन के जितने
भी मीन्स हैं, वे स्टेट के हाथ में हों। यह सोशलिज्म की बेसिक बात है। और दूसरी बात--स्टेट सोशलिस्ट के हाथ में हो। स्टेट ओनरशिप हो और स्टेट पर प्रोलिटेरिएट की डिक्टेटरशिप हो, ये उनके दो बेसिक ख्याल हैं। इसमें हर मुल्क में अलग-अलग फर्क पड़ते हैं। उन फर्क की कोई कीमत नहीं है, वे फर्क सब धोखे के हैं।
और जब आप यह कहते हैं, तो दूसरी बात जो आप कहते हैं कि हमें नई जेनरेशन
को पकड़ना पड़ेगा। नई जेनरेशन पकड़े वह तो बिल्कुल ठीक ही है। लेकिन नई जेनरेशन को आप पकड़ न पाएंगे। अत्यंत कठिन है। अत्यंत कठिन है। क्योंकि नई जेनरेशन, इधर जो आज--युनिवर्सिटी हो या कालेज हो या पिछले पचास साल की जो भी हवा है, वह सारी की सारी हवा में नये जेनरेशन को तो सोशलिस्ट माइंड की तरह इवाल्व किया हुआ है। आप सब उसमें सहयोगी हैं। हमें पता नहीं चलता कि हम किस तरह सहयोग दे रहे हैं, हम सब सहयोगी हैं, हम सब सहयोगी हैं। अगर एक कैपिटलिस्ट को भी थैली दिलवानी है तो जयप्रकाश नारायण से दिलवानी है। हमको पता नहीं है कि इनडायरेक्टली हम पूरी नई जेनरेशन को सोशलिज्म के लिए तैयार कर लिए हैं। तो नये जेनरेशन का जो माइंड है, वह तो सोशलिस्ट पैटर्न में ढला हुआ माइंड है। उसकी तो मांग है कि वह कैपिटलिस्ट की बात सुन कर ख्याल में न आए कि आप क्या बात कर रहे हैं।
तो मेरी अपनी समझ यह है कि वह जो ओल्ड जेनरेशन है, बेसिक फाउंडेशन उसको ही बनाना पड़े। बेस उसी को बनाना पड़े और वही बेस बन सकती है। क्योंकि उसके दिमाग में सोशलिज्म का प्रोपेगेंडा उतनी गहराई तक रूटेड नहीं है। उधर से जल्दी काम हो सकता है। जैसे कि सोशलिस्ट को लगता है कि ओल्ड जेनरेशन काम में नहीं लाई जा सकती। सोशलिस्ट को लगता है कि नई जेनरेशन काम में लाई जा सकती है। और आपको भी लगता है कि नई जेनरेशन काम में लाई जा सकती है तो आप गलती में हैं। सोशलिस्ट का लगना ठीक है।

उन्नीस सौ सत्रह के बाद सारी दुनिया में जितने बच्चे पैदा हुए हैं, वे किसी ने किसी रूट से रशिया ओरिएंटेड हैं, चाहे वे किसी घर में पैदा हुए हों। उन्नीस सौ सत्रह के बाद इतना सटल प्रोपेगेंडा है और इतनी तीव्रता से चल रहा है कि आपको पता नहीं है, वह सब तरफ से आपको घेरे हुए है।.

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अल्टीमेट शिफ्ट की बात नहीं कह रहा मैं। मैं बेस की बात कर रहा हूं। अल्टीमेट शिफ्ट तो बाद की बात है। मैं इसलिए बेस की बात कह रहा हूं, बेस तो आपको ओल्डर जेनरेशन को बनाना पड़े। और अगर ओल्ड जेनरेशन राजी हो जाए, तो अल्टीमेट शिफ्ट नई जेनरेशन में भी दी जा सकती है। क्योंकि ये ताकतें आज भी ओल्डर जेनरेशन के हाथ में हैं।
ओल्डर जेनरेशन एक दफा ख्याल से भर जाए तो नई जेनरेशन को शिफ्ट दी जा सकती है। उसमें तकलीफ नहीं है। क्योंकि चाहे प्रोफेसर्स हों, चाहे बाप हों और चाहे सारी समाज की जो भी व्यवस्था के की-पॉइंट्स हैं, वे तो ओल्ड जेनरेशन के हाथ में हैं। अगर वे सारे के सारे एक ख्याल से भर जाएं तो नई जेनरेशन को बदल देने में कठिनाई नहीं है। बिल्कुल कठिनाई नहीं है, जरा भी कठिनाई नहीं है।
फिर मजा यह है कि नई जेनरेशन का जो लगाव है सोशलिज्म से, वह सोशलिज्म
से कम है। सोशलिज्म ने कुछ वैल्यूज की बात की है, उनसे ज्यादा है। और मजा यह है कि जिन वैल्यूज की सोशलिज्म बात करता है, उनकी ही हत्या करता है। यह बड़े मजे की बात है। सोशलिज्म जिन वैल्यूज की बात करता है कि हम दुनिया में समानता ले आएंगे। सोशलिस्ट कंट्री असमानता से तो शुरू होती है और समानता कभी भी नहीं लाती और ला सकती नहीं। कहती है, हम स्वतंत्रता ले आएंगे, और स्वतंत्रता की हत्या से सब शुरू होता है।
अगर नई जेनरेशन को प्रभावित भी करना है तो आपको दो बातें करनी पड़ें।
एक तो यह कि सोशलिज्म जिन वैल्यूज की बात करता है, उनकी हत्या करेगा, उनको ला नहीं सकता। झूठ है वह दावा। इस दावे को झूठ सिद्ध करना पड़ेगा। और सोशलिज्म जिन वैल्यूज की बात करता है, कैपिटलिज्म उनको ला रहा है और ला सकता है। और कैपिटलिज्म ही ला सकता है, यह आपको साफ करना पड़े।
और वह जो आप कहते हैं कि कैपिटलिज्म, सोशलिज्म की बात छोड़ कर हम एक नये विचार को विकसित करें, जो आप बात कहते हैं न, वह असंभव है। वह असंभव कई कारणों से है। क्योंकि आज फाइट तो सीधी इधर कैपिटलिज्म और सोशलिज्म के बीच में है। और अगर आप नई की बात करते हैं तो आपको इन दो पोलेरिटी में कहीं बंट जाना पड़ेगा। और नई की बात में बहुत संभावना आपकी सोशलिस्ट पोलेरिटी के साथ खड़े होने की होगी। कैपिटलिस्ट पोलेरिटी के साथ खड़े होने की नहीं होगी। इसलिए मैं नई की बात नहीं करता। मैं तो कहता हूं, फाइट सीधी है। दो पोल सीधे हैं। लड़ाई यहां होनी है।
कम्युनिस्ट निरंतर यह कहते रहे हैं कि जो हमारे साथ नहीं है, वह हमारा दुश्मन है। इसलिए कम्युनिस्ट की फाइट बहुत सीधी रही है और पचास साल में वह निरंतर जीता है। उसकी जीत की टैक्टिक्स बहुत साफ है। वह कनफ्यूजन में नहीं रहना चाहता। वह कहता है, या तो आप हमारे साथ हों या आप हमारे साथ नहीं। वह शेड्स नहीं मानता दुश्मन में। वह यह नहीं कहता कि यह दुश्मन जरा हमारे पास थोड़ा ज्यादा है। वह दुश्मन जरा हमसे ज्यादा दूर है। वह दुश्मन कभी राजी हो जाएगा, यह दुश्मन कभी राजी नहीं होगा। वह कहता है या तो आप कम्युनिस्ट हों और या आप एंटी-कम्युनिस्ट हों। एंटी-कम्युनिस्ट में वह शेड्स नहीं मानता, इसलिए उसको फाइट करने में बड़ी सुविधा रही है। वह फिजूल की झंझट में नहीं पड़ा। और इसलिए पचास साल में वह निरंतर जीता है। ये सब शेड्स जो हम करते हैं, ये तरकीबें हो जाती हैं। और सच बात यह कि शेड्स हो भी नहीं सकते।
यह हिंदुस्तान में भी वही मामला हुआ। जैसे ही बीस साल पहले हमारे हाथ में आजादी आई, तो हमको यह पागलपन पकड़ा फौरन कि हम दुनिया में जो बंटी हुई पोलेरिटीज हैं, उनके साथ न खड़े होकर नया पोल खड़ा करें। उसमें हम मर गए।

हमारा सारा मरना जो हुआ, सबको ख्याल पकड़ता है कि कुछ नया खड़ा कर लें। तो बंटी हुई पोलेरिटी साफ थी। लेकिन हमने उन दोनों के बीच नया खड़ा कर लिया।
उस नया खड़ा करने में ही हम धीरे-धीरे रोज रूस की तरफ पहुंचते चले गए।
क्योंकि नया जो है, उसको अनिवार्य रूप से लेफ्टिस्ट भाषा बोलनी पड़ती है।
यह जो मामला है, ओल्ड जो है उसको राइटिस्ट भाषा बोलनी पड़ती है, नया जो है उसको लेफ्टिस्ट भाषा बोलनी पड़ती है।। क्योंकि पिछले दो हजार साल में यह भ्रम पैदा हो गया है कि नया अनिवार्य रूप से लेफ्टिस्ट होगा।
ये हमारे माइंड की कंडीशनिंग हैं। इसलिए बड़ी मुश्किल हो गई। कोई यह
कह नहीं सकता कि मैं राइटिस्ट हूं और नया हूं। राइटिस्ट हो, मतलब आप ओल्ड हो। लेफ्टिस्ट हो, मतलब आप नये हो। ये बड़ी कनिंग कंडीशनिंगस हैं माइंड की, लेकिन हैं। और उनमें आप नये की बात किए कि आप धीरे-धीरे शिफ्ट होते चले गए। और नये की बात भी क्यों, नये की बात जब आप करते हैं तब भीतर कहीं आपकी कांशियंस में तकलीफ है। आप जानते हैं कि कैपिटलिज्म के पक्ष में कैसे बोलें? तो कुछ नये की बात करनी चाहिए। इसलिए मैं कहता हूं, अगर है पक्ष में बोलने लायक, तो सीधा बोलें। नहीं है पक्ष में बोलने लायक, तो मर जाने दें और उसके मरने में सहायता दें। उसको फिर देर भी नहीं लगानी चाहिए। अगर कैपिटलिज्म मर जाने लायक लगता हो, तो फिर लड़ें मत। फिर सब हथियार डाल कर कहें कि यह हम मरने को तैयार हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपकी बात समझा। पहली तो बात यह है कि यह जो चेकोस्लोवाकिया या यूगोस्लाविया या किन्हीं कम्युनिस्ट कंट्रीज में प्राइवेट ओनरशिप की तरफ जो झुकाव है, वह इस बात का सबूत है कि जो फोर्सेड सोशलिज्म लाया गया था, वह गलत सिद्ध हुआ है। और किसी बात का सबूत नहीं है। वहां कम्युनिज्म नहीं बदल रहा है, वहां कैपिटलिज्म वापस लौट रहा है। जो आप कहते हैं कि वहां कम्युनिज्म बदल रहा है, वह मैं नहीं कहता। मैं कहता हूं, वहां कैपिटलिज्म वापस लौट रहा है। और आज माओ का जो विरोध है रशिया से, वह भी विरोध बेसिकली यही है कि उसको ख्याल है कि रशिया जो है वह धीरे-धीरे कैपिटलिस्ट टर्न हो रहा है।
और मेरी तो अपनी समझ यह है कि अगर दुनिया में कभी भी कोई थर्ड वर्ल्ड वॉर होगी तो अब रूस और अमेरिका के बीच तो नहीं होने वाली है। असंभव हो गई बात। क्योंकि रूस रोज कैपिटलिस्ट होगा। क्योंकि पचास साल के अनुभव ने यह बताया उसको कि प्राइवेट ओनरशिप के बिना उत्पादन को जारी रखना असंभव है। यानी मैं यह कह रहा हूं, इसका आपको उपयोग करना चाहिए कि कैपिटलिस्ट सिस्टम जो है, जो आप पूछते हैं कि क्या है? तो मैं उसकी परिभाषा यह करता हूं कि व्यक्ति संपत्ति को पैदा करे और व्यक्ति संपत्ति का मालिक हो--यह धारणा कैपिटलिज्म की बुनियादी धारणा है।
उत्पादन और उत्पादन के साधन की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत मालकियत कैपिटलिज्म की बुनियादी धारणा है। और वह धारणा वापस लौट रही है। क्योंकि पचास साल में रूस ने जबरदस्ती प्रोडक्शन करवाने की कोशिश की बंदूक के बल से, लेकिन फिर भी नहीं हुआ। और मजा यह हुआ कि जिस जेनरेशन ने क्रांति की थी, उसने तो कुछ काम किया, क्योंकि वह क्रांति के फीवर में थी। जो नई जेनरेशन आई उसके बाद जिसे क्रांति का कुछ पता नहीं था, उस जेनरेशन ने तो काम करना बंद कर दिया। ख्रुश्चेव ने हटने के पहले यह कहा कि सबसे बड़ी तकलीफ यह है कि रूस का लड़का अब कोई काम करना नहीं चाहता। रूस का लड़का काम करेगा भी नहीं, क्योंकि काम करने का जो बेसिक इंसेंटिव है वह खत्म हो गया। आदमी की जो चेतना है, वह बड़े छोटे दायरे में जीती है। मेरी पत्नी बीमार है तो मैं पागल की तरह दौड़ता हूं। और मुझे पता लगे कि मनुष्यता बीमार है तो मैं घर में बैठा रहूंगा। मुझे कहीं पकड़ में नहीं आता कि मनुष्यता के बीमार होने से मैं कहां दौडूं और क्या करूं? और मनुष्यता बीमार है तो अच्छा है, बीमार रहे। यानी मेरी समझ ऐसे जैसे कि छोटा सा दीया जलता है, तो उसकी एक चार फीट के घेरे पर रोशनी पड़ती है। ऐसा आदमी की चेतना

की रोशनी चार फीट के घेरे पर पड़ती है। और जितने घेरे तक पड़ती है, उसी को मैं फेमिली कहता हूं, वही परिवार है। वह उसका बेसिक इंसेंटिव है। उसके आगे उसकी चेतना जाती नहीं है। चिल्लाओ कितना ही कि मनुष्यता, राष्ट्र, फलां- ढिकां, समाज--उसकी चेतना जाती नहीं। उसकी चेतना उतने पर जीती है। और वह उतने के लिए ही जीता और मरता है। और कुछ करता है, तो रूस या यूगोस्लाविया में, जहां भी झुकाव बदले हैं, उस अनुभव का परिणाम है कि आपने जो एक्सपेरिमेंट किया था, वह असफल गया है। लेकिन इसको स्वीकार भी करना कठिन मालूम होता है। इसलिए धीरे-धीरे-धीरे-धीरे... और जो अमरीका के लिए कहते हैं, वह भी सच है। मेरी तो मान्यता ही यह है कि कैपिटलिज्म जब ठीक से प्रौढ़ हो जाए तो सोशलिज्म अनिवार्य है। इसलिए अमेरिका रोज सोशलिस्ट हो रहा है बिना जाने और रूस रोज कैपिटलिस्ट हो रहा है जानते हुए। आपसे जो मैं फर्क करना चाहता हूं...

प्रश्नः दैट इ.ज ड्यू टू ए डिमांड फॉर ए थर्ड फोर्स।

यह जो आप थर्ड फोर्स की बात करते हैं न, यह थर्ड फोर्स की जो बात आप करते हैं यह असंभव है। क्योंकि थर्ड कोई क्लास नहीं है जिससे आप फोर्स पैदा कर लें। क्योंकि जो सारी तकलीफ है--फोर्स पैदा होती है क्लास से। मिडिल क्लास जो है, वह क्लास नहीं है। वह सिर्फ लिक्विडिटी है, जो डोल रही है दो क्लास के बीच में; जिसमें से कुछ लोग आगे चले जाएंगे, कुछ लोग पीछे गिर जाएंगे। मिडिल क्लास कोई क्लास नहीं है। क्लास तो दो ही हैं। तो मिडिल क्लास फोर्स बन सकती है अगर क्लास हो, लेकिन मिडिल क्लास कोई क्लास ही नहीं है, क्योंकि मिडिल क्लास से कोई भी आदमी राजी नहीं है। मिडिल क्लास में जो भी आदमी है, वह या तो चाह रहा है कि नंबर वन हो जाए। तो वह मिडिल क्लास है ही नहीं कोई आदमी। और या वह नहीं नंबर वन हो पाए, तो वह नंबर तीन में जाने की तैयारी कर रहा है। तो यह जो आप कहते हैं थर्ड फोर्स, थर्ड फोर्स के लिए जेनरेट करने के लिए कोई क्लास नहीं है। इसलिए अगर थर्ड फोर्स भी आपको बनाना है तो इन दो ही फोर्सों की किसी पोलेरिटी पर बनता है। तो मैं नहीं समझता कि थर्ड फोर्स आप बना सकते हैं। इसलिए इंडिया की कोई थर्ड फोर्स बना नहीं सकता, दुनिया में कोई बना सकता नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जल्दी प्रोग्राम की उतनी फिकर न करें, क्योंकि अगर बात ख्याल में नहीं आती है तो प्रोग्राम बहुत मुश्किल है और बात ख्याल में आ जाए तो प्रोग्राम तो बहुत ही आसान बात है, प्रोग्राम कोई बड़ी बात नहीं है। एक दफा ख्याल आ जाए, तो प्रोग्राम तो बिल्कुल ही प्रेक्टिकल डिटेल्स... उसमें कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है। हमारी सारी उत्सुकता होती है कि प्रोग्राम क्या हो, और फिलासफी हमारे पास नहीं है। बिना फिलासफी के प्रोग्राम होने वाला नहीं है। और प्रोग्राम हुआ तो इंपोटेंट होगा और बाजार में ले गए कि मर जाएगा वहां जाकर बचेगा नहीं। तो मैं प्रोग्राम में उतना उत्सुक नहीं हूं। क्योंकि मेरी उत्सुकता सारी...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, ठीक है न, बिल्कुल ठीक। यह तो ठीक बात है बिल्कुल, वॉर-फुटिंग करनी पड़े। लेकिन वॉर-फुटिंग के लिए भी आपको ख्याल तो हो जाए कि कुछ लड़ने को हमारे पास है। किसी चीज को डिफेंड करना है...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तब फिर नहीं बच सकते आप। फिर वॉर-फुटिंग का कोई सवाल नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। यह सवाल नहीं है, थाउजंड ईयर्स में यह प्रॉब्लम नहीं था। यह जो
आप कह रहे हैं न, थाउजंड ईयर में कभी प्रॉब्लम नहीं था। कैपिटलिज्म कभी भी खतरे में नहीं था और थाउजंड ईयर पहले कैपिटलिज्म था भी नहीं। कैपिटलिज्म अभी पचास साल की ग्रोथ है। कैपिटलिज्म बिल्कुल नया फेनामिना है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो नॉन-एक्झिस्टेंस क्लास कहां से लाइएगा? वह तो सवाल नहीं है। यह उनको आप साफ समझा दें, इतना आप समझा सकें अगर साफ तो इतने जल्दी मरने को राजी नहीं होंगे। उनको लग यही रहा है कि नहीं मरेंगे, कोई तरकीब से बच जाएंगे। कोई तरकीब से बच जाएंगे ऐसा लग रहा है--अगर यह साफ हम कर सकें, और यह प्रोग्राम का हिस्सा होना चाहिए हमारे कि हम साफ कर सकें कि दो साल में मर जाओगे।

प्रश्नः आई डू नॉट क्लेम टू नो दैम बैटर कैन यू डू, बट आई कैन एटलीस्ट क्लेम दैट आई हैव बीन निअरर टू दैम।

न, न, न। बिल्कुल ही ठीक कहते हैं आप। यह बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। यह बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। यानी उनको जानने का सवाल नहीं है। मेरी तकलीफ, और मेरा जो कहना है, वह कैपिटलिस्ट के लिए नहीं है कैपिटलिज्म के लिए है। कैपिटलिस्ट से कोई मानी नहीं है। सारा सवाल कैपिटलिज्म का है। कैपिटलिस्ट और जो आप प्रैक्टिकल डिफिकल्टीज बताते हैं, वे हैं। लेकिन अगर आपको ऐसा पता चल जाए कि मैं आपको कहूं कि घर में आग लग गई है, आप बाहर निकलिए। आप कहें कि प्रैक्टिकल डिफिकल्टी है, वह यह है कि मेरे पैर में दर्द है, या वह यह है कि दरवाजा बंद है, या वह यह है कि सीढ़ी टूटी हुई है, आप ही नहीं कहेंगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वही तो मैं आपसे कह रहा हूं, वह मैं आपसे कह रहा हूं कि यह चायना कांशस नहीं हो सका, इसका यह मतलब नहीं है कि आप कांशस नहीं हो सकते हैं। यह मामला ऐसा नहीं है कि आपके पड़ोस में एक आदमी टी.बी. से मर गया है तो आप कहेंगे, मैं अस्पताल क्यों जाऊं? बगल वाला टी.बी. में चला गया, वह भी नहीं गया अस्पताल। वह नहीं गया इसलिए आपको जल्दी जाने का सवाल है। और इसका यह मतलब नहीं है कि वह नहीं गया तो आपका न जाना कोई भाग्य बना गया है। आप जा सकते हैं। कम्युनिज्म ने एक और तरकीब की बात सिखाई है, और कंडीशनिंग के लिए बड़ी जरूरी है। कम्युनिस्ट प्रोपेगेंडा सच में एक मिरेकुलस फेनामिना है। उससे एक यह भी बात आदमी को सिखा दी है कि कम्युनिज्म जो है, वह इनइविटेबल है। उसने भाग्य की पुरानी ट्रिकि का उपयोग कर लिया।

प्रश्नः देअर आर हैंडफुल ऑफ पीपुल है हैव मेड दिस इफर्ट राइट इन द फेडरेशन राइट इन द चैंबर्स ऑफ कामर्स। दे हैव टोल्ड इवरीथिंग दैट यू आर सेइंग टुडे टू दि पीपुल एट नथिंग।

न-न, इसमें भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे
भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। अगर हमें यह लगता है कि वह ठीक है तो हमें लड़ते हुए मरना चाहिए, लड़ते हुए हार जाना चाहिए, अगर वह ठीक है। यह सवाल नहीं है कि हम जीत पाएंगे कि नहीं। सवाल यह है कि ठीक है क्या? अगर ठीक नहीं है, तब तो लड़ने की कोई जरूरत ही नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आपको मैं कहूं, यह डेमोक्रेसी की वजह से भी बहुत कनफ्यूजन पैदा हुआ है। सोशलिज्म की फाइट सीधी है। आप हमेशा कोई न कोई चेहरा अख्तियार करना चाहते हैं। आप कहेंगे, डेमोक्रेसी वर्सस सोशलिज्म। आप ऐसा नहीं कहेंगे, कैपिटलिज्म वर्सस सोशलिज्म। असल में डेमोक्रेसी की जब आप बात शुरू करते हैं, तब आपको पता नहीं कि आप फिर कनफ्यूजन पैदा करते हैं। क्योंकि सोशलिज्म भी डेमोक्रेसी की बात कर सकता है। इसमें कोई प्रॉब्लम ही नहीं। आप जिन वैल्यूज की बात करते हैं, अगर वे वैल्यूज सोशलिज्म भी उपयोग कर सकता है, तो आप मरेंगे। क्योंकि आप प्रचार करो तो वह कहेगा कि हम डेमोक्रेसी को हम भी मानते हैं। हम कहां कहते हैं कि डेमोक्रेसी नहीं है। नहीं, आपको तो उसी बिंदु पर खड़ा होना चाहिए जिसका दावा सोशलिज्म कर ही न सके। जैसे कैपिटलिज्म, आप कहते हैं न, कैपिटलिज्म के लिए लड़ रहे हैं। इसका दावा सोशलिज्म नहीं कर सकता। इसलिए फाइट सीधी होगी। डेमोक्रेसी की फाइट सीधी नहीं होने वाली है। वह डेमोक्रेटीक सोशलिज्म और सब, उसमें कोई मामला ही नहीं है। आपकी गलती क्या है कि कैपिटलिज्म शब्द से आप खुद ही घबड़ाए हुए हैं। गिल्टी है, बहुत गिल्टी मालूम होती है कि यह कैपिटलिज्म शब्द कुछ पाप है।

प्रश्नः देअर इ.ज साइंटिफिक एक्सप्रेशन फॉर दिस, दि ब्लॉक आलवेज गो फॉरवर्ड, दि ब्लॉक नेवर गो.ज बैकवर्ड। बट एवर यू डू यू कैन नॉट इवाल्व इन इट्स ओरिजिनल फॉर्म।

यह सवाल नहीं है, ओरिजिनल फार्म में इवाल्व करने का सवाल ही नहीं है। सवाल यह है कि जो सिस्टम मौजूद है कैपिटलिज्म की, वह इवाल्व होगी तो बहुत नई तरह की हो जाएगी। अपने आप हो जाएगी। इस दुनिया में कुछ भी पुराना टिकता नहीं, वह तो नया होता चला जाता है। मेरी तो समझ यह है कि अगर कैपिटलिज्म ठीक से बढ़ता चला जाए तो बहुत ही साइलेंटली सोशलिज्म उसकी बाई-प्रॉडक्ट होगी ही। वह कोई सवाल ही नहीं है। यानी जैसे मैं आपसे कह रहा हूं कि सोशलिज्म कहेगा कि डेमोक्रेसी की तो हम बात करते हैं, तो बजाय इसके आप साफ कहें कि कैपिटलिज्म की हम बात करते हैं और हम मानते हैं कि कैपिटलिज्म से ही सोशलिज्म अपने आप बाई-प्रॉडक्ट की तरह आने वाला है। और दूसरा कोई आने का उपाय ही नहीं है। यह फाइट सीधी होनी चाहिए।

प्रश्नः आपने जो फरमाया पहले कैपिटलिज्म के बारे में। मेरी अपनी यह भूमिका ऐसी है कि कैपिटलिज्म जैसा आप कहते हैं और... वालों ने कहा कि कम्युनिज्म... मैं यह कहता हूं, कैपिटलिज्म जो है, आज का जो विकृत उसका जो सबूत है, उसको हटा दो, कैपिटलिज्म कभी मरने वाला नहीं है। रशिया के अंदर या चीन के अंदर भी, हालांकि कम्पलीट कंट्रोल वहां उन्होंने कर दिया है, कब्जा कर दिया है--प्रोपेगेंडा मशीन है, ब्रेन-वाशिंग हो रहा है, फिर भी जाकर के वह वृत्ति जो है, वह तो कुदरती जो भी, वह वृत्ति को वे दबा सके सचमुच ही दबा सके, मगर संघर्ष हमारा कम्युनिज्म के साथ नहीं होना चाहिए। एक संघर्ष के हिसाब से नहीं, मगर काम्पिटीशन के दौर से हमको करना चाहिए। आप कोई हमें ऐसी तरकीब बताओ, शब्दों के द्वारा ही बताइए आप, कि जिससे हम हमारे ये जो बुद्धिवादी लोग हमारे देश के जो हैं, उनके दिमाग में हम यह बात डाल दें कि जब हम लोकशाही की बात करते हैं तो हम सच्चे लोकशाही मानने वाले हैं या नहीं। लोकशाही की जो पर्याय है, लोकशाही की जो डेफिनेशन जो है, वह लोकशाही का डेफिनेशन हम समझ नहीं सकते हैं। लोकशाही के अंदर जैसा आपने कहा कि अगर लोकशाही के रास्ते से हम चले जाते हैं। दैन वी बिकम जेलेस ऑफ राइट्स वी आर नॉट इवन जेलेस ऑफ अवर राइट्स। वी आर अफरेड टु टॉक अबाउट राइट्स। वी हैव गॉट काम्पलेक्स अबाउट अवर राइट्स। वी आर नॉट इवन प्रिपेअर्ड टू फाइट फॉर अवर राइट्स। हम तो हमारे कपड़ों के लिए लड़ने के लिए... मैं यह कहता हूं, यह कौन सा समाजवाद है हमारे देश के अंदर महाराज कि जो समाजवाद लोगों के हकों को खतम करने वाला है। आज वे हमारे देश के समाजवादी को हमको यह कहते हैं कि

इंडिविजुअल राइट्स की आप बात करो, तो यह रिएक्शनरी बात है। फ्रीडम की हम बात करें, तो रिएक्शनरी बात है। कांस्टीट्यूशन के जो फंडामेंटल राइट्स हैं उसकी हम बात लेकर चलते हैं, तो यह रिएक्शनरी बात है। तो अब हम यह नारा लगाते हैं कि यह नारा जो है आपका, जो कहते हैं, यह मेरी अपनी सोशल सिक्योरिटी है कि लैंड टू द लैंड टिलर। जो किसान खेती करता है तो जमीन उसकी होनी चाहिए। मैंने कहा, जो यह कहते हैं आपको यह नारा--कि किसान जो खेती करता है उसकी जमीन होनी चाहिए, मगर वे करते क्या हैं? आज उनकी कार्यवाही यह है कि ऐसी परिस्थिति आ जाए कि देश में किसी भी आदमी के पास कोई चीज को अपने कहने का अधिकार ही न हो। यह जो काम इस दिशा के अंदर वे लोग कर रहे हैं... जो यह तरकीब जो है, अभी हमें तरकीब ऐसी थी, मैं तो इस चीज के अंदर सहम गया हूं और रुक गया हूं, एक किस्म का फ्रस्ट्रेशन थोड़ा आता रहता, मगर वह फ्रस्ट्रेशन के बावजूद भी उसका मुकाबला करना है। तरकीब हम आपके साथ विचार-विनिमय करके हम इकट्ठी कर लें। किस तरह से हमारा यह बुद्धिवादी वर्ग का खून जो है, शायद बुड्ढों को तो छोड़ो, मगर नई पीढ़ी जो है, नये नवयुवक जो हैं, उसके अंदर हमको अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का जो दर्द होता है, वह दर्द भी खतम हो गया। इवन इफ ए गुड डेमोक्रेसी सीज्ड टू बी ए गुड डेमोक्रेट... कैपिटलिस्ट।

असल तकलीफ मधुजी जो है वह यह है, तरकीब की बात आप कहते हैं न, टैक्टिक्स की बात बहुत मूल्यवान नहीं है। इसलिए मूल्यवान नहीं है कि टैक्टिक्स की बात है वह डे टु डे पॉलिटिक्स के लिए तो मूल्यवान है।

प्रश्नः यह जो संदेश जो है, वह संदेश का असर हो उसमें, और उसका हमें परिणाम क्या मिलेगा? हमारा यह संदेश है कि संदेश का कुछ परिणाम हम देखना चाहते हैं। और वह परिणाम जब हम देखना चाहते हैं, तो हम इस तरह से हमारे संदेश को प्रस्तुत करें... और संदेश में भी ऐसा तथ्य होना चाहिए... ।

बिल्कुल ही। आप आए थे मीटिंग में नहीं दो दिन से? नहीं आ पाए। आज आप आइए। और पूरे मेरे टेप मधु को जरा सुनवा दीजिए। आपको तो आना ही था। मेरे पूरे टेप तो आप ये देख कर जाइए। समाजवाद से सावधान के पांच टॉक्स है।

प्रश्नः तो किस ढंग से हम सोशल जस्टिस ला सकते हैं कैपिटल की एसोसिएट द्वारा? यह देखना पड़ेगा।

जिन वैल्यूज पर फाइट हो रही है--जैसे जस्टिस की वैल्यू है, तो जस्टिस
की ठीक-ठीक डेफिनेशन मुल्क के हृदय में पहुंचानी चाहिए। इसकी फिकर मत करिए आप कि आप अपने को जस्ट सिद्ध करने की कोशिश करें। आप सिर्फ जस्टिस की ठीक डेफिनेशन मुल्क के माइंड में पहुंचाएं। वह डेफिनेशन तय करेगी कि क्या ठीक है। और अगर आपने जल्दबाजी की कि हम जस्ट हैं सिद्ध करने को, आप खो देते हैं मामले को। इसलिए मैं फिलासफी की बात कर रहा हूं, प्रोग्राम की बात नहीं कर रहा। जो मेरा जोर है आप जस्टिस को डिफाइन करिए। मुल्क के सामने जस्टिस का कोई ख्याल ही नहीं कि जस्टिस यानी क्या है? तो इसलिए जस्टिस शब्द को कोई भी एक्सप्लाइट करता है।
डेमोक्रेसी यानी क्या मुल्क के सामने ख्याल ही नहीं है, इसलिए कोई भी एक्सप्लाइट करता है। कम्युनिस्ट भी डेमोक्रेट है, सोशलिस्ट भी डेमोक्रेट है, कैपिटलिस्ट भी डेमोक्रेट है, सभी डेमोक्रेट हैं। क्योंकि डेमोक्रेसी की मुल्क के माइंड के सामने कोई साफ डेफिनेशन नहीं है। मेरा जो कहना है, बजाय इसके कि हम यह सिद्ध करें कि मैं डेमोक्रेट हूं--क्योंकि ये सारे लोग सिद्ध करने में लगे हुए हैं--हमें एक व्यवस्था करनी चाहिए कि डेमोक्रेसी क्या, सीधी, जिससे हमें कोई मतलब नहीं है कि कौन डेमोक्रेट है, कौन नहीं है।
डेमोक्रेसी क्या, इसकी बिल्कुल ही निष्पक्ष परिभाषा मुल्क के मन तक पहुंचाने की कोशिश करनी चाहिए। समानता यानी क्या? अधिकार यानी क्या? यह

सवाल नहीं है कि किसको क्या अधिकार है? सिंपल प्योर डेफिनेशन मुल्क के माइंड में नहीं है कुछ भी। इसलिए कोई भी उसको कुछ कह देता है। वह कहता है, यह इनजस्टिस हो रही है। और हमारी समझ में नहीं आता कि क्या इनजस्टिस हो रही है?

प्रश्नः कंफ्यूजन रहता है।

कंफ्यूजन है।

प्रश्नः और मालकियत की भी बात करनी चाहिए।

मालकियत क्या है? वैल्यूज हमें साफ करने की फिकर करनी चाहिए। वैल्यूज साफ करने की फिकर करनी चाहिए कि वैल्यूज क्या हैं?

प्रश्नः लेकिन आचार्य श्री, यह तो वॉर-फुटिंग से ही जाना पड़ेगा।

वॉर-फुटिंग के सिवाय कोई रास्ता नहीं है। क्योंकि टाइम बहुत कम है।

प्रश्नः मगर जैसा कि आपने कहा कि कैपिटलिस्ट को ही मालूम नहीं कि कैपिटलिज्म की क्या वैल्यूज हैं?

हां, मैं तो हैरान होता हूं।

प्रश्नः दैट इ.ज वॉय यू नो, दे ऑल आर फीलिंग गिल्टी दैट इ.ज वॉय दे डू नॉट हैव एनी, यू नो कांशसनेस एनीथिंग... ।

दे हैव बीन मेड टु फील गिल्टी। क्योंकि वह तो इतना प्रोपेगेंडा है कि उनको बिल्कुल फीलिंग खुद पैदा हो गई कि वे गिल्टी हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह उनको कांशसनेस नहीं कि वे क्या कर रहे हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। इमिजिएट फायदे की फिकर में सारी गड़बड़ होती है। इमिजिएट मामले में।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो वही तो कैपिटलिज्म जो है वह इंच-इंच फाइट करेगा तो जीत नहीं सकता। रोज के मामलों में ही वह उसको तकलीफ है। तो वह अपनी-अपनी फिकर में हैं। वह हमें कांशस करना पड़े, वह हमें कांशस करना पड़े कि वह अगर कम्युनिस्ट के खीसे में उसका एक पैसा जा रहा है तो वह अपनी सुसाइड का इंतजाम कर रहा है, यह हमें कांशस करना पड़े।

प्रश्नः हाउ वुड यू मैक देम कांशस?

इस बात का प्रचार करना पड़े, और तो कोई मामला नहीं है। आज तो प्रचार के इतने साधन हैं--और अधिक साधन आपके हाथ में हैं--उनका उपयोग करना चाहिए...

प्रश्नः ओशो, बेसिक करैक्टर... ऑफ एन इंडियन इ.ज कंप्लीटली...

वह कब था वह? कभी भी नहीं था। और यह सब जो बातें हैं न, जो हम कहते हैं,
ये भी हमें बहुत साफ नहीं है। अगर मैं आपको पूछूं कि बेसिक कैरेक्टर किसको आप कहती हैं? तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगी एकदम से। कोई नहीं जानता क्या है बेसिक कैरेक्टर?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। उनको यह लगता है कि मेरे इंट्रेस्ट में ही हो रहा है। तभी कर रहा है, कोई नहीं कर रहा है अपने इंट्रेस्ट के खिलाफ। तो इसको बेसिक कैरेक्टरलेस नहीं कहोगे, इसको विजन की कमी है, पर्सपैक्टिव की कमी है, इसमें कैरेक्टर का कोई सवाल नहीं है। मुझे दो इंच तक दिखाई पड़ता है, दस इंच तक नहीं दिखाई पड़ता तो मेरा कैरेक्टर खराब है इसका कोई मतलब नहीं। इतना ही कि मेरी आंख बड़ी पास देखती है, बस इतना ही। इमीजिएट मामला है मेरे सामने। बस उसको मैं देख रहा हूं। कैरेक्टर से इसका क्या संबंध है।

प्रश्नः आप जो वर्ल्ड की बात कह रहे थे न आचार्य श्री, सारे वर्ल्ड को कांशसनेस करना भी पड़ेगा। तो स्टार्ट शुड बी मेड इन ए मल्टि-फ्रंट... फ्रॉम इंडिया।

इंडिया से शुरू करते है तो बड़े काम होता है। और वह सब तरफ से हो सकता है। सब तरह से हो तो बहुत जल्दी हो जाएगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

प्रोपेगेंडा की सारी मशीनरी का ठीक से उपयोग करने की जरूरत है। और मजा यह है कि मशीनरी आपके हाथ में हो तो भी उपयोग नहीं हो रहा। अब मुझे वहां पचास हजार लोग सुन रहे हैं, लेकिन आपका एक अखबार खबर नहीं दे रहा है। यह बड़ा मजेदार मामला है। पचास हजार लोग मुझे सुन रहे हों तो भी अखबार खबर नहीं दे रहा कि क्या... तब इनको, बड़ा मजेदार मामला है, और मजा यह है कि क्या किया जाए।

प्रश्नः क्योंकि आपने ध्यान तो पूरा खींच लिया है, मगर नाउ व्हाट वी शुड डिस्कस द नेक्स्ट लाइन ऑफ एक्शन।

हां, वह आप सोचिए, वह आप सोचिए। ज्यादा मुझसे अच्छी तरह आप सोच सकते हैं।

प्रश्नः और उसके लिए पहले कैपिटलिज्म की वैल्यूज क्या हैं। वह सब चीज
पर बात करें। ताकि कैपिटलिस्ट आल्सो हू आर फीलिंग गिल्टी। दे दैमसेल्वस शुड फर्स्ट रिअलाइज एंड अंडरस्टेंड द वैल्यूज ऑफ कैपिटलिस्ट देन ओनली वी वील बी एबल टू यूनाइट दैम टुगेदर।
हमारे देश में कुछ परंपरा ऐसी-ऐसी हैं। समस्या यह है के राम से लेकर, कृष्ण से लेकर और बुद्ध से लेकर, जो आए, तो उन्होंने अपने मंतव्य लोगों के सामने रखे, मूल्य रखे उनके सामने, वैल्यूज रखीं। और सामान्यजन को उस चीज को गले में उतरने के लिए कुछ प्रोग्राम कुछ ऐसा बनाया उन्होंने। कुछ संस्थाओं का आयोजन किया और संप्रदाय वगैरह बने। और वह समय के अनुसार इस तरह से, हमारे वहां आज भी वह परिस्थिति है कि जब तक वी अलाउ सो फुल्ली मेड बाइ सिंबल्स। हमारे देश में हम जब तक सिंबल्स देखते नहीं, तब दिमाग में वह बात जाती नहीं और सिंबल्स से भी हमारा संपर्क हो जाता है और उससे गाढ़ संबंध बन जाता है। तो कुछ सिंबल्स हम बदलें। कुछ हम संस्थाएं या किसी भी तरह से कुछ ऐसा आयोजन करें, जो प्रोग्राम वगैरह आपको अनुचित नहीं लगे, कुछ ऐसा कि जिससे सामान्यजन उसके अंदर शामिल हो सकता। सामान्यजन में नहीं समझता हूं, सामान्यजन से मतलब यह नहीं कि जो आदमी गरीब है, न, सामान्यजन,

समझो आर्डीनरी है भले ही... का आदमी है, तो वह ऐसे प्रेरित नहीं हो सकता।
हरेक आदमी को हम प्रेरित बनाने जाएंगे तो महाराज यह तो बहुत मुश्किल है।

न-न, जरूरत भी नहीं है। एटमास्फियर बनाने की जरूरत है।

प्रश्नः तो एटमास्फियर बनाने के बाद वह एटमास्फियर को चैनेलाइज जो करना है उससे हम अपने मंजिल...

बिल्कुल किया जा सकता है। और पुराने सिंबल्स का भी बहुत अच्छा... अभी
दो दिन से मुझे एक संन्यासी सुनने आते हैं। उस बेचारे ने, और उसका प्रभाव है, उसको पंजाब में हजारों लोग सुनते हैं। उसने मुझे दो दिन के बाद सुन कर कल मुझे कहा कि यह तो बड़ा आश्चर्य है कि मुझे तो पता ही नहीं था कि समाजवादी यानी क्या? और पूंजीवाद यानी क्या? मुझे तो पता ही नहीं था क्योंकि मैं तो परमात्मा और ब्रह्म की बातें करता रहा। यह अच्छा हुआ, मैं तो पहले तो समझा कि मुझे जाना ही नहीं चाहिए ये भाषण सुनने। क्योंकि "समाजवाद से सावधान" से मुझे क्या मतलब! तो उसको हजारों लोग सुनते हैं। उसके साथ बंबई में भी उसके सैकड़ों भक्त हैं। बीसवीं सदी में एक संन्यासी जिसको हजारों लोग सुनते हैं उसको पता नहीं कि समाजवाद क्या है? हिंदुस्तान में पचास लाख संन्यासी हैं! और इतनी बड़ी फोर्स है कि अगर तैयारी हो तो इस पचास लाख संन्यासी में से एक लाख संन्यासी तो आज खींचे जा सकते हैं जो सारे हिंदुस्तान को आज चैनेलाइज कर दें। इसमें कोई कठिनाई नहीं। क्योंकि इनका प्रभाव है, इनकी ताकत है आज। मगर हम उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। सिंबल्स तो मौजूद हैं। आज अगर एक लाख गेरुआ वस्त्र पहने हुए संन्यासी पूरे हिंदुस्तान में कहे कैपिटलिज्म की वैल्यूज की बात, तो आप कहां कम्युनिस्ट को खड़ा करते हैं, कहां चीन का प्रवेश दिलवा सकते हैं? और इसको खड़ा करने में जरा कठिनाई नहीं है। इसको कठिनाई ही नहीं है खड़ा करने में। मगर वह आपके ख्याल में नहीं है। और सारे ओल्ड सिंबल्स का उपयोग हो सकता है। अभी नये सिंबल भी आज खड़े करने की जरूरत नहीं है।

प्रश्नः व्हाई डोंट यू चेनलाइज?

मैं तो कर ही रहा हूं जो मैं कर सकता हूं। एक आदमी जो कर सकता है, आपको पता ही नहीं, यही तो मजा है न, मैं तो दिन-रात जो मुझे करना है वह कर ही रहा हूं। लेकिन एक आदमी जो कर सकता है, उतना ही कर सकता है। यहां पचास हजार आदमी सुन रहे हैं मुझे, मैं बोल रहा हूं। पचास हजार साल सुन लेंगे, मैं अपने चला जाऊंगा। लेकिन पचास हजार से फोर्स बनाने की व्यवस्था होनी चाहिए। अगर पचास हजार मुझे सुन रहे हैं, और उसमें से पांच सौ आदमी भी मुझसे राजी हो रहे हैं तो उसका एक फॉलोअप होना चाहिए। और पीछे उसके लिए काम की व्यवस्था नहीं। वह मैं अकेला आदमी कैसे करूंगा? आखिर मेरे करने की सीमाएं हैं।
मैं जो कर सकता हूं, वह तो मैं कर ही रहा हूं। उसको तो मैं किसी से कहने जाता नहीं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, तो इसके लिए आप एक तो प्रोपेगेंडा मशीन पैदा करें। एक इंतजाम करें कि यह सारी की सारी बात अखबारों में चर्चा हो सके, मैगजींस में चर्चा हो सके। इस ढंग की फिल्म बनाई जा सके, इस तरह के गीत बनाए जा सकें, नाटक बनाए जा सकें। इसके लिए आप कैंप का इंतजाम करें कि मैं हजार संन्यासियों को तीन दिन लाकर रख सकूं, उनको समझा सकूं। उनको तैयारी दी जा सके। एक लिट्रेचर बनाएं। जो लिट्रेचर बेसिक किसी को भी दिया जा सके। वह पढ़ सके, समझ सके, उस पर काम कर सके। उस बेसिक लिट्रेचर का इस मुल्क की ट्रेडीशन, इस

मुल्क की परंपराओं, इस मुल्क की संस्कृति से संबंध जोड़ा जा सके। यह सब बिल्कुल सरल सा है। इसमें कुछ ऐसा मामला बहुत कठिन नहीं है।
लेकिन कोई सोचता हो कि मैं अकेला ही कर लूं तो वह पागलपन की बातें सोच रहा है। ये पागलपन की बातें हैं, मैं अकेला कैसे कर सकता हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं तैयार हूं। आप पहले तो देश के तीस-चालीस बड़े नगरों में इंतजाम करिए। मैं समय देने को तैयार हूं, वहां बोलने को तैयार हूं। वहां आर्गनाइज करने की आप सारी व्यवस्था करें। वहां व्यवस्था करिए। पूरा मुल्क का तीन महीने में एक पूरा दौरा किया जाए और उस दौरे की हवा पूरी की पूरी पूरे मुल्क में इकट्ठी पैदा की जाए। इसके बाद एक दो-चार कैंप का आयोजन करें, जहां संन्यासियों, साधुओं, साध्वियों के एक चार-पांच कैंप रखे जा सकें। उन कैंप की फिकर कर लें। इस बीच कुछ लिट्रेचर पैदा करने की फिकर कर लें। बंबई में एक आफिस बना डालें, एक फंड क्रिएट करें उसके लिए। यहां से कुछ मैगजींस, कुछ फ्री बुलेटिंस, जो कि बांटी जा सकें। जैसे समझ लीजिए कि मैं एक गांव में बोलता हूं जाकर, तो मैं एक दिन बोल सकता हूं, लेकिन पूरे गांव में प्रोपेगेंडा लिट्रेचर घर-घर पहुंचाया जा सके, उसे मुफ्त बांटा जा सके। उसको खरीदने की फिकर नहीं करवाई जाए कि कोई उसे खरीदे ही। उसको मुफ्त ही बांटा जा सके उसे या दो-चार पैसे दाम रखे जाएं कि वह कोई भी उसे ले जा सके।

प्रश्नः कितने लोग पढ़ सकते हैं लिट्रेचर को?

आप नहीं समझते हैं। यही तो आपकी कमजोरियां हैं। वही कम्युनिज्म पचास साल से करके आपको मारे डाल रहा है। मगर आपकी अक्ल में नहीं आती है बात। वह वही सब टैक्टिक्स का पूरा उपयोग कर रहा है, लेकिन आप कहते हैं कितने लोग पढ़ सकते हैं? कितने लोग पढ़ते हैं--कोई फिकर नहीं कर रहा है। मास्को फिकर नहीं कर रहा है कि एक दस करोड़ किताबें भेजीं, कितने लोग पढ़ते हैं! दस करोड़ देखेंगे तो! कवर तो देखेंगे। अंदर बच्चों की छपी हुई फोटो, चेहरे तो देखेंगे कि बच्चे कितने गोल और सुर्ख हैं रशिया में। इतना तो देख लेंगे न, मत पढ़िए, उनको कोई फिकर नहीं है। आप नहीं समझते न। यह तो जो कांस्टेंट हैमरिंग है माइंड पर--फेंकी जा रही हैं पत्रिकाएं हर घर में मुक्त। कोई फिकर नहीं, मत पढ़ो, लेकिन कभी तो कोई बैठा है खाली सुबह तो उठा कर पन्ने उलट लेता है। लेकिन वह इतना तो देख लेता है कि रशिया में कैसा स्वस्थ बच्चा है। कैसी स्कूल की बिल्डिंग है। इतना तो देख लेता है। यह सब तो इनडायरेक्टली चुपचाप हो रहा है उसके माइंड में कि रशिया में कुछ है।
यह कोई सवाल नहीं है कि आपने पहुंचा दिया किसी घर में तो वह मान ही लेगा। और मजा यह है कि जब धनपति और धन पैदा करने वाला, और सारी प्रोपेगेंडा मशीन का उपयोग करने वाला, आप रोज चिल्लाए जा रहे हैं कि लक्स टायलेट अच्छा साबुन है और पनामा सिगरेट पीना उम्दा बात है। और आप अच्छी तरह समझ रहे हैं कि कोई पढ़ेगा कि नहीं पढ़ेगा, इसकी कोई फिकर नहीं। पनामा शब्द तो दिखाई पड़ जाएगा एक दफा। दस दफे, पचास दफे सिर्फ पनामा दिखाई पड़ेगा, खोपड़ी में भर गया, वह दुकान पर गया, उसने कहा कि पनामा सिगरेट दे दो। वह सोच रहा है कि मैं ही सोच कर बोल रहा हूं। कोई सोच कर नहीं बोल रहा है। लेकिन मजा यह है कि हमें, साइंटिफिक सब प्रोसेस हैं, कोई मामला नहीं है। फिल्में हैं, फिल्में ऐसी बनवाइए, एक-दो फिल्में ऐसी हों जो कि सारे मुल्क में दिखाई जा सकें मुफ्त, जिनकी थीम, जिनका गीत मुल्क को पकड़ ले।
अब आज रामायण जिंदा सिर्फ इसलिए कि रामलीला चलती रही, नहीं तो रामायण कभी की मर जाती। कोई किताब जिंदा इतने दिन नहीं रह सकती है। दुनिया में कोई किताब इस तरह जिंदा नहीं है, जिस तरह रामायण जिंदा है। क्योंकि उसको उन्होंने फौरन ड्रेमेटाइज्ड कर लिया। उसका एक डरमा बन गया, वह गांव-गांव में घुस गया। गांव-गांव में हर साल रामलीला हुई चली जा रही है। अब कोई वजह नहीं कि रामलीला की स्टेज का आप उपयोग क्यों न करें? क्यों न मुल्क भर में

रामलीला की स्टेज पर आपका काम हो? कोई कठिनाई नहीं है, कोई अड़चन ही नहीं है उसमें, बिल्कुल सहज हो सकता है। कोई वजह नहीं कि सारे मुल्क के मंदिर और मस्जिद और मठ आपके काम में क्यों न आ जाएं? क्योंकि वे सब मिटेंगे। उनको कांशस भर करने की जरूरत है कि कम्युनिज्म आया कि तुम सब पोंछ डाले जाओगे। मुश्किल यह है कि आप मुझसे पूछ भी लेंगे, मुझसे रोज लोग पूछ लेते हैं, और फिर बात खतम हो गई। असल कठिनाई यह है कि कोई सोचता हो कि मैं यह सब करने जाऊंगा, ये गलत बातें हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वहां हिम्मत नहीं पड़ती न। यहां हिम्मत नहीं पड़ती थी मित्रों की। ऐसी
तो मुश्किलें हैं। क्या करिएगा। यहां भी मित्रों की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि समाजवाद से सावधान रखना की नहीं रखना। कोई पत्थर फेंक जाए, कोई कुछ हो जाए। कुछ नहीं होना है। कोई मतलब नहीं है। बामुश्किल मुझे राजी करना पड़ता आपको कि रख लीजिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हम नये बना सकते हैं, उसमें कुछ मामला ही नहीं है। इस वक्त हिंदुस्तान में बहुत-कुछ अच्छे साधु हैं।

प्रश्नः हम खुद गेरुए वस्त्र पहन कर साधु बन कर बोल सकते हैं।

इसके लिए थोड़ा सोचना है, एक छोटी कमेटी बनाएं, उसमें आप डिटेल्स में सोचें। कुछ थोड़ा सा प्रोग्राम उसमें शुरू करें। क्या करना उसके साथ थोड़ा सोचें। यहां बंबई से तो सारे मुल्क में कोई भी ख्याल तत्काल पहुंचाया जा सकता है, उसमें तो कोई अड़चन नहीं है, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन सब तरफ से हमला बोलना पड़े। वह मल्टि-फ्रंट से। सब तरफ से हमला बोलना पड़े उसको।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उन्होंने अभी क्या मधु जी, अमरीका में सिनेट उन्होंने फैसला किया पिछले... पर कि सिगरेट की हर डिब्बी पर लाल रंग से यह लिखा होना चाहिए कि इससे आदमी मर सकता है, बीमार हो सकता है। तो उसके लिखने से एकदम सिगरेट की करोड़ों की, क्योंकि डिब्बी पर जब आप रोज देखें सिगरेट पीते वक्त लाल स्याही से कि इससे बीमारी हो सकती है। हालांकि आपने सुना है, लेकिन रोज रिपीट होना हर बार डिब्बी पर जब सिगरेट निकालो। भारी मामला है...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

फिल्टर निकाल लिए हैं न। वह फिल्टर की वजह से हो गया, और कुछ नहीं। फिल्टर निकाल लिए और उन फिल्टर्स पर लिखा हुआ है कि इसके लगा देने से फिर सिगरेट कोई नुकसान नहीं पहुंचाएगी।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक छोटी कमेटी बनाएं। काकु भाई मेरे जाने के बाद एक छोटे ग्रुप को बुलाएं, और उसमें बैठ कर--मधु को बुला लें--उसमें बैठ कर थोड़ा प्रैक्टिकल प्रोग्राम के लिए दो-चार, दस पॉइंट्स चुनें और उन पॉइंट्स पर क्या शुरू कर सकें उसे थोड़ा सा शुरू करें।

आचार्य श्री, लैंग्वेज का क्या?

लैंग्वेज का, मैं तो हिंदी में बोलता हूं। लेकिन सब जगह ट्रांसलेट हो सकती है। ऐसी कोई तकलीफ नहीं। केरल में अच्छा है कि केरली में ही ट्रांसलेट हो तो अच्छा। अभी मैं मद्रास बोल रहा था, तमिल में अनुवाद हुआ, बहुत ही अच्छा परिणाम हुआ। वह उनकी लैंग्वेज में वहां शुरू करना पड़े। सीधी उनकी लैंग्वेज में।

प्रश्नः मगर इंपैक्ट इ.ज नॉट देयर।

न, न, न। इंपैक्ट में कम फर्क पड़ता है। नहीं लेकिन फिर भी, वह आप देखेंगे तो आप हैरान हो जाएंगे, बल्कि कई बार तो इससे ज्यादा इंपैक्ट पड़ता है, क्योंकि मैं एक-एक सेंटेंस बोलता हूं फिर। और एक-एक सेंटेंस अनुवाद होता है। बहुत अच्छा परिणाम हुआ अभी मद्रास में।

प्रश्नः बट आई शुड गेदर दैट यू आर विलिंग टू गो अराउंड इंडिया एण्ड दैट इ.ज ओबियस दैट योर स्पीचिज मेक एन इंपेक्ट ऑन द आर्गनाइज योर टुर। आई एम नॉट क्लीअर दैट हाउ मच टाइम यू कैन गिव, एण्ड यू ऑर कम्पलीटली फ्री एण्ड डिवोट ऑर यू आर टाइड अप फॉर समटाइम...

न, अगर इसके लिए व्यवस्था आप करते हैं तो मैं तत्काल बाकी तीन महीने में ही मेरे प्रोग्राम अब बंद कर देता हूं। तीन महीने तो मैं चक्कर लगा देने के ख्याल में था। बेसिक बात, मुल्क में हवा पैदा हो, फिर हम उसके पीछे सोचें कि क्या हो सके। मैं तो छह-सात महीने तक मुक्त हूं, लेकिन मैं तीन महीने के बदलने के ख्याल में हूं। वह जरा आप बनाते हैं तो तीन महीने में उसे बदल दें। तीन महीने के लिए पूरा तीन महीना आपको दे देता हूं। और उसको फिर ढंग से और पूरी ताकत से आर्गनाइज करिएगा, छोटा-मोटा काम मुझे पसंद नहीं है--कि जाऊं किसी बस्ती में, दो सौ आदमी सुन रहे हैं, उसकी बकवास में मैं नहीं पड़ना चाहता। मेरी ताकत का ठीक उपयोग करते हों तो ही, नहीं तो उसका कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः यह तो कोई गारंटी...

नहीं, गारंटी तो इसलिए है, गारंटी इसलिए है कि जिन नगरों में मैं बोल रहा हूं वहां अगर आप थोड़ी मेहनत लेते हैं, तो वहां बीस हजार से कम लोग नहीं होंगे। जहां मैं बोलता हूं, वहां तो कोई तकलीफ ही नहीं है।

प्रश्नः हम वह तो कोशिश करेंगे। आपको ले जाना है तो उसका जितना लाभ...

आप कोशिश करें पूरी। वही मेरा मतलब है। नहीं तो फिजूल समय खराब न करवाएं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, छोटे गांव में तो कंपेक्ट होता न, छोटी जगह तो सबको पता चल जाता है, सब लोग आ जाते हैं, बड़ी सरल है। अभी यह अकोला में था, तो बीस हजार लोग थे। अकोला में कोई आबादी नहीं है, लाख, डेढ़-लाख की आबादी होगी कोई।

प्रश्नः कलकत्ता में कितने दिन आप ठहरेंगे?

कलकत्ता दो दिन ठहरूंगा। फिर जबलपुर आ जाऊंगा। और यहां एक कैंप रख रहे हैं नारगोल में। दो-तीन-चार-पांच मई। अगर दस-पांच मित्र वहां आ जाते हैं तो चार दिन मेरे साथ रहना हो जाएगा। हजार लोग वहां आ ही रहे हैं, वह तो कैंप भी है आपके ध्यान के लिए। अगर आप दस-पांच मित्र आ जाते हैं तो वहां

अपना पूरा प्रोग्राम आप इस बीच बना कर आ जाएं, तो उसके लिए कुछ सोचें। वैसे मैं लौट जाऊंगा दो दिन में। छह और सात यहां मई में आऊंगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, कहीं न सोचें, वह बड़ी जगह ही सोचें। और उसके लिए पूरा प्रोपेगेंडा करें ठीक से।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आप बिल्कुल गलती ख्याल में हैं, यह मैसेज आपको देने का है। आप बिल्कुल गलती ख्याल में हैं।

प्रश्नः नहीं, हम तो दे रहे हैं।

नहीं, वहीं तकलीफ है। वह आप भी वहां नहीं दिखाई पड़े। आप मेरा मतलब नहीं समझे। यह हमको सबको यह ख्याल है कि मैसेज किसी और को देना है। सबको यह ख्याल है। यह मामला नहीं है। वह मैसेज सबको ही देना है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मॉस-स्केल पर। और बड़ा व्यापक उसका प्रचार करें कि वहां बराबर लाख आदमी हो सकें तो उसका मजा भी आएगा।

देख कबीरा रोया
पंद्रहवां प्रवचन

भौतिक समृद्धि: अध्यात्म का आधार

जो ठीक है और सच है उतना तो मैं कहना चाहता हूं। उसका क्या परिणाम होगा, सत्य का क्या परिणाम होगा, इसकी मुझे जरा भी चिंता नहीं है। आखिर वह सत्य है, तो लोगों को उसके पास आना पड़ेगा--चाहे वे आज दूर जाते हुए मालूम पड़ें। और लोग पास आएं इसलिए मैं असत्य नहीं बोल सकता हूं। फिर सत्य जब भी बोला जाएगा, तभी प्राथमिक परिणाम उसका यही होगा कि लोग दूर भागेंगे। क्योंकि हजारों वर्षों जिस धारणा में वे पले हैं, उस पर चोट पड़ेगी। सत्य का हमेशा ही यही परिणाम हुआ है। सत्य हमेशा डिवास्टेंटिंग है एक अर्थों में कि वह जो हमारी धारणा है उसको तोड़ डालेगा। और अगर धारणा तोड़ने से हम बचना चाहें तो हम सत्य नहीं बोल सकते। जान कर मैं किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाह रहा हूं। डेलिब्रेटली मैं किसी को चोट नहीं पहुंचाना चाहता हूं। लेकिन सत्य जितनी चोट पहुंचाता है उसमें मैं असमर्थ हूं, उतनी चोट पहुंचेगी। उसको बचा भी नहीं सकता हूं। फिर मैं कोई राजनैतिक नेता नहीं हूं कि मैं इसकी फिकर करूं कि लोग मेरे पास आएं, कि मैं इसकी फिकर करूं कि पब्लिक ओपिनियन क्या है।
मैं इस चिंता में हूं कि लोकमानस सत्य के निकट पहुंचना चाहिए। मैं लोकमानस के अनुकूल बनूं, इसकी मुझे जरा भी चिंता नहीं है। सत्य के अनुकूल लोकमानस बनाया जाए, इसकी मुझे चिंता है। और इसलिए बहुत सी बातें मैं कह रहा हूं जो कि चोट करने वाली, आघात करने वाली हैं और विध्वंसकारी हैं। लेकिन असल में सच में कहा जाए तो पूरी बातें नहीं कह रहा हूं, जो कि और भी चोट करने वाली होंगी, और भी विध्वंसकारी होंगी।
तो जैसे-जैसे लोगों के सुनने की भूमिका विकसित होती चली जाएगी, मैं उन सारी चीजों को कहना चाहूंगा। तो यह तो प्रारंभ है एक यात्रा का। अभी इसमें और बहुत कुछ कहने जैसा है। जैसे जीवन के सारे मसलों पर हमारी दृष्टि थोथी और झूठी है। तो मैं जीवन के प्रत्येक मसले पर जहां-जहां झूठ है वह कहना चाहूंगा। और न केवल कहना चाहूंगा, बल्कि अगर संभावना बन सकी और शक्ति इकट्ठी हो सकी तो उस चीज को बदलने की भी चेष्टा करूंगा।
जैसे कि सेक्स के बाबत अभी मैंने कहा। इधर तीन वर्षों तक मैंने शुभ भूमिका बनाने की फिकर की। कभी-कभी थोड़ा मैं कुछ बोल रहा था--कभी ब्रह्मचर्य के संदर्भ में, कभी किसी और संदर्भ में। लेकिन पूरी बात नहीं कही थी। फिर मुझे लगा कि अब भूमिका बनी है, अब उस बात को कहा जा सकता है, वह मैंने कही। लेकिन अभी भी सेक्स पर बहुत कुछ कहने को है और वह जैसे भूमिका बनेगी तो मैं कहूंगा। ऐसे ही शिक्षा पर, ऐसे ही परिवार पर, ऐसे ही आर्थिक व्यवस्था पर, ऐसे ही देश की राजनीति पर।
मुझे लगता ऐसा है कि हिंदुस्तान में कोई तीन हजार वर्षों से जो लोग हुए विचारक, उनमें से कोई भी चोट करने के लिए हिम्मत नहीं जुटा पाया। तो उसने ज्यादा-ज्यादा फिकर यह की कि वह पुराने ढांचे में ही पुराने शब्दों का ही उपयोग करके, पुरानी मान्यता को ही स्वीकार करके, थोड़ा-बहुत हेर-फेर कर सके तो करे। लेकिन सीधी चोट करने की हिम्मत नहीं जुटाई जा सकी और इसलिए हिंदुस्तान में विज्ञान पैदा नहीं हुआ। क्योंकि साइंस तभी पैदा हो सकती है, जब हम अनन्य रूप से सत्य के प्रति समर्पित हों। हम इसकी फिकर छोड़ दें कि क्या परिणाम होगा?
जो सत्य है, नग्न सत्य, उसको स्वीकृत करने की हिम्मत से ही विज्ञान शुरू होता है और नहीं तो फिर आदमी फिक्शन में ही जीता है। और हमारा मुल्क पुराण-कथाओं में जी रहा है, विज्ञान में नहीं। उसके चिंतन का ढंग साइंटिफिक नहीं है। और हिंदुस्तान की यह तकलीफ है कि हम सब व्यक्तियों से बंधे हुए हैं। कोई महावीर से बंधा हुआ है, कोई कृष्ण से बंधा हुआ है, कोई गांधी से बंध गया है। और जो लोग भी व्यक्तियों से बंध जाते हैं उनकी सत्य के प्रति यात्रा बंद हो जाती है। क्योंकि फिर वे सदा यह सोचते हैं कि इसने जो कहा है वही सत्य है, उससे अन्यथा सत्य नहीं हो सकता।

तो अभी तो मैं सिद्धांतों पर चोट कर रहा हूं जो उतनी खतरनाक नहीं है। आने वाले दिनों में मैं व्यक्तियों पर भी चोट करूंगा, जो कि ज्यादा खतरनाक और डिवास्टेटिंग मालूम होगी। क्योंकि अगर मैं अहिंसा के संबंध में कुछ बात करता हूं तो उतनी चोट नहीं पहुंचाती, अगर मैं कहूं कि महावीर यह गलत कहते हैं तो वह चोट और ज्यादा पहुंचने वाली है। क्योंकि व्यक्तियों से हमारे मोह ज्यादा हैं।

प्रश्नः फिर भी आप थोड़ी-थोड़ी चोट पहुंचा रहे हैं।

शुरू-शुरू में तैयारी करनी पड़ेगी, ताकि... पहुंचा जा सके।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैंने कहा, मैंने कहा। जरूरी नहीं है कि मैं कोई जान कर यह कर रहा हूं। जान कर करना जरूरी नहीं है, लेकिन वह हो रहा है। और मजा यह है कि नेहरू न केवल लोगों को हिप्नोटाइज कर रहे हैं, नेहरू खुद भी लोगों से हिप्नोटाइज होते हैं। मुझसे अच्युत पटवर्धन ने कहा, मैं यह बात कह रहा था तो उनको भी यह ख्याल आया, तो वे मुझसे आकर कहे अच्युत पटवर्धन कि नेहरू जी के साथ मैं मद्रास में था। और दिन भर में उन्होंने कोई तीस मीटिंग अटेंड कीं और वे सांझ को बिल्कुल ताजे मालूम होते थे। तो मैंने उनसे पूछा कि आप थके नहीं दिन भर की तीस मीटिंग के बाद? तो उन्होंने कहाः एक मीटिंग में बोलने के बाद मुझे वही असर होता है जो एक व्हिस्की के पेग से मुझे असर होता है। न केवल लोगों को हिप्नोटाइज कर रहे हैं वे, बल्कि इतनी आंखें हैं, उनको भी ऑटो-हिप्नोटाइज कर रही हैं और उनको भी सुख मिल रहा है इस बात से। हजार आदमी, दस लाख आदमी अगर एक आदमी को आधा घंटे तक देख रहे हैं, तो लोग तो हिप्नोटाइज हो रहे हैं यह तो ठीक ही है, वह आदमी भी ऑटो-हिप्नोटाइज हो रहा है। और उसको जो रस आ रहा है इतनी आंखों के केंद्रित बन जाने से, वह खुद हिप्नोटाइज हो रहा है। व्हिस्की का असर हो सकता है, नेहरू ने गलत नहीं कहा। तो यह जो मैं व्यक्तियों पर चोट करने की तैयारी करूंगा। क्योंकि जब तक उन पर चोट नहीं जा सकती, इस मुल्क में चिंतन पैदा ही नहीं किया जा सकता।

प्रश्नः तो यह तो गैर-संदिग्ध है और... कंपेयर नेहरू और हिटलर।

न-न, कभी नहीं कंपेयर कर रहा हूं। कंपेयर नहीं कर रहा हूं। लेकिन जहां
तक हिप्नोटाइज करने का सवाल है, वे कंपेयर किए जा सकते हैं। और किसी मामले में कंपेयर नहीं कर रहा हूं। यानी वह तो कोई भी नेता, नेतागिरी ही उस बेसिस पर खड़ी हुई है। लीडरशिप जो है वह उसी बेसिस पर खड़ी हुई है। लीडर होने का मतलब यह है कि जाने-अनजाने हिप्नोटाइज करना; नहीं तो आप लीडर बन नहीं सकते। और जिस दिन दुनिया में हिप्नोटिज्म के बाबत पूरी जानकारी हो जाएगी, उस दिन लीडर की मौत हो जाने वाली है। लीडर जिंदा नहीं रह सकता। तो अब वे सतर्क हिप्नोसिस के रास्ते खोज रहे हैं, जिनमें कि आपको ऊपर से भी पता न चले।
अभी मैंने पढ़ा, एक एक्सपेरिमेंट वे अमरीका में करते हैं--कि अभी फिल्म
के ऊपर एडवरटाइजमेंट करते हैं आपके सामने। तो सामने वाला आदमी अब सचेत हो गया है एडवरटाइजमेंट से, क्योंकि एडवरटाइजमेंट की जो हिप्नोसिस है, वह अमेरिका में आज जाहिर हो गई। कि एक लक्स टायलेट साबुन, लक्स टायलेट साबुन को बार-बार रिपीट करने से आदमी हिप्नोटाइज हो जाता है। तो अब जनता को पता चल गया तो अब एक रेसिस्टेंस पैदा हो रहा है। तो अब उसको इतने सूक्ष्म रूप से करने लगे कि उसको पता न चले तो अब एक नई अजीब बात निकाली उन्होंने। वह यह है कि फिल्म चल रही है, चलती हुई फिल्म के बीच में सेकेंड के हजारवें हिस्से में लक्स टायलेट का बीच में से स्मे.ज निकल जाएगा, वह किसी को दिखाई नहीं पड़ेगा। फिल्म चल रही है, आप फिल्म देख रहे हैं, कहानी चल रही है, बीच में "लक्स टायलेट सोप" आपको दिखाई नहीं पड़ेगा आंख से। तो इस पर वे

एक्सपेरिमेंट कर रहे हैं। और वह यह परिणाम हुआ कि वह दिखाई तो नहीं पड़ रहा है आंख से, लेकिन अनकांशस माइंड उससे इंप्रेस हो जाता है। और अगर वह एक फिल्म में तीस बार दोहरा दिया जाए तो आपको पता भी न चलेगा कि आप लक्स टायलेट साबुन अच्छा साबुन है, लेकिन वह आपका माइंड पकड़ लेगा गहरे में, और वह माइंड काम करेगा। तो वह तो जैसे ही हिप्नोसिस की पूरी जानकारी उन्हें हो जाएगी, तो लीडरशिप को नये रास्ते खोजने जरूरी हो जाएंगे। लीडर लीडरशिप हमेशा से हिप्नोटाइज करती रही है--चाहे वह जान कर, चाहे न जान कर।
तीन तरह के लीडर हैं। जो लीडर जन्मजात हिप्नोटाइजर्स हैं, उनको कभी पता नहीं रहता कि हम हिप्नोटाइज कर रहे हैं। उनको कभी पता नहीं रहता। वह तो उनके जीवन का हिस्सा है, वह चलता चला जाता है। दूसरे वे हैं, जो व्यवस्था से लीडरशिप पैदा करते हैं। उनको पूरा, कांशस होते हैं वे कि क्या करना है, क्या बोलना है, कैसा कपड़ा पहनना है। हाउ टु इंप्रेस, उसकी पूरी व्यवस्था है। तीसरे वे हैं, जिन्हें जबरदस्ती लीडर बना दिया जाता है। उनको न पता होता है, न तो उनको कोई सहज भाव होता है। वे बेचारे सिर्फ थोप दिए गए लीडर हैं। ये तीन तरह के लीडर्स हैं। इसमें हिटलर दूसरे तरह का लीडर है, जो पूरी की पूरी व्यवस्था से लीडरशिप पर जा रहा है। स्टैलिन दूसरे तरह का लीडर है, जो पूरी व्यवस्था से है। नेहरू पहले तरह के लीडर हैं, कोई व्यवस्था नहीं है, लेकिन हिप्नोसिस तो है, और वह जन्मजात है, वह व्यक्तित्व का हिस्सा है।

प्रश्नः अगर हिप्नोटाइज इ.ज बीइंग दैट इनस्टेड नेहरू ट्राइंग टु हिप्नोटाइज टू लैख्ड ऑफ पीपुल इन ए पब्लिक मीटिंग... ही कैन हिप्नोटाइज डजन इन दि कंट्री। एण्ड थ्रू दैम ही कैन रीच मिलियंस ऑफ पीपुल।

उनको नहीं, उनको नहीं हिप्नोटाइज किया जा सकता है। सच तो यह है कि वह डजन कॉरिसपांडेस को हिप्नोटाइज करने के पहले दस लाख को हिप्नोटाइज करना जरूरी है। वह उनको हिप्नोटाइज करने का हिस्सा है। आप मुझसे प्रभावित होंगे, जब दस लाख आदमी आप मुझसे प्रभावित देखेंगे। तब कॉरिसपांडेंट प्रभावित होता है। कॉरिसपांडेंट तो प्रभावित होता है वह दस लाख लोगों की हिप्नोसिस को देख कर। तब वह सोचता है कि यह आदमी अर्थ का है, इसकी बात अर्थ की है। अगर मेरे पास एक आदमी नहीं, तो आप मुझसे पूछने नहीं आएंगे कि मेरा क्या...

प्रश्नः इंडिविजुअल नहीं है।

मेरा मतलब नहीं है, इंडिविजुअल नहीं है, मॉस-हिप्नोसिस की संभावना पूरी है। और इंडिविजुअली हिप्नोटाइज करने में देर लगती है, मॉस-हिप्नोसिस बहुत आसान है। एक-एक आदमी को हिप्नोटाइज करने में एक-एक आदमी रेसिस्ट करता है। मॉस-हिप्नोसिस में कोई रेसिस्टेंस नहीं है किसी का; और आपके आसपास के लोग हिप्नोटाइज हो गए तो आपको पता ही नहीं चलता कि आप कब हिप्नोटाइज हो गए हैं। तो एक इंडिविजुअल को हिप्नोटाइज करना कठिन है, क्राउड को हिप्नोटाइज करना हमेशा आसान है, क्योंकि क्राउड के पास रेसिस्टेंस नहीं रह जाता है। इसलिए जितने लीडर हैं वे सब क्राउड लीडर हैं। पर्सनल रिलेशनशिप में हिप्नोटाइज करना कठिन बात है क्योंकि आप पूरे रेसिस्टेंट हैं।
मैं इसको जान कर हैरान हुआ हूं, कि अगर मैं आपसे बात कर रहा हूं और आपने प्रश्न पूछा है, तो उस प्रश्न के उत्तर में आपको प्रभावित करना ज्यादा कठिन है और शरद बाबू बैठे सुन रहे हैं, न उन्होंने प्रश्न पूछा, वे सिर्फ सुन रहे हैं, तो उनको प्रभावित करना ज्यादा आसान है। क्योंकि वे तो रेसिस्टेंस... । आपको रिडक्सेशन में इन्होंने पूछा है तो ये गलत कह रहे हैं कि सही कह रहे हैं, क्या पूछा है, लेकिन जो पास बैठे हुए लोग हैं उनका कोई रेसिस्टेंस नहीं है। तो भीड़ हमेशा जल्दी हिप्नोटाइज होती है और भीड़ को हिप्नोटाइज देख कर जो आदमी उसमें आता है इंडिविजुअल, वह हिप्नोटाइज होता है। उसको तो समझ में नहीं आता कि जहां दस लाख लोगों को उसने देखा कि वह

एकदम से, वह दस लाख का जो साइकिक एटमास्फिअर है, वह उसमें डूब जाता है। तो चाहे कोई जानता हो, चाहे न जानता हो, आदमी को हिप्नोटाइज किया जा रहा है। और अगर हम मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से सबल बनाना चाहते हैं तो उसे सचेत करना जरूरी है कि वह हिप्नोटाइज न हो। उसको इतना सचेत करना जरूरी है कि वह सम्मोहित होकर प्रभावित न हो। प्रभावित हो, वह बिल्कुल दूसरी बात है। वह बहुत रेशनल बात है। आपको मैं समझाऊं, तर्क करूं, विचार करूं और ओपन छोड़ दूं कि आपकी मर्जी, तो मैं आपको हिप्नोटाइज नहीं कर रहा। लेकिन हिप्नोसिस एक तरह की ट्रिक है कि मैं आपको समझाता हूं, मैं आर्ग्यु करता हूं, लेकिन आपको बेहोशी के रास्ते से आपको पकड़ने की कोशिश करता हूं।
यह एक बल्ब लगा हुआ है रास्ते पर, और पूरे वक्त जल रहा है, बुझ रहा है,
और आपको एडवरटाइज किया जा रहा है। पहले यह तो पता था कि पहले आप देखते थे तो एडवरटाइजमेंट स्थिर था, वह बल्ब जलता-बुझता नहीं था। अभी वह हिप्नोटिस्ट ने बताया है कि उसको बुझाने से हिप्नोटिज्म ज्यादा होगी, क्योंकि वह रिपीट हो रहा है फिर, वैसे रिपीट नहीं होता।
लिखा है "हमाम" तो आपने पढ़ लिया एक दफे, खतम हो गई बात, लेकिन वह फिर जला, फिर बुझा, तो जितनी बार वह जला-बुझा, उतनी बार आपको कहना पड़ा "हमाम।" यह तो आपकी मजबूरी हो गई। तो वह तो हिप्नोटिस्ट बता रहा है कि उसको जलाओ-बुझाओ जल्दी-जल्दी, ताकि वह आदमी निकलते-निकलते बीस दफा पढ़े कि "हमाम, हमाम", तो बीस दफा पढ़ने से रिपीट होगा तो वह उसके भीतर घुस जाएगा।
अब यह बदमाशी है। यह आदमी को नुकसान पहुंचाना। इससे हम कुछ भी कर सकते हैं। इसका मतलब यह है कि हम आदमी, और आज तो ब्रेन-वॉश और माइंड-वॉश पर रूस और चीन में इतना काम हो रहा है कि आप यह समझ लीजिए कि आदमी की स्वतंत्रता मुश्किल से पचास वर्ष बचने वाली है। अगर आदमी नहीं समझ गया तो, बिल्कुल पचास वर्ष से ज्यादा बचने वाली नहीं है आदमी की स्वतंत्रता। अभी हम बैठ कर इतनी बात कर रहे हैं यह संभावना रह जाने वाली है, क्योंकि आपके माइंड को कंट्रोल भीतर से किया जा सकता है बिल्कुल ही, और आपको पता भी न चले कि जो आप बोल रहे हैं, वह आपसे बुलवाया जा रहा है। जो आप कह रहे हैं, वह आपसे कहलवाया जा रहा है। और इस पर इतना, अभी तो साइकोएनालिसिस और इस सबका काम जितना बढ़ गया, वह इतना घबड़ाने वाला है कि इलेक्ट्रोड आपके माइंड में रखा जा सकता है और ट्रांसमीटर मेरे हाथ में है, और मैं दुनिया में रहूं और मैं वहां से कहूं कि आप इस वक्त सो जाइए, तो आपको सोना पड़ेगा उसी वक्त। तो माइंड में आपके इलेक्ट्रोड रख दिया है, वह बिल्कुल ट्रांसमिशन का काम कर रहा है, रेडियो का, वह कहेगा कि नींद आ रही है, नींद आ रही है! यानी इस बात की संभावना बन गई है अब पैदा कि सारी मनुष्यता को कंट्रोल किया जा सकता है। एक अदना सा आदमी कुछ भी कंट्रोल कर सकता है और कुछ भी करवा सकता है। और इतना काम उस तरफ हो रहा है कि अगर हम लोगों को सचेत नहीं करते हैं तो आने वाले पचास वर्षों में मनुष्यता की सारी स्वतंत्रता खत्म हो जाने वाली है, कोई स्वतंत्रता नहीं रह जाएगी।
अभी पिछले कोरियन वॉर में जिन अमरीकन कैदियों को चीन ने पकड़ रखा था, उनका पूरा माइंडवाश करके भेजा उन्होंने। नौ महीने में वे माइंडवॉश कर देते हैं। नौ महीने बाद जब वे अमेरिका पहुंचे तो वे कम्युनिज्म की प्रशंसा करते हुए पहुंचे और अमेरिका को गाली देते हुए पहुंचे कि यह कैपिटलिज्म सब खराब है। और वे यह कहते पहुंचे कि हमारे साथ बहुत अच्छा सलूक किया गया है। उनके साथ बहुत बुरा सलूक किया किया गया है, लेकिन उनके माइंड में रिपिटेडली यह डाला गया है कि हमारे साथ अच्छा सलूक किया जा रहा है। रूस में जितनी भी टरयल्स हुई पिछले चालीस वर्षों में, सारी टरयल्स में जिस आदमी को सजा दी, उसी से कंफेस करवा लिया कि हमने यह पाप किया है। एक आदमी ने रेसिस्ट नहीं किया। यह अजीब मामला है। और अच्छे-अच्छे लोगों से, जो कि बड़ी कोटि के विचारक थे, उनसे अदालत में कहलवा लिया कि हमने यह किया, यह पाप किया! स्टैलिन को मारने की कोशिश की है मैंने! न तो गवाही की जरूरत रखी कुछ। और सिर्फ माइंडवॉश किया उन बेचारों का। उनको छह-छह चार-चार महीने बंद रख कर उनके मन में रिपीटेडली यह भाव डलवाया कि तुमने स्टैलिन की हत्या की कोशिश की। एक आदमी को सात दिन जगाया जाए, सोने न दिया जाए और सात दिन हर

हालत में जगाए रखा जाए और सजेस्ट किया जाए कि तुमने स्टैलिन को मारने की कोशिश की। दो-तीन दिन तक तो वह कहेगा कि नहीं, मैंने कहां कोशिश की है। फिर नींद की कमी, और उसको शक पैदा होगा सुन कर कि कहीं मैंने की तो नहीं, जब इतने लोग मुझसे कह रहे हैं। और सात दिन में वह आकर कहने लगेगा सातवें दिन कि मैंने कोशिश की है स्टैलिन को मारने की। अदालत में खड़ा करके उससे कंफेस करवा दिया कि मैंने स्टैलिन को मारने की कोशिश की। तो मेरी चेष्टा यह है कि लीडरशिप अब खतरनाक रास्तों पर आदमी को ले जाएगी। तो उसे हिप्नोटिक स्थिति के प्रति सचेत करना है।
जैसा आप कहते हैं, मेरी बातें उस वक्त कई भाव पैदा कर देती हैं आपके मन में, लेकिन अभी कोई रास्ता नहीं है, जब तक कि वह भाव मैं पैदा न करूं। वह भाव पैदा होगा तो आप पूछेंगे, सवाल उठेंगे और मैं तैयार हूं सवाल-जवाब के लिए। मैं तो पूरे मुल्क को एक डायलाग में डाल देना चाहता हूं एक दस साल के भीतर। तो जितने प्रश्न उठेंगे, उतनी बातें साफ हो सकेंगी। और यह तो स्वाभाविक है कि मेरे को सुन कर पच्चीस प्रश्न आपको उठते हैं। वह मैं चाहता हूं कि उठने चाहिए। सिर्फ जो जड़बुद्धि हैं उनको नहीं उठेंगे, बाकी तो जो विचारशील हैं, उनको उठना चाहिए।

प्रश्नः आर यू इंट्रेस्टेड इन दि मैटीरियल डवलपमेंट ऑफ द कंट्री ऑर
दि फिलॉसफिकल डवलपमेंट ऑफ दि कंट्री?

मेरी दृष्टि में मैटीरियल डवलपमेंट जो है वह फिलॉसफिकल डवलपमेंट की पहली सीढ़ी है। कोई भी देश, कोई भी समाज जब तक आर्थिक, भौतिक समृद्धि से भरा हुआ न हो, तब तक दार्शनिक विकास नहीं हो सकता और नहीं हो सकता है, क्योंकि दार्शनिक विकास के लिए एक बुनियादी जरूरत है कि हम भौतिक रूप से समृद्ध हों। जब आदमी की रोटी की, कपड़े की और छप्पर की चिंता समाप्त हो जाती है, तब पहली दफा स्प्रिचुअल अर्ज पैदा होती है। तब वह सोचता है कि और क्या? जिसको रोटी और कपड़ा नहीं मिल रहा, मकान नहीं मिल रहा, उससे आप कह रहे हैं कि आत्मा-परमात्मा का चिंतन करो, आप निहायत फिजूल बात कह रहे हैं। हिंदुस्तान ने जिन दिनों धार्मिक चिंतन किया गया और फिलॉसफिकल डवलपमेंट हुआ, बुद्ध या महावीर या कृष्ण--ये सारे के सारे लोग समृद्ध हिंदुस्तान की पैदाइश हैं। एक समृद्धि थी मुल्क में। लोग खुशहाल थे। और उसमें भी बड़े मजे की बात है कि ये खुशहाल लोगों में से ही नहीं, सब राजपुत्रों के लड़के हैं। ये सब शाही घरों के लड़के हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम, सब राजाओं के लड़के हैं। जहां लक्जरी पूरी होती है, जिंदगी जहां सब सीमाएं तृप्त हो जाती हैं, वहां आदमी की जो इंक्वायरी ऊपर उठती है। और वह उन चीजों पर पूछता है जो कि पहले पूछ ही नहीं सकता था।
तो मेरी दृष्टि में आने वाली फिलासफिकल जो भी संभावनाएं हैं वे रूस
और अमेरिका में फलित हो सकती हैं, हिंदुस्तान में नहीं। तो मेरी दृष्टि में--जैसा अब तक समझा जाता रहा है कि रिलीजस या फिलासफिक या स्प्रिचुअल डवलपमेंट और मैटीरियल डवलपमेंट विरोधी बातें हैं, ऐसा मैं नहीं मानता।
मैं मानता हूं मैटीरियल डवलपमेंट नेसेसरी स्टेप है स्प्रिचुअल डवलपमेंट के लिए।
कैसे यह हिंदुस्तान में आएगा? तो तीन बातें मुझे दिखाई पड़ती हैं।
एक तो कि हिंदुस्तान की पूरी चिंतना बदलनी पड़ेगी इस संबंध में। समृद्धि का विरोधी है हिंदुस्तान और गरीबी का पक्षपाती है! यह अत्यंत मूढ़तापूर्ण दृष्टि है। तो पहले तो हमारे पूरे मुल्क की हमें यह दृष्टि बदलनी पड़ेगी कि समृद्धि कोई अशुभ बात नहीं है, बल्कि समृद्ध होंगे तो ही हम धार्मिक हो सकेंगे। अभी क्या हमारे मन में रहा है कि धार्मिक होने के लिए दरिद्र होना जरूरी है। यह बिल्कुल ही पागलपन की बात है। तो एक तो हमें इस मुल्क के विचार से यह बात निकाल देनी है कि गरीबी कोई पूजा की चीज है, या गरीब होना कोई बहुत अच्छी बात है, कि एक आदमी लंगोटी लगा कर खड़ा हो जाता है तो कोई बहुत महान कार्य कर रहा है। तो एक फिलॉसफी ऑफ पावर्टी, दरिद्रता का दर्शन हमारे चित्त में बैठा रहा है। कम से कम में जीओ, कम से कम आवश्यकता।

छोटा से छोटा मकान हुआ, दाल-रोटी खा ली और अपना एक चादर ओढ़ लिया और गुजार दिया। जितनी कम जरूरत, उतनी कम जरूरत। कम जरूरत जिन लोगों के ख्याल में बहुत महत्वपूर्ण है, वे देश को दरिद्र बना देंगे। तो मैं कहता हूं, जरूरत बढ़नी चाहिए। जरूरत इतनी बढ़ाओ कि तुम्हें जरूरत बढ़ाने की वजह से नये-नये मार्ग खोजने पड़ें उनको पूरा करने के लिए, नई दिशाएं खोजनी पड़ें, तो समृद्धि की तरफ गति शुरू होती है।
तो पहले तो एक समृद्धि का दर्शन। वह दरिद्रता का दर्शन हटाने की जरूरत है। पहले तो मेंटली तैयार करना पड़े, तब मैटीरियली तैयारी होती है। दूसरी बात, पहले तो मेंटली तैयारी बहुत जरूरी है। अभी तो माइंड से हम गरीब हैं और गरीब रहने को हम तत्पर हैं। बल्कि सच यह है कि जो अमीर हैं, जिनसे हम भीख मांग रहे हैं, उनको हम गाली दे रहे हैं कि वे लोग अमीर हैं तो भौतिकवादी हैं, मैटीरियलिस्ट हैं। बड़े मजे की बात है कि अमेरिका से हम भीख मांग कर जी रहे हैं और अमेरिका को गाली दिए जा रहे हैं कि तुम भौतिकवादी हो, तुम मैटीरियलिस्ट हो, तुम फलां हो, ढिंका हो, हम आध्यात्मिक हैं। और तुम्हारा अध्यात्म यह है कि तुम्हें भौतिकवादी से भीख मांगनी पड़ रही है। तो पहले तो हमारे मन में यह साफ हो जाना चाहिए कि समृद्धि लक्ष्य है। एक-एक व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में, आने वाली पीढ़ी और विद्यार्थियों के मन में समृद्धि का विचार गहराई से डालने की जरूरत है। ताकि हजारों सालों की दरिद्रता का पागलपन खतम हो जाए।
दूसरी बात, कोई भी मुल्क तभी समृद्ध हो सकता है जब टेक्नालॉजी में विकसित हो। और हमारा मुल्क टेक्नालॉजी में विकसित नहीं रहा, बल्कि हम टेक्नालॉजी के दुश्मन रहे अब तक। और गांधी ने और मुसीबत खड़ी कर दी अभी पीछे। वे भी टेक्नालॉजी के दुश्मन। वह विनोबा भी टेक्नालॉजी के दुश्मन। तो इस मुल्क में टेक्नालॉजी के खिलाफ एक हवा रही है, वह यह कि अगर पैदल चलने से चलता है तो कार में जाने की क्या जरूरत? कार की जरूरत क्या है? हवाई जहाज की जरूरत क्या है? बड़ी मशीन की जरूरत क्या है? चरखे से काम चला लो, तकली कात लो। अगर हम तकली और चरखा कातेंगे तो हम कभी समृद्ध नहीं हो सकते हैं। क्योंकि समृद्धि मूलतः नब्बे परसेंट टेक्नालॉजी का फल है। जो संपत्ति पैदा होती है वह सौ में से नब्बे प्रतिशत टेक्नीक का फल है। तो हिंदुस्तान के माइंड को टेक्नालॉजीकल बनाने की जरूरत है। यह बेवकूफी-- खादी की, चरखे की, तकली की--आग लगा देने की जरूरत है पूरे मुल्क में। यह ग्रामोद्योग और यह बकवास बंद करने की जरूरत है। बड़ा उद्योग, केंद्रित उद्योग। यह विकेंद्रीकरण की बात घातक है कि डिसेंट्रलाइज करो, क्योंकि जितना डिसेंट्रलाइज्ड होगी इकोनॉमी, उतनी ही गरीब होगी। जितनी सेंट्रलाइज हो...

प्रश्नः ओशो, हाउ एवर इ.ज गोइंग टू इंडस्ट्रीलाइजेशन दि कंट्री। नो फॉरेन मशीन, नो फॉरेन...

उसकी मैं बात आपसे करता हूं। मेरे लिए बड़ा सवाल तो यह है कि--यह तो दूसरा सवाल है--बड़ा सवाल तो यह है कि हमारा माइंड टेक्नालॉजी के लिए राजी है कि नहीं? माइंड राजी हो तो रूस ने कहां से, किससे फाइनेंस किया है पिछले पचास सालों में? और उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति के बाद रूस की हालत हमसे बदतर थी, हमसे बेहतर नहीं थी। रूस को तो कोई सहायता नहीं थी दूसरे मुल्कों से, क्योंकि दूसरे मुल्क तो नष्ट करने को तैयार थे रूस को। लेकिन पचास साल में टेक्नालॉजिकली वह अमरीका से भी किन्हीं मामले में आगे हो गया। कैसे?

प्रश्नः वी कंपेल दि पिपुल टु वर्क--ड़ेमोक्रेसी नहीं आती यहां।

मेरी मान्यता यह है, मेरी मान्यता यह है कि जो डेमोक्रेसी लोगों को काम करने के लिए कंपेल न कर सके, वह निकम्मी डेमोक्रेसी है। असल में हम शब्दों से इतने ज्यादा परेशान हैं, यह मामला कुछ ऐसा हो गया है कि डेमोक्रेसी अगर ठीक से समझी जाए तो वह भी एक समृद्ध समाज की जीवन व्यवस्था

है। एक दरिद्र समाज डेमोक्रेसी होने की बात करता है, वह वैसा ही है, जैसे एक दरिद्र आदमी घर में हवाई जहाज रखने की बात करता है। डेमोक्रेसी जो है, वह पूर्ण शिक्षित, समृद्ध, सुसंपन्न समाज की व्यवस्था है। जब तक समाज उतना सुसंपन्न और सुशिक्षित नहीं हो जाता, तब तक डेमोक्रेसी का मतलब सिर्फ इतना ही होगा कि वह सदय डिक्टेटरशिप हो, बेनिवोलेंट डिक्टेटरशिप हो। उसका यही मतलब होगा।

प्रश्नः वुड यू लाइक टु डेमोक्रेसी शुड बी चेंज्ड।

बिल्कुल ही यह डेमोक्रेसी नुकसान पहुंचा रही है। बीस साल में मुल्क
को नुकसान पहुंचा है, भारी नुकसान पहुंचा है। आज तो जरूरत है कि हम तीस-चालीस साल तक मुल्क को एक मिलिटरी कैंप की शक्ल में खड़ा करके और मेहनत करें। तो हम समृद्ध हो सकते हैं, नहीं तो हम समृद्ध नहीं हो सकते हैं। यह इस तरह समृद्धि नहीं आने वाली है। बल्कि बीस साल का फल यह हुआ है कि अंग्रेज के समय में हमारी जितनी इफिशिएंसी है, वह बहुत नीचे गिर गई। काम करने की क्षमता भी नीचे गिर गई, काम करने का मन भी नीचे गिर गया। कोई काम नहीं करना चाहता। और एक ख्याल पैदा हो गया।
रूस में क्रांति हुई तो वहां एक मजाक चला। जिस दिन उन्नीस सौ सत्रह में पहले दिन क्रांति हुई अक्टूबर में और मास्को क्रांतिकारियों के हाथ में चला गया तो एक मोटी औरत बीच रास्ते पर चलती हुई पाई गई। तो पुलिस के आदमी ने कहा कि तुम यह कहां चली? बीच रास्ता चलने का है? उसने कहा, अब हम स्वतंत्र हो गए हैं। अब कोई हमें यह नहीं कह सकता कि बाएं चलो कि दाएं चलो। स्वतंत्रता का मतलब और लोकतंत्र का मतलब ऐसा ही हम पकड़े हुए हैं इधर बीस साल से। नहीं, स्वतंत्रता का मतलब है कि दायित्व और बढ़ गया। लोकतंत्र का मतलब है कि हमारी रिस्पांसिबिलिटी और गहरी हो गई। एक बेनिवोलेंट डिक्टेटरशिप से ही यह लोकतंत्र आगे बढ़ेगा और डेमोक्रेसी बन सकती है। तो हिंदुस्तान में अभी पूर्ण लोकतंत्र की बात ही करनी फिजूल है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, नहीं बात हो पा रही है।

प्रश्नः कभी कहने वाले हैं।

जब भी कभी। मैं तो हमेशा तैयार हूं।

प्रश्नः पब्लिक में तो अभी तक आपने...

पब्लिक में धीरे-धीरे बात चल पाती है।

प्रश्नः --ड़ेमोक्रेसी है, उसकी वजह से बेनिवोलेंट डेमोक्रेसी आई तो अच्छा है।

बिल्कुल ही।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, मुझे मौका ही नहीं मिल पा रहा है। ऐसा मुश्किल हो गया है कि मुझे इतनी बातों पर बात करनी है--न मंच है, न मौका है। तो ये तो जो लोग मंच बना लेते हैं उनको वे जिस पर मंच बना लेते हैं वह बात मुझे करनी पड़ती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपको पूरा इंटरव्यू दे दूं। आप चाहें तो उस पर पूरा इंटरव्यू दूंगा, आप उसके लिए बात करें। और मैं चाहता हूं, इतनों से कह रहा हूं मित्रों से कि आने वाले दिनों में बंबई में चार दिन इस संबंध में एक चार लेक्चर्स रखें।
तो जरूरी है कि मुझे तो इतनी नुकसानदायक लग रही है यह डेमोक्रेसी की बातचीत, इतनी खतरनाक कि हमको नष्ट किए दे रही है। अभी मुल्क को कोई जरूरत नहीं डेमोक्रेसी की।

प्रश्नः पिपुल हैव स्टार्टेड थीकिंग आन दोज लाइंस... से इट ओपनली। इट इ.ज ए क्राइम टु से...

हां, वे तो कहेंगे, लेकिन मैं उसके लिए लड़ने को तैयार हूं। बात की जा सकती है। तो मैं एक बेनिवोलेंट डिक्टेटरशिप चाहता हूं, एक सदय अधिनायकशाही मुल्क में होनी चाहिए। और टेक्नालॉजी पर हमें फोर्स करना पड़ेगा, क्योंकि मुल्क का इनरशिया पांच हजार साल पुराना है। और बिना फोर्स किए कुछ कर नहीं सकते यहां। अगर आप सोचते हों कि बस हम कह देंगे कि बर्थ-कंट्रोल कर लो और बर्थ-कंट्रोल हो जाएगा, तो यह हद्द बेवकूफी की बात है। इधर तो जब तक आप बंदूक सामने नहीं होगी, तब तक बर्थ-कंट्रोल होने वाला नहीं है। आपने कह दिया कि बस टेक्नालॉजी, तो वह जो चरखा चलाने वाला आदमी है, वह एकदम से आटोमैटिक मशीन पर पहुंच नहीं सकता। उसका माइंड कैसे पहुंच जाएगा? उस तक पहुंचाना पड़ेगा और फोर्स करना पड़ेगा। एक पंद्रह-बीस साल के लिए सारे मुल्क को एक सैन्य शिविर की तरह व्यवहार करना पड़ेगा, तो हम उस हालत में पहुंचेंगे कि डेमोक्रेसी हम फिर ला सकें। तो तकनीक पर मेरा जोर है दूसरा। और तकनीक को बढ़ाने के लिए हमें मुल्क पर दबाव डालना पड़ेगा, ऐसे काम नहीं चलने वाला है।

प्रश्नः हाउ यू विजिलाइज टु ब्रिंग दैट? युवक संगठन बना रहे हैं?

हां, युवक संगठन बना रहा हूं। इसमें मैं इस बात की विचार करने का प्रयत्न करूंगा। और तीसरी बात कि मुल्क के जितना भी सारे जगत में संपत्ति आई है, वह संपत्ति जैसा लोग सोचते हैं कि कहीं रखी हुई नहीं है। संपत्ति कहीं रखी हुई नहीं है, वह तो क्रिएशन है। कैपिटलिस्ट टु बी क्रिएटेड। कहीं है नहीं, कि हम गए और हमने उसको उठा कर कब्जा कर लिया। वह तो क्रिएशन है। तो उसके क्रिएशन करने के लिए मुल्क की जिंदगी की सारी जीवनचर्या हमें बदलनी पड़ेगी। यह जीवनचर्या उसको क्रिएट करने वाली नहीं है। तो यह जो हमारा ढंग है अभी उठने, बैठने, चलने, सोने का, यह उससे वह पैदा होने वाली नहीं है। हमें पूरी की पूरी जीवनचर्या मुल्क की बदलने के लिए, तो खास कर हॉस्टल्स और विद्यार्थियों में मैं काम करना चाहता हूं। इसीलिए कि लोगों को इस योग्य बना सकूं कि वह यह समझे कि कितनी देर में हम कितना पैदा कर सकते हैं और कैसे कर सकते हैं, कितने सहयोग से कर सकते हैं। कितने लोगों की जरूरत पड़ेगी, कितनी मशीन की जरूरत पड़ेगी और हम कितने कम समय में कितना ज्यादा पैदा कर सकें। एक ही ध्यान रखना है कि कम शक्ति में, कम समय में, कम श्रम से अधिकतम कैसे पैदा किया जा सकता है।

प्रश्नः यह तो कम्यून्स है।

एक तरह का कम्युनिज्म तो मुल्क में लाना ही पड़ेगा।

प्रश्नः यानी कम्यून्स।

हां, कम्यून्स। बिल्कुल ही ठीक है। कम्यून्स की जरूरत पड़ेगी। मैं इसके बाबत विचार करता हूं निरंतर कि जरा एक हवा पैदा हो तो मैं कुछ ग्रुप पूरे मुल्क में छोटे-छोटे कम्यून बनाऊं जिनकी सोशल लिविंग हो। एक छोटा सा

गांव हो, जिसका उनका पूरा का पूरा सोशल लिविंग हो। बच्चे भी सामूहिक रूप से पाले जाएं, सामूहिक रूप से शिक्षित हों, सारे लोग सामूहिक रूप से फार्मों पर काम करें और टेक्नालॉजी पर ज्यादा से ज्यादा जोर दें और आदमी के श्रम को कम से कम उपयोग में लाएं। जितना आदमी का श्रम बचता है, उतना श्रम इंटलेक्ट में ट्रांसफार्म होता है। मेरी अपनी समझ यह है। इस मुल्क में इंटलेक्ट विकसित नहीं हो सकी, क्योंकि हम आदमी को श्रम से मुक्त नहीं कर सके। श्रम से मुक्त होने पर ही उसकी शक्ति इंटेलिजेंस में विकसित होनी शुरू होती है। इंटेलिजेंस उन समाजों में विकसित होती है जहां लक्जरी पैदा हो जाती है।

प्रश्नः लेकिन ये मशीन ओरिएंटेड... ला सकती है, तो उसमें इंडिविजुअल लिविंग में तो दबाव हो... ।

इंडिविजुअल है कहां? आपको सिर्फ ख्याल है। है कहां? इंडिविजुअल है कहां? लेकिन इंडिविजुअल है नहीं कहीं अभी भी। अभी भी नहीं है। आपको सिर्फ भ्रम है कि आप पर कम्पल्शन नहीं आ रहा है। आपकी पत्नी आपको खींच रही है, आपके पिता आपको खींच रहे हैं, स्टेट खींच रही है, समाज खींच रहा है, बॉस खींच रहा है। आप सिर्फ भ्रम में जी रहे हैं कि आप कंपैल्ड नहीं हैं। आप एक-एक इंच कंपैल्ड हैं। सच तो यह है कि जितना सामूहिक लिविंग होगा और जितना मशीन-सेंटर्ड उत्पादन हो जाएगा, उतना ही व्यक्ति को मुक्त किया जा सकता है।
इस पर तो लंबी बात करनी पड़े, नहीं तो उनकी बात रुक जाएगी, उनको बात करने दें।

प्रश्नः आप किससे प्रभावित हैं? स्वामी विवेकानंद हैं, रामकृष्ण परमहंस हैं, भगवान बुद्ध हैं, महावीर हैं, इसमें से किसी से आप प्रभावित हैं?

नहीं, किसी व्यक्ति से मैं प्रभावित नहीं हूं, लेकिन कुछ-कुछ चीजें सबमें हैं जो मुझे प्रीतिकर हैं। और मेरा जोर बड़ा अजीब है, कुछ चीज मुझे मार्क्स में उतनी ही प्रीतिकर है, जितनी बुद्ध में। कुछ मुझे नीत्शे में भी प्रीतिकर है और गांधी में भी। तो मेरे सामने कोई एक व्यक्ति मुझे प्रीतिकर नहीं है। सारे जगत की जो देन है, उसमें जो भी मुझे सत्यतर लगता है, चाहे वह किसी से आता हो, तो वह मुझे अंगीकार है, सदा अंगीकार है। तो मेरे साथ बड़ी कठिनाई हो गई है, कभी मैं मार्क्स की प्रशंसा में भी बोलता हूं, कभी नीत्शे की प्रशंसा में भी बोलता हूं, कभी मैं गांधी के खिलाफ भी बोलता हूं, कभी बुद्ध की प्रशंसा भी करता हूं, कभी बुद्ध के खिलाफ भी बोलता हूं। कभी रामकृष्ण की प्रशंसा भी करता हूं, कभी खिलाफ। तो लोगों को बहुत मुश्किल हो गई है कि मैं किसके? मैं किसी व्यक्ति के पक्ष में नहीं हूं। मुझे जो ठीक दिखाई पड़ता है, वह जिस व्यक्ति में भी दिखाई पड़ता है, मैं उतनी दूर उसकी प्रशंसा करने को राजी हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, जरा भी नहीं। मुझे तो सारा हेरिटेज--पूरी मनुष्यता की ही फिकर है। उस पूरे हेरिटेज से ड्राइव करना है जो भी ड्राइव करना है। उसके लिए मेरे मन मैं जरा भी भाव नहीं आता कि मोहम्मद हैं कि क्राइस्ट हैं। सारी दुनिया में जो भी मनुष्य ने आज तक सोचा है, उसकी जो भी क्रीम है, वह सब मुझे अंगीकार है। वह जो सब श्रेष्ठतर है, सब स्वीकार है। वह चाहे एक ऐसे आदमी ने कहा हो, जो वेश्यागामी है, शराब पीता है, इसकी मुझे फिकर नहीं। वह अगर सत्य है तो मुझे अंगीकार है। और चाहे वह एक ऐसे आदमी ने कहा हो कि शराब नहीं पीता है, ब्रह्मचारी है और दिन-रात भजन-कीर्तन करता है, लेकिन बेवकूफी की बात कही तो वह बेवकूफी की बात है। उसमें मैं कुछ भी फर्क नहीं करता। तो

सारी मनुष्यता का जो आज तक का अनुभव है, उस सारे अनुभव से मुझे प्रेम है। और उसमें जो भी श्रेष्ठतर है उसे मैं हमेशा स्वीकार करता हूं, लेकिन मेरे मन में व्यक्ति की कोई, किसी व्यक्ति की कोई स्थान नहीं है।

प्रश्नः... वी आर शॉर्ट ऑफ सो मैनी थिंग्स अपने पास फॉरेन मशीन नहीं है, इंपोर्ट नहीं है, रा-मैटीरियल नहीं है। तो अगर चरखा दे दिया एक-एक आदमी को, तो चार-चार आना रोज कमा लेंगे।... हाउ डू यू विज्युलाइज टु इंडस्ट्रीलाइज... ?

असल बात यह है, जो मैंने तीन बातें कहीं, जब तक वे नहीं हो जातीं, आपको फॉरेन कैपिटल मिल जाए तो भी आप इंडस्ट्रीयलाइज्ड कर नहीं पाएंगे मुल्क को। माइंड का मेकअप हमारा इंडस्ट्रीयल नहीं है। वह क्रांति न हो सकी यहां जो औद्योगिक क्रांति पश्चिम में हुई। उस क्रांति के पहले जो रिनासां का युग बीता, उसने सारे माइंड को बदल दिया युवकों के। वैसा कोई रिनासां भारत में कभी हुआ नहीं। हमारा माइंड तो वही फावड़ा-खुरपी वाला है, माइंड। और हमें बड़ी इंडस्ट्रीयां आप खड़ी कर दो, वह हमसे चलने वाली नहीं है। वह हमसे चलने वाली नहीं है। कैपिटल-वैपिटल का सवाल नहीं है कभी भी, मेरे लिए सारा सवाल माइंड का है। एक बार माइंड तैयार हो, तो जिन मुल्कों में, यूरोप में इंडस्ट्री बनी, वे कहां से फॉरेन कैपिटल लाए थे? आज से डेढ़ सौ साल पहले वहां कहां की इंडस्ट्री थी? हम समझ लें कि उसी हालत में हैं। मैं यह पूछता हूं कि यूरोप में डेढ़ सौ साल पहले कहां से कैपिटल आई? कहां से इंडस्ट्री आई? कहां से टेक्निशियंस आए? कहीं से भी नहीं आए।

प्रश्नः आज की तरह उनके सामने जनसंख्या का सवाल नहीं था?

यह सवाल नहीं है। अगर पापुलेशन प्रॉब्लम उनके सामने बड़ा होता तो इंडस्ट्री और बड़ी आती। वह माइंड का सवाल है। आपके सामने पापुलेशन प्रॉब्लम आज है, पचास साल पहले तो नहीं था, आपने तब इंडस्ट्री क्यों पैदा नहीं कर ली?

प्रश्नः तब तक हम गुलाम थे।

वह गुलाम भी आप क्यों थे। ये सारे मामले तो इनरकनेक्ट हैं न। आप गुलाम
भी क्यों थे? गुलाम भी आप इसीलिए हुए कि टेक्नीकली आप कभी विकसित नहीं हुए। इसलिए जब भी टेक्नीकली ज्यादा विकसित कौम आपके मुकाबले आ गई, आपको हार जाना पड़ा। आप हैरान होंगे पिछले हजार साल का इतिहास देख कर, कि जब भी आप हारे, तो जिससे आप हारे, वह कौम आपसे ज्यादा ताकतवर नहीं थी, सिर्फ टेक्नीकली ज्यादा ताकतवर थी। पहली दफा मुसलमान हिंदुस्तान में आए, तो हिंदुस्तान का राजा हाथी पर लड़ने गया। वह टेक्नीकली बेवकूफ था। घोड़े पर लड़ने वाले से हार जाएगा। घोड़े पर लड़ने वाला टेक्नीकली होशियार है, क्योंकि घोड़ा ज्यादा तेज जानवर है, जल्दी से बचता है, भागता है। हाथी बिल्कुल बेहूदा जानवर है। उस पर आप सवारी निकालिए किसी महाराजा की तो ठीक है, लेकिन वह युद्ध के मैदान का जानवर थोड़े ही है हाथी। तो आप हाथी से लड़ने गए। टेक्नीकली गलत थी यह बात। घोड़े पर लड़ने वाला जीत गया। जो आए थे लड़ने, वह आपसे कमजोर कौमें थीं, आपसे ज्यादा ताकतवर कौमें नहीं थीं। न उनकी संख्या ज्यादा थी, न कुछ था, न उनके पास रोटी थी खाने को, न कुछ और था, सिर्फ टेक्नीकली वह आपसे ज्यादा इम्प्रूव्ड साधन लेकर आए थे। वे आ गए घोड़ा लेकर।
इसके बाद जब भी आप हारे, तो आप बंदूक से लड़ते थे, दूसरा तोप लेकर आ गया। अंग्रेज से हारने का कुल कारण इतना था कि आपके पास बंदूकें थीं, अंग्रेज के पास तोपें थीं। टेक्नीकली वे आपसे ज्यादा होशियार थे। अंग्रेज की ताकत कितनी थी हिंदुस्तान में जीत जाने की? हिंदुस्तान में इतने दूर देश से आकर एक कौम खड़ी हो जाए थोड़े से लोगों को लाकर और जीत जाए!

और हमारा नेता बेवकूफी की बातें समझाता है। चूंकि हममें भेदभाव था, फलांना। ये सब बिल्कुल कनिंगनेस की बातें हैं, ये असली बातें नहीं हैं।
असली बात इतनी कि आप हमेशा टेक्नीकली पीछे थे। जब भी आपके दुश्मन आया सामने, वह टेक्नीकली ज्यादा बड़ा साधन लेकर आया था। आप ठप्प हो गए एकदम। अभी आज भी आप पर चीन आ जाएगा तो आप हारने वाले हैं, यह मैं कह देता हूं। क्योंकि टेक्नीकली आप चीन से पीछे हैं हमेशा। आप जीत नहीं सकते चीन से। और आप यह पक्का मानिए कि दस साल में पाकिस्तान से भी आप टेक्नीकली पीछे हो जाने वाले हैं, क्योंकि आपका पूरा माइंड ही नॉन-टेक्नीकल है, बड़ा मजा यह है।... अभी आप बड़े खुश हो लिए, यह थोड़ी सी जीत हो गई। एक दस साल के भीतर आप पाकिस्तान से भी जीतने में समर्थ नहीं रह जाएंगे। क्योंकि टेक्नीकली वह आगे निकलता जा रहा है। वह अणु-भट्टियां खड़ी कर रहा है, वह सब कर रहा है। और यहां के बेवकूफ विचार करते हैं कि अणु बनाना कि नहीं बनाना? यही बेवकूफी हजार साल तक गुलाम रखी आपको। क्योंकि वह बंदूक वाला सोचता था कि तोप बनानी कि नहीं बनानी। दूसरा तोप बना कर आ गया छाती पर। उसने नहीं पूछा कि बनानी की नहीं बनानी। अब आप अणु बनाओ कि नहीं बनाओ, कि महावीर स्वामी क्या कहते हैं, बुद्ध भगवान क्या कहते हैं, महात्मा गांधी क्या कहते हैं? अणु बनाना है कि नहीं बनाना है? अहिंसा की फिलासफी क्या कहती है? तुम यह सोचना। दस साल में पाकिस्तान अणु बना लेगा।

प्रश्नः दीज आर पाजिटिवली फॉर एटम बम।

बिल्कुल ही, पाजिटिवली। टेक्नालॉजी है, फॉर टेक्नालॉजी है। एटम बम का सवाल नहीं है, टेक्नालॉजिकली हमें श्रेष्ठतम होना चाहिए। हर दिशा में टेक्नालॉजिकली श्रेष्ठतम होना चाहिए। अणु बम टेक्नालॉजी का श्रेष्ठतम हिस्सा है। वह हमें बनाना चाहिए। जरूरी नहीं है कि हम लड़ने जाएं, लेकिन आणविक, एटामिक एनर्जी की टेक्नालॉजी हमें जान लेनी चाहिए, खड़ी कर लेनी चाहिए, क्योंकि बच्चों के लिए सवाल कल खड़ा हो सकता है। आई एम फॉर टेक्नालॉजी। यानी वह अणु बम का सवाल नहीं है सारी चीजों का सवाल है।
अब दुनिया में एलोपैथी विकसित हो रही है, यहां के बेवकूफ आयुर्वेदिक
की बातें करे चले जाते हैं। और उनको गवर्नमेंट सहायता दे रही है! टेक्नालॉजिकली हर जगह वे बेवकूफी की बातें करते हैं। एक दो हजार साल में मेडिकल साइंस कहां से कहां पहुंच गई, ये इधर जड़ी-बूटियों की बातें कर रहे हैं। और गवर्नमेंट दान देगी, और औषधालय बनवाओ, और यह करो, और आयुर्वेद हमारा है! हमारा-तुम्हारा सवाल नहीं है, टेक्नालॉजिकली कौन आगे है? तो हर चीज में यह देखना है कि कौन आगे है? और जब हम सारे जीवन में टेक्नालॉजी का ध्यान लेकर चलेंगे, तो मैं आपको कहता हूं कि पचास साल में हिंदुस्तान बिना किसी से सहायता लिए खड़ा हो सकता है। लेकिन माइंड का मेकअप हमें मुश्किल लाता है। माइंड का मेकअप मुश्किल लाता है। इसलिए मुझे...

प्रश्नः हाउ आर यू गोइंग टु एप्रोच पब्लिक हाउ योर कंट्रोवर्सी स्टैंड्स इन दिस पर्टीकुलर? हाउ आर यू गोइंग टु कनविंस द पब्लिक?

मैं तो जो कह रहा हूं वह मैं कहूंगा। अगर उसमें कोई सच्चाई है तो वे कनविंस हो जाएंगे। कनविंस करने की मुझे इतनी फिकर नहीं है। मैं तो यह कहता हूं कि टेक्नालॉजिकली जो मुल्क भी पीछे है, वह मुल्क गुलाम होने की तैयारी कर रहा है, वह बच नहीं सकता। इसमें कनविंस करने की दिक्कत कहां।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

बिल्कुल ही प्रेक्टिकली होने की कोशिश है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह सवाल नहीं है, यह सवाल नहीं है। लेकिन उन्हें बिना एब्यूज किए पब्लिक माइंड बदला नहीं जा सकता। क्योंकि वही उसके माइंड को पकड़े हुए है।

प्रश्नः पब्लिक के माइंड को बदलने के लिए पब्लिक को आपके पास लानी पड़ेगी न?

हां, वह तो मैं कोशिश करूंगा। उसकी कोशिश में आप सहयोगी बनिए। यानी सवाल यह है कि अगर हिंदुस्तान का माइंड गांधी की पूजा करता चला जाता है तो मैं मानता हूं कि टेक्नालॉजिकली हिंदुस्तान विकसित नहीं होगा। ये दोनों बातें जुड़ी हुई हैं, क्योंकि गांधी बिल्कुल ही टेक्नालॉजी के दुश्मन हैं। तो अब मैं अगर टेक्नालॉजी के लिए लोगों को विकसित करना चाहता हूं तो गांधी मेरे आड़े आते हैं, और कोई मेरे आड़े नहीं आता। तो गांधी से मुझे लड़ना पड़ेगा। और गांधी अच्छे आदमी हैं, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है, लेकिन अच्छे आदमी को क्या करेंगे? सवाल तो यह है कि वे जो फिलासफी खड़ी कर रहे हैं, वह मुल्क के लिए घातक है। तो मुझे तो वह उनको बात करनी पड़ेगी, क्योंकि जब मैं टेक्नालॉजी की बात करूं, तो जो भी सीधा सवाल उठता है, वह फिर गांधी के बाबत आपका क्या ख्याल है? या तो टेक्नालॉजी की बात न करूं, ग्रामोद्योग की बात करूं। और मैं मानता हूं, ग्रामोद्योग की बात करने वाला मुल्क का हत्यारा है, वह मुल्क को डुबा देगा, मार डालेगा। ग्रामोद्योग तो चल रहा है पांच हजार साल से और हम मरते जा रहे हैं, उसी में डूबते जा रहे हैं।

प्रश्नः आप बोले कि गांधी जी हत्यारा था मुल्क का। कोई आपकी भी हत्या
कर देगा।

उसमें कोई हर्जा नहीं। एक दफा मेरी हत्या हो जाए तो गांधी से मेरी टक्कर सीधी-सीधी हो जाए।

प्रश्नः तो फिर काम रुक जाएगा?

नहीं, काम नहीं रुकेगा। एक दफा मेरी हत्या हो जाए तो फिर गांधी से मेरा मुकाबला बिल्कुल सीधा ही सीधा हो जाए। फिर टेक्नालॉजी के पक्ष में भी कोई आदमी मरता है तो मुल्क में विचार शुरू हो जाएगा। उसमें कोई हर्जा नहीं है। मेरे मरने से क्या फर्क पड़ता है? लेकिन मेरे मरने से पचास लोगों के मन में ख्याल आ सकता है और बात चल सकती है। पच्चीस दूसरे लोग खड़े हो जाएंगे। टेक्नालॉजी के लिए कोई मरे भी तो? लेकिन टेक्नालॉजी के लिए कोई मरा नहीं इस मुल्क में आज तक। तो कोई हर्जा नहीं है, मर जाए। मेरे मरने से क्या फर्क पड़ता है?

प्रश्नः आपका काम रुक नहीं जाएगा?

कुछ काम नहीं रुकता। किस के मरने से काम रुकता है। क्राइस्ट मर गए तो कोई काम रुकता है क्रिश्चियनिटी का? कुछ काम-वाम नहीं रुकता। मार्क्स मर गए तो कोई कम्युनिज्म रुकता है? आदमी मर जाते हैं और जिन विचारों के लिए मरते हैं, वे विचार बलशाली हो जाते हैं। उनके मरने से वे खाद बन जाते हैं उन विचारों की। तो उसमें कोई हर्जा नहीं है, जरा भी हर्ज की बात नहीं है। एक दफा कोई मार ही डाले तो उससे बड़ा हित हो जाए, उसमें कोई नुकसान नहीं है।

प्रश्नः एक प्रश्न और पूछना है आचार्यश्री, हम तो देख रहे हैं, एक्टिविटिज होती रहें। वहां नार्मली...

बहुत कुछ किया जा सकता है। असल में मेरी जो बेसिक थीसिस है सारी बातों में। हिंदुस्तान में अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं आना चाहिए ऐसी धारणा है सदा से।

प्रश्नः आता ही नहीं।

धारणा है इसलिए नहीं आता।

प्रश्नः पॉलिटिक्स... इ.ज लास्ट...

हां, तो वह नहीं आता इसलिए, इसलिए वह लास्ट रिजार्ट है स्काउंड्रल्स का, वह अगर आता तो क्यों होता। यानी मेरा कहना यह है कि अच्छा आदमी राजनीति में नहीं आता क्योंकि यह समझाया गया हमें कि अच्छे आदमी को राजनीति में नहीं आना चाहिए, वह बदमाशों की चीज है। इस समझाने का परिणाम यह हुआ कि बदमाश ही बदमाश वहां इकट्ठे हो गए, अच्छा आदमी वहां जाता नहीं। और अगर अच्छा आदमी जाए तो आप उसको कहेंगे कि तुम भी हो गए गड़बड़। तो इसकी जरूरत है मुल्क में कि हम अच्छे आदमी को कहें कि तुम जाओ राजनीति में। तुम वहां प्रवेश करो तो हम उसे बदमाशों से बचा सकेंगे।

प्रश्नः उसके पास साधन नहीं है, शक्ति नहीं है, संपत्ति नहीं है। हाउ कैन...

ऐसा जरूरी नहीं है कि अच्छे आदमी के पास साधन नहीं है, संपत्ति नहीं है, शक्ति नहीं है। अच्छे आदमी के पास भी साधन, शक्ति-संपन्नता है, लेकिन अच्छे आदमी के पास साहस नहीं है।

प्रश्नः दे आर नॉट प्रिपेअर्ड फॉर काम्पिटीशन बेसिकली।

वह सिर्फ इसीलिए, वह इसीलिए सिर्फ कि मेंटल मेकअप हमारा जो है, मेंटल मेकअप हमारा यह है कि अभी मैं, अगर मैं कल को राजनीति में जाता हूं तो वह जो मेरी पूजा करता है, वह तो कहेगा कि गड़बड़ हो गए हैं, वह भी कहेगा कि गड़बड़ हो गए, अब तो राजनीति में चले गए हैं।
गांधी को हिंदुस्तान की हुकूमत हाथ में आ गई तो भी गांधी साहस नहीं जुटा पाए कि वे एग्जिक्यूटिव बॉडी में खड़े हो जाएं, कि वे प्रधानमंत्री बन जाएं मुल्क के। क्योंकि अगर वे प्रधानमंत्री बनते तो सदा कि लिए "महात्मा" खतम हो गए होते इस मुल्क में। वे महात्मा फिर कभी नहीं कहे जा सकते थे। अब महात्मा को बचाना है कि प्रधानमंत्री बनना है?
तो एक अच्छे आदमी थे गांधी मेरी दृष्टि में। आदमी के लिहाज से एकदम अच्छे आदमी थे। उनकी अच्छाई में कोई इंच भर कमी नहीं है। उनकी समझ में कितनी ही गलतियां हों, उनकी बुद्धि चाहे कितनी ही साधारण हो, लेकिन आदमी बहुत अदभुत थे और अच्छे आदमी थे। लेकिन वह गड़बड़ हो गई बात। अगर गांधी वहां हुकूमत में बैठते तो दो परिणाम होते। एक तो गांधी की अच्छाई का परिणाम होता और अच्छे लोग पूरे मुल्क के आकर्षित होते और राजनीति की तरफ जाते। क्योंकि जब गांधी जा सकते हैं तो भय टूट जाता, खतम हो जाती बात। दूसरा यह होता कि गांधी को एक मौका मिलता कि वे जो बातें कर रहे थे उनको प्रयोग करके दिखलाते। या तो वे प्रयोग कर लेते तो मुल्क बदल जाता और या वे असफल हो जाते तो हमारी गांधी से झंझट छूट जाती। दो में से कुछ भी फल हो जाता। तो होशियारी हो गई। गांधी वहां से बच गए जाने से। उन्होंने अपना महात्मापन बचा लिया और राजनीति में वे नहीं गए।

प्रश्नः अच्छा किया, नेहरू को सब दे दिया और वॉस इट नॉट इक्वली गुड।

जरा भी नहीं। नेहरू और गांधी में जमीन-आसमान के फर्क हैं। नेहरू और गांधी में जमीन-आसमान के फर्क हैं। नेहरू पोलिटिशियन हैं, गांधी पोलिटिशियन नहीं हैं और यही फर्क बुनियादी है। गांधी पोलिटिशयन नहीं हैं, राजनीतिज्ञ बिल्कुल नहीं हैं वे। वे एक सीधे-सच्चे आदमी हैं। उनकी सच्चाई

ज्यादा मूल्यवान है बजाय राजनीति के। नेहरू तो पोलिटिशियन हैं। तो नेहरू ने जो पॉलिटिक्स के खेल थे, वे वहां सब शुरू कर दिए। सारे खेल शुरू हुए वहां। जितने नेहरू के नीचे अच्छे आदमी थे, जिनसे नेहरू को खतरा हो सकता था, उनको धीरे-धीरे कांग्रेस के बाहर फेंकने के सब उपाय कर दिए--चाहे जयप्रकाश हों, चाहे कृपलानी हों, चाहे कोई हो। जिन लोगों से भी नेहरू को काम्पिटिशन का डर था, उनकी जड़ें काट दी गईं।
पोलिटिशियन हमेशा अपने से छोटे आदमी को पास रखना पसंद करता है, अपने बराबर के आदमी को कभी पास नहीं करता, क्योंकि उससे कल खतरा है। कल वह जगह ले सकता है, छीन सकता है। तो चाहे राजगोपालाचारी हों, चाहे जयप्रकाश हों, चाहे कोई भी हो। धीरे-धीरे एक-एक आदमी की जड़ काट कर सारे अच्छे आदमियों को, कीमती आदमियों को अलग कर दिया। और दो कौड़ी के आदमी धीरे-धीरे उनकी जगह बैठाल दिए जो कि हमेशा जी-हजूरी करें। मुल्क में बदमाशों को इकट्ठे करने का काम नेहरू के ऊपर है, इस जिम्मे से उनको बचाया नहीं जा सकता है। क्योंकि सारे अच्छे आदमियों की जड़ें काट डालीं और सारे साधारण आदमियों को नीचे ले आए, क्योंकि वे हमेशा जी-हजूरी करेंगे। राजनीतिज्ञ का माइंड यह है कि हमेशा अपने से छोटे आदमी की भीड़ को चारों तरफ घेर कर रखो। अपने मुकाबले का आदमी कभी साथ न आ जाए।
तो नेहरू और गांधी में तो जमीन-आसमान के फर्क हैं। अगर गांधी ने हिम्मत जुटाई होती तो यह कभी नहीं हो सकता था कि जयप्रकाश, कृपलानी और राजगोपालाचारी कांग्रेस के बाहर जाते। यह असंभव था, यह बिल्कुल असंभव था। हिंदुस्तान के सारे अच्छे आदमी गांधी के साथ खड़े होते, हिंदुस्तान की हुकूमत दूसरी शक्ल की हुकूमत बनती। उसमें नेहरू भी होते, उसमें जयप्रकाश भी होते। उसमें लोहिया भी होता, उसमें राजगोपालाचारी भी होते, उसमें मुल्क के सारे अच्छे लोग होते। एक शक्ल बदल जाती हिंदुस्तान की। लेकिन गांधी महात्मापन को बचा गए, हिंदुस्तान को डुबा गए। उनके सामने यह विकल्प सीधा है कि करना क्या है? क्योंकि सारा मुल्क कहता कि अरे, बस डांवाडोल हो गए! और जैसे ही गांधी ने हाथ में सत्ता नहीं ली, सारे मुल्क ने कहा, यह है सच्चा महात्मा! और पता नहीं कि सच्चा महात्मा कितना महंगा पड़ गया हमारे लिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, बराबर कोशिश की नेहरू ने, बराबर कोशिश की। गांधी और नेहरू में जो मैं फर्क कर रहा हूं, वह फर्क यही कर रहा हूं कि गांधी के व्यक्तित्व के साथ बहुत से पहलू खड़े हो सकते थे। नेहरू के व्यक्तित्व के साथ बहुत से पहलू खड़े नहीं हो सकते। यह मैं नहीं कहता हूं कि गांधी के साथ सभी खड़े हो सकते थे। एम.एन राय खड़ा नहीं हो सकता था, सुभाष खड़े नहीं हो सकते थे, लेकिन ये बहुत इक्के-दुक्के मामले थे। और गांधी इतने कुशल और समझदार आदमी थे कि सुभाष को भी खड़ा कर सकते थे, यह इतनी कठिनाई नहीं थी।
गांधी अगर सत्ता में गए होते तो हिंदुस्तान की सत्ता की पूरी शक्ल बदल गई होती। नीचे से ऊपर तक का पूरा मेकअप और ढांचा बदल गया होता। वह पोलिटिशियन का ढांचा नहीं रह गया होता, वह अच्छे आदमी का ढांचा हो गया होता। और सारे मुल्क से जिन लोगों को जाने का मौका मिलता, वे दूसरे तरह के लोग होते, टाइप बदल गया होता। लेकिन वह गांधी हिम्मत नहीं जुटा पाए और हमने नहीं जुटाने दी हिम्मत। सारे मुल्क को कंपेल करना था गांधी को कि हम आपको भेजेंगे, आपको जाना चाहिए। लेकिन सारा मुल्क खुश हुआ कि महात्मा हमारा कितना सच्चा है कि आ गई राजगद्दी हाथ में और लात मार दी। क्योंकि हम हजारों साल से यही हमारा माइंड है कि राजगद्दी को जो लात मार दे, वह बड़ा ऊंचा आदमी है--चाहे उसका फल कुछ भी हो। तो मैं कहता हूं कि मेरे लिए सारा चिंतन जो है बेसिक, वह यह है कि यह पूरे माइंड का फ्रेम हमारा बदले। अच्छा आदमी राजनीति में पहुंचाना चाहिए।
तो मेरी दृष्टि है कि गांव-गांव में नागरिक समिति होनी चाहिए, मोहल्ले-मोहल्ले। काम बढ़े तो मैं यह चाहता हूं कि एक-एक गांव में नागरिक

समिति हो, वह नागरिक समिति यह तय करेगी कि जो आदमी अपने तरफ से खड़ा हो जाएगा और कहेगा कि मैं अच्छा उम्मीदवार हूं, उसको हम वोट नहीं देंगे, उसको हम डिसक्वालिफिकेशन समझेंगे कि यह आदमी खुद अपने को कहता है कि मैं अच्छा उम्मीदवार हूं, मुझको भेजो। नागरिक समिति अच्छे लोगों से प्रार्थना करेगी कि आप खड़े हो जाएं। और आप खड़े होते हैं तो नागरिक समिति आपका समर्थन करेगी। न हम दल की फिकर करना चाहते हैं कि तुम किस दल के हो। तुम अच्छे आदमी हो, तुम चिंतनशील हो, तुम विचारशील हो, हम तुम्हें भेजना चाहते हैं। अगर पंद्रह-बीस वर्ष मुल्क के कोने-कोने में नागरिक समितियां हों, वे आदमियों को एप्रोच करें और कहें कि इस आदमी को हम खड़ा करना चाहते हैं और इसको नागरिक समिति पूरा समर्थन देगी। और कोई दल का हम विचार नहीं करते, किसी दल का हो--कम्युनिस्ट हो, कांग्रेसी हो, सोशलिस्ट हो। आदमी अच्छा है, यह नगर अनुभव करता है, हम इसको भेजेंगे। तो अच्छे आदमियों को बीस साल तक मुल्क से भेजने की हमें चेष्टा करनी चाहिए और एक फिक्र करनी चाहिए कि अच्छा आदमी धीरे-धीरे बुरे आदमी को रिप्लेस कर दे।
अभी यह हो रहा है कि अच्छे आदमी को बुरा आदमी रिप्लेस कर रहा है। और बुरा आदमी एक दफे अच्छे आदमी को जब हटाता है तो उसका परिणाम यह होता है कि पांच साल बाद उससे भी बुरा आदमी उसको हटा सकेगा, उससे और बुरा आदमी हटा सकेगा। तो हर पांच साल में हिंदुस्तान और गुंडों के हाथ में चला जाएगा, क्योंकि जो वहां बैठा है, उसको अब इससे बड़ा गुंडा ही हटा सकता है, इससे छोटा गुंडा नहीं हटा सकता। तो हर पांच साल में हिंदुस्तान गुंडों के हाथ में उतरता चला जाएगा। आने वाले तीस साल में हिंदुस्तान पूरा गुंडाइज्म का मुल्क होगा, जहां अच्छे आदमी को जाने तो का सवाल नहीं है, जीना मुश्किल हो जाएगा।
तो वह तो हमें सचेत होना पड़ेगा और कुछ करना पड़ेगा उस दिशा में कि हम नागरिक समितियां खड़ी करें, अच्छे आदमी को प्रोत्साहन दें, अच्छे आदमी को हिम्मत दें, बल दें। और इस बात की हवा पैदा करें कि यह अच्छे आदमी का कर्तव्य है कि वह राजनीति में जाए। यह ड्यूटी का हिस्सा है उसका।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आदमी की उम्र बड़ी कीमती नहीं है बहुत, लेकिन आदमी अगर पचास साल भी हिम्मत से सत्य के लिए कुछ करे तो अपनी जिंदगी में ही परिणाम देख सकता है, इसमें कठिनाई नहीं है।

देख कबीरा रोया
सोलहवां प्रवचन

विध्वंसः सृजन का प्रारंभ

एक सवाल नहीं है। पहली बात तो यह कि मैं निपट एक व्यक्ति की भांति जो मुझे ठीक लगता है वह कहता हूं। न तो मेरी कोई संस्था है, न कोई संगठन। हां, कोई संगठन बना कर मेरी बात उसे ठीक लगती है और लोगों तक पहुंचाए, तो वैसे संगठन जीवन जागृति केंद्र है। वह उनका संगठन है, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है और वे लोगों तक पहुंचाना चाहते हैं। लेकिन मैं उस संगठन का हिस्सा नहीं हूं और उस संगठन का मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है, इसलिए वह संगठन रोज मुश्किल में है। क्योंकि कल मैंने कुछ कहा था, वह संगठन के लोगों को ठीक लगता है, आज कुछ कहता हूं, नहीं ठीक लगता है, वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। मेरे ऊपर उनकी कोई शर्त नहीं है, उनसे मैं बंधा हुआ नहीं हूं, इसलिए जितनी प्रवृत्तियां चलती हैं, जिन्हें मेरी बात ठीक लगती है, उनके द्वारा चलती हैं।
मेरे द्वारा तो सिर्फ एक ही प्रवृत्ति चलती है कि जो मुझे ठीक लगता है
वह मैं कहता रहता हूं। उससे ज्यादा मेरी कोई प्रवृत्ति नहीं है। और जो मुझे ठीक लगता है, इसलिए निरंतर निवेदन करता रहता हूं कि जो मुझे ठीक लगता है, वह आपको भी ठीक लगे, यह जरूरी नहीं है। बहुत ज्यादा संभावना तो यही है कि वह न लगे। क्योंकि दो व्यक्तियों को एक सी बात ठीक लगे, यह जरा असंभावना है। असल में दो व्यक्ति इतने भिन्न-भिन्न हैं कि एक ही बात पर राजी अगर होते हैं, तो सिर्फ अज्ञान के कारण राजी होते हैं। ज्ञान के कारण दो व्यक्ति राजी नहीं होते। तो पूछा जा सकता है कि फिर मैं क्यों कहता हूं, अगर दूसरे को मुझे राजी नहीं करना, प्रभावित नहीं करना, दूसरे को अपने साथ बांधना नहीं, संगठन नहीं, अनुयायी नहीं, शिष्य नहीं, तो फिर मैं क्यों कहता हूं?
असल में आज तक निरंतर तभी कोई बोला है, जब उसे संगठन बनाना हो। तभी कोई बोला है, जब उसे किसी को प्रभावित ही करना हो। तभी कोई बोला है, जब उसे पंथ और संप्रदाय ही बांधना हो। इसलिए यह सवाल उठता है। इसलिए बोलना सहज बात नहीं रह गई। मैं बोलने को अत्यंत सहज बात मानता हूं। मुझे जो ठीक लगता है, उसे कहने में मुझे आनंद आता है, इसलिए कहता हूं। आपको प्रभावित करने के लिए नहीं। एक फूल खिलता है और उस फूल से सुगंध गिरती है, यह रास्ते पर चलने वाले लोगों को प्रभावित करने के लिए नहीं है। फूल को आनंद है, वह खिला है, उसकी सुगंध गिरती है।
मैं जब आपसे बोल रहा हूं तो मैं आपको प्रभावित करने के लिए नहीं, जो मुझे आनंदपूर्ण लगता है बोलना, वह बोल रहा हूं। और मेरी अपनी समझ यह है कि जो आपको प्रभावित करने के लिए बोल रहा है, वह आपका दुश्मन है, क्योंकि किसी भी तरह की प्रभावित करने की चेष्टा, बहुत गहरे में, दूसरे व्यक्ति को गुलाम बनाने की चेष्टा है।
सब प्रभाव बहुत आध्यात्मिक गुलामी हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है
कि लोग प्रभावित करने के डर की वजह से बोलेंगे नहीं, कहेंगे नहीं।
एक चित्रकार एक पेंटिंग बना रहा है, हो सकता है वह सिर्फ प्रभावित करने के लिए बना रहा हो। यह भी हो सकता है कि दूसरों से कोई प्रयोजन ही न हो, बनाना उसका आनंद हो। और वह जब दूसरों को दिखा रहा है तब भी सिर्फ अपने आनंद की अभिव्यक्ति की भांति। शब्द भी चित्र की भांति या रंगों की भांति अभिव्यक्ति हैं। आपको प्रभावित करने को नहीं, मुझे व्यक्त करने को। और इसलिए निरंतर आपसे निवेदन करता रहता हूं कि भूल कर भी मुझसे प्रभावित मत होना।
लेकिन ध्यान रहे, प्रभावित होने के दो ढंग हैं। मेरे पक्ष में प्रभावित होना भी प्रभावित होना है, मेरे विपक्ष में प्रभावित होना भी प्रभावित होना है। इसलिए इस ख्याल में मत रहना कि जो मेरे पक्ष में हैं, वे मुझसे प्रभावित हो गए हैं और जो विपक्ष में हैं वे प्रभावित नहीं हो गए हैं। वे विपक्ष में हैं, वे भी मुझसे प्रभावित हैं। प्रभाव से बचना हो तो

पक्ष-विपक्ष से बचना पड़ता है, नहीं तो प्रभाव पड़ ही जाता है। जो आदमी वेश्या के घर की तरफ जा रहा है, वह भी प्रभावित है, जो वेश्या के घर से बच कर दूसरे रास्ते से गुजर रहा है, वह भी प्रभावित है। असल में प्रभाव के दो ढंग हैं। अक्सर हमें लगता है कि पक्ष वाला प्रभावित है, विपक्ष वाला प्रभावित नहीं है। विपक्ष वाला भी उतना ही प्रभावित है।
मार्क्स मरा तो उसकी कब्र पर बहुत लोग नहीं थे। जो उसे विदा करने गए थे, दस-बीस मित्र थे। फेडिक एंजिल्स ने उसकी कब्र पर जो दो बातें कहीं हैं, उनमें एक बात बड़ी कीमती थी। बीस-पच्चीस आदमी, जिसको विदा करने आए हों, उसकी कब्र पर बोलते हुए एंजिल्स ने कहा कि मार्क्स दुनिया का बहुत बड़ा आदमी है। तो एक आदमी ने पूछा कि जिसको विदा करने बीस-पच्चीस लोग आए, उसको आप बहुत बड़ा आदमी कहते हैं? तो एंजिल्स ने कहा कि मैं इसलिए बहुत बड़ा आदमी कर रहा हूं कि मार्क्स की कोई बात सुने तो प्रभावित हुए बिना नहीं बच सकता। उस आदमी ने कहा, बहुत से लोग मार्क्स के दुश्मन हैं। एंजिल्स ने कहा, मैं यही कह रहा हूं, या तो पक्ष या विपक्ष। मार्क्स के संबंध में कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। यही प्रभाव है।
लेकिन मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं कि सब बड़े आदमियों
ने दुनिया को नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि दूसरों को छोटा बनाए बिना बड़ा होना असंभव है। दूसरे को छोटा बनाना ही पड़ेगा बड़े होने के लिए। मैं कोई बड़ा आदमी नहीं हूं और मैं मानता हूं कि बड़े आदमी होने की जो आकांक्षा है वही दूसरे को प्रभावित करने का रूप लेती है, और बड़े आदमी की जो आकांक्षा है वह बहुत गहरे में किसी इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स से, किसी हीनता की ग्रंथि से पैदा होती है। इसलिए सब बड़े आदमी, बहुत भीतर, हीन-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। वे दूसरे को प्रभावित करके, अंततः अपने को प्रभावित करना चाहते हैं कि मैं बड़ा आदमी हूं। इतने लोग मुझसे प्रभावित हैं, तो मैं बड़ा आदमी होना ही चाहिए। यह बहुत वाया मीडिया, दूसरों के, वे अपने को विश्वास दिलाना चाहते हैं।
मैं जो हूं, उसमें राजी हूं। आपको प्रभावित करके मैं अपने को कोई विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि मैं कौन हूं। मैं जो हूं, उससे मैं राजी हूं और छोटे और बड़े दोनों की परिभाषा के बाहर खड़ा हूं, क्योंकि छोटे और बड़े की परिभाषा दूसरों से तुलना करने से पैदा होती है, कंपेरिजन करने से पैदा होती है। और मेरी ऐसी समझ है कि एक-एक आदमी इतना अपने जैसा है कि कंपेरिजन असंभव है, तुलना हो नहीं सकती। आप मुझसे बड़े हैं या छोटे, यह सवाल असंगत है, इसलिए क्योंकि मैं मैं हूं, आप आप हैं, इसमें कोई तुलना का उपाय नहीं है। मैं मानता हूं, एक-एक मनुष्य अतुलनीय है, इनकंप्रेबल है। इसलिए छोटे- बड़े की सब बातें मुझे बकवास मालूम पड़ती हैं। इसलिए प्रभावित करने का तो कोई सवाल नहीं है। कोई सवाल नहीं है। लेकिन अपनी बात कहना जरूर चाहता हूं और अपनी बात में आपको सुनने के लिए साझीदार भी बनाना चाहता हूं। जो मुझे दिखाई पड़ता है, वह आपसे निवेदन कर देना चाहता हूं। वह निवेदन है, वह आग्रह नहीं है। मानने न मानने की आपके लिए छूट है।
मेरा तो निवेदन यही है कि न आप मानने की फिक्र करना, न न मानने की। आप सुन लेना। वह आपको एक विचार की प्रक्रिया में ले जा सके, तो काफी है। वह विचार की प्रक्रिया अंततः मेरी नहीं रह जाएगी, आपकी ही हो जाएगी। लेकिन मेरे मित्र हैं, मेरे शत्रु हैं। मेरी तरफ से कोई मेरा मित्र नहीं है, मेरी तरफ से मेरा कोई शत्रु नहीं है। उनकी ही तरफ से वे हैं। क्योंकि मैं कोई कारण नहीं देखता, मित्रता और शत्रुता की जो पोलेरिटी है उसको बनाने का-- कोई कारण नहीं देखता। हम सब साझीदार हैं, एक जगत में। लेकिन मेरे मित्र कुछ करेंगे, मेरे शत्रु भी कुछ करेंगे।
नानू भाई ने बड़ा अच्छा सवाल पूछा। उन्होंने एक किताब छापी है "आचार्य रजनीश काय मार्गे" उसमें भी मेरी फोटो छापी है और मैं समझता हूं कि मेरे मित्रों ने जितनी अच्छी फोटो छापी है, उन सबसे अच्छी छापी है। हालांकि किताब मेरी आलोचना है। मुझसे तो पूछा नहीं था फोटो छापते वक्त। मेरे मित्रों ने भी नहीं पूछा। उनको प्रीतिकर लगता है कि वे मेरी शक्ल भी लोगों तक पहुंचा दें, वे पहुंचा देते हैं।

अब रह गई बात यह कि मैं रोकता क्यों नहीं, पाजिटिवली? मैं कह सकता हूं
कि मत छापो फोटो। मैं कह सकता हूं, मत छुओ मेरे पैर। कभी मैंने किसी से कहा नहीं कि मेरे पैर छुओ। निश्चित ही मुझे दूसरी बात नानू भाई ने ठीक पूछी है कि आप पाजिटिवली कहते क्यों नहीं कि मत छुओ मेरे पैर। लेकिन मेरी समझ है कि जो आदमी कहता है, छुओ मेरे पैर, वह भी अहंकारी है, जो कहता है, मत छुओ मेरे पैर, वह भी अहंकारी है। असल में मैं कौन हूं जो आपको आज्ञा दूं कि आप क्या करो--छुओ कि न छुओ--मैं कौन हूं? मैं आपसे नहीं जाऊंगा कहने कि मेरे पैर छुओ। अगर कहने आऊं तो मैं खतरनाक आदमी हूं। लेकिन दूसरे छोर पर भी खतरा है।
पंडित नेहरू इलाहबाद की एक सड़क से गुजर रहे थे। वे बड़े सख्त थे। मत छुओ मेरे पैर। मैं पैर न छुआऊंगा। एक अस्सी साल की बूढ़ी औरत ने पैर छुए, तो उन्होंने लात मार दी। वह औरत गिर पड़ी। मैं समझता हूं, यह दूसरी छोर पर अन्याय शुरू हो गया। मुझे कोई हक नहीं है कि कोई को मैं कहूं कि मेरे पैर छुओ। यह हक मुझे कहां है कि मत छुओ। मैं दूसरे की स्वतंत्रता में इतनी भी बाधा नहीं डालना चाहता हूं। यह उसकी मौज है।
और अभी एक गांव में ऐसा हुआ, वह नानू भाई को जानना अच्छा होगा कि एक आदमी ने मेरे पैर न छुए, मेरा सिर छुआ। दो आदमी पास खड़े थे, उन्होंने कहा, यह क्या करते हो? मैंने कहा, उसे करने दो, उसको सिर छूने की मौज आई है, उसे छोड़ो। और इतना मैं आपसे निवेदन करता हूं कि किसी को अपना पैर भी मेरे सिर से छुलाने की मौज आए, तो मैं मना न करूंगा। अगर मना करूं तो फिर आप मुझसे पूछ लेना कि यह बात क्या है? पैर छूते वक्त तो मना नहीं किया, और आपके सिर को पैर छुआ रहे हैं और आप मना कर रहे हैं। नहीं करूंगा।
नहीं, मेरी समझ यह है कि सब तरह के पाजिटिव असर्शन, सभी तरह के विधायक वक्तव्य, श्रद्धा पैदा करवाते हैं और आपको जान कर यह मजा होगा कि दुनिया में उन लोगों के पैर सर्वाधिक छुए गए हैं, जिन्होंने कहा, मत छुओ, मत छुओ, मत छुओ। लोगों ने कहा, अदभुत आदमी है, इसके तो छूने ही पड़ेंगे।
बुद्ध कहते हैं, मत छुओ मेरे पैर। लेकिन "बुद्धं शरणं गच्छामि" जितना बुद्ध के सामने कहा गया किसी के सामने नहीं कहा गया। बुद्ध कहते हैं, मत बनाओ मेरी प्रतिमाएं। जितनी प्रतिमाएं बुद्ध की हैं उतनी किसी आदमी की नहीं हैं। आश्चर्यजनक है, आदमी का मन बहुत आश्चर्यजनक है। निषेध ही निमंत्रण है।
यहां दरवाजे पर लिख दें कि यहां झांकना मना है, फिर सूरत में इतना हिम्मतवर आदमी बहुत मुश्किल से होगा, जो बिना झांके निकल जाए। होगा? नहीं होगा, और अगर कोई सज्जन किसी तरह संयम साध कर निकल गए, तो फिर कोई बहाना खोज कर इस गली में उनको लौटना पड़ेगा और अगर दिन में हिम्मत करके न लौट पाएं, तो रात सपने में जरूर लौटेंगे। वहां है क्या? मेरे पैर में कुछ भी नहीं है। इतना भी नहीं है कि मैं आपसे कहूं कि मत छुओ, इतना भी नहीं है कि मैं निषेध करूं। निषेध ही निमंत्रण है।
इसलिए मैं आपको कोई आज्ञा नहीं देना चाहता। आज्ञा में ही गुरु बनना शुरू हो जाता है। आज्ञा पूरी होती है, यह सवाल नहीं है। पैर छूने की है कि नहीं छूने की है, यह सवाल नहीं है--आज्ञा। जो आपसे पाजिटिवली कहती है, यह करो, यह मत करो, वह गुरु बनना शुरू हो जाता है। मैं किसी का गुरु नहीं हूं। ठीक उन्होंने पूछा है कि आप शिष्य जाने बनाते हो या अनजाने। नहीं, न जान कर बनाता, न अनजाने, लेकिन कोई बन जाए तो मेरे पास कोई उपाय नहीं है उसे रोकने का। मुझे पता भी नहीं चलता। पता चलता है, तब तो मैं लड़ता हूं। कोई मुझसे आकर कहता है कि मैं आपका शिष्य हूं, तब तो मैं लड़ता हूं, लेकिन कोई आए ही न, मुझे पता ही न चले, तब बड़ी कठिनाई हो जाती है। और जब मुझसे कोई कहने भी आता है कि मैं आपका शिष्य हूं, तब भी मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरे शिष्य नहीं हो, क्योंकि यह हक मुझे नहीं है। इतना ही मैं कहता हूं कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, क्योंकि दूसरे को, मैं कैसे किसी को रोक सकता हूं? इतना ही मैं कह सकता हूं कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं। न जाने, न अनजाने, मैंने किसी का गुरु होने का भार नहीं लिया है। क्योंकि मैं मानता हूं, सभी गुरु पंगु करने वाले सिद्ध होते गए हैं।

असल में गुरु बनने का मतलब यह है कि तुम्हारा बोझ में लेता हूं।

मैं किसी का बोझ नहीं लेता। अपना ही बोझ जिंदगी में काफी है। किसी दूसरे का बोझ लेने का सवाल नहीं है। और अगर मुझे कोई बात ठीक लगती है तो आपसे कह देता हूं, लेकिन इससे मेरा आप पर कोई लेन-देन का संबंध नहीं बनता है। बल्कि में अनुगृहीत हूं कि आपने सुन लिया। आपकी तरफ से अनुग्रह नहीं मानता, क्योंकि लेन-देन के बड़े सूक्ष्म नियम हैं। कहीं पैसे लिए जाते हैं, कहीं श्रद्धा ली जाती है, कहीं अनुग्रह लिया जाता है, लेकिन सब बड़े सूक्ष्म नियम हैं।

आपसे मैं कुछ नहीं लेता, धन्यवाद देता हूं आपको कि आपने मेरी बात सुन ली, यह भी क्या कम है? किसके पास समय है? किसके पास सुविधा है? बात खतम हो गई है। इसके आगे मुझे प्रयोजन नहीं है। लौट कर हिसाब नहीं रखूंगा कि आपने माना कि नहीं माना।

लेकिन यह जो हमारा देश है, यह हजारों साल से गुरुओं के नीचे जी रहा है। यह बिना संबंध बनाए नहीं रहता। यह संबंध बनाने की चेष्टा करता है। आदेश मानता है, चाहे विपरीत आदेश ही क्यों न हो। आदेश मानता है। यह कहता है, कुछ हमें आदेश दे दो, जो हम मान कर चलें। मैं कोई आदेश नहीं देता। मेरा जो भी है, वह निवेदन है। और जैसा नानू भाई ने कहा कि अब धीरे-धीरे व्यवस्थित हो रहा है, ढांचा बन रहा है। मेरी तरफ से नहीं है, बल्कि जो बना रहे हैं, वे मेरी तरफ से रोज मुश्किल में हैं। असल में मेरे आस-पास ढांचा बनाना मुश्किल ही है, क्योंकि मैं कोई ढांचे का आदमी नहीं हूं।

नारगोल में जमीन मिलती थी, मेरे मित्रों ने सब विधान बनाया था। कैबिनेट तक बात हो गई थी। मंत्री राजी थे, वह छह सौ एकड़ जमीन देने को। वह दो-चार दिन में सब तय हो जाने वाला था। गांधी जी के संबंध में एक वक्तव्य मैंने दिया। मित्रों ने आकर कहा कि इस वक्तव्य को अभी बाहर प्रकट न किया जाए। पहले वह जमीन मिल जाए, फिर हम वक्तव्य प्रकट करेंगे। मैंने कहा कि जमीन के लिए अगर वक्तव्य रुकेगा, तब तो अंततः मैं ही रुक जाऊंगा।

जमीन जाने दें। मित्र बहुत दुखी हुए, मुझे छोड़ कर ही चले गए, दुश्मन ही हो गए। क्योंकि मित्र जब दुखी होते हैं, तो दुश्मन से कम पर नहीं रुकते हैं। इसलिए मित्र बनाना खतरनाक है। इसलिए मैंने कहा, न मैं मित्र बनाता, क्योंकि मित्र बनाने का मतलब है, एक पोटेंशियल शत्रु बनाना, आज नहीं कल, बिल्कुल बन सकता है। मित्र के सिवाय शत्रु कोई नहीं बनता, सो मित्र भी नहीं बनाता। निपट अकेला आदमी हूं, ऐसा घूमता रहता हूं। अब आपको अच्छी लगती है मेरी बात, आप चार मित्र मिल कर कुछ करते हैं, मैं आपको रोक नहीं सकता, न रोकता हूं, लेकिन आप मुझे नहीं बांध सकेंगे किसी ढांचे में, किसी व्यवस्था में। आपका ढांचा जब तक बनेगा...

अभी कार में आ रहा था तो एक बहन ने कहा कि अगर मैं छह महीने तुम्हारे पास रह जाऊं तो डुप्लीकेट बन जाऊं तुम्हारी सारी बातों की। मैंने कहा, वह तो हो जाएगा, लेकिन तब तक ओरिजिनल बदल जाएगा। तुम तो पक्की बन जाओगी, लेकिन मैं थोड़े ही रुका रहूंगा। मेरी कोई निष्ठा नहीं है, मेरी कोई श्रद्धा नहीं है। इसलिए मेरे साथ ढांचा बनाना मुश्किल है, क्योंकि ढांचा बनता है श्रद्धा पर, निष्ठा पर और ढांचा बनता है उन लोगों के साथ, जिनमें एक तरह की कंसिस्टेंसी होगी, जो-जो आज कहते हैं, कल भी कहेंगे, परसों भी कहेंगे, तब आप ढांचा बना सकते हैं। लेकिन अगर आप ढांचा बनाएं, कल मैं कुछ कहूं, परसों कुछ कहूं, तो ढांचा बन न पाए और मैं कुछ गड़बड़ कर दूं।

मेरे जैसे लोगों के पास ढांचा कभी नहीं बना। इसलिए ढांचा तभी बनता है जब मैं मरने की तैयारी करूं कि आज मैं फाइनली मर जाता हूं। अब मैं कल से वही कहूंगा, जो मैंने आज कहा। अब मेरे कल, आज की पुनरुक्ति होंगे, अब मेरा कोई कल नया नहीं होगा। अब हर आने वाला कल मेरी आज का ही रिपीटीशन होगा, तब ढांचा बनता है। मेरे जैसे आदमी के पास ढांचा बनता नहीं।

अभी कुछ मित्र उत्सुक हैं, थोड़े दिन में थक जाएंगे। समझ जाएंगे कि आदमी गड़बड़ है, इसके आस-पास ढांचे नहीं बनते। मगर वक्त लगेगा। वक्त लगेगा, दो-चार, दस मित्र फ्रस्ट्रेट होकर चले जाते हैं, दूसरे दस-पांच आ जाते हैं। वे अपना शुरू कर देते हैं, फिर वे चले जाते हैं। अभी इधर तीन साल में भी अगर

मेरे मित्रों के नाम का आप पता लगाएंगे, तो आपको पता चल जाएगा कि जो मित्र छह महीने पहले था, छह महीने बाद मुझे नहीं मिलता। उसमें उसका कसूर नहीं है, कसूर है तो मेरा है। क्योंकि वह चाहता था कंसिस्टेंसी। वह चाहता था कि जो आपने कहा था, उसको अब इधर-उधर मत करना और मैं कहता हूं जिंदगी बहुत इनकंसिस्टेंट है।
सिर्फ मौत कंसिस्टेंट है। जिंदगी का भरोसा नहीं कि हम सुबह सूरज से कहें कि तुम कल जैसे निकले थे, वही रूप-रंग में निकलो, क्योंकि कल मैंने तुम्हें कहा था, भगवान, हम तुम्हारी पूजा करेंगे और आज तुम बदल गए और कल बदलियां और रंग थीं, आज और रंग हो गईं। सूरज कहेगा, तुम पूजा मत करो, लेकिन कोई और उपाय नहीं है।
यह जो नानू भाई ने सवाल उठाया है, ये सभी सवाल उचित हैं। मुल्क में बहुत मित्रों के मन में उठते हैं। लेकिन गहरे अर्थों में असंगत हैं। मुझसे उनका कोई वास्ता नहीं है, मुझसे कोई भी संबंध नहीं है। मैं निपट अकेला आदमी हूं, जो घूमता-फिरता, जो उसे ठीक लगता है, कहता रहता है। किसी को ठीक लगता है, मान लेता है। नहीं ठीक लगता है, नहीं मानता है। कोई मित्र बनता है, कोई शत्रु बनता है। वह सब आपकी तरफ से है वह काम मेरा नहीं है। उसके लिए मुझे कभी भी जिम्मेवार न ठहरा सकेंगे। उसकी मेरी कोई रिस्पांसिबिलिटी नहीं है। मेरा काम उतना ही था कि मैंने कह दिया और कल अगर लौट कर भी आपने कहा कि आपने कल यह कहा था कि मैं कहूंगा, कल का वह आदमी मर चुका, मैं दूसरा आदमी हूं, वह आदमी हूं नहीं। तो इसलिए इन प्रश्नों की कोई संगति मुझसे नहीं है। फिर और कोई सवाल हो तो उठा लें, उनकी बात करें।
पहली बात तो यह कि मेरे लिए कोई मामूली, सामान्य आदमी नहीं है। जिसको सामान्य आदमी कहते हैं, मेरे लिए कोई भी नहीं है। और जिसको असामान्य आदमी कहते हैं, वह भी मेरे लिए कोई नहीं है। मैंने कहा कि तुलना में बड़ी हिंसा है। इस मुल्क में जगह-जगह घूमता हूं मैं, सामान्य आदमी की बहुत तलाश की, मिला नहीं। जो भी मिला उसने कहा कि ये सामान्य आदमी जो हैं, ये न समझ सकेंगे। एक भी आदमी ने न कहा कि मैं सामान्य आदमी हूं, मैं नहीं समझ सकूंगा। प्रत्येक आदमी अपने तईं विशेष है और प्रत्येक आदमी की विशेषता उससे हिंसा करवाती है कि दूसरे सामान्य हैं। कोई सामान्य नहीं है। सामान्य आदमी पैदा ही नहीं होता।
एक अरबी कहावत मैंने सुनी है कि भगवान जब आदमी को बना कर भेजता है, तो जिस आदमी को भी बनाता है, उसके कान में कह देता है कि तुमसे बढ़िया आदमी मैंने कभी बनाया नहीं। सभी से कह देता है, तो हर एक यह ख्याल लेकर आता है कि मैं विशेष और दूसरे सामान्य। कोई सामान्य नहीं है, कोई विशेष नहीं है। या तो सभी सामान्य हैं या सभी विशेष हैं। और कोई सोचता हो कि मैं ऐसा वर्गीकरण करूं, ऐसी क्लास बनाऊं कि विशेष लोगों के लिए कुछ और करूं और सामान्य लोगों के लिए कुछ और करूं, यह मेरे वश के बाहर है। मेरे लिए ऐसा कोई वर्ग नहीं है और मेरे पास कहने को दो बातें भी नहीं हैं। जो है वही है, मैं वही कह सकता हूं। अगर आप भी चले जाएं और दीवाल के सामने भी मुझे कहना पड़े, तो भी मैं वही कह सकता हूं जो आपसे कह रहा था, और कोई उपाय नहीं है। दूसरी बात, आपने कही कि यहां कोई मंडन मिश्र या शंकर नहीं बैठे हुए हैं। अच्छा ही है कि नहीं बैठे हुए हैं, क्योंकि मंडन मिश्र अब दुबारा होंगे तो कार्बन कापी ही हो सकते हैं। हर आदमी एक ही बार होता है। मंडन मिश्र भी एक ही बार होते हैं और आप भी एक ही बार होते हैं। यूनीकनेस इतनी गहरी है कि एक आदमी दुबारा पुनरुक्त नहीं होता है। इसीलिए एक-एक व्यक्ति की महिमा अनंत है। वह जैसा है, तो वह वैसा ही है। अगर बुद्ध अपने जैसे हैं तो जिसे हम सामान्य कहते हैं वह भी बिल्कुल अपने जैसा है। कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकते हैं? अगर वह बुद्ध का मुकाबला नहीं कर सकता है, तो कौन बुद्ध उसका मुकाबला कर सकते हैं?
लेकिन मनुष्य की चिंतना चूंकि अहंकार केंद्रित रही सदा। उसने वर्गीकरण किए, विभाजन किए, शूद्र बनाए, ब्राह्मण बनाए, महान पुरुष बनाए, सामान्यजन बनाए, ज्ञानी बनाए, अज्ञानी बनाए। इस जगत में वर्ग नहीं हैं, व्यक्ति हैं और एक व्यक्ति बिल्कुल अकेला है, दूसरा भी नहीं है कि उसका

वर्ग बनाया जा सके। वर्ग बनने के लिए कम से कम दो चाहिए। तो मैं कोई मंडन मिश्र की ज्यादा इज्जत नहीं करता आपसे और न मंडन मिश्र से कम इज्जत करता हूं आपकी। मंडन मिश्र मंडन मिश्र हैं, आप आप हैं। दोनों अपनी जगह अदभुत हैं, इसलिए मुझे जो निवेदन करना है, वह मंडन मिश्र होते तो भी यही करता और आप हैं तो भी यही करूंगा। कोई उपाय नहीं है इसमें।
एक फूल खिला है, जैसा मैंने कहा, और रास्ते से मंडन मिश्र निकलें, तो
वह फूल कोई दूसरी सुगंध नहीं फेंकता और गांव का चमार निकला तो कहता कि अभी चमार निकल रहा सामान्य आदमी, जरा फूल की सुगंध सिकोड़ लूं। नहीं, फूल अपनी सुगंध फेंकता रहता है। हां, ऐसे फूल हो सकते हैं, प्लास्टिक के बनाए हुए और यांत्रिक कि जो आदमी देख कर सुगंध दें। पर तब प्रभावित करना लक्ष्य होगा। तो उन्होंने कहा कि सामान्य आदमी से और करिए आप, क्योंकि सामान्य आदमी को प्रभावित न कर सकेंगे। मैं प्रभावित करना नहीं चाहता, इसलिए उस भाषा में मत पूछें।
और आप कहते हैं, तत्व-दर्शन की भाषा मत बोलिए। बड़ी मुश्किल बात है। एक संगीतज्ञ से कहिए कि संगीत की भाषा में नहीं, जरा किसी और भाषा में संगीत सुनाइए और एक चित्रकार से कहिए कि रंगों की भाषा में नहीं, जरा किसी और भाषा में चित्र बनाइए, तब हम समझ सकेंगे, एब्सर्ड है।
मैं जो हूं, वही निवेदन कर सकता हूं, संगीतज्ञ हूं तो वीणा बजाऊंगा, चित्रकार हूं तो रंग पोतूंगा। जो मैं कर सकता हूं, वही कर सकता हूं और मेरे भीतर कोई, कई तरह के आदमी नहीं हैं। मल्टी-साइकिक नहीं हूं, बहुत तरह के आदमी नहीं, एक ही तरह का आदमी हूं भीतर। इसलिए बहुत तरह के चेहरे बनाना भी बहुत मुश्किल है मेरे लिए। एक ही चेहरा है मेरे पास। सामान्य आदमी के सामने खड़ा होता हूं, तब भी वही, और जिसको आप असामान्य कहते हैं, उसके सामने खड़ा होता हूं, तब भी वही।
एक फकीर हिंदुस्तान से कोई चौदह सौ वर्ष पहले चीन गया, बोधिधर्म। जब
वह चीन पहुंचा तो वहां के लोग बहुत परेशान हुए, क्योंकि वह दीवाल की तरफ मुंह करके बैठता था और लोगों की तरफ पीठ कर लेता। जब चीन का सम्राट मिलने आया तो फकीरों ने--दूसरे फकीरों ने कहा कि आज जरा कृपा करें, यह आदत छोड़ें। सम्राट मिलने आ रहा, वह तो बहुत नाराज हो जाएगा, आप उसकी तरह पीठ करके बैठेंगे। आज दीवाल की तरफ मुंह न चलेगा, सामान्य आदमियों के साथ चल गया, वह बात दूसरी है, सम्राट आ रहा है।
तो बोधिधर्म हंसने लगा। उसने कहा, अगर मेरे लिए सामान्य आदमी और सम्राट होता, तब तो तुम जो कहते हो, वह ठीक कहते हो। मेरे लिए तो कोई भी आए, मैं दीवाल की तरफ ही मुंह रखूंगा। समझाया कि ऐसा क्यों पागलपन पकड़ लिया दीवाल की तरफ मुंह रखने का? तो उसने कहा, दीवाल की तरह मुंह रखने का कुल कारण इतना ही है कि लोगों की तरफ मैंने बहुत बार मुंह करके देखा, वहां भी दीवाल पाई, तो मैंने सोचा कि नाहक क्यों परेशानी करनी है, तो दीवाल की तरफ मुंह कर लिया।
नहीं, मेरे लिए फर्क नहीं है। और उन्होंने कहा कि बुद्ध भी आए, महावीर
भी आए और विनोबा भी आए। मुझे ज्यादा पता नहीं है, लेकिन मैं मानता हूं कि विनोबा आग्रही थे, प्रचारक थे, प्रोपेगेंडिस्ट थे और अगर आज नहीं हैं तो फस्ट्रेशन के कारण और कहीं बियांड नहीं चले गए। आग्रह था उनका कि ऐसी शक्ल दे देंगे, समाज को ऐसा बना देंगे। सत्याग्रह कहीं होगा आग्रह? आग्रह था। मार्क्स आग्रही हैं, गांधी आग्रही हैं, विनोबा आग्रही हैं। वे एक शक्ल देना चाहते हैं, वे व्यक्ति को एक ढांचा देना चाहते हैं कि ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, एक नैतिकता देना चाहते हैं, एक धर्म देना चाहते हैं, एक आदर्श देना चाहते हैं।
मैं आग्रही नहीं हूं। मैं कोई ढांचा आपको देना नहीं चाहता। मैं नहीं कहता कि ऐसा आदमी अच्छा आदमी होगा और मैं नहीं कहता कि ऐसा आदमी होना चाहिए, क्योंकि मैं मानता हूं कि दो आदमी एक जैसे हो नहीं सकते। इसलिए ढांचे की बात करने वाले लोग गलती ही कर रहे हैं। आदमी मशीन नहीं है। मैं तो अच्छे आदमी का भी ढांचा नहीं देना चाहता, क्योंकि जब मैं देखता हूं तो मुझे लगता है कि अकेला राम रह जाए, तो दुनिया बहुत बेरौनक हो जाएगी, रावण

के बिना बहुत बुरी हो जाएगी। मुझे तो लगता है कि रावण उतना ही जरूरी है जितना राम है, और मुझे लगता है कि रामलीला कोई करके देखे रावण के बिना, तो पता चलेगा कि सब गड़बड़ हो गया, रामलीला होती नहीं, आगे नहीं बढ़ती। रामलीला में रावण जरूरी हिस्सा है।
जिसको हम बुरा कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। जिसको हम हिंसक कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति हैं। जिसको हम पापी कहते हैं, मेरे मन में उसकी भी स्वीकृति है। असल में मेरे मन में किसी की अस्वीकृति नहीं है, क्योंकि अस्वीकृति हुई कि प्रभावित करने की चेष्टा शुरू हुई। जैसे ही मुझे लगा कि आप गलत हो, आपका कुरता ऐसा होना चाहिए और आपके बाल ऐसे कटने चाहिए और आपको इस ढंग से बैठना चाहिए, मैंने आपको जैसे अस्वीकार किया कि मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार शुरू किया।
दुर्व्यवहार के बहुत ढंग हैं, और गुरु जितना दुर्व्यवहार करता है उतना कोई भी नहीं करता है, क्योंकि वह आपको काटता है। वह कहता है, ढांचे में आओ, ब्रह्मचर्य साधो, अहिंसा साधो, सत्य साधो, यह साधो, यह साधो, यह साधो, थोपता चला जाता है। वह आपको काट-पीट कर जैसे पत्थर काटता हो कोई, मूर्ति बनाता हो कोई, ऐसा काटता है। महावीर को भी आग्रह है काटने का लोगों को। बुद्ध को भी आग्रह है, गांधी को भी, विनोबा को भी। इसलिए आप मुझे मत गिनें। उन आग्रही लोगों से मेरा कोई लेना-देना नहीं है। वे आदमी को एक शक्ल देना चाहते हैं।
मैं मानता हूं कि किसी आदमी को, किसी दूसरे आदमी को शक्ल देने का हक नहीं है, यही हिंसा है, यही वायलेंस है। जैसे ही कोई पति कहता है कि पत्नी ऐसी होनी चाहिए, हिंसा शुरू हो गई। बाप कहता है कि बेटा ऐसा होना चाहिए, हिंसा शुरू हो गई। जब भी कोई किसी दूसरे से कहता है, ऐसे बनो, तब भीतर से हिटलर बोलने लगा। वह चाहे खद्दर के वस्त्र पहने हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
नहीं, यह जो आदमी है, यह आदमी टार्चर करने के बहुत कुशल रास्ते खोजता है। जो बहुत नासमझ हैं, वे छुरी छाती पर रख देते हैं, आपको टार्चर करने के लिए। जो ज्यादा समझदार हैं, वे अपनी छाती पर छुरी रख लेते हैं, वे कहते हैं, हम अनशन करके भूखे मर जाएंगे, लेकिन तुम्हें ऐसा होना चाहिए। यह सब छुरेबाजी है। दूसरे की छाती पर रखते हो तो हिंसा, अपनी छाती पर रखते हो तो अहिंसा हो गई? नहीं, असल में जैसे ही मैं दूसरे आदमी को इनकार करता हूं, हिंसा शुरू हो गई। जैसे ही मैं कहता हूं कि दूसरा आदमी ऐसा नहीं, तो मैंने अपने को थोपना शुरू कर दिया।
नहीं, मेरा कोई आग्रह नहीं है। मैं मानता हूं रावण अपनी जगह है और बड़ा जरूरी है और बड़ा प्यारा है, और राम अपनी जगह हैं। और अगर मैं पूजा करने जाऊंगा तो दोनों की करूंगा या दोनों की नहीं करूंगा। लेकिन हम चुनाव करना पसंद करते हैं। हम कहते हैं, स्पष्ट कहिए, राम के पक्ष में हैं कि रावण के। मैं आदमी के पक्ष में हूं। रावण के भी नहीं और राम के भी नहीं। और आदमी एक अनंत घटना है, उसमें अनंत रूप हैं। मुझे गुलाब का फूल भी पसंद है और चमेली का और चंपा का भी और धतूरे का भी। मुझे कैक्टस भी पसंद है कांटों वाला और मुलायम फूलों वाले पेड़ भी पसंद हैं, लेकिन मैं नहीं कहता कि कैक्टस को कांटे झड़ा देना चाहिए।
मैं परमात्मा का यह जो जगत जैसा है, इसको समग्रता से स्वीकार कर रहा हूं। न बुद्ध स्वीकार करते हैं, न महावीर स्वीकार करते हैं, न गांधी स्वीकार करते हैं, न विनोबा स्वीकार करते हैं। यह जो अस्वीकृति है, वह प्रभावित करने की, इनफ्लुएंस करने की, प्रोपेगेट करने की चिंता आ जाती है उसमें कि आदमी को बदलो, संगठन बनाओ, पंथ बनाओ, समूह बनाओ, घेरा बनाओ, बदलो आदमी को। आदमी को ऐसा बनाओ, जैसा हम चाहते हैं। लेकिन आप कौन हैं, आपको किसने कहा कि आदमी को बदलें? आप हैं कौन?
आप भी एक आदमी हैं, थोड़ा बोल लेते हैं ढंग से या थोड़े कपड़े छोड़ कर नंगे खड़े हो जाते हैं या थोड़ा आपको कोई फैड पकड़ गया है कि चरखा चलाते हैं, कि बीड़ी नहीं पीते, कि पान नहीं खाते, आपकी मौज है। लेकिन वह जो दूसरा आदमी बीड़ी पी रहा है, जब नहीं बीड़ी पीने वाला उसको पुलिस की आंखों से देखता है,

तब हिंसा शुरू हो जाती है। कौन हकदार है? कोई हकदार नहीं किसी पर थोपने को अपने को। तो इसलिए मुझे मत गिनें।
मुझे न कोई प्रचार करना है, न कोई सर्वोदय लाना है, और न कोई समाज का आदर्श बदलना है, न एक व्यक्ति को ऐसा बनाना है, वैसा बनाना है, ऐसा नहीं है। जब मैं कुछ कह रहा हूं, तो वह कहना मेरा आनंद होता है, उससे ज्यादा नहीं, उससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं। हां, अगर मुझे लगता है कि बीड़ी पीने में मैंने बहुत दुख पाया, तो मैं निवेदन कर दूंगा कि बीड़ी पीकर मैंने बहुत दुख पाया, लेकिन तब भी मैं आपको कंडेमनेशन से नहीं देख सकता कि आप बीड़ी पी रहे हो, क्योंकि कोई आदमी बीड़ी पीकर सुख पा रहा हो, इसकी पूरी संभावना है। मैंने दुख पाया, वह मैं कह देता हूं। लेकिन मेरा दुख सबका दुख नहीं है और मेरा सुख सबका सुख नहीं है।
एक आदमी का नरक, दूसरे का स्वर्ग हो सकता है। एक आदमी का स्वर्ग, दूसरे
के लिए नरक हो सकता है। यह भिन्नता की मेरे मन में स्वीकृति है। इसलिए अभी मैं एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस कंपार्टमेंट में था--मैं था और एक मित्र और सवार थे। वे मुझे देख कर एकदम घबड़ा गए, जैसा कि महात्माओं को देख कर घबड़ा जाना चाहिए। एकदम उन्होंने नमस्कार किया, कहा, महात्मा जी! लेकिन मुझे ऐसा लगा कि मेरा आना उन्हें अच्छा नहीं लगा। असल में महात्मा का आना किसी को भी जिंदगी में अच्छा नहीं लगता, क्योंकि महात्मा बिना गड़बड़ किए नहीं रह सकता, नहीं तो उसका महात्मापन खो जाए। मैंने उनसे कहा कि ऐसा लगता है कि मेरे आने से आप सुखी नहीं हुए। मैं दूसरे कंपार्टमेंट में चला जाऊं? उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, बड़ा आनंद हुआ आपके आने पर। मैंने कहाः आप
जो कह रहे हैं, वह कुछ और है, आपका चेहरा जो कह रहा है, वह कुछ और है। उन्होंने कहा कि क्या आप मेरे भीतर की बात पकड़ते हैं? मैंने कहाः भीतर की बात नहीं पकड़ता। आपका चेहरा इनकार कर रहा है। तो उन्होंने कहा, अब आपने बात ही उठा दी, तो मैं आपसे कह ही दूं कि मैं सफर मैं चलता हूं, तो मुझे शराब पीने की आदत है। मैंने शराब के लिए आर्डर देकर रखा है। सोडा आ गया है, शराब आ रही है और आपको देख कर मैं डर गया और मैंने कहा अब मुश्किल हो गई, अब न मैं शराब पी सकता हूं, न आमलेट खा सकता हूं, अब बड़ी मुश्किल हो गई है।
तो मैंने कहाः लेकिन क्या आप मुझे शराब पिलाइएगा? उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, मैं क्यों पिलाऊंगा? मैंने कहा, आप पीएंगे तो मैं क्यों रोकूंगा? अगर आप मेरे ऊपर जबरदस्ती शराब पिलाएं, जितनी हिंसा यह होगी, उससे कम हिंसा यह न होगी कि मैं आपको शराब न पीने दूं। ये दोनों बराबर हिंसाएं हैं। नहीं, आप मजे से पीएं। नहीं, उन्होंने कहा कि एक संत के रहते हुए मैं कैसे पीऊंगा? मैंने कहा, कैसे पागल हो गए हैं। शराब पीनी है कि संत को पीना है? मैं दुष्ट आदमी नहीं हूं। अगर आपको फिर भी तकलीफ हो तो मैं चला जाऊं और दूसरी जगह खोज लूं।
नहीं, उन्होंने कहा कि आप बैठिए। वे बड़े डरते-डरते शराब पीए और बाद में उन्होंने मुझसे एक बात कही, जो हिंदुस्तान भर के सब संतों को, जिंदा मुर्दों को, सबको बता देनी चाहिए। उन्होंने मुझसे कहा कि आप संत जैसे दिखाई पड़ने वाले पहले आदमी हैं, जो मुझे भला आदमी मालूम पड़ा।
असल में संत भले आदमी हो ही नहीं सकते हैं।
अधिकतर संत सैडिस्ट होते हैं या मैसोचिस्ट होते हैं। या तो वे दूसरे
को सताते हैं या खुद को सताते हैं और जो खुद को सताने में कुशल होते हैं, वे दूसरे को सताने का अधिकार पा जाते हैं। नहीं, मैं कुछ हूं ऐसा मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। विनोबा वगैरह को मत लाएं। मेरे हिसाब से इन सबकी तो बेचारों की मानसिक चिकित्सा होनी चाहिए, मेरे हिसाब से। मेरे हिसाब से, मेरे हिसाब से ये कहीं जाते नहीं। ये बहुत अजीब तरह की विकृतियों में घिरे रहते हैं, लेकिन यह मैं कह रहा हूं, ऐसे विनोबा हैं ऐसा आपको मानने को नहीं कह रहा हूं ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है। मेरा दिखाई पड़ना गलत हो सकता है। मेरे हिसाब से मनुष्य-जाति को, जिन लोगों ने अब तक ढालने की कोशिश की है, उन ढालने वालों में नब्बे प्रतिशत लोग मानसिक रूप से रुग्ण थे, इसलिए यह मनुष्यता पैदा हुई है जो मानसिक रूप से रुग्ण हैं। और यह मनुष्यता तो आई है, पैदा की गई है। इसमें महावीर का हाथ है, बुद्ध का हाथ है, कृष्ण का

हाथ है, क्राइस्ट का हाथ है, मोहम्मद का हाथ है। इन सारे लोगों ने, इन सारे शिक्षकों ने मनुष्यता को ढालने की कोशिश की और यह मनुष्यता पैदा हुई है।
यह मनुष्यता बिल्कुल पागल मालूम पड़ती है। इस पागल मनुष्यता में बुद्ध को बचाया नहीं जा सकता, महावीर को हटाया नहीं जा सकता, उनका हाथ जरूरी है। और जब तक हम सीधे सत्यों को देखने की हिम्मत न जुटाएं, बड़ी मुश्किल होती है। असल में अच्छे आदमी अनेक लोगों को बुरा बनाने का कारण बनते हैं।
अच्छे बाप के घर में अच्छा बेटा पैदा होना बहुत मुश्किल हो जाता है। गांधी के बेटों से पूछो। हरिदास से पूछो, महात्मा गांधी के बेटे हरिदास से पूछो कि तुझे क्या हो गया पागल? इतना अच्छा बाप मिला और तुझे क्या हो गया कि तू मांस खाए कि तू शराब पीए कि तू मुसलमान हो जाए, तुझे क्या हो गया? इसमें गांधी का हाथ, इसमें गांधी का जो अति टार्चर करने वाला व्यक्तित्व है, जो कहता है कि नहीं, यह मत खाना। इसकी अंतिम परिणति यही होने वाली है कि जो नहीं खाना है, वह खाओ। यह मत पीना, वह अंतिम परिणति वही होने वाली है। अगर कभी भी दुनिया में कहीं लेखा-जोखा होता होगा, तो हरिदास के चक्कर में गांधी जी फंसेंगे ही--अगर कहीं लेखा-जोखा होता है तो। जब बाप थोपता है अपने को, तो बेटे को बगावत के लिए तैयार करता है। और जब संत थोपते हैं अपने को समाज को, तो समाज को विकृत करते हैं। नहीं, मैं थोपने वाले लोगों के पक्ष में नहीं हूं। कम से कम मैं किसी तरह के थोपने के सहयोग में खड़ा नहीं हो सकता। मैं क्रिमिनल्स के साथ खड़ा होने को राजी नहीं हूं। तो मेरे लिए जो अपराधी है, वे हैं।
आपसे नहीं कहता कि आप अपराधी मान लेना। फिर थोपना हो जाएगा। मैं सिर्फ निवेदन है मेरा कि मुझे ऐसा लगता है। अब मजबूरी है। मेरी आंखें खराब हो सकती हैं तो मुझे ऐसा दिखाई पड़ सकता है, लेकिन जैसा दिखाई पड़ता है, वही मैं कह सकता हूं। नहीं, मैं कोई योजना नहीं है मेरे पास। किसी आदमी को ढालने के लिए कोई सांचा नहीं है मेरे पास।
मेरी तो समझ यह है कि जब हम सब सांचे तोड़ देंगे, तब ठीक-ठीक मनुष्यता विकसित हो सकेगी। तब एक-एक आदमी वही हो सकेगा, जो होने को पैदा हुआ है। अभी हर आदमी इधर-उधर डैविएट कर जाता है। जो कि वह होने को पैदा ही नहीं हुआ, हम सब मिल कर उसको वह होने में लगा देते हैं। जो आदमी जो होने को पैदा हुआ है... रवींद्रनाथ के घर में मैंने एक किताब देखी। रवींद्रनाथ के... के भवन में एक पुरानी किताब रखी हुई है। वह किताब बड़ी अदभुत है। वह किताब ऐसी अदभुत है कि उस घर में जितने...

एक मित्र कहते हैं कि आप दूसरों की निंदा न करें और अपनी बात कहें।

मैं किसी की निंदा कर ही नहीं रहा, अपनी ही बात कह रहा हूं। उस अपनी ही बात में वे भी आ जाते हैं। उसमें मेरा कसूर नहीं है। और हम निंदा और प्रशंसा के सिवाय कुछ और सोच ही नहीं सकते। तथ्य की बात सोच ही नहीं सकते। मैं सिर्फ तथ्य, जो मुझे दिखाई पड़ रहा है, कहता हूं। आप उसको निंदा समझ लेते हैं, वह आपकी व्याख्या है, मेरी नहीं है। मैं कहता हूं कि गांधी रुग्ण व्यक्तित्व हैं, मेरे लिए एक फैक्ट है। वह मैं कह रहा हूं, आप कहते हैं कि निंदा हो गई, क्योंकि आपके मन में कोई प्रशंसा बैठी होगी कि महात्मा हैं, रुग्ण व्यक्तित्व कैसे हो सकते हैं! निंदा हो गई है। यह आपकी व्याख्या हुई। यह आपकी तकलीफ है। इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। मुझे जो दिखता है, वह मैं कह रहा हूं। आपके मूल्यों में भेद पड़ेगा, तकलीफ होगी, बेचैनी होगी, जिसको महात्मा कहा वह बीमार कैसे है? हमको ख्याल है कि महात्मा बीमार होते ही नहीं, इसलिए हम खुद तकलीफ में
पड़ जाते हैं। मैं किसी की निंदा नहीं करता, न किसी की प्रशंसा करता। न निंदा से कोई फायदा है, न प्रशंसा से। जो जैसा मुझे दिखाई पड़ता है, वैसा मैं कहता हूं। वह वैसा है ही, यह भी नहीं कहता। मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं कहता हूं।
एक मित्र ने कहा है कि आप जो बातें कहते हैं, उससे युवा पीढ़ी के मन पर उलटा प्रभाव पड़ेगा।

जब मैं सीधे ही प्रभाव की फिकर नहीं करता तो उलटे प्रभाव की मैं कैसे फिक्र करूंगा? मैं प्रभाव की ही फिकर नहीं करता। और उलटा क्या है? सीधा क्या है? पुरानी पीढ़ी जिसे वह मानती है, वह सीधा है और नई पीढ़ी जिसे वह मानती है, वह उलटा है? अगर आप शीर्षासन के बल खड़े हो जाएं तो जितने लोग सीधे खड़े हैं, वे सब उलटे खड़े हैं! आप शीर्षासन कर लें, तो जितने लोग सीधे खड़े हैं, सब उलटे खड़े हैं। उलटा कौन है? और युवा पीढ़ी आपके सीधा करने की कोशिश से ही तो उलटी नहीं हुई जा रही है, यह कभी सोचा? आपके सीधे करने की कोशिश इतनी खतरनाक है कि कोई भी उलटा हो जाएगा। पहले नहीं होता था, उसका कारण था, क्योंकि जाल आपका बहुत सख्त था, बहुत मजबूत था। गुलामी बहुत गहरी थी और जंजीरें आपके पास बहुत ताकतवर थीं। और हर बच्चे को आप युवा होने से ही रोक देते थे। बाल-विवाह बुनियादी तरकीब थी। उसकी वजह से कोई युवा नहीं हो पाता था। आठ साल या दस साल के लड़के की शादी कर दी, वह युवा कब हो पाएगा? युवा होने के पहले बाप हो जाएगा। बाप कभी युवा नहीं होता। बूढ़ा हो गया है। दुनिया में युवक थे ही नहीं, सौ वर्ष में पैदा हुए हैं। तो इसलिए आपकी पुरानी व्यवस्था में युवक के लिए कोई उपाय नहीं है। इससे आप मुसीबत में पड़ गए हैं। उसके लिए कोई उपाय ही नहीं, वह घटना ही नई है। युवक था ही नहीं। और युवक बिगड़ जाएगा, यह डर हर बाप को रहता है। उसके बाप को भी उसके संबंध में यही डर था। और यह जो युवक है, जिसको आप सोच रहे हैं, बिगड़ जाएगा, अपने बेटे के संबंध में इसी डर में जीएगा। यह डर सनातन है। मैंने दुनिया की पुरानी से पुरानी किताब खोजने की कोशिश की। मुझे ऐसी किताब नहीं मिल सकी, जो यह कहती हो कि आज के लोग अच्छे हैं। सब किताबें कहती हैं, पहले के लोग अच्छे थे। छह हजार साल पुरानी किताब है चीन में। वह कहती है, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। आजकल की पीढ़ी बिल्कुल बिगड़ गई है।
इजिप्त में पत्थर मिला है, बेबीलोन में पत्थर मिला है। वे सब कहते हैं
कि पहले के लोग अच्छे थे, आज की पीढ़ी, नई पीढ़ी बिल्कुल बिगड़ गई है। ये पहले के लोग कब थे? ये कभी थे? ये कभी भी नहीं थे। कभी भी पहुंच जाओ, नई पीढ़ी बिगड़ी हुई मालूम पड़ेगी। उसकी वजह है कि बाप बूढ़ा हो गया और लड़का जवान है, दोनों एक साथ बूढ़े नहीं हो सकते, उपाय ही नहीं है। अगर कोई उपाय होता कि बाप और बेटे एक साथ बूढ़े हो जाते तो सब ठीक हो जाता।
और ध्यान रहे, नई पीढ़ी बिगड़ती नहीं है। नई पीढ़ी के पास जो जीवन की धारा है। बाप के पास जीवन की धारा सूख गई है। और जब जीवन की धारा सूखती है तो क्रोध पैदा होता है और जब क्रोध पैदा होता है तो निंदा पैदा होती है, दुश्मनी पैदा होती है, लड़ाई पैदा होती है। बेटा वही कर रहा है, जो बाप आज भी करना चाहेगा, लेकिन नहीं कर पा रहा है, तो वह एक रस ले रहा है। रस ले रहा है कि सब बिगड़ गया, सब उलटा हो गया, सब खराब हो गया और मजा यह है कि सब यही, वह भी करता रहा था और उसके बाप भी यही कह रहे थे।
नहीं, कहीं कुछ नहीं बिगड़ गया है। और आज जो हमें यह सवाल इतना तीव्र मालूम पड़ता है। किन-किन बातों में आप कहते हैं कि नई पीढ़ी बिगड़ गई है? पुरानी पीढ़ी वियतनाम में बम गिरा रही है और नई पीढ़ी वियतनाम में बम न गिरे, इसलिए लड़ रही है। उलटा कौन है? पुरानी पीढ़ी का द्रोण एकलव्य का अंगूठा काट रहा है, नई पीढ़ी का एकलव्य इनकार कर रहा है कि गुरुजी, बहुत हो चुका है, अब अंगूठा न काटने देंगे। उलटा कौन है? कभी सोचा है कि यह सारा का सारा पूरा हमारा अतीत, इसमें उलटा है कौन? लेकिन अपने को सीधा मान लेने की प्रवृत्ति से, दूसरे को उलटा मान लेना बहुत आसान होता है। नई पीढ़ी बहुत कमजोर होगी, आपके नीचे होगी। इस वक्त ताकतवर हो गई है, इसके पहले कभी ताकतवर न थी, क्योंकि एक गांव में बेटा अकेला था और बाप सदा इकट्ठे थे। तो सब बाप मिल कर बेटे की निंदा करें, तो वह खड़ा हुआ सुनता था। और बेटे इकट्ठे मिल कर बाप को कहीं फंसा नहीं पाते थे, क्योंकि बेटे इकट्ठे होने का उपाय न था। एक-एक बेटा अपने बाप से सदा कमजोर था।
अब हालत बदल गई है। एक-एक युनिवर्सिटी में बीस-बीस हजार विद्यार्थी इकट्ठे हो गए हैं। बेटे इकट्ठे हो गए हैं, बाप अलग-अलग पड़ गए हैं। बीस हजार बाप कहीं भी इकट्ठे नहीं हैं, इसलिए दबाना मुश्किल पड़ रहा है। और कोई मामला नहीं है। बीस हजार बेटे बदला ले रहे हैं। दस-पच्चीस हजार साल का

बदला है, स्वाभाविक है। काफी सताया है उनको, बदला ले रहे हैं। स्वाभाविक है, इसमें उलटा वगैरह कुछ भी नहीं हो गया है।
और मैं न तो सीधे प्रभाव को उत्सुक हूं और न तो उलटे प्रभाव को उत्सुक हूं। और उलटे प्रभाव को कैसे रोकिएगा? गांधी जी ने आत्म-कथा लिखी, तो कई लोगों ने पत्र लिखा कि आपकी आत्म-कथा पढ़ कर हममें कामोत्तेजना पैदा होती है। गांधी जी की आत्मकथा को आग लगाई। कई लोगों में कामोत्तेजना पैदा होती है। असल में जिसमें कामोत्तेजना है, वह किसी भी वजह से पैदा होगी और उभरेगी। गांधी जी की आत्म-कथा न मिलेगी तो भी, कोई दूसरा बहाना खोजेगी। कोई कामोत्तेजना गांधी जी की आत्मकथा के लिए ठहरी नहीं थी, पहले दुनिया में, पहले भी उठती थी।
अभी हम लड़कों को कह रहे हैं कि सिनेमा देख कर बिगड़े जा रहे हो। तो पहले
के लड़के क्या देख कर बिगड़े थे? सिनेमा ने बिगाड़ दिया? तो खजुराहो किसने बनाया था? आज के लड़कों ने? तो सिनेमा की नंगी तस्वीरें बिगाड़ रही हैं, तो कालिदास के ग्रंथ देखें। जितना नंगा वर्णन उनमें हैं, उतना आज की फिल्मों में कहीं भी नहीं है। कालिदास जंगल में भी जाएं, तो फल नहीं दिखाई पड़ते हैं, स्त्रियों के स्तन ही लटके हुई दिखाई पड़ते हैं। अभी तो मैंने कोई फिल्म नहीं देखी, जिसमें ऐसा हो कि फलों की जगह स्त्रियों के स्तन लटके हुए हों। ये कालिदास नई पीढ़ी के आदमी हैं? आदमी कौन उलटा है?
लेकिन हम जीवन की सहजताओं को दबाने के लिए आतुर हैं कि जीवन की जो सहजता है, स्वाभाविकता है, उसको दबा दो, सप्रेस कर दो, उसको मार डालो बिल्कुल, गर्दन घोंट दो, तो बगावत होगी। यह जो सारी दुनिया में बगावत हो रही है, बूढ़ी पीढ़ी सेक्स सप्रेशन कर रही नई पीढ़ी के सामने, दबा रही उसके काम को। और आपको पता नहीं कि पहली दफे स्टार्वेशन पैदा हुआ, पहले न था। लड़के में, लड़की में सेक्स मैच्योरिटी आती, उसके पहले हम विवाह कर देते थे। भूख लगती, थाली लगा देते थे।
अब पंद्रह साल में सेक्स मैच्योरिटी आ जाती है, बल्कि और जल्दी। क्योंकि जितनी संपन्नता बढ़ रही है, मैच्योरिटी जल्दी आती है। हिंदुस्तान की चौदह साल में लड़की होती है मैच्योर। अमरीका मैं तेरह साल में होती थी, अब बारह साल में हो रही है, दस साल में वैज्ञानिक कहते हैं कि नौ साल में अमेरिका की लड़की मैच्योर हो जाएगी, क्योंकि इतना पौष्टिक भोजन मिल रहा है, मैच्योरिटी जल्दी आ जाएगी। अब नौ साल या दस साल की लड़की मैच्योर हो जाएगी और पच्चीस साल तक आप उसको स्टार्व करेंगे, रोकेंगे। लड़का मैच्योर हो जाएगा चौदह साल में और उसको चौबीस-पच्चीस साल तक रोकेंगे कि पढ़ो, इंजीनियर बनो, डाक्टर बनो, अभी स्त्री से बचना।
और ये दस साल सबसे ज्यादा पोटेंशियल हैं। वीर्य की जितनी शक्ति अभी है, इसके बाद फिर कभी न होगी। अब उसको आप मुसीबत में डाल दिए हैं। उसकी प्रकृति इनकार कर रही है, उसकी बायोलॉजी इनकार कर रही है और आप कह रहे हैं कि बेटे, बस, ब्रह्मचर्य ही परम-जीवन है, यह तख्ती लगा कर घर में बैठो और आंखें बंद रखो और स्त्री वगैरह को मत देखना। लेकिन स्त्री को देखने से कहां बचोगे, कैसे बचोगे और आंख बंद करने से स्त्री जितनी सुंदर दिखाई पड़ती है खुली आंख से कभी दिखाई नहीं पड़ती है।
जीवन के तथ्यों को उघाड़ कर रखने से ज्यादा मेरा कोई काम नहीं है। मुझे कोई प्रयोजन नहीं है क्या आदर्श है, कौन बनेगा, कौन बिगड़ेगा? मैं यह मानता हूं कि अगर सत्य बिगाड़ता होगा, तो मेरी बातें भी बिगाड़ देंगी। और अगर सत्य बिगाड़ता हो, तो मेरी समझ है कि सत्य को साथ बिगड़ना अच्छा है, असत्य के साथ सुधरने से। अगर सत्य बिगाड़ता है तो बिगाड़ देगा। और आपने असत्य पांच-दस हजार साल से थोप रखा है, सुधारा नहीं उसने कुछ अब तक। अब एक सत्य को मौका दें कि जिंदगी के सब सत्य सीधे और साफ हो जाएं और उनको प्रकट होने दें, उनको छिपाएं मत। देखें, असत्य को बहुत मौका दिया उन्होंने। अब सत्य को मौका देकर देख लें कि क्या सत्य कर सकता है। मुझे नहीं लगता है कि सत्य बिगाड़ेगा और अगर सत्य भी बिगाड़ता हो दुनिया में, तब फिर मानना चाहिए, सुधरने का कोई उपाय नहीं है। फिर बिगड़े होना ही हमारा अस्तित्व है।
एक अंतिम बात और फिर मैं अपनी बात पूरी करूं।

एक मित्र ने पूछा है कि चरित्र और नैतिकता नई पीढ़ी में, इस संबंध में कुछ कहें।

जो मैंने अभी कहा, वह आप ख्याल में ले लिए होंगे। चरित्र पुरानी दुनिया में था ही नहीं, नैतिकता थी, चरित्र नहीं था। नैतिकता का मतलब, समाज ने जो नियम तय किए थे, आदमी उनमें बंध कर जीने की कोशिश कर रहा था। चरित्र का मतलब बहुत दूसरा होता है। चरित्र का और कैरेक्टर का मतलब होता हैः समाज नहीं, निर्णायक मैं हूं। और जो आदमी अपना निर्णायक नहीं, वह कभी कैरेक्टर का आदमी नहीं हो सकता। समाज तय करती थी कि ऐसा करो, यह है नीति, इसके अनुसार चलो, अन्यथा नरक है। नहीं तो स्वर्ग में प्रलोभन था, नहीं तो नरक का डर था, ऐसा करो।
तो नीति समाज थोपती है और चरित्र व्यक्तिगत उपलब्धि है।
और चरित्र से बड़ी कोई नैतिकता नहीं। लेकिन हमने व्यक्ति को कभी स्वीकार नहीं किया। हम व्यक्ति को इनकार करते हैं। हम सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। हम कहते हैं, सिद्धांत सदा ठीक। और अगर गड़बड़ होती हो, तो व्यक्ति गलत, सिद्धांत ठीक। मैं आपसे कहता हूं, चरित्रवान समाज, चरित्रवान युग कहेगा, व्यक्ति सदा ठीक और अगर सिद्धांत से गड़बड़ पैदा होती है तो सिद्धांत में कहीं कोई भूल है।
एक छोटी सी कहानी आपको कहूं। सुना है मैंने कि गर्मी का दिन है और एक राजा अपनी कोठी में बैठा है, आराम से। नीचे से आवाज सुनाई पड़ती है। कोई पंखे बेच रहा है और चिल्ला रहा है कि अनूठे पंखे हैं, और सौ रुपया दाम है। राजा ने कहा, पंखा और सौ रुपया दाम। उसने खिड़की से झांक कर देखा, तो और हैरान हुआ। पंखे बिल्कुल साधारण थे, जैसे दो पैसे में मिलते हैं। पंखे वाले को बुलाया, कि या तो पागल है या हद्द चालबाज है। पंखे वाला ऊपर आया, उससे पूछा कि ये पंखे और सौ रुपये! क्या खूबी है? उसने कहा कि सौ साल की गारंटी है, सौ साल तक पंखा बिगड़ेगा नहीं।
राजा ने कहाः सौ साल इस पंखे की गारंटी! यह सात दिन चल जाए तो बहुत है। उसने कहा, महाराज, प्रयोग करिए और देखिए। मैं भागा नहीं जा रहा। रोज इसी रास्ते से गुजरता हूं। यह रहा पंखा, आप रखिए। सौ रुपये दे दिए गए। पंखा तो दूसरे दिन ही टूट गया। राजा ने सोचा, अब वह लौटेगा नहीं। लेकिन दूसरे दिन ठीक वक्त उसने खिड़की के नीचे आवाज लगाई। अनूठे पंखे खरीदने हैं?
राजा ने ऊपर बुलाया और कहा कि अनूठा पंखा टूट गया। उसने एक दफा पंखे
को देखा और फिर राजा को गौर से देखा और राजा से कहा, मालूम होता है, आपको पंखा झलना नहीं आता। राजा ने कहाः पंखा झलना नहीं आता? क्या मजाक कर रहे हो? उसने कहाः कैसे झला था, जरा बताइए? राजा ने पंखा झल कर बताया। उसने कहा, बिल्कुल गलत, बिल्कुल गलत। यह कोई ढंग है, पंखा टूटेगा नहीं तो क्या होगा? यह तो आप बच गए, यही बहुत है, नहीं तो आप भी टूट जाते। गलत है यह ढंग। राजा ने कहाः ठीक ढंग सुनें? पंखा, उसने कहा, हाथ में ठीक से पकड़िए, सम्हाल कर और सिर को हिलाइए। पंखा सौ साल चलेगा। पंखा तो सौ साल के लिए गारंटेड है। सिद्धांत हमारे पक्के हैं। हम कहते हैं, सिद्धांत कभी गलत नहीं, गलत
है तो आदमी है। अगर ठीक होना है तो आदमी ठीक हो। सिद्धांत हमारा गारंटेड है, सनातन है। सौ साल नहीं, सनातन है। हमारे सब सिद्धांत बुनियादी रूप से गलत हैं। जिसको हम नैतिकता कहते हैं, वह बुनियादी रूप से गलत है और पाखंड के अतिरिक्त कुछ भी पैदा नहीं करती, करेगी। क्योंकि वह तथ्यों पर आधारित नहीं है। उसे तथ्यों पर खड़ा करना पड़े और जब तथ्यों पर खड़ी होती है तो हमारे प्राण निकलते हैं, क्योंकि हमें तकलीफ मालूम होती है, क्योंकि हमारा सारा का सारा ढांचा गिरता है।
जैसे, उदाहरण के लिए एक-दो बात मैं आपसे कहूं। अधिकतम नीति, नब्बे प्रतिशत नीति सेक्स-सेंटर्ड है। एक तो पहली गलती यही है। बुनियादी गलती है, क्योंकि जो नीति नब्बे प्रतिशत यौन-केंद्रित हो, वह उस कौम ने बनाई होगी, जो यौन से आकर्षित है और विक्षिप्त है। अगर हम किसी आदमी को कहें कि वह चरित्रहीन है, तो जो पहला ख्याल आता है, वह यह ख्याल आता है कि किसी

स्त्री से वह बंधा हुआ न हो। यह ख्याल नहीं आता कि वह आदमी वचन का पक्का नहीं है। यह ख्याल नहीं आता कि वह आदमी टैक्स ठीक से नहीं चुकाता। यह ख्याल नहीं आता कि वह आदमी जेब काटता है। ख्याल आता है चरित्रहीन, किसी स्त्री से बंधा हुआ है।
जिस मुल्क की चरित्रता और जिस मुल्क की नैतिकता, केवल स्त्री-पुरुष
के यौन संबंधों पर केंद्रित है, वह सेक्स आब्सेस्ड है, वह कौम यौन विक्षिप्त है। उसकी सारी नीति वहीं खड़ी है, बस उतनी ही बात पर सब तुल जाता है। सारा मामला इतना है, उससे ज्यादा कोई मामला नहीं है। इसलिए हम दूसरी दिशाओं में चरित्रहीन होने में सुविधा पा जाते हैं, बस एक मामले में पक्के रहो, पक्का पत्नीव्रती रहे कोई पति, पक्की पत्नी पतिव्रता रहे, बाकी सब चलेगा। इतना काफी है। बाकी जिंदगी जैसे इतने पर पूरी हो गई।
और सच्चाई यह है कि यौन संबंध दो व्यक्तियों के बीच के निजी संबंध है। सामाजिक नैतिकता का उससे कोई संबंध नहीं होना चाहिए। असल में समाज की यह ज्यादती है कि दो व्यक्तियों के निजी संबंधों में दखलंदाजी करे, बीच-बीच में बार-बार झांक कर देखे। हम सब जगह की-होल से झांक रहा हमारा पूरा समाज, हर एक के बाथरूम में छेद करके देखना चाहता है कि भीतर क्या हो रहा है! हम सब एक-दूसरे के भीतर पता लगा लेना चाहते हैं कि कहां क्या हो रहा है, कौन-कौन चरित्रहीन है!
यह चरित्रहीनता है यह पता लगाना। यह चरित्र नहीं है, यह चरित्र की बात नहीं है। लेकिन तथ्य आधारित न होने से कठिनाई हो गई है। तथ्य आधारित नहीं है बिल्कुल।
भौतिकवाद की निपट हमने निंदा की है और हमारी नीति हमने ऐसी बनाई है कि उसमें भौतिकता के विकास के लिए गुंजाइश नहीं है। और जिंदगी भौतिकता है। जिंदगी तो नब्बे प्रतिशत, निन्यानबे प्रतिशत भौतिकता है, जिंदगी तो धन है, मकान है, रोटी है, कपड़ा है। और हमारी नीति इनकी बात नहीं करती! क्योंकि यह तो मैटीरियलिस्ट कंसीडरेशन है! मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म, इनका हम कंसीडरेशन करते हैं, जो कहीं नहीं हैं! जहां हमें जीना है चौबीस घंटे, उसका कोई कंसीडरेशन नहीं है। तो जहां हमें होना है कभी, पता नहीं, हो पाए या न, उसका पूरा कंसीडरेशन है। तो ऐसा मामला हो गया है कि सोचते हैं आकाश की, चलते हैं पृथ्वी पर। रोज टकरा जाते हैं। मुश्किल खड़ी हो जाती है। और इसलिए हम सारी दुनिया को गाली देते रहते हैं कि सब भौतिकवादी हैं और हम जैसा भौतिकवादी खोजना बहुत मुश्किल है। बहुत मुश्किल है, हम जैसी पकड़ भौतिकता पर और किसी की नहीं है। लेकिन हमें सुविधा है, क्योंकि हम मंदिर में घंटा हिला आते हैं। हम आध्यात्मिक हैं, गीता पढ़ लेते हैं, जनेऊ बांधे हुए हैं।
अब जनेऊ भी भौतिक है और घंटा भी भौतिक है और गीता भी भौतिक है, और मंदिर भी भौतिक है। इसमें कुछ अध्यात्म नहीं है। जिस कौम ने अध्यात्म पर नीति को खड़ा करने की कोशिश की, उसने सारे जीवन को अनैतिक बना दिया, क्योंकि जीवन के तथ्य हम न खोज पाए। वह तथ्य हमें पता ही नहीं हैं। हम खोजने से भी डरने लगे। धन की जरूरत है। अगर हम धन की जरूरत सीधी-सीधी स्वीकार कर लेते तो मुल्क कम चोर होता। जिन मुल्कों ने धन की जरूरत सीधी-सीधी स्वीकार की है, वहां आदमी कम चोर है। हमने कहा, धन? सब माया है। और वह यह महात्मा कह रहा है।
अभी मैं एक महात्मा के आश्रम गया। वह समझा रहा है लोगों को कि धन इत्यादि सब माया है। स्वर्ण से बचो, कामिनी से बचो, और लोग पैसे चढ़ा रहे हैं। वे बीच में भाषण बंद करके, पैसे सब नीचे सरका देते हैं। फिर वे कहते हैं, सब माया है। कामिनी-कांचन इनसे बचो। फिर कोई रुपया चढ़ाता है, वे जल्दी से उसको पहले नीचे सरका देते हैं, फिर बैठ जाते हैं। सारे महात्मा यही कर रहे हैं, करेंगे। मैं नहीं कहता कि पैसा सरकाना गलत है। बिल्कुल ठीक सरका रहे हैं, लेकिन वे जो कह रहे हैं, वह गलत है। वह मत कहिए। पैसा मजे से सरकाइए, कौन कहता है? पैसा जरूरत है। मैं नहीं कहता कि साधु भी बिना पैसे के जी सकता है। मैं नहीं कहता। वह भी पैसे से...
अभी मैं बंबई था, एक स्वामी नारायण संप्रदाय के दो साधु मुझसे मिलने आए, ध्यान के संबंध में समझना है। मैंने कहाः संन्यासी कैसे हो गए, जब

ध्यान को समझा ही नहीं? उन्होंने कहाः संन्यासी तो हो गए। तो मैंने कहाः संन्यासी हो कैसे सकते हो, बिना ध्यान में गए? उन्होंने कहा कि नहीं, अब जाना चाहते हैं। मैंने कहाः पहले ये कपड़े उतार कर आओ। झूठे हैं कपड़े। और कल सुबह ध्यान में हम बैठेंगे, उसमें आ जाओ।
उन्होंने कहाः बड़ी मुश्किल होगी। क्या मुश्किल है? उन्होंने एक तीसरा आदमी बाहर बिठा रखा था उसको अंदर लाए और कहा कि हमें एक दिक्कत है कि पैसा हम अपने पास नहीं रख सकते हैं। यह जो तीसरा आदमी है, यह पैसा रखता है। यह टैक्सी में हमारे साथ आए, पैसा चुकाए, तब हम आ सकते हैं। अगर इसको समय हो कल, तो ही हम आ सकते हैं, नहीं तो आना बहुत मुश्किल हैं। मैंने कहाः बड़ा मजा है! दो के आने से काम चल जाएगा, वहां तीन आ रहे हैं। और पैसा तुम अपने खीसे में क्यों नहीं रखते? उन्होंने कहा, हम तो रख ही नहीं सकते। और मैंने कहाः दूसरे के खीसे के पैसे का उपयोग कर सकते हो? तो तुम स्वर्ग जाओगे और यह बिचारा नरक जाएगा, क्योंकि तुमको ध्यान की क्लास तक टैक्सी में बैठा कर इसने पहुंचाया, यह खीसे में पैसा रखे हुए, तुम्हारे पैसे रखे हुए है! बेईमान हो गया मुल्क, क्योंकि हमने जीवन के तथ्य स्वीकार नहीं किए।
धन की जरूरत है। धन समाज का खून है। अगर इनकार करेंगे तो बच न पाएंगे। इनकार करेंगे तो पाखंडी हो जाएंगे, तब हमको पीछे के दरवाजे खोलने पड़ेंगे, जहां से धन लाना पड़े। उनको स्वीकार करने की जरूरत है। हम इतने बेईमान न होते, अगर हम धन को स्वीकार कर लेते। और इतने गरीब भी न होते, इतने कंजूस भी न होते, अगर हम धन को स्वीकार कर लेते, लेकिन हमने स्वीकार नहीं किया। अगर हम स्त्री को स्वीकार कर लेते, तो इतना व्यभिचार न होता। वह हमने स्वीकार न किया। अगर हम मनुष्य के मन को समझ लेते और स्वीकार कर लेते तो इतनी परेशानी न होती। हम आदमी पर बिल्कुल ही अनैसर्गिक चीजें थोपते हैं। अब एक आदमी ने एक स्त्री से शादी कर ली और वह स्त्री चाहती है कि वह आदमी किसी सुंदर स्त्री को कभी गौर से न देखे। अस्वाभाविक है, असल में सौंदर्य गौर से देखने को ही बना है।

देख कबीरा रोया
सत्रहवां प्रवचन

असली अपराधीः राजनीतिज्ञ

प्रश्नः पहला सवाल तो एक है कि आज तक आपने जो कुछ किया, मगर आपका मिशन क्या है यह सब करने का? वह हम समझ नहीं पाते हैं!

दो-तीन बातें हैं। एक तो हमारे समाज की और हमारे देश की एक जड़ मनो-दशा है, जहां चीजें ठहर गई हैं, बहुत समय से ठहर गई हैं। उनमें कोई गति, कोई डाइनामिज्म नहीं रह गया। कोई दो ढाई हजार वर्ष से हम सिर्फ पुनरुक्ति कर रहे हैं। दो ढाई हजार वर्ष से हमने नये का स्वागत बंद कर दिया, पुराने की पुनरुक्ति कर रहे हैं। तो मेरे काम का पहला हिस्सा तो यह है कि पुराने की पुनरुक्ति को तोड़ना है। और पुराने की पुनरुक्ति का हमारा मोह टूटे, तो ही हम नये के स्वागत के लिए तैयार हो सकते हैं, वह दूसरा हिस्सा है। तो पहला तो पुराने को पकड़ने की हमारी जो आकांक्षा है, और जो नये का भय है, ये दो हिस्से हैं। पुराने को तोड़ देने का और नये के स्वागत के लिए मार्ग खोलने का।
पुराने की पकड़ के कारण ही हम विज्ञान को जन्म न दे पाए। यद्यपि पृथ्वी
पर सबसे पहले हम ही थे, जिन्होंने विज्ञान की शुरुआत की थी, लेकिन हम वह नहीं हैं जो कि उसको अंत तक ले जा सके। हम बहुत शुरू किए और रुक गए। जगत में जितनी भी खोजे हैं, उन सबके बीज हमने शुरू किए, लेकिन फल कोई और काट रहा है। तो कहीं कुछ भूल हो रही है। और मेरी दृष्टि में जो भूल हो रही है, वह यह हो रही है कि वैज्ञानिक अनुसंधान निरंतर पुराने को इनकार करने और नये की खोज करने से विकसित होता है। अगर एक बार हम पुराने को पूरी तरह स्वीकार कर लें, तो नये के लिए खुलने का अवकाश नहीं रह जाता है। तो वैज्ञानिक हम न हो पाए, इस वजह से।
दूसरी, इसी वजह से--शायद पृथ्वी हमारी सारी पृथ्वी पर सबसे ज्यादा साधन संपन्न है, लेकिन हम दरिद्र रह गए, क्योंकि टेक्नालॉजी तो सदा नई है और हमारे पास चित्त जो है पुराने को दोहराने वाला है। तो जो टेक्नालॉजी को पैदा कर सके, वह संपत्ति को पैदा कर पाए। हम उसमें भी बुरी तरह पिछड़ गए। तीसरी बात, जो पुराने की ही पकड़ के कारण पैदा हो गई, वह यह है कि जो हमें उपलब्ध हो गया था, उससे हमने संतोष बना लिया, स्वभावतः। अगर हम असंतोष रखें उसके साथ तो हमें रोज नये को खोजना पड़े। तो हमने एक गहरी संतोष की स्थिति बना ली। संतोष अगर बहुत गहरा हो जाए, तो मौत का पर्यायवाची हो जाता है। क्योंकि जीवन की ऊर्जा तो असंतोष से गति करती है। तो यह एक जो हमने स्टेटिक सोसाइटी बनाई है, मेरा मिशन आप कह सकते हैं कि स्टेटिज्म का यह, अवरोध का यह, गति के रुक जाने का, जहां-जहां मुझे जो-जो कारण दिखाई पड़ता है, वहां-वहां चोट करूंगा। यह विध्वंसात्मक हिस्सा हुआ। यह विध्वंस का हिस्सा हुआ, यह एक पहलू है।
जैसे ही यह पकड़ ढीली हो जाती है, वैसे ही नये आयाम, नये डाइमेन्शंस, कहां-कहां विकसित हों, कैसे विकसित हों उसकी चिंतना, उसका विचार, उसका तर्क, उसकी खोज। अब जैसे, मुझे दिखाई पड़ता है कि पुराने का मोह जो है, वह समाज को विश्वासी बनाता है, बिलिविंग बनाता है। बिलीफ जो है, वह स्टेटिक सोसाइटी पैदा करती है। और डाउट जो है, वह डाइनैमिक सोसाइटी पैदा करता है। अगर हम शक कर सकें, संदेह कर सकें, तो अनिवार्य... उसके कारण हैं, संदेह के साथ जीना मुश्किल है।

प्रश्नः समाधान चाहिए।

समाधान चाहिए ही। तो जैसे ही हम संदेह करते हैं, हमें कोई स्थिति पैदा करनी पड़ती है जो समाधानकारी हो। तो संदेह रोज नई स्थिति पैदा करने को मजबूर करता है। अगर हम फिर नई स्थिति को पैदा करके विश्वासी हो जाएं, तो फिर नई स्थिति फिर कल पुरानी हो जाती है और पकड़ लेती है। इसलिए सतत संदेह

में जीना और सतत पुराने को नष्ट करना और नये को जन्म देना, तो विश्वास तो तोड़ने का हिस्सा होगा और संदेह सृजनात्मक हिस्सा होगा कि उसे हम पैदा करें।
अब जैसे कि दो तरह की शिक्षा हो सकती है। एक शिक्षा जो विश्वास पैदा करवाती हो। एक शिक्षा जो आधार संदेह पर खड़ा हो, जो संदेह पैदा करवाती हो। शिक्षक भी सहयोगी होता हो, बाप भी सहयोगी होता हो, परिवार भी सहयोगी होता हो कि हम बच्चे के संदेह को कितना मुक्त कर सकें। जितना हम संदेह को मुक्त कर सकें, उतनी बड़ी प्रतिभा पैदा होती है। क्योंकि संदेह के साथ रुका नहीं जा सकता है, आगे बढ़ना पड़े। और तत्काल हमें किसी ऊंचे तल पर फिर से विश्वास को पैदा करना पड़े, हालांकि पैदा करते ही विश्वास छोड़ने योग्य हो जाता है। तो विश्वास की एक कीमत है कि वह पुराने संदेह को...

प्रश्नः ऐज ए टर्निंग पॉइंट।

हां, एक टर्निंग पॉइंट, एक पैसेज है। विश्वास जो है, वह ठहरने की जगह नहीं है, मुकाम नहीं है, सिर्फ यात्रा पथ है। तो हमने विश्वास को मुकाम बना रखा है। उस पर हम ठहर गए हैं। संदेह जो है, वह सतत सहयोगी है। और रोज हमें पैर उठाना पड़ेगा संदेह का, रोज नये विश्वास पैदा करने पड़ेंगे और रोज उन्हें डिस्कार्ड भी करना पड़ेगा।
तो एक तो मन के तल पर समस्त दिशाओं में--चाहे वह धन की हो, चाहे धर्म की, चाहे विज्ञान की, चाहे राजनीति की, जहां-जहां विश्वास है, वहां-वहां चोट करने की मेरी आकांक्षा है। और जहां-जहां विश्वास है, वहां-वहां संदेह को जन्म देने की भी आकांक्षा है। स्वभावतः, क्योंकि हम विश्वासी हैं और बहुत गहरे विश्वासी हैं, इसलिए हमें यह पूरी की पूरी प्रक्रिया विध्वंसात्मक और डिस्ट्रक्टिव मालूम होती है। क्योंकि हम एक पुरानी चीज में इस बुरी तरह पकड़ गए हैं कि आज कोई भी नई चीज बनाने का संदेश भी हमें तत्काल ऐसा लगता है कि पुराने को छोड़ना पड़ेगा। और वह हमें विध्वंसक मालूम होता है। लेकिन मेरी अपनी समझ है कि सृजन के दो कदम हैं--विध्वंस पहला कदम है और सृजन दूसरा कदम है।

प्रश्नः और तीसरा पालन का?

पालन जो है, पालन जो है वह तो सृजन का ही हिस्सा है। लेकिन हम किसी भी चीज को दो तरह से पाल सकते हैं। विश्वास की तरह से और संदेह की तरह से। और इन दोनों के फर्क को समझ लेना जरूरी है। विज्ञान भी पालन करता है, लेकिन निरंतर अपने संदेह को जीवित रखते हुए।
एक वैज्ञानिक है, वह यह नहीं कहेगा... अभी आइंस्टीन के मरने के कोई महीने भर पहले किसी ने पूछा कि आप एक वैज्ञानिक में और एक धार्मिक में क्या फर्क करते हैं? तो आइंस्टीन ने कहा कि मैं यह फर्क करता हूं कि धार्मिक, सौ सवाल आप उससे पूछें तो वह एक सौ एक जवाब देने को सदा तैयार है। और वैज्ञानिक से आप सौ सवाल पूछें तो निन्यानबे को तो हम इनकार कर देंगे कि हमें मालूम नहीं है। एक का हम जवाब देंगे, वह भी हम इस भरोसे से देंगे कि अब तक इतना मालूम है। और कल ज्यादा मालूम हो सकता है, इसलिए हम अपने संदेह को किसी भी स्थिति में समाप्त नहीं कर देते। हमारा विश्वास भी संदेहपूर्ण है।
इसको मैं, पालन जो है, पालन तो करना ही पड़े, क्योंकि जिंदगी अगर जीनी है, तो निपट अविश्वास में नहीं जी जा सकती है। उसे तो विश्वास में ही जीना पड़े। लेकिन विश्वास में जीते हुए भी निरंतर संदेह को जागरूक रखा जा सकता है। तब हम किसी भी बिलीफ को एब्सल्यूट नहीं बनाते। तब सब बिलीफ रिलेटिव हो जाती हैं। यानी हम कहते हैं कि मैं इसे मानता हूं, लेकिन यह मेरा मानना जो है, रिलेटिव है और अब तक जो मैं जानता हूं, उसके हिसाब से ठीक है। कल जो मैं जानूंगा उसके हिसाब से गलत भी हो सकता है। इसलिए फ्यूचर हमेशा एक ओपनिंग है, क्लोज्ड नहीं है।

तो ऐसा विश्वास चाहिए जो संदेह कर सकता हो। और मेरी अपनी समझ है कि ऐसा विश्वास ही शक्तिशाली विश्वास है, जो संदेह भी कर सकता है। जो विश्वास संदेह करने से डरता है, उसे मैं इंपोटेंट कहता हूं, वह नपुंसक है। वह खुद ही डरा हुआ है कि संदेह करेंगे, तो मर जाएंगे। तो जो विश्वास संदेह भी कर सकता है--संदेह को मैं विश्वास की विरोधी प्रक्रिया नहीं कहता। संदेह को मैं विश्वास की श्वास कहता हूं। उससे उलटी नहीं है वह।

प्रश्नः डाउट और संशय में क्या फर्क है?

न, संशय बहुत और बात है। डाउट और संशय में फर्क है। संशय का मतलब है, इनडिसिसिवनेस। संशय का मतलब संदेह नहीं है। संशय का मतलब है, अनिश्चय। इन दोनों में बड़ा फर्क है। गीता का वह वचन बहुत ही गलत समझा गया। हमने संशय का मतलब संदेह समझ लिया।

प्रश्नः संशय का शब्दार्थ और भावार्थ दोनों में अंतर है?

हां, बहुत अंतर है। संशय का मतलब है, ऐसा आदमी, ऐसा आदमी जो अनिश्चय में है, जो निश्चय कर ही नहीं पाता। तो जो निश्चय नहीं कर पाता वह तो नष्ट हो जाएगा। लेकिन जो इतना निश्चय कर लेता है कि कभी संदेह नहीं कर पाता, वह भी नष्ट हो जाएगा।
जिसका निश्चय ऐसा निश्चय हो जाता है कि अब वह इसके ऊपर आंख उठा कर नहीं देखेगा, चाहे दुनिया बदल जाए, चाहे सत्य की सब स्थिति बदल जाए, लेकिन वह आंख बंद करके माना ही चला ही जाएगा कि जो मैंने पक्का किया था, वही पक्का है। और अब आंख खोलने से भी डरेगा कि कहीं कच्चा न हो जाए। ऐसा आदमी भी नष्ट हो जाएगा। तो मैं कहता हूं, संशय जिसके मन में है वह भी नष्ट हो जाता है। और संदेहहीन विश्वास जिसके मन में है, वह भी नष्ट हो जाता है। जीता तो वह है जो संदेहपूर्ण विश्वास कर पाता है। और संदेहपूर्ण विश्वास जो है, बड़ी डायनामिक प्रक्रिया है। और उसमें दोनों तत्व इकट्ठे हैं, एक साथ हैं।
तो इस मुल्क को कैसे संशयपूर्ण विश्वास दिया जा सके, या विश्वासपूर्ण संशय दिया जा सके, यह मेरा बुनियादी तथ्य है, जिस पर मैं जोर डालना चाहता हूं।

प्रश्नः और यह पुराना आप तोड़ना चाहते हैं, तो नया स्वरूप आपके वि.जन में है?

बिल्कुल ही। अन्यथा पुराने को...

प्रश्नः क्या?

हां, वह तो बहुत सी बातों का ख्याल लेना पड़े न। असल में पुराने को तोड़ने का कोई प्रयोजन ही नहीं है, जब तक कि नया जन्म लेने के लिए तैयार न हो गया हो।

प्रश्नः यह मकान तोड़ना है तो नया मकान अपने वि.जन में तो...

स्वभावतः, स्वभावतः। असल में नया वि.जन में हो, तभी यह पुराना मालूम पड़ता है, नहीं तो यह पुराना मालूम नहीं पड़ता है। पुराना जो है, वह कम्पैरेटिव टर्म है। असल में जब आपके नया वि.जन में आ जाए, तभी आप कह पाते हैं कि यह पुराना हो गया है। अन्यथा आप इसको पुराना नहीं कह सकते।
लेकिन इस देश में क्या हुआ है कि वि.जन हमने तोड़ दिया है। इस देश में क्या हुआ है, इस डर से कि कहीं पुराना न हो जाए हमारा, हमने वि.जन देखने की जो क्षमता है, वह तोड़ दी है। अब वि.जन की जो क्षमता है, वह अनिवार्य रूप से

कुछ तत्व हैं उसमें। जैसे, रहेंगे तो हम इसमें, लेकिन सोचेंगे उसकी जो अभी नहीं है। रहेंगे तो ज्ञात में, सोचेंगे अज्ञात की। रहेंगे तो अतीत में, कामना करेंगे भविष्य की, तभी वि.जन होगा।
यह मुल्क क्या है, रहता भी अतीत में है, सोचता भी अतीत की है! तो वि.जन पैदा नहीं होता। तो हमने क्या तरकीब लगाई है कि हम सोचेंगे भी अतीत की, रहेंगे भी अतीत में! न केवल हम राम के जमाने में रहेंगे, बल्कि राम-राज्य लाने की भी सोचते रहेंगे! जब राम-राज्य लाने की सोचेंगे तो वि.जन का कोई उपाय न रहेगा। सिर्फ रिपीटीशन रहेगा कि राम-राज्य कैसा था, उसको हम फिर से सोचते रहेंगे। इस देश ने दोहरा काम किया है, नया पैदा ही न हो सके, इसलिए पुराने में हम जीते हैं।
जीना तो स्वाभाविक है। जीना सदा पुराने में होगा। असल में जो भी बन जाएगा, वह बनते ही पुराना हो जाएगा। और रहेंगे तो हम पुराने में ही, इसलिए इसमें कोई उपाय नहीं है। लेकिन सोचना सदा भविष्य में होगा। होना चाहिए। पैर तो हमारे जमीन पर हों, लेकिन सिर हमारा आकाश में होना चाहिए। और हमारे पैर जहां खड़े हैं, अगर आंखें भी वहीं हैं, तो हम गड्ढे में गिरेंगे। आंखें वहां होनी चाहिए, जहां पैर कभी होंगे। अभी नहीं हैं जहां।
हमने क्या कर लिया है, हमने एक ऐसा मानस तैयार किया है, जो पीछे की तरफ जीता है, पीछे की तरफ देखता है। और अगर कभी भविष्य की कोई कल्पना भी करता है, तो वह सदा अतीत के अनुरूप करता है। वह उसकी पुनरुक्ति ही होती है। अगर हम भविष्य का उटोपिया भी बनाएं तो भी नाम हम राम-राज्य ही देना पसंद करते हैं।
इधर जो मेरा कहना है, इधर जो मेरा कहना है कि यह जो हमारी पकड़ है अतीत
के संबंध में, यह पकड़ टूटनी चाहिए। अतीत को तोड़ने का उतना सवाल नहीं है, अतीत की पकड़ तोड़ने का, वह जो क्लिंगिंग है हमारी, वह हमें तोड़नी चाहिए। अब जैसे कि एक बाप अपने बेटे को चलना सिखा रहा है, निश्चित ही बाप ही बेटे को चलना सिखाएगा। बाप अतीत है।

प्रश्नः अतीत का महत्व है।

न-न, उसका महत्व का तो कोई इनकार, सवाल ही नहीं है, लेकिन उसका इतना महत्व नहीं है, जितना भविष्य का है। जो मेरा एम्फेसिस है। अतीत का बहुत महत्व है, लेकिन इतना महत्व नहीं है, जितना भविष्य का है, क्योंकि अतीत वह है जो जीआ जा चुका। भविष्य वह है, जिसे जीना है। तो जो जीया जा चुका, वह हमेशा भूमिका ही बनेगा और जो जीना है, वह हमारा सपना होगा। उसमें हमारे हाथ फैलेंगे और जो जीआ जा चुका है उसे सदा ट्रांसेंड करना होगा, उसे पार करना होगा। तभी हम उसे जी सकेंगे, जो अभी नहीं जीआ जा सका है। इसलिए अतीत का बहुत महत्व है, लेकिन भविष्य से ज्यादा नहीं।
इस मुल्क के मन में अतीत का महत्व इतना ज्यादा है कि भविष्य का कोई महत्व ही नहीं है। अगर हम बहुत गौर से देखें, तो हमने भविष्य के लिए जगह ही नहीं रखी है, बल्कि हमने भविष्य को हमेशा ही अंधकारपूर्ण भाषा में सोचा है। हमारा सतयुग पहले होगा, हमारा स्वर्ण युग, गोल्डन एज पहले हो जाएगी। फिर भविष्य सदा कलियुग--और गिरा-गिरा-गिरा, अंत में बिल्कुल ही नष्ट हो जाएगा। भविष्य जो है, वहां महाप्रलय है। अतीत जो है, वहां सब स्वर्ण युग बीत गया है। तो भविष्य में हम रोज गिर रहे हैं।
डार्विन ने पश्चिम में एवोल्यूशन का ख्याल दिया, अगर हम अपनी फिलासफी
को कहें, तो हम उसे एवोल्यूशनरी नहीं कह सकते हैं। वह विकासात्मक नहीं है, वह पतनात्मक है। क्योंकि उसमें जो श्रेष्ठ है, वह पहले हो चुका, और जो निकृष्ट है, वह आने को है। तो जिस देश के दिमाग में निकृष्ट आने को है, और श्रेष्ठ हो चुका, स्वभावतः उसके लिए सबसे ज्यादा मूल्यवान अतीत होगा। और भविष्य तो एक दुख है, जिसे झेलना है। जब भविष्य एक दुख होगा, पीड़ा होगी, अंधेरा होगा, तो फिर भविष्य को सृजन करने का मन न रह जाएगा। ऐसा भविष्य का क्या सृजन करना है? भविष्य के संबंध में अगर कोई स्वर्ण की कल्पना न हो, तो विकासात्मक नहीं होगा समाज।

इस मुल्क का अति मोह है अतीत के प्रति। अति मोह तोड़ना है। अतीत का अपना मूल्य है। लेकिन उसका मूल्य वैसा ही है, उसका मूल्य वैसा ही है कि जिस सीढ़ी को हम छोड़ते हैं, उस पर पैर तो रखना होता है, लेकिन पैर इसलिए रखना होता है कि अगली सीढ़ी पर हम पैर रख सकें और पिछली को छोड़ सकें। अतीत सदा ही ट्रांसेंड करने के लिए, उसके पार जाना है, निरंतर पार जाना है। जिसके पार जाना है, उसको पकड़ने का भाव नहीं होना चाहिए। और जिसे पाना है कल, उसे पकड़ने का निरंतर भाव होना चाहिए। तो फ्यूचर जो है, भविष्य जो है, वह अधिक मूल्यवान है, मुल्क के चित्त में बैठना चाहिए। अतीत जो है, वह कम मूल्यवान है। और भविष्य जो है, वह अतीत से श्रेष्ठतर होने वाला है।
क्योंकि मन के कुछ नियम हैं। अगर मन एक बात स्वीकार कर ले, तो वह घट जाती है। अगर हम यह मान लें कि कल दुखद ही होने वाला है, इसमें कोई उपाय नहीं है, यह काल-व्यवस्था है कि कल दुखद होगा ही, तो पहली तो बात यह है कि मैं कल को सुखद बनाने का उपाय छोड़ दूंगा। और कल आसमान से नहीं आता, मुझसे ही आता है, आखिर कल का जन्म मुझसे ही होता है। तो जिसने स्वीकार कर लिया कि कल दुखद होने वाला है, पीड़ापूर्ण होने वाला है, उसने सुख बनाना तो बंद कर दिया, और वह दुख की प्रतीक्षा करने लगा। और दुख को प्रोजेक्ट भी करेगा, और कल अपनी भविष्यवाणी को पूरा करने के लिए वह कहेगा कि देखो, इतना-इतना दुख आ गया। तो वह जो सुखद आएगा, उसको देखेगा नहीं और जो दुखद आएगा, उसको बड़ा करके देखेगा। अपनी भविष्यवाणी में तृप्त हो जाएगा और राजी हो जाएगा कि हमारे ऋषि-मुनि जो कह गए थे, वह सही है।
तो भारत की जो काल-व्यवस्था है, उसको मैं गलत मानता हूं। हमारा गोल्डन
एज हमें भविष्य में ही रखना चाहिए और गोल्डन एज ऐसा है जो कभी आता नहीं, सिर्फ आता हुआ मालूम होता है। तभी हम गतिमान होते हैं। अगर कभी आ जाए तो फिर खतरा हो जाएगा। वह कभी आता नहीं। वह आता ही रहता है, और हम कभी उस हालत में नहीं होते कि हम कह दें कि आ गया। ऐसी हालत कभी नहीं होती कि हम कह दें कि पा लिया, क्योंकि पा लिया तो फिर पास्ट हो जाएगा।

प्रश्नः इटरनल लांगिंग है।

वह इटरनल लांगिंग है। तो भारत के मन में ऐसी लांगिंग नहीं है। इससे भारत का पतन बहुत स्वाभाविक हुआ।
हमारे सब ऋषि-मुनियों की भविष्यवाणी हमको पूरी भी तो करनी थी, तो हमें पतन करना पड़ा। और हमें पतन के लिए तैयार होना पड़ा। और अभी भी हम तैयार हैं। अभी भी अगर कल चीन आ जाए, अभी पृथ्वीराज जी से बात हो रही थी--अगर कल कोई दुश्मन हम पर हमला कर दे और कल हम और बर्बाद हो जाएं, कल और गरीबी आए, हमें भीख मांगनी पड़े; कल अस्सी में महा अकाल पड़ जाए और हमारे बीस करोड़ आदमियों को मरना पड़े, तो हम इसको भी कहेंगे कि--हम इसको भी एक बहुत भीतर खुशी से स्वीकार करेंगे। हम कहेंगे कि यह होने ही वाला था, यह तो कहा हुआ है कि कलियुग में यह सब होने वाला है। इसको भी हम हमारी जो भविष्यवाणी है, उसकी पूर्ति होने देंगे। यह होने वाला है।
अभी मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, वह तो महावीर ने कहा है कि पंचम-काल में लोग अनैतिक होंगे, व्यभिचारी होंगे। वह तो कलियुग में यह होने वाला है कि सब आदमी सब नीति-नियम छोड़ देंगे। तो बड़ी खतरनाक भविष्यवाणियां हैं हमारी, ये हमें तोड़नी पड़ें। और इनको अगर तोड़ना है तो हमें थोड़ा महावीर पर संदेह पैदा करने पड़ेंगे। नहीं तो पंचम-काल का मामला टूट नहीं सकता। और अगर हमें इन्हें तोड़ना है तो हमें कहना पड़े कि ऋषि कोई भविष्यवक्ता नहीं है, और ऋषि ने अगर ऐसा कहा है तो गलत कहा है। अब यह हमें चोटपूर्ण लगे, लेकिन हम उस...

प्रश्नः गलत कहा है, मगर जो स्थिति देख रहे हैं लोग उसका क्या?

जो हम देख रहे हैं वह हमने बनाई है, इस भविष्यवाणी का परिणाम है वह। अभी पीछे एक मजेदार घटना घटी है। कोई पांच साल पहले बंबई से किसी मित्र ने

मुझे एक पत्र लिखा। एक सज्जन रास्ते से गुजरते होंगे, और एक जैन साधु रास्ते पर अनायास उनको रोक कर कह दिए कि तुम्हारी उम्र तीन महीने में समाप्त।

प्रश्नः अनायास?

अनायास। कोई परिचय नहीं, कुछ नहीं।

प्रश्नः बिना पूछे?

हां, बिना पूछे। सिर्फ रास्ते से गुजरते वक्त। उनको कहा कि तुम्हारी उम्र तीन महीने से ज्यादा नहीं है! वे कुछ मुख-मुद्रा शास्त्र अध्ययन कर रहे होंगे और इस आदमी को उन्हें दिखाई पड़ा कि इसकी तीन महीने की उम्र है। इसके पूरे लक्षण, वे जो किताब पढ़ रहे होंगे, इसमें पूरे लक्षण उनको दिखाई पड़े। उन्होंने किसी बुरे भाव से नहीं इस आदमी को यह बात कही। इसने पहले तो इनकार किया कि भई, ऐसे कैसे मर जाऊंगा। एक-दो दिन उसने छिपाया। लेकिन ऐसी बात छिपाई नहीं जा सकती। उसने अपनी पत्नी को कहा कि भई मुझे अचानक साधु ने--और फिर अचानक, मैं पूछने नहीं गया, मैं परिचित नहीं हूं, मैं जैन नहीं हूं। तो उस आदमी का कोई प्रयोजन तो है नहीं और उसे कुछ दिखाई पड़ा और उसने मुझे कहा कि तुम तीन महीने से ज्यादा नहीं बचोगे। उसकी पत्नी का सुनना था कि उसने छाती पीटनी शुरू कर दी और उसने कहा कि मुझे तो बचपन में कहा था कि बत्तीस साल में मैं विधवा हो जाऊंगी, बत्तीस साल चल रहा है। तब तो बात बिल्कुल पक्की हो गई। अब इसमें तो कोई उपाय न रहा। वह खाट से लग गया। मेहमान देखने आने लगे।
तो मेरे एक मित्र उसके परिचित उसको देखने गए होंगे। तो उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि यह आदमी मरने की हालत में हो गया है, आप क्या कर सकते हैं? तो मैंने उसे एक पत्र लिखा कि तीन महीने तुम नहीं मरोगे, इसका पक्का मैं लेता हूं, और मैं बंबई आता हूं। तुम उस साधु को पकड़ने की कोशिश करो, उस पर मुकदमा चलाएंगे। तुम उसका पता लगाने की कोशिश करो वह कौन आदमी है। क्योंकि वह आदमी ने ठीक मर्डर का काम किया है, वह तुम्हारी हत्या...

प्रश्नः साइकोलॉजिकल मर्डर।

हां। तुम मार डाले जाओगे। और मैंने कहा, यह मैं वचन लेता हूं--और मुझे कुछ पक्का पता नहीं कि यह आदमी बचेगा कि मरेगा, मुझे कुछ पता नहीं, मुझे मालूम भी नहीं--पर मैंने उसे लिखा कि मैं यह वचन देता हूं कि तीन महीने में तुम नहीं मरोगे। और फिर कभी भी मर जाओ, नहीं मरोगे ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन तीन महीने में तुम नहीं मरोगे, और मैं आ रहा हूं, और तुम उस आदमी की फिकर करो।
जैसे ही मेरा पत्र उसे मिला वह खाट से उठा, और उसने कहा कि मैं जाकर पता लगाता हूं कि वह कौन आदमी था? मन में तो उसके पकड़ ही रही थी यह बात कि इस आदमी ने मेरे साथ कुछ बुरा किया, लेकिन अकारण था, इसलिए बुरा क्यों करेगा? उसने बामुश्किल खोज-बीन कर उसका पता लगाया। और जब उसने पता लगाया और मेरा पत्र ले जाकर दिखाया, तो वह साधु भी घबड़ा गया, क्योंकि मैंने उसे लिखा कि इस आदमी पर हत्या का मुकदमा चलाएंगे और तुम उसको पकड़ कर पुलिस में रिपोर्ट करो। तो वह साधु घबड़ा गया। उसने कहा, मुझे कुछ ज्यादा नहीं मालूम, मैं तो एक शास्त्र पढ़ रहा हूं, उसमें ये-ये लक्षण हैं कि ऐसा हाथ, ऐसी चेहरे पर ऐसी स्थिति हो तो आदमी तीन महीने में मर जाता है। मुझे कुछ पक्का मालूम नहीं है। तो उस आदमी ने उसको पकड़ लिया। जब वह डर गया साधु, तो इस आदमी का तो भरोसा उस पर बैठा था वह भी कम हो गया। उसने कहा, यह खुद ही डरा हुआ है, इसे भी कुछ पक्का मालूम नहीं है। मैं जब आया, तो उसने मुझसे कहा। मैंने कहा, तुम नहीं मरते हो अभी। वह आदमी जिंदा रहा, कोई ढाई साल बाद मरा।

यह जो आदमी है, यह मर सकता था तीन महीने में। इसमें कोई कठिनाई न थी। इसमें कोई कठिनाई न थी, यह आदमी मर सकता था। और ढाई साल में भी मरा, तो भी मेरी समझ है कि उस आदमी का हाथ फिर भी इसके मारने में है। इसकी जीवेषणा तो क्षीण हो ही गई। इसका एक दफा बल जीने से तो चला ही गया, इसके पैर तो एक दफा उखड़ ही गए। किसी पौधे को हमने एक दफे जमीन से तो निकाल ही लिया। फिर से लगा दिया, वह रह गया दो साल, लेकिन उसके भीतर कुछ चीज टूट गई। जीने की जो तीव्रता थी, वह क्षीण हो गई। और मरने का जो भाव था, वह प्रगाढ़ हो गया। हिंदुस्तान के साथ, पूरे मन के साथ ऐसा हुआ है। वह जो हमारी भविष्यवाणी है, वह जो हमारी कल्पनाएं और योजनाएं दिमाग में रही हैं, उन्होंने हमें पक्का कर दिया है। इसलिए फिर जो भी घटता है, हम उसको स्वीकार कर लेते हैं। हम मान लेते हैं कि ऐसा होगा। हमने एक हजार साल की गुलामी इसीलिए स्वीकार की। हम सब तरह का भ्रष्टाचार, सब तरह की अनीति स्वीकार करेंगे। क्योंकि हम मानते हैं कि यह सब होने वाला है, यह होना ही चाहिए। यह न हो तो हम चकित होंगे। तो हमको लगेगा कि क्या गड़बड़ हो गई? अगर सतयुग आ जाए तो हम भरोसा न कर पाएंगे एकदम से, क्योंकि हमको हमारे ऋषियों पर संदेह करना पड़ेगा। और अगर हम संदेह कर सकें इससे उलटा तो हम सतयुग भी ला सकते हैं। क्योंकि जो भी आ रहा है, वह हमारे मन से आ रहा है। हम स्रष्टा हैं। और समय में जो घटनाएं घट रही हैं, वह हमारे द्वारा घट रही हैं। और हमने क्या मान रखा है, उस पर सब-कुछ निर्भर है। सब-कुछ उस पर निर्भर है। एक बार अगर पूरे मुल्क का मन इसके लिए तैयार हो जाए कि स्वर्ग अभी लाना है, तो बहुत कठिनाई न हो, लेकिन पूरे मुल्क का मन अगर मान ले कि नरक आना है, तो नरक को लाना नहीं पड़ता, वह अपने से आ जाता है। क्योंकि उसके लिए कुछ नहीं करना पड़ता है। सिर्फ हम बैठे रहें, सिर्फ देखते रहें, तो भी आ जाएगा। और स्वर्ग के लिए तो कुछ करना पड़ेगा, सिर्फ देखने से नहीं आ जाएगा।
स्वर्ग हमारा सृजन है और नरक हमारी आलस्य की अपने आप आ गई व्यवस्था है।
तो वह आ रहा है। तो मैं जो, अतीत के साथ हमारे जो बहुत आग्रहपूर्ण संबंध हैं--अति आग्रहपूर्ण कहने चाहिए, कि आब्सेशन बन गया है, एक रुग्ण घाव बन गया है। ऐसी हालत हो गई है, जैसे किसी आदमी के पैर में चोट लग जाती है, तो दिन भर उसी में चोट लगती रहती है। चोट उसी में नहीं लगती, चोट तो रोज उस जगह लगती थी, लेकिन पता नहीं चलता था। अब घाव की वजह से बार-बार पता चलता है। तो हमारा अतीत एक घाव की तरह हमारी छाती पर है। वह हमारी पृष्ठभूमि नहीं है, जिस पर खड़े होकर हम आगे भविष्य में छलांग लगाते हैं। वह एक घाव की तरह है, जिसकी हमें सेवा-शुश्रूषा करके बचाना पड़ता है और उससे घाव मिटता नहीं, उससे घाव बड़ा हो रहा है। और घाव के धीरे-धीरे बड़ा होते-होते, हम सब घावग्रस्त हो गए हैं। और उस घाव के कई मुद्दे हैं। सब तरफ से उसने हमें पकड़ लिया है। जैसे, अतीत की इस घोषणा ने, अतीत की इस मान्यता ने, अतीत के इस विश्वास ने, भाग्यवादी हमें बना दिया है, क्योंकि हमने समय की एक निर्धारित व्यवस्था स्वीकार कर ली, एक डिटर्मिनिज्म। और इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिंदुस्तान में अगर कम्युनिज्म किसी रास्ते से आएगा, तो हिंदुस्तान के डिटर्मिनिज्म के रास्ते से आएगा, क्योंकि मार्क्स दुनिया में हुआ सबसे बड़ा डिटर्मिनिस्ट है।
हिंदुस्तान पर उसकी जो अपील किसी दिन भी बढ़ेगी, तो हिंदुस्तान का जो डिटर्मिनिस्ट माइंड है उसकी, वैसे हम तो सदा से यह मानते हैं कि चीजें तय हैं। अगर मार्क्स हिंदुस्तान में पैदा होता, तो हमने उसको ठीक बड़े ऋषियों में जगह दी होती। क्योंकि वह आदमी ऐतिहासिक रूप से भाग्यवादी है। वह यह कह रहा है कि कम्युनिज्म आने ही वाला है। यह किसी के लाने की बात नहीं है। यह आपके वश की बात नहीं है इसे रोकना, यह आने ही वाला है, यह इनएविटेबल है। यह तो नियति का हिस्सा है, डेस्टिनी है, कि पूंजीवाद के बाद कम्युनिज्म आएगा ही। अगर हिंदुस्तान के मन में कभी भी कम्युनिज्म गहरे जाएगा, तो वह हिंदुस्तान की भाग्यवादिता से जाएगा, कि यह आएगा ही।
हम सदा से ऐसा मानते रहे हैं कि ऐसा आएगा, ऐसा आएगा, ऐसा आएगा। हमें कुछ करना नहीं है। हम स्रष्टा की तरह नहीं हैं। हम राहगीर दर्शक हैं, जो

देख रहे हैं। जो आता है, उसको हम देख रहे हैं। फिर इसलिए राहगीर को कोई मतलब भी नहीं। जो आता है, उसे स्वीकार कर लेते हैं। यदि भारत को अपने भविष्य के बाबत कुछ भी निर्माण करना है, तो उसे बहुत सी अतीत की धारणाओं का विध्वंस करना पड़े, जैसे भाग्यवाद, उसे तोड़ देना पड़ेगा। और एक बार भी हमें यह पक्का ख्याल लाना पड़ेगा कि जो भी कल होगा, वह अभी तक तय नहीं है, वह अभी तय हो रहा है, वह तय होने की प्रक्रिया में है, और हम उसके तय करने वाले लोग हैं। अगर वह तय हो चुका है, सिर्फ अनफोल्ड हो रहा है, तो फिर ठीक है; हम फिर राहगीर, दर्शक हो जाते हैं।
हमने यह धारणा व्यक्तिगत रूप से स्वीकार की थी। उसके कारण थे कि हमारे पास समाज की कोई धारणा ही नहीं थी। असल में यह भी सोचने जैसा है कि भारत के पास कोई सोसाइटी का कंसेप्ट नहीं है। उसके पास जो कंसेप्ट है, वह व्यक्ति-व्यक्ति का है। इसलिए हमारा सारा चिंतन जो है, वह व्यक्तिवादी है। आप अपने भाग्य से तय हो रहे हैं, मैं अपने भाग्य से तय हो रहा हूं। हम दोनों का कोई सामूहिक भाग्य नहीं है। आपका अपना भाग्य है, मेरा अपना भाग्य है। आपका अपना भाग्य है, उनका अपना भाग्य है। हम सब अपने भाग्य को पार कर रहे हैं और इस वजह से कोई सामूहिक भाग्य, कोई राष्ट्र का भाग्य, कोई देश का भाग्य, कोई कलेक्टिव भाग्य--ऐसी हमारे पास कोई धारणा नहीं है कि हम सबका इकट्ठा भी कुछ है।

प्रश्नः धर्म और संप्रदाय की वजह से जो संगठन थोड़ा कुछ रहता था, इतना व्यक्तिगत तो नहीं था?

न, संगठन जो है, संगठन जो है, संगठन पर अलग से थोड़ी सी बात करनी पड़े। असल में संगठन बहुत तरह के हो सकते हैं। संगठन ऐसे हो सकते हैं जो आत्मघाती सिद्ध हों। अगर हम यहां इस कमरे में पच्चीस लोग हैं और इस कमरे के भीतर हम पांच संगठन बना लें, जो स्वविरोधी हों, एक-दूसरे को कंट्राडिक्ट करते हों, तो इससे तो अच्छा था कि पच्चीस ही असंगठित होते, तो इतना खतरा नहीं होता। पच्चीस लोग इस कमरे में अगर असंगठित हों, तो इतना खतरा नहीं है। लेकिन अगर पांच संगठन हों और आत्म-विरोधी हों और एक-दूसरे की दुश्मनी में खड़े हों, तो यह कमरा मरेगा। हम एक-दूसरे को काटते रहेंगे, और हो सकता है कि पांचों एक-दूसरे को इस बुरी तरह से काट दें कि कमरा बिल्कुल इंपोटेंट हो जाए, टोटेलिटी में।
तो हिंदुस्तान इंपोटेंट हुआ, हिंदुस्तान की अनेकता के कारण नहीं, हिंदुस्तान की टूटी-टूटी एकता के कारण। यानी, मैं नहीं मानता कि हिंदुस्तान बर्बाद हुआ है इसकी डिसयूनिटी के कारण। हिंदुस्तान बर्बाद हुआ मल्टी-यूनिटी के कारण। हमारे पास बहुत तरह की यूनिट्स हैं--हिंदू का अलग है, मुसलमान का अलग है। हिंदू के भीतर भी, ब्राह्मण का अलग है, शूद्र का अलग है। ब्राह्मण के भीतर भी एक ब्राह्मण का अलग है, दूसरे ब्राह्मण का अलग है। हिंदुस्तान को जो लोग कहते हैं कि हम अनेकता की वजह से मरे हैं, वे लोग गलत कहते हैं। हिंदुस्तान अगर अनेक भी होता तो इतना खतरा नहीं था। क्योंकि अगर हिंदुस्तान अनेक हो तो मेरे और आपके किसी भी दिन एक हो जाने में बाधा नहीं थी। किसी भी दिन जरूरत होती इमरजेंसी, तो हम इकट्ठे हो जाते।
लेकिन हम एक थे। मैं और आप तो एक हो सकते थे, लेकिन मैं हिंदू था, आप मुसलमान थे। अगर मैं भी आदमी होता और आप भी आदमी होते, तो हमारे बीच कोई संगठन न होता। तो कल अगर पूरे मुल्क में मुसीबत होती और मैं और आप इकट्ठे हो जाते तो हम दोनों की सामूहिक मौत थी। लेकिन मुसलमान पर खतरा आया तो हिंदू ने सोचा कि बहुत अच्छा हो रहा, यह तो आ ही जाना चाहिए था पहले ही और जब हिंदू का आया, तो हमने सोचा कि ठीक है, आ ही गया तो बहुत ही अच्छा हो गया। हिंदुस्तान अनेकता की वजह से नहीं मरा, न एकता की कमी की वजह से मरा, हिंदुस्तान मरा बहु-एकता की इकाइयों की वजह से। और वे सब इकाइयां अपने आप में राष्ट्र बन गईं। हिंदुस्तान मल्टि-नेशनल हो गया, हिंदुस्तान एक राष्ट्र नहीं रह सका, वह राष्ट्रीयताओं में विभाजित हो गया। यहां एक के

भीतर दो, दो के भीतर तीन--यहां इतनी एकताएं हो गईं कि उन एकताओं का इकट्ठा टोटल परिणाम जीरो हो गया। तो इसलिए मेरी अपनी समझ यह है कि हिंदुस्तान को एक नहीं करना, बल्कि उसकी मल्टी-यूनिट्स को तोड़ डालना है। यह उसका डिस्ट्रक्टिव कदम होगा।
और एकता ऐसी चीज है कि वह रोज की जरूरत नहीं है। मेरी अपनी समझ यह है। एकता रोज की जरूरत नहीं है, वह इमरजेंसी की ही बात है। और अब भी इमरजेंसी होती है, तब आदमी एक हो पाता है। नहीं तो नहीं होता, कोई कारण भी नहीं है। लेकिन अगर इमरजेंसी के वक्त में पहले से किए गए कमिटमेंट बाधा बन जाएं, तो फिर एक नहीं हो पाता। तो हिंदुस्तान में हम जितनी कोशिश करते हैं कि सारा देश इकट्ठा हो जाए, फलां-ढिंका वह सब असफल होने वाली है। बल्कि हमारी कोशिश भी अंततः एक नये यूनिट को और खड़ा कर जाती है। बस ज्यादा से ज्यादा जहां दस यूनिट थे, वहां हमारा एक ग्यारहवां यूनिट खड़ा हो जाता, जो कहता, सबको एक करना है। तो जो लोग इससे राजी हो जाते हैं, वे ग्यारहवीं यूनिट हो जाते हैं। वे उतने ही दस के दुश्मन हो जाते हैं, जितना बाकी दस आपस में थे। हिंदुस्तान में एक दफा हमें सब तरह की यूनिट्स तोड़ डालनी हैं। वह जो छोटे-छोटे यूनिट हैं उनको मिटाने की फिकर करनी चाहिए। जैसे गांधी जी ने कोशिश की कि हिंदू-मुसलमान एक हो जाएं, यह सफल नहीं हुआ मामला। अगर कोशिश होती कि हिंदू का यूनिट टूट जाए, मुसलमान का यूनिट टूट जाए, तो सफलता बहुत व्यापक हो सकती थी।

प्रश्नः हां, तो वह तरीके की बात हुई।

यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि
जब हम कहते हैं कि हिंदू-मुस्लिम एक हो जाएं तो हम दोनों के यूनिट को तो रिकग्नीशन दे देते हैं, पहली बात। तरीके की बात है, तो भी गलत है। टेक्नीकली भी गलत है।
हिंदुस्तान को बंटवाने में गांधी जी की कोशिश का जितना हाथ है, उतना किसी दूसरे आदमी की कोशिश का नहीं है। हालांकि गांधी जी ने जितनी फिकर की एक रखने की उतनी किसी ने नहीं की है। अब ये बातें कंट्राडिक्ट्री मालूम पड़ती हैं, लेकिन मुझे कंट्राडिक्ट्री नहीं दिखाई पड़तीं। मेरी अपनी समझ यह है कि जितना हमने जोर दिया कि हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई, उतना हमने साफ किया कि ये दोनों अलग-अलग हैं। असल में जब हम भाई-भाई कहते हैं, हम तभी कहना शुरू करते हैं, जब दुश्मनी की हालत खड़ी हो जाती है। उसके पहले हम कभी कहते नहीं। हम कभी नहीं कहते कि हिंदी-बर्मी भाई-भाई, हम हिंदी-चीनी भाई-भाई कह रहे थे। वह भय हमें पक्का था कि आज नहीं कल अगर दुश्मनी होनी है तो वह चीन से होनी है। बर्मा से नहीं होनी है, लंका से नहीं होनी है। हमने कभी नहीं कहा कि हिंदू-जैन भाई-भाई, हिंदू-सिक्ख भाई-भाई, वह हमने नहीं कहा। जो डर था, वह डर था मुसलमान से, तो हमने कहा हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई। वह हमारे भय का सबूत था। और वह जितना हमने दोहराया उतना ही साफ हुआ कि इन दोनों के बीच कोई गहरी दुश्मनी है, जिसको भाई-भाई कह कर हम पूरा करना चाहते हैं--एक।
और दूसरा, गांधी जी और उनके सब साथियों ने जितना जोर दिया कि हिंदू- मुस्लिम भाई-भाई, उससे वे भाई-भाई तो न हुए, लेकिन एक बड़ा अजीब परिणाम आया और वह यह कि अगर दो भाई एक न हो सकें, तो पार्टिशन हो जाना चाहिए। जो उसका बेसिक लॉजिकल कनक्लूजन है। अगर हमने भाई-भाई पर जोर न दिया होता, हिंदुस्तान और पाकिस्तान कभी पाटिशन नहीं हुए होते। क्योंकि पार्टिशन दो भाइयों के बीच होता है। पार्टिशन का ख्याल ही नहीं आता। ख्याल ही इसलिए आया कि दो भाई हैं, अब एक नहीं होते तो ठीक है; जैसा बाप की जायदाद बंट जाती है ऐसा हिंदुस्तान की जायदाद बंट जानी चाहिए। जब हमने जोर दिया भाई-भाई पर, तो हमको राजी होना पड़ा पार्टिशन पर, क्योंकि वह उसका कनक्लूजन था। फिर आप मना नहीं कर सकते।
जब भाई-भाई हैं तो पार्टिशन ठीक है। जब राजी नहीं होते तो अलग-अलग हो जाएं। अब यह देखने में उलटा लगता है। गांधी जी ने पूरी जिंदगी कोशिश की कि पार्टिशन बच जाए, लेकिन वे ही इसके जन्मदाता हैं। साइकोलॉजिकली वह जो

व्यवस्था कर रहे थे, वह व्यवस्था जिम्मेवार थी। उन्होंने कोशिश की हिंदू- मुस्लिम एक हो जाएं, उनके एक होने का अति आग्रह, इम्फैटिकली, हिंदू- मुस्लिम को अलग करता चला गया। यह जो कठिनाई है, यह अब भी आज भी मौजूद है। आज भी हम वही चिल्ल-पों मजा रहे हैं। गुजराती-महाराष्ट्रियन भाई-भाई, हिंदी गैर-हिंदी भाई-भाई। वह हम सब बकवास लगाए हुए हैं। टैक्टिक्स हमारी सब पुरानी है जो हजार दफे असफल हो चुकी हैं। यानी बड़ा मजा यह है कि जो चीजें हजार दफा असफल हो चुकी हैं उनको भी हम कभी छोड़ते नहीं, फिर उनका दुबारा वही उपयोग करने लगते हैं।
मेरा मानना है, यह गलत है। हमें यूनिट्स तोड़ने चाहिए। गुजराती और महाराष्ट्रियन एक न होंगे, गुजरात और महाराष्ट्र के यूनिट जाने चाहिए। हिंदी और गैर-हिंदी एक न होंगे, हिंदी और गैर-हिंदी का यूनिट हटना चाहिए। ये यूनिट हमें बचाने... तो मजा यह है कि एक तरफ हम यूनिट बचाते हैं। कहेंगे, लिंग्विस्टिक प्रॉब्लम है, तो एक तरफ यूनिट बचाएंगे, यूनिट को बसाएंगे, यूनिट को बनाएंगे, उसको डिफाइन कर देंगे, और इसके बाद हम कहेंगे कि अब सब एकता होनी चाहिए। यानी हम कुछ ऐसी एब्सर्ड कौम हैं कि जिसके दिमाग में तर्क जैसी चीज भी नहीं है कि हम कर क्या रहे हैं? हम कर क्या रहे हैं? अंग्रेज इस मुल्क को जिस बुरी तरह विभाजित नहीं कर पाया, हम उतना विभाजित किए दे रहे हैं बीस साल में।

प्रश्नः तो फिर क्या होना चाहिए अभी?

पहली तो बात यह है, मेरा कहना यह है कि जैसे इस मामले में हमें यूनिट्स तोड़ने चाहिए। जहां हमें यूनिट दिखाई पड़े, यूनिट को तोड़ना चाहिए। यूनिट नहीं बचाना चाहिए।

प्रश्नः यूनिट को रिकग्नाइज करते हैं, जैसे हिंदू-मुस्लिम को रिकग्नाइज करते हैं, तो उसका हिंदू-मुसलमान दोनों अलग-अलग हो गए हैं, ऐसे यूनिट को रिकग्नाइज करेंगे, तो यूनिट भी ऐसे ही अलग-अलग हो जाएंगे। वही सेम तरीका हो गया।

रिकग्नाइज नहीं। न। मैं जो कह रहा हूं--जैसे हिंदुस्तान को एक फेडरल गवर्नमेंट की जरूरत है। इसको स्टेट गवर्नमेंट की जरूरत बिल्कुल नहीं है। रिकग्नाइज नहीं कर रहे, बीमारी है और वह बीमारी को रिकग्नीशन दे रहे हैं आप, कभी लैंग्वेज के नाम पर, कभी प्राविंस के नाम पर और कभी किसी दूसरी बात के नाम पर। और सबके पीछे कुल कारण इतना है कि हिंदुस्तान के अधिकतम पोलिटीशियन की आकांक्षा कैसे तृप्त हो। तो जितना मुल्क टुकड़े में हो, उतनी तृप्त हो सकती है। उतने मिनिस्टर्स होंगे, उतनी कैपिटल्स होंगी, उतने गवर्नरस होंगे।
असली बुनियादी, कुल जमा उतनी ही कि हिंदुस्तान में कैसे पांच हजार आदमी मिनिस्ट्री में बैठे रहें और कैसे पचास गवर्नर हों और इसलिए रोज हर प्रांत को दो टुकड़े करने पड़ेंगे आपको, क्योंकि उस प्रांत को भी दुगुने राजनीतिज्ञ तृप्त हो जाएंगे अगर दो टुकड़े हुए। अगर सौराष्ट्र अलग हो जाए और गुजरात अलग हो जाए; अगर बरार अलग हो जाए और महाराष्ट्र अलग हो जाए, तो दुगुने राजनीतिज्ञों की तृप्ति होगी। वह जो बरार का राजनीतिज्ञ बंबई में नहीं बैठ पाता है मिनिस्ट्री में, वह कल अगर अमरावती राजधानी होगी या नागपुर राजधानी होगी, तो वह चीफ-मिनिस्ट्री में होगा।
मेरा कहना यह है कि हिंदुस्तान जब तक यूनिट को स्वीकृति देता चला जाता है, तब तक यूनिट और छोटे बनाने पड़ेंगे रोज। पचास साल में आपको एक-एक जिला एक-एक स्टेट होगी, इससे कम में कोई उपाय नहीं है। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आपकी जो प्रोसेस है, उसका लॉजिकल मतलब वह है, वह आज देख लेना चाहिए। हिंदुस्तान को फेडरल गवर्नमेंट की जरूरत है। यहां एक गवर्नमेंट काफी है। एक गवर्नमेंट हो तो मुल्क एक होता है, नहीं तो मुल्क एक नहीं होगा। दिल्ली में एक गवर्नमेंट पर्याप्त है। बाकी ये सारी स्टेट्स तोड़

देनी है। मैं जो कह रहा हूं, रिकग्नीशन का मेरा मतलब यह है कि यह हमें बीमारी को तो पहचानना पड़े कि यह बीमारी है।
अब जैसे मेरी समझ है कि अगर हिंदू और मुसलमान की बात तो तोड़ना था, तोड़ना था अगर, तो हमें हिंदू-मुसलमान की बात नहीं उठानी थी। बात नहीं उठाने का मतलब यह था कि यह प्रश्न आजादी का था, यह प्रश्न हिंदू-मुसलमान का था ही नहीं। यह मामला था ही नहीं। इस मामले को उठाने की जरूरत नहीं। इस सबको उठाने में गांधी जी ने खिलाफत के दिनों से उपद्रव शुरू किया। वह पूरे वक्त पहले तो मुसलमान की खुशामद करते रहे, ऐसी खुशामद जो कि बिल्कुल गैर-जरूरी थी। वह इसी डर से कि मुसलमान साथ हों। अब खिलाफत से गांधी जी का कोई मतलब न था।
टर्की में खलीफा रहता है या नहीं रहता, इससे गांधी जी को कोई लेना- देना नहीं था। हिंदुस्तान में बहुत से लोग खिलाफत शब्द से गलती में पड़े। वह समझे कि खिलाफत का मतलब कोई विरोध, कि आंदोलन है। वहां खलीफा टर्की में रहता है कि नहीं रहता है, इसका कोई सेंस नहीं था। जिन्ना का टूटने का कारण यह बना कि जिन्ना गांधी से ज्यादा नॉन-सेक्टिरियन आदमी था। जिन्ना ज्यादा सेक्युलर आदमी था। जिन्ना रिलिजियस आदमी नहीं था। और जिन्ना के टूटने का कारण यह बना कि जिन्ना को हैरानी हुई कि यह खिलाफत में गांधी जी किसलिए अलु-बंधुओं के साथ घूम रहे हैं? मुसलमान के मसले को गांधी जी क्यों ले रहे हैं हाथ में? गांधी जी हाथ में ले रहे हैं, क्योंकि वे मुसलमान को फुसलाना चाहते हैं, उसको इकट्ठा करना चाहते हैं। जिन्ना भयभीत हो गया, भयभीत हो जाना स्वाभाविक था। यह खतरनाक पॉलिटिक्स हो सकती थी। हिंदू क्यों उत्सुकता ले, इससे कोई मतलब न था। हिंदुस्तान की राजनीति को अगर नॉन-रिलीजस बेसिस मिली होती, जो कि गांधी जी की वजह से नहीं मिल सकी, क्योंकि गांधी जी बहुत गहरे रूप से हिंदू थे। सारा ढंग, जीना, व्यवस्था, सब हिंदू की थी। सारा महात्मापन जो था, वह सब हिंदू का था। गांधी जी का सारा व्यक्तित्व हिंदू का प्रतीक था और गांधी जी कहते भी थे कि मैं बुनियादी रूप से हिंदू हूं।
यह सारी की सारी बात ने एक स्थिति खड़ी कर दी जिसमें कि मुसलमान को भाई बनाना और कुरान को पढ़ना पड़े और गीता को पढ़ना पड़े। गीता की भी जरूरत न थी, कुरान की भी जरूरत न थी, गांधी जी के लिए सामने। मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि रिलीजस फैक्ट्स को हिंदुस्तान की राजनीति में जगह देने की कोई जरूरत ही न थी। एक दफा जरूरत बनाई आपने, फिर रोज-रोज एक-एक कदम आगे बढ़ना पड़ा और उसके लॉजिकल परिणाम यह कभी भी कहे जा सकते थे कि हिंदुस्तान बंटेगा। और अभी भी वही हो रहा है।
अब आपने लैंग्वेज को प्रॉब्लम बना लिया। अब मैं कह सकता हूं कि हिंदुस्तान बंटेगा। यह देर लग सकती है, दस-बीस, पचास साल की, लेकिन हिंदुस्तान बंटेगा। दक्षिण हिंदुस्तान, उत्तर हिंदुस्तान किसी भी दिन टूट सकता है, क्योंकि अब आपने दूसरा उपद्रव बना लिया, लैंग्वेज का। रिलीजन झंझट खत्म हुई, तो आपने लैंग्वेज की झंझट खड़ी कर ली। अच्छा, जिन्होंने रिलीजन की झंझट खड़ी की, वे भी बड़े अच्छे लोग थे और जिन्होंने लैंग्वेज की झंझट खड़ी की, वे भी कम अच्छे लोग नहीं थे। और जब कोई हम मसला उठाते हैं तब वह बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है।
बड़ा अच्छा मालूम पड़ता है कि प्रत्येक लैंग्वेज को उसका अलग प्रांत मिलना चाहिए और एकदम अच्छी बात मालूम पड़ती है। लेकिन इसके अल्टीमेट कनक्लूजंस क्या होते हैं, वे हमारे ख्याल में नहीं होते हैं। हिंदुस्तान हमेशा अच्छे आदमी की दलील से परेशान है। बुरा आदमी जो दलील देता है, उसकी कोई सुनता नहीं है कभी, क्योंकि वह बुरा आदमी है। अच्छा आदमी जो दलील देता है, वह सुन ली जाती है। और अच्छे आदमी के वहम में वह दलील भी स्वीकृत हो जाती है, और बड़े खतरे होते हैं।
अब जैसे हिंदुस्तान, लैंग्वेज बंटवाएगी हिंदुस्तान, उसका बंटवारा पक्का है। और अभी भी हम उसको रिकग्नाइज करते जा रहे हैं रोज। रोज हम देख रहे हैं कि रोज हम रेसिस्ट करते हैं, लेकिन जब आप एक जगह स्वीकार करते हैं तो पंजाब में कैसे बचेंगे स्वीकार करने से। जब आप एक प्रांत में स्वीकार

करेंगे, पंजाब में कैसे बचेंगे? और जब आपने हिंदू-मुसलमान को अलग मानने के आधार पर दो देश स्वीकार कर लिए, तो आप नागा को अलग मानने से कब तक बचेंगे? आपका दिमाग तो वही है। और तर्क भी वही है नागा का, वह भी कहता है, हम अलग हो जाना चाहते हैं, हम नहीं रहना चाहते आपके साथ। हमारा आपसे कोई लेना-देना नहीं। हम रेस अलग हैं, हमारा सारा जीवन अलग है। मुसलमान और हिंदू में इतना फर्क नहीं है, जितना कि भारतीय और नागा में। तो रेसियल फर्क हैं। मुसलमान और हिंदू तो एक ही खून के हैं, इसलिए इनमें कोई रेसियल फर्क नहीं है। इनका तो जो फर्क है वह रिलीजस लैंग्वेज का फर्क है। बाकी नागा और... बस्तर का आदमी है वह, उसको आप कब तक रोकेंगे? वह आदमी बिल्कुल अलग है। हिंदुस्तान एक बड़ा कांटिनेंट है। उसमें जैसे आप स्वीकार करते जाएंगे, आप मुश्किल में पड़ते चले जाएंगे। तो मेरा कहना यह है कि हमें बुनियाद से रिकग्नीशन बंद करना चाहिए।
अभी मैं अहमदाबाद था पीछे। तो वहां के हरिजन मंडल के मित्र मेरे पास आए। और उन्होंने कहा, गांधी जी आते थे, तो हरिजन के घर में ठहरते थे। आप क्यों नहीं ठहरते हैं? तो मैंने उनसे कहा कि अगर तुम अपने घर में मुझे बुलाओ, तो मैं चलने को राजी हूं, लेकिन हरिजन के घर में मैं न जाऊंगा। क्योंकि हरिजन को इतना रिकग्नीशन देना भी मैं पसंद न करूंगा कि वह हरिजन है और उसके घर मैं ठहरता हूं। यह बड़ा अच्छा रिकग्नीशन है, लेकिन हरिजन फिर हरिजन ही बना रहता है, और अब और खतरा हो जाता, क्योंकि बीमारी अब आदर योग्य मालूम पड़ती है।
अछूत होना बेहतर था, क्योंकि वह शब्द गंदा था और किसी को पकड़ने में सुखद नहीं मालूम पड़ता था। हरिजन बड़ा अच्छा शब्द है। जैसे टी.बी. को हम अच्छा नाम दे दें और ऐसा दिल हो कि दिल से लगाए रखें। अभी हरिजन शब्द खतरनाक है। यह बड़ा प्यारा मालूम पड़ता है और हरिजन भी गौरव अनुभव करता है कि मैं हरिजन हूं और आप मेरे घर ठहरे हैं आकर। मगर रिकग्नीशन जारी है और उसको हम फिर बांटे चले जा रहे हैं! यह हमें सारी बांटने की प्रक्रिया तोड़नी चाहिए। और जहां-जहां यह मुल्क टुकड़ों में बंटा है, वहां टुकड़े कैसे तोड़े जाएं, उसका सारा इंतजाम करना चाहिए। इस मुल्क को एक बनाने की जरूरत नहीं, इस मुल्क की भीतरी एकताओं को तोड़ने की जरूरत है। मैं जो बेसिकली बात करना चाहता हूं--और एकता इसका सहज परिणाम होगी, उसको लाने की जरूरत ही नहीं है।

प्रश्नः वह फेडरल गवर्नमेंट के माने में... ?

नहीं, बिल्कुल डेमोक्रेटिक हो, लेकिन स्टेट्स को अलग तोड़ने की जरूरत नहीं है। यह एडमिनिस्ट्रेटिव ब्लाक होने चाहिए, इनकी तोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। हिंदुस्तान की पॉलिटिक्स इतनी गंदी न हो, अगर हम इतने डबरे न बनाएं, लेकिन इतने डबरे बनाना पड़ते हैं क्योंकि इतने मेढक-मछलियां इतने डबरों में जी सकें।

प्रश्नः पाकिस्तान में भी यह हुआ...

वह सारे के सारे मामले यह हैं कि पाकिस्तान के मामले हिंदुस्तान से भिन्न नहीं हैं। हिंदुस्तान और पाकिस्तान एक ही माइंड के दो टुकड़े हैं। इनके मामले कभी भिन्न होने वाले नहीं हैं। जो मामला यहां है, वह मामला वहां है। वह तो यह भ्रांति थी हमको कि हिंदू-मुसलमान का मामला है, दिमाग का मामला है।
अब हुआ क्या है, जैसे बंगाल में, अब जो पाकिस्तान का बंगाली हिस्सा है,
वह जो बंगाली पाकिस्तानी है, वह पश्चिमी पाकिस्तानी के खिलाफ है, क्योंकि पंजाब से जो मुसलमान गया है या सिंध से जो मुसलमान गया है ढाका, वह उसका उतना ही दुश्मन है, जितना कि कलकत्ते का आदमी मारवाड़ी का और गुजराती का दुश्मन है। ये सब फॉरेनर्स हैं। कलकत्ते में फॉरेनर है मारवाड़ी, ढाका में फॉरेनर है लाहौर का आदमी। इसमें कोई फर्क का मामला नहीं है।

प्रश्नः धर्म है न?

न, अब धर्म-वर्म नहीं रहा। असल में हमारी मनःस्थिति जो है, हमारा जो माइंड है, वह लड़ने की वृत्ति वाला है। वह बहुत तरह की वृत्तियां उसमें लड़ने की हैं। एक मुद्दा खतम होता है, हम दूसरा मुद्दा लड़ने के लिए फौरन ईजाद कर लेते हैं। और मैं मानता हूं कि अगर ऐसा ही हो, तो पुराने मुद्दे पर ही लड़ना बेहतर रहता है, कम से कम नये मुद्दे तो नहीं बनते। अगर हिंदू- मुसलमान इकट्ठे रहते, तो गुजराती-मराठी का झगड़ा कभी नहीं होता। हिंदुस्तान-पाकिस्तान अगर इकट्ठे होते तो गुजराती-मराठी का झगड़ा कभी नहीं होने वाला था। क्योंकि एक बड़ा झगड़ा हमको काफी तृप्ति दे रहा था। अब वह झगड़ा खतम हो गया।
हमारा दिमाग लड़ने वाला है। अब वह कहता है कि नया झगड़ा कैसे खोजना? अब
वह गुजराती-मराठी लड़ रहा है। आप गुजराती-मराठी का लड़ना छोड़ना बंद कर दें, गुजरात को पूरा यूनिट बना दें, तो सौराष्टी और गुजराती लड़ेगा। वह बच नहीं सकता। वह माइंड वही है। वह तत्काल नये डिवीजन खड़े करके नई यूनिट बना कर लड़ाई शुरू कर देता है। इस माइंड को तोड़ना पड़े। और इस माइंड को तोड़ने के सारे उपाय किए जा सकते हैं। लेकिन हम क्या करते हैं, हम इस माइंड को तोड़ना नहीं चाहते, इस माइंड के रहते हुए यूनिटी चाहते हैं।
हम कहते हैं, आप मुसलमान, मुसलमान धर्म बहुत अच्छी बात है। आप हिंदू,
और हिंदू धर्म का तो कहना ही क्या, बहुत महान चीज है। अब आप दोनों एक हो जाओ। आपकी दोनों की नासमझियों को पहले हम तारीफ कर दिए, उनको हम पुख्ता कर दिए और अब दोनों से कहा कि दोनों इकट्ठे हो जाओ। अजीब पागलपन है। कहना पड़ेगा कि तुम्हारा मुसलमान धर्म भी पागलपन है जो आदमी को कटवा दे, तुम्हारा हिंदू धर्म भी पागलपन है जो आदमी को कटवा दे। इतनी हिम्मत जब तक हम न जुटा पाएं। जब तक हम दोनों को कहते रहें कि तुम भी ठीक, तुम भी ठीक और दोनों ठीक, और अल्ला-ईश्वर तेरे नाम! और दोनों आ जाओ और दोनों गले-गले मिल जाओ।
यह होने वाला नहीं है। हमको कहना पड़े कि उसका नाम अल्लाह भी नहीं है
और उसका नाम ईश्वर भी नहीं है। उसका कोई नाम नहीं है और जब तक तुम नाम ले रहे, तुम बिल्कुल नासमझ हो। हमें इस तल पर चोट करनी पड़े, तो हम यूनिट्स तोड़ सकें, और एक बार यूनिट्स टूट जाएं, तो इस मुल्क में एकता लानी कठिनाई नहीं है। और एकता हमेशा इमरजेंसी की जरूरत है, रोज की जरूरत नहीं, यह भी हमें एक पागलपन है। हम चिल्लाते हैं कि एकता, एकता--हमारे लिए रोज की जरूरत बन गई, क्योंकि ये छोटे-छोटे टुकड़े रोज जान ले रहे हैं; नहीं तो एकता इमरजेंसी की बात है।
जब मुल्क पर कभी हमला हो, कोई मुल्क पर दुश्मन आ जाए, तो मुल्क इकट्ठा
हो जाता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभी भी जैसे चीन का हमला हुआ था, तो आप इकट्ठे हो गए थे। इसलिए एकता कोई रोज की जरूरत नहीं है। वह तो बीमारी जब आएगी, तो दवा का इलाज कर लेंगे, इसकी कोई जरूरत ही नहीं है। हमको जरूरत पड़ रही है, क्योंकि हम रोज उपद्रव में पड़े हुए हैं।

प्रश्नः आई डर योर अटेंसन, दैट फेडरेशन दि टॉप ऑफ फेडरेशन विच यू मीन
यू नो, बिकाज वेस्ट पाकिस्तान ट्राइड फॉर फेडरेशन। दै हैव डिजाल्वड ऑल दि यूनिट्स, दै मैड इनटु वन फेडरेशन। नाउ दे हैव टु कम बैक टु दि यूनिट्स, बिकाज ऑफ दि डिमांड।

उसके कारण हैं पॉलिटिशियंस। असल में इतने पॉलिटिशियंस हैं मुल्क में
कि इन सबकी तृप्ति कैसे हो।

प्रश्नः यह ह्यूमन नेचर है?

नहीं, यह ह्यूमन नेचर नहीं है। असल में यह बड़े मजे का सवाल आपने पूछा। ह्यूमन नेचर जैसी कोई चीज नहीं है। यानी इसका मतलब यह है कि आप ह्यूमन नेचर को जैसा बनाना चाहें, वह बन जाता है। ऐसी कोई फिक्स्ड चीज नहीं है। इसलिए अगर किसी देश में स्त्रियां महत्वपूर्ण हैं और पुरुष कम महत्वपूर्ण हैं, तो वहां ऐसा लगता है कि ह्यूमन नेचर है कि स्त्री महत्वपूर्ण रहेगी, पुरुष महत्वपूर्ण रहेगा।
अब जैसे कि कुछ इलाकों में जहां कि स्त्री महत्वपूर्ण है, वहां स्त्री खड़े होकर पेशाब करेगी, पुरुष बैठ कर पेशाब करेगा। इम्पार्टेंस जिसकी है वह खड़े होकर कर सकता है। इसकी इम्पार्टेंस नहीं उसको बेचारों को बैठ कर करना पड़ता है। उस इलाके का आदमी सदा से ऐसा ही सोचता था कि यह ह्यूमन नेचर है कि स्त्री खड़े होकर पेशाब करती है, पुरुष बैठ कर पेशाब करता है। जब पहली दफे उसने पुरुष को खड़े होकर करते देखा और स्त्री को बैठ कर तो उनको पता चला कि यह ह्यूमन नेचर नहीं है। ह्यूमन नेचर जैसी कोई फिक्स्ड चीज नहीं है। ह्यूमन नेचर बहुत फ्लेक्सिबल चीज है। इसलिए हजार तरह का ह्यूमन नेचर हो सकता है। आप कैसा विकसित करते हैं। तो यह जो इंडियन माइंड है, उसने एक कंडीशनिंग विकसित की है।
अब जैसे, कुछ बातें हम विकसित करते हैं परंपरा से। लंबे अर्से में वे फिक्स्ड हो जाती हैं। एक दफा फिक्स्ड हो जाएं तो नेचर बन जाती हैं। आदत ही होती है लेकिन वह नेचर बन जाती है। अब जैसे कि यह लड़ने की जो वृत्ति है, लड़ने की वृत्ति के हजार रूप हो सकते हैं। लड़ने की वृत्ति बड़ी फ्लेक्सिबल चीज है। वह वृत्ति है। हमने क्या किया है कि पहले तो हम जो बुनियादी चीजें हैं, उनको स्वीकार नहीं करते हैं। फिर वे कनिंग रास्ते खोज कर निकलती हैं। जैसे लड़ने की वृत्ति।
इसे हमें स्वीकार करना चाहिए, यह है। लेकिन हम कहेंगे, यह नहीं, मनुष्य का तो धर्म ही नहीं है लड़ना। हम क्या करेंगे, कि पहले तो इसको इनकार कर देंगे कि मनुष्य का धर्म ही नहीं है लड़ना, यह तो पशु का धर्म है। इसको पशु का धर्म तय कर देंगे और मनुष्य भी लड़ने की वृत्ति से भरा हुआ है, जो स्वाभाविक है। इसके लिए हम कुछ न करेंगे और मनुष्य को हम समझाएंगे कि मनुष्य तो कभी लड़ता ही नहीं। मनुष्य तो महान है। अब वह उस बेचारे के भीतर जो वृत्ति है, वह क्या करे? अब वह कोई तरकीबें निकाले--वह मस्जिद के पीछे से लड़ेगा, मंदिर के पीछे से लड़ेगा, भाषा के पीछे से लड़ेगा।
अगर हम सीधा-सीधा स्वीकार कर लें कि लड़ने की वृत्ति मनुष्य का हिस्सा है, तो हम उसके लिए आउट-लेट खोज सकते हैं, ज्यादा उचित। जैसे कि खेल में, अभी पृथ्वीराज जी एक बात कह रहे थे, अगर हम अपने मुल्क के लड़कों को तीन घंटे ग्राउंड पर खेल खिला सकें, तो हम मुल्क की नब्बे परसेंट उपद्रव को कम कर दें। अब एक उम्र है, जब एक बच्चा दो घंटे तक गेंद फेंकता है, यह उसको नहीं मिलता फेंकने को, वह पत्थर फेंकता है। वह पत्थर बस पर फेंकेगा, कांच पर फेंकेगा। आप उसको तीन घंटे ग्राउंड पर गेंद फिंकवा दें, स्टिक लड़वा दें, लकड़ियां जुड़वा दें, वह तीन घंटे बाद तृप्त होकर घर लौट आएगा।
यह बड़े मजे की बात है कि आमतौर से शिकारी तरह के लोग बहुत भले लोग होते हैं। उनकी हिंसा वहां निकल जाती है। और जिनको आप बहुत भले आदमी कहें, वे अक्सर बुरे आदमी होते हैं। हिटलर सिगरेट भी नहीं पीता है, शराब भी नहीं पीता है, मांस भी नहीं खाता है, नौ बजे रात सो जाता है। पक्का महात्मा है हिटलर जो है। और मनोवैज्ञानिक अब कह रहे हैं कि अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पीता होता, जुआ खेलता होता, वेश्या के घर हो आया होता, शराब पी लेता, तो दुनिया युद्ध में न जाती। इस आदमी का कुछ तो निकल जाता।

प्रश्नः इसका मतलब तो यह हुआ कि जो अपने में जो कोई वृत्ति है उसको निकालने का कोई रास्ता...

उसके वैज्ञानिक रास्ते खोजने चाहिए।

प्रश्नः संयम का... तो नहीं है

न, न, न। उससे ही संयम पैदा होता है। आप नहीं समझे। संयम जो है, वह सप्रेशन नहीं है। संयम जो है, वह सब्लिमेशन है। अगर एक युवक, एक उम्र है जब वह लड़ना चाहता है, और मैं समझता हूं कि लड़ने की बात युवा होने का लक्षण है। और जिस दिन नहीं होगी दुनिया में, उस दिन दुनिया बड़ी फीकी हो जाएगी। अब रहा लड़ने का जो क्षण है, इस लड़ने के क्षण को हम गौरवपूर्ण बना पाते हैं कि अगौरवपूर्ण बना देते हैं। यह हमारा सामाजिक-व्यवस्था और चित्त के सोचने की बात होगी।
अब जब युवक लड़ना चाहते हैं तब आप उनको इस ढंग से लड़ाएं कि लड़ना खेल हो जाए और गंभीरता न बन जाए। लड़ेंगे तो वह पक्का। अगर आपने खेल न बनाया तो हिंदू-मुसलमान के नाम से लड़ लेंगे। लड़ेंगे तो पक्का, लड़ने से नहीं रुक सकते।

प्रश्नः आविष्कार करेंगे।

हां, वे आविष्कार करेंगे। फिर कोई अपनी तरफ से करेंगे। तो जो सोसाइटी निकास दे देती है, उस सोसाइटी में उपद्रव दिशा ले लेगी। फिर इन उपद्रव को हम क्रिएटिव भी बना सकते हैं। अब जैसे कि खतरे की एक वृत्ति है युवक के पास। एक उम्र तक वह खतरा लेना चाहता है--चाहें तो आप हिमालय पर चढ़वा लें, समुद्र पार करवा लें, वृक्षों पर चढ़वा लें, आकाश में हवाई जहाज उड़वा लें। अगर आप यह न करवा पाए, तो भी खतरे तो लेगा। तो पड़ोस की स्त्री को धक्का
ही मार देगा, मगर तब वह बेहूदा हो जाएगा और बेमानी हो जाएगा। और वह भी उससे नुकसान उठाएगा और जिसके साथ वह खतरा लेगा, वह भी नुकसान उठाएगा और पूरी सोसाइटी करप्ट होगी। मेरी अपनी समझ यह है कि अगर हम मनुष्य की सारी वृत्तियों को सहज स्वीकार कर लें, मेरा बुनियादी ख्याल वह है कि हम मनुष्य की सारी वृत्तियों को सहज स्वीकार कर लें और फिर उनके निकास की वैज्ञानिक और क्रिएटिव, सृजनात्मक दिशा खोजें। जैसे कि हम मान कर चलते हैं, हम चाहते हैं कि लड़कों में पच्चीस साल तक सेक्स ही न हो। अब ये बेहूदी की बातें मान कर हम चलते हैं! इसको हम मान तो लेते हैं और ब्रह्मचर्य ही जीवन है, ऐसी तख्ती भी लगा देते हैं जगह-जगह। लेकिन इसका कोई परिणाम तो होने वाला नहीं है। हां, इसका एक ही परिणाम होता है कि सेक्स को जो हम क्रिएटिव मार्ग दे सकते थे, वह हम नहीं दे पाते हैं। और तब सेक्स परवर्ट होता है और हजार तरह के उलटे रास्ते खोजता है।

प्रश्नः क्रिएटिव मार्ग क्या है?

क्रिएटिव मार्ग का मेरी अपनी समझ यह है कि सेक्स के बहुत से डाइमेन्शन हैं। अगर लड़के और लड़कियों को बचपन से साथ बड़ा किया जाए, तो एक डाइमेन्शन उनका तृप्त हो जाता है, जो कि बहुत बड़ा डाइमेन्शन है। लड़के लड़कियों को जानना चाहते हैं, लड़कियां लड़कों को जानना चाहती हैं।

प्रश्नः क्युआरिसिटी है।

क्युआरिसिटी है। यह क्युआरिसिटी गलत हो सकती है। यह क्युआरिसिटी गलत
हो गई है। जब आप किसी के की-होल में से झांक कर देखते हैं, तब यह जरा अशोभन हो गई। या किसी की दीवाल के बगल में कान लगा कर किसी के घर की बातें सुनते हैं तब यह अशोभन हो गई।
यही क्युआरिसिटी विज्ञान बन जाती है। तब भी आप कान लगा कर सुन रहे हैं, लेकिन तब आप एटम की आवाज सुनने की कोशिश कर रहे हैं कि एटम क्या कर रहा है? यही क्युआरिसिटी, इसमें कोई फर्क नहीं है मामले में। और जब आप एक एटम के पास बैठ कर घंटों उधेड़बुन कर रहे हैं, तब भी वही क्युआरिसिटी है। लेकिन हमारे मुल्क की क्युआरिसिटी सेक्स के आस-पास घूम कर ही और नष्ट होती है।

साइंटिफिक नहीं हो पाती। जिस मुल्क में सेक्स फ्रीडम होगी, उस मुल्क में साइंस का जन्म तत्काल शुरू हो जाता है।
यूरोप में पिछले तीन सौ वर्षों में जिस मात्रा में सेक्स की फ्रीडम बढ़ी, उसी मात्रा में साइंटिफिक इनवेंशन बढ़ा। इसके भीतर पैरेलल संबंध है। असल में जब सेक्स की क्युआरिसिटी खत्म हो जाती है, तो क्युआरिसिटी कहां जाए? एक स्त्री को आपने नग्न देख लिया, अब आप क्या करिएगा? अब स्त्री को नग्न देखने की बात तो खतम हो गई। अब आप कोई और गहरे तल पर किसी और चीज को नग्न करेंगे, अनकवर करेंगे। अब आप प्रकृति को नग्न करने चले जाएंगे। आप एवरेस्ट पर चढ़ेंगे या हिमालय के गौरीशंकर को उघाड़ेंगे, या कुछ और करेंगे। मैं नहीं कहता हूं कि जो पश्चिम हो गया, वह बिल्कुल ठीक हो गया। कहता मैं यह हूं कि उससे हमें बहुत कुछ सीखने योग्य है। उसमें बहुत कुछ समझने योग्य है। जो भी सेक्स सप्रेसिव समाज है, वह साइंटिफिक नहीं हो पाता है। उसकी क्युआरिसिटी सेक्स के आस-पास रह जाती है। और मेरा मानना है कि लड़के और लड़कियों को साथ बड़ा करना चाहिए। उन्हें साथ दौड़ने दो, खेलने दो, तैरने दो। उनके बीच भी यह हिंदू-मुसलमान से भी बड़ा खतरा हम खड़ा किए हुए हैं--लड़की अलग और लड़का अलग!

प्रश्नः वह जो नेचरल इंस्टिंक्ट है, वह कुछ न करने का कर बैठती है, तो उसके लिए क्या उपाय है?

वह जो भय है आपका, उस भय की वजह से वह नहीं रुकती। उस भय की वजह से वह दुगुना कर बैठती है। और उलटे रास्तों से करती है, जो कि बीमार और रुग्ण हो जाते हैं, एबनार्मल हो जाते हैं। जो नार्मल है, करने योग्य है, उसको रोकने की वृत्ति भी आपकी गलत है। मेरा मतलब समझ रहे न? जो नार्मल और करने योग्य है, जैसे चौदह साल का लड़का और लड़की हो गए हैं, वे प्रेम करेंगे। अगर इनके प्रेम को हम सहज व्यवस्था दे सकें, और इनको सेक्स की पूरी शिक्षा दे सकें, और इनको करीब आने का पूरा मौका दे सकें, तो ये खुद भी इतने रिस्पांसीबल हो जाएंगे कि सौ में दस मौके ही उस खतरे के हैं, जो आप कह रहे हैं। और आप जो करवा रहे हैं, उसमें नब्बे मौके हैं और दस मौके बचने के हैं। जो बचेंगे वे होमोसेक्सुअल हो जाएंगे, वे और दूसरे उपद्रव कर लेंगे, जिनकी वजह से जिंदगी भी खतरे में पड़ जाएगी। अब मेरी अपनी समझ यह है--हॉस्टल्स और युनिवर्सिटी में बहुत दिन रहने के बाद--कि बहुत मुश्किल से ऐसे लड़के मिलेंगे, जो मस्टर्बेशन नहीं कर रहे हों, होमोसेक्सुअल नहीं हैं। बहुत मुश्किल से लड़कियां मिलेंगी, जो होमोसेक्सुअल नहीं हैं।

प्रश्नः वह आउट-लेट।

आउट-लेट वे खोजेंगे। आपने एक आउट-लेट बंद किया, जो कि नैसर्गिक था। वे
जो आउट-लेट खोज रहे हैं...

प्रश्नः उसमें जो परवरशंस का भय हो जाता है, यह क्या है?

यह तो होगा न, यह होगा, क्योंकि जितनी भी अप्राकृतिक व्यवस्था होगी, उतनी ही स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने वाली होगी। स्त्री और पुरुष का संबंध स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने वाला नहीं है। लेकिन अगर परवरशंस पैदा हो जाएं तो स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचने वाला है। अप्राकृतिक है वह। और दूसरी बात, एक दफा अप्राकृतिक मार्ग बन जाए आपके दिमाग का, तो उसे प्राकृतिक मार्ग पर लौटाना असंभव हो जाता है।

प्रश्नः मगर उसमें कुछ विवेक जैसी चीज होनी चाहिए।

विवेक। समझ गए आप।

प्रश्नः एक-दो किताब मैंने देखी है, मुझे अच्छी लगी। मगर ये स्वामी जी
की हैं। मैं जो मन को...

यह आप तभी तक रोक सकते हैं, जब तक आपके पास भी किताबें हों। अगर आपके पास बिल्कुल किताबें हों, तो स्वामी जी भाड़ में जाएंगे, आप किताब चुरा ले जाएंगे। मेरी बात आप समझ रहे हैं न? विवेक जो है न, विवेक जो है, वह भी आसमान से नहीं उतरता, वह भी व्यवस्था से आता है। असल में अगर एक लड़का और लड़कियों के साथ बड़ा हुआ है, उसने सब तरह की लड़कियों के साथ खेला और कूदा है, तो पहली तो बात यह है कि लड़की में जो एक पागल आकर्षण मालूम होता है, वह बहुत गुणा क्षीण हो जाता है। तो आपकी पत्नी को वह रास्ते पर धक्का इतनी आसानी से नहीं मार सकता। उसके भीतर भी आकर्षण में बुनियादी फर्क पड़ता है। दूसरी बात, जैसे-जैसे वह परिचित होता है, और अगर हमारी कोई रुकावटें न हों। अब जैसे समझ लें कि एक आदमी जिसको घर में खाना ठीक से मिलता है, उससे बहुत कम संभावना है कि अगर एक रात उसको खाना न मिले तो वह दूसरे के घर में चोरी करने चला जाए। एक रात में यह संभव नहीं है। लेकिन एक आदमी को खाना ही न मिला हो और आपके सामने किचन में ही बिठा कर उसको रखा गया हो और किचन तक हाथ भी न बढ़ाने दिया जाता हो और उसको अगर आज रात मौका मिल जाए और भूखा हो, तो संभावना बहुत कम है कि विवेक काम कर पाए। विवेक के काम करने की भी सिचुएशन चाहिए। हम विवेक की तो बात करते हैं, लेकिन सिचुएशन बिल्कुल अविवेकपूर्ण है।
मेरी दोनों बात पर जोर है। मेरा कहना है पहले तो सिचुएशन ऐसी बनाएं जिसमें विवेक काम कर सके। दूसरा विवेक पैदा करने का आपका क्या उपाय है? बाप कभी बात नहीं करता बेटे से सेक्स की, मां कभी बात नहीं करती, शिक्षक कभी बात नहीं करता। विवेक आसमान से आ जाने वाला है? उसके भीतर जो नेचरल इंस्टिंक्ट आएगी, बिल्कुल एनिमल होगी और कोई दुनिया में उसको बताने वाला नहीं कि क्या हो रहा उसके भीतर। वह तो यही समझेगा कि मैं ही एक कोई पापी हूं, दुनिया में यह हो ही नहीं रहा। बाप जो है, उसको यह हो नहीं रहा।
अभी कल मुझे एक लड़के का पत्र आया। उसने लिखा है कि मैं तो सदा ही समझता
था कि मेरे बाप को सेक्स जैसी कोई चीज ही नहीं है, लेकिन मैंने जब उन्हें मां के साथ संभोग करते देखा, तो मैं हैरान हो गया कि मुझे ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया जा रहा है। तो उस दिन से मैं बाप का ऐसा दुश्मन हो गया हूं और उसने जो पत्र लिखा, वह बहुत हैरानी का है कि बाप का मैं दुश्मन हो गया हूं तो मैं अपने बाप के प्रति वापस श्रद्धा कैसे पैदा करूं, यह मुझे लिखिए। और मुझे एक अजीब चीज चल रही, जो मैं किसी को नहीं कह सकता। मैं भी अपनी मां से संभोग करना चाहता हूं, जब बाप कर रहा है। अब यह जो, यह परवर्शन हो गया। लेकिन यह इतना खतरनाक है कि यह लड़का अगर किसी एक लड़की से संभोग करना चाहे, तो नेचुरल है, लेकिन अगर यह मां से करना चाहे तो यह परवर्शन है। और यह परवर्शन इसके मां-बाप दोनों ने मिल कर पैदा किया है, क्योंकि दोनों इसको यह दिखा रहे हैं कि इस तरह की बात ही नहीं है कोई। इसको एकदम अंधेरे में रखा जा रहा है। और इसको उपदेश पिलाए जा रहे हैं। उपदेश ऐसे हैं, जो उनके व्यक्तित्व के बिल्कुल विपरीत हैं। एक बाप को स्वीकार करना चाहिए कि सेक्स जीवन की सहज स्थिति है, मां को स्वीकार करना चाहिए सहज स्थिति है। इस बच्चे को नार्मल बनाने के लिए जरूरी है कि जो इसके भीतर उठ रहा है,
यह सहज इसको बताया जाए कि सहज से घबड़ाने की कोई बात नहीं है। यह कोई बीमारी पैदा नहीं हो रही तुम्हारे भीतर। इसको अकेले कैदखाने में डाल देने की जरूरत नहीं कि अपनी बीमारी को खुद ही सोचे। इसको साथी मिल जाएंगे, जो इतने ही अनजान और अशिक्षित हैं। इसको लोग मिल जाएंगे, जो इसको गलत रास्तों पर डाल देंगे। सेक्स की पूर्ण शिक्षा विवेक लाने में बड़ी सहयोगी है--एक। सेक्स के संबंध में कंडेमनेशन का भाव हट जाए तो विवेक आने में बड़ा सहयोग मिले। सेक्स कोई पाप नहीं है, परमात्मा की शक्ति है। ऐसी दिव्यता की धारणा अगर पैदा की जाए, तो सेक्स का दुरुपयोग करना मुश्किल हो जाए।

प्रश्नः तो फिर आप जैसे संत, साधु सब हैं, ब्रह्मचर्य का पालन और संन्यास, यह सब क्या है?

यह बिल्कुल ही, यह बिल्कुल ही अवैज्ञानिक बकवास है। और जो भी इन बातों
को कर रहा है, उसे...

प्रश्नः क्योंकि एक बात में इनका हंगामा मचा है लोगों में कि यह आप जो
कह रहे हैं...

हां-हां, मैं तो यह कहूंगा। क्योंकि मैं मानता हूं कि इस मुल्क का साधु धोखे की बातें कह रहा है और गलत बातें कह रहा है। और वह बातें इसलिए कर रहा है, वह बातें इसलिए कह रहा है, मैं तो इतना हैरान हूं कि साधारण गृहस्थ अगर मेरे पास आता है मिलने, तो उसके हजार प्रॉब्लम होते हैं, उनमें एक प्रॉब्लम सेक्स होता है। लेकिन साधु मुझसे मिलने आता है, तो उसके हजार प्रॉब्लम में हजार प्रॉब्लम ही सेक्स के होते हैं। हजार प्रॉब्लम ही सेक्स के होते हैं। वह दिन-रात ब्रह्मचर्य समझा रहा है और जब मुझसे प्राइवेट में मिलता है, तो उसका प्रॉब्लम सेक्स है?
अस्सी साल का हो गया, सत्तर साल का हो गया, तो भी! बढ़ जाता है ज्यादा। क्योंकि जितना सप्रेस किया...

प्रश्नः लोलुपता है।

हां, लोलुपता भारी हो जाती है। और जब शक्ति कम हो जाती है, तो लोलुपता
और जोर से हमला करती है कि अब यह समय भी चुका जा रहा है।
इधर मेरी जो समझ है, मैं यह मानता हूं कि ब्रह्मचर्य जैसी संभावना है, लेकिन ब्रह्मचर्य सेक्स के विपरीत लड़ कर कभी संभावना नहीं है। सेक्स को समझ कर जरूर संभव है। लेकिन सेक्स की निंदा अगर आप करते हैं, तब तो बिल्कुल संभव नहीं है, क्योंकि फाइट शुरू हो गई।

प्रश्नः हजारों साल से यही हो रहा है।

और इसलिए नहीं संभव हो पाया। आपके ऋषि-मुनियों की अगर आप कहानियां पढ़ेंगे तो आपको पता चल जाएगा कि ब्रह्मचर्य के नाम पर जो-जो आपके ऋषि- मुनियों का जीवन है, वह बताता है कि क्या है।

प्रश्नः वह तो यूरोप में भी है।

कहीं भी, आपके ऋषि-मुनि ही नहीं, सप्रेशन सब जगह था। आपका सप्रेशन सारी दुनिया में था। सारी दुनिया का जो पिछला दिमाग था, वह एक सा सप्रेशन है। सारी दुनिया में धर्म ने वही सिखाया है। लेकिन उसके परिणाम आप जानते हैं कि क्या-क्या हुए?

प्रश्नः भ्रष्टाचार।

पूरा भ्रष्टाचार है। अगर आप अपने ऋषियों, देवताओं, सबकी कहानियां पढ़ें, तो सारी कहानियां भ्रष्टाचार की हैं। और मजा यह है कि वह उनको हम पूजे चले जा रहे हैं और ब्रह्मचर्य की बकवास किए जा रहे हैं! और वह सब, सब उपद्रवी थे।

प्रश्नः मैं समझता हूं कि वह दृष्टांत लेकर वह हम सहानुभूति से देखते हैं कि यह स्खलन हो गया, हम न करें।

हां, यह जो मामला है न, यह जो मामला है, हम यह नहीं देखते कि यह सब ऋषि- मुनियों का हो गया...

प्रश्नः विश्वामित्र और मेनका की जो बातें हैं दृष्टांत के लिए, सत्य
है या झूठ है, तो उसमें क्या है?

यही है। असल में जहां भी ऋषि जो है, उसका स्खलन सदा आसान है। साधारण आदमी के बजाय। स्खलन तब आसान है, जब कि सप्रेशन बहुत तीव्र हो। और मेनका को लाने की जरूरत नहीं है। साधारण सी स्त्री मेनका जैसी दिखाई पड़ेगी, अगर आपका दिमाग सप्रेसिव में है। कोई अप्सराएं उधर से उतर कर यहां ऋषियों को भ्रष्ट करने आएं, ऐसा कोई इंतजाम परमात्मा का दिखाई नहीं पड़ता, और अगर ऐसा कोई भी इंतजाम है, तो परमात्मा भी हद्द कनिंग है।
एकदम बेमानी बात है कि एक आदमी, ऋषि बेचारा साधना कर रहा है और ऊपर से अप्सराएं भेजी जा रही हैं, उसको भ्रष्ट करने के लिए!

प्रश्नः वह तपोभंग करने।

पर यह परमात्मा की उत्सुकता बहुत सेक्सुअल है। और परमात्मा किसी का तपोभंग करने को उत्सुक है कि तप बढ़ाने को उत्सुक है?

प्रश्नः परमात्मा नहीं, देवता।

यह सारी व्यवस्था हुई न। नहीं, असल में कोई अप्सरा नहीं आ रही है, कोई अप्सरा नहीं आ रही है। लेकिन साधारण सी स्त्री बहुत सप्रेशन से अप्सरा दिखाई पड़ती है। और स्त्री न हो, तो भी दिखाई पड़ सकती है। बहुत सप्रेसिव दिमाग हो, तो प्रोजेक्शन शुरू हो जाता है। आंखें बंद कीं और स्त्री ही दिखाई पड़ेगी, और कुछ ध्यान में आने वाला नहीं है। तो यह सारी की सारी अवैज्ञानिक व्यवस्था थी। मेरी अपनी समझ जैसी है वह यह है...

प्रश्नः यह सेक्स के बारे में आप जरा स्पष्ट कीजिए? क्योंकि बहुत आपके बारे में और आपके विचारों के बारे में, जितनी खोपड़ी उतनी बात हो जाती है।

वह बिल्कुल स्वाभाविक है। वह बिल्कुल स्वाभाविक है।

प्रश्नः तो हम उसका आपकी ओर से कुछ खुलासा...

बिल्कुल खुलासा करें। मेरी अपनी दृष्टि ऐसी है कि एक तो जीवन में जो
भी है, उसको मैं निंदा के भाव से नहीं देखता, जो भी है। जीवन के प्रति मेरे मन में निंदा का भाव ही नहीं है। समग्र जीवन के बाबत। अगर आपके भीतर क्रोध है, तो उसे भी मैं निंदा से नहीं देखता। मैं मानता हूं, क्रोध भी बहुत बड़ी शक्ति है, और उसके दोनों रूप हो सकते हैं, सृजनात्मक भी, विध्वंसात्मक भी। इसी तरह काम है, लोभ है--सब एनर्जीज हैं। इसलिए जीवन की समस्त रॉ- एनर्जीज को मैं स्वीकार करता हूं। और इनकी स्वीकृति के बाद ही मैं मानता हूं कि इनकी समग्र स्वीकृति ही इनके परिष्कार का पहला कदम है, क्योंकि जिस शक्ति को हम स्वीकार नहीं कर लेते, उस शक्ति से हम लड़ना शुरू कर देते हैं। और जिस शक्ति से हम लड़ते हैं तो हमारे भीतर हम खंड-खंड करते हैं--अपने से ही लड़ना है वह। अगर मैं अपने बाएं हाथ की निंदा करूं और दाएं हाथ को लड़ाऊं, तो इसमें कुछ हारने-जीतने वाला होने वाला नहीं है। दोनों हाथ मेरे हैं। कोई जीतेगा नहीं, कोई हारेगा नहीं, सिर्फ लड़ाई चलेगी।
हां, एक हार जाएगा, मैं हार जाऊंगा आखिर में लड़ते-लड़ते। हाथ मेरे लड़ेंगे। तो मेरी सारी शक्तियां हैं, वे इंटिग्रेटेड होनी चाहिए। और अगर मैंने अपनी एक भी शक्ति से लड़ना शुरू किया, तो मैं डिसइंटिग्रेटेड हुआ,

मैं टुकड़ों में टूटा और टुकड़ों में टूटा हुआ आदमी स्किजोफ्रेनिक हो जाता है। इसलिए भारतीय संस्कृति को मैं स्किजोफ्रेनिक कहता हूं। यह हमारा पूरा का पूरा दिमाग खंड-खंड है, टुकड़ों में बंटा है और आपस में हम लड़ रहे हैं अपने भीतर। यह लड़ाई मैं पसंद नहीं करता।
मैं मानता हूं, जो मेरे भीतर है, जो मुझे मिला है प्रकृति से या परमात्मा से, इस सबको मैं कैसे सृजनात्मक मार्ग पर ले जा सकूं, यह कैसे मेरे लिए अधिकतम सुख का कारण बन सके, यह कैसे मेरे लिए अधिकतम तृप्ति ला सके, यह कैसे मेरे लिए वह जगह ला सके, जहां मैं कह सकूं कि जीवन धन्य हुआ। इस दिशा में मैं इन सारी शक्तियों को कैसे ले जाऊं, इनमें से किसी शक्ति को काटना नहीं, नष्ट नहीं करना है, इसलिए सेक्स पर भी मेरी पूरी स्वीकृति है। अब यह जो स्वीकृति है, इससे भ्रांति पैदा होती है। लोगों का चूंकि सप्रेसिव माइंड है, उनके लिए स्वीकार का मतलब सिर्फ भोग होता है एकदम से। जिस आदमी ने उपवास किया है, उसे भोजन का मतलब सदा ही ज्यादा खा जाना होता है। सदा ही। उसके लिए जो मतलब होता है दिमाग में, क्योंकि उसके लिए तो वह सोच ही नहीं सकता कि भोजन मिले और ज्यादा न खाया जाए। पंद्रह दिन से जो उपवास कर रहा है वह भोजन का मतलब ज्यादा खा जाना। तो वह दो ही काम कर सकता है, या तो वह भोजन बिल्कुल रोके रहे, तब चल सकता है। अगर वह थोड़ा सा शुरू करे, तो पूरा खा जाए, ज्यादा खा जाए, इसका डर उसे सदा है। तो वह कहेगा, भोजन को स्वीकार ही मत करो। स्वीकार किया कि मुश्किल में पड़े।
यह जो हमारा हजारों साल का दमित चित्त है, यह दमित चित्त हमें इतना डराता है कि अगर हमने जरा ही स्वीकार किया...

प्रश्नः सभी धर्मों में?

सभी धर्म दमित थे न। असल में सभी धर्म जो हैं, वह विज्ञान के जन्म के पहले के हैं। और विज्ञान की नवीनतम मनस खोजों ने हमें बताया है कि दमन जो है, वह विकृत करता है, सुकृत नहीं करता। असल में सभी धर्म फ्रायड के पहले के हैं, और फ्रायड के बाद अभी कोई धर्म पैदा नहीं हुआ, जब कि अब धर्म फ्रायड के बाद जो पैदा होगा, वह बहुत भिन्न होगा।
तो जो मैं कह रहा हूं, वह उस धर्म की पहली स्वीकृति होगी। मेरे हिसाब में प्रि-फ्रायडियन धर्म और पोस्ट-फ्रायडियन धर्म, दो युग अलग हो गए। लेकिन अभी फ्रायड के बाद कोई धर्म अभी पैदा नहीं हो पाया है ठीक से। सब धर्म जो हैं प्रि-फ्रायडियन हैं। कोई दो हजार साल पहले का है, कोई हजार साल पहले का है। ये सारे के सारे धर्मों ने दमन को, सताने को, कष्ट देने को, अपने को दबाने को स्वीकार किया था। यह बिल्कुल ही स्वाभाविक था।
मनुष्य के मन के संबंध में हमारी जानकारी बहुत कम थी। अब मनुष्य के मन
के संबंध में हमारी जो जानकारी है, वह कहती है, यह गलत था। और इस गलत के कोई फायदे नहीं हुए? धर्म की इतनी चर्चा हुई, इन्होंने कितने धार्मिक आदमी पैदा कर लिए?
और अगर कभी करोड़ दो करोड़ आदमी में एक आदमी बुद्ध हो जाए, तो यह ऐसे ही है, जैसे दो करोड़ पौधे हम लगाएं और एक पौधे में फल आ जाए, तो माली का प्रशंसा करनी पड़े! तो नासमझी की बात है, इसमें कोई प्रशंसा की बात नहीं है। दो करोड़ पौधों में एक पौधे पर फल आ गया है तो यह माली निंदा योग्य है। और मानना चाहिए कि यह फल माली के कारण नहीं आया, माली से बच कर आ गया है किसी तरह से। माली का सबूत तो दो करोड़ पौधे का हैं। तो हमारा जो धर्म था, उसने कितने धार्मिक आदमी पैदा किए? अगर कुछ दस-पांच आदमी धार्मिक पैदा हो गए, जो अंगुलियों पर गिने जा सकें और करोड़ों-अरबों लोग क्रिपिल्ड और परेशान और चिंता में जीएं, तो यह हमें मानना चाहिए कि इंस्पाइट ऑफ अस ये कुछ लोग पैदा हो गए हैं। यह कोई हमारा गौरव नहीं है। ये किसी तरह बच निकले।
एक अमेरिका में विचारक हुआ थोरो। थोरो जब पढ़-लिख कर अपने गांव आया, युनिवर्सिटी से लौटा, उसके गांव में उसका स्वागत हुआ और एक बूढ़े ने एक बहुत कीमती बात कही। उस बूढ़े न कहा कि मैं थोरो का स्वागत इसलिए कर रहा हूं कि यह लड़का अपने को युनिवर्सिटी से बचा कर लौट आया है। इसलिए मैं इसका

स्वागत कर रहा हूं। यह जैसा गया था, वैसे ही लौट आया है, इसलिए मैं इसका स्वागत कर रहा हूं। इसने अपने को कैसे बचा लिया, यह आश्चर्य है?
तो मेरी समझ में बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट, शंकर और नागार्जुन, ये जो थोड़े से लोग हमारे हुए हैं, ये लोग कैसे हमारी संस्कृति से बच कर हो गए, यह आश्चर्य हमें करना चाहिए। ये हमारी संस्कृति के सबूत नहीं हैं। ये हमारी संस्कृति से बच कर इनमें फल आ गए।

प्रश्नः हमारी माने?

हमारी मतलब सारी दुनिया की। वह जो सप्रेसिव माइंड था वह उसकी। आने वाले भविष्य में मैं समझता हूं कि करोड़ दो करोड़ में एकाध आदमी न हो पाए धार्मिक, तो हम समझेंगे कि चलेगा। तो क्षम्य है। लेकिन अब ऐसा नहीं चल सकता है कि एक आदमी धार्मिक हो और दो करोड़ आदमी अधार्मिक हों, तो हमें समझना पड़ेगा कि धर्म का विज्ञान कहीं भ्रांत है। तो मैं मानता हूं कि भ्रांत है और उसकी सबकी सबसे बड़ी भ्रांति है वह यह कि वह मनुष्य की शक्तियों का आरोहण नहीं सिखाता है, दमन सिखाता है। तो सेक्स के बाबत हमारी सबसे ज्यादा कठिनाई है, क्योंकि उसको हमने सबसे ज्यादा दबाया है। और उसके दबाने के कुछ कारण थे।

प्रश्नः मगर यह एक बात जो कच्ची समझ वाले लोग आवेश में...

बड़े मजे की बात यह है कि पक्की समझ वाला आदमी है नहीं इस दुनिया में। मुश्किल से दस-पांच हैं। वह जो बूढ़ा है, वह उससे भी ज्यादा कच्चा है, जितना कि जवान है। सिर्फ उम्र ज्यादा हो गई है, तो वह समझ रहा है कि पक्की समझ है! पक्की समझ सप्रेसिव माइंड में कभी पैदा ही नहीं होती।

प्रश्नः आपका जो प्रवचन है, उससे कच्चे मानस पर... ।

उसी के लिए है न मेरा तो। मेरा उसी पर असर करना है। वह जिसको आप पक्की समझ का कह रहे हैं, वह तो उस जगह पहुंच गया है कि पॉइंट ऑफ नो रिटर्न पर है वह। उसको तो लाना भी नहीं है।

प्रश्नः नास्तिक भी हो सकते हैं।

कोई हर्जा नहीं है। मैं मानता हूं कि अगर आदमी ईमानदारी से नास्तिक
हो सके, तो बेईमानी से आस्तिक होने से सदा बेहतर है। और जो आदमी नास्तिक भी नहीं हो सकता, आस्तिक होगा कभी, यह मैं शक करता हूं। नास्तिक होना पहली सीढ़ी है, आस्तिक होना अंतिम फल है।
नास्तिकता मार्ग है, आस्तिकता उपलब्धि है।
तो मैं इनको भी विरोध में नहीं मानता। जैसे विश्वास और संदेह के लिए मैंने आपसे कहा, वैसे मैं मानता हूं कि नास्तिक होना अनिवार्य हिस्सा है। एक उम्र है, जब आदमी को इनकार करना सीखना चाहिए। और एक उम्र है जब उसको जल्दी हां नहीं भरनी चाहिए, क्योंकि वह कमजोरी का सबूत है। हां मजबूरी में नहीं भरनी चाहिए, हां किसी अनुभूति से भरनी चाहिए। तो मैं तो मानता हूं कि युवकों को एक वक्त नास्तिकता से गुजरना ही चाहिए, और अगर वे नास्तिकता से गुजर सकें, तो ही किसी दिन सिंसिअरली आस्तिक हो सकेंगे।
और हमारे मुल्क का जो आस्तिक है, वह बेईमान इसीलिए है कि वह कभी नास्तिक तक होने की ईमानदारी उसने नहीं दिखाई है। उसने ईश्वर तक के लिए झूठी हां भरी है, और दूसरी हां तो ठीक ही है--उसका ईश्वर, उसका परमात्मा, उसका मोक्ष सब झूठा हां भर रहा है। उसको कुछ भी पता नहीं और वह हां भर रहा है! तो मैं नहीं मानता कि नास्तिकता बुरी बात है। मैं तो मानता हूं, अनिवार्य मैच्योरिटी में, जिसको आप पक्की समझ कह रहे हैं, उसकी सीढ़ी का हिस्सा है।

प्रश्नः नहीं, मैं कह रहा हूं, ये कच्ची समझ वाले लोग हैं बहुजन-समाज, उसके मानस में भी, जीवन में भी, आपके कहने की बात जरा...

आपकी बात तो वह कच्ची समझ के आदमी पांच-दस हजार साल से सुन रहे हैं और पक्की समझ के नहीं हो पाए! एक पचास साल का मौका मुझे भी चाहिए, मैं जो कह रहा हूं। आपकी बात तो पचास हजार साल से सुन रहे हैं वे, अभी तक पक्की समझ के हो नहीं पाए। उसी बात को आप फिर भी कहे चले जाना चाहते हैं! मैं मानता हूं कि मेरे साथ रिस्क है। लेकिन आप तो फेल्योर सिद्ध हो चुके हैं, आपका तो कोई सवाल ही नहीं है। आप तो विकल्प हैं ही नहीं। मेरे साथ रिस्क है, उसमें ठीक भी हो सकता है, गलत भी हो सकता है। उसमें एक संभावना ठीक होने की है, एक गलत होने की है। आप तो सौ प्रतिशत गलत हो चुके हैं। आप तो कोई विकल्प ही नहीं हैं। इसलिए मैं उसको, मैं मानता हूं, खतरा है ही, लेकिन हर नई चीज में खतरा है, और खतरा होना चाहिए, खतरा होना चाहिए।
नीत्शे अपनी टेबल पर एक छोटा सा वचन--आपको पसंद पड़ेगा--वह लिखे रहता थाः लिव डेंजरसली। और जब किसी ने उससे पूछा कि तुम क्यों लिखे हुए हो? तो उसने कहा, और तो लिविंग का कोई मतलब ही नहीं होता, जीने का कोई और मतलब ही नहीं होता। जीना है तो खतरे में ही जीना पड़े। नहीं जीना है, तो मरना बहुत सिक्योरिटी वाली बात है। मर गए, फिर कोई खतरा नहीं है। मरा हुआ आदमी फिर मर भी नहीं सकता, बीमार भी नहीं पड़ सकता, भूल भी नहीं कर सकता, पाप भी नहीं कर सकता।

प्रश्नः और एक दूसरा प्रश्न है कि आपको धर्मगुरु मानते हैं, नेता मातने हैं या क्या मानते हैं?

नहीं-नहीं, न मैं नेता हूं, न धर्मगुरु हूं।

प्रश्नः तो फिर आपका चोला जो है, वह धर्मगुरु का है?

वह चोला मुझे पसंद है। वह मेरी स्वतंत्र पसंदगी है। जो मैं कपड़ा पसंद करूं, वह तो मुझे पसंद करना चाहिए कि मैं कैसा कपड़ा पसंद करूं।

प्रश्नः नहीं, मगर उससे भ्रांति हो जाती है लोगों में?

वह भ्रांति तो मैं तोड़ रहा हूं चारों तरफ से। वह नहीं टिकने दूंगा। वह मैं नहीं टिकने दूंगा। मेरे कपड़ों से भ्रांति नहीं टिकने दूंगा। मैं भी तो मौजूद हूं न कपड़े के भीतर। तो मैं नहीं टिकने दूंगा।

प्रश्नः नहीं, मगर...

मैं समझा आपकी बात।

प्रश्नः धर्मगुरु का... तो पाएंगे?

बिल्कुल नहीं।

प्रश्नः कोई आपको स्वामी जी बोलते हैं।

वे कुछ भी बोल सकते हैं, यह उनकी बात है।

प्रश्नः यह तो हमारे डिस्कशन की बात है।

समझा, मैं समझा।

प्रश्नः आप मार्क्स और फ्रायड का कुछ मिक्सचर हैं।

हां, यह किसी को लग सकता है। लेकिन मार्क्सवादी से पूछेंगे तो नहीं कहेगा ऐसा। फ्रायडियन से पूछेंगे तो ऐसा नहीं होगा। क्योंकि जब मैं फ्रायड पर पूरी बात करता हूं तो मैं मानता हूं कि फ्रायड तो बहुत प्राथमिक है और बचकाना है। और मार्क्स बिल्कुल आउट ऑफ डेट है। अब मार्क्स का कोई भविष्य नहीं है।

प्रश्नः तो फिर पहले आपने कहा कि जो पूंजीवाद के बाद यह आएगा।

यह तो मैं मार्क्स की गलती ही बता रहा था।

यह तो जो मैं कह रहा था कि मार्क्स डिटर्मिनिस्ट है, तो मैं मानता था
कि वह, मैं यह कह रहा था कि भारत के मन में चूंकि डिटर्मिनिज्म की जगह है, मार्क्स को भी जगह मिल सकती है। लेकिन डिटर्मिनिज्म ही गलत है। कम्युनिज्म भी आएगा नहीं। कोई लाए, तो ला सकता है, न लाए तो रोका जा सकता है। कोई कम्युनिज्म इनएविटेबिलिटी नहीं है।

प्रश्नः आपका वह क्या एटिट्यूट किसकी तरफ है?

अभी मैंने "समाजवाद से सावधान" लेक्चर दिए। तो पूरी किताब आपको भिजवा देता हूं। तो मैं तो सख्त खिलाफ हूं। मैं तो सख्त खिलाफ हूं

प्रश्नः तो फिर लोग तो आपमें शक करते हैं कि आप कम्युनिस्ट पैक के हैं?

स्वाभाविक है, मैं जब सारी चीजों में शक पैदा करवाऊं, तो मेरे बाबत भी
शक पैदा हो, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसमें वक्त लगेगा, बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि मैं इतनी बातें कर रहा हूं और इतने विभिन्न कोणों से कहता हूं और हमारा मन तो ऐसा है न कि तत्काल लेबल लगाने को उत्सुक होता है। अगर मेरी एक बात सुनी, तो एक आदमी एक लेबल लगा देगा। मेरी दूसरी बात सुनी, तो वह तत्काल लेबल बदलने की दिक्कत उसमें हो जाती है। अब मेरी कठिनाई यह है कि जिंदगी जो है, वह बहुत ही मल्टी-डाइमेन्शनल है और बड़ी जटिल है, बड़ी जटिल है। उस पूरी जटिलता को जब आप पूरी तरह समझ पाएं, तो आप कभी भी लेबल न लगाना चाहेंगे।

प्रश्नः नहीं, मगर ये लोग अभी-अभी जो आपमें एक रस ले रहे हैं उसका आघात-प्रतिघात जो होता है...

यह स्वाभाविक है। यह दस-पांच साल में सफाई हो पाएगी।

प्रश्नः क्या आप धर्मगुरु हैं या नेता हैं, कम्युनिस्ट हैं, क्या हैं, आपका कोई स्वरूप पकड़ में नहीं आता है?

नहीं, पकड़ में नहीं आएगा, क्योंकि नहीं है कोई स्वरूप। नहीं है कोई स्वरूप।

प्रश्नः तो क्या है?

असल में हमारी कठिनाई क्या है, अभी मैं एक घटना से आपको समझाऊं। मैं इधर पीछे एक दफा ट्रेन में चढ़ा बंबई से। तो यहां से सब मित्र छोड़ने गए थे। तो मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन और थे। उन्होंने देखा, बहुत से लोग

छोड़ने आए--किसी ने पैर छुआ, किसी ने माला पहनाई, स्वभावतः उन्होंने मेरे कपड़े वगैरह देखे तो समझा कि कोई महात्मा हैं।
गाड़ी चली तो उन्होंने जल्दी से साष्टांग, बिल्कुल सिर रख कर पैर पर मुझे नमस्कार किया और कहा महात्मा जी, बड़ी कृपा हो गई आपकी, क्योंकि साथ रात भर का मिल गया, तो साथ ही आपके सत्संग भी होगा। तो मैंने उनसे कहा कि तुम्हें पहले पक्का पता लगा लेना चाहिए था कि मैं महात्मा हूं या नहीं हूं। तुमने तो पैर पहले ही पड़ लिए। अब अगर मैं महात्मा न निकला तो तुम वापस कैसे लोगे और मुझ पर एक नाहक का ऋण हो जाएगा, मैं इसको लौटाऊंगा भी कैसे? उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, आप भी क्या मजाक करते हैं। मैंने कहाः मैं मजाक नहीं कर रहा। मैं महात्मा नहीं हूं। मुझे शौकिया है ये कपड़े पहनना। उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, आप मजाक कर रहे हैं। अब वह आदमी डर गया। कहा कि नहीं आप मजाक कर रहे हैं। मैंने कहाः मैं मजाक नहीं कर रहा हूं, मैं कोई महात्मा नहीं हूं। तो उसने कहा, तो कम से कम आप हिंदू तो हैं! जाने दो महात्मा को। अगर हिंदू भी हों तो चलो झंझट खतम हुई। मैंने कहा, हिंदू तो मैं बिल्कुल भी नहीं हूं। एक दफा महात्मा होने की भूल कर भी जाऊं, हिंदू होने की भूल तो बिल्कुल नहीं कर सकता। हिंदू तो मैं बिल्कुल नहीं हूं। अरे, उसने कहा, आप क्या मजाक किए दे रहे हैं? क्या गजब किए दे रहे हैं? वह इतना घबड़ा गया--पढ़ा-लिखा आदमी है, एयर कंडीशंड में है वह, पैसे वाला आदमी है! कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं? हिंदू नहीं हैं आप? तो आप कौन हैं? तो मैंने कहा कि क्या मुझे हिंदू या मुसलमान या ईसाई होना ही पड़ेगा? मैं निपट आदमी नहीं हो सकता? मेरे निपट आदमी होने में कोई आपको आक्षेप है कि मुझे कोई लेबल होना पड़ेगा? कहा, नहीं-नहीं, मुझे कोई आक्षेप नहीं है।
लेकिन उस आदमी ने क्या किया? वह इतना उसको कठिन पड़ा मेरे साथ बैठना कि उसने कंडक्टर को बुला कर वह बगल के कंपार्टमेंट में चला गया थोड़ी देर में। मैं बाथरूम गया, तो मैंने देखा, उसका सामान गया। तो मैंने उसका जाकर सुबह दरवाजा खटखटाया। मैंने कहा कि सत्संग का आपने मौका छोड़ दिया? मैं तो मजाक कर रहा था। उसने फिर मेरे पैर पड़े! उसने कहा, मैं तो पहले ही कह रहा था कि आप महात्मा हैं। मैं तो पहले ही कहा था, वह तो अच्छा, आपने मुझे रात भर निकलवा दिया, सत्संग होता, बड़ा आनंद...

प्रश्नः इतने मनो-दुर्बल आदमी बहुत हैं।

बहुत हैं। यह जो मैं आपसे कह रहा हूं, कि जो आप पूछते हैं कि मैं नेता हूं, गुरु हूं। न मैं नेता हूं, न मैं गुरु हूं। मैं एक निपट अकेले आदमी की हैसियत से खड़ा हूं जिसके साथ कोई लेबलिंग नहीं है। न मेरा कोई अनुयायी है।

प्रश्नः उद्देश्य?

उद्देश्य जो मुझे ठीक लग रहा है, जो मुझे आनंदपूर्ण लग रहा है, वह आपसे
कह देता हूं। फिर आपसे मेरा कोई संबंध नहीं है। आपने सुन लिया, इतना काफी है।

प्रश्नः उसका परिणाम हो, न हो?

बिल्कुल फिकर नहीं उसकी, मुझे क्योंकि परिणाम की फिकर... मैं खुद...

प्रश्नः यह आंदोलन नहीं है आपका?

बिल्कुल नहीं है। आंदोलन इससे हो जाए, यह दूसरी बात है। इससे हो जाए,
यह दूसरी बात है। मेरा आंदोलन नहीं है। नहीं होगा, तो मैं इसमें कोई चिंता का कारण नहीं।

प्रश्नः नहीं, यह जो निर्लेप-भाव है, निरपेक्ष-भाव है, वह बराबर है, आपको लगता है?

बराबर का प्रश्न नहीं है, वह है और मेरे लिए आनंदपूर्ण है। और मैं मानता हूं कि ऐसे ही आनंदपूर्ण निर्लेप-भाव से अगर कुछ हो, तो वह शुभ है। और अगर हमारे करने की कोशिश से कुछ हो, तो उसमें कुछ न कुछ हिंसा हो जाती है। गुरु हिंसा कर ही देता है। नेता भी हिंसा कर देता है और पक्ष भी पैदा कर देता है। वह मुक्त नहीं कर पाता है, बांध ही लेता है। तो मैं तो आपसे बात कह देता हूं, फिर खतम हो गई बात। आपको अच्छी लगी, बुरी लगी, वह आप जानें। मुझसे आपका इससे कोई संबंध पैदा नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा मित्रता के और मेरा आपका कोई संबंध कभी नहीं बन पाता। और उसमें मेरी आप बात मानते हैं, नहीं मानते हैं, वह आपका जानना है, उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। और मुझे आप न मानें, यह मेरी चेष्टा होती है। अगर मानें भी, तो बात हो, मुझसे कोई संबंध न रखें। क्योंकि व्यक्ति आड़े आकर नुकसान ही पहुंचाते हैं सत्य को। वह धर्मगुरु की तरह पहुंचाएं, नेता की तरह पहुंचाएं, इससे फर्क नहीं पड़ता। एक हमने बात कर ली, एक डायलाग पूरा हो गया। एक बात मैंने आपसे की, आपने मुझसे की। कुछ मैंने आपसे सीखा, कुछ आपने मुझसे सीखा, बात खतम हो गई। इसमें मैं सिखाने वाला, आप सीखने वाले, ऐसा भी पक्का रिश्ता नहीं है।
इसमें हम दोनों बात करते वक्त सीख रहे हैं।

प्रश्नः हां, यह सच बात है। यह प्रक्रिया है।

हां, यह प्रक्रिया है। और इस प्रक्रिया में इसलिए कौन शिष्य है, कौन गुरु है, कौन नेता है, कौन अनुयायी है, बेमानी बातें हैं और बचकानी हैं। अगर कहें तो चाइल्डिश हैं। असल में यह गुरु और नेता, यह हमारे भीतर जो बहुत चाइल्डिश माइंड है, उसकी वजह से पैदा हो जाते हैं। नहीं तो इनकी कोई जरूरत नहीं है। हमने अपनी बात कह दी है, आपने सुन ली है। ठीक लगी, लगी, गलत लगी, गलत लगी, खतम हो गई बात। इतना तय है कि अगर उस बात में कुछ भी बल था, तो चाहे आप उसे सही मानें चाहे गलत, आप वही नहीं होंगे, जो बात सुनने के पहले थे। वह नहीं हो सकते--चाहे गलत मानें, चाहे सही। एक प्रोसेस...

प्रश्नः एक आंदोलन शुरू हो गया।

एक आंदोलन शुरू हो गया। यह आंदोलन कोई परिणाम लाए, तो फिर हम दुकानदार
हो जाते हैं। दुकानदारी से ज्यादा नहीं रह जाती बात।

प्रश्नः परिणाम तो लाना ही चाहिए।

लाना चाहिए नहीं, आ जाए, यह दूसरी बात है।

प्रश्नः तो वह भी दुकानदारी तो हो गई।

नहीं, बिल्कुल नहीं हो गई।

प्रश्नः ग्राहक को बुलाओ और वह अपने आप से आए, दोनों एक ही बात है।

बिल्कुल नहीं। उसमें दोनों में बुनियादी फर्क है।

यहां कोई दुकान भी नहीं है, जिस पर से कुछ बेचना है। यहां तो मामला कुछ ऐसा है कि जो ग्राहक आएगा, उसका कुछ छिन ही जाएगा। यहां से कुछ लेकर जाने की तो कम ही उम्मीद है।
मेरा जो कहना है, अभी कल दो-तीन महिलाएं आईं। कृष्णमूर्ति उनके घर ठहरते होंगे। वे बड़ी घबड़ाई हुई आईं। उन्होंने कहा कि हमने आपको दो साल

पहले सुना था, तो हम बड़े प्रसन्न हुए--कि हमको लगा कि आप तो बिल्कुल कृष्णमूर्ति की बात कह रहे हैं। तो हमने कृष्णमूर्ति को जाकर कहा। वे बड़े खुश हुए--कि मुझे इसी वक्त मिलवाओ। अभी आपकी हमने कुछ बातें सुनीं, तो हमें ऐसा लगा कि आप तो कृष्णमूर्ति के खिलाफ बोल रहे हैं। तो हमें बड़ा सदमा पहुंचा। तो मैंने उनसे कहा कि तुम्हें अच्छा लगे या बुरा लगे! तुम्हें अच्छा लगना ही चाहिए, जिस दिन मैं ऐसा सोचूंगा, उस दिन तुम्हें क्या अच्छा लगता है, वही कहने लगूंगा।
स्वभावतः नेता कभी वह नहीं कह सकता जो अनुयायी को बुरा लगे। नेता का नेता होना, अनुयायी के अच्छे लगने पर निर्भर है। गुरु कभी वह नहीं कह सकता, जिससे शिष्य भाग जाएं। क्योंकि गुरु का गुरु होना शिष्य के रुके रहने पर निर्भर है। तो नेता और गुरु कभी भी ठीक-ठीक नग्न सत्य को नहीं कह पाते, नहीं कह सकते हैं। उसको उन्हें आवरण देने पड़ते हैं। और असत्य इकट्ठा करना पड़ता है। तो दुनिया में जितने कम गुरु हों और जितने कम नेता हों, उतने सत्य की संभावना है। मैं उन महिलाओं को कहना चाहता था कि अब तुम फिर जाकर कृष्णमूर्ति को कहना कि वह तो बिल्कुल खिलाफ कह रहे हैं और अगर वह अब भी खुश हों तो समझना कि आदमी किसी काम के हैं। समझे न? और अगर दुखी हो जाएं, तो दुकानदारी शुरू हो गई। तो मैं तो ऐसा मान कर चलता हूं।

प्रश्नः आप कभी कृष्ण की प्रशंसा करते हैं, कभी कृष्ण की निंदा करते हैं। कभी गीता से यह लेते हैं, कभी क्राइस्ट को यह कहते हैं, कभी महावीर को भी झपट में ले लेते हैं।

बिल्कुल ही, झपट में लेना पड़ता है। क्योंकि मेरे लिए कृष्ण साधारण व्यक्ति नहीं, बड़े असाधारण व्यक्ति हैं। और कृष्ण मेरे लिए मल्टी- डाइमेन्शनल हैं। कृष्ण कोई एक आयाम नहीं हैं। कृष्ण के अनंत आयाम हैं। किसी आयाम पर मैं उनसे अगर राजी होता हूं, तो कहता हूं, ठीक है। और तब अपनी प्रशंसा में कंजूसी नहीं करता। और किसी आयाम पर अगर मैं राजी नहीं होता तो मैं कहता हूं, गलत है, और तब गलत कहने में भी कंजूसी नहीं करता। और इसमें मैं कृष्ण के साथ अन्याय नहीं करता हूं, इसमें मैं अपने साथ ही न्याय करता हूं। कृष्ण से कुछ लेना-देना नहीं है।
अगर महावीर की कोई बात मुझे ठीक लगती है, तो मैं उसके पूरे रास्ते साथ जाने को तैयार हूं। और कोई मुझे गलत लगती है, तो इसलिए थोड़ी सी भी हां न भरूंगा कि कोई और बात मुझे ठीक लगी। और यही मेरा अपने मित्रों से भी कहना है कि मेरी अगर एक बात ठीक लगे, तो इसका यह मतलब नहीं कि मेरी दूसरी बात भी ठीक लगे। एक-एक बात यूनिटरी है, एक-एक बात एटामिक है। अगर हम ठीक से समझें तो कृष्ण का भी चरित्र, तो हजार एटम हैं उसमें। और मुझे हो सकता है, कृष्ण के सिर पर लगी हुई मोरपंख बहुत अच्छी लगती है और मैं कहूं कि यह मोरपंख बड़ी सुंदर है, लेकिन कृष्ण की शक्ल मुझे अच्छी नहीं लगती, और मैं कहूं कि यह शक्ल मुझे बिल्कुल नहीं जंचती और इस पर मोरपंख तो और खराब हो जाता है। इसमें कठिनाई क्या है, हमारा मन क्या कहता है? हमारा मन चूंकि डाग्मेटिक है, वह कहता है, एक लेबल लगा दो। तो या तो कह दो कि कृष्ण भगवान हैं और या कह दो कि शैतान हैं, तो हम निपट जाएं! मतलब हमें साफ हो जाए कि क्या हैं? और मैं मानता हूं कि कोई आदमी इतना अच्छा नहीं है कि उसमें बुरा न हो और कोई आदमी इतना बुरा नहीं है कि उसमें अच्छा न हो। और आदमी इतनी बड़ी घटना है कि रावण में भी कुछ है जो राम से बेहतर है और राम में भी कुछ है जो रावण से बदतर है। लेकिन हम पूरे को इकट्ठा स्वीकार करने के... यह सुविधापूर्ण है असल में। कनवीनिएंट है यह कि राम भगवान और रावण शैतान।
मैं... उसके लिए ठीक नहीं लगता, इसलिए मेरे साथ दिक्कत तो हो जाती है, क्योंकि कृष्ण का भक्त एक दिन सुन लेता है कि मैंने कहा कि कृष्ण बहुत अदभुत हैं, वह इसी प्रशंसा में चला आता है। दूसरे दिन वह सुनता है कि नहीं गड़बड़ है। तब वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। उसका कारण यह है कि वह मुझको भी पूरा मानना चाहता है। मैं कब कहता हूं, उसे समझना चाहिए कि जब मैं कृष्ण में भाग करता हूं, तो वह मुझमें भी भाग कर ले। मेरी वह बात ठीक लगी थी, वह

ठीक नहीं लग रही है, बात खत्म हो गई। मैं कहां कहता हूं कि मेरी पूरी बात ठीक लगनी ही चाहिए। लेकिन गुरु बनना हो, तो पूरी ही लगनी चाहिए।

प्रश्नः नहीं, जो लोग टीका करते हैं कि ये कभी गांधी को भी बुरा कहते हैं, कभी उनको बुरा बोलते हैं, तो अपनी ओर सबका ध्यान आकर्षित करने के लिए यह खतरनाक मैग्निटी है।

हो सकता है। उनको ऐसा लगता हो।

प्रश्नः नहीं, यह लगता है।

हां-हां, लग सकता है, बिल्कुल लग सकता है। यह बिल्कुल लग सकता है और इसको जितना वे समझेंगे, जितना वे समझेंगे, तो अभी तो मैं दूसरों को ही खंडन कर रहा हूं, जैसे ही मुझे लगेगा कि मेरे पीछे लोग इकट्ठे हो गए, मैं अपने को भी खंडन करूंगा। और उसमें वह भी चल रहा है। अगर मैंने दो साल पहले कोई बात कही थी और मुझे आज अच्छी नहीं लगती है, उसका मैं खंडन करता हूं। तब उनको पता चलेगा कि मैं अपने को भी खंडन कर सकता हूं। तभी मेरे बाबत साफ होंगे वे कि इस आदमी के बाबत निश्चय कभी भी नहीं हो सकेगा। और निश्चय होना भी नहीं चाहिए। कभी किसी आदमी के बाबत निश्चय नहीं होना चाहिए। नहीं, वह तो नहीं।

प्रश्नः गांधी जी भी कहते थे कि निश्चय...

कभी किसी आदमी के बाबत निश्चय नहीं होना चाहिए।

प्रश्नः यह जो बात है, आज जो है आपका विचार है कल दूसरा हो जाएगा।

बिल्कुल हो सकता है। हो जाएगा ऐसा नहीं कहता, ऐसा नहीं कहता कि हो जाएगा, हो सकता है, नहीं भी हो सकता है।... आज बोलने की जरूरत क्या है? आज जो जानता हूं वही बोलूंगा। कल का तो आज नहीं जानता हूं।

प्रश्नः खंडन करने की जरूरत क्या है।

न-न, आज तो जो मुझे ठीक लगता है, वह मैं आज कहूंगा--आज जीऊंगा न। कल का
तो पता नहीं है। आज जो मुझे ठीक लगता है, वह कहूंगा। कल जो मुझे ठीक लगेगा, कल कहूंगा। और अगर आपकी बात मानूं तो आज भी नहीं कह सकता, कल भी नहीं कह सकता, क्योंकि परसों भी है। समझे न आप? तब तो कभी नहीं कह सकता, तब तो कभी नहीं कह सकता।
एक बहुत मजेदार घटना कहूं, फिर अपन उठें।
टाल्सटाय के जीवन में एक संस्मरण है। टाल्सटाय, चेखव और गोर्की तीनों
एक बगीचे में बैठे हुए हैं। वह कुछ बात चलती है और गोर्की ने यह सवाल उठाया है कि टाल्सटाय से कहा कि स्त्री के संबंध में आपका क्या ख्याल है? तो टाल्सटाय ने कहा कि मैं तब तक न बोल सकूंगा, जब तक मेरा एक पैर कब्र में न हो। एक मेरा जब कब्र में चला जाए और एक बाहर रह जाए, तब तुम एकदम से पूछ कर और ढक्कन बंद कर देना। तुम ढक्कन बंद कर देना। तो चेखव ने कहा कि आप यह कैसी बात कहते हैं? तो टाल्सटाय ने कहा कि अभी तक, मैंने निरंतर, रोज-रोज जो तय किया, वह दूसरे दिन पाया कि बदलना पड़ा। क्योंकि एक स्त्री में भी एक स्त्री नहीं है। उसमें भी हजार स्त्रियां हैं। और हजार स्त्रियां तो हजार हैं ही। और आज एक पहलू दिखता है, कल सुबह दूसरा पहलू दिखता है, सांझ दूसरा पहलू दिखता है। लेकिन टाल्सटाय कुछ भी नहीं कह पाया, क्योंकि पैर, दोनों पैर एक साथ चलते हैं कब्र में, एक नहीं जाता है। मैं यह कहना चाहता हूं, मुझे तो मिला नहीं टाल्सटाय, नहीं तो उससे मैं कहता कि कब्र में जब जाते हैं, तब दोनों पैर एक साथ जाते हैं। कब्र में एक पैर नहीं जाता है कि तुम एक पैर बाहर रख कर कुछ कह सको। कहना है तो तुम्हें दोनों पैर बाहर रहेंगे तभी

कहना पड़ेगा। और इसलिए सब कहना रिलेटिव है, इसलिए कोई कहना एब्सोल्यूट नहीं है। इसलिए कोई भी दावेदार सर्वज्ञता का करे तो गलत है।
कोई कहे कि मैं सर्वज्ञ हूं और जो कहता हूं वह अंतिम और आखिरी सत्य है,
तो ऐसा आदमी एकदम ही गलत बात कह रहा है। और ऐसा ही आदमी गुरु बन सकता है। और ऐसे ही आदमी को अनुयायी मिल सकते हैं। क्योंकि मुझे कैसे अनुयायी मिलें, क्योंकि अनुयायी ही निश्चित नहीं हो सकता कि यह आदमी कल क्या कहेगा, परसों क्या कहेगा? तो मैं तो एक प्रोसेस हूं और मेरा मानना है कि सभी जीवंत व्यक्तियों को एक प्रक्रिया होना चाहिए, एक ठहराव नहीं। तो जो हमें ठीक लगे, उसे हमें ईमानदारी से कहने का साहस होना चाहिए। जो मुझे आज ठीक लगता है, आज कहूंगा। कल जो मुझे ठीक लगता है, कल कहूंगा। जरूरी नहीं है कि जो मैं कल कहूं, वह आज के विपरीत हो, क्योंकि कहने वाला मैं ही रहूंगा।
बहुत संभावना तो यही है कि वह आज का ही अगला कदम हो, क्योंकि आखिर मैं
ही रहूंगा। और आज भी मैं ईमानदार था और कल भी मैं ईमानदार तो रहूंगा। जो कह रहा हूं, तो मेरी ईमानदारी ने जो आज जाना था और जो कल मेरी ईमानदारी जानेगी, उसका ही पर्सपैक्टिव आगे का होगा। उसमें कोई बहुत गहरे कंट्राडिक्शन नहीं हो सकते, अगर मैं ईमानदार हूं। अगर मैं आज ही बेईमान हूं तो फिर खतरा है। तो आज तो मुझे वही कहने दो, जो मुझे ठीक लगता है। ताकि मैं कल भी वही कह सकूं, जो मुझे ठीक लगे। और तब अगर पूरी जिंदगी के बाद जब मैं मर जाऊं, दोनों पैर कब्र में हों तब कोई मेरे बाबत शायद निर्णय ले सके कि यह आदमी क्या कह रहा था, क्योंकि प्रोसेस पूरी हो गई।
असल में हम किसी भी जीवंत व्यक्ति के बाबत उसके मरने के पहले कभी निर्णय नहीं ले सकते और हमें लेबल तब तक नहीं लगाना चाहिए। लेबल सब कब्र पर लगाना चाहिए, उसके पहले नहीं लगाना चाहिए। क्योंकि उसके पहले जिस पर लगा दिया, या तो वह आदमी अपनी तरफ से मर गया, या आपने उसको मरा हुआ मान लिया। और आपने मान लिया कि अब लेबल लगा सकते हैं, अब आगे कोई उपाय नहीं है, अब तुम ठहर गए हो जहां के तहां। तो मैं नहीं मानता, किसी के लिए नहीं मानता।

प्रश्नः पृथक्करण तो लोग करते हैं?

करना चाहिए। पृथक्करण लोग करें, विचार लोग करें, लेबलिंग न करें। लेबलिंग की जल्दी हो जाती है। उससे खतरे हो जाते हैं। वह चिंतन की कमी है। वह असल में चिंतन की कमी है। हम चाहते हैं, जल्दी से लेबल लगा दें।
एक संन्यासी मेरे पास आए। वे मुझसे कहने लगे कि आप तो मुझे यह बता दें
कि आप किस शास्त्र को मानते हैं? मैंने कहा, क्यों? तो कहता कि बातचीत करने की कोई जरूरत न रहे, आप अगर गीता को मानते हैं, तो मैं समझ जाऊं, क्योंकि गीता को मैं जानता हूं। असल में मुझे समझना न पड़े, इसलिए बहुत आसान यह है कि मैं कह दूं कि मैं सांख्य को मानता हूं, कि वेदांत को मानता हूं, कि जैन को। तो जैन के बाबत वह जो समझा-बूझा है, वह मेरे बाबत लागू कर ले, बात खतम हो जाए।
हम यही कर रहे हैं, हम कह दें, सैयदा जी हिंदू है। तो हम पूछ लेते हैं, हिंदू है, तो ठीक है। हिंदू के संबंध में मेरी एक धारणा है। खत्म हो गया।
सैयदा के बाबत अलग से सोचने की अब जरूरत न रही। यह मैंने इनको निबटा दिया।
इंडिविजुअल हमेशा डिस्टर्बिंग है।

प्रश्नः वह तो कनसेप्शन प्रिज्युडिस, वह है।

हां, वह पक्का कर लेते हैं। तो मैं नहीं करने देता कोई भी। मैं आपको अपने बाबत तय नहीं होने देता। क्योंकि मैं ही तय नहीं हूं, कल मैं बदलूंगा, परसों बदलूंगा। जब तक जिंदा हूं, बदलता रहूंगा।

प्रश्नः वही तो क्रांति की बात है। गीता को आप मानते हैं? क्या आत्मा है?

यह अलग से बात करना पड़े।

प्रश्नः आत्मा है?

यह अलग से आप किसी दिन आइए, तो अपन आत्मा पर इकट्ठी बात करेंगे।
अच्छी बात है, आनंद हुआ आप आए तो, अच्छा हुआ।
कभी भी आइए, फिर आत्मा पर भी बात करेंगे।

देख कबीरा रोया
अठारहवां प्रवचन

प्रेम-विवाहः जातिवाद का अंत

प्रश्नः हमारे यहां चूंकि राजकरण है वह जातिवाद का राजकरण है--जो हिंदू है वह हिंदू को वोट देता है और जो मुस्लिम है वह मुस्लिम को वोट देता है। और अभी के समय में ये जातीय-हुल्लड़, लाइक कॉमबॅट, बहुत हुए हैं। आपके ख्याल में क्या है, इसको मिटाने के लिए क्या करना चाहिए?

दो-तीन बातें करनी चाहिए। एक तो जातीय दंगे को साधारण दंगा मानना शुरू करना चाहिए। उसको जातीय दंगा मानना नहीं चाहिए, साधारण दंगा मानना चाहिए उसे।

प्रश्नः जातीय दंगा होने पर भी?

होने पर भी। और जो हम साधारण दंगे के साथ व्यवहार करते हैं वही व्यवहार उस दंगे के साथ भी करना चाहिए। इसमें जातीय दंगा मान लेने से कठिनाइयां शुरू हो जाती हैं। इसको जातीय दंगा मानने की जरूरत नहीं है। अगर एक लड़का एक लड़की को भगा कर ले जाता है, वह मुसलमान है कि हिंदू, कि लड़की हिंदू है कि मुसलमान है--इस लड़के और लड़की के साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिए, जो कोई भी लड़का किसी लड़की को भगा कर ले जाए और हो। इसको जातीय मानने का कोई कारण नहीं है।
और हम, जो इस मुल्क में जातीय दंगों को खतम करना चाहते हैं, इतनी ज्यादा जातीयता की बात करते हैं कि हम उसे रिकग्नीशन देना शुरू कर देते हैं। तो पहली तो बात यह है कि जातीयता को राजनीति के द्वारा किसी तरह का रिकग्नीशन नहीं होना चाहिए। राज्य की नजरों में हिंदू या मुसलमान का कोई फर्क नहीं होना चाहिए।
लेकिन हमारा राज्य खुद गलत बातें करता है। हिंदू कोड बिल बनाए हुए हैं, जो कि सिर्फ हिंदुओं पर लागू होगा, मुसलमान पर लागू नहीं होगा! यह क्या बदतमीजी की बातें हैं? कोई भी कोड हो वह पूरे नागरिक पर लागू होना चाहिए। अगर ठीक है तो सब पर लागू होना चाहिए, ठीक नहीं तो किसी पर लागू नहीं होना चाहिए। लेकिन जब आप पूरा का पूरा राज्य भी हिंदुओं को अलग मान कर चलता है, मुसलमान को अलग मान कर चलता है, तो किस तल पर यह बात खतम होगी? तो पहले तो हिंदुस्तान की सरकार को साफतौर से तय कर लेना चाहिए कि हमारे लिए नागरिक के अतिरिक्त किसी का अस्तित्व नहीं है। और अगर एक मुसलमान गुंडागिरी करता है तो एक नागरिक गुंडागिरी कर रहा है। जो उसके साथ व्यवहार होना चाहिए, वह होगा। यह मुसलमान का सवाल नहीं है। राज्य की नजरों से हिंदू और मुसलमान का फासला खतम होना चाहिए, पहली बात।
दूसरी बात, कि हिंदू-मुस्लिम के बीच शांति हो, हिंदू-मुस्लिम का भाई-चारा तय हो, इस तरह की सब कोशिश बंद होनी चाहिए। यह कोशिश खतरनाक है। इसी कोशिश ने हिंदुस्तान-पाकिस्तान को बंटवाया। क्योंकि जितना हम जोर देते हैं कि हिंदू-मुस्लिम एक हों, उतना ही हर बार दिया गया जोर बताता है कि वे एक नहीं हैं। यह हालत वैसी है जैसे कि कोई आदमी किसी को भूलना चाहता है, और चूंकि भूलना चाहता है इसलिए भूलने के लिए हर बार याद करता है। और हर बार याद करता है तो उनकी याद मजबूत होती चली जाती है।

प्रश्नः लेकिन यह राष्ट्रीय एकता होगी कैसे?

मेरा मानना यह है कि एकता की कोई जरूरत ही नहीं है। असल कठिनाई क्या है--एकता होनी ही चाहिए, इस भ्रांति से भी हम बड़े परेशान हैं। एकता की कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्नः तो आजकल हमारे देश में एकता तो है ही नहीं कि हम...

वह नहीं है। इसलिए वह कभी नहीं होगी, जब तक आप एकता करते रहेंगे। असल में एकता करने की बात नहीं है। एकता का होना न होना एक फैक्ट की बात है, और फैक्ट किन्हीं और चीजों पर जीता है।
अब जैसे--यदि हम लड़के और लड़कियों को प्रेम की सुविधा दे दें, और बिना प्रेम के विवाह बंद कर दें तो आपको एकता-वेकता चिल्लानी नहीं पड़ेगी, एकता हो जाएगी। आपको समझाना नहीं पड़ेगा, क्योंकि प्रेम करते वक्त कोई नहीं देखता कि कौन मुसलमान है, कौन हिंदू है; विवाह करते वक्त देखता है। कौन सिंधी है, कौन हिंदी, कौन गुजराती, कोई नहीं देखता है प्रेम करते वक्त। तो एक तो हमें बिना प्रेम के मुल्क में विवाह को समाप्त करना चाहिए, अगर भविष्य में हमें कोई भी ऐसी स्थिति चाहिए जहां कि अनेकता न हो। और मेरा जोर भिन्न है, मैं एकता पर जोर देना ही नहीं चाहता। मैं यह चाहता हूं अनेकता के कारण क्या हैं, वे नहीं होने चाहिए।
पहला अनेकता का कारण तो मुझे दिखता है कि इस मुल्क में विवाह की जो व्यवस्था है, वह अनेकता का आधारभूत कारण है। यह मिटा दिया जाना चाहिए। अगर हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमान के बीच शादी चलती होती तो पाकिस्तान बंट नहीं सकता था। और अहमदाबाद में दंगा भी नहीं हो सकता, अगर हिंदू लड़कियां मुसलमान घरों में हों, मुसलमान लड़कियां हिंदू घरों में हों तो कौन, किसको काटने जाए; न तो मुसलमान को अलग करना आसान है, न हिंदू को अलग करना आसान है।

प्रश्नः तो आपका राय यह हो गया कि सोशियल लेवल पर ये सब असिमिलेशन होना चाहिए?

यह असिमिलेशन होना चाहिए। इसके बिना पोलिटिकल लेवल पर नहीं हो सकता।

प्रश्नः हिंदू-मुस्लिम के बीच यह रोटी-बेटी का व्यवहार होना मांगता?

बिल्कुल ही, हिंदू-मुस्लिम के नहीं, सबके बीच होना मांगता। असल में जिनके बीच रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं, उनके बीच एकता हो नहीं सकती। वह रोटी-बेटी का व्यवहार रोकने की जो तरकीब है, वह अनेकता पैदा करने की मूल व्यवस्था है।

प्रश्नः यूरोप में तो ऐसी बहुत सी नेशंस हैं कि जहां रोटी-बेटी का व्यवहार अच्छे से चलता है। लेकिन यूरोप ने जितने युद्ध मानवता पर लादे हैं, इतने शायद किसी ने नहीं लादे।

उनके युद्धों के कारण बहुत भिन्न हैं। दंगा और युद्ध में बहुत फर्क है। और जिन मुल्कों में दो जातियों के बीच रोटी-बेटी का व्यवहार चलता, उन मुल्कों में जातीय दंगा नहीं हो सकता। जैसे चीन है--चीन में आप जातीय दंगा नहीं करवा सकते। कोई उपाय नहीं है। और कोई दंगे कि मैं नहीं कह रहा! जातीय दंगे नहीं करवा सकते चीन में। उसका कारण है कि कभी-कभी एक-एक घर में पांच-पांच रिलीजन के लोग हैं। दंगा करवाइएगा किसको? भड़काइएगा किसको? बाप कनफ्यूशियस को मानता है, पत्नी जो है वह, उसकी मां जो है वह लाओत्से को मानती है, बेटा मोहम्मद को मानता है, कोई बुद्धिस्ट है घर में एक लड़की, बहू जो है वह सिंतो। तो चीन में एक-एक घर में कभी-कभी पांच-पांच धर्म के आदमी भी हैं। और इसकी वजह से कोई कनवर्शन नहीं होता। अगर लड़का हिंदू है और पत्नी मुसलमान है, तो पत्नी मुसलमान होना जारी रखती है। मेरा मतलब समझे न आप? जब एक घर में पांच धर्मों के लोग हों, तो आप दंगा करवाइएगा कैसे? किस-किस का दंगा करवाइएगा? डिमार्केशन मुश्किल हो जाता है। हिंदुस्तान में डिमार्केशन आसान है--यह मुसलमान है, यह हिंदू है, यह साफ मामला है। मुसलमान अगर मरता है तो मेरी न तो पत्नी मरती है, न मेरी बहन मरती है, कोई भी नहीं मरता, मुसलमान मरता है।

प्रश्नः आपने बताया था कि राज्य में धर्म होना चाहिए। तो हमारे देश में अभी की परिस्थिति को ख्याल में रखते हुए कौन सा धर्म होना चाहिए?

नहीं, जब मैं धर्म की बात करता हूं तब मैं अनिवार्य रूप से यह कह रहा हूं कि कौन सा धर्म, तो धर्म होता ही नहीं। धार्मिकता मेरे लिए एक भीतरी गुण है। उसका किसी संगठन, कोई संस्था, किसी संप्रदाय से कोई संबंध नहीं है। धार्मिकता को मैं एक इनर क्वालिटी मानता हूं। और धार्मिक आदमी मुसलमान हो नहीं सकता। और धार्मिक आदमी हिंदू भी नहीं हो सकता। असल में धार्मिक होने की वजह से ही अड़चन हो जाएगी उसको हिंदू-मुसलमान होने में। क्योंकि हिंदू और मुसलमान मनुष्यता को तुड़वाते हैं और धार्मिक आदमी किसी से भी टूटा हुआ अनुभव नहीं करता। तो इसलिए धार्मिकता को मैं एक अलग ही क्वालिटी मानता हूं, जिसका हिंदूइज्म, मुस्लिम और ईसाइयत से कोई संबंध नहीं है। तो जब मैं धर्म की बात करता हूं तो मेरा मतलब हमेशा रिलीजस क्वालिटी से है। धर्म से मेरा मतलब धर्मों से नहीं है।

प्रश्नः आपने बताया था कि अपने देश में अभी पूंजी ज्यादातर पैदा नहीं हुई है। अब पूंजी पैदा नहीं है तब सोशलिज्म अच्छा नहीं... । तो हाल के अंदाज से ऐसा लगता है कि ज्यादा पूंजी और जल्दी पूंजी पैदा करने के लिए अपने देश में कोई भी ऐसी पोलिटिकल सिस्टम होनी चाहिए, जिसमें यह शक्य हो सके, पॉसिबल। तो आप बताते हैं, हमारे देश में अभी जो पोलिटिकल सिस्टम है डेमोक्रेसी की, वह ज्यादा पूंजी पैदा करने के लिए और जल्दी पूंजी पैदा करने में और जल्दी पूंजी पैदा करके के लिए अनुकूल है?

बिल्कुल अनुकूल बनाई जा सकती है। हम उसका उपयोग नहीं कर रहे हैं।

प्रश्नः तो अभी मतलब के अनुकूल नहीं है?

असल में सिस्टम का भी तो उपयोग करना पड़ता है! डेमोक्रेसी तो बहुत कीमती सिस्टम है, लेकिन उसका उपयोग करना पड़ता है। आपके पास लाख रुपये की कार भी रखी है, लेकिन उसको भी चलाने के लिए चलाना पड़ता है।
दो कठिनाइयां हैं--एक कठिनाई तो यह है कि हिंदुस्तान के पास डेमोक्रेटिक माइंड नहीं है। असल में डेमोक्रेसी उधार चीज है हमारे मुल्क में। हमारे लिए लोकतंत्र बिल्कुल उधार है। हिंदुस्तान का पूरा अतीत का चित्र गैर-लोकतांत्रिक है, नॉन-डेमोक्रेटिक है। यहां राजा भगवान रहा है सदा से। यहां प्रजा सदा से राजा की भक्त रही है। यहां प्रजा ने कभी राजा को हटाने की और राजा की जगह स्वयं राजा बन जाने की कोई कामना प्रकट नहीं की। डेमोक्रेसी मूलतः वेस्टर्न कांटेक्ट है। चूंकि लोकतंत्र की धारणा हमारी जड़ों में नहीं है, तो ऊपर तो वह आ गई है। हमने उसको लीप-पोत कर इकट्ठा कर दिया है, लेकिन सिस्टम वर्क नहीं कर रही है। हमने फैक्ट्री खड़ी कर ली, लेकिन वह चलती नहीं है।
तो लोकतंत्र हिंदुस्तान में सक्रिय हो, यह ज्यादा सवाल है। लोकतंत्र
की पोलिटिकल सिस्टम बदले, यह सवाल नहीं है, क्योंकि लोकतंत्र से बेहतर तो कोई सिस्टम अब तक विकसित नहीं हो सकी है। और अगर हम कोई भी सिस्टम दूसरा लाते हैं वह इससे अविकसित होगी। अब लोकतंत्र की वर्किंग में कठिनाई पड़ रही है, और कुछ और धारणाएं हमें नुकसान पहुंचा रही हैं। जैसे यह मेरा मानना है, गांधी जी ने स्वदेशी की एक धारणा दी वह हमको नुकसान पहुंचा रही है।
सच्चाई तो यह है कि आज अगर हम इस मुल्क को त्वरित स्पीडिली मेकनाइज करना चाहते हैं और इंडस्ट्रिलाइज करना चाहते हैं, तो हमें सारी दुनिया की पूंजी को आमंत्रित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। सारी दुनिया से पूंजी आमंत्रित होनी चाहिए। लेकिन हम मरे जा रहे हैं कि हम कहते हैं कि वह कहीं हमारा शोषण न हो जाए।

अब बड़ा मजा यह है कि अगर आज शोषण की हमारी धारणा ने हमको बहुत नुकसान दिया है। अगर अमरीकन पूंजी आएगी तो अमरीका हमारा शोषण कर लेगा! मेरी समझ यह है कि अमरीकी पूंजी हिंदुस्तान में अगर आती है या अंग्रेजों की पूंजी आती है, कहीं से भी पूंजी हिंदुस्तान में आकर लगती है, तो स्वभावतः वह पूंजी तुम्हारे लिए कोई खैर-खैरात के लिए नहीं लगने वाली है। वे उस पूंजी से फायदा उठाना चाहेंगे। फायदा उठाने की आशा में ही वे पूंजी लगाएंगे। तो हम उनको फायदा पहुंचा सकें, तभी वे पूंजी लगाने वाले हैं। लेकिन उनके फायदे में हमारा नुकसान नहीं है, हमारा फायदा है। अगर अमरीकन पूंजी हिंदुस्तान में लगती है और एक लाख आदमी जो बेकार थे, अगर वे काम में लग जाते हैं तो समझ लें कि उनसे वे दस रुपये का काम लेते हैं, और पांच ही रुपया उनको मिलता है और पांच अमेरिका चला जाता है तो भी हमारा कुछ नहीं खो रहा है क्योंकि हमारे दस ही खो रहे थे, जब वे एक लाख आदमी बेकार थे।
तो पहली तो मेरी धारणा यह है कि सारी दुनिया से पूंजी आमंत्रित होनी चाहिए। लेकिन यह तभी आमंत्रित हो सकती है, जब पूंजी सुरक्षित हाथों में हो। आप जब तक सोशलिज्म की बकवास करेंगे, तब तक दुनिया की पूंजी हिंदुस्तान में नहीं लगाई जा सकती, बल्कि खतरा यह है कि हिंदुस्तान में लगी पूंजी दुनिया में चली जाएगी बाहर, और जा रही है। हिंदुस्तान का पूंजीपति सारी दुनिया के बैंकों में पैसा जमा कर रहा है। क्योंकि आज नहीं कल उसे यहां खतरा हुआ जा रहा है कि उसकी पूंजी छिन जाएगी। हालत हमें ऐसी बनानी चाहिए...

प्रश्नः आपका एग्जांपल जर्मनी से मिलता है, आफ्टर सेकेंड वर्ल्ड वॉर जर्मनी जैसा ही खड़ा होगा?

बिल्कुल ही, बिल्कुल ही। हमें सारी दुनिया की पूंजी को निमंत्रण देकर
इस मुल्क को तीव्रता से औद्योगीकरण कर लेना चाहिए--एक।
दूसरी बात है कि हमने इतनी रोक-टोक लगाई है बाहर की चीजों पर, उन बाहर
की चीजों पर रोक-टोक के कारण जो ठीक, स्वस्थ काम्पिटीशन पैदा होना चाहिए, वह नहीं पैदा हो रहा है। इसलिए एंबेसेडर जैसी सड़ी गाड़ी, जिसको बैलगाड़ी कहना चाहिए, वह बीस और बाईस हजार में बिक रही है। अगर आज सारी दुनिया के लिए बाजार खुला हो तो एंबेसेडर को पांच हजार से ज्यादा में कोई भी खरीदने को राजी नहीं होगा। चूंकि अब वह बाईस हजार में बिक रही है, बीस हजार में बिक रही है तो कोई वजह नहीं है कि उसमें किसी तरह का सुधार हो। कोई सुधार की जरूरत नहीं है, वह पैसा दे रही है। तीनों गाड़ियां हिंदुस्तान की--चाहे स्टैंडर्ड, चाहे फियट, चाहे एंबेसेडर, कोई भी पांच हजार से ज्यादा में नहीं बिक सकती है। अब मेरा मानना यह है कि जब वे पांच हजार में बिकने की हालत में आ जाएंगी, तब काम्पिटीशन शुरू होगा, तब हमें उनमें विकास करना पड़ेगा।
दूसरी बात यह है कि कुछ संबंधों में, अगर हम बाहर की पूंजी को हिंदुस्तान में बुला लें तो ऐसा नहीं कि हमको लाभ होगा, बाहर को भी बहुत लाभ होगा। अब जैसे मुझे दिखाई पड़ता है कि हमारी सारी की सारी स्मगलिंग हम ही पैदा करवा रहे हैं। अब पाकिस्तान में सोने के दाम अगर सौ रुपये कम हैं और हमारे यहां सौ रुपये ज्यादा हैं तो स्मगलिंग नहीं होगी तो और क्या होगा? यह स्वाभाविक है। ब्लैक मार्केटिंग हम करवा रहे हैं। सब चीजों के दाम ज्यादा हो जाएंगे, क्योंकि चीजें कम पड़ती हैं। और मुल्क को न तो सस्ते में चीजें मिलती हैं, न मुल्क को श्रम करने का मौका मिलता है, न संपत्ति पैदा करने का मौका मिलता है।
आज दुनिया में कोई भी मुल्क अगर त्वरित रूप से विकसित होना चाहे तो उसके बाजार दुनिया भर के लिए खुले होने चाहिए और उन्हें सीधे स्वस्थ काम्पिटीशन में पड़ना चाहिए। मुसीबत पड़ेगी उसमें, लेकिन मुसीबत से विकास है सारा का सारा।

प्रश्नः अब इससे तकलीफ यह रहेगी, अगर हम फ्री ट्रेड कर दें, और कैपिटलिज्म भी हो जाएगा अपने यहां, तो हमारे देश के सब इकोनॉमिकल पॉवर उन

चंद पूंजीपतियों के हाथ में रहेगा। और वे लोग गवर्नमेंट पर दबाव और असर डालेगा। तो फिर हमारे यहां पर जैसे आप कहते हैं कि राज्य के हाथ में सत्ता रहेगी, तो इसके बजाय कि ये चंद पूंजीपतियों के हाथ में सत्ता रहेगी, तात्विक दृष्टि से भी क्या फर्क पड़ेगा?

असल कठिनाई क्या है, कठिनाई क्या है, सत्ता तो सदा ही चंद आदमियों के हाथ में रहेगी, कोई उपाय नहीं है। इसलिए चुनाव यह नहीं है कि चंद आदमियों के हाथ में रहे कि सबके हाथ में रहे। सवाल यह है कि किन चंद आदमियों के हाथ में रहे? सत्ता तो सदा ही चंद आदमियों के हाथ में रहेगी। इसका कोई उपाय ही नहीं है। नहीं यह तथ्य है, इसमें कोई उपाय नहीं है। तो इसमें चुनाव यह नहीं है। जो आल्टरनेटिव है, वह यह नहीं है कि सत्ता किन चंद आदमियों के हाथ में रहे? सत्ता चंद आदमियों के हाथ में रहेगी, यह हमें समझ लेना चाहिए।
अब सवाल यह है कि इस सत्ता को किन चंद आदमियों के हाथ में देना है? क्या उन्हीं चंद आदमियों के हाथ में देना है, जिन चंद आदमियों के हाथ में राज्य की भी सत्ता है? क्या ये दोनों सत्ताएं एक ही चंद आदमियों के ग्रुप के हाथ में दे देनी है या विभिन्न--एक।
दूसरा, कि यह जो चंद आदमियों के हाथ में सत्ता होगी, यह परमानेंट देनी
है या यह लिक्विडिटी की हालत में होगी, बदलती हुई हालत में होगी? ये दो सवाल हैं।
मेरा मानना है कि पूंजीवाद या पूंजीपति बदलती हुई व्यवस्था है। अगर
आज हम गौर से देखें तो आज से तीस साल पहले अमेरिका में जो बड़े पूंजीपति थे, आज वे ही परिवार बड़े पूंजीपति नहीं है। आज दूसरे परिवार भी उनकी जगह आ गए हैं।

प्रश्नः हमारे यहां भी तो टाटा और बिड़ला बने हुए हैं।

उसका कारण है। उसका कारण है कि पूंजीवाद को हम विकसित नहीं होने दे रहे हैं। विकसित होने दें, तो यह रोज बदलता रहेगा। इसमें बदलाहट रोज हो जाएगी। असल में ये अविकसित...

प्रश्नः अमरीका का एग्जांपल आप क्यों ले रहे हैं?

अमरीकन पूंजीवाद अकेला पूंजीवाद का सबूत है। हम तो कोई पूंजीवादी मुल्क नहीं हैं। इसलिए उदाहरण मैं अमरीका का इसलिए ले रहा हूं कि उसने पूंजीवाद को एक तरह से विकसित किया है। बीस साल पहले जो आदमी था, बीस साल बाद आपको पता नहीं चलेगा कहां गया। नये लोग आ गए हैं। असल में पूंजीवाद एक लिक्विड सिस्टम है, स्टेटिक सिस्टम नहीं है।

प्रश्नः फोर्ड और रॉकफेलर अभी तक रहे हुए हैं।

रहेंगे, उसके कारण हैं। आज रॉकफेलर रहेगा, लेकिन रॉकफेलर उसी हालत में नहीं है, जैसा अनचैलेंज्ड वह था आज से बीस साल पहले। यानी आज रॉकफेलर अनचैलेंज्ड नहीं है। आज कोई रॉकफेलर अकेला ही रॉकफेलर है, ऐसा नहीं है। आज पच्चीस रॉकफेलर खड़े हो गए हैं। और हमको जो नाम याद रहते हैं, वे पच्चीस साल पहले के हैं। स्वभावतः, क्योंकि यह ख्याल जो बनता है वह पच्चीस साल, तीस साल पुराना होता है। आज कौन आदमी अमेरिका में सबसे बड़ा ताकतवर है, उसको पच्चीस साल लग जाएंगे दुनिया भर में उसके नाम को पहुंचने में, तब तक वह ताकतवर नहीं रह जाएगा।
पूंजीवाद जो है, वह लिक्विड सिस्टम है। उसमें पूरे वक्त उतार-चढ़ाव हो रहे हैं, क्योंकि उसमें एक नेचरल काम्पिटीशन है, जो चल रहा है। फिर जब हम आज रॉकफेलर कहते हैं या मार्टिन कहते हैं या फोर्ड कहते हैं, तो ये सिर्फ नाम रह गए हैं। इनकी सारी संपत्ति शेयर होल्डर्स की है। अगर हम उसको बहुत गौर से देखें तो ये सिर्फ नाम हैं, जिनकी क्रेडिट है। तो यह हो सकता है कि

फोर्ड की कंपनी में फोर्ड के शेयर ज्यादा हैं, लेकिन सारे मुल्क के शेयर हैं। तो धीरे-धीरे अमेरिका जो है वह अपने आप एक ग्रेटर शेयरिंग बनता जा रहा है, जिसमें नाम भर प्रतीक रह गए हैं, और उसका कोई मतलब नहीं रह गया। फोर्ड के नाम का मूल्य है। आज नई कार चलाइए तो उसका उतना मूल्य नहीं होगा, उसको काम्पिटीशन में खड़ा होना पड़ेगा। फोर्ड के नाम की इज्जत है, कार फोर्ड के नाम से चलेगी। लेकिन फोर्ड की कंपनी को भी मेनेज करने वाले लोग रोज बदलते जा रहे हैं और फोर्ड की कंपनी के डायरेक्टर्स भी रोज बदलते जा रहे हैं। मालकियत रोज घूम रही है हाथों में, वह कोई मालकियत थिर नहीं है। हिंदुस्तान में थिर है, क्योंकि काम्पिटीशन नहीं है। और हिंदुस्तान के टाटा, बिड़ला और डालमिया या साहू या कोई और।

प्रश्नः अमरीका के ऑइल के कंट्रेक्टरों ने, ऑइल कंपनी के मालिकों ने सेकेंड वर्ल्ड वॉर करवाई है? और यह मिडल ईस्ट के अनरेस्ट जो हैं वे भी उन्हीं की वजह से हैं।

नहीं, यह जो हमारा ख्याल है, यह जो हमारा ख्याल है, यह बहुत जटिल मामला है। यह इतना आसान नहीं कि हम एक कॉ.ज को पकड़ कर उसको बता दें। यह बहुत जटिल मामला है। और युद्ध में हजार कारण हैं। और मजा तो यह है कि जैसा आदमी है अभी, अगर कोई भी कारण न हो--तो इसलिए लड़ना शुरू वह कर देगा कि अब कोई भी कारण नहीं है। आदमी की जो स्थिति है, वह स्थिति लड़ने के लिए बहुत ही उन्मुख है। और हजार कारण हैं, कोई एक कारण नहीं है। उसमें पूंजीपति का हाथ है, उसमें मजदूर का हाथ है, उसमें राजनीतिज्ञ का हाथ है, उसमें महात्मा का हाथ है, उसमें पोप का हाथ है, उसमें हम सबके हाथ हैं। असल में मेरे हिसाब से वॉर जो है, वह मनुष्य की टोटल-माइंड से पैदा होती है। वह कोई एक कारण से नहीं है।

प्रश्नः आप जो कंपेरिजन दे रहे हैं, आप खास करके सोशलिज्म वर्ड इस्तेमाल कर रहे हैं, लेकिन मेरे ख्याल से जो आप उदाहरण दे रहे हैं, जो बातचीत करते हैं, वह कम्युनिस्ट सोसाइटी के लिए ठीक होता?

बड़े मजे की बात यह है कि असल में सोशलिज्म, क्योंकि कम्युनिस्ट शब्द धीरे-धीरे बदनाम हो गया। और कम्युनिस्ट शब्द ने धीरे-धीरे एक तरह का कनोटेशन ले लिया, इसलिए कम्युनिज्म ही सोशलिज्म की भाषा बोल रहा है। वह सिर्फ डायल्यूट कम्युनिज्म है, और कुछ भी नहीं है।

प्रश्नः सोशलिज्म के और भी तो शेड्स हैं। जैसे कि स्कैंडेनेवियन कंट्रीज में चलते रहे। ब्रिटेन की लेबर पार्टी में चलते हैं, जर्मनी में जो...

हजारों। अगर इसको बहुत गौर से देखें, इसको बहुत गौर से देखें, तो मजा
यह है--अब जैसे कि यू.एस.एस.आर. है, वे भी सोशलिस्ट शब्द का उपयोग कर रहे हैं अपने मुल्क के लिए, कम्युनिस्ट शब्द उपयोग नहीं कर रहे हैं। यूनियन ऑफ सोशलिस्ट रिपब्लिकंस, वे भी कम्युनिज्म का उपयोग नहीं कर रहे हैं, वे भी सोशलिस्ट हैं। हिटलर था, वह भी नेशनलिस्ट, सोशलिस्ट-पार्टी थी, वह भी सोशलिस्ट है। इंग्लैंड की लेबर पार्टी भी सोशलिस्ट है, स्कैंडेनेवियन भी सोशलिस्ट है। लेकिन सच्चाई यह है कि जब एक शब्द बहुत कीमत का मालूम पड़ने लगता है तो हजार लोग उसका उपयोग करते हैं और हजार शेड हो जाते हैं।
लेकिन इंग्लैंड सोशलिस्ट नहीं था लेबर पार्टी के नीचे भी। वह मिक्स्ड इकोनॉमी ही है। न स्कैंडेनेविया सोशलिस्ट है, वह भी मिक्स्ड इकोनॉमी है। आज अमरीका सोशलिस्ट शब्द का उपयोग करने लगे तो बस एकदम सब ठीक हो जाएगा जैसे। लेकिन अमेरिका भी मिक्स्ड इकोनॉमी है। अमेरिका भी मिक्स्ड इकोनॉमी है। असल में कैपिटलिज्म शब्द का उपयोग करना भी ठीक नहीं है बहुत। क्योंकि जितनी कैपिटलिस्ट कंट्रीज हैं, वे सब मिक्स्ड इकोनॉमी हैं। मिक्स्ड इकोनॉमी जहां भी है, उसको मैं कैपिटलिस्ट कहता हूं। और जहां अनमिक्स्ड

इकोनॉमी है, और बेसिकली जहां उन्होंने पूंजीपति को खत्म किया, उसको मैं सोशलिस्ट कह रहा हूं। और जब कोई बात करनी हो तो पच्चीस शेड की अगर हम बात करें तो बात करनी बेमानी हो जाती है।
तो मेरे लिए डिमार्केशन साफ है। कैपिटलिस्ट कंट्री मैं उसको कह रहा हूं, जिस समाज या शासन व्यवस्था में शासन ने सारी ओनरशिप नहीं ले ली है, ने लेने की इच्छा रखता है और जहां व्यक्तिगत पूंजी के लिए स्वतंत्रता है, उसके फैलाव का उपाय है, जहां राज्य मालिक नहीं बन गया है, नियोजक है, प्लानर है, लेकिन ओनर नहीं है। और सोशलिस्ट शब्द मैं उसके लिए कह रहा हूं उपयोग कि जहां स्टेट ने ओनरशिप ले ली है, लेने की कोशिश में है या लेने की योजना बना रखी है, वह सारी ओनरशिप ले लेगी। शेड्स तो पच्चीस हैं, लेकिन पच्चीस शेड्स सिर्फ कंफ्यूज करते हैं और कुछ भी नहीं करते हैं। और जब हमें कोई बात साफ करनी हो तो हमें दो शेड साफ बांट लेने चाहिए। ब्लैक और व्हाइट को सीधा हम बांट लें तो ही चर्चा हो सकती है। अगर ग्रे की हम बात करें तो चर्चा मुश्किल हो जाती है। मजा यह है कि फिर कठिनाई हो जाती है। कैपिटलिज्म के भी शेड्स हैं।

प्रश्नः तो यह हालत तो यह हुई कि कम्युनिस्ट सोसाइटी लो या कैपिटलिस्ट सोसाइटी लो, आपरेशन तो इंसान पर होता ही है, इंडिविजुअल पर। तो आप ऐसा नहीं सोच सकते कि स्टेट मस्ट कैन बी डिजाल्वड अवे?

स्टेट जो है, वह मैं आशा रखता हूं कि एक वक्त आना चाहिए कि धीरे-धीरे क्षीण होती जाए। लेकिन ऐसा मैं नहीं सोच पाता कि कभी ऐसा वक्त आएगा कि स्टेट विदर अवे हो जाएगी। स्टेट के फंक्शंस बदलते जाएंगे, लेकिन स्टेट रहेगी। क्योंकि स्टेट जो है, उसके कुछ बुनियादी फंक्शंस तो कभी भी समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। स्टेट विदर अवे हो सकती है एक ही अर्थ में--वह यह इस अर्थ में कि अगर तीसरा महायुद्ध हो जाए और हमारे जीवन की सारी कांप्लेक्सिटीज खतम हो जाएं और हम आदिवासी की हालत में आ जाएं, तो स्टेट विदर अवे हो सकती है, क्योंकि स्टेट का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। स्टेट एक कांप्लेक्स सोसाइटी की जरूरत है। अब जब पचास करोड़ आदमी एक मुल्क में अगर रह रहे हों तो बिना स्टेट के काम नहीं चल सकता। लेकिन स्टेट का मेरा अपना समझ यह है कि ऐज ए पोलिटिकल बॉडी, वह धीरे-धीरे कमजोर होती जानी चाहिए। ए.ज ए फंक्शनल बॉडी, वह धीरे-धीरे मजबूत होती जानी चाहिए।
अब जैसे रेलवे है या पोस्ट आफिस है, अब ये स्टेट के फंक्शंस रहेंगे। पुलिस है, स्टेट का फंक्शन रहेगा। किसी दिन मिलिटरी भी खतम हो सकती है, अगर नेशंस खतम हो जाएं। लेकिन पुलिस खतम नहीं हो सकती है। पुलिस को तो स्टेट को रखना ही पड़ेगा क्योंकि यह इंटर-इंडिविजुअल रिलेशनशिप का मामला है। कोई आदमी किसी औरत को लेकर भागता ही रहेगा। मैं नहीं सोचता कि ऐसा कोई वक्त आ जाएगा कि पड़ोसी की औरत पसंद ही नहीं पड़ेगी। आशा हम कर सकते हैं, आशा हम कर सकते हैं कि स्टेट का फंक्शन धीरे-धीरे क्षीण होता जाए, बट इन ए एब्सल्यूट सेंस, स्टेट कैन नॉट बी आउट ऑफ एक्झिस्टेंस, ए रिलेटिवली लेसर एण्ड लेसर एण्ड लेसर फंक्शनलिटी, बस इतना ही होगा और यह होना चाहिए।

प्रश्नः आपने ध्यान के लिए साधकों को जो कुछ सूचना दी थी, ऐसे उंडी श्वास लेने की, और ऐसे बदन को थका देने की। ध्यान के कुछ लोग ऐसी भी शिक्षा देते हैं और सूचना देते हैं--वहां बदन को थकान नहीं लगती है और सीधे विचार के तंतु पर ऐसा उलटी सफर करने को कहते हैं। और विचार के मूल में जाएंगे तो बस अपना ध्यान में आ जाएंगे।

नहीं।

प्रश्नः थकाना जरूरी है?

बिल्कुल ही जरूरी है। उसके कारण हैं, उसके कारण हैं। यानी जैसे कि आप हैं, तो आपकी जो मौजूदा मन की स्थिति है, इस स्थिति में आपको सीधा ध्यान में ले जाना बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि इस मौजूदा मन कि स्थिति में ध्यान के विपरीत बहुत से एलिमेंट्स मौजूद हैं। जैसे एंग्जाइटी मौजूद है, टेंशंस मौजूद हैं, सप्रेशंस मौजूद हैं, इन्हीबीशंस मौजूद हैं, इनकी मौजूदगी आपको विचार के मूल बिंदु तक नहीं जाने देगी। इनकी मौजूदगी पूरे वक्त इनर डिस्टर्बेंसेस पैदा करती रहेगी। आप सब कोशिश करेंगे, लेकिन ये बीच-बीच में इनके हमले होते रहेंगे। और इसलिए यह वर्षों और जीवन की लंबी यात्रा होगी, जिसमें कि आप आशा नहीं रख सकते कि इसी जन्म में ध्यान हो जाएगा। मैं जो कर रहा हूं उसमें दोहरी प्रोसेस है। उसमें पहली प्रोसेस कैथार्सिस की है। पहली प्रोसेस जो तीस मिनट की है, उसमें आपमें जो भी इनर हिंड्रेंसेज संभव हैं, उसको अलग करने की कोशिश करें। ध्यान की हम फिक्र ही नहीं कर रहे हैं अभी। यानी मामला ऐसा है जैसे कि घास उगी हुई है, मैंने जाकर बीज फेंक दिया, एक तो यह स्थिति है और बहुत संभावना है कि घास बीज को पचा जाएगा। और दूसरी स्थिति है कि पहले हम घास साफ करते हैं, जमीन साफ करते हैं, पुरानी जड़ें उखाड़ फेंक देते हैं, जमीन साफ तैयार करके फिर बीज डालते हैं।
तो मेरा मानना है कि जैसी मौजूदा आपकी हालत है वह बिल्कुल ही ऐसी जमीन
की है, जिसमें घास हजारों साल से चल रहा है। इसमें बीज फेंकना बेमानी है और सिर्फ नासमझ माली की खबर देता है। इसकी सफाई बहुत जरूरी है। तो इसलिए मैं सीधा शुरू नहीं करना पसंद करता। पहली प्रोसेस रेचन की है, कैथार्सिस की है। उसमें तीन चरणों में आपको सब तरफ से हलका, शांत... और हिंड्रेंसेज को तोड़ डालने का है। और जब एक दफा आप हलके और शांत हो गए तो आप तत्काल पाते हैं कि आपका प्रवेश हो गया। उसे करना नहीं पड़ता। और दूसरी जितनी प्रक्रियाएं हैं, उनमें आपको प्रवेश करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में प्रवेश होगा। चौथी जो स्टेज है, दिस इ.ज नॉट ए स्टेप, दिस इ.ज ए हैपनिंग। तीन काम आपको करना है, चौथा होगा।
और मैं मानता हूं, जो ध्यान आप करेंगे, वह आपसे ज्यादा कीमती नहीं हो सकता है। जो ध्यान आप लाएंगे, वह आप ही लाएंगे न, आपका माइंड, आपकी कंडीशनिंग, आप, आपकी सब बीमारियां, रोग, चिंताएं, वे ही। जिस मेडिटेशन को आप लाएंगे, वह बहुत कीमती नहीं हो सकता, वह आपकी ही बाइ-प्रॉडक्ट होगा। तो मैं उस मेडिटेशन की कीमत मानता हूं जो आता है आपके ऊपर। आप तो सिर्फ ओपनिंग में होते हैं।

प्रश्नः एफर्ट नहीं करना चाहिए?

आपका कोई एफर्ट नहीं है। तो जो तीन एफर्ट हैं, वे सिर्फ सफाई के हैं, निगेटिव हैं। पाजिटिव एफर्ट आपको करना नहीं है। वह होगा। और इसलिए बेसिकली फर्क है उसमें। और उस प्रोसेस में तो जन्मों लग जाएं, फिर भी पक्का नहीं है। क्यों?

प्रश्नः कुछ योगी ने तो वहां... में जाकर ऐसा-ऐसा बड़े चाहत पैदा कर दिए हैं।

बड़ी कठिनाई यह है, बड़ी कठिनाई यह है कि अब जैसे महेश जी का जो भी मामला है...

प्रश्नः मैं उन्हीं का नाम बोलने वाला था, आपके साथ बात करने में डिफिकल्ट, न बोलना वह अच्छा है।

कोई हर्जा नहीं है। जिसे वे ध्यान कह रहे हैं, वह ध्यान नहीं है। वह सिर्फ जप है।

प्रश्नः वे ऐसा मंत्र देते हैं और मंत्र के तार पर ऐसा बोलते हैं-- बोलते जाओ, बोलते जाओ, बोलते जाओ, बोलते जाओ।

तो उसका परिणाम जो है, वह ज्यादा से ज्यादा तंद्रा है, वह ऑटो- हिप्नोसिस है, इससे ज्यादा नहीं है। अगर आप एक शब्द को बोलना शुरू करते हैं रिपीटेडली, तो वह आपके भीतर एक तरह की हिप्नोसिस पैदा करता है। वह ट्रांजिटरी नीड है। मेरा जो प्रयोग है इसको, और उनके प्रयोग में अगर हम फर्क करें तो उनका प्रयोग जस्ट लाइक ए टैंक्वेलाइजर, और मैं जिसे कह रहा हूं, जस्ट लाइक एन एक्टिवाइजर है, क्योंकि मेरे प्रयोग में तो आप हिप्नोसिस में तो जा नहीं सकते, क्योंकि इतना एक्टिव प्रोसेस है कि आप बेहोश तो हो नहीं सकते, नींद आ नहीं सकती। इतनी गहरी श्वास ली है, इतना शरीर नाचा और कूदा है और इतने जोर से आपने "मैं कौन हूं" पूछा है, यह इतनी एक्टिव प्रोसेस है कि इसमें तंद्रा नहीं आ सकती।

प्रश्नः थकान से ऐसा नहीं लगता?

बड़े मजे की बात है, यह जो थकान है न, यह टेंशन की थकान है। और जब आप पूरे टेंस हो जाते हैं--पूरे टेंस हो जाते हैं और जब पूरे टेंशन से वापस रिलैग्जेशन में लौटते हैं, तो वे तो लौटेंगे, एक क्लाइमेक्स पर जब आप पहुंच गए हैं। यह जो वापस लौटती है, यह इतनी फ्रेशनेस से भरी होती है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि इसके पहले पूरी एक्टिविटी है। जैसे आप बहुत खेल कर थक तो जरूर जाते हैं, लेकिन फ्रेश हो जाते हैं।

प्रश्नः आज शाम को जब लोग ध्यान का प्रयोग करके जा रहे थे, तो एक-दो महिला ऐसी भी देखी कि जिसके मुंह पर इतनी थकान लगी जैसे दिन भर का काम करके आई हों।

हां-हां, थकान लग जाएगी, क्योंकि पहली दफा प्रयोग किया। और वह तो बहुत एक्टिव प्रयोग है। तो दो-चार-पांच दिन में थकान लगेगी--शरीर दुखेगा, कहीं दर्द होगा, फिर वह विदा हो जाएगा।

प्रश्नः और यह ध्यान की स्थिति हिप्नोटिक से सबसे आगे की है या पीछे की?

बहुत आगे की है, बहुत आगे की है।

प्रश्नः आगे की है। तो हिप्नोटिक फिर पीछे रह जाता है और हम आगे चले जाते हैं?

हिप्नोटिक स्टेट तो बिल्कुल ही मेंटल है। इसमें तो कुछ मामला ही नहीं
है बाद का।

प्रश्नः आपने कहा था कि ये जो लोग सोशलिज्म की बात कर रहे हैं, उन लोगों को, ये अपने आपको और देशवासियों को ऐसे एक आधार दे रहे हैं कि कुछ होगा, कुछ होगा और अपना मतलब निकाल लेते हैं। मगर व्यावहारिक भूमिका पर देखें तो नेशनेलाइजेशन और जो भी ट्रेड... और ये कॉमर्स, गवर्नमेंट ले लेती हैं, उसके बारे में और इसके रिजल्ट से तो आम लोगों को ही फायदा होता है?

मेरी समझ में ऐसा नहीं है। मेरी समझ में ऐसा है कि राज्य के हाथ में जैसे मुल्क का अर्थ-तंत्र आ जाए तो राज्य के हाथ में दोहरी शक्तियां हो जाती हैं और राज्य के डेमोक्रेसी से हट कर डिक्टेटोरियल हो जाने की संभावना बढ़ जाती है। क्योंकि राज्य के हाथ में सब है--राज्य की ताकत तो है ही, धन की भी है, और दो ही ताकत हैं।

प्रश्नः और सोशल भी आ सकती है, पोलिटिकल भी आ सकती है, सब आ सकती हैं।

तो जब राज्य के हाथ में सेंट्रलाइजेशन हो जाए, देश की सभी ताकतें हों,
तो लोक-तंत्र को हानि होती है, अपने आप तानाशाही बैठने लगती है। और जितनी बड़ी मात्रा में तानाशाही बैठती है, उतनी बड़ी मात्रा में व्यक्तिगत स्वतंत्रता चिंतन की, विचार की, अभिव्यक्ति की, वह सब कम होने लगती है। तो अंततः एकदम पहले से भला मालूम पड़े कि जनता को थोड़ा फायदा हुआ कि उसको बैंक से लोन मिलने लगा। यह तो बिना राज्य के लिए भी हो सकता है। यह तो राज्य नियमन कर सकता है कि बैंक जनता को इस भांति लोन दे। इसके लिए नेशनेलाइजेशन जरूरी नहीं है। यह जनता के लिए अधिक सुविधाएं मिलें, इंडस्ट्रीज से ज्यादा सुविधाएं मिलें, मजदूर को ज्यादा वेलफेयर मिले, यह तो राज्य नियमन कर सकता है और इस नियम को लागू किया जा रहा है या नहीं किया जा रहा है, इसकी भी चिंता कर सकता है। लेकिन इसके लिए स्वयं राज्य को सारी सत्ता हाथ में ले लेने की कोई जरूरत नहीं है।
हमने ट्रैफिक पर एक आदमी खड़ा किया हुआ है रास्ते पर। वह इसलिए खड़ा किया हुआ है कि वह देखे कि कारें बाएं से गुजरती हैं कि नहीं गुजरती हैं। इसलिए ट्रैफिक के आदमी को सब कारों की मालकियत लेने की जरूरत नहीं है। और उसे देखना चाहिए कि कौन आदमी गुजर रहा है ठीक से, कौन नहीं गुजर रहा है, लेकिन फिर भी वह इन सारे लोगों की सुविधा के लिए वहां है। वह इनका मालिक होने के लिए वहां नहीं है कि कल धीरे-धीरे वह कहने लगे कि, चूंकि गड़बड़ होती है बहुत, इसलिए सब कारों की मालकियत मैं लिए लेता हूं, सब आदमियों की मालकियत मैं ले लेता हूं। अब कोई गड़बड़ न होगी, क्योंकि मालिक भी मैं हूं, ट्रैफिक का आदमी भी मैं हूं।
राज्य का फंक्शन ही यह है कि राज्य में प्रत्येक व्यक्ति जो कर रहा है, वह उसे स्वतंत्रता से कर सके, लेकिन वह किसी को नुकसान न पहुंचा सके, इसके लिए राज्य का निर्माण है। लेकिन धीरे-धीरे राज्य सब एब्जार्ब करना चाहता है, वह कहता है कि नहीं, तुम जो करते हो, वह भी हम करेंगे, तुम जो कमाते हो, वह हम कमाएंगे। बीच का जो मध्यस्थ है, उसको अलग करके हम ही सीधी ओनरशिप ले लेते हैं।
इसलिए सोशलिज्म का गहरा मतलब तो स्टेट कैपिटलिज्म ही होता है, कोई और मतलब होता नहीं है। सोशलिज्म का मतलब यह नहीं होता कि सोसाइटी की संपत्ति होगी। सोशलिज्म का मतलब होता है, स्टेट की संपत्ति होगी। सोसाइटी है कहां? सोसाइटी के नाम पर स्टेट मालकियत ले लेती है। तो एक दफा अर्थ का तंत्र राज्य के हाथ में चला जाए तो देश की सारी संभावनाएं स्वतंत्रता की, लोकतंत्र की, सब समाप्त होती हैं। और फिर राज्य जिनके हाथ में है, उनको हटाने का उपाय कठिन हो जाता है।
और दूसरी मजे की बात यह है कि जैसे ही व्यक्तिगत संपत्ति छिन जाए, जैसे ही, उसी दिन आपके भीतर से कोई निन्यानबे प्रतिशत शक्ति छिन जाती है। और आपके भीतर से व्यक्तित्व भी छिनता है। धीरे-धीरे मुल्क एक आटोमेटा, एक यंत्रों का समूह रह जाता है। जिसको खाना भी मिलता है, कपड़े भी मिलते हैं, काम भी मिलता है, लेकिन उसकी आत्मा, उसका व्यक्तित्व, वह सब का सब छिन जाता है। तो मैं मानता हूं कि अंततः तो नुकसान है। और नुकसान जब पहुंचाना हो बड़ा तो थोड़े बहुत फायदे भी पहुंचाने पड़ते हैं। एकदम से आप नुकसान नहीं पहुंचा सकते। वह तो मछली को अगर कांटे में फंसाना हो तो आटा थोड़ा लगाना ही पड़ता है। कांटे का फायदा है।

प्रश्नः जो सवाल मैं कर रहा था, उसका जवाब तो मिल ही गया। मुझे एक ही सवाल और एक ही विषय पर तो बात नहीं करना है, तीन-चार विषयों पर करना है, तीन-चार पत्रों के लिए भी करना है, तो इतना वक्त निकालें तो ठीक रहेगा।
मैं सवाल यह कर रहा था, यह नेशनेलाइजेशन के बारे में, कि अभी अपने देश में बहुत सी संख्या में गरीब लोग हैं, उनको तात्कालिक कोई भी राहत नहीं दे सकते हैं हम? दे सकते हैं तो किस तरह दे सकते हैं?

तात्कालिक राहत दी जा सकती है। दो-चार बातों पर ख्याल देना पड़े। एक तो जनसंख्या को सख्ती से रोक देना पड़े, बढ़ती जनसंख्या को। नहीं तो हम कोई भी सहायता पहुंचाएं, वह सहायता पहुंचेगी नहीं। और हम कितना ही इंतजाम करें, हम जितना इंतजाम करेंगे, लोग उससे सदा ज्यादा हो जाएंगे और तकलीफ वही रहेगी बढ़ती जाएगी। तो एक तो जनसंख्या इस समय सबसे बड़ा सवाल है। और इन जनसंख्या को जितनी ताकत से हम रोक सकें, उसे रोकने की सब तरफ से हमले करने चाहिए।
जैसे मेरा मानना है कि इसको स्वेच्छा से नहीं छोड़ना उपाय है।
स्वेच्छा से नहीं छोड़ा जा सकता है।

प्रश्नः कंप्लसरी।

यह कंप्लसरी होना चाहिए। यह वैसे की कंप्लसरी होना चाहिए, जैसे चोरी
न करने को हम कंप्लसरी रोकते हैं। डाका न डालने को कंप्लसरी रोकते हैं।

प्रश्नः इसके तो बहुत तरीके हैं। टेक्सेशन हैं और बाई लॉ है, और बाई आपरेशन और मेडिकली।

सारा उपयोग करना पड़ेगा हमें, हमें सारा उपयोग करना पड़े। एक तो अनिवार्य हो जाना चाहिए। दूसरा टेक्सेशन होना चाहिए। तीसरा जो लोग भी दंडित होते हैं, जिनको हम इस किसी तरह का दंड देते हैं, उनके दंड के साथ यह अनिवार्य रूप से होना चाहिए। एक आदमी को हम छह महीने की सजा देते हैं, तो उसको तो अनिवार्य रूप से उसका पालन होना ही चाहिए। हमारे जेल से तो एक आदमी बाहर नहीं आना चाहिए। यह प्रवेंटिव हुआ। इनसेंटिव क्या होना चाहिए? कल के लिए रोटी खानी है, छैना कहां से लाएं?
यह एक तो पहला प्रवेंटिव हो कि हम जनसंख्या को रोकने की फिकर करें। दूसरी बात है कि मुल्क के पास बहुत से साधन हैं जो अभी अनएक्सप्लाइटेड हैं।

प्रश्नः मिसाल के तौर पर?

मिसाल के तौर पर समुद्र है। समुद्र से बहुत सा भोजन निकाला जा सकता है। तो अब हम जमीन की ही फिकर करते हैं तो हम भूल में पड़ेंगे और हम जमीन पर ही खाद डालते हैं तो कुछ होने वाला नहीं है। असल में जमीन की ताकत चुक गई है। और हिंदुस्तान ने जमीन को वापस कुछ नहीं दिया हजारों साल से, इसलिए जमीन की ताकत चुक गई है। जमीन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। हमें समुद्र्र से फिकर करनी पड़े, हमें हवा से फिकर करनी पड़े, हमें सूरज की किरणों से फिकर करनी पड़े और हमें सिंथेटिक फूड की फिकर करनी पड़े, जो सबसे बड़ी जरूरत है। जब तक हम सिंथेटिक फूड की फिकर न करें, तब तक हम शायद कोई मसला हल न कर पाएं। बजाय इसके कि हम रोटी देने की फिकर करें, हमें एक गोली देने की फिकर करनी पड़े। और गोली ही इस मुल्क को अब बचा सकती है। भोजन नहीं बचा सकता है। हमें भोजन की आदतें छोड़नी पड़ें, हमें गोली की आदत पर निर्भर होना पड़े।

प्रश्नः समुद्र से जो यह भोजन की व्यवस्था करने का कह रहे हैं, तो जैन धर्म है, वैष्णव धर्म है और बौद्ध धर्म है, वे लोग तो ऐसे मांस के भोजन की तो हिमायत करेंगे नहीं?

नहीं-नहीं, मैं मांस के भोजन की बात नहीं कर रहा हूं। असल में समुद्र
के पानी में बहुत तत्व हैं, जो भोजन बनाए जा सकते हैं, जिन पर काफी काम चल रहा है।

प्रश्नः बड़ा महंगा रहेगा?

इतना महंगा नहीं है, इतना महंगा नहीं है कि जितना महंगा इतने लोगों का भूखा मरना है। और इतना महंगा भी नहीं, जितना हम जमीन पर कोशिश करके कर रहे हैं। असल में मेरा कहना यह है कि हमारा माइंड डायवर्ट होना चाहिए, हम सिर्फ जमीन की ही फिकर में लगे रहें कि इसका उत्पादन बढ़ाएं, ट्रैक्टर लाएं और फर्टिलाइजर डालें, इससे अब कोई बहुत हल होने वाला नहीं है। क्योंकि जमीन बड़ी चुकी हुई और चूसी हुई है हमारी जमीन।

प्रश्नः अभी हमारी सरकार ने तो यह समुद्र से भोजन निकालने के लिए नॉन-वेजिटेरिअन फूड तो सबके लिए निकाले गए हैं।

मैं तो उसके भी पक्ष में हूं, वह तो निकालें ही। मैं तो उसके विपक्ष में नहीं हूं, मैं तो उसके विपक्ष में नहीं हूं, क्योंकि मेरे सामने सवाल यह नहीं है। मेरे सामने सवाल यह है कि मछली बचे कि आदमी बचे? बड़ा सवाल यह नहीं है कि हिंसा और अहिंसा, बड़ा सवाल सदा यह है कि कम हिंसा या ज्यादा हिंसा। कम हिंसा या ज्यादा हिंसा, जिंदगी में जो सवाल हैं, वे रिलेटिव हैं। एब्सल्यूट सवाल होते ही नहीं। इसलिए जो जैन मुनि यह कह रहा है कि मछली को मत मारो, वह कह रहा है, आदमी को मारो। और मेरे सामने सवाल अगर मछली और आदमी बचाने का है, अगर दोनों बचते हों तो मैं मछली बचाने को राजी हूं। लेकिन अगर ऑल्टरनेटिव मछली और आदमी बचाने का है, तो मैं कहूंगा, मछली को मारो। मैं तो कहता हूं कि मछली खाएं, मैं तो कहता हूं, मांस खाएं। क्योंकि मैं यह कह रहा हूं कि आदमी मरेगा अगर नहीं खाते हैं। और जो कह रहा है कि मत खाओ, वह आदमी को मारने के लिए जिम्मेवार होगा, वह बड़ी हिंसा कर रहा है। तो इसलिए इस वक्त जैन साधु या बौद्ध भिक्षु जो समझाते हों या गांधीजी के अनुयायी अगर समझाते हों कि मांसाहार मत करो, तो वे आदमी को मरने की तैयारी करवा रहे हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। मछली बच जाएगी, आदमी मर जाएगा। और तब हिंसा बड़ी होगी या छोटी होगी, यह हमें सोच लेना चाहिए।
तो मेरे लिए जिंदगी में सवाल हमेशा रिलेटिव है। सवाल यह नहीं है कि हिंसा और अहिंसा, सवाल यह है कि कम हिंसा या ज्यादा हिंसा। हमेशा ऐसा ही सवाल है सब तरफ। तो मैं सदा कम हिंसा के लिए राजी हूं और आदमी को बचाना कम हिंसा है। मछली को बचाना ज्यादा हिंसा है। तो इसलिए यह जो चुनाव है मेरे लिए रिलेटिव है और मैं इसके लिए तैयार हूं कि मछलियां पैदा करें बड़े पैमाने पर, उनको खाएं भी बड़े पैमाने पर। हां, जरूर इस बात की प्रतीक्षा करें कि हम एक नेसेसरी ईविल कर रहे हैं--मछली को भी तो मार तो रहे हैं--तो कल हम एक ऐसा इंतजाम कर लें, जिसमें मछली को मारना जरूरी न रह जाए। लेकिन जब तक वह इंतजाम न होगा, तब तक आदमी को तो बचा लें, जो इंतजाम करेगा कि मछलियां न मारी जा सकें।
बहुत से अनएक्सप्लाइटेड सोर्सेस की हमें फिकर लेनी चाहिए। और दूसरा, सिंथेटिक फूड की हमें सबसे ज्यादा चिंता लेनी चाहिए।

प्रश्नः और इकोनॉमिक सिस्टम के बारे में क्या करें?

इकोनॉमिक सिस्टम मेरे लिए कैपिटलिज्म ही उचित मालूम पड़ता है अभी। एक
सौ वर्ष इस मुल्क को ठीक ढंग से कैपिटलिज्म की तरफ ले जाने की फिक्र करनी चाहिए, और वह फिकर हो सकती है। असल में मुल्क अभी भी फ्युडल है, अभी भी सामंतवादी है।

प्रश्नः अभी भी सामंतवादी हैं अपने यहां?

अभी भी। सामंतवादी राजा नहीं है, लेकिन सामंतवादी स्ट्रक्चर है मुल्क
का आज भी। आज भी गांव का आदमी उसी ढंग से जी रहा है, जिस ढंग से हजार साल पहले जीता था। जो स्ट्रक्चर सामंतवादी का था, सामंतवादी स्ट्रक्चर जीता है कृषि पर, पूंजीवादी स्ट्रक्चर जीता है उद्योग पर। तो हमें कृषि से

शिफ्ट करनी पड़े उद्योग की तरफ। और हमें कृषि को भी औद्योगिक करना पड़े। इसलिए मैं सिंथेटिक फूड की बात कर रहा हूं। मैं कह रहा हूं, हम उसे खेत में न पैदा करें, फैक्टरी में पैदा करें। उसको हम जितने जल्दी ले आएं, उसको हम जितने जल्दी ले आए।
चौथी बात जो समझने जैसी है, वह यह है कि हम जो लंबी योजनाएं बना रहे हैं, वे लंबी योजनाएं जो पांच या दस साल या बीस साल में सक्रिय होंगी, शायद दस-बीस साल में मुल्क इतने प्रॉब्लम बना लेगा कि वे कभी सक्रिय नहीं हो पाएंगी या सक्रिय भी होंगी तो मुल्क इतनी बड़ी संख्या पैदा कर लेगा कि मामला वहीं का वहीं रहेगा, उससे कुछ हल नहीं होगा। तो इस वक्त मुल्क को बड़ी योजनाओं में, आगे की, भविष्य की योजनाओं में सक्रिय करने की बजाय इमिजिएट योजनाओं में सक्रियता लाने की फिकर करनी चाहिए। पांच साल की नहीं, पंद्रह दिन वाली योजना में सक्रियता लाने की फिकर करनी चाहिए। चाहे पांच साल में हमें पचास योजनाएं बनानी पड़ें। और पंद्रह दिन की योजना ही इस मुल्क को इनसेंटिव दे सकती है। क्योंकि इस मुल्क की लिथार्जी इतनी गहरी है कि पांच साल तक हम सोच ही नहीं पाते।
अब जैसे--गांव में अगर हम कोई काम पांच साल या पच्चीस साल की आगे योजना
के ख्याल से कर रहे हैं। जिससे पच्चीस साल बाद फायदा होगा, निश्चित फायदा होगा। लेकिन गांव को जरूरत आज है। तो बजाय इसके कि आप पच्चीस साल बाद जो फैक्ट्री काम करेगी, उसको बनाएं, पंद्रह दिन बाद जो फैक्ट्री काम कर सकेगी, उसको बनाने की फिकर करें और लांग टर्म योजनाएं जो हैं, उनको सेकेंड्री इंपॉर्टेंस दें। शार्ट टर्म योजनाओं को प्राइमरी इंपॉर्टेंस दें।

प्रश्नः इसी तरह गांधी जी ने कहा था कि तुम तकली चलाओ और कल की रोटी कल पैदा कर लो।

गांधी जी की तकली चलाने का जो मामला है न, तकली चलाने के साथ मजा यह है
कि जितनी देर में तकली चलाई जाती है, उतनी देर में बहुत शॉर्ट टर्म योजना बहुत कपड़ा पैदा कर सकती है। गांधी जी तो यंत्र-विरोधी व्यक्ति हैं।

प्रश्नः हां, मैं यह जरूर मानता हूं कि यंत्र-विरोधी व्यक्ति हैं। मैं उनकी तरफदारी भी नहीं कर सकता कभी भी। और उनका विरोध...

मैं नहीं कहता कि तकली मत चलाओ, मैं नहीं कहता। अगर कुछ भी नहीं कर सकते हो तो तकली चलाओ। मैं कभी नहीं कहता कि तकली मत चलाओ। लेकिन तकली चलाने को जिंदगी का सेंट्रल फोर्स अगर बनाने की कोशिश की जाए, और गांधी जी वही कोशिश कर रहे हैं। उनका सारा अर्थशास्त्र तकली के आस-पास केंद्रित है। उसके मैं खिलाफ हूं। मैं कहता हूं, एक आदमी फुर्सत में बैठा है, तो ताश खेलने की बजाय तकली चलाए तो बेहतर है। लेकिन आप एक आदमी को तकली चलाने को उसकी इकोनॉमी का केंद्र बना रहे हों तो आप खतरनाक बातें कर रहे हैं। आप मुल्क को मार डालेंगे, गरीबी में डाल देंगे।
हमें छोटे यंत्र विकसित करने चाहिए। हम छोटे यंत्र विकसित कर सकते हैं। अब कोई जरूरत नहीं कि आदमी तकली हाथ से चलाए। छोटा करघा हो सकता है जो बिजली से चले। आदमी देख-रेख करे और जितने दिन में तकली चला कर वह अपने लिए पैदा करता है, उतने दिन में पांच हजार के लिए पैदा करे। इस मुल्क के लिए जापान और इजरायल की तरफ ध्यान देना चाहिए। जो यंत्र विरोधी नहीं हैं, लेकिन छोटे यंत्रों में बड़ी गति कर रहे हैं। इस मुल्क को अमेरिका की तरफ ध्यान देने से थोड़ा सावधान रहना चाहिए, यंत्रों का जहां तक संबंध है। पचास साल बाद हम अमरीका के यंत्रों का ठीक से उपयोग कर सकेंगे। आज हमें फिक्र करनी चाहिए उन मुल्कों की जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं हैं, लेकिन फिर भी जो यंत्र पक्षपाती हैं और रोज यंत्रों के, छोटे यंत्रों के प्रयोग से आगे बढ़ रहे हैं। अब जैसे कि इजरायल है, इजरायल ने इधर बीस साल में जो काम किया है, वह आंखें खोल देने जैसा है। उस काम को हम भी कर सकते

हैं। हमारे पास ज्यादा सुविधा है, इतनी सुविधा उनके पास नहीं है। लेकिन हमारे पास समझ कम है।

प्रश्नः तो अपने यहां पर बड़ी इंडस्ट्री डाली है, वह अपने हित में नहीं रही?

नहीं-नहीं, मैं नहीं कहता कि हित में नहीं रही। मेरा कहना यह है कि बड़ी इंडस्ट्री जरूर डालें, लेकिन वह सेकेंड्री इंपॉर्टेंस होनी चाहिए, क्योंकि मुल्क के प्रॉब्लम इमिजिएट हैं। डालनी तो पड़ेगी, नहीं तो पच्चीस साल बाद हम दिक्कत में पड़ जाएंगे। बड़ी इंडस्ट्री हमें डालनी पड़ेगी, यह तो मल्टी-सेंटल है, यह भय है। लेकिन सबसे इंपॉर्टेंस--क्योंकि जो इंडस्ट्री बड़ी है वह पांच साल बाद काम करेगी और आदमी आज भूखा मर रहा है। जैसे आज मरते भूखे आदमी के लिए हमें कुछ करने की फिकर करनी ही पड़े, जो आज भी तात्कालिक काम करती हो। फर्स्ट इंपॉर्टेंस इसको हो, इसकी ताकत से जो हमको ताकत मिले, उससे सेकेंड इंपॉर्टेंस में हमें वह सारी की सारी व्यवस्था करनी पड़े। और नहीं तो क्या होगा, हम बड़ी इंडस्ट्री जिस दिन खड़ी कर पाएंगे, उस दिन तक हम पाएंगे कि प्रॉब्लम तो बहुत आगे जा चुके हैं, और कुछ हल नहीं होता।

प्रश्नः और वही हो रहा है।

वही हो रहा है। और वही हो चुका।

प्रश्नः अगली बैठक में मैं आपसे यह कहूं, पूछने की कोशिश करूं।

जो भी आप पूछें।

प्रश्नः हां, पूछने की कोशिश करूंगा कि देश को आर्थिक तरह से, आर्थिक दिशा में आगे बढ़ाने के लिए राष्ट्रीय प्रोग्राम क्या हो सकता है, इसके ऊपर हम बात करेंगे।

आनंद हुआ।

प्रश्नः हम मिले, बहुत खुशी हुई, आपने इतना वक्त निकाला हमारे लिए।

दो या तीन दिन में कोई भी वक्त निकाल लीजिए।

देख कबीरा रोया
उन्नीसवां प्रवचन

परस्पर-निर्भरता और विश्व नागरिकता

यह सब चीजों के लिए है। नॉन-प्रोडक्टिव वेल्थ के लिए हम टैक्सेशंस ज्यादा लगाएं और प्रोडक्टिव वेल्थ के लिए हम जितना प्रमोशंस दे सकें, दें। तो ही कोई उपाय है। अगर एक आदमी लाख रुपया पाता है अपने रोक कर, तो उस पर टैक्सेशंस भारी होने चाहिए और एक आदमी अगर लाख रुपये से कुछ प्रोड्यूज कर रहा है और डेढ़ लाख पैदा कर रहा है तो उस पर हमारे टैक्सेशंस कम होने चाहिए। अभी हालतें उलटी हैं। अगर आप लाख रुपया अपने घर में रखते हैं और कुछ नहीं कमाते तो आप पर कोई टैक्सेशन नहीं है, अगर आप डेढ़ लाख कमाते हैं तो आप पर टैक्सेशन हैं। अभी आप अगर वेल्थ को क्रिएट करते हैं तो आपको दंड देना पड़ता है टैक्सेशन का। अगर आप वेल्थ को रोक कर बैठ जाते हैं तो उसका कोई दंड नहीं है!
इसे हमें उलटना चाहिए। अनप्रोडक्टिव वेल्थ पर बहुत भारी टैक्सेशन होना चाहिए और प्रोडक्टिव वेल्थ पर टैक्सेशन कम होना चाहिए और जितना हायर प्रोडक्शन हो उतना टैक्सेशन कम होना चाहिए। अगर एक आदमी लाख रुपया कमाए तो उस पर जितना टैक्सेशन, दो लाख कमाने वाले पर और कम, तीन लाख कमाने वाले पर और कम, पांच लाख कमाने वाले पर और कम, और दस लाख जो कमाता है उसको तो हम और अगर सरकार से सहायता दे सकें तो देनी चाहिए--टैक्सेशन खत्म! एक सीमा के बाद टैक्सेशन खत्म कर देना चाहिए। तो हम आदमी की जो वेल्थ पड़ी हुई है उसको प्रोडक्शन की तरफ मोड़ पाएंगे, नहीं तो नहीं मोड़ पाएंगे। अभी हालतें उलटी हैं।
अभी हालत यह है कि अगर आप पैदा करते हैं तो आप पर टैक्स लगता है। और जितना ज्यादा पैदा करते हैं, उतना ज्यादा टैक्स लगता है। तो एक तो आप प्रोडक्शन के इंसेंटिव को मार रहे हैं और एक भाव पैदा कर रहे हैं कि अगर एक सीमा पर जा कर और लाख रुपये कमा कर नब्बे हजार टैक्स देना हो तो बेमानी है यह कमाना, इसका कोई मतलब नहीं है, इसका कोई सेंस नहीं है। तो मेरी अपनी समझ यह है कि हमारा जो टैक्सेशन की पूरी सिस्टम है, वह अनप्रोडक्टिव की तरफ हमें खींचने का कोशिश करवाती है। तो एक तो हमें टैक्सेशन को प्रॉडक्शन की तरफ मोड़ने की कोशिश करनी चाहिए।
और दूसरी मेरी अपनी समझ यह है कि हमें सीलिंग की बकवास बंद करके फ्लोरिंग की बात करनी चाहिए। हमें यह बात बंद करनी चाहिए कि कितनी सीमा के बाद हम आपको संपत्ति पर रोक लगाएंगे, हमें यह बात बंद करनी चाहिए। सीलिंग तो अनलिमिटेड होनी चाहिए, उसका कोई सवाल नहीं है। फ्लोरिंग की फिकर करनी चाहिए। फ्लोरिंग का मेरा मतलब यह है कि नीचे हम सौ रुपये से कम किसी आदमी को नहीं मिलने देंगे, इसकी हम फिकर करेंगे। अगर आपकी फैक्ट्री में आप दस लाख रुपया कमाते हैं तो आप मजे से कमाएं, लेकिन हम मजदूर को सौ रुपये से कम आपकी फैक्ट्री में नहीं मिलने देंगे।

प्रश्नः वन थिंग, सर यू टोल्ड दैन दैट बिकाज अवर इंडस्ट्रीयलिस्ट टुडे, सपोज दे हैव टु गिव वन परसेंट बोनस टु द लेबर, दे डोंट अलाउ हिम... हाई अपटु दि सुप्रीम क्वाटरनिव दैट वे। इट इ.ज अवर मेंटेलिटी...

उसके कारण हैं, उसके कारण हैं कि आप एक क्लास स्ट्रगल का बोध पैदा किए हुए हैं। क्लास हार्मनी का बोध नहीं है। तो जब भी आप क्लास स्ट्रगल की बात करेंगे तो ठीक है कि कैपिटलिस्ट क्लास भी लड़ाई शुरू करे अपनी, क्योंकि आप दूसरी तरफ से सब छीनने के लिए तैयार हैं उससे। आप सोसाइटी को एज ए होल, नहीं अभी तक पकड़ पा रहे हैं। आप सोसाइटी को क्लासेस में बांट कर देखते हैं। और जब आप सोसाइटी को क्लासेस में बांट कर देखते हैं, तो ठीक है, फिर वह क्लास अपने इंट्रेस्ट के लिए लड़ना शुरू कर देती है। तो मेरी अपनी समझ यह है कि सोशलिज्म सबसे पहले हमारे दिमाग में क्लास कांफ्लिक्ट का बोध देता है और वह अवेयरनेस इतनी गहरी कर देता है कि फिर हम क्लास के इंट्रेस्ट के

सिवाय सोचते ही नहीं। तो एक पैसा छोड़ना है तो भी लड़ाई हम करेंगे और मजदूर को एक पैसा लेना है तो भी वह लड़ाई करेगा।
मेरी अपनी दृष्टि दूसरी है। मेरा अपना मानना यह है कि हमें मौके ऐसे बनाना चाहिए कि एक तो लड़ाई की कम से कम संभावना रह जाए। और अगर हम कैपिटलिस्ट क्लास को आगे के लिए स्वतंत्र छोड़ें और आगे टैक्सेशन कम करते चले जाएं तो कैपिटलिस्ट क्लास को हम राजी कर सकते हैं कि वह नीचे फ्लोरिंग के लिए राजी हो जाए। क्योंकि सवाल यह है आज, अगर एक बार कैपिटलिस्ट क्लास को यह पता चल जाए कि समाज उसको मिटा देने को तैयार नहीं है, उसे भी सहयोग देने को तैयार है, तो कैपिटलिस्ट क्लास को मजदूर के लिए सहयोग देने के लिए तैयार करना, मैं मानता हूं कठिन नहीं है, क्योंकि आखिर कैपिटलिस्ट क्लास के हित में है यह कि मजदूर सुखी हो। यह सारी दुनिया का अनुभव यह कहता है कि मजदूर जितना सुखी और संपन्न हो, उतना ही वह ज्यादा संपत्ति पैदा करने में सहयोगी हो जाता है। और उसका सुख और संपन्नता कैपिटलिस्ट क्लास के विपरीत नहीं है।
लेकिन अगर हम क्लास के कांशसनेस से लड़ाई शुरू करते हैं, तब तो विपरीत
हो जाता है। अभी हालतें हमने क्या पैदा कर ली हैं? और सारी दुनिया में हालतें पैदा हो गई हैं कि जैसे ही हमने मजदूर को और अमीर को क्लासेस बना दिया, यानी वह कोई को-आपरेशन में नहीं है अब, अब कांफ्लिक्ट में है, तो लड़ाई पूरे वक्त चल रही है। और कैपिटलिस्ट एक पैसा भी छोड़ने में इसलिए जिद्द करता है कि वह एक पैसा छोड़ता है तो कल दो पैसा छोड़ने की स्थिति बनती है।

प्रश्नः आई थिंग दि कैपिटलिस्ट शुड ट्रीट सच... सपोज ए लेबर कैन फाइट न्यू एनीथिंग, बट दे मस्ट सपोर्ट सच एज ग्रेस शुड बी... दैट पीपुल।

आप नहीं समझ रहे, आप नहीं समझ रहे हैं। हालतें क्या हैं, जितनी ग्रेस दिखाई जाती है, जितनी ग्रेस दिखाई जाती है उतनी ही संभावना कम्युनिज्म की बढ़ती है, कम नहीं होती। जितनी ग्रेस दिखाई जाती है, उतनी संभावना कम्युनिज्म की बढ़ती है। अब आज हम कहते हैं अमेरिका से कि वह वियतनाम में न लड़े। अगर वह वियतनाम में लड़ना बंद करता है तो कल उसको काश्मीर में लड़ना पड़े और काश्मीर में लड़ना बंद करता है तो कल उसको इजराइल में लड़ना पड़े। वह जहां से लड़ना छोड़ता है, कम्युनिज्म के हाथ जाता है और कहीं दूसरी जगह लड़ाई लड़नी पड़ती है। कैपिटलिस्ट के साथ भी वही तकलीफ हो गई है, क्योंकि मामला लड़ाई का हो गया है।
तो एक तो मेरी अपनी समझ यह है कि समाज ऐज ए यूनिट हमें स्वीकार करना चाहिए, नॉट एज ए कांफ्लिक्टिंग।

प्रश्नः फाइटिंग वाइज।

फाइटिंग वाइज नहीं देखना चाहिए। तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई है। मजा यह
है कि कैपिटलिस्ट हारती हुई क्लास है, कोई जीतती हुई क्लास नहीं है, इसलिए हारती हुई क्लास आखिरी दम तक लड़ने की कोशिश करती है। और मजा यह है कि कैपिटलिस्ट को भी पता नहीं है कि उसकी लड़ाई से वह जीतने वाला नहीं है। उसकी लड़ाई से वह रोज हारते जाने वाला है। ग्रेस के लिए तैयार किया जा सकता है, लेकिन हम कैपिटलिस्ट के लिए क्या करने को तैयार हैं, सोसाइटी। यानी मैं यह पूछता हूं हम कैपिटलिस्ट से तो यह कहते हैं कि तुम मजदूर के लिए यह करो, लेकिन हम पूरे मुल्क से क्या कहते हैं कि तुम कैपिटलिस्ट के लिए यह करो? इसमें लेन-देन नहीं है।

प्रश्नः... इवेंच्युअलि कीप आउट ऑफ टु डिस्कशन दि पॉइंट ऑफ क्लास स्ट्रगल एण्ड टेक ए सोसाइटी ए.ज ए यूनिट, दे बेसिक क्वेश्चन इ.ज वेयर इ.ज जस्टिफिकेशन फॉर ए स्माल ग्रुप ऑफ इंडिविजुअल इन ए सोसाइटी टु कनवर्ट द एंटायर सोसाइटी इनटु एक्सप्लाइट्री सोसाइटी एण्ड अलाउ मीडियम टू। रॉट अदर्स ऑल? टु इंप्रूव दि कंडीशंस एट एस्टैब्लिशड फलोरिंग। इट इ.ज बाउंड टु

क्रिएट कांफ्लिक्ट, वॉटएवर फिलोसफिकली होल्ड। दैट इ.ज वन पॉइंट--इंस्टैड ऑफ हैविंग टेन कैपिटलिस्ट्स ओनिंग 2500 फैक्ट्रीज वॉय नॉट वी हैव 2500... ओनिंग 2500 फैक्ट्रीज? इन अदर वर्डस, स्प्रैड द इंसेंटिव फॉर एंड वाइड, स्प्रैड द प्रॉस्पैरिटी फॉर एण्ड वाइड, सो दैट कांफ्लिक्ट इन दि सोसाइटी... विच ऑर इन बॉर्न इनह्यूमन बीइंग्स कैन वी कंटरेल्स कैन बी रेग्युलेटिड, कैन बी सेव्ड इनटु ए शार्ट ऑफ सोशल फिलॉसफी?

पहली बात तो यह है कि यह बात ही हम एक दृष्टि से सोचते हैं तब दिखाई पड़ती है। ऐसा दिखाई पड़ता है कि कुछ दस-पच्चीस लोगों ने पूरे मुल्क का शोषण किया हुआ है, एक्सप्लाइटेशन किया हुआ है, पूरी सोसाइटी को एक्सप्लायट्री मशीनरी में बदल दिया हुआ है। यह बड़े सोचने की और मजे की बात है।
मजे की बात यह है कि जिस पच्चीस आदमियों को हम कहते हैं कि इन्होंने संपत्ति का शोषण किया हुआ है, हम यह बात मान कर ही चलते हैं कि अगर यह पच्चीस आदमी न हों तो समाज के पास संपत्ति थी। तो पहले तो मैं इसको ही गलत मानता हूं कि समाज के पास संपत्ति नहीं थी। जब हम कहते हैं, शोषण किया है तो इसमें यह भ्रांति पैदा होती है कि आपके पास था और मैंने छीन लिया है। मजा यह है कि इन पच्चीस ने आपसे कुछ भी नहीं छीना। आपके पास था ही नहीं। यह जो वेल्थ दिखाई पड़ती है कुछ लोगों के हाथ में, यह वेल्थ क्रिएट की गई है, यह किसी के पास से एक्सप्लायट नहीं की गई है। यह कहीं रखी हुई नहीं थी। यहां ऐसा नहीं था कि पच्चीस आदमी इस कमरे में थे और मैंने सबसे एक-एक रुपया छीन कर मेरे पास पच्चीस हो गए हैं। इनके पास एक है भी नहीं था। और जब मेरे पास पच्चीस हुए, तब इनके पास एक हो सका है। लेकिन अब फर्क दिखाई पड़ रहा है, इनके पास एक और मेरे पास पच्चीस हैं। तो लगता है ऐसा कि मैंने चौबीस का शोषण किया हुआ है। आप क्या समझते हैं कि कैपिटलिज्म जिस दिन नहीं था, उस दिन लोगों के पास संपत्ति थी?
मजे की बात यह है कि आज जिसको आप करोड़ों लोग कह रहे हैं और कह रहे हैं
कि वह आज रॉट कर रहे हैं, ये करोड़ों लोग भी नहीं थे। ये करोड़ों लोग भी कैपिटलिज्म की वजह से जिंदा हैं, अन्यथा ये पैदा भी नहीं हो सकते थे और बच भी नहीं सकते थे। आज से हजार साल पहले दस बच्चे पैदा होते तो नौ बच्चे मर जाते थे और एक बच्चा बचता था। यह जो एक बच्चा बचता था और नौ बच्चे मर जाते थे, आज हालत उलटी हो गई, नौ बच्चे बचते हैं और एक बच्चा मरता है। ये जो नौ बच्चे इकट्ठे होते जा रहे हैं, ये होते ही नहीं। कैपिटलिज्म ने वेल्थ पैदा किए हैं, इसकी वजह से ये नौ बच्चों को भी काम है, नौकरी है, धंधा है। इनके पास जो कुछ भी है, यह कैपिटलिज्म ने पैदा किया हुआ है, अन्यथा ये बचते नहीं। और आज जरूर इनकी भीड़ इकट्ठी हो गई, और वह जो भीड़ इकट्ठी हो गई है, वह उनको दिखाई पड़ती है कि उसके पास कुछ भी नहीं है और इनके पास सब कुछ है, तो स्वभावतः ऐसा मालूम पड़ता है कि शोषण किया गया है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि पहली तो बात यह है कि शोषण फ्यूडलिज्म का
तो हिस्सा था, फ्यूडलिज्म ने कोई कैपिटल पैदा नहीं की थी। राजाओं और महाराजाओं ने कोई कैपिटल पैदा नहीं की थी। कैपिटल उन्होंने छीनी थी। वे लुटेरे थे, लेकिन हमारा ध्यान वही का वही है अब भी! कैपिटलिस्ट, कैपिटल छीन नहीं रहा, कैपिटल पैदा कर रहा है। और अगर आपसे काम लेकर आपको दो रुपये दे रहा है तो आप इस भ्रांति में मत रहिए कि आपको दो रुपये न मिलते तो आपके पास दो रुपये होते। और आपके पास जो लेबर की फोर्स है, लेबर की फोर्स तो एक दिन में खतम हो जाती। अगर कल उससे काम नहीं लिया होता तो आज आप नंगे होते। और आपके पास जो कल श्रम की शक्ति थी, वह हवा में खो जाती। उसको उसने कनवर्ट किया है, उसने दो रुपये देकर आपके कल के लेबर को कैपिटल में कनवर्ट किया। अच्छा, आप क्या कह रहे हैं? आप यह कह रहे हैं कि उसने हमें दो रुपये दिए, जब कि दस रुपये देना चाहिए। और मजे की बात यह है कि अगर वह दो रुपये न देता तो आपको दस रुपये कहीं मिलने वाले नहीं थे। दो रुपये भी आपको न मिलते। तो जो पहली बात तो मैं यह मानता हूं कि कैपिटलिज्म जो है, वह बेसिकली एक्सप्लाइटेशन नहीं है। वह बेसिकली लेबर को कैपिटल में कनवर्ट करने की कोशिश है। और स्वभावतः, आज इतना बड़ा लेबर उपलब्ध है कि पूरे लेबर

को कनवर्ट वह नहीं कर सकता है। और चूंकि ज्यादा लेबर उपलब्ध है इसलिए कम पैसे मिलते हैं आपको। इसका भी जिम्मा उस पर नहीं है। इसका भी जिम्मा अधिक लेबर पर है। अब लेबरर बच्चे पैदा किए जा रहा है। और वह इतने बच्चे पैदा कर रहा है कि लेबर के दाम रोज कम होते जाते हैं। लेकिन आप जिम्मा इस पर ठहराते हैं कैपिटलिज्म पर कि यह दाम कम दे रहा है। यह दाम कम देगा ही, क्योंकि लेबर को जब कैपिटल में कनवर्ट करना है तो सस्ते से सस्ते लेबर को ही कनवर्ट किया जा सकता है। अन्यथा कनवर्शन मुश्किल है।
तो मेरे हिसाब में पहले तो मैं कैपिटलिज्म को एक्सप्लाइटेशन की नहीं, कनवर्शन की सिस्टम मानता हूं। और जिस बात को आप कह रहे हैं कि बजाय पच्चीस आदमियों के हाथ में पच्चीस सौ लोगों के हाथ में हो, इसको मैं मानता हूं। लेकिन वह कैपिटलिज्म का विरोध नहीं है, वह कैपिटलिज्म को फैलाना है। और जब पच्चीस लोगों के हाथ में जिस मुल्क में है--जिस मुल्क में पच्चीस लोगों के हाथ में है, इनको बांट कर आप पच्चीस सौ लोगों में नहीं फैला सकते। आपको कैपिटलिज्म को इंसेंटिव देना पड़े तो आज पच्चीस के हाथ में है, कल पच्चीस सौ के हाथ में हो सकता है। इसको आप कैपिटलिज्म को बांट कर नहीं, कैपिटलिज्म की बुनियादी आधारों को सहारा देकर आप बढ़ा सकते हैं। यह कैपिटलिज्म का विरोध नहीं है। अगर हमें पच्चीस की जगह पच्चीस सौ मुल्क में उद्योगपति चाहिए या पच्चीस हजार उद्योगपति चाहिए तो जो पच्चीस के बनने का नियम है, उस नियम को हमें पच्चीस सौ लोगों तक फैलाने की सुविधा देनी चाहिए और अगर हमको उसे पच्चीस को मिटाना है तो आप हैरान होंगे, पच्चीस सौ तक वह नहीं फैलेगा, पच्चीस मिट जाएंगे। क्योंकि जो आधार हैं कैपिटलिज्म के वे वही के वही रहने वाले हैं, चाहे पच्चीस हों, चाहे पच्चीस सौ।

प्रश्नः एक्सक्यूज मी, आइ एम नॉट गोइंग टुवर्डस दिस, वैदर दिस कैपिटलिस्ट एज ए क्लास। मै बी रिमूव्ड ऑर नॉट, वी ऑर जस्ट डिस्कसिंग द सोशल फिलासफी ऑफ कैपिटलिज्म। आइ एग्री यूवर इंटरप्रिटेशन ऑफ दि कैपिटल सिस्टम एज ए सिस्टम विच कनवर्ट्स लेबर इनटु वैल्थ एण्ड दैट इ.ज टु वे ऑफ... एंड इ.ज करेक्ट। आइ विल ऑलसो सजेस्ट दैट दिस इ--ज पार्ट ऑफ दि हिस्टारिकल इवोल्यूशन ऑफ ह्यूमन सोसाइटी फ्रॉम इंपीरियलिज्म कनवर्टिंग इन कैपिटलिज्म। इट हैज इट्स ओन रोल इन टु इवोल्यूशन ऑफ ह्यूमन सोसाइटी... विच वेअर परहैप्स द ह्यूमन बीइंग्स रियलाइज दैट दिस सिस्टम विच सर्वड वैल टु इलिमिनेट इंपीरियलिज्म। नाउ इ.ज ए डेग ऑन द ग्रोथ ऑफ ह्यूमन बीइंग्स ऐज सच। दैट इ.ज वेयर बी कंटैक्ट बिटवीन द सोशलिज्म एंड कैपिटलिज्म ऑर दोज हू एडवोकेट सोशिलिज्म एंड दोज हू एडवोकेट... पॉलिसी। नाउ इवन इफ यू टेक दिस कैपिटलिज्म एज ए सिस्टम विच एक्चुअली कनवर्ट्स लेबर इनटु कैपिटल ऑर वैल्थ एंड मीट द इंटरेस्ट। आइ वुड स्टिल सजेस्ट दैट यू विद आउट एग्रीइंग फुल्ली विद ए सोशलिस्ट दैट इ.ज स्टरंग आर्ग्युमेंट इनफेवर ऑफ डिस्पोजल ऑफ द ओनरशिप ऑफ दि प्रोडक्शन इवेंच्युअलि इफ इट हैज कम... हाउ हैज कैपिटलिस्ट अकुमुलेटेड हिज वैल्थ? हाउ डीड ही केम टु आक्युपाई टु लेबर, इफ यू प्लेस द होल थिंग. इट इ.ज ही हैज बीन एबल टु कार्नर द... ऑफ टु प्रॉडक्शन वन आफ्टर द अनदर। नाउ इफ आइ हैव वन रुपी आइ कैन अर्न टू रुपीज। बट इफ यू डोंट हैव वन नया पैसा यू हैव टु स्टॉप अनजस्ट। दैट इ.ज द ओनली पॉइंट आई एम मेकिंग।

इसको थोड़ा समझना पड़े, इसको थोड़ा समझना पड़े। मैं इसे अनजस्ट नहीं कहूंगा, मैं नहीं कहूंगा, और न ही मैं इस बात के लिए राजी हो सकूंगा कि कैपिटलिज्म उस जगह पहुंच गया है, जहां वह अब सोसाइटी को रुकावट डाल रहा है। इन दोनों बातों को थोड़ा मेरी तरफ से समझना पड़े। पहली बात तो यह है कि कैपिटलिज्म जिस जगह पहुंच गया है, जिन मुल्कों में कैपिटलिज्म विकसित हुआ है, उन मुल्कों में कम्युनिज्म और सोशलिज्म की कोई ताकत नहीं है। और जिन मुल्कों में विकसित नहीं हुआ है, वहां ताकत है। तो आपकी बात को थोड़ा सोचना पड़े। क्योंकि सिर्फ गरीब मुल्कों में सोशलिज्म की ताकत है, अमीर मुल्कों

में कोई ताकत नहीं है। अमेरिका की अभी भी कोई संभावना नहीं है कि वह कम्युनिस्ट हो जाए।

प्रश्नः (प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं आपसे बात करूं, वह तो बदलता ही रहेगा। कैपिटलिज्म कोई स्टेटिक बात नहीं है, कोई इज्म स्टेटिक बात नहीं है, वह तो बदलता रहेगा। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि कैपिटलिज्म की अपील और सोशलिज्म की अपील में अगर ऐसा संबंध है कि जहां कैपिटलिज्म ने अपना काम पूरा कर दिया वहां सोशलिज्म आता हो तो यह बात गलत मालूम पड़ती है। क्योंकि रूस में कैपिटलिस्ट नहीं था और सोशलिज्म आया। चीन में कैपिटलिज्म का कोई नक्शा नहीं था और सोशलिज्म आया। और हिंदुस्तान धेला भर भी कैपिटलिज्म नहीं है, वह सोशलिज्म की बातें कर रहा है! तो पहली तो बात यह दिखाई पड़ती है कि सोशलिज्म की अपील वहां होती है, जहां कैपिटलिज्म अपना काम नहीं कर पाया। जहां कैपिटलिज्म ने अपना काम किया हुआ है, वहां सोशलिज्म की कोई अपील नहीं पकड़ती। उसका कारण है। उसका कारण है। क्योंकि कैपिटलिज्म अगर अपना काम पूरा कर ले और वेल्थ क्रिएट कर सके तो वेल्थ अपने आप जब बड़े पैमाने पर क्रिएट होती है तो वह कुछ लोगों के हाथ में नहीं टिकती। कुछ लोगों के हाथ में टिकेगी बड़ी संख्या में, लेकिन बड़े पैमाने पर फैलनी शुरू हो जाती है। आज अमेरिका का जो गरीब है, वह भी उस अर्थ में गरीब नहीं है, जिस अर्थ में हमारा गरीब है। असल में आज अमेरिका में जिसको हम प्रोलिटेरिएट कहें, वह तो खतम हो गया है, मिडिल क्लास ही है। मार्क्स का ख्याल उलटा था। उसका ख्याल था, कैपिटलिज्म विकसित होगा तो मिडिल क्लास खतम हो जाएगा। गरीब रहेगा और अमीर रहेगा। हालत उलटी है अमेरिका में। गरीब का क्लास खतम हो गया है--मध्यम वर्ग है, और बड़ा वर्ग है। असल में अमेरिका में छोटे पूंजीपति हैं, और बड़े पूंजीपति हैं, और बड़े पूंजीपति हैं। लेकिन ठेठ जिसको प्रोलिटेरिएट कहें, सर्वहारा कहें, वह अमेरिका से विदा होने के करीब आ गया है। इसलिए अमेरिका में कोई संभावना नहीं है, क्योंकि मिडिल क्लास बढ़ती हुई फोर्स है और जहां मिडिल क्लास बड़ी ताकत बन जाए, वहां सोशलिज्म का कोई उपाय नहीं है। और कैपिटलिज्म जब भी विकसित होगा तो अंततः पूरी सोसाइटी मिडिल क्लास हो जाएगी, मेरे हिसाब से। और नीचे मिडिल क्लास, लोअर मिडिल क्लास रह जाएगी, ऊपर जिसको हम अमीर कहते हैं, वह हायर मिडिल क्लास हो जाएगी। जिस दिन कैपिटलिज्म पूरी तरह फुलफ्लेज्ड रूप में होगा उस दिन न तो मजदूर होगा, न अमीर होगा; मिडिल क्लास होगी। इस मिडिल क्लास के छोर होंगे। यह लोअर मिडिल क्लास होगा, वह हायर मिडिल क्लास होगा। संपत्ति जब बड़े पैमाने पर पैदा होगी तो उसको हाथों में रोकना असंभव है। संपत्ति फैलती है। असल में संपत्ति है उपयोग के लिए। उसका फैलाव अनिवार्य है। और जब आप और संपत्ति पैदा करना चाहते हैं, तो आपको संपत्ति को फैलाना पड़ता है, तभी आप और संपत्ति पैदा कर सकते हैं।
तो मेरी दृष्टि में कैपिटलिज्म ने जहां भी काम थोड़ा-बहुत कर लिया है, वहां तो सोशलिज्म की कोई संभावना नहीं है। सोशलिज्म की पकड़ उन मुल्कों पर बैठ जाती है, जहां कैपिटलिज्म बिल्कुल शुरुआत में है। क्योंकि गरीबी है बहुत बड़ी और कैपिटलिज्म है बहुत छोटा। और इन गरीबों को समझाया जा सकता है कि तुम्हारा शोषण करके यह कैपिटलिस्ट, कैपिटलिस्ट बन गया है। यह झूठी बात है। क्योंकि जहां उसने शोषण अच्छी तरह से किया है, वहां गरीब भी अमीर हो गया है। वहां शोषण के ये परिणाम भी दिखाई पड़ते हैं।
असल मजा यह है कि हिंदुस्तान में जो गरीब है, वह गरीब अपनी ही वजह से गरीब है। उसका किसी ने शोषण नहीं कर लिया है। और मजा यह है कि अगर हिंदुस्तान के सब करोड़पतियों का पैसा बांट दिया जाए तो हिंदुस्तान का गरीब कोई अमीर नहीं हो जाता। तो एक तो बात पक्की है कि अगर इसका शोषण भी किया गया है तो उससे यह गरीब नहीं है। क्योंकि सारा पैसा भी हम बांट दें तो इसकी गरीबी नहीं मिटती है। इसकी गरीबी के कारण दूसरे हैं। इसकी गरीबी का कारण पूंजीपति नहीं है, लेकिन पूंजीपति को इसके गुट बनाया जा सकता है।

बताया जा सकता है कि देखो, इसके पास पैसा है, तुम्हारे पास पैसा नहीं है। जिनके पास पैसा नहीं है--हम सदा इस भाषा में सोचते हैं कि जिनके पास पैसा नहीं है और जिनके पास है तो कुछ अनजस्टिस हो गई। लेकिन मेरी समझ उलटी है। मेरी अपनी समझ यह है कि जिनके पास पैसा नहीं है--अगर हिंदुस्तान में पच्चीस और कुछ लोग जिनके पास पैसा है ये भी अगर इसी तरह काहिल और सुस्त और अलाल होकर बैठे रहें जैसा पूरा मुल्क बैठा है, तो इनके पास भी पैसा नहीं होगा। तब सब जस्टिस हो जाएगी पूरी तरह। पूरा हिंदुस्तान तमस से घिरा हुआ है, लिथार्जी से घिरा हुआ है। कोई कैपिटल-वैपिटल पैदा करने को उत्सुक नहीं है।
अच्छा, ये गधे जो कैपिटल पैदा नहीं करते, ये आखिर में अनजस्ट मालूम पड़ते हैं कि इनके साथ अनजस्टिस हो गई और जिसने पैदा कर ली है वह आदमी फंस जाता है कि इसने अन्याय कर दिया है! यानी हालतें कुछ ऐसी हैं कि जो पैदा कर रहा है, वह आखिर में फंसेगा कि इसने अन्याय किया है और जो पैदा नहीं कर रहा है, आखिर में मालूम पड़ेगा कि इस पर अन्याय हो गया है! अब यह बड़ी मजेदार बात मालूम होती है। यह मामला ऐसा है कि आज नहीं कल आप हो सकता है कि कुछ लोगों को कह दें कि यह आदमी बुद्धिमान हो गए और इन्होंने कुछ लोगों की बुद्धि का शोषण कर लिया है। और कुछ लोग बुद्धू रह गए हैं। और जो लोग बुद्धू हैं, ये कल कहने लगें कि हमारे साथ अनजस्टिस हो गई है, क्योंकि हमारी बुद्धि कहां है! अब यह बड़े मजे की बात है--कैपिटल भी पैदा करनी पड़ती है, उसके लिए भी श्रम उठाना पड़ता है, बुद्धि लगानी पड़ती है। उसके लिए भी दौड़ करनी पड़ती है। जो लोग दौड़ते हैं, मेहनत करते हैं, महत्वाकांक्षी हैं, श्रम करते हैं, दांव लगाते हैं, जिंदगी लगाते हैं। ये सारे लोग, जब थोड़े से लोग कभी पैसा इकट्ठा कर पाते हैं तो जो बैठे हुए भर देख रहे थे और आराम से हुक्का पी रहे थे अपने घर में बैठ कर, इनके पास जब पैसा नहीं दिखाई पड़ता, तब हमको अचानक पता चलता है कि अनजस्टिस हो गई! कुछ लोग जिनके पास है उन्होंने कुछ अनजस्टिस की है और जिनके पास नहीं है वे बड़े जस्ट लोग हैं? यह बड़ा उलटा न्याय है, यह मैं नहीं मान पाता कि इसमें आप ठीक से जस्टिस कर रहे हैं।
मेरी अपनी समझ यह है कि पैसा कोई भी पैदा कर सकता है। पैसा पैदा करने
की अपनी कला है। जैसे बुद्धि विकसित करने की कला है और आर्ट है, वैसा पैसा पैदा करने का भी अपना आर्ट है। अमेरिका को आज से तीन सौ साल पहले, अमेरिका में जो लोग रह रहे थे, वे हजारों साल से रह रहे थे, मुल्क यही था, इसके सोर्सेस यही थे, और आज भी रेड-इंडियन रह रहा है पहाड़ पर, उसने कभी संपत्ति पैदा नहीं की थी! अमेरिका में तीन सौ वर्ष से यूरोप की संतति पहुंची और उसने संपत्ति पैदा कर ली। और सबसे नया मुल्क सबसे ज्यादा संपत्ति का मुल्क हो गया! और जो लोग गए, ये उस मुल्क में गए जो सदा से गरीब था। अब जरा सोचने जैसा है कि जिन्होंने संपत्ति पैदा कर ली, अब जो रेड-इंडियन है अमेरिका का आदिवासी, वह कह सकता है, हमारा शोषण हो गया। और मजा यह है कि उसके पास कभी संपत्ति नहीं थी, और वह इसी मुल्क में सदा से था। और यही सोर्सेस उसको उपलब्ध थे, उसने कभी पैदा किया नहीं!
दो सोसाइटी का मैं अध्ययन कर रहा था। अमेरिका में दो रेड-इंडियन सोसाइटी हैं, एक ही पहाड़ पर रहती हैं, एक इस तरफ, एक उस तरफ--छोटे-छोटे कबीले हैं। एक कबीले का नियम है कि वह कबीला एक के खेत पर पूरा काम करता है, अनादि काल से। सामाजिक व्यवस्था उनकी ऐसी है कि एक के खेत पर काम करना है तो पूरा गांव उस पर जाकर काम करेगा। तो एक खेत पर ही काम हो सकता है एक दिन में। दूसरा जो कबीला है, वह अपने-अपने खेत पर आदमी काम करता है। वे एक ही पहाड़ के दो हिस्सों पर कबीले हैं। जो कबीला, सारा का सारा गांव एक खेत पर काम करता है वह बहुत गरीब है, होने ही वाला है। चूंकि एक छोटे से खेत पर जब सारा गांव काम करता है तो काम भी ज्यादा नहीं होता, फिजूल की बातें होती हैं, गाना-नाच होता है और काम भी ज्यादा नहीं होता है, इनसेंटिव भी नहीं है। क्योंकि एक आदमी का सवाल नहीं है। दूसरा अपने-अपने खेत पर काम कर रहा है कबीला। वह कबीला अमीर है।
एक ही जमीन है, एक ही हवा है, एक ही पानी है, एक ही कौम है, लेकिन एक कबीले का सोशल ढंग एक है और दूसरे का सोशल ढंग दूसरा है। अब इसमें आप कैसे

तय करिएगा कि किसके साथ अनजस्टिस हो गई है। मेरी अपनी समझ यह है कि हिंदुस्तान में जो आज आपको गरीब दिखाई पड़ रहा है, उसके साथ अनजस्टिस इसलिए दिखाई नहीं पड़ रही है कि वह गरीब है, इसलिए दिखाई पड़ रही है कि कुछ लोग अमीर हो गए हैं। अगर ये भी गरीब होते तो बड़ी जस्टिस थी! क्योंकि हम सब गरीब थे और बराबर गरीब थे, इसलिए कोई दिक्कत न थी।
यह कठिनाई हमको इसलिए पैदा हो रही है कि हमारे बीच में कुछ लोगों ने संपत्ति पैदा कर ली है और जिन्होंने संपत्ति पैदा कर ली है, वे हमारी ईर्ष्या के बिंदु हो गए हैं। बड़े मजे की बात यह है कि हमने पैदा नहीं की है। जिन्होंने पैदा नहीं की है, वे बड़े गौरवांवित हैं कि उन्होंने बड़ा काम किया कि उन्होंने पैदा नहीं की है! मैं नहीं मानता हूं ऐसा। मेरी अपनी समझ यह है कि मुल्क में बड़ी लिथार्जी है और उस लिथार्जी से बचने के लिए सोशलिज्म बड़ी अच्छी, अदभुत अपील है। वे यह कह देते हैं कि इन्होंने शोषण कर लिया है तुम्हारा। और मजा यह है कि इसके पास कुछ था ही नहीं, जिसका शोषण किया जा सके। इसके पास कुछ होता...

प्रश्नः ओनली हिज लेबर।

जी?

प्रश्नः ओनली हिज लेबर?

सिर्फ लेबर था उसके पास और अपने लेबर को वह कनवर्ट नहीं कर सका कभी भी कैपिटल में।

प्रश्नः ही कैन नॉट!

नहीं, गलत बात है आपकी। क्यों, कैन नॉट क्यों कहते हैं आप? अगर लेबर मेरे पास है तो मैं उसे बदल सकता ही हूं। कोई न कोई उपाय मैं खोज ही सकता हूं। उसको मैं कैपिटल में बदलूं। हिंदुस्तान के पास लेबर है, लेकिन कैपिटल में बदलने की न तो आकांक्षा है, न समझ है, न श्रम है, न साहस है। आपसे मैं यह कहूंगा कि क्यों नहीं बदल सकते हैं, आपके पास लेबर है तो? और फिर अगर आप नहीं बदल सकते हैं, और किसी ने बदला है तो अनजस्टिस हो गई? क्योंकि आपको दो रुपये मिल गए, जो आपको नहीं मिले होते? जब आपको दो रुपये मिलते हैं, तब आप कहते हैं कि मेरे पास दस रुपये का लेबर था, मुझे दो रुपये मिले। और जब आपको नहीं मिल रहे थे, तब आपके पास धेले का लेबर नहीं था, लेबर खाली जा रहा था! मैं नहीं मानता वह अनजस्टिस हो गई। इतना मैं जरूर मानता हूं कि जितनी जस्टिस होनी चाहिए, वह नहीं हो पा रही है। इसको मैं फर्क करता हूं-- जितनी जस्टिस हो सकती है, वह नहीं हो पा रही है। उसके लिए हमें उपाय खोजना चाहिए।

प्रश्नः इ ह्यूमन इंस्टिंक्ट हैज डिफिटिड द सोशलिस्ट फिलासफी बिकाज
दे हैव फेल्ड टु सी द बेसिक ह्यूमन इंस्टिंक्ट दैट इ.ज वेयर... दैट इ.ज हाउ वी एक्सप्लेन यूवर स्टडी ऑफ द टू विलेजस। यू स्टिल बिलीव दैट देयर विल बी टू क्लासेसः लोअर मिडिल क्लास एंड हायर मिडल क्लास। नाउ दैट इ.ज द पॉइंट टु इवैंच्युलेट सम टोटल ऑफ द एंटायर डिस्कशन इ.ज वाइ हायर मिडिल क्लास एंड लोअर मिडिल क्लास, वन। सेकेंड, शुड दिस सोसाइटी इ.ज नॉट बी एट द सिचुवेशन वेअर एनी वे वैदर ही इ.ज इन द मिडिल रंग ऑर इन द हायर रंग, शुड हैव द ऑपरच्युनिटी ऑफ कमिंग अप। इवैंच्युअलि, आइ वुड जज एवरीथिंग, वैदर द कैपिटलिस्ट सोसाइटी ऑर द सोशलिस्ट सोसाइटी वैदर एन इंडिविजुअल हैज एन ऑपरच्युनिटी ऑफ कनवर्टिंग हिज लेबर इनटु वैल्थ।

असल में, जैसा मैंने कहा कि मैं यह नहीं मानता हूं कि अनजस्टिस हुई है, मैं यह जरूर मानता हूं कि जितनी जस्टिस होनी चाहिए, वह नहीं हो पाई है। और

इसका कारण, इसका कारण मैं मानता हूं कि कैपिटलिज्म को विकास का मौका नहीं मिल पा रहा है और सोशलिज्म की बातें उसके विकास में सब जगह बाधा डाल रही हैं। दूसरा कारण, कि जो कैपिटल का कनवर्शन है, लेबर का जो कनवर्शन है कैपिटल में, जब तक हमें ह्यूमन लेबर पर निर्भर करना पड़ेगा, तब तक दुनिया में ज्यादा से ज्यादा विकसित अवस्था भी लोअर और हायर मिडिल क्लास की होगी। लेकिन जिस दिन हमें ह्यूमन लेबर से मुक्ति मिल जाएगी, और हम सीधे टेक्नालॉजिकल लेबर पर निर्भर करेंगे, उस दिन दुनिया में क्लासेस की कोई जरूरत नहीं रहेगी। उसके पहले क्लासेस नहीं मिट सकते हैं--उसके पहले क्लासेस नहीं मिट सकते हैं।
तो मेरी नजर में कैपिटलिज्म उस जगह आता जा रहा है, आ जाएगा। अगर सोशलिज्म ने बाधाएं नहीं डालीं तो कैपिटलिज्म उस जगह आ जाएगा, जहां आदमी के श्रम की जरूरत न रह जाएगी। आदमी का श्रम बेमानी हो जाएगा। अगर सारी की सारी यंत्रों की व्यवस्था आटोमेटिक हो जाती है तो ही हम एक क्लासलेस सोसाइटी को पैदा कर पाएंगे, अन्यथा हम नहीं पैदा कर पाएंगे। इसकी जिम्मेवारी कैपिटलिज्म पर नहीं है, इसकी जिम्मेवारी मनुष्य के श्रम की विभिन्न क्षमताओं पर और विभिन्न इच्छाओं पर है। और इसके लिए कोई सिस्टम जिम्मेवार नहीं है। इसकी जिम्मेवारी, हर आदमी की श्रम की क्षमता भिन्न है और श्रम करने की इच्छा भिन्न है--एक।
और दूसरी बात, कि आदमी जब तक श्रम करेगा और जब तक श्रम का मूल्य बाजार में होता ही रहेगा। तो अगर श्रम ज्यादा मौजूद है तो श्रम में प्रतियोगिता भी होती रहेगी। श्रम की प्रतियोगिता और श्रम का कमोडिटी की तरह समाज से समाप्ति एक दिन होगी। और वह, वह दिन होगा, जिस दिन श्रम गैर-जरूरी हो जाएगा। मनुष्य का श्रम गैर-जरूरी हो जाएगा। और टेक्नीक, और टेक्नालॉजी, और यंत्र उसके श्रम को कर पाएंगे। उस दिन लोअर और हायर मिडिल क्लास का कोई अर्थ नहीं रह जाता। उस दिन वह बात समाप्त हो जाएगी।
और मेरी अपनी समझ यह है कि हम उसके करीब पहुंच रहे हैं, और यह किसी सोशलिस्ट रेवोल्यूशन से न होगा, यह एक साइंटिफिक रेवोल्यूशन से होगा। इसका सोशलिस्ट रेवोल्यूशन से कोई लेना-देना नहीं है। और सोशलिज्म के असफल होने का कारण वही है कि उसने जो आकांक्षाएं बताई हैं, वे आकांक्षाएं सिर्फ टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से पूरी हो सकती हैं। क्योंकि जब तक आदमी से काम लेना है, तब तक सोशलिज्म असफल होता रहेगा। क्योंकि आदमी से काम लेने का जो इनसेंटिव है, वह दिक्कत में पड़ जाता है। आज रूस में वह तकलीफ खड़ी हो गई है कि आदमी काम करने को आज उस मौज से राजी नहीं है, जिस मौज से वह कैपिटलिज्म में काम करने को राजी है। या तो जबरदस्ती काम लो, और जबरदस्ती कितने दिन काम ले सकते हो?
आदमी की प्रकृति के खिलाफ ज्यादा दिन काम नहीं लिया जा सकता है। और जैसे ही कम्युनिटी काम लेने लगती है, वैसे ही आप पिछड़ने लगते हैं, व्यक्तिगत रूप से आप बचाव करने लगते हैं कि मैं श्रम कम करूं। और जब सब सुविधा मिल ही रही है, और श्रम कम करने से भी मिल जाएगी, तो फिर श्रम करने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। तो मनुष्य की जो स्वाभाविक स्थिति है, उसका जो इंस्टिंगटिव बिल्ट-इन व्यवस्था है, वह बिल्ट-इन व्यवस्था सोशलिज्म के खिलाफ है। वह बिल्ट-इन व्यवस्था कैपिटलिज्म के पक्ष में है। तो उस बिल्ट-इन व्यवस्था से उसी दिन मुकाबला हो सकता है, जिस दिन लेबर ऐज सच अननेसेसरी है। तब फिर ठीक है, आप काम कर रहे हैं कि नहीं कर रहे हैं, बराबर ऑपरच्युनिटी मिल सकती है। लेकिन जब तक काम नेसेसरी है, तब तक बराबर ऑपरच्युनिटी नहीं मिल सकती, क्योंकि काम करने की न तो क्षमता बराबर है, और न इच्छा बराबर है। अब इसके लिए कौन जिम्मेवार है?
इसके लिए कैपिटलिज्म जिम्मेवार नहीं है। अगर कोई जिम्मेवार है तो मनुष्य का स्वभाव जिम्मेवार है। और अगर मनुष्य का स्वभाव जिम्मेवार है तो वह कोई जिम्मेवारी नहीं रह गई किसी के ऊपर। अब मैं काम बिल्कुल नहीं करना चाहता, और दुनिया की कोई ताकत मुझे काम में अगर नहीं लगा सकती, सिवाय बंदूक मेरे पीछे लगा दी जाए। तब इसके लिए कौन जिम्मेवार हैं कि आप मेहनत करेंगे?

जब हम दोनों कालेज में पढ़ रहे हैं--मैं और आप दोनों पढ़ रहे हैं, और आप रात भर मेहनत कर रहे हैं और मैं रात भर सिनेमा देख रहा हूं। और कल आप फर्स्ट क्लास ले आते हैं और मैं सेकेंड क्लास ले आता हूं। निश्चित ही मेरी और आपकी ऑपरच्युनिटी भिन्न हो गई है। और कोई उपाय नहीं है कि हम सब लड़कों को फर्स्ट क्लास ला सकें। और कल जब काम्पिटीशन के मार्केट में मैं पहुंचूंगा तो मैं पिछड़ जाऊंगा और आपको पहले नौकरी मिल जाएगी। अब ऑपरच्युनिटीज समान कैसे पैदा की जाएं?
यानी मामला यह है, मामला यह है कि मैं और आप अलग हैं, और चूंकि दो इंडिविजुअल अलग हैं, लेकिन इसलिए दोनों के लिए सेम ऑपरच्युनिटी पैदा हो कैसे सकती है? क्योंकि ऑपरच्युनिटीज तो हम पैदा करते हैं, ऑपरच्युनिटीज आकाश से नहीं गिरती हैं। और जो हमने ऑपरच्युनिटीज पैदा की हैं, उसमें जो ज्यादा प्रतियोगी है, जो ज्यादा डेयरिंग है, जो ज्यादा श्रम उठा रहा है, वह जो दौड़ रहा है वह आगे निकला जा रहा है, मैं खड़ा रह गया। और आखिर में बात यह होती है कि हम दोनों को बराबर ऑपरच्युनिटीज होनी चाहिए! लेकिन ऑपरच्युनिटी कौन पैदा करे? या तो सरकार ठोंक-पीट कर हमको एक ऑपरच्युनिटीज में बिठा दे, कि वह तय कर दे कि सभी को फर्स्ट क्लास मिल ही जाएगा। और मजा यह है कि जिस दिन सबको फर्स्ट क्लास मिल जाएगा उस दिन मैं जो विश्राम कर रहा था, मैं तो विश्राम करूंगा ही; आप जो श्रम कर रहे थे, आप भी विश्राम करेंगे। इसलिए टोटली नुकसान होने वाला है, फायदा होने वाला नहीं है।

प्रश्नः सेम थिंग हैज हैपंड इन लास्ट फाइव इयर्स इनस्पाइट ऑफ ऑल इंडस्ट्रीयलिस्ट मैन वर्क... टुगेदर नथिंग...

हो रहा है। होगा ही। मेरी अपनी समझ जो है। अगर कहीं कोई वजह है उलझाव
की तो वह मनुष्य के स्वभाव में है, और मनुष्य के स्वभाव को बदलने के दो उपाय हैं।

प्रश्नः दैट इ.ज द पॉइंट आइ वॉ.ज टरइंग टु ड्राइव एट दैट अगेन एक्सप्लेनेशन दि टु पॉइंट्स विच यू मेड दैट द टेक्नालॉजीकली रेवोल्यूशन एज एफ इ.ज कांशियस फॉर दैट विच वुड रिड्यूस द नीड फॉर नैसेसिटी इवन फॉर लेबर वुड फरदर इलिमिनेट द क्लास डिस्टिंक्शन। नाउ वेयर आइ वांट टु मेक वन पॉइंट इन... द एक्सपिरियंस इ.ज गोइंग सम... । दे ग्रेटर एण्ड ग्रेटर ऑटोमेशन विच इन अदर वर्डस वांट्स टु नैरो डाउन ह्यूमन लेबर इ.ज क्रिएटिंग ग्रेटर मिजरी.ज, वन। सेकेंड, इन द सोवियत यूनियन ऑन द अदर हैंड द सेम प्रॉब्लम इ.ज बीइंग फेस्ड बाइ सो काल्ड सोशलिस्ट कम्युनिस्ट। देअरफोर, इवेंच्युअलि इ.ज नॉट द इवेंच्युअलि सिस्टम इ.ज द लेबर, इ.ज नॉट द टेक्नालॉजीक रेवोल्यूशन इ.ज द ह्यूमन बीइंग हू विल डिसाइड वेदर देअर इ.ज अनजस्ट सोसाइटी ऑर अनजस्ट सोसाइटी। दैट इ.ज बट यूवर थ्योरी ऑफ ऑपरच्युनिटी ऑलसो एक्सप्लेन। नाउ वॉट विल बी डु टु इनस्टिल इन द मैन दैट सेंस ऑफ सोशल जस्टिस। इ.ज देअर एनी फार्मूला फॉर इट? इ.ज देअर एनीथिंग विच कैन एफ्लुएंस द ह्यूमन माइंड ऑर जेनरेशंस?

दो उपाय हैं। सरलतम तो केमिकल उपाय है, लेकिन सबसे खतरनाक है। हम एक
सी ऑपरच्युनिटीज पैदा कर सकते हैं, एक से आदमी पैदा कर सकते हैं। जो कि निकटतम है, वह केमिकल है, कि हम सारे लोगों की केमिकल स्थिति को समान कर दें, जो कि बिल्कुल आसान है। अब संभव हो सकता है। हम आपकी इंटेलिजेंस बराबर कर दें, आपकी काम्पिटीशन की क्षमता बराबर कर दें, आपकी दौड़ने की क्षमता बराबर कर दें, केमिकली। लेकिन तब हम आपकी आदमियत छीन लेंगे, क्योंकि तब आप मशीन हो गए। तो एक तो संभावना यह है कि जस्टिस की जो हमें बहुत ज्यादा पुकार है, वह पूरी हो जाए, आदमी को मशीन बना दें। ऑपरच्युनिटीज बराबर होंगी; इक्वालिटी बराबर होगी। कोई उपद्रव नहीं होगा, कोई झंझट नहीं होगी। लेकिन आदमी खतम हो जाएगा। आदमी के नेचर को अगर हम बिल्कुल बराबर करने की कोशिश करें तो आदमी खतम हो जाएगा। आदमी की

विभिन्नता आदमी के होने का अनिवार्य तत्व है। और जब तक विभिन्नता है, तब तक थोड़ी सी अनजस्टिस अनिवार्य है।
तो दूसरा उपाय यह है, दूसरा उपाय यह है कि जहां तक आदमी को बिना छुए हम कुछ कर सकें, और बिना छुए करने में थोड़ी सी अनजस्टिस बाकी रहती चली जाएगी। और मैं मानता हूं, परफेक्ट सोसाइटी कभी पैदा नहीं हो सकती, और न होनी चाहिए। क्योंकि परफेक्ट सोसाइटी बेसिकली ऑटोमेटंस की ही हो सकती है। इसलिए परफेक्ट आइडियलस के मैं हमेशा खिलाफ हूं। तो एब्सल्यूट जस्टिस
का मेरे लिए कोई मतलब नहीं है, क्योंकि एब्सल्यूट जस्टिस, एब्सल्यूट अनजस्टिस होगी आखिर में। और जस्टिस का मीनिंग भी इसलिए है कि अनजस्टिस का बैक-ग्राउंड चलता है। तो मेरी नजर में मोर जस्टिस, मोर जस्टिस का कोई अर्थ है। एब्सल्यूट जस्टिस का कोई अर्थ नहीं है। और मोर जस्टिस का मतलब यह है कि अनजस्टिस कायम रहती है। उसकी भी मात्रा बनी रहती है। तो एब्सल्यूट आइडियल के तो मैं किसी भी पक्ष में नहीं हूं।
मेरा ख्याल है कि जो भी उटोपियंस एब्सल्यूट आइडियलस दे रहे हैं, वे आदमी के हत्यारे सिद्ध होंगे। क्योंकि एब्सल्यूट आइडियलस अब पूरे किए जा सकते हैं। अब तक तो कोई खतरा नहीं था। अब तक कोई खतरा नहीं था, अब तो हम आदमी के क्रोमोसोम में और सेल में भी आज नहीं कल प्रवेश कर जाएंगे। और हम बिल्ट-इन प्रोसेस दे सकते हैं वहीं से। इसलिए कोई बहुत दिक्कत नहीं रह गई है बड़ी कि हम आदमी की बेसिक सेल में बिल्ट-इन इक्वालिटी पैदा न कर दें। तब तो बड़ा आसान हो जाएगा मामला और बिल्ट-इन जस्टिस का भाव डाल दें, सोशल जस्टिस का। या हो सकता है बिल्ट-इन हम उसकी इंडिविजुअलिटी को छीन लें और उससे कह दें कि तुम समाज के लिए जीओ। अब यह संभव है।
बुद्ध-महावीर समझाते रहे, यह संभव नहीं था। क्राइस्ट समझाते रहे, संभव नहीं था। मार्क्स समझाता रहा, यह संभव नहीं था। लेकिन अब यह टेक्नालॉजिकली संभव हो जाएगा, इन आने वाले बीस-पच्चीस वर्षों में कि हम आदमी को जितना हमने आइडियल्स तय किए थे, सब पूरे करवा लें। और इसलिए अब आइडियल्स से सावधान होने की जरूरत है। और हमको बहुत सचेत हो जाना चाहिए कि अब हम ये एब्सल्यूट बातें न करें, नहीं तो वैज्ञानिक इनको पूरा कर देगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि जो हम प्रार्थना करते हैं, जब पूरी हो जाए, तब हमें पता चलता है कि मुश्किल में पड़ गए, यह नहीं होता तो अच्छा था।
मेरी अपनी समझ यह है कि अनजस्टिस की एक मात्रा कायम रहेगी, रहनी चाहिए, तो ही जस्टिस का कोई अर्थ है। अगर हेट्रेड की संभावना नहीं है, तो प्रेम का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। अगर मैं आप पर क्रोध नहीं कर सकता तो मेरी क्षमा बिल्कुल बेमानी हो जाएगी। और अगर मैं आपको तलवार नहीं मार सकता तो आपके घाव पर पट्टी बांधना मेरा अर्थहीन हो जाएगा।
जिंदगी कंट्राडिक्शन है और आदमी का स्वभाव कंट्राडिक्शंस का है। अब सवाल जो महत्वपूर्ण है वह यह नहीं है कि हम कंटरडिक्शंस को बिल्कुल काट दें। सवाल जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि जो कंट्राडिक्शंस की अग्लि साइड्स हैं वे दब जाएं और जो ब्यूटीफुल साइड्स हैं वे ऊपर आ जाएं। जो सबसे बड़ा सवाल है, वह यह है कि आदमी की बुराई खतम न हो जाए, क्योंकि बुराई के खत्म होते ही भलाई भी खत्म हो जाएगी। हां, इतना ही बड़ा सवाल है कि बुराई नीचे हो और भलाई ऊपर हो। भलाई जीतती हुई हो और बुराई हारती हुई हो। और यह हार अंततः चलती ही रहेगी, यह किसी सीमा पर समाप्त होने वाली नहीं है। तो मैं तो मानता नहीं कि यह जस्टिस हो जाए; या होनी चाहिए, यह भी नहीं मानता। क्योंकि मेरे लिए वह टोटल अनजस्टिस है। अब रह गया यह कि अधिकतम, मैक्सिमम जस्टिस की क्या संभावना है। उसमें मुझे तीन-चार बातें दिखाई पड़ती हैं। एक तो मुझे यह दिखाई पड़ता है, जैसा मैंने कहा कि अगर मनुष्य के श्रम की जरूरत क्षीण हो जाए, एकदम समाप्त तो नहीं हो जाएगी, क्योंकि हमें बटन दबाने के लिए भी कुछ लेबर की तो जरूरत पड़ेगी ही, और मशीनें बिगड़ेंगी तो भी ठीक करने की जरूरत पड़ेगी, और कंप्यूटर गलत चला जाएगा, तो भी हमें साइंटिस्ट की जरूरत पड़ेगी, लेकिन कम हो जाएगी। जितना श्रम हमें करना पड़ रहा है कंपलसरी, वह विदा हो जाएगा। और वह इतना कम हो जाएगा कि हम उसे खेल की तरह कर पाएंगे। वह कोई अनिवार्यता नहीं रह जाएगी हमारे ऊपर।

और यह जो आप कहते हैं कि अमरीका या सोवियत रूस में जहां भी आटोमेटिक मशीन को लाया जा रहा है, वहीं मजदूरी बढ़ेगी।
शुरू में बढ़ना स्वाभाविक है। क्यों? क्योंकि कोई भी नई चीज आएगी तो हमारी पूरी व्यवस्था गड़बड़ाती है, पूरी व्यवस्था में डिस्टर्बेंस होता है। और जब आटोमैटिक मशीन आएगी तब भी हम उस मशीन के साथ वही व्यवहार करेंगे, जो हमने नॉन-आटोमैटिक के साथ किया था, क्योंकि हम उसे मशीन समझेंगे। वह मशीन नहीं है। रेवोल्यूशन हो गई। उसको अब साधारण मशीन मानना ठीक नहीं है। तो जब हम आटोमैटिक मशीन ले आएंगे तो हम कहेंगे कि अब हम जो आदमी काम नहीं कर रहा है, उसको पैसे क्यों दें? जब कि आटोमैटिक मशीन के साथ जो आदमी काम नहीं कर रहा है, उसे ज्यादा पैसे मिलने चाहिए। क्योंकि वह आपसे काम नहीं ले रहा है। और जो आदमी कहता है, हम काम करेंगे ही, उसे थोड़े कम पैसे मिलने चाहिए, क्योंकि वह दो चीजें मांग रहा है, काम भी मांग रहा है और पैसे भी मांग रहा है। जो आदमी कहता है, हम काम न करने को राजी हैं, इसको थोड़ा ज्यादा पैसा मिलना चाहिए क्योंकि वह एक ही चीज मांग रहा है कि हम काम नहीं करते। काम करने की मांग नहीं कर रहा है।
आने वाले पचास साल में जब कोई सोसाइटी ठीक से आटोमैटिक रन करने लगेगी,
तो आप जो लोग काम नहीं मांगते हैं, उनको ज्यादा दे पाएंगे, क्योंकि वे आपको परेशान नहीं करते हैं। और जो लोग कुछ कहेंगे कि हम बिना काम के रह ही नहीं सकते, हमें थोड़ा काम चाहिए ही, तो इनको आप थोड़ा सा कम दे सकेंगे, क्योंकि वे दो चीजें मांगते हैं--पैसा भी मांगते हैं, काम भी मांगते हैं। लेकिन यह घड़ी घटने में पचास साल, सौ साल का वक्त लगेगा।
और आटोमैटिक मशीन इतनी बड़ी क्रांति है कि हम उसे जब पुरानी व्यवस्था में रखेंगे, तो हम पुरानी व्यवस्था का ही सलूक करेंगे। हम कहेंगे, जो मजदूर कल काम कर रहा था, अब उससे हमें काम नहीं चाहिए, तो उसे अलग करो। इसके लिए हमें पूरे के पूरे सोशल मूड, सोशल थिंकिंग, वह सारी की सारी आटोमैटिक मशीन के साथ बदलनी पड़ेगी, हमेशा बदलनी पड़ती है। बैलगाड़ी बदलती है, रेलगाड़ी आती है तो बदलनी पड़ती है। बदलनी ही पड़ती है। फिर पुरानी वर्ण-व्यवस्था नहीं चलती है। रेलगाड़ी के साथ पुरानी वर्ण-व्यवस्था तो तोड़ना पड़ता है। क्योंकि भंगी और ब्राह्मण बगल में बैठ जाते हैं। और रेलगाड़ी में बैलगाड़ी वाला डिस्टिंक्शन करना मुश्किल हो जाता है।
ठीक आटोमेटिक मशीन आ जाए तो धीरे-धीरे फर्क होने शुरू होंगे। और फर्क होने शुरू हो गए हैं। उसके बाबत चिंतन करना शुरू हुआ है, क्योंकि चालीस हजार एक जगह काम करते हैं और चार हजार काम करेंगे और छत्तीस हजार मुक्त हो जाएंगे, तो इनका क्या होगा? ये कहां जाएं? ये विरोध भी डालेंगे, क्योंकि पुरानी व्यवस्था पूरा विरोध डालेगी। ये विरोध करेंगे कि हम पसंद नहीं करेंगे--हड़ताल करेंगे, स्टरइक करेंगे, झगड़ें करेंगे, स्वभावतः। तो मेरा अपना मानना है कि आटोमेटिक मशीन के आते ही हमें बहुत सी चीजों के बारे में नया चिंतन खड़ा करना पड़ेगा। हमें कानून नये बनाने पड़ेंगे, हमें नियम नये बनाने पड़ेंगे। हमें कोर्ट को अधिकार देना पड़ेगा कि जिस आदमी का तुम काम छीनते हो, उसे जिंदगी भर का भोजन तुम्हें देना पड़ेगा, वह सारा हमें करना पड़ेगा। तो एक तो आटोमैटिक मशीन बड़े पैमाने पर आ जाए, टेक्नालॉजिकल फर्क पड़े, तो हम आदमी को करीब ले आएंगे।
बड़े मजे की बात यह है कि दुनिया में कोई आदमी श्रम करना नहीं चाहता, श्रम मजबूरी है। कोई करना नहीं चाहता, श्रम मजबूरी है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि आदमी खाली बैठना पसंद करेगा। नहीं, आदमी काम तो करना चाहेगा, इसलिए जो लोग खाली बैठे हैं वे खेल में लग जाते हैं। खेल काम है, जो मौज से चुना गया है।

प्रश्नः अस्युमिंग दैट वी स्टिल प्ले विद दिस इनयूमरेबल कंट्राडिक्शंस विच ए सोसाइटी होल्ड्स। विद सम कंट्राडिक्शंस वी रीच ए स्टेट वेअर ए मैन लिव्स बाइ ए टेबलेट हिज नीड फॉर डूइंग एनी लेबर वॉटसोएवर इ.ज रिड्यूस्ड टु दि मिनिमम दैट ही इ.ज वॉटसोएवर... एंड इवन इन दैट पोजिशन ही इ.ज हैपिअर। दैट मीन्स ऑल हिज रिक्वाएरमेंट्स ऑर मैट। ही इ.ज हैप्पी इफ

यू कॉल हिम। रीच्ड बाइ दैट स्टैंडर्ड फिफ्टी ईयर्स लेटर ही हैज रीच्ड नाउ। नाउ माई ओनली क्वेश्चन इ.ज, वॉट ही विल डू?

इसमें दो बातें हैं--एक तो जैसे ही काम छिन जाएगा आदमी के हाथ से तो मैं नहीं कहता कि ही वुड बी हैपियर। मैं सिर्फ इतना कहता हूं, ही वुड नॉट बी मिजरेबल। मैं नहीं कहता कि वह हैपियर होगा।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, जरूर ही। नई तकलीफें शुरू होंगी। हायर लेवल पर तकलीफें शुरू होंगी। क्योंकि तकलीफें तो खत्म नहीं हो सकतीं, वह तो तकलीफों के साथ जिंदगी खतम हो जाती है। फिर कुछ करने को नहीं बचता है। लेकिन जब नीचे के तल की तकलीफें खतम हो जाती हैं तो ऊपर के तल की तकलीफें शुरू होती हैं। हो सकता है आप परेशानी में पड़ जाएं कि मैं उतना अच्छा सितार नहीं बजा पाता जितना कि पड़ोसी बजाता है। जैसे ही जरूरतों से आदमी मुक्त होगा, गैर-जरूरी चीजें महत्वपूर्ण हो जाएंगी। गैर-जरूरी चीजों का नाम ही कल्चर है, मेरे हिसाब से। सुपरफ्लुअस बेमानी, मीनिंगलेस। गैर-जरूरी चीजों का नाम ही संस्कृति है।
तो जैसे ही आदमी जरूरी चीजों से मुक्त होता है, संस्कृति शुरू होगी। मेरे हिसाब से दुनिया में अभी तक कोई संस्कृति शुरू नहीं हुई है। हां, कभी- कभी कोई संस्कृत घर हुए हैं, वह दूसरी बात है। बुद्ध का परिवार या महावीर का घर--कि एक लड़के को नग्न घूमना है तो वह घूम सकता है। ये लास्ट लक्.जरीज हैं, जो बहुत कम लोग अफर्ड कर सकते हैं। लेकिन पहली दफा आटोमेटिक रेवोल्यूशन के साथ सारी मनुष्य-जाति कल्चर के लेवल पर पहुंचेगी। किसी अकबर को ही सुविधा नहीं रहेगी कि तानसेन को बैठ कर सुने। और किसी तानसेन को भी सुविधा नहीं रहेगी कि वह सितार बजाता रहे जिंदगी भर। यह सुविधा सबको उपलब्ध हो जाएगी।
तो जैसे ही श्रम से हमारी मुक्ति होती है, वैसे ही खेल की दुनिया शुरू होती है। और अभी भी, जो भी लोग श्रम से बच जाते हैं, वे खेल की दुनिया में प्रवेश कर जाते हैं। खेल आनंदपूर्ण है, क्योंकि वह स्वेच्छा से किया गया श्रम है। और श्रम दुखद है, क्योंकि उसमें गहरी परतंत्रता है, वह मजबूरी है। तो हम एक निश्चित ही बहुत बड़ी क्रांति के करीब आ रहे हैं। न सोशलिज्म में उतनी बड़ी क्रांति है और न किसी इज्म में उतनी बड़ी क्रांति है, जो कि टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से संभव होगी, कि आदमी ए.ज ए होल, ए.ज ए सोसाइटी कल्चर्ड हो जाएगा।
और यह कल्चर नये प्रॉब्लम्स खड़े कर देगा, क्योंकि बहुत से लोग हैं जो बिल्कुल एनिमल के तल पर जी रहे हैं, जिनको कि कल्चर्ड होने से बड़ी मुश्किल पड़ जाएगी, जितनी मुश्किल भूखे रहने से नहीं पड़ी थी। और आप पाएंगे कि नई तरह की मिजरीज पैदा हो गईं, क्योंकि जो आदमी छह घंटे चरखा चलाए बिना शांति अनुभव नहीं करता था, इसकी बड़ी मुसीबत हो जाएगी। क्योंकि यह कहेगा, मैं तो चरखा चलाऊंगा। अब चरखा चलाना बिल्कुल बेमानी हो जाएगा। इसका कोई माने नहीं रहेगा। अगर यह चरखा नहीं चलाएगा तो यह कुछ और उपद्रव करेगा।
तो हमें कुछ ऐसे इनोसेंट काम खोजने पड़ेंगे, जिनको हमारे पीछे छूट गई मनुष्यता का हिस्सा जो बिना काम के नहीं जी सकता है--जो श्रम को कहता है कि बड़ी जरूरी बात है; जो श्रम को कहता है, भगवान है श्रम; जो कहता है कि श्रम जो है, धर्म है--ऐसा जो वर्ग है हमारा, उस वर्ग के लिए हमें कुछ इनोसेंट श्रम खोजना पड़ेंगे, कि वह अकारण बैठ कर मछलियां मारता रहे--मेरा मतलब यह है कि वह मक्खियां मारता रहे। या हमें और तरह के श्रम खोजने पड़ेंगे जो कि हमारा वह हिस्सा जो श्रम को खेल में नहीं बदल सकता है, जिसको श्रम चाहिए ही, उसको लगाना पड़ेगा।
दूसरी बात, मिजरी कम हो जाएगी, लेकिन हैप्पीनेस नहीं बढ़ जाएगी। जो रुकावटें थी हैप्पीनेस की--हैप्पीनेस खोजने की सुविधा हो जाएगी। फिर भी नये तरह के काम्पिटीशंस शुरू हो जाएंगे, जो हैपिनेस की खोज के अंदर। फिर

भी हो सकता है, जब मैं मछली मारूंगा तो ज्यादा मेडिटेटिवली मारूंगा और आप बड़े परेशान मारेंगे। आप उतना आनंद नहीं पाएंगे, जितना मैं पा लूंगा। तब नये वर्ग शुरू हो जाएंगे।
दुनिया वर्ग-विहीन पूरी तरह कभी भी नहीं हो सकती, क्योंकि आदमी-आदमी भिन्न हैं और भिन्न वर्ग शुरू हो जाएंगे। यह वर्ग हो सकता है, संगीतज्ञों का एक वर्ग बन जाए जो संगीत में रस लेते हों। और जो नहीं लेते, वह जिसको कहना चाहिए इन-ग्रुप और आउट-ग्रुप हो जाए। आउट-ग्रुप मालूम पड़ने लगे। जो लोग काव्य में रस ले सकते हैं वे इन-गु्रप के लोग हो जाएं। जो लोग कुछ भी रस नहीं ले सकते हैं, वे शराब पीएं, एल.एसड़ी. का उपयोग करें, मैस्कलीन लें, वह उनका इन-ग्रुप हो जाए, बाकी आउट साइडर्स हो जाएं। ये सारी संभावनाएं होंगी।
और नये तल पर मनुष्य की नई तकलीफें शुरू होंगी जो कि मेंटल होंगी, बॉडिली कम हो जाएंगी। और निश्चित ही मेंटल तकलीफें बड़ी हैं बॉडिली से। वह तो जब तक बॉडिली तकलीफें हैं, हमें उनका कोई पता नहीं चलता। इसलिए जब एक दफा आदमी अपनी सारी शरीर की जरूरतें पूरी कर लेता है, तब पहली दफे चिंतित होता है, जिसको एंग्जाइटी कहें। वह भूख से एंग्जाइटी पैदा नहीं होती। एंग्जाइटी बहुत ही हायर लेवल की बात है। टेंशन बहुत हायर लेवल की बात है। इसलिए मेरा मानना है कि जिस दिन आटोमेटिक व्यवस्था हो जाती है, उस दिन रिलीजन का एक्सप्लोजन होगा--बड़े जोर से होगा। क्योंकि आप इतनी एंग्विश से भर जाएंगे जो कि बिल्कुल इनर होगा, जिसके लिए अब साइंस सहयोगी नहीं हो सकेगी। या ज्यादा से ज्यादा साइंस टैंक्वेलाइजर्स दे सकेगी। तो आप मेडिटेशंस की तरफ उत्सुक होंगे, धर्म की तरफ उत्सुक होंगे, ध्यान की तरफ उत्सुक होंगे। और मेरा मानना यह है कि पहली दफा दुनिया जब संस्कृति में प्रवेश करेगी तो धर्म की दिशा खुलेगी। अभी तक कोई सोसाइटी धार्मिक नहीं हो सकी, व्यक्ति हो सके हैं।
तो ये सारे के सारे इनके नये प्रॉब्लम्स होंगे, जिनको शायद हम आज सोच
भी नहीं सकते कि क्या प्रॉब्लम्स होंगे?

प्रश्नः... आई वुड सजेस्ट वैन यू कम नैक्स टाइम, यू डिस्कस सोसाइटी इन 2500 एड़ी।

हां, ठीक है। बिल्कुल। अगली बार में इस पर ही बात करूंगा क्योंकि बहुत जरूरी है।

प्रश्नः... ऑल दि कंट्राडिक्शंस टुडे दैट वी ऑर टॉकिंग अबाउट ऑर रेंडर्ड... व्हेन यू टेक दैम टु लॉजिकल एण्ड रिलेट दैम टु दि डवलपमेंट ऑफ ह्यूमन सोसाइटी ऑर टेक्नालॉजिकली इवोल्यूशन ऑर... दैन वॉट? आई ओनली आस्क दिस क्वेश्चन टु...

हां-हां, वह किसी के पास नहीं है। और देन वॉट हमेशा पूछा जाता रहेगा और उत्तर कभी नहीं होगा। और जिस दिन उत्तर मिल जाएगा, उस दिन हमको सुसाइड करनी पड़ेगी कि जब कोई बात ही नहीं, खत्म हो गई बात। वह तो हमेशा बना रहेगा, नये लेबल्स पर खड़ा होता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं वहीं कह रहा हूं कि जिस दिन टेबलेट पर आप जीएंगे और बटन दबाना सिर्फ श्रम रह जाएगा, उस दिन आपके लिए पहली दफा स्प्रिचुअल रेल्म खुलने शुरू होंगे; जिसको स्प्रिचुअल डाइमेन्शंस कहें, वे खुलने शुरू होंगे। आप पहली दफे उन चीजों में उत्सुक हो पाएंगे, जिनमें आप कभी उत्सुक नहीं थे। और मनुष्य के जीवन में इतनी मिस्ट्रीज हैं और मनुष्य के जीवन में इतनी पोटेंशियलिटीज हैं, कि जिनके बाबत हमें उत्सुक होने का कभी मौका नहीं मिला, उनके बाबत हम बहुत उत्सुक हो जाएंगे। और हम कुछ ऐसी चीज जान पाएंगे

जो हमने कभी नहीं जानी और हो सकता है हममें कुछ ऐसी इंद्रियां सक्रिय हो जाएं जो कभी सक्रिय नहीं थीं। जैसे कि आदमी का ब्रेन है, वह आधा अभी भी खाली पड़ा हुआ है। आधा ब्रेन अभी भी सक्रिय नहीं है। उसके हिस्से कोई भी काम नहीं करते।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, असल में वेद के समय में जिस आदमी ने कहा कि सिर्फ अंगुली के स्पर्श से उसने सब बनाया, यह कविता थी। और हम पांच सौ साल बाद जो करेंगे, वह विज्ञान होगा। और कविता और विज्ञान में बड़ा फर्क है। असल में कविता हमेशा विज्ञान के तीन हजार साल पहले शुरू हो जाती है। वे पोएट्स थे, वे कोई साइंटिस्ट नहीं थे। वे साइकिल का पंचर भी नहीं जोड़ सकते थे। पर वे पोएट्स थे और पोएट्स हमेशा दे प्रिसीड दि साइंटिस्ट, थाउजंड्स ऑफ इयर्स बिफोर। तो पोएट्स जो कहते हैं आज, वह तीन हजार साल में पूरा होता है। विज्ञान उसको तीन हजार साल में एक्चुअलाइज करता है। वह जो डीम...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न्यू पोएट्स पैदा हो रहे हैं, न्यू पोएट्स पैदा हो रहे हैं, क्योंकि अभी तो पुरानी पोएट्री भी एक्चुअलाइज नहीं हो पाई है। वह एक्चुअलाइज होते ही न्यू पोएट्स पैदा होंगे। अब जैसे कि आज जो एल.एसड़ी. लेकर जो कह रहा है, आज जो मैस्कलीन लेकर जो पोएट्री कर रहा है। आज अगर पिकासो जो चित्र बना रहा है, ये चित्र तीन हजार साल पहले किसी चित्रकार ने नहीं बनाए, यह पिकासो बना रहा है और आज हमारे लिए बिल्कुल एब्सर्ड है। क्योंकि तीन हजार साल बाद आदमी वह आएगा जो इनको एक्चुअल कर पाएगा।
वेद के ऋषि ने जो कहा है वह वेद के जमाने में आदमी उन्मत्त था, पागल था, ईश्वर का दीवाना था। वह जो कह रहा था, वह कोई मतलब की बात नहीं थी कि वह क्या कर रहा है, इसलिए हमने उसकी पूजा कर ली। और हमने कहा था कि वह, जिसको कहना चाहिए, ईश्वरी शराब में डूबा हुआ आदमी, लेकिन हम उसे तब समझ नहीं पाए थे। आज भी समझ नहीं पाए हैं, आज भी बात पूरी साफ नहीं हो पाई है।
आज पिकासो को समझना मुश्किल है। आज जो नया म्यूजिक पैदा हो रहा है, उसको समझना भी मुश्किल है। वह हमारे कानों को जॉरिंग मालूम पड़ता है। तानसेन हमें ठीक समझ में आता है, वह पकड़ में आता है। अब हमने उसको एक्चुअलाइज कर लिया है। लेकिन आज के पोएट को भी तो रिकग्नाइज करने में हमें वक्त लगेगा कि वह नई उसने बात कहीं है। नये को भी हम तब समझ पाते हैं, जब वह काफी पुराना हो गया होता है। उसको भी नहीं पकड़ पाते हैं। उसको भी पकड़ने के लिए वक्त चाहिए न!
तो आज भी गिंसबर्ग कुछ कह रहा है, लेकिन वह हमारी पकड़ में नहीं आ रहा है। आज हमें पागल मालूम पड़ रहा है। अभी टिमोथी लियरी को पैंतीस साल की सजा दी है अमेरिका में, और टिमोथी लियरी भविष्य का प्रोफेट है। लेकिन वह जो कह रहा है, हम उसको सिर्फ सजा दे सकते हैं। टिमोथी लियरी कह रहा है कि, वह जो कह रहा है वह हमारी समझ के बिल्कुल बाहर है--कि क्या पागलपन की बातें कर रहे हो। टिमोथी लियरी ने एक किताब लिखी है, और एल. एस. डी. एण्ड तिब्बेतन मिस्टीसिज्म इस पर। अब वह यह कह रहा है कि तिब्बत में जो मिस्टिक्स ने कहा है वह एल.एसड़ी. लेने से पता चलता है। और एल. एस. डी. लिए बिना उसकी कमेंट्री नहीं की जा सकती। तो एल. एस. डी. लेकर उसकी कमेंट्री की है उसने, बड़ी अदभुत है। लेकिन वह कह रहा है कि एल. एस. डी. भविष्य है हमारा। अब जो भी भविष्य में खुलने वाला है द्वार, चाहे विज्ञान का, चाहे कविता का, वह एल. एस. डी. से खुलने वाला है।
अब टिमोथी लियरी को हम सजा दे रहे हैं। हो सकता है, सौ साल बाद हम उसकी मूर्ति बनाएंगे। वह हमने सदा किया है, वह हमने सदा किया है। अभी हम पैंतीस साल की सजा दे रहे हैं कि इसको बंद करो, यह आदमी खतरनाक है, यह सब गड़बड़ कर देगा। यह क्या बातें कर रहा है? लेकिन एल.एसड़ी. ने एक केमिकल रेवोल्यूशन

कर दी है। और उसके बाद हम और तरह की सोचेंगे, कविता और तरह से होगी। वह कविता वैसी नहीं हो सकती है, जैसी कल तक होती थी। और कुछ आश्चर्य नहीं है कि जिसको हम कल तक कवि कहते थे, उसमें एल.एसड़ी. का कुछ तत्व था, कि वह बिल्ट-इन था, यह दूसरी बात है। आज हम उसे ऊपर से ले सकते हैं, यह दूसरी बात है। आश्चर्य न होगा हमें कि ब्लैक जो कुछ देखता था या कालिदास ने जो फूलों में देखा है, इसके माइंड में कुछ केमिकल फर्क था। इसमें कुछ आश्चर्य जैसी बात नहीं हो सकती है। यह संभव है ही। अब यह जो सारा का सारा... इधर बीस-पच्चीस वर्षों में जो यह सदी सिकुड़ेगी, और इन बीस-पच्चीस वर्षों में जो भी होगा, उसे समझने में सौ साल लग जाएंगे। और इस पोएट्री को तभी समझी जाती है, जब साइंटिस्ट उसको धीरे-धीरे...
आकाश में उड़ने की कल्पना कितनी पुरानी है, लेकिन इधर हम सौ साल में पूरा कर पाए उस कल्पना को। चांद तक पहुंचने की और मंगल तक पहुंचने की कल्पना कितनी पुरानी है और पुराण तो बात ही करते हैं कि पहुंच ही गया ऋषि वहां। लेकिन अभी भी पहुंचने के पहले कदम होंगे।
जिस तरह हम भौतिक जगत में नये-नये आयामों में प्रवेश कर रहे हैं, उसी तरह हम आध्यात्मिक स्थितियों में भी नये-नये आयामों में प्रवेश कर सकेंगे। बहुत सी इंद्रियां हैं मनुष्य की, जो सक्रिय हो सकेंगी। मस्तिष्क के बहुत से प्वाइंट्स हैं, जो निष्क्रिय हैं, वे सक्रिय हो सकेंगे। और हमारी जिंदगी में बहुत सी गतियां हो सकेंगी, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि जब तक वह हो न जाएं, तब तक उनकी कोई कल्पना भी संभव नहीं है। यह सबका सब संभव हो रहा है, हो जाएगा।
और यह मेरी अपनी मान्यता है कि इसे अगर संभव बनाना है तो सोशलिज्म इसमें बाधा है। सोशलिज्म इसमें सहयोगी नहीं है। क्योंकि एक बार भी स्टेट के हाथ में सारी ताकत पहुंच जाए तो ये सारी बातें खतरनाक सिद्ध हो सकती हैं। अगर रूस के डिक्टेटरशिप को यह पता चल जाए कि एक केमिकल है जिसको कि पूरे वाटर वर्क्स में डालने से वह रिबेलियन की ताकत खत्म हो जाती है, वह जरूर उसका उपयोग कर लेती है। और उसका उपयोग करने से रोकने की हममें कोई ताकत नहीं होती।
कैपिटलिज्म के पास भीतरी ताकतें हैं, जो रोक सकती हैं। सोशलिज्म के पास कोई भीतरी ताकत नहीं है, जो रोक सके। अगर एक बार मुल्क डिक्टेटोरियल रिजीम में चला जाता है और टेक्नालॉजी और विज्ञान उसको सब ताकतें दे देता है, तो उसका उपयोग किए बिना चूकने वाला नहीं है, क्योंकि कोई वजह नहीं कि उसका उपयोग क्यों न करे? अगर क्रांति रोकी जा सकती है केमिकल ड्रग्स से, तो बराबर रोकी जाएगी। और अगर बच्चों के दिमाग में कम्युनिज्म के विरोध में कोई बात न आने देने की है, कोई मेकेनिकल डिवाइस हो सकती है, तो बराबर उसका उपयोग किया जाएगा। और अगर माइंड-वॉश करता है, तो किया मांइड-वॉश किया जाएगा। इसलिए भी मैं कहता हूं कि सोशलिज्म अब जितना खतरनाक है, उतना सौ साल पहले नहीं था, क्योंकि एक तरफ से विज्ञान ताकतें दे रहा है। जो डिक्टेटोरियल फोर्सेस के हाथ में फेटल सिद्ध हो जाएंगी, इसलिए अब तो किसी भी हालत में इंडिविजुअल फ्रीडम को बचाना ही होगा। और डेमोक्रेसी अब एकदम ही मस्ट है, अब उससे इंच भर इधर-उधर होना खतरनाक है। और मेरी अपनी यह समझ है कि सोशलिज्म के साथ डेमोक्रेसी का कोई संबंध नहीं हो सकता, न हो सकता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

असल में सोशलिज्म का कांसेप्ट चेंज जो हो रहा है, जो सोशलिज्म का कांसेप्ट चेंज जो हो रहा वह मनुष्य के स्वभाव की वजह से चेंज हो रहा है। लेकिन अगर सोशलिस्ट डिक्टेटर्स के हाथ में मनुष्य के स्वभाव को केमिकली बदलने की ताकत आ जाए तो कांसेप्ट चेंज नहीं होगा। और वह आती जा रही है और स्टैलिन अगर बीस साल और जिंदा रह जाता तो जल्दी हो जाती संभावना। और माओ अगर बीस साल जिंदा रहता, तो उपयोग कर लेता। आज माइंड वॉश का बड़े जोर से उपयोग किया जा रहा चायना में। और खतरनाक से खतरनाक वाशिंग की जा सकती है।

अभी एक अमरीकन वैज्ञानिक ने एक घोड़े के दिमाग को ऑपरेट करके इलेक्टरेड रख दिया। और उस इलेक्टरेड को रेडियो से प्रभावित किया जा सकता है। वह कितनी ही हजारों मील दूर से, अपने ट्रांसमीटर से अगर उस घोड़े को कहे कि अब तुम नाचो, तो वह घोड़ा नाचेगा। एक मित्र ने मुझे कटिंग भेजी है कि यह घटना घटी है। मैंने कहा कि यह सारी दुनिया में शोक मनाने जैसी घटना है, क्योंकि घोड़े के दिमाग में रखा गया इलेक्ट्रोड--कितनी देर लगेगी कि आदमी के दिमाग में रख दिया जाए। और एक दफा ताकत राज्य के हाथ में पूरी हो तो पूरे मुल्क के दिमाग में न रख दिया जाए, इसमें दिक्कत क्या है।
तो अब तो मैं मानता हूं कि सोशलिज्म किसी भी हालत में महंगा है। किसी
भी हालत में महंगा है, क्योंकि टेक्नालॉजी इतनी ताकत दे रही है कि अब राज्य के हाथ में ताकत रोज कम होनी चाहिए। राज्य की ताकत रोज कम होनी चाहिए, धीरे-धीरे राज्य के हाथ में इतनी कम ताकत रह जानी चाहिए कि सोसाइटी के पास राज्य से लड़ने का उपाय रहे। और राज्य सोसाइटी के साथ जो भी करना चाहे, वह कर न सके, सोसाइटी बगावत कर सके।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

स्टेट सिर्फ क्लास एजेंसी ही नहीं है, स्टेट के और भी बहुत से फंक्शंस हैं। तो स्टेट अगर क्लास एजेंसी की तरह जो काम करती थी, वह तो विदर अवे हो जाएगा, दैट फंक्शन अलोन। और मैं नहीं मानता कि उसने इतना ही फंक्शन किया है, मैं मानता हूं कि मोर फंक्शंस ऑर देअर, जो कि और बढ़ जाएंगे।
और फिर मेरा मानना यह है कि मार्क्स जिस भांति सोचता था कि क्लास विदर अवे हो जाएगी, उस भांति तो कभी न होगी। मार्क्स के रास्ते से जाकर तो स्टेट और भी क्रिस्टलाइज हो जाएगी। मार्क्स के रास्ते से जाकर स्टेट क्रिस्टलाइज होगी, विदर अवे कभी नहीं होगी। क्योंकि मार्क्स पहले स्टेट के हाथ में पूरी ताकत देगा, इस आशा में कि वह क्लासेस को मिटा दे। इस आशा में स्टेट को पूरी की पूरी ताकत दे दी जानी चाहिए, ताकि वह स्टेट क्लासेस को मिटा दे! लेकिन मार्क्स को यह ख्याल नहीं है कि जैसे ही स्टेट क्लास को मिटाती है, दो क्लास बन जाती है--स्टेट्स के मैनेजर्स की और मैनेज्ड। और फिर दो क्लास में विभाजन हो जाता है। और एक ब्यूरोक्रेटिक क्लास खड़ी हो जाती है, तत्काल। और इसको मिटाना बहुत मुश्किल है। और इसके खिलाफ कोई उपाय नहीं है मिटाने का। इसके हाथ में सारी ताकत इकट्ठी हो जाती है। तो मार्क्स ने जिस रास्ते से सोचा है कि एक दिन राज्य-विहीनता आ जाएगी, उस रास्ते से तो कभी नहीं आ सकती।
और दूसरा, मार्क्स सोचता है कि स्टेट का कुल काम एजेंसी का है क्लास की, वह भी गलत है। स्टेट का अपना भी काम है। स्टेट सिर्फ क्लास एजेंसी नहीं है। इतने अधिक लोगों के बीच जो रिलेशनशिप है--दस करोड़ लोग रह रहे हैं, पचास करोड़ लोग रह रहे हैं, जमीन पर तीन अरब लोग रह रहे हैं, इन तीन अरब लोगों के बीच जो रिलेशनशिप का पैटर्न है, इस पैटर्न को सम्हालना भी स्टेट का काम है। तो स्टेट विदर अवे मेरे हिसाब से कभी भी नहीं होगी। हां, स्टेट का फंक्शन बदलता जाएगा। जो-जो फंक्शन बेकार होते जाएंगे, वे बदलते चले जाएंगे।
और दूसरा, स्टेट के साथ जो नेशन है, वह जरूर विदर अवे हो जाएगा, वह जरूर विदर अवे हो जाएगा। नेशन की तो कोई जरूरत नहीं रह जाने वाली है। जैसे ही हम इस सदी को पार करते हैं कि नेशन तो विदर अवे हो जाएगा। स्टेट शायद इंटरनेशनल हैसियत ले लेगी और उसकी फंक्शन जो है, वह फंक्शन पोलिटिकल कम हो जाएगी। उसका पोलिटिकल जो सारा का सारा स्ट्रक्चर है, वह दूसरी तरह का हो जाएगा। उसको कहना चाहिए कि वह इकोनॉमिकल हो जाएगा। उसको कहना चाहिए, वह रिलीजस हो जाएगा। उसको कहना चाहिए कि वह कंटरेल रूम की भांति जीवन की जिन-जिन चीजों को व्यक्तिगत रूप से नहीं सम्हाला जा सकता, उनको वह सम्हालने लगेगी। और जिन चीजों को व्यक्तिगत रूप से सम्हाला जा सकता है, वह सारे के सारे स्टेट हाथ से बाहर हो जाना चाहिए। मेरा मानना ही यह है कि जिनको व्यक्तिगत रूप से सम्हालना असंभव है स्टेट उसी काम के लिए है सिर्फ।

लेकिन स्टेट धीरे-धीरे सारी चीजों को अपने हाथ में ले लेना चाहती है उन सबको जो व्यक्ति बड़ी भलीभांति सम्हाल रहे हैं। और स्टेट हाथ में लेते से ही उनको खराब कर देती है--वह करने ही वाली है।
इस मुल्क में तो, हमारे मुल्क में तो अगर हमें संपत्ति पैदा करनी है, शक्ति पैदा करनी है, तो स्टेट के हाथ हमें रोज-रोज कमजोर करने चाहिए और व्यक्ति के हाथों में शक्ति पहुंचानी चाहिए। और जो-जो काम हम व्यक्तियों को... और बहुत काम पहुंचा सकते हैं। बड़ा मजा है, बड़ा मजा है कि ऐसे बहुत कम काम हैं जो स्टेट के हाथ में रह जाने चाहिए--पुलिस का काम है, वह स्टेट के हाथ में रहे। वह भी बहुत जरूरी नहीं है कि कुछ कारपोरेशंस को तो हम नगर की स्टेट-पुलिस को दे ही सकते हैं, म्युनिसिपैलिटी को दे सकते हैं। वह ज्यादा उचित होगा, क्योंकि गांव में, मैं मानता हूं कि म्युनिसिपल का पुलिसमैन इतनी आसानी से गोली नहीं चला सकेगा, जितनी आसानी से दिल्ली का पुलिसमैन गोली चलाता है।

प्रश्नः... दै नेशंस टैक्स्ट वुड एण्ड विद द एण्ड ऑफ दिस सैंचुरी, इट इ.ज नॉट टु अर्ली टु से दैट...

हमेशा टू अर्ली मालूम पड़ता है, जब तक हो न जाए। हमेशा टू अर्ली मालूम पड़ता है। उसके कारण हैं। उसके कारण हैं। क्योंकि जो कारण मुझे दिखाई पड़ते हैं, क्यों मैं ऐसा कह रहा हूं? उसके तीन-चार कारण हैं। एक कारण तो यह है कि पहली दफा आदमी पृथ्वी के आर्बिट के बाहर हो गया है, जो कि बहुत बड़ी घटना है। पृथ्वी के आर्बिट के बाहर होते से पृथ्वी पहली दफे एक हुई है। उसके पहले एक हो नहीं सकती थी। यूरी गागरिन ने लौट कर, जो पहली बात उससे पूछी कि तुम्हें क्या ख्याल उठा? तो उसने कहा, माइ अर्थ। माइ रसा नहीं उसने कहा। क्योंकि पृथ्वी के आर्बिट को छोड़ते ही रसा का क्या मतलब रह जाता है? मेरी पृथ्वी हो जाती है।
पहली दफे आदमी पृथ्वी को छोड़ा है। और पहली दफा पृथ्वी जो है पृथ्वी के बाहर के जगत से संबंधित होना शुरू हुई है। अगर हम चांद पर या मंगल पर कल बस्तियां बसाना चाहते हैं तो न तो अमेरिका की अकेली ताकत है, न रूस की अकेली ताकत है, न चीन की अकेली ताकत है, हमें पहली दफा को-ऑपरेट करना पड़ेगा। इसके बिना कोई उपाय नहीं है।
अभी अमरीका के वैज्ञानिकों ने कहना शुरू किया कि अब अकेले कोई उपाय नहीं रहा। अब हम चांद पर अगर ताकत लगाना चाहते हैं तो हमें इकट्ठी लगानी पड़ेगी। पहली दफा हमारे पास कुछ प्रोजेक्ट आए हैं, जो कि पूरी पृथ्वी पूरी करेगी। और जिंदगी इकट्ठी होती है प्रोजेक्ट से। अगर चीन से आपको लड़ना पड़ता है तो मराठी और गुजराती का फासला एकदम गिर जाता है, क्योंकि प्रोजेक्ट ऐसा है जिसमें मराठी-गुजराती का कोई मतलब नहीं है। लेकिन चीन से आप नहीं लड़ते हैं तो मराठी-गुजराती लड़ना शुरू कर देता है, हिंदू- मुसलमान लड़ना शुरू कर देता है। प्रोजेक्ट खत्म हो गया। लेकिन जब मुसलमान हिंदू से लड़ता है तो शिया-सुन्नी का झगड़ा खतम हो जाता है। क्योंकि प्रोजेक्ट बड़ा है और उसमें शिया-सुन्नी दोनों के लिए कॉमन एनिमी है तो पहली दफे पृथ्वी के लिए कॉमन एनिमी मिलने शुरू हुए हैं।
और मेरा मानना है कि इस सदी के पूरे होते-होते हम किसी न किसी ग्रह-उपग्रह पर जीवन को भी समझ पाने में समर्थ हो जाएंगे। क्योंकि कम से कम पचास हजार प्लेनेट संभव हैं, जिन पर किसी तरह का जीवन होगा। और एक बार किसी प्लेनेट पर अगर हमको जीवन का पता चल गया, तो हमारी कांफ्लिक्ट पहली दफा प्लेनेटरी हो जाएगी और नेशंस का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। यह तो टेक्नालॉजिकली मैं मानता हूं कि टेक्नालॉजी हमें इसके करीब पहुंचा देगी। यह मैं नहीं कहता कि ठीक यही सदी का अंत--दस-बीस, पचास वर्ष का फासला है, इससे कोई मतलब नहीं है। हां, लेकिन यह सदी कुछ चोटें करेगी और इन चोटों में बड़ी चोट यह है कि टेक्नालॉजिकली संभव हो गया है कि हम पृथ्वी को पृथ्वी के बाहर के जगत से संबंधित कर सकें--एक।

दूसरी बात, जितने जोर से हमारे यानों की मूवमेंट और स्पीड बढ़ रही है, क्योंकि अब हमारे पास ऐसे जेट हैं, जो आधा घंटे में पूरी पृथ्वी को घूम लें। तो पृथ्वी एक ग्लोबल विलेज से ज्यादा नहीं रह गई, टेक्नालॉजिकली। और जिस दिन एक बैलगाड़ी चलती थी, उस दिन एक गांव का अलग अस्तित्व था और दूसरे गांव का अलग अस्तित्व था। क्योंकि दोनों के बीच जो संबंधित होने का माध्यम था, वह इतना ढीला था कि संबंध हो नहीं सकता था। नेशंस बने, क्योंकि रास्ते बने। अगर रास्ते न हों तो बड़े नेशंस नहीं बन सकते थे। ये इतने बड़े नेशंस खड़े हो सके, क्योंकि रास्तों ने जोड़ दिया। फिर नेशंस बड़े होते चले गए, क्योंकि टेक्नालॉजी कम्युनिकेशन के साधन बढ़ाती चली गई। हिंदुस्तान जैसा बड़ा मुल्क--पुराने दिनों में आप ज्यादा देर तक बड़ा नहीं रख सकते थे। अगर एक दफा कोई राजा जीत कर इसको इतना बड़ा कर लेता था तो उसके मरने के पहले ही यह टूटना शुरू हो जाता। क्योंकि कम्युनिकेशन मुश्किल था। अब कम्युनिकेशन के साधन बियांड नेशन हो गए हैं। आज अहमदाबाद से न्यूयार्क पहुंचना उतना दूर नहीं है, जितना कल अहमदाबाद से दिल्ली पहुंचना दूर था। तो जब दूरी इतनी कम हो गई है तो पोलिटिकल दूरियां अब ज्यादा देर तक टिक नहीं सकतीं। पोलिटिकल दूरियों को धीरे-धीरे हट जाना पड़ेगा। उनका कोई अर्थ नहीं है। और जब अकाल पड़े बिहार में और अमेरिका का किसान खाना दे, तो कितनी देर तक बिहार के आदमी को अमेरिका के आदमी से दूर रखिएगा? बहुत ज्यादा देर तक दूर नहीं रख सकते आप।
और अब हालतें ऐसी होती जा रही हैं कि हमारी इंटर-डिपेंडेंस की एक हालत बनेगी। असल में पुरानी दुनिया में दो शब्द मौजूद थेः डिपेंडेंस और इनडिपेंडेंस। आने वाली दुनिया में इंटर-डिपेंडेंस सबसे महत्वपूर्ण शब्द हो जाने वाला है। न इनडिपेंडेंस का कोई मतलब रहेगा, न डिपेंडेंस का कोई मतलब रहेगा। क्योंकि अब किसी को किसी के ऊपर पूरी तरह डिपेंडेंट या गुलाम होने का कोई अर्थ नहीं रह गया।
असल में अब गुलामी महंगी पड़ने लगी, जो गुलाम बनाए उसको। अगर ब्रिटिश एंपायर विदर अवे हो गया है, तो आप यह मत समझ लेना कि आपके आंदोलन की वजह से ही सब विदर अवे हो गया। ब्रिटिश एंपायर बेमानी हो गया था। अब वह इतने बड़े ढांचे को सम्हालना ब्रिटेन के लिए महंगा पड़ रहा था। और अब उस ढांचे को बचाए रखना बिल्कुल बेमानी था। वह ऐसा ही था, जैसे कि पुराने बड़े बंगले बेमानी होते जा रहे हैं और छोटे फ्लैट उनकी जगह लेते जा रहे हैं। मेरे एक मित्र ने बंगला तीस लाख में खरीदा, वह उसको गिरा रहा है। मैंने उससे कहा, तू काहे के लिए गिरा रहा है इतना बढ़िया बंगला? बोला, उसने कहा, यह बिल्कुल बेमानी है। यह इतने बड़े स्ट्रक्चर को तीस लाख का बना कर रखना खतरनाक है। अब हम इसकी जगह चालीस मंजिल का मकान बनाने वाले हैं।
तो होता क्या है, पुराना स्ट्रक्चर नई टेक्नालॉजी के साथ बेमानी हो जाता है; यह हमको धीरे-धीरे पता चलता है। तो एक इंटर-डिपेंडेंट वर्ल्ड विकसित हो रही है। परस्पर अवलंबी, जिसमें कि बहुत ज्यादा देर नहीं रह गई कि हमें किसी मुल्क से लड़ना मुश्किल हो जाएगा। आज आप अमेरिका से लड़ नहीं सकते, क्योंकि कल गेहूं कौन देगा? आज आप रूस से लड़ नहीं सकते, क्योंकि आपके स्टील के कारखाने कौन खड़े करेगा? अभी आप पाकिस्तान से लड़ सकते हैं, क्योंकि आपकी कोई इंटर-डिपेंडेंस नहीं है और दोनों मुल्क चूंकि टेक्नालॉजिकली पिछड़ें हैं, इसलिए पुराने ढांचे में जी सकते हैं।
सच तो यह है कि रूस और अमेरिका आगे लड़ नहीं सकते। अगर लड़ाई हो भी सकती
है कभी तो वह रूस और चीन में हो सकती है, अमेरिका और चीन में हो सकती है, क्योंकि चीन अभी भी टेक्नालॉजिकली पुरानी दुनिया का हिस्सा है, रूस और अमेरिका एक नई टेक्नालॉजी में प्रवेश कर गए हैं। उनके फासले रोज कम होते जा रहे हैं और अगर फासले रह गए हैं तो वे डाग्मेटिक हैं। अब वे फासले नहीं हैं। और आज रूस के साइंटिस्ट के दिमाग में और अमेरिकी साइंटिस्ट के दिमाग में कोई फासला नहीं है, बल्कि वे निकट आना चाहते हैं। क्योंकि जो उन्होंने खोजा है, वह खोज अब अकेले रूस के बल की नहीं है कि वह उसको पूरा कर ले। अब भविष्य के जो भी रिसर्च प्रोजेक्ट हैं, वह उनके लिए वर्ल्ड गवर्नमेंट ही पूरी कर सकती है। इसको कहने की मेरी वजह है। प्रि-मैच्योर नहीं है, जो मैं

कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं, उसको वक्त लगेगा। लेकिन यह सदी पूरे होते- होते रूप-रेखाएं बहुत साफ होनी शुरू हो जाएंगी। नेशन स्टेट विल विदर अवे, एण्ड स्टेट विल कम इनटु ए न्यू फंक्शन। और वह जो न्यू फंक्शन होगी, जिसको हमें कहना चाहिए, इंटरनेशनल हो जाएगी। जो न्यू फंक्शनिंग है वह इंटरनेशनल हो जाएगी। और दुनिया को अब बहुत ज्यादा देर तक एक बाजार बनने से रोकना गलत है। और दुनिया को अब बहुत ज्यादा देर तक अलग-अलग इकाइयों में जिलाए रखना गलत है, क्योंकि आप जी भी नहीं सकेंगे। अब आप यह पक्का समझ लें कि अब जीने का कोई उपाय नहीं है, सिवाय विश्व नागरिक हुए बिना जीने का कोई उपाय नहीं है।
अब अभी से चिंता खड़ी हो गई है। अब जैसे कि आप बच्चे पैदा कर रहे हैं। इससे अमेरिका चिंतित है। यह चिंता होनी नहीं चाहिए, क्योंकि आपके बच्चे से उन्हें क्या मतलब है? लेकिन पूरा मतलब है। क्योंकि आज से पचास साल पहले यूरोप और अमीका और एशिया की आबादी बराबर थी। फिर अनुपात बिगड़ने लगा। आज सत्तर परसेंट हम हैं, तीस परसेंट वे हैं। अब उनका डर बढ़ता जाता है। अगर इस सदी के पीछे तक ऐसी गति चली तो वे दस परसेंट रह जाएंगे, नब्बे परसेंट हम हो जाएंगे। हम उनको किसी भी दिन डुबा सकते हैं, हमारी भीड़ उन्हें डुबा देगी। इसलिए अब आपके घर में आप जो बच्चा पैदा कर रहे हैं उसमें। वाशिंगटन उत्सुक है कि आपका बच्चा आप एकदम पैदा न कर सकें। क्योंकि यह मामला पूरी दुनिया का है। आप जो बच्चा पैदा कर रहे हैं वह आपका ही यह मामला नहीं है।

प्रश्नः आखी दुनिया का मामला है।

आखी दुनिया का मामला है। अगर आपका मुल्क अकाल से ग्रस्त होता है, तो
भी सारी दुनिया का मामला है। अगर आपके मुल्क में महामारी फैलती है तो वह आपका ही मामला नहीं है, वह सारी दुनिया का मामला है। क्योंकि आज से अगर दो सौ साल पहले आपके मुल्क में महामारी फैलती है, तो दूसरे मुल्क में प्रवेश नहीं कर पाती है। आज अगर आपके मुल्क में महामारी फैलती हो पूरी पृथ्वी पर प्रवेश कर जाएगी। वह चाहे फ्लू जापान में पैदा हो तो स्वीडन में पहुंचेगा। अब उसके रोकने का उपाय बहुत मुश्किल हो गया है। हम बहुत अर्थों में एक दुनिया बन चुके हैं, सिर्फ मेंटली हमारी पुरानी बेवकूफियां हमें रोके हुए हैं। उनको तोड़ने में जितना वक्त लग जाए, यह दूसरी बात है। लेकिन वस्तुतः हम दुनिया एक बन चुके हैं। पुरानी दीवालें विचार की, आइडियालाजी की, डाग्मा की, रिलीजन की, पॉलिटिक्स की कितनी देर टिकेंगी, यह समय की बात है, लेकिन वस्तुतः अब ज्यादा देर टिक नहीं सकती हैं।

प्रश्नः... इफ वन थिंग विच कैन नॉट बी रिमूव्ड सो लांग ऐज द इकोनॉमिक इम्बैलेंस बिट्वीन दैम, इन एरिआस इन कांफिडेंस एण्ड देयर ऑर पिपुल इन कंट्रीज बोथ इन एडवांस कंट्रीज एण्ड बैकवर्ड कंट्रीज हैविंग एंबीशंस ऑफ देयर ऑल इट इ.ज गोइंग टु बी वैरी डिफिकल्ट टु...

नहीं, यह जो बात आप कहते हैं, इसको दो तरह से सोचें--एक तो, कि जिसको हम मानव स्वभाव कहते हैं, असल में मानव स्वभाव कोई बहुत फिक्स्ड चीज नहीं है। और मानव स्वभाव बहुत ही फ्लूइड, तरल चीज है और मानव स्वभाव भी एक प्रोसेस है। उसमें भी हमें रोज-रोज नई बातें पता चलती हैं कि यह भी मानव स्वभाव में है, जो कि हमें कल पता ही नहीं था कि यह भी मानव स्वभाव में है। अब जैसे यह भी मानव स्वभाव का हिस्सा है कि आज अमरीका का आदमी अपनी प्रॉस्पैरिटी को क्यों शेयर करना चाहे आपके साथ। लेकिन आज अमरीका का जो समझदार आदमी है, वह जानता है कि अगर उसको प्रॉस्पैरिटी बचाए रखनी है तो शेयर करनी पड़ेगी, नहीं तो प्रॉस्पैरिटी बचने वाली नहीं है। आज अमरीका के समझदार हिस्से को यह बहुत साफ पता चल रहा है कि एशिया और अफ्रीका के मुल्कों से अपनी प्रॉस्पैरिटी बांटे बिना वह दस-बीस साल से ज्यादा प्रॉस्पैरिटी में रह नहीं सकता। उसका कोई उपाय नहीं रह जाएगा, एक।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न-न, आपके कहने से कोई बड़ा अर्थ नहीं है। यह तो उन्हें दिखाई पड़ रहा है,
यह उन्हें दिखाई पड़ रहा है। और इसलिए आप और गरीब न हो जाएं इसकी पूरी चिंता उन्हें, क्योंकि अंततः वह गरीबी वर्ल्ड वाइड हो जाएगी और फैल जाएगी। और यह खतरा भी इसीलिए बढ़ रहा है कि नेशंस के गिरने का डर है। और जिस दिन नेशंस गिर जाएंगे, उस दिन गरीबी के फैलाव का कोई उपाय नहीं रह जाएगा, वह प्रवेश कर जाएगी। और नेशंस गिरने के करीब हैं, उनके बचने का कोई अर्थ नहीं रह गया है।
दूसरी बात, यह जो हमें ख्याल है कि बैकवर्ड कंट्रीज और डवलप्ड कंट्रीज के बीच इकोनॉमिक इम्बैलेंस है, उसको पूरा करने में बहुत देर लगेगी, मैं नहीं मानता। उसे पूरा करने में बहुत कम देर लगे, अगर हमारे पोलिटिकल डिफरेंस और स्टेट की बाउंड्रीज कम हो जाएं--उसे पूरा करने में देर न लगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। असल में मैं ऐसा नहीं मानता, मैं ऐसा नहीं मानता हूं, और इस संबंध में थोड़ी बात करने जैसी है। एक पुरानी दृष्टि थी, जिसको कहना चाहिए वन डायमेंशनल थी कि एक बेसिक कॉ.ज से सब चीजें निकलती हैं। ऐसा हमारा ख्याल था। और वह ख्याल इतना गहरा हो गया कि अगर मार्क्स पकड़ेगा उसको तो जिसको देश-काल कहना चाहिए या मूल कारण कहना चाहिए, वह उसको इकोनॉमिक्स बताएगा। फिर पॉलिटिक्स उससे निकलेगी, रिलीजन भी उससे निकलेगा, फिलासफी भी उससे निकलेगी, माइंड भी उससे निकलेगा। अगर फ्रायड को बेसिक का.ॅज खोजना है तो वह सेक्स को पकड़ लेगा। फिर माइंड भी उससे निकलेगा, पॉलिटिक्स भी उससे निकलेगी, रिलीजन भी उससे निकलेगा, इकोनॉमिक्स भी उससे। इसलिए मैं मानता हूं, यह दृष्टि गलत है।
मल्टि-कॉ.जल है मनुष्य का एग्झिस्टेंस। उसमें एक कॉ.ज हमेशा ही गलत बात है, मल्टि-कॉ.जल है। नहीं, इकोनॉमिक्स से पॉलिटिक्स को निकलने की जरूरत नहीं है। पॉलिटिक्स के अपने कॉ.जेज हैं। और इकोनॉमिक्स के अपने कॉ.जेज हैं। आप मेरी बात समझ रहे हैं न? यानी मैं वन डाइमेन्शनल मानता ही नहीं जीवन को। मैं मानता हूं, मल्टी-डाइमेन्शनल है। इसलिए अगर पॉलिटिक्स को हमें समझना है तो पोलिटिकल कॉ.जेज को समझना पड़ेगा और इकोनॉमिक्स को समझना है तो इकोनॉमिक्स कॉ.जेज को समझना पड़ेगा। यह बात सच है कि दोनों मिल कर जिंदगी में जो ढांचे रचते हैं, वे सम्मिलित हैं। जिंदगी का पैटर्न जो है, वह सभी कॉ.जेज से मिल कर बनता है। लेकिन सब कॉ.जेज की अपनी इंडिपेंडेंट सोर्स धारा है, उसकी अपनी मूल-धाराएं हैं। और इसलिए जिंदगी इतनी सरल नहीं है--जितना मार्क्स समझता है, या फ्रायड समझता है, या गांधी समझते हैं। जिंदगी इतनी सरल नहीं है, जिंदगी बहुत जटिल है। और हम क्यों ये एक कारण की बात मानते हैं, क्योंकि उस जटिल जिंदगी को हम समझाने के लिए आसानी पड़ती है कि एक कारण हम पकड़ कर बैठ जाएं। एक कारण नहीं है। पॉलिटिक्स की अपनी अंतर्धाराएं हैं, जो अलग काम कर रही हैं। अर्थशास्त्र की अपनी अंतर्धाराएं हैं, वे अलग काम कर रही हैं। धर्म की अलग अंतर्धाराएं हैं, वे अलग काम कर रही हैं। और ये सब मिल कर सोसाइटी का जो कपड़ा बुनती हैं, वह एक अलग व्यवस्था है, जो किसी एक कारण पर तय नहीं की जा सकती। तो मेरा मानना है कि इकोनॉमिक कारणों ने भी वह जगह ला दी है अब, जहां पुलिस एक हो जानी चाहिए। अगर बैकवर्ड कंट्रीज चाहती हैं कि बैकवर्ड न रहें, तो जरूरी हो गया है कि वह दुनिया के एक होने में सहयोगी हों। और अगर विकसित मुल्क चाहते हैं कि वे विकसित बने रहें तो जरूरी है कि अविकसित को विकसित करने में सहयोगी हों, अन्यथा मुश्किल हो जाएगी। अगर अमीर चाहता है कि उसकी अमीरी बनी रहे, तो गरीब को बहुत ज्यादा दिन गरीब रखेगा तो नुकसान में पड़ने वाला है। उसी पूरी फिकर करनी चाहिए कि गरीब अमीर हो जाए। और गरीब कम से कम इतना

अमीर तो हो जाए कि उसके पास खोने को कुछ हो जाए। अन्यथा क्रांति बड़ी आसान है। कुछ खोने योग्य होना चाहिए।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मार्क्स ने कहा है कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो में कि दुनिया के मजदूरो एक हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है सिवाय जंजीरों के। तो मैं कहता हूं कि, पूंजीवाद को जल्दी फिकर करनी चाहिए कि जंजीरें सोने की हो जाएं। उसमें कुछ खोने योग्य हो जाए जंजीरों में, नहीं तो बहुत मुश्किल हो जाएगी, बहुत मुश्किल हो जाएगी।

देख कबीरा रोया
बीसवां प्रवचन

वैज्ञानिक विकास और बदलते जीवन-मूल्य

प्रश्नः हाउ दि ह्यूमन गोल ऑफ सेल्फ रियलाइजेशन थ्रू सेल्फ एक्सप्रेशन इ.ज टु बी आइडेंटिफाइड इन दि मार्डन इंडस्ट्रियल...

दो-तीन बातें हैं। एक तो मनुष्य सदा से ही औद्योगिक रहा है, इंडस्ट्रियल रहा है। यह घटना नई नहीं है। चाहे वह छोटे औजार से काम करता रहा हो या बड़े औजार से काम करता रहा हो--छोटे पैमाने पर करता रहा हो, बड़े पैमाने पर करता रहा हो। आदमी जब से पृथ्वी पर है तब से इंडस्ट्रियल एड चल रही है, वह आदमी के साथ ही चल रही है। और जैसे आज हम लगता है कि दो हजार साल पहले का आदमी इंडस्ट्रियल नहीं था, दो हजार साल बाद हम भी इंडस्ट्रियल नहीं मालूम होंगे।
पहले तो बात यह समझ लेने जैसी है कि मेरी समझ ही यह है कि आदमी, आदमी होने की वजह से ही इंडस्ट्रियल है। आदमी को पशु से जो बात भिन्न करती है वह उसका यंत्रों का उपयोग है। वह कितने ही छोटे पैमाने पर हो, यह दूसरी बात है। लेकिन हमेशा से आदमी उद्योग में लगा है। असल में आदमी जी ही नहीं सकता है बिना उद्योग में लगे हुए। इससे औद्योगिक युग को मैं कोई विशेष मूल्य नहीं देता, मनुष्य का पूरा इतिहास ही औद्योगिक है। इसलिए जो सवाल आपने उठाया है कि औद्योगिक युग में कैसे आदमी आत्म-साक्षात्कार करे, आत्म-अभिव्यक्ति के द्वारा?
तो पहली तो बात यह है कि मेरे लिए सभी युग औद्योगिक हैं। आदमी का इतिहास ही उद्योग है। दूसरी बात, आत्म-साक्षात्कार आत्म-अभिव्यक्ति के द्वारा नहीं होता। हां, आत्म-साक्षात्कार से आत्म-अभिव्यक्ति हो सकती है। सेल्फ-रियलाइजेशन जो है वह सेल्फ-एक्सप्रेशन से नहीं होता। सेल्फ-रियलाइजेशन से सेल्फ-एक्सप्रेशन हो सकता है। क्योंकि जिसे आप एक्सप्रेस करने जा रहे हैं वह पहले से रियलाइज होना चाहिए अन्यथा एक्सप्रेस क्या करिएगा? अगर मुझे मेरी आत्मा को प्रकट करके ही पाना हो, तो मैं प्रकट क्या करूंगा? मेरे पास आत्मा होनी चाहिए प्रकट करने के पूर्व तो ही मैं प्रकट कर सकूंगा।
इसलिए जो आम धारणा है कि आदमी अपने व्यक्तित्व को, अपनी आत्मा को पाता
है अभिव्यक्ति से, मैं नहीं मानता। मैं मानता हूं, अभिव्यक्ति आ सकती है उपलब्धि से। जरूरी नहीं है कि आ जाए, आ सकती है। और प्रत्येक को एक जैसी आए, यह भी जरूरी नहीं है। कोई गीत गा सकता है; कोई चित्र बना सकता है; कोई नाच सकता है; कोई खेत में काम कर सकता है। कोई हो सकता है चुप ही बैठ जाए, मौन ही उसकी अभिव्यक्ति हो। कहना कठिन है कि अभिव्यक्ति कैसी होगी। लेकिन अभिव्यक्ति अगर आत्म-साक्षात्कार के पहले की जाएगी तो सिर्फ आपके मानसिक रोगों की अभिव्यक्ति होगी, आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं हो पाएगी।
इसलिए जो लोग भी, विशेषकर आज, जो लोग भी अभिव्यक्ति पर जोर दे रहे हैं
वह मानसिक रोगों की ही अभिव्यक्ति है। चाहे पिकासो के चित्र हों और चाहे हमारी आधुनिक कविता हो, चाहे हमारा आधुनिक संगीत हो, उसमें आत्म-अभिव्यक्ति नहीं है। जो अभिव्यक्ति हो रही है वह मानसिक पैथालॉजी की है-- रुग्ण जो चित्त है हमारा हजार-हजार बीमारियों से भरा हुआ। हां, उन बीमारियों को निकालने से यह राहत मिलती है। मैं मना नहीं करूंगा कि कोई उन्हें निकाले, लेकिन मैं कहूंगा कि यह समझे कि वह आत्म-अभिव्यक्ति नहीं है। ज्यादा से ज्यादा उसे हम मनस-अभिव्यक्ति कह सकते हैं। और चूंकि मनस हमारा रुग्ण है और तब तक रुग्ण रहेगा जब तक हमने स्वयं को नहीं पाया है। और चूंकि मनस हमारा खंड-खंड है, फैग्मेंटरी है, कंट्राडिक्ट्री है, रहेगा, जब तक हमने स्वयं को नहीं पाया है। वह जो इंटीग्रेशन है वह तो स्वयं को पाने से ही उपलब्ध होता है।
अभी तो हमारे पास जिसे हम कहें एक व्यक्ति, ऐसा भी नहीं है। अभी तो मल्टी-साइकिक है हमारा होना। सुबह आप कुछ हैं, दोपहर कुछ हैं, सांझ कुछ

हैं, कल कुछ थे, आज कुछ हैं, किसको अभिव्यक्त करिएगा? अभिव्यक्त होने के लिए पहले आपका होना जरूरी है। यू मस्ट एग्झिस्ट टु बी एक्सप्रेस्ड। और एक गहरे अर्थों में तो हम हैं ही नहीं। हम सिर्फ एक जोड़-तोड़ हैं। यानी करीब-करीब बहुत से खंड हैं हमारे। जिनमें से जो खंड हमारे ऊपर होता है हम उसी को समझ लेते हैं कि यह मैं हूं। जब क्रोध ऊपर होता है तो आप क्रोध होते हैं, जब प्रेम ऊपर होता है तो आप प्रेम होते हैं, और जब घृणा ऊपर होती है तो घृणा होते हैं, और जब अशांति और चिंता पकड़ती है तो आप चिंता होते हैं, और जब कभी क्षण भर को शांत होते हैं तो आप शांति होते हैं।
आप कौन हैं? अभी आप हैं नहीं, वह जिसको क्रिस्टलाइजेशन कहें हम। इन सबके बीच उसका मिल जाना जो मैं हूं, इन सबसे पृथक, इन सबसे भिन्न, इन सबसे गहरे, और जब ये कोई भी नहीं होते तब भी मैं होता हूं, उस व्यक्तित्व का, उस इंडिविजुअलिटी का। अंग्रेजी का यह शब्दः इंडिविजुअलिटी, वह बहुत अच्छा है, इसका मतलब हैः इंडिविजिबलटी--वह जो बांटा नहीं जा सकता, इंडिविजुअल है, जिसे हम खंड-खंड नहीं तोड़ सकते हैं। तो हमारे भीतर वैसी कोई इंडिविजुअलिटी नहीं है। तो जो भी हम प्रकट करेंगे वह हमारी बीमारी होगी। अगर किसी आदमी ने सेक्स को सप्रेस किया तो उसकी कविता में सेक्स फैलना शुरू हो जाएगा। इसलिए आमतौर से जिन कवियों को स्त्रियां कभी नहीं मिलीं वे जिंदगी भर स्त्रियों के गीत गाते रहेंगे। अगर किसी के मन में घृणा और हिंसा है...
निजिंस्की एक चित्रकार और नृत्यकार हुआ। मरने के पहले उसने एक वर्ष
तक उसके कमरे में घुसना मुश्किल हो गया था। सिर्फ दो ही रंग का उपयोग करता था, काला और लाल, और सारे चित्र खून के धब्बे ही मालूम होते थे और एक अंधेरे की खबर होती थी। और ये सारे चित्रों को देख कर कोई भी कह सकता था कि यह आदमी आत्महत्या कर सकता है। और उसने आत्महत्या की। साल भर में यही दो रंग रंग रहा था। बस उसमें खून ही खून फैला हुआ था, सारे कमरे में। सारे मकान में दीवालें पोत डाली गई थीं उसने, काले और लाल से। सब ट्यूब फेंक दिए थे, बस दो ही रंग बचा लिए थे काले और लाल। और उसके भीतर जो हो रहा था, वह उसे बाहर फेंक रहा था।
यह अभिव्यक्ति आत्म-अभिव्यक्ति नहीं है। उसे ठीक से हम समझें तो पैथालॉजिकल एक्सप्रेशन है। हमारा रुग्ण चित्त है, वह प्रकट होना चाहता है। निश्चित ही प्रकट होने से रिलीफ मिलती है। आपके भीतर जो भी दबा है अगर किसी भी तरह से निकल जाए तो आपको थोड़ी सी राहत तो मिलती है। लेकिन बड़े खतरे हैं। आपको तो राहत मिलती है, लेकिन आपने किसी और पर निकाला है उसकी चिंता शुरू हो जाती है।
अगर पिकासो के चित्र को थोड़ी देर तक कोई आंख गड़ा कर देखता रहे तो उसका
भी सिर घूमने लगेगा। क्योंकि वह सिर घूमे हुए आदमी से निकला हुआ है। उसको तो शायद राहत मिली होगी। लेकिन जो उसे देखेगा उसका सिर घूमेगा। और अपनी साठवीं वर्षगांठ पर पिकासो ने बहुत मजेदार बात कही है। साठवीं वर्षगांठ पर जब उसका बहुत बड़ा जलसा मनाया जा रहा था, तो उसने कहा कि अब मैं सच्ची बात कह दूं--कि मैं आज तक सिर्फ लोगों को बेवकूफ बना रहा था जो मैंने बनाया है उससे, आइ वा.ज जस्ट बिफूलिंग। तो उसके धक्के से इतना सदमा पहुंचा है कि जिसका कोई हिसाब नहीं कि अब क्या कहें। वे तो कह रहे थे कि बहुत बड़ी कला है, महान कला, बड़ी क्रांतिकारी कला का जन्म हो गया है।
लेकिन मैं मानता हूं कि पिकासो ने अपनी जिंदगी में यह बड़ी ईमानदारी
की बात कही है। काश, और लोग भी उसको समझ सकें। हो सकता है कि दूसरे को बेवकूफ न बना रहे हों, खुद को भी बेवकूफ बना रहे हों। वह और भी आसान है, क्योंकि दूसरा तो इनकार भी करता है बेवकूफ बनने से, लेकिन खुद को तो कोई कठिनाई ही नहीं है। अगर मैं अपने को ही बनाने निकल पडूं तब तो कोई कठिनाई ही नहीं है।
तो मेरी मान्यता है कि आत्म-अभिव्यक्ति साधन नहीं है आत्म-साक्षात्कार का, आत्म-साक्षात्कार का परिणाम है। जैसे आदमी के पीछे छाया चलती है, ऐसे जब आत्मा उपलब्ध होती है तो उसके परिणाम भी होने शुरू होते हैं। क्योंकि जो हमारे पास है वह हमसे प्रकट होना शुरू होता है। जो हमारे

पास नहीं है उसे हम कभी प्रकट कर ही नहीं सकते हैं। इसलिए मेरा सारा देखना ऐसा है कि कला जो है वह धर्म की अभिव्यक्ति है। इसलिए जब भी कोई युग बहुत गहरे धर्म में उतरता है, तो कला बड़े ऊंचे शिखर छूती है। चाहे अजंता हो, चाहे एलोरा हो, चाहे खजुराहो हो, चाहे कोणार्क हो--यह किसी बहुत ही गहरी धर्म की अनुभूति के बाद पैदा हुई कृतियां हैं। इसलिए बुद्ध की मूर्ति को देख कर, अगर सिर्फ देखते ही रहें, तो भी मन पर एक तरह की साइलेंस उतरनी शुरू हो जाती है। क्योंकि जिन चित्रकारों ने उसे बनाया है, जिन मूर्तिकारों ने उसे गढ़ा है वह कोई रुग्ण चित्त से बात नहीं निर्मित हुई है। उपनिषद कोई सिर्फ गुनगुनाता रहे, तो भी चित्त हलका होता है। गीता को कोई ऐसे ही पढ़ता रहे, तो भी चित्त पर एक तरह की निर्दोष अवस्था का जन्म होना शुरू हो जाता है। आज की कविता को कोई गुनगुनाएगा, तो चित्त भारी हो जाएगा। अगर दरवेश नृत्यों को कोई सिर्फ देखे, फकीरों को नाचते हुए, तो मन शांत होगा। लेकिन आज के नृत्य को कोई देखेगा, तो शांत मन के भी अशांत हो जाने की संभावना है। हम जो प्रकट कर रहे हैं, हो सकता है उससे मुझे तो थोड़ा हलकापन लगता हो
कि मेरे मन को जो बोझ था वह निकल गया है, लेकिन मैं किसी के मन पर बोझ फेंक रहा हूं। तो मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं, आत्म-उपलब्धि पहला आधार होना चाहिए, फिर ही उससे आत्म-अभिव्यक्ति को मार्ग मिलता है। मिले तो ठीक न मिले तो ठीक। अनिवार्यता वह नहीं है, क्योंकि सभी लोग कलाकार होने को पैदा नहीं हुए हैं। और क्या रास्ता बनेगा उसके बाद, कहना मुश्किल है।
जिस दिन आप अपने को पा लेंगे, तो आपकी जो पोटेंशियलिटी है, वही आप करने में लग जाएंगे। अगर एक वैज्ञानिक बनना है, तो वह आपकी अभिव्यक्ति होगी। अगर एक किसान बनना है, तो वह आपकी अभिव्यक्ति होगी। लेकिन तब किसानी सिर्फ रोटी-रोजी कमाना नहीं रह जाएगी, वह आजीविका नहीं होगी, वह लिविंग ही नहीं होगी, वह जीवन ही बन जाएगी। जैसे कबीर बुन रहा है, कपड़े ही बुन रहा है और उपलब्धि के बाद भी कपड़े बुनता चला जा रहा है, लेकिन कपड़े बुनने में एक गुणात्मक अंतर पड़ गया है। अब वह कपड़े बुन रहा है, वह आजीविका नहीं है, अब वह उसका आनंद है। और जब वह कपड़े बुन कर सांझ को गांव बेचने जा रहा है तो नाचते जा रहा है। और कोई रास्ते में पूछता है कि इतने खुश क्यों हो रहे हो? तो वह कह रहा है कि राम बाजार में खरीदने आए होंगे, यह कपड़ा जल्दी लेकर पहुंच जाऊं और इतना अच्छा बुना... और जिस ग्राहक को भी कबीर कपड़ा बेचें उस ग्राहक से वे कहते थे कि राम, बहुत अच्छा बुना है, बड़ी मेहनत की है, पूरे प्राण डाल दिए हैं। और कहते उसके राम ही हैं। अब यह कोई आजीविका न रही। अब यह कोई दो पैसे, चार पैसे लेने-देने का सवाल न रहा। अब यह जिंदगी का आनंद हो गया।
पर जिंदगी तो है, तब जिंदगी का आनंद भी हो सकता है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि युग कौन सा है--वह जेट का युग है कि कृषि का युग है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। सब युग उद्योग के युग हैं। उद्योग किस दिशा में काम कर रहा था यह बात दूसरी है। कभी कृषि हमारा उद्योग थी, अब उद्योग हमारा कृषि बन सकती है। इसमें कोई बहुत अड़चन नहीं है। लेकिन आदमी निरंतर अपनी इंद्रियों को फैलाने का उपाय कर रहा है, वही उसका उद्योग है। आदमी के पास नाखून बहुत छोटे हैं तो उसने तलवार बनाई है। शेर को बनाने की जरूरत नहीं पड़ी, नाखून से काम ले सकते हैं। आदमी के पास आंखें उतनी दूर तक नहीं देखती हैं जितनी दूर तक जंगली जानवर की आंखें देखती हैं, तो उसको दूरबीन लगानी पड़ी। आदमी उतनी तेजी से नहीं दौड़ सकता जितना घोड़ा दौड़ सकता है तो उसको हार्स-पॉवर को ईजाद करना पड़ा। आदमी अपनी ही इंद्रियों का विस्तार कर रहा है, निरंतर। अगर आज वह चांद पर भी पहुंच गया है, तो भी वह उसके चलने का ही विस्तार है। वह नया उपकरण खोज रहा है। हम अपनी इंद्रियों को बड़ा करते चले जा रहे हैं। अगर आज हमने रेडियो ईजाद कर लिए हैं तो वह हमारे कान का विस्तार है। आज हम ज्यादा दूर तक सुनने में समर्थ हैं, ज्यादा देर तक बोलने में समर्थ हैं।
समस्त उद्योग आदमी की इंद्रियों का विस्तार है। और आदमी ने उसी दिन
से शुरू कर दिया है जिस दिन से वह पैदा हुआ है। उद्योग पीछे आया, ऐसा नहीं, आदमी के साथ ही जन्म गया है। आदमी औद्योगिक है। इसलिए मैं उन लोगों के

पक्ष में नहीं हूं जो आदमी को गैर-औद्योगिक करना चाहते हैं, या पीछे लौटाना चाहते हैं, या चरखा-तकली पर ले जाना चाहते हैं। क्योंकि मैं मानता हूं कि वह उस जगह से गुजर चुका है, वह जगह लौटने लायक नहीं है। आदमी ज्यादा मैच्योर हो गया है। अब वह और बड़े यंत्र खोजेगा, और बड़ा विस्तार करेगा। पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है। और समस्त पीछे लौटाने की धारणाएं खतरनाक हैं। क्योंकि जिस मात्रा में हम उद्योग को पीछे ले जाएंगे उसी मात्रा में मनुष्य के मस्तिष्क को भी पीछे ले जाते हैं।
इसलिए मेरे लिए वह, उससे कोई संबंध नहीं है कि आप किस युग में रह रहे हैं। हर युग में आत्म-उपलब्धि करनी पड़ेगी अन्यथा आदमी एक वैक्यूम में और खालीपन में जीएगा। और एक रिक्तता और अर्थहीनता मालूम पड़ेगी, वह अर्थहीनता और वह खालीपन मिटेगा उसी दिन जिस दिन मैं जान सकूं--मैं कौन हूं और ठीक से मैं पहचान सकूं अस्तित्व को, उसके अर्थ को, उसके प्रयोजन को, मेरे पूरे होने को। इस होने के बाद अभिव्यक्ति होनी शुरू होगी; पर वह परिणाम है। उसका विचार करने जैसा नहीं है।

प्रश्नः जिन मान्यताओं या धारणाओं के ऊपर... की और परिवेश की या देश या काल का असर है, उनसे मुतासिर होकर आप यह निर्णय नहीं ले रहे हैं ऐसा नहीं लगता आपको? देश, काल या समय से जो गुजर चुके हैं, बीत चुके हैं--उसके बाद भी आने वाले आगे के युग के लिए ऐसा तो... आपके ऊपर उसका कोई असर है या...

किसका?

प्रश्नः जो जा चुका युग है--आलोचना का, जानकारी का, मान्यताओं का, आत्माओं का। या उनके बारे में एप्रिशेसन करने का, उस बीते हुए युग की कल्पनाओं को अगर आधार बना कर हम अगर आज...

नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। न तो मुझ पर पीछे का कोई बंधन है...

प्रश्नः यह तो स्थूल आलोचना हो गई आखिर।

नहीं, स्थूल आलोचना नहीं है जो मैं कह रहा हूं। उससे ज्यादा सूक्ष्म आलोचना नहीं हो सकती है, क्योंकि मैं कह ही यह रहा हूं कि आत्म-उपलब्धि के पहले जो भी अभिव्यक्ति है वह हमारे मनस की ही होगी। और हमारा मनस अगर रुग्ण है तो हमारी अभिव्यक्ति भी रुग्ण होने वाली है। हम वही प्रकट कर सकते हैं, जो हम हैं। और मैं कह सकता हूं कि पिकासो रुग्ण है। इस रुग्णता में--पिकासो के लिए नहीं कह रहा हूं--इस रुग्णता को आज का समस्त कलाकार रुग्ण है। शायद वह हमें अपील भी इसलिए करता है कि हम भी रुग्ण हैं। और हमारे रोग को उससे राहत मिलती है। आज की पूरी की पूरी कला, किसी गहरे अर्थों में पैथालॉजिकल है, साइकोटिक है, मनुष्य कहीं रोग से भरा हुआ है। यह जान कर हैरानी होगी कि पिछले इधर तीस-चालीस वर्षों का बड़ा चित्रकार, बड़ा कवि, बड़ा दार्शनिक पागल न हुआ हो ऐसा कहना कठिन है। जितना भी इस पिछले तीस-चालीस वर्ष का जिसको हम बड़ा आदमी कहें, महत्वपूर्ण आदमी कहें, वह एकाध बार पागलखाने भी हो आया हो और साइकोएनालिसिस से न गुजरा हो, यह भी बहुत मुश्किल है। वह चित्त के लिए परेशान भी है। उसको नींद आ रही है यह भी आसान नहीं मालूम पड़ता। उसके लिए भी उसे टैंक्वेलाइजर्स की जरूरत है। उसकी जिंदगी सब तरफ से अस्त-व्यस्त और बीमार और परेशान है और उसके ऊपर चिंता का भारी बोझ है। इस बोझ को वह फिलासफाइज भी कर रहा है। जैसे सार्त्र है या कोई और है। वह उस सारे की सारी चिंता को जस्टिफाई करने की कोशिश में भी लगा हुआ है कि यह चिंता बीमारी नहीं है, यह तो मनुष्य का अस्तित्व है, यह चिंता कोई बीमारी नहीं है, यह मनुष्य का अस्तित्व है। यह जो डिस्पेयर है, यह जो विषाद है, यह जो रुग्णता है यह कोई बीमारी नहीं है, यह कोई हमारी परेशानी नहीं है, ऐसा मनुष्य का तथ्य ही यही है। यह जस्टिफिकेशंस भी खोज रहा है। और जब कोई युग अपनी बीमारी के लिए भी संगतियां खोजने लगे, तब समझना

चाहिए कि बीमारी सीमा के बाहर चली गई; क्योंकि बीमारी को बीमारी ही न लिया जाए तो उसके इलाज का उपाय है। और अगर बीमारी हमारा दर्शन बन जाए तब तो फिर कोई उपाय ही नहीं है।
तो मैं जो कह रहा हूं, किसी पुरानी मान्यता के आधार पर नहीं कह रहा हूं, जैसा मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं कह रहा हूं। मुझे किसी मान्यता से कुछ लेना-देना नहीं है। मैं ऐसा देखता हूं कि यह हमारा युग और खास कर इसमें वे लोग जो अवांगर्ड हैं, जो इस युग को अभिव्यक्ति दे रहे हैं, वे किसी गहरे तल पर रुग्ण हैं, उनकी रुग्णता उनके प्रतीकों से निकलनी शुरू होती है। जैसे मेरी समझ में आता है, मेरी समझ में पड़ता है कि गुलाब का फूल है, वह आदमी को सदा सुंदर मालूम पड़ा, सदा। इस युग को गुलाब के फूल का सौंदर्य गौण हो गया है, उसे तो कैक्टस ज्यादा सुंदर मालूम पड़ता है। कांटे ही कांटे हों किसी पौधे पर तो वह प्रीतिकर ज्यादा हो गया है। कैक्टस सदा गांव के बाहर था, शूद्र था। पहली दफे अभिजात, बुर्जुआ हुआ है। अच्छे घर में होना जरूरी हो गया है। और घर में ही, बैठकखाने में होना चाहिए, बाहर भी नहीं।
अब यह जो कैक्टस घर के भीतर आया है, यह सवाल बड़ा नहीं है कि कांटा सुंदर हो सकता है या नहीं। सुंदर होना न होना मनुष्य की मान्यताएं हैं। अगर आदमी जमीन पर न हो तो न गुलाब का फूल सुंदर है और न कांटा सुंदर है, न असुंदर है। लेकिन महत्वपूर्ण सवाल यह है कि जिस आदमी को गुलाब का फूल सुंदर मालूम पड़ता है इसका चित्त और जिस आदमी को कांटा सुंदर मालूम पड़ता है इसके चित्त में बुनियादी फर्क होगा। क्योंकि कांटे का सुंदर मालूम पड़ना किसी बहुत गहरी पीड़ा और दर्द से ही संभव हो सकता है। और फिर भी यह जो आदमी, जिसको कांटा सुंदर मालूम पड़ रहा है, यह भी जब अपनी प्रेयसी को प्रेम करता है तो कांटे की माला नहीं पहनाता है, वह तो गुलाब का फूल ही पहनाने जाता है। और अभी भी जब यह कविता करता है तो उसकी प्रेयसी के बिस्तर पर कांटे नहीं बिछाता है, उसमें अभी भी गुलाब के फूल बिछाता है। लेकिन कांटे के प्रति उसका जो राग जन्मा है, वह पीड़ा और दुख के प्रति राग का सूचक है। और कांटा इसे ऐसा सुंदर लग रहा है कि जैसे बैठकखाने में रखने जैसा हो गया है। यह इस आदमी के बाबत ज्यादा खबर दे रहा है। कैक्टस से कुछ लेना-देना नहीं है।
अब जैसे कि पिकासो के चित्र हैं, या किसी और के चित्र हैं--ये सारे के सारे चित्र बहुत विचारणीय हैं। विचारणीय इस अर्थों में हैं कि इन चित्रों को जैसे जान कर सब तरफ से कुरूप करने की चेष्टा की जा रही है। जैसे पुराना चित्रकार चित्रों को जान कर सुंदर बनाने की चेष्टा में रत था--अनुपात, रिदिम, रंग वह सब तरफ से उन्हें सुंदर बनाने की कोशिश कर रहा था। मैं नहीं कहता वे सुंदर थे। यह हमारी मान्यताओं की बात है, लेकिन पुराना चित्रकार सुंदर बनाने की चेष्टा में संलग्न था। नया चित्रकार जैसे सौंदर्य को खंडित करने की चेष्टा में संलग्न है। जैसे जब तक उसे तोड़ कर, बिगाड़ कर और मिटा कर नहीं रख देगा तब तक उसके भीतर कोई चीज तृप्त नहीं हो रही।
तो मुझे लगता है कि वह नया चित्रकार जो बना रहा है उसमें कहीं बहुत गहरे में डिस्ट्रक्शन है। अब जैसे कि पिकासो का कोई चित्र है, तो उसमें हाथ अलग है, सिर अलग है, आंखें अलग हैं, पैर अलग हैं और सब टूटा-फूटा है। इसमें अगर पिकासो को सौंदर्य मालूम पड़ता है, या इसे रचना करनी है ऐसा लगता है तो इससे पिकासो के चित्त की खबर मिलती है। इस कमरे को मैंने कैसा रखा है, अगर मैं इस कमरे में रहने वाला हूं तो मेरे बाबत यह कमरा खबर देता है। मैंने इसमें कैसे रंग लगाए हैं, वे भी मेरे बाबत खबर देते हैं। अगर मैंने यहां आदमी की लाशें लटका रखी हैं तो भी मेरे बाबत खबर मिलती है। अगर मेरे यहां बंदूक लटका रखी है, तो भी मेरे बाबत खबर मिलती है। यहां मैंने एक फूल लगा रखा है, तो भी मेरे बाबत खबर मिलती है। फूल या बंदूक के बाबत इससे कोई खबर नहीं मिलती है। मेरे संबंध में खबर मिलती है।
फिर अगर हम पिकासो जैसे व्यक्ति की अंतस-जिंदगी में उतरें तो हमें समझ में आना शुरू हो जाएगा कि कठिनाइयां कैसी भारी हैं। अब मजा यह है कि पिकासो रात को इतना भयभीत और डरा हुआ आदमी कि अकेला नहीं सो सकता कमरे में। बिना पिस्तौल रखे नहीं सो सकता। अब यह जो आदमी है, यह रात में दस दफे

उठ कर पिस्तौल अपनी देख लेगा कि वह अपनी जगह है या नहीं। तो थोड़ा सोचना पड़ेगा कि इस आदमी को हो क्या गया है? सिर्फ इसके चित्र ही देखने लायक नहीं हैं, इस आदमी पर भी विचार करना पड़ेगा कि मामला कुछ कहीं रुग्ण है। कहीं कोई चीज इस आदमी के भीतर नाइट मेयर की तरह, दुःस्वप्नों की तरह घूम रही है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि नाइट मेयर एअरकंडीशन है, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कितनी सुविधा के बीच में नाइट मेयर देख रहा है। लेकिन जो चित्र पिकासो जन्म दे रहा है, यह पिकासो ही जन्म दे रहा है। ये चित्र इसके मन में कहीं न कहीं होने चाहिए। ये इसके मन से ही आएंगे। ये टूटे-फूटे लोग और ये मुर्दे जैसी हालतें, ये सूखे हुए आदमी--ये सब इसके भीतर से आएंगे। ये इसके भीतर कहीं होने चाहिए; ये सिंबालिक हैं। इसके चित्त में कहीं इस तरह की घटनाएं घट गई हैं, जो इसको बाहर निकालने की यह कोशिश कर रहा है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि संगीत से निकालेगा कि चित्र बनाएगा, या हो सकता है आदमी के साथ व्यवहार करे।
यह बड़े मजे की बात है, जानने जैसी कि हिटलर अपने बचपन में आर्टिस्ट होना चाहता था, चित्रकार होना चाहता था। मां-बाप नहीं होने दिए। मैं मानता हूं कि अगर हिटलर चित्रकार होता तो उसने जरूर आदमियों को मारने के, गर्दनें काटने के, बम गिराने के चित्र बनाए होते और वह अच्छा होता कि चित्रकार हो जाता। मैं मानता हूं कि वह अच्छा होता कि चित्रकार हो जाता, क्योंकि एक करोड़ आदमी को नहीं मारता। यह आदमी अगर चित्रकार हो जाता तो इसके चित्र में हिटलर निकलता। लेकिन तब शायद हम इसको बहुत आदर दे पाते। क्योंकि तब हमें यह सीधी बात पकड़ में न आती। लेकिन यह आदमी चित्रकार नहीं हो पाया और यह आदमी एक ताकत का आदमी हो गया और डिक्टेटर हो गया। और तब जो चित्रों में इसने बनाया होता वह इस आदमी ने जिंदगी में बना दिया, क्योंकि इसके हाथ में ताकत थी। मैं मानता हूं, पिकासो जैसे आदमी को अगर हिटलर जैसी ताकत हो तो पिकासो यही करेगा जो हिटलर कर रहा है। करेगा इसलिए कि रंग के साथ भी वही कर रहा है, चित्र के साथ भी वही कर रहा है। चीजों को तोड़ने-फोड़ने का एक रस है, वह बहुत गहरी वायलेंस से निकल रहा है, हिंसा से निकल रहा है। तो जब मैं यह कह रहा हूं कि मेरे मानदंड न तो साहित्य के हैं न कला के हैं। मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मेरे तो सारे मानदंड मनुष्य के मनस के हैं। आप जो भी कर रहे हैं, अब एक आदमी बहुत चुस्त कपड़े पहन कर सड़क पर चला जा रहा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई चुस्त पहने कि ढीले पहने हैं, लेकिन उस आदमी के बाबत खबर मिलती है। इससे कपड़ों के बाबत कोई पता नहीं चलता है। अगर बहुत चुस्त तरह के कपड़े आदमी पहने हुए तो उसके चित्त में किसी न किसी तरह की गहरी कामुकता होगी। अगर बहुत चुस्त तरह के आदमी कोई कपड़े पहने हुए हैं, तो वह लड़ने को तत्काल तैयार रहेगा। अगर उसने ढीले कपड़े पहन रखे हैं तो लड़ने की संभावना उसकी थोड़ी कम हो जाएगी। ढीले कपड़े के साथ लड़ना जरा मुश्किल मामला है। और ढीले कपड़े उसने चुने हैं तो उसने ही चुने हैं। अगर आप ढीले कपड़े पहन कर सीढ़ियां चढ़ रहे हैं तो एक-एक सीढ़ी चढ़ेंगे और चुस्त कपड़े पहन कर चढ़ रहे हैं दो सीढ़ी इकट्ठी चढ़ जाएंगे। आपके पूरे व्यक्तित्व की बड़ी छोटी सी चीजों से अंतर पड़ने शुरू होंगे।
तो पिकासो जैसा व्यक्ति जो जिंदगी भर एक सिलसिले में चित्र बना रहा है, यह सारा का सारा सिलसिला हिंसा से भरा हुआ है। हमने कभी सोचा नहीं है इस भाषा में कि अहिंसक चित्रकार भी होता है और हिंसक चित्रकार भी होता है, हमने कभी सोचा नहीं, क्योंकि हम सोचते हैं कि चित्र में हिंसा-अहिंसा का क्या सवाल है? हमने कभी यह सोचा नहीं कि स्युसाइडल चित्रकार भी होता है, क्योंकि हम सोचते हैं कि यह हत्या तो अपनी करनी चाहिए, चित्र से क्या मतलब है? हमने कभी यह सोचा नहीं है कि कामुक चित्रकार भी होता है, गैर-कामुक चित्रकार भी होता है। लेकिन इस भाषा में सोचा जाना जरूरी है। तो जब मैं यह कह रहा हूं तो मैं स्थूल बात नहीं कह रहा हूं, क्योंकि मेरे कोई मापदंड... साहित्य से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, वह मेरी दिशा नहीं है। कला से मेरा कोई संबंध नहीं है। मेरा संबंध है तो आदमी से है। आदमी क्या कर रहा है? इस कमरे में बैठ कर वह सितार बजा रहा है या इस कमरे में बैठ कर छुरे पर धार रख रहा है--इससे फर्क पड़ता है, इससे उस आदमी का पता चलता है।

पिकासो जैसे चित्र बना रहा है वे छुरे पर धार रखने जैसे हैं, वे सितार बजाने जैसे चित्र नहीं हैं। और मजा यह है कि अगर इन चित्रों को अलग कर दें और पिकासो के व्यक्तित्व को सीधा देखना शुरू करें तो बहुत हैरानी हो जाएगी। तब तो बहुत चीजें साफ हो जाएंगी कि मामला क्या है। अब जो औरत पिकासो के साथ दस वर्ष रही, उसने पिकासो के साथ के दस वर्षों की पूरी कथा लिखी है। वह समझने जैसी है कि पिकासो आदमी कैसा है। उसके भीतर क्या हो रहा है? उसके व्यक्तित्व में क्या-क्या पड़ा है? वही सब निकल रहा है।
यह अभिव्यक्ति यदि आत्म-साक्षात्कार के पहले होगी, तो स्वभावतः, होने वाला है यह। जुंग ने बहुत से रुग्ण मनुष्य, बहुत से रुग्णचित्त लोगों से चित्र बनवाए। जुंग की एनलिटिकल साइकोलॉजी का हिस्सा था वह, रुग्ण चित्त व्यक्ति के चित्र बनाना। जैसे कि हम उसके सपनों को देख कर समझ पाते हैं उसकी बीमारियां क्या हैं, वैसे हम उसके चित्र बनवा कर भी समझ पाएंगे कि उसकी बीमारियां क्या हैं? तो जुंग ने अपने बहुत से पागल, रुग्णचित्त लोगों से चित्र बनवाए। वे चित्र बड़े हैरानी के हैं। अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर वे चित्र आपके सामने रखे जाएं और उनका नाम न बताया जाए तो शायद आप कहें कि पिकासो का होना चाहिए। यह बड़ी हैरानी की बात है कि वे ऐसे लोगों ने बनाए हैं जो चित्रकार नहीं हैं, पर उनको रंग दे दिए हैं और उनको चीजें दे दी हैं और उनसे कहा है कि तुम कुछ भी बनाओ। तो सीरीज में बना रहे हैं। अशिक्षित हैं, अप्रशिक्षित हैं, कोई कला की उनकी टेनिंग नहीं है। मगर कुछ भी जो उनको बनाना, कुछ तो बनाएंगे, वे जो भी बनाएंगे उनके भीतर से ही आने वाला है।
अब हम देखें कि एक छोटा बच्चा चित्र बनाता है तो आप उस छोटे बच्चे के चित्र में एक हैरानी की बात देखेंगे कि सिर बनाएगा, पैर बनाएगा, हाथ बनाएगा, बीच का हिस्सा छोड़ देगा। बीच का हिस्सा छोड़ देगा। सिर बड़ा बनाएगा, हाथ बना देगा दोनों, दोनों पैर लगा देगा, सीधा, डायरेक्ट, शीर्ष; बीच का हिस्सा छोड़ देगा। क्यों? सभी दुनिया के बच्चे ऐसा बनाएंगे। ऐसा नहीं है कि किसी एक घर के या एक गांव के। बच्चों को जो दिखाई पड़ता है, जो उनका चित्त देख रहा है, वही बना सकते हैं। उनको बीच का हिस्सा नहीं दिखाई पड़ता है। असल में बच्चों को वही चीजें दिखाई पड़ती हैं जिनमें मूवमेंट है। हाथ दिखाई पड़ते हैं, पैर दिखाई पड़ते हैं, सिर दिखाई पड़ता है। बीच का हिस्सा अनमूविंग है, इसलिए बच्चे को दिखाई नहीं पड़ता है। इसलिए जो अनमूविंग है उसको वह छोड़ देता है, वह है ही नहीं। सिर बहुत बड़ा बनाएगा बच्चा, क्योंकि सिर उसे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। सिर उसे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। खुद का सिर भी उसे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। इसलिए हर चीज की जांच भी करनी है तो मुंह में डाल कर करेगा। और कोई उपाय भी उसको नहीं दिखाई पड़ता है।
अगर एक बड़ा आदमी साठ साल का इस तरह का चित्र बनाए तो हमें सोचना पड़ेगा
कि यह आदमी कहीं रिग्रेस तो नहीं कर गया। अगर एक साठ साल का आदमी इस तरह का चित्र बनाए कि सिर बड़ा बना दे, हाथ-पैर लगा दे सीधे, तो हमें सोचना पड़ेगा कि इस आदमी की या तो ग्रोथ नहीं हुई है, या तो यह उस जगह रह गया है जहां चार-पांच साल का बच्चा होता है मेंटली, या यह रिग्रेस कर गया है। अन्यथा और क्या कारण हो सकता है? लेकिन नहीं, यह आदमी साठ साल का है, छह साल का, पांच साल का बच्चा जस्टिफाई नहीं कर सकता है। यह कह सकता है कि नहीं, यह आर्ट का नया फार्म है। यह जो है यह आर्ट का नया फार्म है। यह साठ साल का आदमी है, इसके पास साठ साल के शब्द, भाषा, प्रतीक हैं। यह कह सकता है कि नहीं, यह आर्ट का नया फार्म है। बल्कि यह कह सकता है कि बच्चा ही असली आर्टिस्ट है। अभी कुछ लोगों ने कहना शुरू किया है कि बच्चा ही असली आर्टिस्ट है। बाद में हम आर्ट भूल जाते हैं और कुछ लोगों को याद रह जाता है और कुछ लोग भूल जाते हैं। जिनको याद रह जाता है वे चित्रकार हो जाते हैं। अगर आप आज से दस हजार साल या बीस हजार पुरानी गुफाओं पर खुदे हुए चित्र देखें, तो बड़ी हैरानी होती है। उन चित्रों में, वे बच्चों ने नहीं बनाए, क्योंकि पत्थर पर खोदे गए हैं। पांच-छह साल का बच्चा पत्थर पर नहीं खोद सकता। खोदे तो बड़े लोगों ने।

इ.ज इट पासिबल दैट एक्पेंशन ऑफ साइंसिस इन दि सोसाइटी आटोमैटिकली रिजल्ट इन द एडवांसमेंट ऑफ ह्यूमन वैल्यूज एंड ऐक्पैंशन ऑफ इकोनॉमी... ?

थोड़ी देर तक तो सच है। विज्ञान का विकास हो तो मनुष्य के जीवन-मूल्य विकसित होते हैं। लेकिन थोड़ी दूर तक ही कह रहा हूं, क्योंकि जिंदगी सदा ही बड़ी परस्पर निर्भर है। अगर मनुष्य के जीवन-मूल्य विकसित हों तो भी विज्ञान का विकास होता है। विज्ञान विकसित हो तो भी जीवन-मूल्य विकसित होता है। असल में मनुष्य का जीवन खंडों में बंटी हुई चीज नहीं है, बल्कि अखंड चीज है। वहां कुछ भी हो तो दूसरी चीजों पर उसके परिणाम होते हैं। अब जैसे, हिंदुस्तान में कभी भी हमारे मन में संपत्ति का कोई मूल्य नहीं रहा। एक-एक व्यक्ति के मन में रहा लेकिन हमने संपत्ति को कभी जीवन-मूल्य नहीं बनाया, उसको हमने वैल्यू नहीं बनाया, बल्कि अनादर, निंदा, त्याग वे हमारे मूल्य रहे। क्योंकि संपत्ति कभी हमारे लिए ऐसी चीज नहीं बनी जो कि जीवन की एक जरूरी चीज हो। इसलिए संपत्ति को पैदा करने के जो-जो वैज्ञानिक विकास होने चाहिए वे हमने नहीं किए, क्योंकि करने का कोई सवाल नहीं उठा। दरिद्रता को हमने वैल्यू बनाया है। और जो आदमी जितनी दरिद्रता में उतर जाए स्वेच्छा से, वह उतना बड़ा महात्मा हो गया। तो जब दरिद्रता को हमने मूल्य बनाया तो दरिद्रता को लाने के लिए कोई वैज्ञानिक विकास की जरूरत नहीं है। संपत्ति को लाना हो तो वैज्ञानिक विकास करना पड़ता है। तो यह बड़े मजे की बात है कि हिंदुस्तान दुनिया में पृथ्वी पर सबसे पहली सय हो गई समाजों में से है, लेकिन आज सबसे ज्यादा असय समाज है।
सबसे पहले सयता के शिखर जिन्होंने छुए, वह अचानक एकदम दीन-हीन और दुनिया के पिछड़े हिस्से में गिने जाने लगे और दया योग्य हो गए। यह जरा सोचने जैसा है। विज्ञान की सब प्राथमिक कड़ियां हमने पूरी कीं। और आज से दो हजार साल पहले जब कि हम गणित के संबंध में कुछ दावा कर सकते थे, ज्योतिष के संबंध में कुछ दावा कर सकते थे, चांद-तारों के ज्ञान के संबंध में थोड़ा दावा कर सकते थे, तब यूरोप करीब-करीब असय अवस्था में था। क्या हुआ? कि सबसे पहले विज्ञान की कुछ क्षमताएं हमारे पास आईं, जैसे आज भी गणित के जो अंक हैं वे हमारे हैं, सारी दुनिया में। एक से नौ तक लेकर जो गणित के डिजिट हैं, वे भारतीय हैं, संख्या के लिखने के ढंग में भी वे भारतीय हैं, बोलने के ढंग में भी वे भारतीय हैं। दो और टू, एक ही चीज के रूपांतरण हैं। थ्री और त्रि, एक ही चीज के रूपांतरण हैं। नाइन और नौ एक ही चीज के रूपांतरण हैं। लिखने के ढंग में भी वे भारतीय हैं, बोलने के ढंग में भी वे भारतीय हैं। सबसे पहले गणित का हमने हिस्सा खोजा था, लेकिन फिर गणित की ऊंचाइयां हम न खोज पाए, क्योंकि जो मूल्य चाहिए थे विकास के लिए गणित के, वे हमारे पास नहीं थे।
जीवन-मूल्य हमारे पास न थे। विकास के जीवन-मूल्य में बुनियादी बातें हैं, वह डिस्कंटेंट होना चाहिए। डिस्कंटेंट हमारे लिए कभी मूल्य न था, कंटेंट मूल्य था। संतुष्ट आदमी हमारा आदर्श आदमी था। संतुष्ट आदमी विकासमान नहीं होता, डायनेमिक नहीं होता। संतुष्ट का मतलब यही कि वह जहां है वहां होने को राजी है। उसके पास जो है वह उससे पूरी तरह तृप्त है। अगर उससे हम थोड़ा और छीन लें तो वह उससे भी तृप्त होगा। अतृप्ति, डिस्कंटेंट जो है मूल्य हो, वहां फिर विज्ञान का विकास शुरू हो जाएगा। तो जीवन-मूल्य हमारे पास नहीं थे ऐसे जिनसे विज्ञान विकसित होता। पश्चिम में जहां विज्ञान विकसित हुआ है, वहां जीवन-मूल्य में फर्क होना शुरू हो गया है। अब यह बड़े मजे की बात है। जैसे मेरी अपनी समझ यह है कि न तो बुद्ध, न महावीर, दोनों भी हिंदुस्तान से शूद्र को नहीं मिटा सके। लेकिन रेलगाड़ी ने शूद्र को मिटा दिया। गांधीजी का कुछ मामला नहीं है उसमें। जो शूद्र के हटने की घटना घटी वह रेलगाड़ी से घटनी शुरू हुई। अगर बैलगाड़ी जारी रहे तो हिंदुस्तान से शूद्र को आप कभी नहीं मिटा सकते, चाहे आप कांस्टिट्यूशन में लिख लें, चाहे कुछ भी कर लें। और जहां बैलगाड़ी है वहां आप अभी भी नहीं मिटा पा रहे हैं। आप गांव में नहीं मिटा सकते। क्योंकि जो टेक्नालॉजी है वह इस पुराने जीवन-मूल्य के साथ मौजूद है, उसमें कोई कठिनाई नहीं आती।

मेरी बैलगाड़ी में, मैं कह सकता हूं कि आप नहीं बैठ सकते हैं। ब्राह्मण की बैलगाड़ी में शूद्र को वह न बैठने दे, इसमें किसी का कोई हक नहीं है, कोई कांस्टिट्यूशन जबरदस्ती नहीं कर सकता कि आपकी बैलगाड़ी में बैठने दिया जाए। लेकिन रेलगाड़ी के साथ मुसीबत शुरू हो गई। रेलगाड़ी में ब्राह्मण किसी को न बैठने दे, यह संभव नहीं है। ब्राह्मण की बगल में भंगी बैठेगा और भंगी मजे से खाना खाएगा और जब ब्राह्मण खाना खाएगा तो उससे यह नहीं कह सकता कि हट जाओ। क्योंकि किसी के बाप की नहीं है रेलगाड़ी।
अगर बैलगाड़ी है तो शूद्र चलेगा। कांस्टिट्यूशन में बदल लो, कुछ कर लो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि बुद्ध-महावीर जैसे शक्तिशाली लोग समझा- समझा कर मर गए। और यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध और महावीर का बुनियादी झगड़ा शूद्र भी एक था, वर्ण-व्यवस्था भी एक थी। लेकिन बुद्ध और महावीर को मानने वाले भी धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था को अंगीकार कर लिया। आज हिंदुओं के मंदिर में तो शूद्र प्रवेश भी कर जाए, जैन के मंदिर में कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह कहता है हम हिंदू नहीं हैं। यह मजे की बात है न। महावीर का सारा झगड़ा यह था कि कोई शूद्र नहीं है, वर्ण-व्यवस्था तोड़ देनी है। लेकिन आज जैन सुप्रीम कोर्ट तक लड़ता है और वह यह कहता है कि हिंदू के मंदिर में आप ले जाएं, वह शूद्र है, वही उसका दावा है और हम तो जैन हैं, इसलिए हमसे तो कोई संबंध नहीं है उसका। और उसे पता नहीं है कि तुम जैन हुए सिर्फ इसलिए थे कि झगड़ा यह था कि हम वर्ण-व्यवस्था को नहीं मानते। मगर यह नहीं हो सका। टेक्नालॉजी ने यह संभव किया। अब जैसे पश्चिम में नये मूल्य पैदा होने शुरू हुए हैं, वे टेक्नालॉजी की वजह से हुए हैं। उदाहरण के लिए--
जिस दिन से पश्चिम में यंत्र आटोमेटिक होने लगा उसी दिन से श्रम का मूल्य गिर गया, जीवन-मूल्य नहीं रहा श्रम। जैसा हमारा साधु है, हमारे विनोबा अभी भी कहते हैं कि श्रम जीवन है और श्रम अध्यात्म है और श्रम यह है और श्रम भगवान की देन है--ऐसा आज अमरीका का कोई विचारक नहीं कह सकता है, क्योंकि गधा-पचीसी हो जाएगी। अमेरिका का विचारक तो अब यह कह रहा है कि हर बच्चे को स्कूल में यह समझाओ, क्योंकि यह जब बच्चा बड़ा होगा तब श्रम बिल्कुल गैर-जरूरी हो चुका होगा। अगर तुमने इसे श्रम की शिक्षा इसे दी तो यह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा बीस साल बाद, क्योंकि श्रम तो मिलेगा नहीं, क्योंकि मशीन सारा काम करने लगेगी। इसलिए बच्चों को स्कूल में इनको लिजर सिखाओ, उनको विश्राम सिखाओ, उनको विलास सिखाओ कि वे श्रम मांगना बंद कर दें, नहीं तो वे बीस साल में वे दिक्कत कर देंगे। अब यह बड़े मजे की बात है कि बीस साल में अमरीका में चूंकि सारी की सारी यांत्रिक व्यवस्था स्वचालित हो जाएगी, तो करोड़ों लोग बेकार हो जाएंगे। अब यह जो बेकार आदमी है यह बेकार आदमी अगर श्रम की मांग करे कि हमें श्रम चाहिए, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जाएगी। अगर इनको श्रम देते हैं तो नई टेक्नालॉजी का उपयोग नहीं हो सकता है और नई टेक्नालॉजी का उपयोग न हो तो आगे गति नहीं है। तो इनको बिना श्रम की नौकरी देनी पड़ेगी। इनको नौकरी तो देनी पड़ेगी, क्योंकि अगर आप मशीन से चीजें भी पैदा कर लें तो इनको खरीददार कहां मिलेगा। खरीददार तो चाहिए बाजार में, और खरीददार तब होगा जब उसके पास पैसा होगा। अगर आपने सारे लोगों को काम के बाहर कर दिया तो आप मशीनों से पैदा करिए चीजों को, और खरीदेगा कौन, और खरीदेगा कैसे? इसलिए बेकार को हमें पैसा देने का ख्याल पैदा करना पड़े।
बल्कि बहुत मजे की बात है, अमरीकन इकोनॉमिस्ट के सामने जो बड़े से बड़ा सवाल है वह यह कि जो आदमी दोनों मांगेगा उसको हम कम तनख्वाह देंगे क्योंकि वह काम भी मांगता है और तनख्वाह भी मांगता है। जो आदमी सिर्फ तनख्वाह मांगता है वह ज्यादा तनख्वाह पा सकता है, क्योंकि समाज को दोहरी दिक्कत नहीं दे रहा वह। वह कह रहा है, हम सिर्फ तनख्वाह से राजी हैं, हमें काम नहीं चाहिए। तो जब काम करने वाला बीस साल बाद काम मांगेगा, वह अच्छा आदमी न समझा जाएगा, जैसे अभी काम न करने वाला अच्छा आदमी नहीं समझा जाता है। अगर घर में एक आदमी काम नहीं करता है तो हम कहते हैं यह आदमी बुरा आदमी है, एंटी-सोशल है। क्योंकि काम नहीं करोगे तो कौन तुमको खिलाएगा। बीस साल बाद अमेरिका

में जो आदमी काम मांगेगा वह धीरे-धीरे एंटी-सोशल हो जाएगा, समाज का दुश्मन हो जाएगा, क्योंकि यह आदमी काम मांगे ही चला जाता है।
तो सारा मूल्य बदलना पड़ेगा, और अब तक हम सोचते थे कि जो आदमी काम करता है, उसे काम का मूल्य मिलना चाहिए। कम्युनिज्म की आधारशिलाएं हैं कि जितना काम उतना दाम। यह हमें बदलना पड़ेगा। बीस साल बाद अमेरिका में हमको कहना पड़ेगा--जितना कम काम उतना ज्यादा दाम। जो नहीं करेगा बिल्कुल, पाएगा सबसे ज्यादा। स्वभावतः श्रमिक दुनिया में जो अब तक की पावर्टी स्ट्रिकन, स्टार्व्ड दुनिया थी, उसने श्रम को मूल्य बनाया था। एफ्लुएंट सोसाइटी में श्रम मूल्य नहीं हो सका। और इस श्रम के आधार पर हमने जो जीवन-मूल्य जो निर्धारित किए थे--उद्योग, श्रमिक, सुबह जल्दी उठने वाला, ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाला, ज्यादा काम करने वाला, आलस्य से हीन, ये सब हमको बदलने पड़ेंगे, क्योंकि ये सबके सब जो थे ये पुराने टेक्नालॉजी से जुड़े हुए थे। नई टेक्नालॉजी में हम कहेंगे, वह आदमी बहुत बढ़िया है जो बारह बजे तक सोता है, क्योंकि बाहर बजे तक यह सोसाइटी को बॉदर नहीं करता, परेशान नहीं करता। बारह बजे तक वह झंझट खड़ा नहीं करता, बारह बजे उठ कर वह कहता है, काम चाहिए। हम उससे कहेंगे हमें कुछ नई चीजों के मूल्य बढ़ाने पड़ेंगे, नाच के, गाने के, संगीत के, पेंटिंग के, इनके हमें मूल्य बहुत बढ़ाने पड़ेंगे। हम उस आदमी को बुरा आदमी कहेंगे, जो न पेंट कर सकता है, न नाच सकता है, न मछली मार सकता है, कुछ बेकार काम नहीं कर सकता है, न ताश खेल सकता है, न शतरंज खेल सकता है। एकदम एंटी-सोशल आदमी है, क्योंकि यह आदमी मांग करेगा फौरन, आदमी को कुछ तो चाहिए आक्युपेशन, अनआक्युपाई आदमी मर जाएगा, जी नहीं सकता। तो जो लोग शतरंज खेल सकेंगे, ताश खेल सकेंगे, मछली मारने जा सकेंगे, चौबीस घंटे किनारे बैठे रहेंगे नदी के धागा डाल कर, कविता कर सकेंगे, गीत गा सकेंगे, ये बहुत अच्छे आदमी हैं। आने वाली सोसाइटी में, टेक्नालॉजी इतनी तीव्रता से बदलाहट ले आ रही है, कि हमें मूल्य बदल देना पड़ेगा।
अब यह जो मूल्य जब बदलते हैं, जीवन-मूल्य, विज्ञान के विकास से भी बदलते हैं, जीवन-मूल्यों को बदलने से भी विज्ञान बदलता है। पश्चिम में पिछले तीन सौ वर्षों में जो भी विज्ञान विकास हुआ है वह एक अर्थ में निरीश्वरवादियों के द्वारा हुआ है। पश्चिम में तीन सौ साल की जो भी वैज्ञानिक क्रांति है वह एथिस्ट के द्वारा शुरू हुई है। असल में उन लोगों ने, जिन्होंने चर्च से लड़ना शुरू किया है, उन लोगों ने विज्ञान को विकसित किया है। विज्ञान का विकास कोई करोड़ों लोगों ने नहीं किया है, बहुत थोड़े से लोगों ने। कहा जाता है कि अगर हम दुनिया के इतिहास से तीन सौ आदमियों को खतम कर दें तो हम बंदरों की हालत में पहुंच जाएंगे जहां हम थे। इससे ज्यादा आदमियों की देन नहीं है। और ये थोड़े से जो लोग हैं, इधर तीन सौ वर्ष में, ये सबके सब एक अर्थ में एस्टेब्लिश्ड चर्च के खिलाफ थे और इन्हें नये मूल्य देने शुरू किए। अब जैसे कि जो यह मानता है कि बीमारी, मौत, ये सब भाग्य से आती हैं, स्वभावतः मेडिकल साइंस इसकी खोज नहीं बन सकती, क्योंकि जरूरत नहीं है, यह बात ही खतम हो गई। जो आदमी मानता है कि नहीं, न तो हम इस बात को मानने को राजी हैं कि मौत निश्चित है, न हम इस बात को मानने को राजी हैं कि बीमारी कोई भगवान भेजता है, वह आदमी फर्क लाना शुरू करेगा।
अब अभी और फर्क लाने शुरू हो रहे हैं जो हमारी कल्पना में भी नहीं आते हैं अभी, क्योंकि हमारे मुल्क में अभी भी जीवन-मूल्य बहुत पुराने हैं। जीवन-मूल्य के मामले में हम बहुत ही दकियानूसी हैं। हमारे पास कोई नया मूल्य नहीं है, जैसे अभी भी हम जीवन को दुख मानते हैं। तो जो कौम जीवन को दुख मानेगी, जिसने जीवन में अभी सुख को मूल्य नहीं बनाया, हमारे लायक जरूरी नहीं है सुख। दुख--इसलिए आवागमन से छुटकारा कैसे हो, वह हमारी खोज है। जीवन है दुख, तो मोक्ष कैसे मिले, स्वर्ग कैसे मिले--तो हम उसके बाबत बहुत खोज-बीन करेंगे। जीवन तो दुख है ही। इसको तो स्वीकृत है हमारे मन में। लेकिन विज्ञान तब विकसित होता है जब हम मानते हैं कि जीवन सुख है और अगर नहीं है सुख तो हमारे अज्ञान की वजह से नहीं है। हम इसे और सुखी बना सकते हैं।

अब अभी भी आदमी आ जाता है पूछने, कि अभी पंद्रह-बीस दिन पहले कोई मेरे पास आया और उसने कहा कि लड़का हमारा अंधा हो गया है। अब इसके लिए कौन जिम्मेवार है? अब इस आदमी को समझाना भी मुश्किल पड़ता है कि अंधे होने के लिए भी हम ही जिम्मेवार हैं। अगर मैं आपकी आंखें फोड़ दूं तो मैं जिम्मेवार हूं, क्योंकि आप सबने देख लिया आंखें फोड़ते हुए। लेकिन मैंने एक स्त्री से संभोग किया और जो जीन मैंने उस स्त्री में डाला वह आंखों वाला नहीं था, यह किसी ने नहीं देखा, तो जिम्मेवार भगवान है। जिम्मेवार मैं हूं। जिम्मेवारी अज्ञान की, मुझे पता नहीं कि यह क्या हो रहा है?
लेकिन अब विज्ञान कहता है कि भविष्य में किसी अंधे बच्चे को पैदा होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि अब तो हम जीन्स की परख कर सकेंगे, सिर्फ पंद्रह साल के भीतर। जैसे आप बाजार में फूलों और फलों की दुकान पर पैकेट में आपको बीज मिल जाता है, ऐसा आदमी का बीज भी मिल जाएगा, सिर्फ पंद्रह साल के भीतर। एक्सपेरिमेंटल बीज तो तैयार हो गया है, बाजार में आने में वक्त लगेगा। तो आपको बिल्कुल फ्रोजन बीज मिल जाएगा कि आप, उसके ऊपर जैसे एक फूल की तस्वीर बनी रहती है वैसे बच्चे की तस्वीर बनी रहेगी कि इस तरह का बच्चा चाहिए, तो यह बीज काम में लाओ और इसको इंजेक्ट करवा दो अपनी पत्नी में और कृपा करके आप अंधेरे में मत बीज फेंकते रहो, नहीं तो बच्चे अंधे हो सकते हैं, लंगड़े हो सकते हैं, पागल हो सकते हैं, कुछ भी हो सकते हैं। उस पैकेट के ऊपर पंद्रह साल के भीतर हमारी जिंदगी में वह घटना घट जाएगी, क्योंकि एक्सपेरिमेंटली तो लेबोरेटरी में पूरी हो गई है। अब हम पूरी जांच करके उस पैकेट में बीज रखते हैं जिसमें हम कह सकते हैं--इस बच्चे की आंखें नीली होंगी कि हरी होंगी कि काली होंगी, इसकी ऊंचाई छह फुट होगी, इतनी उम्र इसको साधारणतः होगी, इसको ये-ये बीमारियां संभव हो सकती हैं, ये- ये बीमारियां नहीं होंगी। इसका रंग ऐसा होगा, नाक ऐसी होगी, यह इसकी एप्राक्सिमेट तस्वीर है। इसका आइ-क्यू कितना होगा, इसकी बौद्धिक क्षमता कितनी होगी, यह कितना दौड़ सकेगा, यह सब दिया जा सकेगा। क्योंकि अब हम वह जो क्रोमोसोम है आदमी का, उसके भीतर प्रवेश कर गए। जैसे अभी हमने एटम तोड़ लिया है, ऐसा हममें क्रोमोसोम भी तोड़ लिया। अब हम जानते हैं कि अंधा क्यों होता है बच्चा। अब किसी भगवान को उसके लिए ठहराने की जरूरत नहीं है। लेकिन यह उन लोगों से आ रहा है, जिन्होंने भाग्य को पहले इनकार कर दिया है। नहीं तो यह नहीं आता। पहले उन्होंने जीवन-मूल्य इनकार कर दिया भाग्य वगैरह का। उन्होंने कहा हमें पता नहीं कुछ, जो पता नहीं हम नहीं मानेंगे। हम इतना ही जानते हैं कि बच्चा अंधा पैदा होता है। क्यों होता है इसका हम पता लगाएंगे।
हमने क्या किया कि बच्चा अंधा पैदा होता है, इसके लिए फौरन एक्सप्लेनेशन खोज लिया कि भाग्य से होता है। अब पता लगाने की कोई जरूरत न रह गई। तो अगर हमारे जीवन-मूल्य इग्नोरेंस को जस्टीफाई करते हैं तो विज्ञान विकसित नहीं होता। अगर हम अपने अज्ञान को तोड़ने के लिए निरंतर रत रहते हैं और किसी एक्सप्लेनेशन से, किसी व्याख्या से अपने अज्ञान को न्यायोचित नहीं ठहराते, तो विज्ञान विकसित होता है। और जब विज्ञान विकसित होता है तो प्रत्येक विज्ञान की घटना फौरन जीवन-मूल्यों को बदल देती है। अब जैसे, अगर हम इधर पिछले बीस वर्षों में विज्ञान में जो-जो घटनाएं घटी हैं, उनको हम ठीक से देखें, हमें पता लगेगा कि जीवन-मूल्य किस भांति बदलते हैं। जैसे कि यूरी गागरिन पहली दफा जब अंतरिक्ष में गया, तो उससे जो पहली बात लौट कर पूछी कि तुम्हें पहली दफा अंतरिक्ष में जाकर पहला ख्याल क्या आया? तो उसने कहा कि मुझे ख्याल आया--माई अर्थ। मुझे ख्याल आया--मेरी पृथ्वी। तो जो उससे पूछ रहा था उसने कहा कि तुम्हें यह पहले ख्याल नहीं आया, मेरा रूस? तो उसने कहा कि रूस का मुझे बिल्कुल ख्याल नहीं आया। रूस का ख्याल आ ही नहीं सकता। रूस का ख्याल जमीन पर चलने वालों का ख्याल है। जब आप आकाश में उठेंगे तो कहां रूस है, कहां हिंदुस्तान है, पृथ्वी रह जाती है। स्वभावतः अगर हम चांद की यात्रा करते हैं तो नेशंस नहीं बचेंगे, क्योंकि चांद पर गए हुए मनुष्य के लिए पृथ्वी ही रह जाएगी, उसके फोकस पर पृथ्वी रह जाएगी, नेशंस बेमानी हो जाएंगे।

तो अगर सारी दुनिया के लोग समझा-समझा कर मर जाएं कि राष्ट्र हटाओ, हटाओ, वे न हटेंगे। एक दफा आदमी चांद और मंगल पर सहज यात्रा करने लगे, वे हट जाएंगे। वह टेक्नालॉजी हटा देगी, एकदम हटा देगी। आज आप अमरीका जाते हैं तो आप वहां जाकर नहीं कहते कि मैं नागपुर से आ रहा हूं। नागपुर एकदम हट जाता है, हिंदुस्तान रह जाता है। यह बड़े मजे की बात है कि हिंदुस्तान से जैन अमेरिका जाए तो हिंदू हो जाता है, मुसलमान अमरीका जाए तो हिंदू हो जाता है, बौद्ध अमरीका जाए तो हिंदू हो जाता है, क्योंकि बेमानी हो जाते हैं ये, इररिलेवेंट हो जाते हैं, किसको कहिएगा की आप जैन हैं, कि श्वेतांबर हैं, वह पचास बातें पूछेगा कि कौन श्वेतांबर, क्या। हिंदू हो तो हमेशा काम पूरा हो जाता है, बात खत्म हो जाती है। उतनी दूर को मत जाइए, नागपुर के पास कोई गांव का आदमी बंबई आता है तो वह नागपुर बताता, वह गांव नहीं बताता, वह भी नहीं है। पृथ्वी से जैसे ही हम हट गए, टेक्नालॉजी हमें जैसे ही चांद और मंगल पर उतार देगी, यह बिल्कुल बेमानी हो जाने वाला है। अब जितने दूर की स्पीड हो गई है आज...
मार्शल मैकलुहान एक बहुत अदभुत आदमी है। उसने एक किताब लिखी हैः मीडियम इ.ज दि मैसेज। आमतौर से हम कहते हैं कि मीडियम बात और है, मैसेज बात और है। मैं जो कह रहा हूं वह बात और है और जो मैं कहने से कह रहा हूं वह बात और है। शब्द और हैं, अर्थ और हैं। तो मैकलुहान कहता है कि मीडियम इ.ज दि मैसेज। मीडियम ही मैसेज है। और बड़ी कीमत की बात कह रहा है। वह यह कह रहा है कि जैसे ही मीडियम बदलता है फौरन मैसेज बदल जाती है।
अब जैसे, जो बच्चे अमरीका में बड़े हो रहे हैं, वे टेलीविजन ओरिएंटेड हैं। सुबह, दोपहर, रात, वे टेलीविजन देख रहे हैं। तो उनका जो कान है वह कमजोर होता जाता है। आंख ज्यादा... । इसलिए स्कूल की शिक्षा बदलनी पड़ेगी, क्योंकि स्कूल में शिक्षक अभी कान से ही पढ़ाए चला जा रहा है, वह आउट ऑफ डेट हो गए। बच्चा जो है, वह आंख उसका आधार बन गई है और शिक्षक अभी कान से पढ़ा रहा है। कान से कल पढ़ा रहा था वह ठीक था, क्योंकि आंख कोई आधार न थी। मैसेज सीधी कान से दी जाती थी। वह कान से पढ़ा रहा था। तो अब अमेरिका में उनको फिकर करनी पड़ रही है कि बहुत जल्दी हम बदलें इस व्यवस्था को, नहीं तो वह बच्चे से तालमेल नहीं खा रही, बच्चे को मजा ही नहीं आ रहा उसके पढ़ने में। उसको अब आंख वाला चाहिए, इसलिए माइक्रोबुक्स ईजाद करनी पड़ रही है, जो किताबें पर्दे पर दिखाई पड़ेंगी। पढ़ेंगे भी तो भी पर्दे पर, देखेंगे तो भी पर्दे पर।
अब हमारा पुराना शिक्षक था, तो हमने जो स्कूल बनाया हुआ था, शिक्षक सामने खड़ा हुआ है, सामने बच्चे बैठे हुए हैं कंफ्रेंट्री, वह गलत है। पुराने दिनों में ठीक था, क्योंकि गुरु दबा रहा था। दबाना जिसको हो उसके सामने होना चाहिए, छाती पर होना चाहिए, जिसको दबाना है उसके सामने होना चाहिए। इसलिए अभी भी शिक्षक जब ब्लैक बोर्ड पर लौटता है, तो लड़के उतनी देर में गड़बड़ कर देते हैं, टूट-फूट गड़बड़ हुई। ब्लैक बोर्ड पर लिखने जाता उतनी देर में गड़बड़ हो गई, क्योंकि वह आदमी सामने से कनफ्रंट नहीं कर रहा। इसलिए शिक्षक सदा डरा रहता है, वह पीठ कभी नहीं करता, वह पूरी कोशिश में रहता कि लड़कों की तरफ पीठ न पड़ जाए। लेकिन वह पुराना रुख था, जब कि हम बच्चे को दबा रहे थे। अब नई टेक्नालॉजी ने सारा रुख बदल दिया है। वह कहती है बच्चे को दबाना नहीं है, विकसित करना है। तो जब विकसित करना है तो कंफेंट्री ठीक नहीं है। इसलिए अब गोल, सर्कुलर कमरा होना चाहिए, जिसमें शिक्षक बीच में हो और चारों तरफ बच्चे हों, तो उसके बीच फ्रेंडलीनेस पैदा होगी दुश्मनी कम होगी। और इसके प्रयोग किए गए हैं तो हैरानी का फर्क पड़ा है। शिक्षक को खुद भी अकड़ कम हो गई, उसका पेडिस्टल, उसका अलग मंच, उस पर वह खड़ा हुआ है, अकड़ा हुआ, एक रोग ही दूसरा। अब तो वे कहते हैं शिक्षक को धीरे-धीरे हट जाना चाहिए, पीछे शैडो में। उसको तभी आना चाहिए सामने जब कोई बहुत जरूरत पड़ जाए। अन्यथा टेलीविजन काम करेगा, टेप-रिकार्डर काम करेगा, माइक्रोबुक्स होंगी, वे काम करेंगी। कोई उसकी बहुत जरूरत पड़ जाए तो उसे शैडो में से बाहर आ जाना चाहिए, चुपचाप पीछे हट जाना चाहिए। उसको बहुत ज्यादा सामने नहीं होना चाहिए।

यानी अभी हम कल कहते थे बच्चे को डराना नहीं चाहिए, उसके सामने होने
से भी तो बच्चा डरता है, उसको थोड़ा पीछे हट जाना चाहिए। धीरे-धीरे हम शिक्षक को बिल्कुल हटा देंगे क्योंकि जैसे टेक्नालॉजी विकसित होती है, एक बात साफ हो गई है कि अगर कोई, सारे लोग तो पैदाइशी शिक्षक नहीं होते हैं। मुल्क में दो-चार लोग पैदाइशी शिक्षक होते हैं। सब बच्चों को उनका लाभ नहीं मिल सकता था अब तक। राजाओं के बच्चे पढ़ते रहे, रईसों के बच्चे पढ़ लेते उनके पास। अब वे कहते हैं कि अब इसकी कोई जरूरत नहीं है। अब तो टेलीविजन से वह शिक्षक पूरे मुल्क के बच्चों को एक साथ पढ़ा सकता है। दस साल में टेलीविजन डबल वे हो जाएगा। अभी चूंकि एक ही तरफ से मैसेज जा सकती है, इसलिए दिक्कत है। दस साल में डबल वे हो जाएगा, बच्चे क्वेश्चन भी पूछ सकते हैं। यहां से बच्चे क्वेश्चन भी पूछ सकते हैं, वहां से शिक्षक उत्तर भी दे सकता है। तो एक शिक्षक जो आथेंटिक शिक्षक है मुल्क का, क्यों न पूरे मुल्क के बच्चों को पढ़ाए? इनको अलग-अलग शिक्षकों को क्यों दिया जाए। फिर स्कूल खतम हो जाएगा एकदम से। टेक्नालॉजी की कह रहा हूं, अगर टेलीविजन से पढ़ाना है तो स्कूल की बिल्डिंग बनाने की क्या जरूरत है? टेलीविजन तो घर में है, बच्चे अपने घर में पढ़ें। स्कूल बेमानी हो गए, कारागृह काहे के लिए खड़ा करना, जहां सारे बच्चों को खदेड़ कर भरो। वह तो इसलिए हम भरते थे जब कोई उपाय नहीं था। जहां शिक्षक है वहां बच्चों को भरना पड़ता था। अब जो शिक्षक ही नहीं रह जाएगा, जहां बच्चे अपने घर में टेलीविजन पर वे पढ़ सकेंगे।
जिस दिन बच्चे घर में पढ़ सकेंगे उस दिन शिक्षक और बच्चों के बीच के जो हमने जीवन-मूल्य तय किए थे, उनका क्या होगा? वे गए! गुरु का आदर करो और उसके पैर छुओ, जब वे मान ही नहीं रहे, टेलीविजन के पैर पढ़ो, उसके पांव छुओ, क्या पागलपन हो जाए। शुरू-शुरू में करेंगे लोग थोड़े दिन, वहां फिल्म में अभी भी पैसे फेंक देते हैं गांव में लोग। खूबसूरत औरत नाचती है, तो फिर वे पैसा फेंक देते हैं। उन्हें ख्याल नहीं कि टेक्नालॉजी बदल गई है, यह पैसा गांव में जब कोई औरत नाचती है तो वे बेचारे फेंकते रहे, अभी भी उसको फेंक रहे हैं।
या तो जीवन-मूल्य बदलें तो बदलता है विज्ञान, विज्ञान बदलें तो जीवन-मूल्य बदलते हैं। प्रगतिशील समाज वह है जो दोनों काम जारी रखता है। अगर विज्ञान बदलें तब आपके जीवन-मूल्य बदलें तो आप बैकवर्ड सोसाइटी हैं और जीवन-मूल्य पहले बदलें और फिर विज्ञान पीछे बदलें तो आप फारवर्ड सोसाइटी हैं, इतना फर्क है, क्योंकि जीवन-मूल्य तो विचार से बदलते हैं। जब एक दफे हम जीवन-मूल्य का पर्सपैक्टिव बड़ा कर लेते हैं तो उसका मतलब है कि हम बुद्धि से जी रहे हैं। जो भविष्य में होगा तो हम उसकी कल्पना, उसकी योजना कर रहे हैं। फिर विज्ञान धीरे-धीरे आता है उसको बदल देता है। लेकिन विज्ञान जब बदलता है, फिर हमें जीवन-मूल्य बदलने पड़ते हैं, तो हम बहुत पिछड़ी हुई कौम हैं। उसका मतलब यह है कि जब स्थिति घट जाती है तभी हमारा मन पीछे सरक-सरक कर उसके पास जाता है। फिर वह बहुत वक्त लगा देता है, क्योंकि हमारा मन पीछे से चिपटना चाहता है।
अभी भी हम, बहुत सी चीजें बदल गई हैं। अब हमें पुराने ख्याल छोड़ देने चाहिए। लेकिन नहीं ख्याल छूटते हैं। अभी भी, एक घर में दीया जलता था तो लोग नमस्कार कर लेते थे, अब बिजली जलती है, उसको भी कर लेते हैं। अभी भी।... उसको नमस्कार कर लेगा। या डरेगा थोड़े तो धीरे से करके अपना नमस्कार कर लेगा। शायद किसी जमाने में जब पहली दफा आग जली थी तो नमस्कार करने योग्य बात थी, इससे बड़ा कोई चमत्कार नहीं था। आग ने इतना आदमी को दिया है कि अगर नमस्कार की तो हमने कोई बुरा नहीं किया। आग ने हमको बचाया है, जिंदगी दी है, सब उसने दिया है। लेकिन अब तो कोई मतलब नहीं है, अब बिजली को भी कर रहे हैं वे। अब उनको पता नहीं कि अब टेक्नालॉजी बदल गई है। अब बिजली को नमस्कार करने की कोई जरूरत नहीं है। अब यह निपट पागलपन है।
तो जिन कौमों का दिमाग पीछे सरकता है और जब सब बदल जाता है तब वे मजबूरी में बदलते हैं तो वह बहुत पिछड़ी हुई कौमें हैं। इधर भारत में ऐसा ही हो रहा है। टेक्नालॉजी तो हम सब बदलते जा रहे हैं लेकिन हमारे जीवन-मूल्य बहुत पुराने हैं। अभी भी हैं। अभी भी हम जो भी हमारे जीवन-मूल्य हैं

वे कम से कम दो हजार साल पुरानी वैज्ञानिक व्यवस्था से संबंधित हैं। अभी हम उनको ही पीटे चले जा रहे हैं। जैसे आज भी बंबई में एक आदमी आकर रहने लगता है तो वह भी अपेक्षा करता है कि पड़ोसी उसकी उतनी ही फिकर करे जितना उसके गांव में करता था। और नहीं करता है तो दुखी होता है।
गांव में अगर वह बीमार होता था, सर्दी हो जाती थी तो पूरा गांव उससे पूछता था कि भई क्या हो गया है? शाम को लोग उसके घर आकर पूछते थे। उसे लगता था कि बड़ी मैत्री भावना है। मैत्री भावना का कोई सवाल नहीं है। गांव की टेक्नालॉजी है। असल में गांव इतना छोटा यूनिट है कि उसमें हर आदमी की आंख हर दूसरे आदमी पर है। इसके फायदे हैं, इसके नुकसान हैं, इसका फायदा यह है कि आप बीमार पड़े हैं तो पूरा गांव पूछने आएगा। और आप अगर किसी पड़ोसी की औरत से बोलिए तो पूरा गांव मारने भी आएगा। दोनों हैं न। अगर आपने सिगरेट पी ली है तो पूरे गांव को पता चल जाएगी। आपको जुकाम है तो भी पता चलेगा। अगर आप आज मंदिर नहीं गए तो पूरे गांव में निंदा हो जाएगी। तो गांव जो है वह इतना छोटा यूनिट है कि एक-एक आदमी पर सबकी आंख है। उसकी गुलामी भी है, उसके थोड़े सुख भी हैं। वह आदमी बंबई आ गया। अब वह बंबई के पूरे फायदे उठा रहा है। मजे से सड़क पर सिगरेट पीकर निकलता है, मंदिर नहीं जाता है, इसकी उसे फिकर नहीं है। लेकिन जब बीमार पड़ता है, पड़ोसी उसको पूछने नहीं आता, वह कहता है, बंबई में कोई हृदय नहीं है। पागल हो गए हो तुम? अगर हृदय चाहिए तो गांव में वापस चले जाओ, फिर वह भी झेलना पड़ेगा जो उसके साथ जुड़ा है। टेक्नालॉजी की बात है। अब बंबई में अगर एक-एक पड़ोसी एक-एक पड़ोसी की फिकर करें तो बंबई में इतने लाख पड़ोसी हैं कि एक आदमी पड़ोसियों की फिकर करने में मर जाए। वह अपने लिए कब जीए? अपने लिए कब जीए?
बड़ा यूनिट जो है इंडिविजुअल... अगर आप पच्चीस आदमी पिकनिक पर जाएं तो
आप फौरन पाएंगे कि तीन-चार टुकड़े हो जाएंगे। पच्चीस आदमी अगर पिकनिक पर गए तो चार हिस्से हो जाएंगे। क्योंकि पांच-छह से ज्यादा का टुकड़ा नहीं झेला जा सकता। छह ग्रुप हो जाएंगे फौरन। स्वाभाविक, क्योंकि पच्चीस का कोई ग्रुप नहीं हो सकता। पच्चीस में कोई बातचीत नहीं की जा सकती। छह टुकड़े हो जाएंगे। छह का ग्रुप जाएगा तो यह भी टुकड़ा रहेगा। तो छोटे गांव की अपनी दुनिया है। उसके अपने टेक्नीक, अपने जीने के ढंग हैं, अपनी रफ्तार है। पर हमारा मन वही रहता है। टेक्नालॉजी बदल जाती है। आकर बंबई में रहने लगेंगे लेकिन चित्त गांव का रहेगा। जुकाम हो तो पूरा गांव पूछने आ जाएगा। पूरा गांव आएगा तब आपको पता चलेगा कि इससे तो बेहतर था कि आप न आते। क्यों यह जुकाम के लिए इतना बड़ा बंबई पूछने आए तो यह मेरी भी मुसीबत है, उनकी भी मुसीबत है। नहीं, बंबई में अपना जुकाम आप भोगिए, लेकिन बंबई में डाक्टर है जो गांव में नहीं है। तो जुकाम दूर कर देगा, पूछने की कोई जरूरत भी नहीं है। इतना परेशान होने की भी जरूरत नहीं है।
अभी में एक किताब पढ़ रहा हूं। एक तीस साल बाद, इस सदी के पूरे होते, एक मां को उसका बेटा पेकिंग से न्यूयार्क उसको फोन करता है। तब तो फोन के साथ टेलीविजन जुड़ गया होगा, तो साथ में दिखाई पड़ता जो है और थ्री डाइमेन्शनल हो गया होगा। इसलिए सिर्फ चित्र नहीं दिखाई पड़ता, पूरा दिखाई पड़ता है, जैसा कि ऐसे दिखाई पड़ेगा। तो पूरा दिखाई पड़ता है। तो वह मां उस बेटे से कह रही है कि तुझे बहुत दिन से नहीं देखा, तू आ जा। तो वह कहता है, आप देख तो रही हैं मुझे। आप देख तो रही हैं मुझे और क्या देखिएगा। मैं पेकिंग से आया हूं न्यूयार्क तो और क्या देखना? मैं पूरा दिखाई पड़ रहा हूं। नहीं, मां का मन नहीं मानता, वह पुरानी टेक्नालॉजी में पली है। वह कहती है यह देखना नहीं, तू बिल्कुल सामने आ जा। वह कहता है मैं बिल्कुल सामने हूं। इससे बड़ा तो कुछ फर्क पड़ेगा नहीं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। तो आंख से ही तू देखेगी न।
यह दुनिया जितना बड़ा भाईचारा हो, उतनी ही कम उपद्रव, उतनी ही कम मुसीबत तुम्हारे लिए है, क्योंकि कहीं भी कुछ भी होता रहे सारा नुकसान हमें होता है। अगर आज वियतनाम में युद्ध हो रहा है, तो उसका नुकसान हमें हो रहा है। आज जितनी ताकत वियतनाम में लग रही है, कल अगर हिंदुस्तान में अकाल पड़ जाता, तो उतनी ताकत हिंदुस्तान को मिल सकती थी, वह अब नहीं मिलेगी।

लेकिन हम बैठ कर देखते रहेंगे कि वियतनाम से हमें क्या लेना-देना है? लेकिन वियतनाम में अमरीका की ताकत लग रही है, वियतनाम में अमरीका की शक्ति लग रही है, वह शक्ति कल आपके अकाल में भी काम आ सकती थी, वह अब नहीं आ सकेगी। क्योंकि शक्ति की सीमाएं हैं। और दुनिया में आदमी निरंतर लड़ता रहा है, इसलिए इतनी शक्ति ही नहीं बच पाती कि जिससे हम स्वर्ग बना सकें। अगर हम आदमी को निपट स्वार्थी होने की शिक्षा दे सकें तो इससे अच्छी कोई शिक्षा नहीं हो सकती। और स्वार्थ शब्द बहुत अच्छा है। अब बिगड़ गया, बहुत कुरूप हो गया, वैसे उसका मतलब इतना ही होता है, आत्मा के लिए, स्वयं के लिए, दैट व्हिच इ.ज मीनिंगफुल टु योरसेल्फ, वह जो तुम्हारे लिए सार्थक है।
जिसको हम परमार्थ कहते हैं, अगर बहुत ठीक से समझें तो परमार्थ का मतलब हुआ, द अल्टीमेट मीनिंग। स्वार्थ ही विकसित होते-होते परम अर्थ बनेगा।
मुझे इसमें कोई कठिनाई नहीं मालूम पड़ती।

देख कबीरा रोया
इक्कीसवां प्रवचन

गांधीवादी कहां हैं?

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं निरंतर सोचता रहा, व्हेअर ऑर दि गांधीयंस? गांधीवादी कहां हैं? लेकिन मेरे भीतर सिवाय एक उत्तर के और कुछ शब्द भी नहीं उठे। मेरे भीतर एक ही उत्तर उठता रहा--वहीं हैं, जहां हो सकते थे। यही सोचते हुए रात मैं सो गया और सोने में मैंने एक सपना देखा। उसी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूं। शायद यही सोचते हुए सोया था कि गांधीवादी कहां हैं, इसलिए वह सपना निर्मित हुआ होगा।
मैंने देखा कि राजधानी के एक बहुत बड़े बगीचे में जहां महात्मा गांधी
की पत्थर की प्रतिमा खड़ी है, मैं उस पत्थर की प्रतिमा के नीचे पड़ी बेंच पर बैठा हुआ हूं। दोपहर है और बगीचे में सन्नाटा है, कोई भी नहीं है। मैं सोचने लगा कि गांधी जी से ही क्यों न पूछ लिया जाए कि गांधीवादी कहां हैं? लेकिन इसके पहले कि मैं पूछता, मैंने देखा कि गांधी जी की प्रतिमा कुछ बड़बड़ा रही है। तो मैं गौर से सुनने लगा। गांधी जी की प्रतिमा कह रही थी कि दुष्टों ने मुझे कहां खड़ा कर दिया है--धूप में, बरसात में, सर्दी में! और राणाप्रताप को घोड़ा दिया हुआ है, शिवा जी को घोड़ा दिया हुआ है, रानी लक्ष्मीबाई को घोड़ा दिया हुआ है। मुझे पैर पर ही खड़ा कर दिया है? मैं तो बहुत हैरान हुआ। मैंने नहीं सोचा था कि गांधी भी गुस्सा होते हैं। मैं भागा हुआ राजधानी के बड़े नेता के पास गया कि गांधी जी बहुत गुस्से में हैं, बहुत गालियां दे रहे हैं कि मुझे दुष्टों ने कहां खड़ा कर दिया है। मुझे भी घोड़ा चाहिए। उन नेता ने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। गांधी जी कभी गाली नहीं दे सकते। मैं तुम्हारे साथ चलता हूं। मैं उन नेता को ले जाकर प्रतिमा के सामने खड़ा हो गया। उस प्रतिमा ने कहा कि मैंने घोड़ा लाने को कहा था, तुम इस गधे को कहां से ले आए? मैं तो बहुत हैरान हुआ। यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था।
उनके इस कहने से नेता का क्या हुआ, मुझे कुछ पता नहीं, मेरी नींद टूट गई। और रात मैं बार-बार सोचता रहा, तो मुझे कुछ बातें ख्याल आईं। मुझे पहली बात तो यह ख्याल आई कि इसमें गधों का कोई कसूर नहीं है। महात्माओं के पास गधे इकट्ठे हो ही जाते हैं। असल में महात्मा तो प्रथम कोटि के व्यक्ति होते हैं। प्रथम कोटि के व्यक्तियों के पास प्रथम कोटि का कोई व्यक्ति कभी इकट्ठा नहीं होता। द्वितीय और तृतीय कोटि के लोग इकट्ठे होते हैं। असल में प्रथम कोटि का मनुष्य कभी किसी का अनुयायी नहीं बनता है। अनुयायी हमेशा द्वितीय और तृतीय कोटि के लोग बनते हैं। असल में बुद्धिहीनों के सिवाय अनुयायी कोई कभी नहीं बनता। जिनके पास अपनी बुद्धि है वे अपने पैरों पर खड़े होते हैं और किसी के अनुयायी नहीं होते। इसलिए अनुयायी तो अनिवार्य रूप से खतरनाक है, क्योंकि बुद्धिहीनता ही किसी को अनुयायी बनाती है।
गांधी के पास जो लोग इकट्ठे हुए इस देश के, वे दूसरी और तीसरी श्रेणी
की बुद्धि के लोग थे। प्रथम श्रेणी का कोई व्यक्ति उनके पास इकट्ठा नहीं हुआ। इकट्ठा हो भी नहीं सकता है। प्रथम कोटि का आदमी कभी किसी के पीछे नहीं चलता, अपनी ही दिशा खोज कर चलता है। न कोई महावीर, न कोई बुद्ध, न कोई जीसस कभी किसी के पीछे चलता है, न कोई गांधी कभी किसी के पीछे चलता है। जो लोग किन्हीं के पीछे नहीं चलते उनके आस-पास इस तरह के लोग इकट्ठे हो जाते हैं जो सदा किसी के पीछे चलते हैं। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि अनुयायी कभी बुद्धिमान आदमी नहीं होता। और महात्मा के मरने के बाद इन्हीं बुद्धिहीनों के हाथ में महात्मा की सारी व्यवस्था पड़ जाती है।
प्रथम कोटि का आदमी मरा कि द्वितीय कोटि के लोगों के हाथ में सत्ता चली जाती है। गांधी के मरते ही हिंदुस्तान की सत्ता द्वितीय श्रेणी की बुद्धि के पास चली गई। लेकिन द्वितीय श्रेणी की बुद्धि भी कुछ मूल्य रखती है। अब तो वे भी खतम हो चुके। अब तो तीसरी श्रेणी के लोग उनकी जगह बैठे हुए

हैं। ये तीसरी श्रेणी के वे लोग हैं जो गांधी के जमाने में स्वयंसेवक का और वालंटियर का काम करते थे। फट्टा बिछाने का और गांव में डुंडी पीटने का काम करते थे कि महात्मा आ रहे हैं। प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के आस-पास द्वितीय श्रेणी का, सेकेंड रेट माइंड का एक घेरा खड़ा हो जाता है, यह अनिवार्यता है। द्वितीय श्रेणी के बाहर तीसरी श्रेणी का घेरा होता है। प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के मरते ही दूसरी श्रेणी के व्यक्तियों के हाथ में शक्ति चली जाती है।
और कुछ बातें समझने जैसी हैं। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग है। अब
तक ऐसा होता रहा है। आगे न हो, इसकी आशा करनी चाहिए, लेकिन अब तक ऐसा हुआ है।
प्रथम कोटि का व्यक्ति जब तक जिंदा होता है, द्वितीय कोटि के बहुत तरह
के लोगों को वह अपने प्रभाव में बांध कर रखता है। लेकिन प्रथम कोटि के व्यक्ति के मरने के बाद द्वितीय कोटि के सारे लोगों में से एक कोई आदमी प्रथम कोटि का बनना चाहता है, बाकी सारे उसके साथी नाराज हो जाते हैं। वे सब अलग हटना शुरू हो जाते हैं। सत्ता की दौड़, और असली वसीयत किसकी है, हेयर कौन है महात्मा का? प्रथम कोटि के व्यक्ति का कौन वंशाधिकारी है? तो द्वितीय श्रेणी के लोग प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के तो प्रभाव में बंधे रहते हैं, लेकिन प्रथम श्रेणी के व्यक्ति के हटते ही द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों में आपसी कलह और संघर्ष और उपद्रव शुरू हो जाता है। क्योंकि वे सब एक ही कोटि के होते हैं, उनमें से कोई किसी को नेता नहीं मान सकता। ऐसा हिंदुस्तान में हुआ। गांधी के मरते ही गांधी ने जिन बहुत से लोगों को अपने आस-पास इकट्ठा किया हुआ था, गांधी के मरते ही वे सब एक-दूसरे के दुश्मन हो गए। क्योंकि उनमें से--वे सब साथी थे--उनमें से कोई प्रथम कोई किसी को स्वीकार नहीं कर सकता था। फिर जो उनमें से प्रथम बन गया, उसके बनते ही द्वितीय श्रेणी के सारे लोग बाहर हो गए। और वह जो प्रथम श्रेणी का बन गया, दूसरी श्रेणी का व्यक्ति, उसने तीसरी श्रेणी के व्यक्तियों को अपने आस-पास इकट्ठा कर लिया। अब वे दूसरे श्रेणी के व्यक्ति भी जा चुके। अब देश तीसरी श्रेणी के व्यक्तियों के हाथ में पड़ा हुआ है।
यह अनिवार्य है होना। यह महात्मा गांधी के साथ हुआ हो, ऐसा नहीं है।
यह महावीर के साथ भी हुआ, यह बुद्ध के साथ भी हुआ, यह जीसस के साथ भी हुआ, यह हमेशा होता रहा है। यह होना तो तब बंद होगा जब प्रथम कोटि के व्यक्ति अनुयायी इकट्ठा करना बंद करें। और अगर प्रथम कोटि के व्यक्ति अनुयायी इकट्ठा करने से इनकार कर दें तो दुनिया का बहुत हित हो सकता है। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हो सका। गांधी के साथ भी ऐसा नहीं हो सका। और गांधी के माध्यम से देश थर्ड रेट, तृतीय कोटि के लोगों के हाथ में पहुंच गया।
यह भी मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह जो स्थिति बनी है, यह बिल्कुल निश्चित थी। यह बनती ही। इसलिए मैं गांधीवादियों को कोई दोष नहीं देना चाहता हूं। उनकी कोई आलोचना करने में भी मेरे मन में बहुत पीड़ा मालूम पड़ती है। वे आलोचना के योग्य भी नहीं हैं। आलोचना उनकी करनी चाहिए जिनसे हम ज्यादा आशा रखते हों और वे आशा से नीचे सिद्ध हुए हों। अगर कोई आदमी कंकड़-पत्थर को हीरे-मोती समझ ले और फिर बाद में वे कंकड़-पत्थर साबित हों, तो आलोचना किसकी होनी चाहिए? कंकड़-पत्थरों की या उस आदमी की जिसने उन्हें हीरे-मोती समझा था? अगर वह आदमी कहता है कि हीरे-मोती धोखेबाज निकल गए-- हीरे-मोती कभी धोखेबाज नहीं निकलते--सच बात यह है कि उसकी समझ की कमी थी और उसने कंकड़-पत्थरों को हीरे-मोती समझा था। जब असलियत खुली तो वे कंकड़-पत्थर निकले। उसे अपनी बुद्धि की आलोचना करनी चाहिए।
मैं आपसे कहना चाहता हूं कि गांधीवादियों की आलोचना में मत पड़ना, इस देश को अपने मस्तिष्क की आलोचना करनी चाहिए कि तुम कंकड़-पत्थरों को हीरे- मोती समझ लेने की तुम्हारी आदत कब छोड़ोगे? लेकिन हम अपनी आलोचना करने से बचना चाहते हैं और दोष उन पर थोप देते हैं जिनका कोई भी दोष नहीं है। यह होने वाला था। इसलिए मैं कहता हूं, गांधीवादी वहीं हैं जहां हो सकते थे। इससे अन्यथा वे कुछ भी नहीं हो सकते थे। और उनकी आलोचना में समय गंवाना व्यर्थ है। मुल्क को अपने चित्त की आलोचना करनी चाहिए कि हम इस तरह के गलत

लोगों को कैसे चुन लेते हैं? हम इनको आदर कैसे दे देते हैं? हम इनको प्रतिष्ठा, सत्ता और शक्ति कैसे दे देते हैं? अगर गांधीवादियों की आलोचना की गई तो मैं आपसे कहता हूं कि फिर हम इसी तरह के नासमझों के हाथ में मुल्क को फिर दुबारा दे देंगे। उनकी शक्लें दूसरी होंगी, उनके झंडे दूसरे होंगे, वे किसी और महात्मा के आस-पास इकट्ठे होंगे। और फिर वही गलती शुरू होगी जो हमने इधर बीस वर्षों में भोगी है। हम चुनाव करते हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी ने अपनी जिंदगी में आठ शादियां कीं। और हर बार, उसने जब पत्नी बदली तो उसने बिल्कुल पक्का तय कर लिया कि अब इस तरह की पत्नी दुबारा नहीं चुननी है। लेकिन वह आदमी तो वही था, चुनने वाला वही था। उसने फिर चार-छह महीने में उसी तरह की औरत फिर चुन ली। चार-छह महीने साथ रहने के बाद वह हैरान हुआ कि यह औरत भी फिर वैसी ही सिद्ध हुई, जैसी पहली औरत थी। आठ औरतें बदलने के बाद उसको यह लगा कि मालूम होता है दुनिया की सब औरतें एक सी हैं, क्योंकि जिस औरत को भी लाओ वही वैसी सिद्ध होती है।
असली बात यह नहीं थी। असली बात यह थी कि वह चुनने वाला तो बदलता ही नहीं था। हर बार वही था, उसकी पकड़ वही थी, समझ वही थी, उसका ढांचा वही था, हर बार उसकी पसंद वही थी जो पुरानी थी। फिर उसने वही चुन लिया जो पहले उसने चुना था। ये आठ औरतें बड़ी खोज कर वह लाया था।
इस देश में इस तरह की भूल निरंतर होती रही है। महात्माओं के आस-पास इकट्ठे लोगों को हमने हमेशा चुना है। आज ही नहीं--महावीर के साथ भी यही, बुद्ध के साथ भी यही, गांधी के साथ भी यही। और उसका परिणाम हम भोग रहे हैं। पांच हजार सालों में हमारा समाज, हमारा व्यक्तित्व, हमारी आत्मा रोज नीचे गिरती चली गई है। हम अनुयायियों को चुन लेते हैं। महात्मा के जीवित होने में महात्मा की ज्योति उनमें झलकती है, और लगता है कि वे जीवित हीरे-मोती हैं। महात्मा के मरते ही ज्योति विलीन हो जाती है। कंकड़-पत्थरों में जो चमक थी ज्योति की, वह भी विलीन हो जाती है। वे कंकड़-पत्थर साबित हो जाते हैं।
यह हमें ध्यान रखना पड़ेगा भविष्य में कि हम व्यक्तियों को देख कर चुनाव न करें, और व्यक्तियों को देख कर हम आदर न दें। जीवन-व्यवस्था और जीवन-दृष्टि और जीवन-दर्शन को देख कर चुनाव होना चाहिए। लेकिन हम व्यक्तियों से प्रभावित होने वाली कौम हैं, हम जीवन-दर्शनों के संबंध में जरा भी विचार नहीं करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हर बार भूल होती है, हर बार हम वही भूल दोहरा लेते हैं, आलोचना करते हैं। और आलोचना हम क्या करते हैं? आलोचना हम अनुयायियों की करते हैं। उससे कुछ भी नहीं होता है। तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, गांधीवादियों का तो कोई भी दोष नहीं है, सब वादी इसी तरह के सिद्ध होंगे, क्योंकि वादी कभी भी तृतीय, द्वितीय श्रेणी से ऊपर के लोग नहीं होते हैं।
वाद से मुक्ति चाहिए--चाहे वह गांधीवाद हो, चाहे मार्क्सवाद हो, और चाहे कोई और वाद हो। अगर देश को अच्छा बनाना है तो वाद से मुक्ति चाहिए। एक वाद से छूट कर दूसरे वाद को पकड़ा जा सकता है। बहुत आसान वही है, लेकिन फिर वही गलती हो जाएगी। दुनिया हर बार वाद को बदल लेती है और हर बार वही मुसीबत खड़ी हो जाती है जो पहले खड़ी थी। असल में वाद को चुनने की जरूरत नहीं है। गांधीवाद को चुन कर हमने भूल की है, मार्क्सवाद को चुन कर भी हम भूल कर सकते हैं। वाद हमेशा खतरनाक सिद्ध होगा, क्योंकि वाद में सिर्फ वे ही लोग प्रभावित होते हैं जिनके पास अपने सोचने-समझने की कोई बुद्धि नहीं होती है। बुद्धुओं के सिवाय वादी कभी कोई आदमी नहीं होता। विचारशील आदमी सोचता है, समझता है, जीता है। किसी इज्म में, किसी वाद में बांध कर अपने को खड़ा नहीं करता है। बांधने की उसे कोई जरूरत नहीं है। उसके पास अपने सोचने का ढंग है। वह सोचेगा, रोज-रोज जिंदगी की समस्याओं का सामना करेगा।
लेकिन वादी क्या करता है? वादी कहता है, समस्या महात्मा हल कर गया, हमारा गुरु हल कर गया। अब हमें कोई समस्या हल नहीं करनी है। हमारे पास बंधे हुए समाधान हैं। कोई भी समस्या आ जाए, हम अपनी किताब खोल कर समाधान निकाल लेंगे। वे समाधान खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि सब समाधान

किसी विशेष परिस्थिति में पैदा होते हैं और उस परिस्थिति के बाहर उनकी कोई सार्थकता नहीं होती।
गांधी जी ने जो समाधान इस देश को दिए वे गांधी जी की परिस्थिति में सार्थक हो सकते थे। लेकिन अब न वह परिस्थिति है, न वह प्रसंग है, न वह संदर्भ है। लेकिन वादी कहता है कि हम उन्हीं को सार्थक करके बताएंगे। और वादी इसलिए हमेशा पीछे से बंधा रहता है। जिंदगी जाती है आगे की तरफ और वादी बंधा रहता है पीछे से। इसलिए वादी हमेशा जिंदगी पर बंधन सिद्ध होता है। इस देश की चेतना को वाद से, आइडियालॉजी से, इज्म से, शास्त्र से मुक्त करने की जरूरत है। लेकिन गांधी के आस-पास एक नया शास्त्र खड़ा हो गया है। गांधी के शिष्यों में दो तरह के लोग थे--एक तो वे लोग थे जिनकी राजनैतिक बुद्धि थी, और एक वे लोग थे जो सिद्धांत और शास्त्र की बुद्धि के थे। तो गांधी के बाद उनका खेमा दो वर्गों में बंट गया। गांधीवादी दो वर्गों में बंट गए--एक सत्ताधीश गांधीवादी हैं और एक मठाधीश गांधीवादी हैं। सत्ताधीश गांधीवादी सत्ता के ऊपर हावी हैं, मठाधीश गांधीवादी गांधीवाद के शास्त्र के निर्माण करने में संलग्न हैं। सत्ताधीश गांधीवादियों ने सत्य, अहिंसा, उन सबकी हत्या कर डाली है, और मठाधीश गांधीवादियों ने सत्याग्रह, मॉस-रेसिस्टेंस, असहयोग, उस सबकी हत्या कर डाली है।
गांधी के विचार में अहिंसा और सत्य का मूल्य था। जो लोग सत्ता में गए, उन्हें जाते से यह पता चला कि सत्ता असत्य से चलती है और हिंसा से। सत्ता हिंसा और असत्य से चलती है। तब उन्होंने दोहरे व्यक्तित्व ग्रहण कर लिए। हिंसा में उतरते चले गए रोज, असत्य जीने लगे, और बातें सत्य और अहिंसा की और भी जोर से करने लगे। बातें इतने जोर से करना जरूरी थीं ताकि वे जो कर रहे थे वह छिप जाए। बीस साल की आजादी में हिंदुस्तान की अहिंसक सरकार ने जितनी हत्या और खून किया है और जितनी गोलियां चलाई हैं इतनी दुनिया की कोई हिंसावादी सरकार भी इतनी हिंसा करने का दावा नहीं कर सकती। अहिंसा की बात चलती रही और नीचे हिंसा चलती रही। सत्य की बात चलती रही और सत्ता की दौड़ में सब तरह का असत्य स्वीकार कर लिया गया। अपरिग्रह और दरिद्रता के वरण करने की बात चलती रही और सब तरह की संपत्ति और सब तरह का लोभ और सब तरह का परिग्रह काम करता चला गया।
मठाधीश गांधीवादी सत्याग्रह कर नहीं सकते, क्योंकि उनके ही भाई-बंधु दिल्ली में हुकूमत में बैठे हुए हैं। असहयोग नहीं कर सकते, तो उन्होंने भूदान के पाखंड का ईजाद किया हुआ है। जिससे न समाज बदलता, न समाज की जिंदगी बदलती। लेकिन मठाधीश गांधीवादी को भी कुछ हाथ में चाहिए, नहीं तो वह जिंदा नहीं रह सकता। तो उसने असहयोग की बात बंद कर दी, उसने सत्याग्रह की बात बंद कर दी, क्योंकि सत्याग्रह किसके खिलाफ करोगे? असहयोग किसके खिलाफ करोगे? उसका ही भाई दिल्ली में हुकूमत कर रहा है। उसके खिलाफ सत्याग्रह भी नहीं हो सकता, असहयोग भी नहीं हो सकता। जब कि सच्चाई यह है कि इन बीस सालों में सत्ताधिकारियों ने असहयोग और सत्याग्रह की जितनी संभावनाएं और परिस्थितियां दी थीं, इतनी अंग्रेजों ने भी मुश्किल से दी थीं। लेकिन मठाधीश गांधीवादी तो सत्याग्रह अब किसके खिलाफ करें? तो उसे कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए जो सरकार के साथ-साथ चल सके।
अभी बिहार में था, तो बिहार के गांव में गया। बिहार के गांव के लोग विनोबा को सरकारी संत कहते हैं। अब सरकारी भी संत हो सकता है कोई? संत तो सदा विद्रोही होता है, संत सरकारी नहीं हो सकता। और अगर संत सरकारी हो सकता है तो यह वैसा ही है जैसे कोई कहे कि पतिव्रता वेश्या। यह वैसे ही है, इसका कोई मतलब नहीं है। इसका कोई मतलब ही नहीं होता। संत तो अनिवार्यरूपेण विद्रोही है, रिबेलियन तो उसके खून में होगा। और जहां असत्य देखेगा, जहां बुराई देखेगा, लड़ेगा। लेकिन लड़े किससे? मठाधीश गांधीवादी मुश्किल में पड़ा हुआ है। सरकार अपनी है, अपने लोगों की है, लड़ना किससे है? तो लड़ सकता नहीं। तो अब सरकार के सहयोग से, गांधी जिंदगी भर असहयोग की बात किए, और विनोबा और उनके साथी सरकार के सहयोग से क्रांति लाने की कोशिश में लगे हुए हैं। वह क्रांति नहीं आ रही है, सिर्फ सरकार के

बचाव का उपाय बन रहा है। क्रांति नहीं आ रही है, केवल समाज की सड़ी-गली व्यवस्था को शॉक एब्जार्वर का काम कर रहे हैं वे। कोई धक्का नहीं लगने देते हैं समाज की पुरानी व्यवस्था को। और लोगों को आशा बंधती है कि शायद इस तरह क्रांति हो जाएगी। तो लोग चुपचाप बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं। ये दो मठ हैं गांधीवादियों के। और मेरा मानना है, इनसे यही होने को था। इसलिए इनकी आलोचना का कोई अर्थ नहीं है। इनसे यही होने के और भी कारण हैं, वे भी समझने जरूरी हैं।
मेरी अपनी मान्यता यह है कि हिंदुस्तान के सारे महात्माओं ने आदर्श इतने ऊंचे रखे हैं कि सामान्य मनुष्य उन तक उठ ही नहीं सकता। आदर्श इतने ऊंचे रखे हैं कि सामान्य मनुष्य उनकी तरफ आंखें उठा कर भी नहीं देख सकता। और इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदुस्तान में कुछ थोड़े से लोग, बड़े-बड़े लोगों की तरह पैदा हुए, और बाकी समाज हीन से हीन होता चला गया। अगर आदर्श असंभव होंगे तो समाज हीन हो ही जाएगा। गांधी के आदर्श भी असंभव की सीमा छूते हैं। और असंभव आदर्श प्रभावित कर सकते हैं, आकर्षित कर सकते हैं लेकिन आचरण में नहीं लाए जा सकते हैं। हां, कभी कोई एकाध आदमी आचरण में ला सकता है। तो हम उसे आदर दे सकते हैं। जैसे सर्कस में आप जाते हैं और एक आदमी रस्सी पर चल कर दिखाता है तो हम बड़ी तालियां पीटते हैं। वह सर्कस में देखने लायक काम है। इससे ज्यादा उसका उपयोग नहीं है। ताली पीटी जा सकती है। लेकिन अगर सारे लोग रस्सी पर चलने की कोशिश करें तो सिवाय अस्पतालों के बिस्तर भरने के और कुछ भी नहीं होगा।
महात्मा के नाम से चलने वाले जो प्राणी हैं, वे कुछ जीवन की रस्सी पर चलने की कोशिश करते हैं। कुछ लोग अयास से चल भी जाते हैं। और लोग अगर आदर दे रहे हों तो कैसे भी अयास से गुजरा जा सकता है। अगर आप एक आदमी को सिर के बल खड़े होने में आदर देने लगें और सारा बंबई ताली पीटने लगें और उसे महात्मा कहने लगें, तो वह आदमी फिर दो पैर पर खड़े होने की फिक्र छोड़ देगा। फिर वह सिर पर ही खड़े होने का अयास जारी रखेगा। लेकिन उसके सिर के बल खड़े होने का मतलब यह नहीं होता कि सारे लोग सिर के बल चलने लगें।
हिंदुस्तान असंभव आदर्शों के पीछे पढ़ कर अपने जीवन, अपने चरित्र को, सबको नष्ट कर रहा है। गांधी जी ने फिर असंभव आदर्शों को हमारे सामने रख दिया। अहिंसा, एब्सल्यूट नॉन-वाइलेंस उनकी कल्पना में है। पूर्ण अहिंसा उनकी कल्पना में है। सच बात तो यह है कि गांधी खुद भी पूर्ण अहिंसक न हैं, न हो सकते हैं। कोई भी आदमी जिंदा रहते हुए पूर्ण अहिंसक नहीं हो सकता। खुद गांधी भी नहीं हो सकते। गांधीवादियों की तो बात दूर है, खुद गांधी जी भी पूरे गांधीवादी नहीं हैं, न हो सकते हैं। जिंदा रहना है तो हिंसा अनिवार्य है। जी नहीं सकते एक क्षण बिना हिंसा के। हिंसा होगी ही। और जिन बातों को हम अहिंसा का नाम देते हैं वे भी हिंसा के ही रूप हैं।
अगर मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं और आपसे कहूं कि जो मैं कहता हूं वह मान लें, तो आप कहेंगे, आप हिंसा का उपयोग कर रहे हैं। और मैं आपके घर के सामने अनशन करके बैठ जाऊं और कहूं कि मैं मर जाऊंगा अगर मेरी बात नहीं मानते, तो मैं हिंसा का उपयोग नहीं कर रहा हूं? मैं अब भी हिंसा का ही उपयोग कर रहा हूं। फर्क इतना है कि वह हिंसा आपकी तरफ जा रही थी, यह हिंसा मेरी तरफ जा रही है। वह हिंसा पर-हिंसा थी, यह आत्म-हिंसा है। वह हिंसा सैडिस्ट थी, यह मैसोचिस्ट है। यह खुद को ही मारने की धमकी है।
और ध्यान रहे, गांधी जी ने जितनी बार खुद को मारने की धमकी दी, एक का भी हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ। लेकिन गांधी जी मर न जाएं, इस ख्याल से लोग झुक गए। डाक्टर अंबेदकर ने साफ कहा है कि मेरा हृदय जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ, लेकिन सिर्फ यह सोच कर कि गांधी जैसे कीमत का आदमी न मर जाए, मैं झुका हूं। लेकिन मैं जो मानता था, अब भी मानता हूं। मेरा मानना वही है।
गांधी जी अनशन करके किसको झुका पाए? किसको समझा पाए? किसका हृदय-परिवर्तन हुआ? लेकिन खुद मरने की धमकी देने से लोकमानस भयभीत हुआ, इतना अच्छा आदमी मर न जाए। इसे बचाने की हमने कोशिश की। मैं मानता हूं, यह भी हिंसा है, यह भी कोएर्शन है, यह भी जबरदस्ती दबाव है। गांधी जी खुद भी पूरे अर्थों में अहिंसक नहीं हैं, न हो सकते हैं।

और यह भी ध्यान रहे, जब पूर्ण अहिंसा पर जोर दिया जाएगा तो उसके परिणाम घातक होंगे। हिंदुस्तान में गांधी जी ने पूर्ण अहिंसा पर जोर दिया, और हिंदुस्तान गांधी जी की आंखों के सामने इतनी बड़ी हिंसा से गुजरा जिसका कोई हिसाब नहीं। दस लाख आदमी हिंदुस्तान के विभाजन में मरे। दस लाख आदमी उस आंदोलन की पूर्णाहुति पर मरे, जो अहिंसक था। और खुद गांधी की हत्या भी हिंसा से हुई, यह भी थोड़ा विचारणीय है। इसके पीछे कुछ कारण है। मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि जीवन का एक बहुत महत्वपूर्ण नियम है जो हमारे ख्याल में नहीं है। उस नियम को मैं कहता हूंः लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट, उलटे परिणाम का नियम। अगर मुझे तीर चलाना है तो मुझे प्रत्यंचा को, धनुष बाण को पीछे की तरफ खींचना पड़ेगा। अगर तीर को आगे पहुंचाना है तो तीर को पहले पीछे खींचना पड़ेगा। जितना तीर पीछे चला जाएगा, उतना ही आगे जा सकता है। अब यह उलटी बात है। तीर को आगे भेजना है तो पीछे क्यों खींचते हैं आप? अगर दीवाल पर गेंद आप मारते हैं जोर से, तो जितने जोर से आप मारते हैं गेंद उतनी ही जोर से आपकी तरफ वापस लौट आएगी।
हिंदुस्तान हमेशा असंभव आदर्शों को थोपता रहा है मनुष्य की चेतना पर। गांधी जी ने अहिंसा का असंभव आदर्श आदमी के ऊपर थोपना चाहा। उसका एक ही परिणाम हो सकता था, गेंद उलटी दिशा में चली गई। हिंदुस्तान अहिंसा की बातचीत सुनते-सुनते भीतर हिंसा से भरता चला गया। जितनी हमने अहिंसा की बात सुनी उतनी भीतर हिंसा इकट्ठी होती चली गई। अहिंसा की बात सुनी, ऊपर से अहिंसा थोपी, अपने को दबाया, अहिंसक बनने की कोशिश की। लेकिन कोई कभी अहिंसक बनने की कोशिश से अहिंसक हो सकता है? हिंसा भीतर दबती चली गई, इकट्ठी होती चली गई; उसकी आग, उसका तूफान, उसका ज्वालामुखी भीतर इकट्ठा हो गया। उसे निकलने की जरूरत पड़ गई। वह गांधी जी की जिंदगी में ही हिंदू- मुसलमान के नाम से निकल आया।
मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान की इस हिंसा का जिम्मा अंततः गांधी जी
के ऊपर है। इतनी अहिंसा की बातचीत करनी, असंभव आदर्श की तरफ लोगों को खींचने के परिणाम बुरे होते हैं। अगर समाज को बहुत ज्यादा ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाए तो उसका परिणाम कामुकता का बढ़ना होता है, सेक्सुअलिटी का बढ़ना होता है। और जो समाज जितना ब्रह्मचर्य की शिक्षा में दीक्षित होगा, उतना कामुक और सेक्सुअल हो जाएगा। हमारा समाज हुआ है। और जो आदमी जितना सेक्स से लड़ेगा उतना कामुक हो जाएगा। और जो आदमी जितना हिंसा से लड़ेगा उतना हिंसक हो जाएगा।
महावीर नंगे खड़े थे। उन्होंने सब छोड़ दिया, और महावीर के पीछे जैनियों का जो अनुयायियों का वर्ग खड़ा हुआ, आप देखते हैं, हिंदुस्तान में सबसे ज्यादा धन जैनियों के पास है। महावीर ने धन छोड़ दिया, उनके अनुयायी ने सब धन इकट्ठा कर लिया। महावीर नग्न खड़े थे। जबलपुर में, जहां मैं रहता हूं, मेरे एक मित्र की दुकान है। वे महावीर को मानने वाले हैं, नग्न महावीर को मानने वाले हैं, दिगंबर महावीर को। उनकी कपड़े की दुकान है। कपड़े की दुकान का नाम है, दिगंबर क्लाथ स्टोर्स। नंगों की कपड़ों की दुकान। अब नंगों की कपड़ों की दुकान का क्या मतलब होता है? महावीर नंगे थे और जैनी अधिकतर कपड़ा बेचने का काम करते हैं, या कपड़ा बनाने का काम करते हैं।
यह आकस्मिक नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है, इसके पीछे कारण हैं। हम चित्त को जिस दिशा में दबाएंगे, चित्त उससे उलटी दिशा में जाना शुरू हो जाता है। और यह नियम समझ लेना जरूरी है, अन्यथा महात्माओं से छुटकारा बहुत मुश्किल है। और उनसे छुटकारा न हो तो उनके अनुयायियों से छुटकारा नहीं हो सकता। यह ध्यान रखना जरूरी है कि महात्मा अतिवादी तो नहीं है, एक्सट्रीमिस्ट तो नहीं है। और सब महात्मा अतिवादी होते हैं। क्योंकि अतिवादी हुए बिना आप उनको महात्मा स्वीकार ही नहीं कर सकते। जब तक वे अति पर, एक्सट्रीम पर न चले जाएं तब तक आप उनको महात्मा नहीं मानेंगे। जब वे अति पर चले जाएंगे तब उससे ठीक विपरीत अति वह पैदा करना शुरू कर देंगे। इसलिए दुनिया में हर महापुरुष के बाद पतन का एक काल आता है। जिस समाज में महापुरुष पैदा होगा, उस समाज में बीस-पच्चीस, तीस साल तक घास और पतन का काल होगा। हमेशा यह हुआ है। जीसस ने सिखाया कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा

मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। और ईसाइयों ने जितनी तलवार चलाई है उतनी किसी और के अनुयायियों ने नहीं चलाई।
मैंने सुना है, एक आदमी था, खूंखार जंगली। उसने ईसा की बाइबिल पढ़ ली।
और उस बाइबिल में पढ़ लिया कि जो आदमी तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा कर देना चाहिए। वह खूंखार जंगली आदमी था। उसने यह सिद्धांत मान लिया। रास्ते से निकल रहा था, एक आदमी ने उसके गाल पर चांटा मारा, उसने दूसरा उसके सामने कर दिया। उस दूसरे आदमी ने मौका देख कर दूसरे पर और जोर से चांटा मारा। उस जंगली ने उसकी गर्दन पकड़ कर मरोड़ दी। आस-पास के लोगों ने कहा कि तुम तो यह सिद्धांत मानते थे कि जो एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा उसके सामने कर देना। उसने कहा कि दूसरा मैंने कर दिया, तीसरा मेरे पास नहीं है। और तीसरे के बाबत जीसस ने कुछ कहा भी नहीं है। अब जो मुझे करना है वह मैं करूंगा। आखिर मैं अपनी बुद्धि से भी चलूंगा न एक सीमा के बाद! गांधीवादी अब अपनी बुद्धि से चल रहे हैं। गांधी जी की बुद्धि से चले,
अब वे अपनी बुद्धि से चल रहे हैं। आखिर कब तक गांधी जी की बुद्धि से चलेंगे? और वह बुद्धि अतिवादी है इसलिए खतरा होना सुनिश्चित है। हिंदुस्तान महात्माओं, साधुओं, संतों, अवतारों, तीर्थंकरों का देश है। जितने तीर्थंकर, अवतार हमने पैदा किए, दुनिया में किसी देश ने पैदा नहीं किए। होना यह चाहिए था कि हमारे देश का चरित्र सबसे ऊंचा होता। ऐसा नहीं हुआ। इसका कुछ कारण होना चाहिए।
हमारे तीर्थंकर, हमारे अवतार, हमारे महात्मा सब अतिवादी हैं। वे एक्सटीम पर जीते हैं। वे वहां जीते हैं जहां आखिरी छोर है। और उस आखिरी छोर पर कोई आदमी कोशिश करके चाहे तो जी सकता है, लेकिन उसकी खुद की जिंदगी भी बहुत तनाव और चिंता और परेशानी की जिंदगी होगी। और उसके पीछे चलने वाले तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। उसके पीछे चलने वालों को हिपोक्रेट होना ही पड़ेगा। उसके पीछे चलने वालों को पाखंडी बनना ही पड़ेगा। क्योंकि वे उतने अतिवादी हो नहीं सकते। अतिवादी के पीछे चल पड़े हैं तो बातें वे करेंगे--एक, जीएंगे ठीक दूसरी तरह से। जीना उनका उनकी बातों से उलटा होगा। इसलिए मेरा कहना यह है कि हमें अतिवाद से विचार करके बचने की जरूरत है। भारत की चेतना बहुत अति में जा चुकी है।
कनफ्यूशियस एक गांव में गया हुआ था। उस गांव के लोगों ने उससे कहा कि हमारे गांव में भी एक बहुत बड़ा महात्मा है, आप उससे मिलें। कनफ्यूशियस ने कहा कि उस बड़े महात्मा का क्या कारण है कि तुम उसे बड़ा कहते हो? तो उन लोगों ने कहा, वह इतना विचारवान है कि एक छोटा सा काम करने के पहले भी तीन बार सोचता है। कनफ्यूशियस ने कहा, तीन बार जरा ज्यादा हो गया। एक बार कम होता है, तीन बार जरा ज्यादा हो गया। दो बार काफी है। मैं उससे मिलने नहीं जाऊंगा। वह अतिवादी है, एक्सटीमिस्ट है। मैं तो गोल्डन रूल को मानता हूं, मैं तो स्वर्ण-नियम को मानता हूं। बीच में चलने के अतिरिक्त और कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। हीन आत्मा, अपराधी एक एक्सटीम पर चलता है, वह कहता है, हिंसा ही नियम है और महात्मा दूसरे अति पर चलता है, वह कहता है, अहिंसा की नियम है। जब कि जीवन बीच में चलता है, जहां अहिंसा और हिंसा के मध्य, जहां अहिंसा और हिंसा के मध्य एक रास्ता खोजना होता है। न तो पापी को नियम बनाया जा सकता और न महात्मा को नियम बनाया जा सकता।
गांधी ने भारत की जो पुरानी भूल थी उसको फिर दोहरा दिया है। लेकिन गांधी इसीलिए सफल भी हो सके। इसीलिए भारत के मन को वे प्रभावित भी कर सके।
क्योंकि भारत की जो पुरानी बीमारी थी वे उसमें बिल्कुल ही मौजूं बैठ गए।
भारत की पुरानी बीमारी अतिवाद की है। आखिरी, पूर्णता की हमारी बीमारी है।
और उस पूर्णता की बीमारी को हमने सब दिशाओं में बढ़ाने की कोशिश की।
अपरिग्रह, तो पूर्ण; फिर हम वस्त्र भी नहीं पहनेंगे। वस्त्र भी परिग्रह है। धन, तो पूर्णतया उससे छुटकारा चाहिए; तो हम निर्धन हो जाएंगे। शरीर का विरोध, तो अंतिम सीमा तक होगा। यहां जो शरीर के विरोधी हैं असली, उन्होंने मृत्यु की भी आज्ञा दी है। कोई आदमी आत्महत्या करना चाहे तो कर सकता है। आत्महत्या का उन्होंने विरोध नहीं किया, क्योंकि वे कहते हैं, हत्या तो शरीर की होती है। तो अगर कोई आदमी शरीर को खत्म करना चाहे तो करे, क्योंकि

शरीर हमारा दुश्मन है। उस सीमा तक हम अति पर गए। और वही अति गांधी ने फिर दोहरा दी। हमें बहुत ठीक मालूम पड़ी। हमारे चित्त को बहुत प्रभाव हुआ। हमने कहा कि ठीक वह आदमी आ गया जो हमारी भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, प्रतिनिधि है। प्रतीक वे थे, लेकिन भारतीय संस्कृति बीमार है। वे बीमारी के ही प्रतीक थे।
भारतीय संस्कृति पाखंडी है। भारतीय संस्कृति स्किजोफ्रेनिक है, जिसको हम कहें, आदमी को दो हिस्सों में तोड़ देने वाली है। पूरे आदमी को स्वीकार नहीं करती। अगर आप खाना खाते हैं तो भारतीय संस्कृति कहती है, अस्वाद से खाना, स्वाद मत लेना। गांधी जी भी वही समझाते थे। वे कहते थे, भोजन तो करो, लेकिन स्वाद मत लेना। अब आदमी को आप पागल करना चाहते हैं? स्वाद, स्वाद आदमी क्यों न ले? स्वाद बराबर ले, और मैं कहता हूं, पूर्णतया स्वाद ले। और जितना गहरा स्वाद ले सके उतना विकसित आदमी है, उतना रिफाइंड, उतना कल्चर्ड, उतना सुसंस्कृत आदमी है, जितना गहरा स्वाद ले सके। और मैं यह भी मातना हूं कि जो आदमी भोजन से जितना ज्यादा स्वाद लेगा वह भोजन से उतना ही मुक्त हो जाएगा। उसको भोजन की चिंता उतनी ही छूट जाएगी। और अस्वाद वाला आदमी भोजन करते वक्त अकड़ कर बैठेगा कि स्वाद लेना नहीं है। और जब भोजन कर चुकेगा तो चौबीस घंटा स्वाद का ख्याल आता रहेगा, जो नहीं लिया वह पीछा करेगा। मैं मानता हूं, स्वाद लेना, पूर्णतया से लेना। यह अस्वाद की बात बेमानी है और खतरनाक है।
जीवन में सारे सुख का विरोध है। गांधी जी का भी विरोध है। किसी भी तरफ
के सुख के वे विरोधी हैं। दुख का वरण है। जो आदमी जितना दुख का वरण करे, गद्दी को छोड़ कर नीचे बैठ जाए, हम कहेंगे, उतना बड़ा आदमी है। कपड़े उघाड़ कर धूप में बैठ जाए, सर्दी में खड़ा हो जाए, हम कहेंगे, उतना त्यागी, तपस्वी है। हम दुखवादियों को आदर देते हैं। दुख को हम तपश्चर्या कहते हैं। और दुख मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल है। कोई आदमी दुख नहीं चाहता। कोई आदमी दुख चाहता ही नहीं। जब तक कि आदमी मानसिक रूप से बीमार न हो तब तक कोई आदमी दुख नहीं चाहता। आदमी सुख चाहता है। और मैं समझता हूं कि अगर हमने दुख चाहने की व्यवस्था सिखाई तो आदमी पाखंडी हो जाएगा। ऊपर से वह कहेगा कि ठीक है, तपश्चर्या, त्याग। भीतर से? भीतर से वह सुख के रास्ते खोजेगा। इसलिए जैसे ही महात्मा विदा होगा, उसके दबाए हुए, स्टार्व्ड, भूखे जो अनुयायी होंगे, वे ठीक उलटे सिद्ध होंगे।
अगर महात्मा ने समझाया था कि झोपड़े में रहना, तो वे महल में रहना शुरू करेंगे। क्योंकि महात्मा के डर में, प्रभाव में, महात्मा के असर में उन्होंने किसी तरह झोपड़े में रहने को अपने को राजी कर लिया था। मन उनका महल मांगता था। और मैं मानता हूं कि हर आदमी का मन महल मांगता है। और हमें एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जहां हर आदमी को महल मिल सके। झोपड़े में रहना सिखाने की जरूरत भी क्या है? झोपड़े में रहना सिखाने की शिक्षा ही गलत है। उसका एक ही मतलब हो सकता है कि हम आदमी को उसके स्वभाव के विपरीत ले जाएं, फिर वह आदमी मौका पाकर अपने स्वभाव की पूर्ति करे।
तो आज दिल्ली में वाइसराय तो चला गया, लेकिन उसके महल बच गए। उनके महलों में, गांधीवादी जो झोपड़े में रहने की इच्छा रखता था, वह उन महलों में रह रहा है। हालांकि वह उसमें भी तरकीबें निकालता है। पहले राष्ट्रपति जब राजेंद्र बाबू हुए तो मैं दिल्ली गया तो उनका महल देखने गया। जिस कमरे में वे बैठते थे, मैं देख कर हैरान हुआ। उस कमरे को दिखाने वाले आदमी ने मुझे कहा कि राजेंद्र बाबू कितने तपस्वी, कितने सादे आदमी हैं, देखते हैं आप? मैंने कहा, क्या, मुझे समझ में नहीं पड़ता, यह क्या किया गया? महल में, वाइसराय की बैठक के महल में चटाइयां लगा दी गईं चारों तरफ। झोपड़ा हो गया यह। महल वही है, दीवाल पर चटाई और जड़ दी गई है, सादगी हो गई!
मैंने कहा, ये पागलपन के लक्षण हैं। महल में रहना है महल में रहो, झोपड़े में रहना है झोपड़े में रहो, यह महल के भीतर झोपड़ा कैसे बन सकता है? ईमानदारी और सफाई सीधी होनी चाहिए। झोपड़े में रहो तो झोपड़े बहुत हैं। झोपड़ों की हमारे मुल्क में कमी नहीं है। आप झोपड़े में रहो। लेकिन यह वाइसराय का महल, जहां एक हजार नौकर दिन-रात काम कर रहे हैं, वहां आप झोपड़े

में रहने का मजा भी ले रहे हो और महल में भी रह रहो हो? ये दोनों बातें कुछ मेल नहीं खातीं।
लेकिन मेल खाती हैं। वह जो भीतर द्वंद्व हमने पैदा करवाया आदमी के, वह मेल खाता है। तो गांधी ने सिखाया कि मोटे कपड़े पहनो, खादी के कपड़े पहनो। खादी बारीक से बारीक होती चली गई। आज खादी हिंदुस्तान में सबसे महंगा कपड़ा है। उससे महंगा कोई कपड़ा नहीं है। आज खादी सिर्फ वे ही पहन सकते हैं जो कपड़े के संबंध में महंगी से महंगी चीज का मजा लेना चाहते हैं, बाकी कोई नहीं पहन सकता है। खादी पहननी हो तो महंगी से महंगी चीज हो गई।
और गांधी ने मोटी खादी बनाई थी, और यह पतली खादी कैसे होती चली गई? मनुष्य का स्वभाव मोटा कपड़ा पहनने की इच्छा नहीं रखता। और मैं मानता हूं, क्यों पहने मोटा कपड़ा? अगर स्वभाव कहता है कि पतला और रेशमी कपड़ा दुखद है तो आदमी इस दुनिया में इसलिए पैदा हुआ है कि वह सुख ले। उसे दुख झेलने की जरूरत क्या है? और हम इस तरह की दुनिया बनाने की कोशिश करें जहां अधिकतम लोगों को रेशम मिल सके, यह तो समझ में, वैज्ञानिक समझ में आने वाली बात है। लेकिन आदमी का मन चाहता है रेशमी कपड़े, और चाहेगा। अगर आपकी चमड़ी खादी की तरह खुरदरी हो, तो कोई आपकी चमड़ी पर हाथ फेरने को राजी नहीं होगा। रेशम जैसी हो तो सुखद होगी। और हमें एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए जहां हर बच्चे की चमड़ी रेशमी जैसी सुखद हो। हर बच्चे को रेशम मिल सके, अच्छा मकान मिल सके, हर आदमी--मन की जो आकांक्षाएं हैं उनकी अधिकतम तृप्ति को उपलब्ध हो सके।
गांधी ने जो फिलासफी सिखाई इस मुल्क को, वह थी, अतृप्ति के भीतर सुख लेने की। अब यह हम आदमी को शीर्षासन करना सिखा रहे हैं, व्यर्थ। इसका कोई प्रयोजन नहीं है। इसका खतरा होगा, और इसका खतरा भोगना पड़ेगा अनुयायियों को। महात्मा तो विदा हो जाएगा, अनुयायी फंस जाएंगे पीछे। और उनकी दिक्कत होगी। और सारे लोग कहेंगे कि देखो, महात्मा के सिद्धांतों को गलत कर रहे हो। मैं आपसे कहता हूं, महात्मा का कोई सिद्धांत कोई गलत नहीं कर रहा है। महात्मा के सिद्धांत ऐसे हैं कि ये बेचारे आदमी उस चक्कर में पड़ कर अपने आप गलत हुए चले जा रहे हैं। ये गलत होंगे ही।
इस देश ने कभी भी नैसर्गिक मनुष्य को स्वीकृति नहीं दी है। वह जो हमारा निसर्ग है, हमारा जो प्राकृतिक व्यक्तित्व है, वह जो हमारी आत्मा है, उसका जो सहज सुख है, उसकी हमने कभी स्वीकृति नहीं दी। हम उससे उलटी बातों को आदर देते हैं। उलटी बातें कुछ लोग पूरी कर लेते हैं, उनको हम आदर, और महात्मा और तपस्वी कहने लगते हैं। फिर प्रभावित होकर हम भी इकट्ठे हो जाते हैं और हम कठिनाई में पड़ जाते हैं। हमारा व्यक्तित्व स्प्लिट पर्सनैलिटी है, टूट गया है। चाहते कुछ और हैं भीतर से, ऊपर से कुछ और चाहा जाता है। सिद्धांत कुछ और है, जिंदगी की मांग कुछ और है। तब दोनों के बीच उपद्रव शुरू हो जाता है। और तब ऐसा होता है, एक कदम इस दिशा में जाते हैं, दो कदम पिछली दिशा में जाना पड़ता है।
मैंने सुना है, एक दिन एक बच्चा स्कूल में आया है और अपने शिक्षक से उसने कहा कि--चूंकि उसे बड़ी देर हो गई है, और शिक्षक ने उससे पूछा, इतनी देर कैसे लगा दी? उसने कहा, देखते नहीं, बाहर पानी पड़ रहा है! मैं एक कदम आगे चलता था और दो कदम पीछे खिसक जाता था, ऐसी कीचड़ मची हुई है। शिक्षक ने कहा, इतनी कीचड़ कि तू एक कदम आगे चलता था, दो कदम पीछे खिसक जाता था? तो फिर यह बता, तू स्कूल तक पहुंचा कैसे? क्योंकि एक कदम आगे चलेगा, दो कदम पीछे जाएगा, तो तू स्कूल पहुंचा कैसे? उसने कहा, जब मेरी समझ में आया, तो मैंने घर की तरफ चलना शुरू कर दिया, तब मैं स्कूल पहुंच गया।
इस देश को घर की तरफ चलना शुरू करना पड़ेगा। नहीं तो एक कदम चलते हैं तपश्चर्या की तरफ और दो कदम पीछे खिसक जाते हैं। खींचतान कर आगे बढ़ते हैं, दुगुने पीछे पहुंच जाते हैं, और दोष हमेशा यह देते हैं कि हमारी कोई गलती है। हमारी गलती नहीं है। हिंदुस्तान के जो गांधीवादी हैं उनकी कोई गलती नहीं है। गलती है तो सिर्फ एक कि वे समझ नहीं पा रहे हैं कि आदमी का स्वभाव क्या है और हमारी मांग क्या है? हमारी मांग गलत है। सारी दुनिया धीरे-धीरे नैसर्गिक मनु को स्वीकार करने के करीब आ रही है। वे स्वस्थ होते चले जा

रहे हैं। हम अस्वस्थ हुए चले जा रहे हैं। हम पांच हजार साल से अस्वस्थ हैं और हमारा अस्वास्थ्य बढ़ता ही चला गया है और हमारे सब महात्मा हमारे अस्वास्थ्य को बढ़ाने वाले हैं, क्योंकि वे अति का आग्रह करते हैं और निसर्ग के प्रतिकूल जाने की आकांक्षा रखते हैं--उलटे जाओ, सीधे मत जाओ। सीधा कोई काम उन्हें पसंद नहीं है। ठीक कपड़े पहनो तो वे नाराज हैं, ठीक खाना खाओ तो वे नाराज हैं, ठीक मकान में रहो तो वे नाराज हैं।
मैंने सुना है, गांधी जी जेल में थे और वल्लभ भाई पटेल भी उनके साथ थे। गांधी जी रोज सुबह दस छुहारे फुला कर खाते थे। वल्लभ भाई ने सोचा कि बूढ़ा आदमी, हड्डियां निकलती जा रही हैं, कुछ थोड़ा ज्यादा नाश्ता हो तो ठीक रहेगा। फिर उन्होंने सोचा कि छुहारे दस की जगह बारह फुला दिए, क्या हर्जा है? कौन पता लगाएगा, कौन हिसाब रखता है? उनको पता नहीं था। गांधी जी ने छुहारे पहले गिने दूसरे दिन, जब उन्होंने बारह फुला दिए, गिने, बारह निकले। गांधी जी ने कहाः ये बारह क्यों फुलाए गए? मैं तो दस ही खाता हूं। वल्लभ भाई पटेल ने कहा कि दस और बारह में क्या फर्क है? जैसे दस, वैसे बारह। गांधी जी आंख बंद करके थोड़ी देर बैठे रहे। फिर उन्होंने चार छुहारे उठा कर अलग रख दिए। और उन्होंने कहा, जब दस और बारह में कोई फर्क नहीं तो आठ और दस में भी कोई फर्क नहीं। अब मैं आठ ही खा लूंगा। उस दिन से वे आठ ही छुहारे खाने लगे।
यहां समझने की जो बात है--वल्लभ भाई दस की जगह बारह रखना चाहते हैं, गांधी जी दस की जगह आठ कर लेते हैं। और वल्लभ भाई फिर दलील कुछ भी नहीं दे पाते। क्योंकि जब दस और बारह में कोई फर्क नहीं, तो आठ और दस में भी कोई फर्क नहीं है। फिर छह और आठ में भी कोई फर्क नहीं होता। गांधी जी को थोड़ा और आगे जाना चाहिए। फिर चार और छह में भी फर्क नहीं होता, फिर दो और चार में भी कोई फर्क नहीं होता। और फिर शून्य में और दो में भी क्या फर्क है? अगर यह गणित ऐसा ही जाए तो शून्य पर ले जाने वाला है। अगर वल्लभ भाई का गणित जाए तो वह अनंत पर ले जाने वाला है।
और मैं मानता हूं, यह सिकोड़ने वाला गणित गलत है। सिकोड़ने वाला गणित खतरनाक है। फैलाव चाहिए, विस्तार चाहिए। और जितना फैलाव और विस्तार की दृष्टि होगी उतना आदमी स्वस्थ होगा, क्योंकि उसके अनुकूल होगा। जीवन का सारा लक्षण फैलाव का है। एक बीज आप बोते हैं, एक बड़ा वृक्ष बीज से निकलता है। बीज से बहुत बड़ा वृक्ष निकलता है। फिर एक वृक्ष में करोड़ों बीज लगते हैं, इतना फैलाव हो गया है एक बीज का। फिर एक बीज बोइए, फिर एक वृक्ष, फिर करोड़ों। जीवन फैलता चला जाता है। जीवन विस्तार है। और यहां हिंदुस्तान का महात्मा सिखाता है, संकोच, सिकुड़ जाना, बंद हो जाना; क्लोजिंग, ओपनिंग नहीं। जीवन के विरोध में है सिकुड़ना। जितना आप सिकुड़ेंगे, जीवन इनकार करेगा। जीवन जगह-जगह से तोड़ कर बाहर निकलेगा। और अगर सिकोड़ने का बहुत आग्रह किया, तो जीवन गलत जगह से मौका पाकर तोड़ कर निकल जाएगा। तब तकलीफ शुरू होगी। अगर यहां दरवाजे हैं और हमने इनकार कर दिया है कि दरवाजों से निकलना पाप है, तो फिर आप क्या करोगे? निकलना तो पड़ेगा। तो फिर दीवालें तोड़ कर निकलेंगे आप।
हिंदुस्तान जहां-जहां नैसर्गिक दरवाजा हो सकता है मनुष्य के विकास का, सब जगह पुलिस वाले बिठाए हुए हैं। वहां से नहीं जा सकते। वहां से गए कि नरक में पड़े। तो फिर आदमी जाएगा कहीं, फैलेगा, तब वह गलत जगह से चोरी के रास्ते दरवाजे खोल कर दीवालों से निकल जाएगा। जब दीवालों से निकले तो कहना, करप्शन बढ़ रहा है। जब दीवालों से निकले तो कहना कि भौतिकवाद बढ़ रहा है। जब दीवालों से निकले तो कहना कि आदमी का पतन हो रहा है। आदमी का पतन नहीं हो रहा है, आपके सिद्धांत ऐसे हैं कि आदमी की गर्दन घोंटे दे रहे हैं, उसको जीना मुश्किल किए दे रहे हैं। और फिर जब जीना मुश्किल हो जाए तो आदमी जीवन का कोई भी रास्ता खोजता है। शायद आपको पता न हो, संस्कृत का जो शब्द हैः ब्रह्म। परमात्मा के लिए ब्रह्म का अर्थ हैः विस्तार। वह जो सदा एक्सपैंडिंग है, वह जो सदा फैलता रहता है।
अगर आप आइंस्टीन से परिचित हैं तो शायद आपको पता होगा कि आइंस्टीन ने कहा कि सारी दुनिया भी फैल रही है। तारे एक-दूसरे से प्रतिपल, करोड़ों मील

की रफ्तार से भागे चले जा रहे हैं। एक्सपैंडिंग यूनिवर्स है, सब चीजें फैल रही हैं। इस फैलते हुए जगत में जहां सब फैलने को आतुर है, आप भी फैलने को आतुर हैं। हर आदमी फैलने को आतुर है। जहां फैलने की आतुरता निसर्ग का नियम है वहां सिकुड़ना हमारा सिद्धांत है कि सिकोड़ो। आठ और दस में क्या फर्क है, छह और आठ में क्या फर्क है, शून्य और दो में क्या फर्क है--सिकोड़ते चले जाओ। और जब शून्य पर आदमी को खड़ा कर दोगे, उस आदमी को भी भूख लगती है। तब फिर वह क्या करे? तब वह चोरी से खाना खाए। हम जीवन की सहज चीजों को भी आदमी को मजबूर करते हैं कि वह चोर हो जाए, बेईमान हो जाए।
जीवन की सरलतम उपलब्धियों के लिए हम इतनी बाधाएं खड़ी कर देते हैं कि सिवाय व्यभिचारी और भ्रष्टाचारी हो जाने के कोई उपाय न रहे। लेकिन हमें यह दिखाई नहीं पड़ता है। और जब हमें यह सब दिखाई पड़ता है, भ्रष्टाचार, तो हम और जोर से रोकने की कोशिश करते हैं।
मैं दिल्ली गया, एक बड़े साधु एक बड़ा सम्मेलन करते थे। और सम्मेलन हो रहा था, अश्लील पोस्टर जो लगाए जाते हैं दीवालों पर उनके खिलाफ, कि अश्लील पोस्टर नहीं लगाए जाने चाहिए। भूल से मुझे भी बुला लिया। कुछ लोग मुझे भूल से भी बुला लेते हैं। उन्होंने भूल से मुझे बुला लिया और कहा कि आप भी समझाइए लोगों को कि अश्लील पोस्टर न लगाए जाएं। मैंने उनसे कहा कि तुम साधु हो सब, तुम्हें अश्लील पोस्टर देखने की जरूरत क्या है--पहली बात। आप काहे के लिए अश्लील पोस्टर देखने जाते हैं? और जिनको देखना है, उन पर रोक लगाने का किसी को क्या हक है? सवाल यह नहीं है कि अश्लील पोस्टर लगे हैं, सवाल यह है कि आदमी अश्लील पोस्टर क्यों देखना चाहता है?
और मैंने उनसे कहा कि महात्माओ, तुम्हीं कारण हो। अश्लील पोस्टर के दिखाने वाले तुम्हीं हो। उन्होंने कहा, क्या मतलब? हम? हम तो सदा विरोध में हैं। हम कैसे कारण हो सकते हैं? लेकिन वह लॉ ऑफ रिवर्स, उनको पता नहीं है। वे कहते हैं, हम तो विरोध में हैं। हम तो कहते हैं, आंख बंद रखो, स्त्री को देखो ही मत। हम कहां अश्लील पोस्टर का पक्ष कर रहे हैं। लेकिन जो कौम सिखाएगी, आंख बंद रखो, स्त्री को देखो मत, फिर आंख तिरछी करके स्त्री को देखना पड़ेगा। फिर अश्लील पोस्टर देखना पड़ेगा। फिर गंदी किताब गीता के बीच रख कर पढ़नी पड़ेगी। कवर गीता का रखना पड़ेगा, गंदी किताब पढ़नी पड़ेगी। वह अनिवार्य हो जाएगा। क्योंकि हम जो व्यवस्था दे रहे हैं, वह खतरनाक है। अभी आपने अखबारों में पढ़ा होगा कि सिडनी में एक अमरीकन नग्न अभिनेत्री को प्रदर्शन के लिए बुलाया। उस बड़े हॉल में जिसमें दो हजार लोग बन सकते थे, और उस बड़े नगर में जहां बीस लाख की आबादी हो, केवल दो आदमी उस नंगी औरत का नाच देखने आए। उस नंगी औरत को दो आदमी देख कर सर्दी लग गई। एक तो ठंडी रात थी और नंगा उसको नृत्य करना पड़ा। और दो आदमियों को देख कर नृत्य करने का मजा भी चला गया, और लोग होते तो गर्मी होती, प्रशंसा होती, तो थोड़ा गर्म होता, सब गड़बड़ हो गया। उसे सर्दी पकड़ गई और आयोजक मुश्किल में पड़ गए--कोई देखने नहीं आया।
हिंदुस्तान में इस नंगी औरत का प्रदर्शन करवाइए, बंबई में करवाइए, तो
दो आदमी आएंगे देखने? दो आदमी पीछे रह जाएं तो मुश्किल है। और यह मत सोचना आप कि बुरे आदमी देखने आ जाएंगे। हो सकता है बुरे आदमी न भी आएं, लेकिन अच्छे आदमी सब आ जाएंगे। हां, एक फर्क होगा, अच्छे आदमी सीधे रास्ते नहीं आएंगे, सामने के दरवाजे से नहीं आएंगे। पीछे मैनेजर से व्यवस्था करेंगे, अलग रास्ता हमारे लिए दो। हम चुपचाप आकर देख लें, कोई हमें न देख पाए। लेकिन सब आ जाएंगे। क्यों? इतना प्रताड़ित किया हुआ है हमने, इतना सप्रेसिव, इतना दमनकारी हमारा विचार है कि वह चित्त को उलटी तरफ ले जाता है। जितना दमन होगा, उतना आदमी कामुक होगा। दमन कौन करवा रहा है? सारे महात्मा मिल कर दमन करवा रहे हैं।
गांधी जी ने फिर दमन की फिलासफी हमें दे दी, एक सप्रेसिव मॉरेलिटी का फिर ख्याल दे दिया, हर चीज का दमन करने का भाव दे दिया। इतना दमन उन्होंने करवाया अपने अनुयायियों से पिछले तीस-चालीस सालों में, उसका बदला ले रहे हैं उनके सब अनुयायी। उसका बदला ले रहे हैं वे कि ठीक है, अब बहुत दमन कर लिया, अब आखिरी जिंदगी में थोड़ा तो आराम करने दो। तो जो-जो दमन करवाया गया

था वही-वही उनसे फूट कर निकल रहा है। वही फूट कर निकल रहा है जो दबाया गया हो।
तो मेरा मानना है कि गांधीवादी कहां हैं, इसको इस तरह मत पूछें। गांधीवादी जहां हैं वह इस बात का सबूत है कि गांधी जी की जो विचार दृष्टि थी, वह यहीं ले जा सकती थी। वह और कहीं नहीं ले जा सकती थी। वह यहीं पहुंचा सकती थी। जीवन के सत्य को समझने का हमारा साहस ही हमने खो दिया है। जीवन का सत्य बहुत और है। अति नहीं है जीवन का सत्य। जीवन का सत्य अत्यंत मध्य का सूत्र है। और जीवन के सत्य सिकोड़ने वाले नहीं हैं, जीवन के सत्य विस्तार करने वाले हैं।
रवींद्रनाथ की फोटो आपने देखी है? गांधी जी की फोटो आपने देखी है? गांधी जी एक कपड़े को ऐसा लपेट कर पहने हुए हैं कि अगर उससे कम में काम चल जाए तो वे उसमें से और चिंदी फाड़ कर अलग कर दें। उसमें उससे कम में और नहीं चल सकता काम, इसलिए लपेटे हुए हैं। रवींद्रनाथ की फोटो आपने देखी है? वह इतना बड़ा कोट पहने हुए हैं कि उसमें दो-चार गांधी जैसे आदमी और अंदर समा जाएं। और वह कोट जमीन छू रहा है। रवींद्रनाथ ने कहा है, एफ्लुएंस चाहिए, समृद्धि चाहिए। हर चीज ज्यादा चाहिए ताकि भीतर कहीं भी मन को सिकोड़ने का कोई कारण न रह जाए। हर चीज ज्यादा चाहिए। मन को कहीं भी सिकुड़ना न पड़े, इतना फैलाव चाहिए। इतना फैलाव चाहिए कि कहीं कोई... मनोवैज्ञानिक भी यही कहते हैं, अगर आप बाजार साबुन खरीदने जाते हैं तो बजाय इसके कि हर महीने एक साबुन खरीदें, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, बाजार जाएं एक दिन और बारह साबुन इकट्ठी खरीद लाएं। आप ज्यादा फैले हुए अनुभव करेंगे। बारह साबुन आपने खरीदी हैं। कोई संकोच नहीं है, कोई सिकोड़ नहीं है। आप घर आते हैं--आप ज्यादा फुलफिल्ड, लगेगा कि ज्यादा पूरे आ गए हैं। जिंदगी फैलाव मांगती है।
गरीबी का दुख क्या है? गरीबी का दुख भूख नहीं है। गरीबी का दुख असल में
यह है कि हर जगह सीमा आ जाती है, कहीं भी फैल नहीं सकते। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं और दो पैसे की चीज भेंट करना चाहता हूं तो नहीं कर सकता। भूख तो सही जा सकती है, लेकिन किसी को दो पैसे की चीज भी देने की हिम्मत मैं नहीं जुटा पाता हूं, तो बस सिकुड़ गई आत्मा। मैं मुश्किल में पड़ गया। गरीबी का सबसे बड़ा दुख यह है कि सब तरफ सीमाएं हैं। कहीं से भी बढ़ो, सीमा आ जाती है। धन का सबसे बड़ा सुख क्या है? धन का सबसे बड़ा सुख यह नहीं है कि आपकी तिजोरी में धन भर गया तो आप बहुत आनंदित हैं। धन का सबसे बड़ा सुख यह है कि आप पर सीमाएं जरा दूर हो गईं, आप कुछ कर सकते हो, हाथ-पैर फैला सकते हो। एक छोटे मकान में एक आदमी रहता है। वह आदमी छोटे मकान में रहेगा तो उसका मस्तिष्क धीरे-धीरे छोटा होता चला जाएगा। एक फैलाव चाहिए, एक बड़ा भवन चाहिए, एक बड़ा कमरा चाहिए जहां आदमी फैल सके, घूम सके, चल सके, हिल-डुल सके। लेकिन हिंदुस्तान ने जो अब तक का दर्शन, फिलसफा विकसित किया है वह ऐसा सिकोड़ने वाला है, ऐसा सिकोड़ने वाला है कि सब तरफ जंजीरें हैं और सब तरफ जंजीरों को हमने कस कर पकड़ लिया है। और जितना जो आदमी इन जंजीरों को पकड़ता है, हम कहते हैं, उतना महान है। क्यों कहते हैं महान? महान सिर्फ इसलिए कहते हैं कि वह प्रकृति के प्रतिकूल चल रहा है, उलटा चल रहा है। और क्या महानता है? लेकिन प्रकृति के प्रतिकूल चलना महानता है? प्रकृति के प्रतिकूल चलना पागलपन है, और उस पागलपन में सिर्फ आदमी टूट सकता है, मिट सकता है, नष्ट हो सकता है। फिर यह हो सकता है, एकाध आदमी सर्कस का खेल साध ले, लेकिन जब पूरा समाज इस तरह का कार्य करने लगे तो बहुत मुश्किल खड़ी हो जाती है।
तो मेरी दृष्टि में गांधी पर पुनर्विचार की जरूरत है गांधीवादियों की हालत देख कर। जैनियों की हालत देख कर महावीर पर पुनर्विचार की जरूरत है। ईसाइयों की हालत देख कर जीसस पर पुनर्विचार की जरूरत है। और अगर हम पूरी दुनिया की आज तक की हालत देखें, तो हमें पूरे ओल्ड माइंड, वह जो पुराना मस्तिष्क था, उस पर पुनर्विचार की जरूरत है। उसमें कहीं भूल थी, उसमें बुनियादी भूल थी। वह अहिंसा की बात करता था और हिंसा पैदा होती थी। वह प्रेम की बात करता था और घृणा खड़ी होती थी। वह अपरिग्रह की बात करता था और

परिग्रह बढ़ता था। वह निर्धनता की बात करता था और धन इकट्ठा होता था। वह पुराना पूरा मस्तिष्क उलटे परिणाम ला रहा था। जो वह कहता था उससे उलटा होता था। वह कहता था, स्त्रियों से दूर, स्त्री-पुरुष अलग-अलग--और स्त्री- पुरुष का दिमाग सेक्स से भरता चला जाता था।
मेरे एक मित्र डाक्टर हैं दिल्ली के। वे कुछ दिन पहले लंदन में एक कांफ्रेंस में भाग लेने गए। एक मेडिकल कांफ्रेंस थी, यूरोप के डाक्टरों की। एशिया से भी कुछ डाक्टर गए। वे भी गए। मैं उनसे कुछ बात कर रहा था, उन्होंने एक घटना बताई। मुझे वे कहने लगे कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। हाइड पार्क में पांच सौ डाक्टरों के लिए मिलने-जुलने, कुछ खाने-पीने, गपशप करने की बैठक थी। वे सारे लोग इकट्ठे हुए हैं। वे गपशप कर रहे हैं। ये मित्र डाक्टर सरदार हैं, ये भी वहां गए हुए हैं। लेकिन इनका मन उस बातचीत में नहीं लगता है। पास की एक बेंच पर एक झाड़ के नीचे एक युवक और एक युवती दोनों एक-दूसरे के गले में हाथ डाल कर आंख बंद किए कहीं खो गए हैं। इनके प्राण तो घूम-फिर कर वहीं चले जाते हैं। भारतीय दिमाग और कहीं जा नहीं सकता। उनको परेशानी यह होती है कि कोई पुलिस वाला आकर इनको उठाता क्यों नहीं कि पब्लिक पार्क में, ऐसी खुली जगह में यह क्या हो रहा है? यह कोई प्रेम करने की जगह है? प्रेम तो दरवाजा बंद करके करना चाहिए। यह कोई प्रेम करने की जगह है? और यह तो, इतने जहां लोग इकट्ठे हैं, कोई रोकता क्यों नहीं? और उनका ध्यान बार-बार वहीं जा रहा है। सारा रस उनका खो गया। पास में
एक डाक्टर है उनके, जर्मनी का, उसने उनके कंधे पर हाथ रखा और कहा कि आप बार-बार उधर मत देखिए। हो सकता है पुलिस वाला आकर उठा कर आपको ले जाए। क्योंकि यह बहुत अशिष्ट और संस्कारहीन बात है। इन्होंने कहा, मुझे? उनको ले जाना चाहिए। उनका तुमसे कोई संबंध नहीं है। और डाक्टर ने, इस मेरे मित्र डाक्टर ने कहा कि इतनी खुली जगह में ये लोग क्या कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा, वे जानते हैं कि यहां पांच सौ शिक्षित लोग इकट्ठे होने वाले हैं, उनसे क्या प्रयोजन है किसी का? वे अपने काम में होंगे, हम अपने काम में हो सकते हैं। आप क्यों परेशान हैं?
लेकिन हमारा जो चित्त है वह दमन से भरा हुआ है। और जो-जो हमने दबाया है वही-वही हमें चारों तरफ दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। गांधी जी ने फिर दमन हमें सिखाया--सब बातों में दमन। हिंसा को दबाओ, हिंसा बुरी है। घृणा को दबाओ, घृणा बुरी है। परिग्रह को दबाओ, परिग्रह बुरा है। धन को दबाओ, धन बुरा है। सुख को दबाओ, सुख बुरा है। सब बुरा है, इसे दबाओ। और दबाने का एक ही मतलब हो सकता था--जो हुआ है--कि जो-जो दबाया था, वह सब फूट कर बाहर आ गया है। जैसे मवाद फोड़े में भरी हो ऊपर से पट्टी लगा कर दबा दो। वह फूट कर निकलेगी, पूरे शरीर से निकलेगी। जो दबाया था गांधीवादियों ने, परिणाम पूरा मुल्क भोग रहा है। दबाया था उन्होंने, लेकिन वे सत्ता में पहुंच गए और उनकी मवाद पूरे मुल्क पर फैल रही है।
क्या इसका यह मतलब है कि मैं यह कहता हूं कि हिंसा को दबाओ मत, हिंसा करो? क्या मैं यह कहता हूं कि वासना में डूब जाओ? क्या मैं इंडल्जेंस को कहता हूं? क्या मैं यह कहता हूं, क्रोध करो, हिंसा करो, घृणा करो? नहीं, मैं यह नहीं कहता हूं। मैं यह कहता हूं, दबाओ मत, जानो, पहचानो, समझो। और मैं यह कहता हूं कि अगर समझी गई हिंसा, तो एक और तरह की अहिंसा व्यक्तित्व में आनी शुरू होती है--एक और ही तरह की। अगर मैं अपनी हिंसा को समझूं, पहचानूं, खोजूं और देखूं कि मेरी हिंसा मुझे ही दुख लाती है और मेरे ज्ञान और मेरी समझ के बढ़ने से मेरी हिंसा धीरे-धीरे कम हो, तो मैं दबाता नहीं। और तब धीरे- धीरे अहिंसा बढ़नी शुरू होती है। मैं अहिंसा को बढ़ाता नहीं। मैं हिंसा को दबाता नहीं, समझ को बढ़ाता हूं। समझ बढ़ती है, हिंसा कम होती है, अहिंसा बढ़ती है। लेकिन ऐसा आदमी खतरनाक नहीं होगा फिर क्योंकि उसने दबाई नहीं है हिंसा, जो मौका पड़ने पर फूट निकले।
मैं कहता हूं, सेक्स को समझो, दबाओ मत; समझो, पहचानो, खोजो, जीओ। और उस समझ से जितना सेक्स विलीन हो जाए, शुभ है। फिर वह सेक्स वापस नहीं लौटेगा। और अगर दबाया, तो वह प्रतीक्षा करेगा। आज नहीं कल, मौका पाते ही वापस लौट आएगा। धन को जीओ, समझो। और जो आदमी धन को जीएगा, समझेगा, वह धन को न तो

पकड़ेगा, न छोड़ेगा; धन सिर्फ एक माध्यम हो जाएगा। और वह आदमी धन के एक अर्थों में बाहर हो जाएगा। वह धन को जीएगा; न पकड़ेगा, न छोड़ेगा, न धन के पीछे पागल होगा, न धन छोड़ने के पीछे पागल होगा। न तो वह महल न मिले तो सोने से इनकार नहीं करेगा, और न ही वह यह कहेगा कि महल मिल जाए तो इसमें तो मैं सो ही नहीं सकता। उस जीवन में एक समझ, जीने की एक कला विकसित होगी।
दमन जीवन की कला को विकसित नहीं होने देता है।
और गांधीवादियों के साथ जो कठिनाई हो गई वह यह कि उनके पास जीवन की कोई कला नहीं है। और तब वे खुद भी मुसीबत में पड़े हैं और चूंकि उनके हाथ में सत्ता है इसलिए वे दूसरों को भी मुसीबत में डाल रहे हैं। वे जो भी कह रहे हैं, उनके जीवन में खुद गलत हो गया है, वही वे पूरे मुल्क को भी समझा रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चों को भी वे वही समझा रहे हैं। जो उनकी जिंदगी में गलत हो गया है वही समझाए चले जा रहे हैं। अब गांधी-शताब्दी चलती है तो वर्ष भर वे वही प्रचार कर रहे हैं जो उनकी जिंदगी में ही असफल हो गया है। उसी का वे प्रचार किए चले जा रहे हैं। वे पूरे मुल्क को असफल करना चाहते हैं।
इस पर चिंतन होना चाहिए। मैं समझता हूं, महात्मा गांधी से ही नहीं, भारत को महात्मा मात्र से मुक्त होने की जरूरत है। महात्मा गांधी का सवाल नहीं है, भारत को दमन की दृष्टि से मुक्त होने की जरूरत है। यह सवाल ज्यादा गहरा, ज्यादा मनोवैज्ञानिक है। यह सवाल ज्यादा आध्यात्मिक है। किसी एक वाद से नहीं, वाद मात्र से भारत को मुक्त हो जाने की जरूरत है। और अगर हम यह नहीं कर पाते हैं, तो हमने जो एक दुर्भाग्य पैदा कर लिया है, एक अंधकार, और एक ऐसी मुसीबत, जो कहीं हल होती नहीं दिखाई पड़ती और जितना हम हल करने का उपाय करते हैं, मुसीबत और बढ़ती चली जाती है। क्योंकि हमारा उपाय वही होता है जिससे मुसीबत पैदा हुई है। वही हम उपाय करते हैं। जिससे मुसीबत का जो मूल कारण है, उसी उपाय को हम और करते चले जाते हैं। जिस दवा से मरीज बीमार पड़ गया है, हम वही दवा और पिलाए चले जाते हैं कि इसे ठीक करना है। वह मरीज और बीमार पड़ता चला जाता है। हमने पूरे देश की हत्या कर दी है। और आगे अगर हम नहीं सचेत होते हैं तो खतरे भारी हो सकते हैं। भारत की पूरी प्रतिभा को जंग लगा दी है और जंग लगने के कारण सूत्र-रूप में अंततः मैं कह दूं--
भारत की प्रतिभा को जंग लगने का सबसे बड़ा कारण है कि हम प्रकृति- विरोधी हैं। हमें प्रकृति-प्रेमी होना पड़ेगा। जो निसर्ग है, जो नेचरल है, जो स्वाभाविक है, उसे पूर्ण मन से स्वीकार करना पड़ेगा। उसी के सहारे, उसी के माध्यम से, उसी को विकसित करके हम ऊपर उठेंगे। जैसे, शरीर को स्वीकार करना पड़ेगा, विरोध नहीं। और शरीर को ही सीढ़ी बना कर हम आत्मा तक पहुंच सकते हैं। लेकिन अब तक हम शरीर के विरोध में पहुंचने की कोशिश करते रहे हैं। और तब उलटा हुआ है। जो हमने चाहा है वह बिल्कुल नहीं हुआ है। आज भारत से ज्यादा मैटीरियलिस्ट मुल्क खोजना मुश्किल है। और हम अध्यात्म की बातें करते हैं। और भौतिकवादी हम हद्द दर्जे के हैं।
एक साध्वी मुझसे मिलने आई थी। इधर बंबई के ही एक मकान पर बैठ कर हम बात करते थे। हवा आई समुद्र की, अब हवा को क्या पता, उसने मेरी चादर उड़ाई और साध्वी को मेरी चादर छू गई। वह साध्वी आत्मा-परमात्मा की बातें कर रही थी, एकदम घबड़ा गई। मैंने पूछाः क्या हुआ? बात जारी रखो।
उसने कहा कि नहीं, आपकी, पुरुष की चादर छू गई। पुरुष की चादर! तो मैंने उससे कहाः चादर भी पुरुष और स्त्री हो सकती है? यह मैंने सोचा भी नहीं अब तक कि चादरों में भी सेक्स होता है। स्त्री और पुरुष का भेद होता है। यह तेरे को किसने बताया है? उस साध्वी ने कहा कि नहीं, जो पुरुष ओढ़ता है वह पुरुष की हो गई, जो स्त्री ओढ़ती है वह स्त्री की हो गई। और पुरुष का हमें कुछ भी नहीं छूना है। अब मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।
मैंने उससे कहाः अभी तू आत्मा की बातें कर रही थी और कह रही थी कि हम शरीर नहीं हैं। और मुझे पता चलता है कि तू शरीर तो दूर, चादर भी है। वह आत्मा की बातें कहां गईं? पुरुष की चादर ने आत्मा को नष्ट कर दिया!
बातें आत्मा की कर रहे हैं, एकदम शारीरिक हैं, हद्द शारीरिक हैं। बातें ब्रह्म की कर रहे हैं और ब्रह्मवादी शूद्रों को पैदा किए चले जा रहे हैं। और शूद्र छू ले अगर किसी महात्मा को तो महात्मा अपवित्र हो जाते हैं।

यह जो हमारी अजीब दृष्टि है, हैरानी की है। एक तरफ कहते हैं धन बिल्कुल बेकार है, लेकिन हमसे ज्यादा धन को पकड़ने वाला कोई भी नहीं है। कितने जोर से पकड़ते हैं? इतने जोर से पकड़ते हैं कि वह धन मुट्ठी में ही रह जाता है। हम उस मुट्ठी को बांधे-बांधे मर जाते हैं। न उस धन को भोगते, न उस धन को जीते, न उस धन का उपयोग करते, बस जोर से पकड़ लेते हैं। और चिल्लाए चले जाते हैं कि धन बेकार है, धन बेकार है। जो चिल्लाते हैं, धन बेकार है, उनकी भी अगर वेल्यूएशन को, अगर उनके भी मूल्यांकन को खोजने जाएं तो हैरान हो जाएंगे।
मैं जयपुर गया। एक मित्र आए और कहा कि एक बहुत बड़े महात्मा ठहरे हुए हैं। आप चलेंगे? मैंने कहाः वे बड़े महात्मा हैं, यह तुम्हें कैसे पता चला? उन्होंने कहाः खुद जयपुर महाराज उनके पैर छूते हैं। तो मैंने कहा, जयपुर महाराज बड़े होते हैं इससे, महात्मा तो बड़े नहीं होते। अगर जयपुर महाराज न छुएं पैर तो? तो महात्मा छोटे हो जाएंगे? जयपुर महाराज बड़े हैं क्योंकि धन उनके पास है, तो जिस महात्मा के पैर छूते हैं वह महात्मा भी बड़ा है। इसके भीतर गहरे में क्राइटेरियन क्या है? धन! इसमें महात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। धन यहां क्राइटेरियन है। मापदंड धन है।
महावीर के भक्त अपनी किताबों में लिखते हैं कि इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने हीरे, इतने माणिक छोड़े, इतने रथ, इतने महल, इतनी जमीन-जायदाद छोड़ी। सबका पूरा ब्योरा देते हैं। उनसे कोई पूछे कि यह ब्योरा किसलिए दे रहे हो? क्योंकि इसी ब्योरे पर पता चलेगा कि महावीर कितने बड़े तपस्वी थे। यही ब्योरा बताएगा कि महावीर कितने बड़े आदमी थे। अगर महावीर किसी गरीब के घर में पैदा होते तो तीर्थंकर नहीं बन सकते थे। क्योंकि घोड़ा-हाथी कहां से छोड़ते? जब था ही नहीं छोड़ने को तो छोड़ते क्या!
यही तो वजह है कि हिंदुस्तान में एक गरीब आदमी का बेटा न तीर्थंकर बना, न अवतार बना। अब तक नहीं बन सका। बन भी नहीं सकता। क्योंकि हम धन को नापने और पकड़ने वाले लोग हैं। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के लड़के हैं। बुद्ध राजा के लड़के हैं, राम, कृष्ण, सब राजा के लड़के हैं। हिंदुस्तान में गरीब आदमी को भगवान होने की अभी तक कोई हैसियत नहीं मिल सकी। कुछ कारण होना चाहिए पीछे। हमारी पकड़ धन पर है--चाहे हम छोड़ें, चाहे हम पकड़ें, तौलेंगे हम धन से। माध्यम धन होगा। उससे ही नाप चलेगी और बातें हम धन के विरोध की करते रहेंगे। हमारा सारा का सारा दृष्टिकोण--जो हम कहते हैं, उससे उलटा जीते हैं।
और क्यों ऐसा होता है? आपको मैं दोष दूं? नहीं, आपको दोष नहीं देता। किसी को दोष नहीं देता। दोष देता हूं चिंतना को, विचार की शक्ति को। हम यह नहीं समझ पाते कि हम जीवन के विपरीत जाकर नहीं जी सकते। अगर कोई आदमी अपने जूते के फीते पकड़ कर उठाने की कोशिश करे खुद को और गिर पड़े, तो उस आदमी को दोष देंगे आप कि यह आदमी नालायक है, गिर जाता है, उठते नहीं बनता है इससे? नहीं, दोष देना पड़ेगा सिर्फ उसकी बुद्धि को कि वह पागल है, यह नहीं समझ पा रहा है कि अपने ही पैर के जूते के फीते उठा कर कोई अपने को ऊपर नहीं उठा सकता। जैसे कोई आदमी अपने ही ओंठ से अपने ही ओंठ को चुंबन करने की कोशिश करे, और चुंबन तो ले नहीं सकता अपने ही ओंठ का, चुंबन तो दूसरे के ही ओंठ का लिया जा सकता है, अपने ओंठ का कैसे लेंगे? तो पागल हो जाए। जैसे कभी किसी कुत्ते को देखा हो कि अपनी पूंछ को पकड़ने की कोशिश में छलांग लगाता है। जितना उचकता है, पूंछ उतनी सरक जाती है। उस कुत्ते को पता नहीं है कि पूंछ अपनी ही है। पकड़ोगे कैसे? तुम उचकोगे, पूंछ भी उचक जाएगी।
करीब-करीब भारत ऐसे ही असंभव, एब्सर्ड, नासमझी से भरे हुए काम करने में लगा हुआ है। जिंदगी से उलटा जाने की कोशिश कर रहा है। और जिंदगी हम खुद हैं, हम अपने से उलटे जा कैसे सकते हैं! कोई आदमी अपने से उलटा कैसे जा सकता है? जाने की कोशिश में टूट जाएगा, नष्ट हो जाएगा, परेशान हो जाएगा, चिंता से भर जाएगा, अशांत हो जाएगा, मुश्किल में पड़ जाएगा। नहीं, जिंदगी को स्वीकार करना पड़ेगा, एक लाइफ अफर्मेशन चाहिए, जिंदगी का स्वीकार चाहिए। हमारा दृष्टिकोण लाइफ निगेटिव है।

हम जीवन के विरोध करने वाले लोग, निषेध करने वाले लोग हैं। जीवन निंदित है, कंडेम्ड है, जीवन बुरा है, जीवन असार है। मैं आपसे कहना चाहता हूं, जीवन धन्यता है, ब्लैसिंग है, जीवन स्वयं परमात्मा है। कहीं और कोई परमात्मा नहीं है जीवन के अतिरिक्त। और कहीं कोई मोक्ष नहीं है जीवन के अतिरिक्त--जीवन ही। तो जीवन को ही हम कैसे जीएं और जीवन की धारा में कैसे बहें? अगर एक नदी पूर पर आई हो तो नासमझ आदमी तैरने की कोशिश करेगा और तैरने में बह जाएगा। और समझदार आदमी धारा के साथ बहेगा और धीरे-धीरे किनारे पर पहुंच जाएगा।
इसका जरा फर्क समझ लेना।
समझदार आदमी भी पार हो जाएगा, लेकिन पहले वह धारा के साथ बहेगा, क्योंकि धारा इतनी तेज है कि उसके विपरीत अपने को तोड़ा जा सकता है सिर्फ। उसके साथ बहो, और साथ बहते हुए किनारे होते चले जाओ। धारा की ताकत का उपयोग करो, लड़ो मत। धारा की ताकत का उपयोग करो कि धारा ही तुम्हें किनारे पहुंचा दे। लेकिन हम धारा से लड़ने खड़े हो जाते हैं।
जापान में वह जूडो, एक उनकी कुश्ती लड़ने की कला होती है। जूडो की कला
का नियम अदभुत है और सारी दुनिया के समझदार लोगों को समझ लेना चाहिए। जूडो का नियम यह है कि अगर कोई तुम्हें घूंसा मारे तो तुम कड़े मत हो जाओ, तुम बिल्कुल ढीले हो जाओ, घूंसे को पी जाओ, तुम घूंसे को झेल लो, रिसीव इट; उसे पूरी तरह से ले लो, विरोध मत करो; तो घूंसे मारने वाले का हाथ टूट जाएगा। और अगर तुम कड़े हो गए तो तुम्हारी हड्डी टूट जाएगी।
आपने देखा, अगर आप एक बैलगाड़ी में बैठे हों और साथ में एक शराबी बैठा
हो नशे में और बैलगाड़ी उलट जाए तो आपको चोट लगेगी, शराबी को कम लगेगी, या न भी लगे, क्योंकि वह होश में ही नहीं है। वे कड़े नहीं होंगे, वे ढीले रहे आएंगे। वह गाड़ी उलट गई तो गाड़ी के उलटने के साथ वे एक हो जाएंगे। और आप, पता चला कि गाड़ी उलट गई, कि कड़े हो जाएंगे। आपकी हड्डी टूट जाएगी।
छोटा बच्चा भी गिरता है। हजार दफे गिरता है दिन में, लेकिन हड्डी नहीं टूटती। आप एक दफा गिर जाओ, टूट जाएगी। बात क्या है? बच्चा गिरने के विरोध में खड़ा नहीं होता, गिरने के साथ ही हो जाता है। वह गिरने में एक ही हो जाता है। रेसिस्ट नहीं करता, विरोध नहीं करता, गिरने के साथ एक हो जाता है। जिंदगी की बड़ी धारा के साथ होने की जरूरत है।
हमारे महात्मा सिखाते हैं, उलटे चलो, बहो, तैरो, लड़ो धारा से। जीतने की कोशिश करो--संयम, नियंत्रण, दमन, ये सब विपरीत जाने की चेष्टाएं हैं। मैं आपसे कहता हूं, जिंदगी को जीओ। अगर जिंदगी कहती है, स्वाद लो, तो स्वाद लो। और इतने अर्थ से, इतनी बुद्धिमत्ता से स्वाद लो कि स्वाद लेते-लेते स्वाद से मुक्त हो सको। अगर मन कहता है कि बहुत महीन और बहुत रेशमी कपड़ा पहनूं। तो पहनो। लेकिन पहनो इतने समझ से कि उसे पहन कर तुम जल्दी से जान लो कि इसमें बहुत कुछ नहीं है--और मुक्त हो सको। लेकिन वह मुक्ति बहुत दूसरी होगी। उस मुक्ति में तुम्हारे भीतर कुछ दमन नहीं होगा। दमन नहीं होगा तो कल उसके फूटने की कोई संभावना नहीं होगी। और जो दबाया जाएगा, वह फूटता है। एक छोटे से रेस्टहाउस में मैं ठहरा हुआ था। और उस राज्य के एक मंत्री
भी उस रेस्टहाउस में ठहरे हुए थे। रात मैं भी लौटा, वे भी लौटे। मैं तो अपने बिस्तर पर सो गया। वे दूसरे कमरे में करवट बदलते रहे, फिर वे उठ कर आए, उन्होंने कहा कि मुझे नींद नहीं आती है। कि बाहर कुत्ते इकट्ठे हैं और बहुत शोरगुल करते हैं। मैंने कहा, कुत्ते अखबार भी नहीं पढ़ते, रेडियो भी नहीं सुनते, उनको पता भी नहीं होगा कि आप आए हुए हैं। उन्हें आपसे क्या मतलब? आप सो जाइए। उन्होंने कहाः नहीं, मैं कैसे सो जाऊं? जब तक शोर-गुल करते हैं तो मुझे नींद नहीं आती। मैंने कहाः उनके शोरगुल से आपके नींद के न आने का मेरी समझ में कोई संबंध नहीं मालूम होता है। वे दो-चार दफा उनको भगा आए। अब जितना भगा कर आए, वे कुत्ते और वापस लौट आए। दो-चार और साथ ले आए। तो सारा रेस्ट हाउस कुत्तों के भौंकने से भर गया।
आखिर वे मिनिस्टर परेशान हो गए। उन्होंने कहा, मैं क्या करूं? आप बताइए। मैंने कहा, आप एक काम करिए, आप कुत्तों के भौंकने को स्वीकार कर लीजिए, विरोध मत करिए। आप लेट जाइए और कहिए कि कुत्ते भौंकते हैं, मैं सोता

हूं, उनमें बातों में विरोध कहां है? झगड़ा कहां है? आप चाहते हैं कि कुत्ते न भौंके, तब झंझट शुरू हो जाती है। झगड़ा कुत्ते के भौंकने से नहीं है, आपके इस विचार से कि कुत्ते न भौंके। बस वह विचार आपको दिक्कत दे रहा है। कुत्ते क्या दिक्कत देंगे? आप इस विचार को छोड़ दें। कुत्ते भौंकते हैं, उनकी आवाज गूंजने दें। आवाज गूंजेगी, चली जाएगी। आप चुपचाप पड़े सुनते रहें। स्वीकार कर लें कुत्तों के भौंकने को। उनके भौंकने में बह जाएं, लड़ें मत। कोई रास्ता नहीं था तो उन्होंने माना। वे जाकर सो गए। पंद्रह मिनट बाद शायद उनकी नींद लग गई होगी। सुबह उठ कर उन्होंने मुझसे कहा, कि मैं इतना गहरा अपनी जिंदगी में कभी नहीं सोया, और यह तो आश्चर्यजनक था। जब मैंने स्वीकार कर लिया तो मैं हैरान हुआ कि कुत्तों के भौंकने से तो कोई बाधा पड़ती ही नहीं। बाधा मेरे ख्याल में थी, मेरे एटिट्यूड में थी। जिंदगी परमात्मा तक पहुंचाने में जरा भी बाधा नहीं देती--न स्वाद, न शरीर, न सेक्स, कुछ भी बाधा नहीं देता। हमारा एटिट्यूड, हमारा दृष्टिकोण कि लड़ना है सबसे--बस फिर हम मुश्किल में पड़ जाएंगे।
गांधी जी की दृष्टि स्वयं से लड़ने की दृष्टि है और इसलिए अत्यंत खतरनाक है। उस खतरनाक दृष्टि के आस-पास जो लोग इकट्ठे हुए थे, वे असफल हो गए हैं। असफल होना सुनिश्चित था। उनकी आलोचना का कोई प्रयोजन नहीं है। अब तो समझने की बात यह है कि भविष्य में हम, इस देश के लोग फिर इसी तरह की नासमझियों में पड़ते चले जाएंगे या सोचेंगे? और खोजेंगे इस बात को कि जीवन की धारा में बह कर परमात्मा तक पहुंचने का कोई रास्ता है? मैं मानता हूं कि रास्ता वही है। और ये सारे के सारे जो दृष्टिकोण हैं--विरोध के, निषेध के, दमन के, हिंसा के, आत्म-हिंसा के, अपने को मारने के, ये अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने की तरह हैं। अगर आप अपने दोनों हाथ लड़ाएंगे, कोई नहीं जीतेगा, आप हार जाएंगे। दोनों हाथ लड़ेंगे, आपकी शक्ति नष्ट होगी और कहीं आप नहीं पहुंचेंगे।
इसलिए मैं कहता हूं कि गांधीवादी नहीं, गांधीवादियों की हार से गांधी
जी की पूरी दृष्टि पुनर्विचार के योग्य हो गई है। और गांधी जी की दृष्टि ही नहीं, हिंदुस्तान की पूरी दृष्टि; क्योंकि गांधी जी हिंदुस्तान की दृष्टि के प्रतिनिधि पुरुष हैं, रिप्रेजेंटेटिव हैं वे हमारे दिमाग के। हमारा जो पांच हजार वर्षों में जो मस्तिष्क विकसित हुआ है, जो ट्रेडिशनल माइंड, परंपरा से भरा हुआ मन, शास्त्रों से भरा हुआ मन, धर्म और दमन से भरा हुआ मन--गांधी जी उसके प्रतिनिधि पुरुष हैं। इसलिए वे सफल हुए। और मैं मानता हूं, गांधी के बाद अब एक नया युग शुरू हो सकता है। अगर हमने गांधी के साथ हिंदुस्तान की पूरी परंपरा पर पुनर्विचार किया तो हम एक नये युग में प्रवेश कर सकते हैं।
गांधीवादियों से तो जल्दी मुक्ति हो जाएगी, उसमें बहुत देर नहीं है।
वे अपने हाथ से ही मुक्ति का उपाय करते चले जाएंगे। पंद्रह साल के भीतर गांधीवादी से हमारी मुक्ति सुनिश्चित है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। वह तो हो जाएगी, वह तो ऐतिहासिक प्रतिक्रिया के द्वारा अपने आप हो जाएगी, उसमें कठिनाई नहीं है। गांधी जी से मुक्ति में कठिनाई है। और गांधीवादी से मुक्ति के बाद गांधी जी से मुक्ति होने में बड़ी कठिनाई पड़ जाएगी, जब तक ये हैं तब तक इनको देखने से गांधी पर भी ख्याल आता रहेगा। जब ये विदा हो जाएंगे तो गांधी एकदम भगवान हो जाएंगे। फिर उनसे छुटकारा बहुत मुश्किल हो जाएगा।
गांधी से मुक्ति चाहिए। और गांधी से मुक्ति का मतलब यह है--गांधी से मेरा व्यक्तिगत कोई प्रयोजन नहीं है--गांधी से मुक्ति का मतलब है, हिंदुस्तान के पुराने चित्त, पुराने मन, पुरानी आत्मा से मुक्ति चाहिए। एक नई आत्मा इस देश को मिले तो यह देश विकसित हो सकता है, स्वस्थ हो सकता है, चरित्रवान हो सकता है, धार्मिक हो सकता है, सुखी हो सकता है। और अगर हम पुरानी ही धाराओं में फिर से चलते रहे तो हम कोल्हू के बैलों की तरह घूम रहे हैं। न हम सोचते, न हम विचार करते, न हम खोजते। और हमने अपने जीवन को एक बिल्कुल नरक बना दिया है। अब हमें नरक में जाने की कोई जरूरत नहीं

है। भारत में पैदा होना नरक में होने के बराबर है, अब कोई हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। मेरी बातें मान लेना आवश्यक नहीं है, क्योंकि न तो मैं कोई महात्मा हूं, न कोई महात्मा होना चाहता हूं। न मेरा कोई अनुयायी है और न मैं कोई अनुयायी इकट्ठे करना चाहता हूं। तो मेरी बात से राजी होने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी बात सिर्फ सोचना। उतना काफी है। विचारना, देखना कि कोई बात ठीक मालूम पड़े। गलत मालूम पड़े, सब छोड़ देना। कोई एक टुकड़ा भी ठीक मालूम पड़े तो उस पर सोचना, खोजना। और अगर वह आपके विवेक को ठीक लग जाए तो वह बात आपकी हो जाएगी, मेरी नहीं रह जाएगी। और जो सत्य आपका हो जाता है, वही सत्य आपको बुद्धिमान बनाता है। जो सत्य दूसरे का है, वह आपसे बुद्धि छीनता है और आपकी प्रतिभा को नुकसान पहुंचाता है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
बाईसवां प्रवचन

विचार-क्रांति की भूमिका

प्रश्नः आफ्टर योर लास्ट विजिट टु अहमदाबाद, देयर वा.ज ए बिग ह्यू एण्ड क्राइ इन दि रिजनल न्यूजपेपर अबाउट योर आइडियालॉजी। सम ऑफ देम सेड दैट योर थिंकिंग इ.ज वैरी मच नियर दि ड्रीम, कम्युनिस्ट लाइन ऑफ थिंकिंग, दैट इ.ज ब्रेकिंग ऑफ दि सोसाइटी, आई मीन यू वुड लाइक टु हैव सम मोर लाइट ऑन दिस सब्जेक्ट।

पहली बात तो यह है कि मेरी दृष्टि में कोई भी विचारशील आदमी किसी न किसी रूप में कम्युनिज्म के निकट होगा ही। यह असंभव है, इससे उलटा होना। और अगर हो, तो या तो वह आदमी विचारशील नहीं होगा, या बेईमान होगा।
उसके कुछ कारण हैं।
जैसे, यह बात अब स्वीकार करनी असंभव है कि दुनिया में किसी तरह की आर्थिक असमानता चलनी चाहिए। यह बात भी स्वीकार करनी असंभव है कि दुनिया किसी तरह के वर्गों में विभक्त रहे। प्रत्येक मनुष्य को किसी न किसी रूप में जीवन में विकास का समान अवसर मिले, इसके लिए भी अब कोई विरोध नहीं हो सकता। और मेरी समझ में तो, आज ही नहीं, मैं तो बुद्ध को, महावीर को, क्राइस्ट को, सबको कम्युनिस्ट कहता हूं। उन्हें कोई पता नहीं था।
लेकिन मनुष्य की समानता के लिए जिन लोगों ने भी जिस दिशा में भी कोशिश
की है, उन सभी दिशाओं से एक धारणा विकसित होनी शुरू हुई है कि मनुष्य समान है।
और इसलिए वह गलत नहीं कहता है--कोई अगर कहता हो मेरे बाबत तो वह गलत नहीं कहता है, वह ठीक ही कहता है। उसके कहने में बात तो ठीक ही है लेकिन उसके कहने का कारण और नीयत बहुत दूसरी है। उसकी नीयत गलत है। कम्युनिज्म या कम्युनिस्ट एक तरह की गाली बन गई है; और बनना स्वाभाविक था। क्योंकि जितने न्यस्त स्वार्थ हैं, उनको चोट पहुंचाने वाली कोई भी बात लोकमानस में ऐसी बिठाई जानी चाहिए कि भय पैदा हो जाए। साम्यवादी दृष्टि के खिलाफ लड़ने के लिए एक भी दलील पूंजीवाद के पास नहीं है। तो आखिरी दलील एक ही रह जाती है कि गाली दो, भयभीत करो, हौआ खड़ा कर दो; वही उपाय किए जा रहे हैं। ये पूंजीवाद के हार जाने के सबूत हैं।
इतना जरूर मेरा मानना है कि जिन देशों में भी हिंसा के द्वारा कम्युनिज्म आया है, वहां पूरा कम्युनिज्म नहीं आ सका। और हिंसा के द्वारा पूरा कम्युनिज्म कभी आ भी नहीं सकता। क्योंकि हिंसा जिन लोगों के हाथ में ताकत दे देती है, फिर एक नया वर्ग बनना शुरू हो जाता है--सत्ताधिकारियों का और सत्ताहीनों का एक नया वर्ग बनना शुरू हो जाता है, जो और भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है--लंबे अर्सों में। क्योंकि धनपति का वर्ग तो था, लेकिन धनपति के पास कोई सत्ता नहीं थी, धन ही था। और धनपति का वर्ग फैला हुआ वर्ग था, सत्ताधिकारी का वर्ग इकट्ठा और संगठित वर्ग है। तो धनपति की दुनिया में तो क्रांति की संभावना है।
रूस या चीन में मार्क्स के पैदा होने की अब कोई संभावना नहीं है। पैदा होते ही गला घोंट दिया जाएगा ऐसे आदमियों का। तो सिर्फ आर्थिक वर्ग मिट जाएं इतनी ही दूर तक मेरा कम्युनिज्म नहीं जाता। मेरे कम्युनिज्म की धारणा वहां तक जाती है जहां किसी तरह का वर्ग न रह जाए। और इसलिए हिंसा के द्वारा ऐसी वर्ग-विहीन व्यवस्था नहीं आ सकती। इसलिए मैं कम्युनिज्म से सहमत हूं, जहां तक मनुष्य की समानता और वर्ग-विहीन समाज का संबंध है। और जहां तक हिंसक रुख का संबंध है, मैं बिल्कुल विरोध में हूं। इसलिए मेरी बड़ी मुसीबत है। कम्युनिस्ट मुझे समझते हैं कि मैं दुश्मन हूं उनका और दूसरे मुझे समझते हैं कि मैं कम्युनिस्ट हूं।
मेरी दृष्टि में साम्यवाद लाने का एक ही उपाय हो सकता है, और वह है वैचारिक क्रांति। लोगों के मन को समझाएं-बुझाएं, बदलें। किसी भी तरह के दबाव के मैं पक्ष में नहीं हूं। मैं तो गांधी जी के दबाव तक को हिंसा मानता

हूं, तो स्टैलिन का दबाव तो हिंसा रहेगा ही। मैं तो इस बात को कि आपकी छाती के सामने छुरा रख कर आपको बदलने की कोशिश करूं, गलत मानता हूं। इस बात को भी गलत मानता हूं कि आपके घर के सामने अनशन करके बैठ जाऊं और आपको धमकी दूं कि मैं मर जाऊंगा। मेरा मानना है कि जब भी मैं फोर्स करता हूं किसी भी तरह से किसी आदमी को दबाता हूं तभी मैं उस आदमी की आत्मा का हनन करता हूं और उसको समानता का हक नहीं देता। मेरा हक इतना है कि मैं अपनी बात आपको समझाऊं; पूरी कोशिश करूं समझाने की और आपको खुला छोडूं कि आपकी समझ में आए तो ठीक है, नहीं आए तो भी ठीक है। लंबा लगेगा वक्त, लेकिन कोई उपाय नहीं है। और अगर हमने समझाने के अतिरिक्त कोई भी उपाय किया तो वर्ग मिटने असंभव हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, गांधी जी भी कोएर्सन में विश्वास करते हैं, दबाने में विश्वास करते हैं। दबाने को वह अहिंसक रास्ता अख्तियार करते हैं, दबाने का। गांधी जी में या लेनिन में बुनियादी फर्क नहीं है, एक बात पर--और वह यह कि दूसरे को दबा कर बदलना है। दबाने की प्रक्रिया में फर्क है, प्रोसेस में फर्क है। मैं आपके सामने छुरा लेकर दबाऊं कि आप नहीं मानेंगे तो मार डालूंगा, यह भी दबाना है। और मैं अपनी छाती पर छुरा रख लूं कि आपने नहीं माना तो मैं मर जाऊंगा, यह भी दबाना है। उपवास उसी तरह का दबाने का एक उपाय है। यानी मेरा कहना यह है कि वाइलेंट नॉन-वाइलेंस हो सकती है।

प्रश्नः विचार-क्रांति से आप जो आर्थिक समानता लाने की बात करते हैं,
तो ऐसा क्या हो सकता है कि विनोबा जी ने भी विचार-क्रांति से भूदान मूवमेंट चलाई। और फिर आपके पास, इर्द-गिर्द में आपके पास जो लोग हैं, वे भी आपके विचार के साथ क्या ताल्लुक है, हमको पता नहीं है; लेकिन आपका स्वागत करते हैं, आपका सम्मान करते हैं। फिर भी आप विचार-क्रांति से जो आर्थिक समानता लानी चाहिए, उसमें वे शामिल नहीं हो सकते। तो फिर आपकी बातें बातें ही रह जाएंगी और एक्शन कुछ नहीं होगा, ऐसा आपको नहीं लगता है?

इस बात का डर हमेशा ही है। इस बात का डर हमेशा ही है कि बातें बातें रह जाएं। यह डर मान कर ही चलना पड़ेगा। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि विचार आपके सामने रखना, आपको समझाना, आपके सामने पूरा मन मैं अपना खोलूं और आपको पूरा मौका दूं सोचने-समझने का। इसके अतिरिक्त, यह कितना ही लंबा हो, कितनी ही बार बातें खो जाएं, इसके अतिरिक्त जब भी हम जल्दी का कोई उपाय करेंगे और आपको दबाने का मैं उपाय करूं और जबरदस्ती बदलने का उपाय करूं तब ज्यादा से ज्यादा इतना होगा कि पुराना वर्ग टूट जाएगा, नये वर्ग निर्मित हो जाएंगे। अब तक की जो क्रांति असफल होती रही है--क्रांति तो रोज-रोज हो जाती है, लेकिन असफल हो जाती है आखिर में--उसका कारण यह है कि हमारी विचार की प्रक्रिया पर बहुत धैर्यपूर्ण आस्था नहीं है।
डर तो है ही। डर तो इस बात का पूरा है कि मैं बात करूं और वह खो जाए। लेकिन हिम्मत से धैर्य रखना पड़ेगा कि बात खो जाए तो खो जाए, लेकिन कुछ लोगों को विचार के माध्यम से बदलने की प्रक्रिया की बात जारी रखनी पड़ेगी। और मैं मानता हूं, चूंकि क्रांतियां असफल हो रही हैं--जैसे कि रूस में हुआ है। रूस में एक वर्ग तो मिट गया तेजी से लेकिन कोई एक करोड़ लोगों की हत्या करनी पड़ी। इससे कम हत्या नहीं हुई क्रांति के बाद। क्रांति में तो रूस में कोई बड़ी हत्या हुई ही नहीं, लेकिन क्रांति के बाद अंदाजन अस्सी लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या हुई। इतनी हत्या के बाद, इतनी जोर-जबरदस्ती के बाद जो व्यवस्था बनी उस व्यवस्था में पूंजीपति-मजदूर तो चला गया, लेकिन सत्ताधिकारी ब्यूरोक्रेट और सत्ताहीन आदमी खड़ा हो गया। और इस वर्ग के बीच फासले पुराने वर्ग के फासले से ज्यादा बढ़े हैं।
और एक खतरा जो अब दुनिया में आ रहा है, जो पहले कभी भी नहीं था--न मार्क्स को पता था, न लेनिन को ख्याल था, न गांधी को अंदाज था--एक नया खतरा

जो आया है वह यह आया है कि अब सत्ता के पास विज्ञान ने इतनी शक्ति दे दी है कि अगर कोई सत्ता चाहे तो उस देश में कभी कोई क्रांति न हो, अब इसका उपाय है। उस देश में विद्रोह का कभी कोई स्वर पैदा न हो सके, इसका अब पूरा उपाय है। अब जरूरत नहीं है कि हम किसी का फांसी दें। हम माइंड-वॉश भी कर सकते हैं। जो बड़ा सरल है। भगत सिंह को मारने की कोई जरूरत नहीं है, माइंड-वॉश कर दो। भगत सिंह बिल्कुल, जैसे क ख ग बच्चा नहीं जानता, ऐसा बच्चा हो जाएगा। और अ ब स से सीखना शुरू करेगा। एकदम निरीह हो जाएगा।
हत्या करनी इतनी बुरी नहीं थी। हत्या करने में वह आदमी अपनी डिग्निटी
और अपनी इज्जत और अपना गौरव तो पूरा बचा लेता है। तुम मारते हो, तब भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन आप उसका माइंड-वॉश कर सकते हो। आज साइकोडेलिक ड्रग विकसित हो गए हैं, जो आप ड्रग दे दो एक आदमी को तो उसके भीतर जितनी बगावत है वह सब खतम हो जाएगी। वह कभी विद्रोह की बात ही नहीं कर सकता। एक कुत्ता है, कितना ही भौंकता हो, साइकोडेलिक ड्रग देने पर आप उसको कोड़े मारो तो नहीं भौंकेगा, सिर्फ पूंछ हिलाएगा।
तो आज केमिस्ट्री ने इतनी ताकत दे दी है सत्ताओं के हाथ में कि कोई विद्रोह की संभावना नहीं है। तो मेरा कहना यह है कि अब सत्ता के हाथ में डिक्टेटोरियल फोर्स होना बहुत खतरनाक हो जाएगा। आज चीन में वे यह कर रहे हैं। माइंड-वॉश कर रहे हैं, केमिकल ड्रग्स का उपयोग कर रहे हैं। रूस में भी उसकी संभावनाएं हैं पूरी कि वह सब चल रहा है। और यह डर है कि अगर कोई हुकूमत अब तय कर ले तो अब कोई उपाय नहीं है आपके पास बगावत का। तो आदमी की सारी संभावना क्रांति की खत्म हो जाए, इतनी बड़ी ताकत अब सत्ता के हाथ में नहीं होनी चाहिए। मजदूर के और गरीब के और अमीर के फासले को मिटाने के लिए हम एक दूसरा खतरा मोल ले लें, तो मैं इसको मानता हूं कि वह ज्यादा महंगा पड़ेगा लंबे अर्से में।
मनुष्य के व्यक्तित्व को बचाया जाना जरूरी है। उसके व्यक्तित्व को चोट नहीं पहुंचनी चाहिए। मेरी मान्यता यह है कि चाहे गरीबी थोड़े ज्यादा दिन चले तो हर्जा नहीं है, क्योंकि गरीबी सिर्फ आदमी के पेट को, शरीर को तकलीफ दे सकती है, लेकिन आत्मा फिर भी सुरक्षित है। लेकिन अब यह हो गई है संभावना इस बात की कि आपका पेट पूरा भर दिया जाए, आपके कपड़े अच्छे दे दिए जाएं, लेकिन आपके व्यक्तित्व को पूरा मार डाला जाए। वह पैदा ही न हो सके। तो सौ या हजार साल बाद बच्चे हमारे सोचेंगे, हमारे मां-बाप ने हमें बहुत उपद्रव में डाल दिया है। गरीबी इतना बड़ा खतरा नहीं थी जितना बड़ा खतरा उसके विकल्प में हम ले रहे हैं।
तो मेरे सामने जो सवाल है वह यह है, यह मैं मानता हूं... आप जो कहते हैं, बिल्कुल ही ठीक कहते हैं, इस बात का पूरा डर है कि मेरा विचार खो जाए। उसकी मेरी तैयारी है। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि मनुष्य को वैचारिक रूप से समझाने, और जब तक कि बहुमत राजी न हो जाए किसी विचार के लिए परिपूर्णरूप से, तब तक हिंसा जरूरी है। बिना हिंसा के तो नहीं हो सकता, जब तक बहुमत राजी न हो जाए। और हिंसा आपने एक दफा की, तो वह कहां रुकेगी, यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। और जिसके हाथ में आपने हिंसा की ताकत दे दी, वह आदमी क्या करेगा, यह भी नहीं कहा जा सकता। बिल्कुल असंभव है इसका कहा जाना अब।
तो इसलिए अब यह विकल्प मेरे सामने नहीं दिखाई पड़ता है। एक ही विकल्प है--रूस की और चीन की क्रांतियों से जो नतीजे मिले हैं वे ये हैं कि गरीबी तो मिट सकती है लेकिन आदमी खो जाएगा। अब सोचना यह है कि आदमी को बचाना है और गरीबी को भी मिटाना है। तो मुझे यह लगता है कि चाहे पच्चीस वर्ष की जगह पांच सौ वर्ष लग जाएं लेकिन मनुष्य के विचार को आहिस्ता-आहिस्ता समझाने की... और मुझे ऐसा नहीं लगता है कि अब कोई भी आदमी ऐसा है जो समानता के विचार से बुनियादी रूप से विरोध में है।

प्रश्नः उसका क्या मतलब, जो लाना नहीं चाहते?

जी?

प्रश्नः उसका मतलब क्या, जो लाना नहीं चाहते? और आप जैसे जो विचार-क्रांति की बात करते हैं, तो आपसे जो बड़ा आर्ग्युमेंट है, वे कहते हैं कि विचार-क्रांति वाले लोग और अहिंसा वाले लोग, ये कुछ नहीं हैं, पूंजीपतियों के एजेंट हैं, उसके अलावा कुछ नहीं हैं।

मैं भी यही कहता हूं, मैं भी यही कहता हूं। मैं भी यही कहता हूं कि पूंजीवाद का एजेंट हुआ जा सकता है बड़ी सरलता से, और पूंजीवाद सब तरफ से एजेंट्स खोजेगा। मजा तो यह है कि आखिर में वह उस तरह के एजेंट खोजेगा जो समाजवाद की बातें करें। जैसे मैं मानता हूं कि इंदिरा इस वक्त सबसे बड़ी एजेंट है पूंजीवाद की। अगर मोरार जी के हाथ में ताकत जाए तो कांग्रेस मर जाए दस साल के भीतर, इससे ज्यादा नहीं जिंदा रह सकती। मोरार जी सुसाइडल साबित होंगे। और मैं मानता हूं, मोरार जी को देनी चाहिए, ताकि कांग्रेस की हत्या हो जाए। इंदिरा दस साल की उम्र और बढ़ा देगी। नेहरू जी पूरी जिंदगी समाजवाद का नाम लेकर जो काम करते रहे, वह इंदिरा ने फिर शुरू कर दिया। वह ट्रिक पुरानी है, उनके पिता की है। और अब ऐसा लग रहा है, जैसे समाजवाद आ जाएगा। कोई बैंक का राष्ट्रीयकरण होने से समाजवाद आ जाएगा, कि सब पूंजीवाद मिट जाएगा, ऐसा मालूम होता है। यह सब बिल्कुल बेमानी बातें हैं, इससे कुछ मिटने वाला नहीं है। पूंजीवाद का एजेंट तो--समाजवाद की बात भी हो सकती है, और अहिंसा की बात भी हो सकती है, और सर्वोदय भी हो सकता है।
ये खतरे हैं।
लेकिन मेरा कहना यह है कि इन सारे खतरों को समझाया जाना चाहिए। वही मैं करना चाहता हूं। मैं यह कहता हूं, मैं भी खतरा हो सकता हूं। इसलिए मेरा आग्रह नहीं है कि मेरी बात को ही मानें। मेरा आग्रह कुल इतना है कि मैं कहता हूं, उसे सोचें, समझें। मुल्क में एक विचार की हवा पैदा हो। मुल्क के पास विचार करने की क्षमता आए। मुल्क सोचे, चर्चा करे। मुल्क सोच ही नहीं रहा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

लेकिन जब मुल्क विचार से राजी हो जाए, तब पीछे से आए। तब फिर वह वाइलेंट नहीं रह जाएगा। और तब वह डेमोक्रेटिक होगा, तब वह लोकतांत्रिक होगा।

प्रश्नः जिसके पास पैसे नहीं हैं वे ही लोग विचार करते हैं और जिसके पास पैसे हैं वे सोचते ही नहीं हैं। फिर बिना पैसे वाले को क्या, अहिंसा के अलावा क्या करेंगे वे?

यह भी गलत ख्याल है। आप जान कर हैरान होंगे कि जिसके पास पैसा नहीं है,
वह तो बेचारा विचार ही नहीं कर सकता। यह तो बात ही गलत है। दुनिया में समाजवाद की भी जो बात है वह भी पूंजीवाद के ही परिवार से निकली हुई बात है। दुनिया में जिनके पास सुविधा है वे ही विचार करते हैं। अगर शूद्रों को उठाने की बात है, वह भी ब्राह्मणों की ही बात है अंततः। शूद्र की बात नहीं है वह। शूद्र को तो इतना हीन कर दिया गया है, उसमें यह ख्याल भी उठने का उपाय नहीं है कि मैं समान हो जाऊं। मजदूर नहीं है मार्क्स, और न एंजिल्स मजदूर है, न लेनिन मजदूर है। पूंजीवाद ने कुछ लोगों को सुविधा दी है सोचने की और उस सोचने में उनको कंट्राडिक्शन दिखाई पड़ने शुरू हुए हैं।
आप यह जान कर हैरान होंगे कि हिंदुस्तान में आजादी का ख्याल भी अंग्रेजों से आया हुआ ख्याल है, हिंदुस्तान का ख्याल नहीं है। आजादी की जो मौलिक धारणा है वह हिंदुस्तान में अंग्रेजों से आनी शुरू हुई है। और पहला, जिन लोगों ने इस मुल्क में आजादी की बात चलानी शुरू की, वे अंग्रेज हैं। और जिन लोगों ने हिंदुस्तान में आजादी की बात की वे सब यूरोप से शिक्षित होकर लौटे हैं। यह जान कर हैरानी होगी कि हमेशा क्रांति उसी गढ़ से आती है जो क्रांति को रोकता है। क्रांति भी उसी घर से आती है। पूंजीवाद ही अपनी पूरी

अंर्तव्यथा और अपने पूरे इनर कंट्राडिक्शंस को देख कर सजग होता है। उसके भीतर से ही कुछ लोग पैदा होते हैं जो कहना शुरू करते हैं, यह व्यवस्था गलत है। यह व्यवस्था गलत है। यह वहीं से आना शुरू होता है, यह नीचे से आना शुरू नहीं होता।
हिंदुस्तान में विचार की अगर हवा पैदा हो तो मैं मानता हूं कि हिंदुस्तान का जिसको हम... मेरी दृष्टि यह नहीं है कि पूंजीपति कोई बुरा आदमी होता है। यह मैं नहीं कहता हूं कि पूंजीपति कोई बुरा आदमी है। या मजदूर कोई बहुत अच्छा आदमी है। कि शोषित हो जाना कोई गुण है और शोषक हो जाना कोई दुर्गुण है, यह मैं नहीं कहता हूं। मेरा कुल मानना इतना है कि समाज की एक व्यवस्था है, उस व्यवस्था में एक आदमी धन को इकट्ठा कर लिया है। निश्चित ही वह ज्यादा कुशल है, ज्यादा होशियार है। वह समाज की सारी की सारी बेईमानी और सारी व्यवस्था का पूरा उपयोग कर रहा है। जो शोषित है उसमें, वह कोई बहुत गुणवान है, ऐसी बात नहीं है। उसको भी अगर इतनी ही बुद्धि और इतनी ही शोषण की कला, और सब समझ में आ जाए तो वह भी कल इसकी जगह बैठ जाएगा। इससे कोई आदमी आदमी में फर्क नहीं है। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि पूंजीपति के घर से ही, पूंजीवाद के गढ़ से ही वह विचार पैदा होना शुरू होता है जो पूंजी की असंगति देखना शुरू करता है।
और इसलिए घबड़ाने की जरूरत नहीं है, विचार को फैलाने की जरूरत है। और उसे जाने दें सबके भीतर। यानी यह भी मेरा मानना नहीं है कि पूंजीवाद का मिट जाना मजदूर के हित में है, यह भी मेरा मानना है कि पूंजीवाद के भी हित में हैं। पूंजीवाद भी एक अंतर-कलह से परेशान और पीड़ित है। लेकिन इतनी मेरी समझ है कि जब तक विचार न फैल जाए लोगों के प्राणों तक और जब तक उनके प्राण लोकतांत्रिक मांग न करने लगें चीजों के बदल जाने की, तब तक किसी बदलाहट के मैं पक्ष में नहीं हूं। यानी बदलाहट ऊपर से थोपी हुई नहीं होनी चाहिए। वह लोकमानस से आनी चाहिए।

प्रश्नः इसके लिए संगठन आवश्यक है क्या?

संगठन आवश्यक होगा। मैं संगठन आवश्यक नहीं मानता। मेरे लिए, क्योंकि मेरा मानना है कि अगर मैं संगठन आवश्यक मानूं तो मैं विचार की जो क्रांति लाना चाहता हूं, वह नहीं ला सकता। विचार की क्रांति लाने वाले लोगों को संगठन से बचना चाहिए। क्योंकि संगठन के अपने स्वार्थ होने शुरू हो जाते हैं। और संगठन के जैसे ही स्वार्थ होने शुरू हुए, वह एक विचार के पक्ष में इस दृष्टि से होता है कि हमारे हित में है या नहीं। तो मैं किसी संगठन को अपनी तरफ से खड़ा करने के पक्ष में नहीं हूं। मैं किसी संगठन को खड़ा करने के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन मेरी बात किसी को ठीक लगे और वह संगठन करना चाहे तो मैं विरोध में नहीं हूं।

प्रश्नः बिना संगठन के आपके विचार में बल कैसे हो सकता है?

अब तक दुनिया में विचार में बल होना चाहिए, तो एक व्यक्ति भी सारी पृथ्वी तक विचार पहुंचाने में समर्थ हो जाता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

विचार पहुंचाने में, विचार से बदलाहट लाने में नहीं, विचार पहुंचाने में। जीसस नाम का आदमी ढाई हजार, दो हजार साल पहले अकेला आदमी है और उसके पास जो आदमी इकट्ठे हुए, आठ-दस आदमी हैं; इससे ज्यादा आदमी नहीं हैं। और जो आदमी इकट्ठे हुए हैं, कोई मछुआ है, कोई चमार है, कोई गांव का किसान है। और उस आदमी को सूली पर लटका दिया। और जेरुसलम के आस-पास से ज्यादा उसकी खबर नहीं थी। लेकिन बात में कोई बल था। वह धीरे-धीरे गई।
बुद्ध या महावीर बिहार में पैदा हुए, बिहार के बाहर कभी नहीं गए, कोई कम्युनिकेशन का साधन नहीं था। लेकिन बात में कोई बल था, वह चली गई, वह चली

गई। मार्क्स के पास कोई साधन नहीं था। लेकिन बात में कोई बल था, वह गई।
मेरा मानना है, विचार अपने बल से जाता है--आंतरिक बल से, संगठन के बल से नहीं। बल्कि विचार अगर कमजोर हो तो संगठन के बल से पहुंचाया जा सकता है।

प्रश्नः इट्स वेरी लांग प्रोसेस।

बिल्कुल ही।

मेरा मानना ही यह है कि मनुष्य की चेतना का विकास ही लांग प्रोसेस है,
और जल्दबाजी ना-कुछ है।

प्रश्नः पर जो विचार कंफर्ट और फैसेलिटी नहीं देता है, सैटिसफैक्शन नहीं देता है, विचार का बल्कि क्या जरूरत है, विचार तो बहुत हैं, लेकिन कोई विचार ने कंफर्ट और सैटिसफैक्शन नहीं दिया, इसीलिए तो कम्युनिस्ट और आर्थिक और सब बातें हो रही हैं। विचार तो बहुत हैं, लेकिन विचार में क्या है, किसी को फल नहीं मिलता उसका।

आप हैरान होंगे कि अगर बुद्ध और क्राइस्ट न पैदा हुए हों तो मार्क्स कभी पैदा नहीं हो सकता था। ये हमारी जो धारणाएं हैं न, यह तो बड़ा इंटरलिंक्ड है मामला। हम समझते हैं कि मार्क्स कम्युनिज्म दे रहा है। मार्क्स क्या कम्युनिज्म... अगर बुद्ध न हों इतिहास में या क्राइस्ट न हों इतिहास में, मार्क्स के पैदा होने की कोई संभावना नहीं। और अगर मार्क्स न हो पैदा तो लेनिन के पैदा होने की, माओ के पैदा होने की कोई संभावना नहीं है। इतिहास एक लंबीशृंखला है जिसमें वे भी जुड़े हैं जो हमारे विरोधी भी हों। यानी मेरा मानना है कि जीसस को जिन लोगों ने सूली दी उन्होंने भी उतना ही काम किया है--ज्यादा शायद--जितना जीसस के मानने वालों ने काम किया है, इतिहास एक लंबा जोड़ है। और हमें जल्दी नहीं करनी चाहिए। मैं जल्दी में विश्वास नहीं करता, क्योंकि मैं मानता हूं कि जल्दी वाला आदमी हमेशा हिंसा में विश्वास करने लगेगा। क्योंकि हिंसा जितनी जल्दी काम कर सकती है, उसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है।

प्रश्नः आपने बताया कि जो दिल्ली में संघर्ष चल रहा है, राष्ट्रीय संघर्ष कांग्रेस में। इंदिरा जी भी पूंजीवाद का एजेंट बताया आपने, मोरार जी भी बताया। तो जो संघर्ष चल रहा है, तो आपके कहने का इरादा यही है कि वह पोलिटिकल संघर्ष चल रहा है?

बिल्कुल पोलिटिकल है, बिल्कुल पोलिटिकल है। और कांग्रेस को बचाने की
जो भीतरी चेष्टा चल रही है--क्योंकि कांग्रेस अब बच नहीं सकती, बिना समाजवाद का वस्त्र ओढ़े बच नहीं सकती। इंदिरा कांग्रेस को बचा सकेंगी। मोरार जी के साथ कांग्रेस डूब जाएगी, खतम हो जाएगी। और इसलिए इंदिरा मजबूत होती चली जा रही है, क्योंकि कांग्रेस का बचाव भीतर से भी यही लग रहा है कि वह उनके साथ हो सकता है। लेकिन मुल्क धोखे में आ सकता है, और मुल्क के समाजवादी भी धोखे में आ सकते हैं। और वह धोखा फिर दस साल के लिए मुल्क को नुकसान में डालेगा।
नेहरू के साथ वही हुआ, कि मुल्क के समाजवादी चिंतन को ऐसा लगा कि ठीक है, नेहरू काम करेंगे। वह काम नहीं हो सका।
उसका कारण यह है--उसका कारण मैं यह नहीं मानता कि नेहरू की भूल है या इंदिरा की भूल है। उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मुल्क का मानस ही समाजवाद के लिए अभी तैयार नहीं है। मानस ही तैयार नहीं है। सिर्फ ऊपरी थोथी बातें हो सकती हैं, सिर्फ थोथी बातें हो सकती हैं। तो मैं जो कहना चाहता हूं वह यह है कि मुल्क का मानस तैयार हो। अभी सत्ता बदलने का उतना सवाल नहीं है, न हुकूमत बदलने का उतना सवाल है। जिस दिन मानस तैयार होगा मुल्क का उस दिन

कोई भी काम कर देगा ऊपर। लेकिन मुल्क का मानस ही अगर तैयार न हो तो सिर्फ हम बातचीत कर सकते हैं, और बातचीत चल रही, बातचीत चलती रहेगी।
कोई बैंक के राष्ट्रीयकरण से समाजवाद नहीं आ जाता, न रेलवे के राष्ट्रीयकरण से समाजवाद आ जाता है। समाजवाद की दृष्टि ही नहीं है। उसकी स्वीकृति नहीं है बहुत गहरे में कि वह कैसे आए? मनुष्य की समानता का भाव ही स्वीकार नहीं है। और हिंदुस्तान में और कठिनाई है। हिंदुस्तान की कठिनाइयां बहुत गहरी हैं। हिंदुस्तान में मनुष्य की असमानता का भाव बहुत पुराना है, परंपरागत है। हमने कभी अपने इतिहास में बहुत गहरे में यह स्वीकार नहीं किया कि दो मनुष्य समान हैं, कभी स्वीकार नहीं किया। तो हिंदुस्तान के मानस में समाजवाद एक तरह से बिल्कुल फॉरेन है, एकदम विदेशी भाव है हिंदुस्तान के मन में। प्रजातंत्र भी एकदम विदेशी चीज है हिंदुस्तान के लिए और समाजवाद भी बिल्कुल विदेशी चीज है। न तो हम कभी प्रजातांत्रिक रहे हैं और न कभी समाजवादी की हमारी कोई धारणा रही है।
तो इस मुल्क के मानस को तैयार करने की जरूरत है, तो इस मुल्क के मानस में समाजवाद जाए कहीं गहरे में। वह जाएगा तो ऊपर से बदलाहट बहुत आसान होगी। नहीं तो ऊपर बातचीत चलेगी। और बातचीत धोखे की होगी। और जिन लोगों को थोड़ा सोच-विचार उठता है, वह फौरन उस बातचीत से धोखे में आ जाते हैं। दस-पंद्रह साल के लिए फिर बातचीत लंबी हो जाती है।
कांग्रेस मरने के करीब है, क्योंकि उसकी योजना खो गई है। उसका काम भी
खो गया है। वह जिस उद्देश्य के केंद्र पर बनी थी वह भी खो गया, वह सब खतम हो गया। उसके पास दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है। आजादी की बात थी, वह पूरी हो गई। अब उसके पास कुछ भी नहीं है। अब वह सिर्फ एक घोस्ट एग्झिसटेंस है, प्रेत-अस्तित्व है। प्रेत-अस्तित्व है, अब उसका कोई अर्थ नहीं रह गया है कहीं। तो अब उसको नये-नये अर्थ देकर जिलाने की बात है। उसको फिर आक्सीजन देने की जरूरत पड़ती है।

प्रश्नः दूसरी कोई पार्टी आपकी नजर में है जो काम कर सकती है?

नहीं-नहीं, पार्टी में मेरा मानना बहुत नहीं है। मेरा मानना यह है कि मुल्क का...

प्रश्नः क्रांग्रेस की बात चली, इसलिए मैं कह रहा हूं।

हां-हां, आप ठीक कहते हैं। नहीं कोई पार्टी नहीं है। कोई पार्टी मुल्क
के पास नहीं है। कांग्रेस एक पार्टी है जो बिल्कुल बेमानी हो गई है। और कोई पार्टी मुल्क के पास नहीं है। क्योंकि मुल्क के पास वह चित्त नहीं है जो सोचे, आइडियालॉजी को सोचे, मुल्क को बदलने की योजना सोचे, वह चित्त ही नहीं है। बाकी जितनी पार्टियां हैं, उनके पास कोई योजना नहीं है--जिसको योजना हम कहें। बस, कामचलाऊ, इमिजिएट प्रॉब्लम है उनके सामने। आज कैसे ताकत में कोई पहुंच जाए, यह बड़ा सवाल है। पचास साल बाद मुल्क की क्या स्थिति बनेगी, यह किसी के सामने सवाल नहीं है।
मैं दिल्ली में एक बड़े नेता से बात कर रहा था। एक किताब किसी ने यूरोप में लिखी हैः नाइनटीन सेवंटी फाइव। किताब का नाम हैः उन्नीस सौ पचहत्तर। और उसमें उसने घोषणा की है बहुत बड़े वैज्ञानिक दलीलों पर कि उन्नीस सौ पचहत्तर में भारत में इतना बड़ा अकाल पड़ेगा कि दस करोड़ लोग मर सकते हैं। तो मैंने किसी को कहा, तो उन्होंने कहा, उन्नीस सौ पचहत्तर बहुत दूर है। हिंदुस्तान के किसी नेता के मन में उन्नीस सौ पचहत्तर बहुत दूर है। सभी के मन में, उन्नीस सौ पचहत्तर से कोई मतलब नहीं है, उन्नीस सौ बहत्तर ही काफी है। एलेक्शन पर्याप्त है।
तो हिंदुस्तान में न पोलिटिकल कांशसनेस है, न कोई पोलिटिकल पार्टी है। कांग्रेस कोई पोलिटिकल पार्टी ही नहीं है। एक स्ट्रगल से पैदा हो गया एक जमघट था। जो एक स्ट्रगल थी वह पूरी हो गई, वह खतम हो गई। एक मोर्चा था कांग्रेस, एक पार्टी नहीं थी। और कांग्रेस पार्टी बन गई। मोर्चा पार्टी

बन गया, उसमें हजार तरह के लोग थे, वे छाती पर सवार हो गए। अब वे हजार तरह की बातें करते हैं। वे मुल्क को कंफ्यूज करते हैं, वे मुल्क को कुछ होने भी नहीं देते। अगर कांग्रेस स्पष्ट रूप से कुछ एक योजना हो तो दूसरी पार्टी भी खड़ी हो जाए। कोई योजना नहीं है। समाजवाद भी उसमें समाविष्ट हो जाता है, उसमें सब समाविष्ट हो जाता है।
उसका परिणाम यह है कि मुल्क में पार्टी भी पैदा नहीं हो रही। होगी भी नहीं, क्योंकि पार्टी तभी पैदा होती है जब मुल्क विचार करना शुरू करता है। और पच्चीस विचार मुल्क के चित्त में घूमना शुरू होते हैं। और पच्चीस विचार लोगों को पकड़ना शुरू करते हैं तब पार्टियां बनती हैं। मुल्क के पास विचार नहीं है। जिसको राजनैतिक चेतना कहें, वह नहीं है।
तो मेरी नजर में, जो बड़ा काम है इस वक्त, सब समझदार लोगों को--चाहे वह पत्रकार हों, राजनीतिज्ञ हो, विद्यार्थी हों, शिक्षक हों, कोई भी हों--वह यही है कि मुल्क एक जोर से चिंतन की प्रक्रिया में कैसे लग जाए! तो पच्चीस पार्टी पैदा हो जाएंगी। एक पोलिटिकल कांशसनेस पैदा होगी। आज जो आदमी समाजवादी है, उसको भी इतना मतलब है कि उसकी तनख्वाह थोड़ी बढ़ जाए। उसे समाजवाद से कोई मतलब नहीं है। आज आदमी एक कम्युनिस्ट है, उसको कम्युनिस्ट यूनियन में इसलिए खड़ा किया हुआ है कि उसके थोड़े वेज बढ़ जाएं, उसका कुछ बढ़ जाए, लेकिन कोई कम्युनिज्म की पूरी धारणा उसके सामने नहीं है।

प्रश्नः आप आज प्रगति में क्या-क्या भाव ले रहे हैं और विचार-क्रांति में। लेकिन प्रगति भी होनी चाहिए, वरना ऐसा विचार, और ऐसे विचार की बातों से क्या होता है कि ज्यादा पार्टी होती है, डिस्कशन होता है, डवलपमेंट कुछ नहीं होती है।

नहीं-नहीं, यह आप गलत ख्याल में हैं, यह आप गलत ख्याल में हैं। जितनी ज्यादा पार्टी होंगी, जितना ज्यादा डिस्कशन होगा, उतनी पोलेरिटी पैदा होगी। पोलेरिटी पैदा ही नहीं होती। डिस्कशन से पैदा होगी। अगर हम पच्चीस लोग विचार करते हैं--विचार करना एक अलग बात है, लड़ना बिल्कुल अलग बात है। मेरी बात आप समझ रहे हैं न? अगर हम विचार करते हैं तो विचार की अपनी ताकत होती है कि विचार धीरे-धीरे-धीरे-धीरे निष्कर्षों पर पहुंचता है, विचार रुक नहीं सकता। जैसा कि अगर दस वैज्ञानिक लड़ते हों गणित के किसी सवाल पर, दो घंटे बाद उस कमरे में एक नतीजा हो जाएगा। कठिनाई नहीं है बहुत। जिंदगी के दूसरे मसलों के संबंध में गणित के समान नहीं हो सकता है, क्योंकि गणित बहुत सरल चीज है। जिंदगी के मसले उलझी हुई चीज है। लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि अगर मुल्क में विचार चले, विवाद चले, तो तीन या चार पार्टी मुल्क में पैदा हो जाएंगी। और बहुत गहरे में तो दो ही पार्टी पैदा होंगी, क्योंकि अंततः पार्टी वर्ग से निर्मित होती है। अंततः वर्ग से निर्मित होती है।

प्रश्नः लेकिन उसमें ममत्व ज्यादा काम करता है विचार से और ममत्व रोकता है विचार की प्रगति को?

हां, विचार को रोकता है ममत्व। और इसीलिए मैं कहता हूं कि मेरा अभी कोई आग्रह संगठन, किसी पार्टी पर नहीं है, क्योंकि वह जैसे हुआ कि ममत्व शुरू होता है। फिर वह कहना चाहिए जो मेरी पार्टी को फायदा करता हो। फिर वह कहना चाहिए जो संगठन को फायदा करता हो।

प्रश्नः इसीलिए मैं कहता हूं कि... बुद्ध और क्राइस्ट से लेनिन और मार्क्स हुए, तो उसी तरह गांधी भी हुए--बुद्ध और क्राइस्ट होने से, तो फिर दोनों का विचार अलग-अलग है, और फिर यहां पर विचार की बात आई। तो कुछ अमल तो नहीं हो सकता है, बातें बातें ही रहती हैं और आदमी जिंदा मर जाता है; जेनरेशन जेनरेशन चली जाती है।

यह भी ख्याल गलत है कि अमल नहीं होता है। होता क्या है, जो अमल हो जाता
है वह हमारे ख्याल में मिट जाता है। जो अमल में नहीं आता है वही ख्याल में रहता है। बुद्ध और क्राइस्ट की बातों का कितना परिणाम हुआ है मनुष्य पर, इसको सोचना ही मुश्किल है। आप जान कर हैरान होंगे, कि इधर इन बीस वर्षों में युद्ध के विरोध में जो चेतना जगी है सारी दुनिया में, यह कभी थी ही नहीं। कृष्ण जैसा अच्छा आदमी भी युद्ध के पक्ष में था।

प्रश्नः विज्ञान ने...

न-न, विज्ञान ने नहीं बता दी। विज्ञान तो कुछ भी नहीं बताता। विज्ञान
तो केवल साधन दे देता है। आप जो चाहो, करो।
मनुष्य की चेतना निरंतर विचार करने से इस जगह पहुंची है कि युद्ध बेमानी हो गया। विचार इस जगह ले आया। नेशन बेमानी हो गया, राष्ट्र बेमानी हो गए। जो लोग जितना सोच रहे हैं, वहां राष्ट्र उतना व्यर्थ हुआ जा रहा है। नहीं सोचेंगे तो राष्ट्र बड़ा सार्थक लगेगा। और हम जो कम सोचने वाले लोग हैं, हमें तो यह भी बहुत सार्थक लगता है कि एक जिला महाराष्ट्र में रहे कि मैसूर में रहे, कि यह नर्मदा का जल गुजरात का है कि मध्य प्रदेश का। हम कम विचार करने की वजह से इन बेवकूफियों में बंधते हैं।
विचार जितना विकसित होगा उतनी मुल्क की इंटेलिजेंस चेतना विकसित होगी। उतने हम नतीजों के करीब आ सकेंगे, निकट आ सकेंगे। और इतना तय है कि अगर तेजी से विचार चले तो पोलेरिटी हो जाएगी, क्योंकि आखिर दो ही विचार हैं बहुत गहरे में। एक तो विचार है जो पुरानी व्यवस्था को बनाए रखना चाहेगा। उसका हित उसमें रहेगा। लेकिन वह विचार रोज कमजोर पड़ता चला जाएगा, क्योंकि पुरानी व्यवस्था सड़ गई है। उसे बचाया जा नहीं सकता, सिर्फ लंबाया जा सकता है। यह हो सकता है, दस की जगह बीस साल, पच्चीस साल, चालीस साल उसको बचा लिया जाए, बचाया नहीं जा सकता। इसलिए वह भीतर से उसका गढ़ कमजोर होता चला जाएगा, उसके भीतर से बगावती पैदा होते चले जाएंगे। दूसरा विचार होगा जो नई व्यवस्था लाना चाहता है। अंततः तो दो पोलेरिटी पैदा हो जाएंगी। और किसी भी मुल्क में अगर विचार चले तो दो पार्टीज खड़ी हो जाएंगी।

प्रश्नः लेकिन आपने पहली प्रेस-कांफ्रेंस में कहा था कि आज की क्रांति की बातें--

न, न, न। मैं जो कह रहा हूं, मैं जो कह रहा हूं--साइंस ने वह ऑपरच्युनिटी पैदा कर दी है, जो नहीं पैदा हुई थी। मेरी बात आप समझ लें? जो मैं कहा हूं, इसमें उसमें कोई फर्क नहीं है। मैं सिर्फ कह इतना रहा हूं कि बुद्ध और क्राइस्ट ने जो विचार दिया है शांति का, वह कभी हमें इतना सार्थक नहीं लगा था क्योंकि अशांति कभी इतनी खतरनाक नहीं थी। अशांति पहली दफा इतनी खतरनाक हो गई कि सुसाइडल हो गई है। और अशांति को खतरनाक विज्ञान ने कर दिया। इसलिए पहली दफा बुद्ध की और क्राइस्ट की बात सार्थक मालूम पड़ती है कि शांति से जीना पड़ेगा। बुद्ध की और क्राइस्ट की बात समय की प्रतीक्षा कर रही थी। जैसे हम एक बीज को डाल दें और प्रतीक्षा करे वर्षा आने की, तो वर्षा बीज में अंकुर नहीं ला देगी, अंकुर तो बीज से ही आएगा, लेकिन वर्षा सिर्फ प्रतीक्षा और अवसर बना देगी। विज्ञान ने एक अवसर बना दिया है कि अब अगर हम हिंसा को मानें तो हम दुनिया को खतम कर सकते हैं। हिंसा इतनी खतरनाक कभी भी नहीं थी, इसलिए हमने अहिंसा की बात कभी सुनी नहीं थी। आज पहली दफा हिंसा इतनी खतरनाक है कि हमें अहिंसा की बात सुननी पड़ेगी। यानी मेरा मानना है कि बुद्ध और महावीर ने या क्राइस्ट ने जो बात कही, वह आज सार्थक होने के करीब पहुंच रही है। वर्षा आई है, उस बीज पर अब पानी पड़ा है।

प्रश्नः बिकाज ऑफ साइंस?

बिकाज ऑफ साइंस।

प्रश्नः इसका मतलब तो यह हुआ--हिंसा बहुत चली इसलिए हम अहिंसा को मानते हैं। बुद्ध का उसमें कोई नहीं।

न, न, न।

नहीं, हमें सहन करना पड़ा, इसलिए हम सोचते हैं कि शांति से जीआ जाए।

असल में कभी भी अवसर उपस्थित हो--जैसे समझ लें कि एक आदमी एक दवा बनाए,
एक आदमी ने एक दवा बनाई, जो टी.बी. पर काम पड़ेगी। लेकिन आप अभी तो नहीं खा लेंगे। आप जब बीमार पड़ेंगे, तभी न! तब आप कहेंगे, दवा बनाने वाले का क्या मतलब है? वह तो हम टी.बी. से बीमार पड़ते हैं, इसलिए दवा खाते हैं। वह आप ठीक कह रहे हैं। आप दवा तब खाते हैं जब टी.बी. से बीमार पड़ते हैं। यह बिल्कुल ही ठीक है। बिना टी.बी. से बीमार पड़े दवा खानी भी नहीं चाहिए। लेकिन जिसने बनाई है, इससे उसका महत्व कम नहीं हो जाता। अहिंसा का जो विचार है वह मनुष्य के लिए अदभुत जीवन दे सकता है। यह ख्याल जिन लोगों ने दिया है, वह ख्याल पड़ा हुआ है मनुष्य की चेतना में, लेकिन अशांति जब इतनी खतरनाक हो जाएगी कि हमें पहली दफा अशांति से छूटने का सवाल उठेगा। बीमारी बन जाएगी तभी हम उस दवा का उपयोग करेंगे। दुनिया का सारा विकास जो है वह बहुत अंतर्गुंफित, इंटरडिपेंडेंट है। उसमें हजारों लोग दान कर रहे हैं। उसमें विज्ञान ने अभी एक स्थिति पैदा कर दी है, जो स्थिति हमको पहली दफा कहती है कि अब शांति सोचना पड़ेगी। शांति पहली दफा विचारणीय है। इसके पहले इतनी विचारणीय नहीं थी। आप छुरा मार सकते थे, दस-पचास आदमी मार सकते थे। कोई मनुष्यता नहीं मरती। अब मनुष्यता मर सकती है।

प्रश्नः आदमी ने सोचना तो छोड़ दिया है, ऐसा हुआ अभी। आदमी सोच भी नहीं सकता है, ऐसा आपने अभी कहा। सोचता भी नहीं है।... टुगेदर मैनी सेंट्स से लाइक दिस अकार्डिंग टु योर आइडियालॉजी--क्राइस्ट और जीसस और... देन डू यू थिंग यू विल बी सक्सेसफुल योर आइडियालॉजी?

यह सवाल नहीं है। एक आदमी और दूसरे आदमी के सफल और असफल होने का सवाल
ही नहीं है। यह बहुत सवाल ही नहीं है बड़ा। मैं सफल होता हूं, आप सफल होते हैं, वह सफल होता है, यह सवाल नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, वही सवाल है, असली में वही सवाल है। यह भी हमारे सोचने का ढंग एकदम ही गलत है कि फलां आदमी सफल हुआ कि नहीं हुआ। बड़ा सवाल यह है कि मनुष्यता के हित में कोई चीज सफल होती है या अहित में कोई चीज सफल होती है। बड़ा सवाल यह है। आदमियों का सवाल नहीं है। हित में जो लड़ने वाले लोग हैं वे सफल होते हैं कि अहित में ले जाने वाले लोग सफल होते हैं, यह सवाल है।
अब जैसे, मेरा कहना यह है कि जो लोग भी मनुष्य को विचार करने से रोकते हैं, वे सफल होते रहे हैं। विचार करने से रोकने वाले लोग सफल होते रहे हैं। विचार करने की प्रक्रिया में ले जाने वाले लोग असफल होते रहे हैं। इससे हमने बहुत नुकसान झेला, बहुत तकलीफ झेली, बहुत कष्ट झेला। आज भी वही सवाल है। मैं विचार की प्रक्रिया को फैलाना चाहता हूं। मैं फैलाना चाहता हूं।

प्रश्नः आप विचार-क्रांति की बात कर रहे हैं। सवाल यह है कि आज देश में कई करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके पास खाने को भी नहीं है। तो वे लोग आपके विचार कैसे अपनाएंगे?

बिल्कुल ही ठीक कहते हैं।

जिनके पास रोजी-रोटी का प्रश्न जहां तक लगता है, तो जिनके पास न हो तो क्या करें वे लोग?

वे नहीं अपनाएंगे। वे नहीं अपनाएंगे। उनके अपनाने का बड़ा सवाल भी नहीं है। उनके अपनाने का बड़ा सवाल भी मैं नहीं मानता हूं। वे अगर हम ठीक से समझें तो समाज के उस तल पर जीते हैं, जहां से समाज प्रभावित नहीं होता।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मेरी बात आप समझ रहे हैं न? यानी मेरा मानना ही यह है कि समाज में जो
भी चलता है वह समाज का बुद्धिशाली वर्ग, सपंत्तिशाली वर्ग, संपन्न वर्ग, सुविधापूर्ण वर्ग, क्रांति भी उसी से चलती है, क्रांति की रुकावट भी उसी से चलती है। अगर क्रांति रुकेगी तो वह जो भूखा आदमी है, भूखा रह जाएगा। अगर क्रांति सफल होगी तो वह भूखा आदमी का पेट भर जाएगा। लेकिन भूखा आदमी कुछ नहीं कर सकता।
भूखा आदमी हमेशा समाज के किनारे की परिधि पर जीता है। वह समाज का केंद्र नहीं है। उसके हित में समाज सोच सकता है, अहित में सोच सकता है। लेकिन वह खुद सोचने की हालत में नहीं है। यानी यह मामला ऐसा ही है जैसे कि एक आदमी बीमार पड़ा हुआ है और बीमार मर रहा है। हम जो करेंगे उससे वह बच भी सकता है, मर भी सकता है। उसके खुद के सोचने का बड़ा सवाल यह नहीं है। बड़ा सवाल यह नहीं है। मैं नहीं मानता कि गरीबों से कोई क्रांति होती है दुनिया में। गरीबों के लिए क्रांति होती है, गरीबों के विरोध में क्रांति होती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, वह तो हो ही नहीं सकती उससे, उससे हो ही नहीं सकती। वह तो हो नहीं सकती, वह असंभावना है। उसको मैं मानता नहीं कि उससे कुछ हो सकता है। वह जो खाने की हालत भी नहीं जुटा पा रहा है, वह कुछ और करेगा, वह सवाल नहीं है, वह बात नहीं है।

प्रश्नः आपका विचार-क्रांति का कार्यक्रम क्या है, सिवाय बातों के अलावा और?

लड़ रहा हूं चौबीस घंटे। चौबीस घंटे लड़ रहा हूं।

प्रश्नः निर्देशन क्या है? निर्देशन, एक्झिबिशन, प्रदर्शन, कुछ करना, भाषण के अलावा और कुछ? कार्यक्रम किए जाएं जिससे विचार-क्रांति...

यही तो हमारी जो जल्दी है, वह हमारी जल्दी ऐसी है कि हममें से कोई भी विचार को मानता ही नहीं असल में। एक्शन को ही हम मानने वाले लोग हैं। विचार को हम मानते ही नहीं। हम यह जानते नहीं कि सारा एक्शन विचार से आता है। कोई एक्शन विचार के बिना पैदा नहीं होता है।

प्रश्नः आपके विचार से...

मेरा कहना यह है कि विचार ही नहीं है मुल्क में, विचार ही आ जाए तो काफी काम हो गया, एक्शन पीछे फॉलो करेगा।

प्रश्नः आपके... एक्शन क्या है, हम जानना चाहते हैं?

मेरी आप बात ही नहीं समझ रहे हैं। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि अगर एक्शन
भी पैदा करना हो--एक्शन भी विचार से पैदा होते हैं।

हम यहां बैठे हुए हैं और मैं आपसे चिल्ला कर कहूं कि कमरे में आग लगी हुई है, आप कहें कि आप सिर्फ चिल्ला कर बोले चले जा रहे हैं--कमरे में आग लगी है। आप कुछ करके बताइए। आपको किसी को आग नहीं दिखाई पड़ रही है और मुझे लगता है कि इस वक्त कुछ और करने का सवाल नहीं है। अभी तो बड़ा सवाल यह है कि आपको दिखाई पड़ जाए कि आग लगी है। आग लगी है यह दिखाई पड़ जाए तो एक्शन पैदा होने वाला है। आप कमरे के बाहर निकलना शुरू करेंगे। मुझे कुछ करने का सवाल नहीं है बड़ा। बड़ा सवाल यह है कि आग दिखाई पड़ जाए। मेरे लिए एक्शन कोई मूल्य नहीं रखता बहुत।
मैं मानता हूं कि एक्शन जो है वह बिल्कुल ही शैडो है थॉट की। विचार आता है, उसकी छाया की तरह एक्शन आता है। इस मुल्क में हजारों साल से सारी दुनिया में हमको एक्शन बड़ा कीमती बताया जाता। समझा जाता कि एक्शन ही बड़ी चीज है। मैं मानता नहीं। मैं मानता हूं एक्शन तो होता है, विचार आ जाना चाहिए। विचार नहीं है। इसलिए मेरी सारी चेष्टा जोर से चिल्ला कर आपसे बात करने की है कि विचार वह कैसे पैदा हो। वह हो जाए, एक्शन आपमें पैदा होगा। वह मैं नहीं करना चाहता, उससे मुझे कोई संबंध नहीं है। यानी मैं उसे इररिलेवेंट मानता हूं, वह हो ही जाएगा। उससे कोई मतलब नहीं है। जैसे मैं आपसे कहूं...

प्रश्नः... पुट इन एक्शन, वॉट इ.ज द यूज ऑफ थीकिंग अनलेस पुट इन एक्शन?

आप जब कहते हैं न, पुट इन एक्शन, तो आप यह समझते हैं कि थॉट को एक्शन में रखना भी पड़ता है। नहीं, मैं यह कहता हूं, थॉट कम्स इन एक्शन। थॉट होना चाहिए। एक्शन को मैं मानता ही नहीं कि वह कुछ। आप जब आएंगे इस कमरे में तो मैं यह नहीं कहता अपनी छाया भी ले आना। मैं यह कहता ही नहीं। मैं कहता हूं, आप आ जाना। और आप कहेंगे, मैं अपनी छाया को भी लाऊं या नहीं? तो मैं कहूंगा, उसकी बात ही करनी फिजूल है। मेरा मानना यह है कि एक दफा विचार का बीज आपके मन में बैठ जाए--इट इ.ज बाउंड टु कम इन एक्शन। आपको लाना पड़े तो फिर विचार बैठा नहीं। फिर आप दूसरे का विचार पकड़ कर लाने की कोशिश कर रहे हैं। दुनिया में हमेशा यह होता है कि अगर मेरा विचार है तो मैं आपसे कहूंगा कि इसको कोशिश करिए, प्रयत्न करिए कर्म में लाने की, इसको आचरण में उतारिए। दूसरे के विचार को आचरण में उतारने की कोशिश करनी पड़ती है। आपमें विचार पैदा हो जाए तो वह आचरण में आता है। उसे करना नहीं पड़ता।

प्रश्नः आपके विचार से तो आग हो गई--तो उसमें कोई पानी लाएगा बुझाने
के लिए, कोई ऐसा आदमी होगा जो पेट्रोल लाएगा।

ठीक है न।

प्रश्नः तो इसीलिए एक्शन जब आपका नियत नहीं होगा तो पेट्रोल ही लाएगा।

यह जो बात है न, यह बिल्कुल ठीक है, यह संभावना है। और मैं चाहता हूं,
यह संभावना पैदा हो।

प्रश्नः इसका मतलब झगड़ा हो।

इसका मतलब यह है सिर्फ कि यहां इस कमरे में हम बैठे हुए हैं, आग लगे और
जल जाएं और मर जाएं बिना कुछ किए, उससे बेहतर है कि यहां कुछ हो। और मेरी अपनी समझ यह है कि अगर आप कमरे में जल रहे हैं तो आप पेट्रोल लाने वाले नहीं हैं। अगर कोई और जल रहा है, और ऐसा कोई जल रहा है कि जिसके जलने से आप बच सकें तो आप पेट्रोल लाएंगे--तो ही लाएंगे; नहीं तो आप नहीं लाने वाले हैं पेट्रोल। तो अगर समाज को यह पूरा बोध हो जाए कि किस आग से हम जल रहे

हैं, तो दस-पच्चीस लोगों के हित में है कि पेट्रोल लाया जाए। चालीस करोड़ के हित में नहीं है पेट्रोल लाना, पानी लाना हित में है।

प्रश्नः वह हिंसा हो गई।

मेरा कहना यह है--दस-पच्चीस लोगों के हित में है कि पेट्रोल लाया जाए।
लेकिन दस-पच्चीस लोगों की चलेगी कि चालीस करोड़ लोगों की चलेगी, यह विचार पैदा करने की हमें कोशिश करनी चाहिए कि चालीस करोड़ लोग कहीं दस-पच्चीस लोगों के पीछे खड़े होकर पेट्रोल लाने का काम न करें, जिसमें वे खुद ही जलेंगे। वे अभी कर रहे हैं।

प्रश्नः वे दस-पच्चीस कौन हैं?

इससे मेरा मतलब आदमियों के नाम का नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां-हां, बिल्कुल ठीक है।

जिन लोगों के हाथ में भी पुरानी सत्ता है, जिनके हाथ में भी धन है, जिनके हाथ में भी हुकूमत है, जो पुरानी व्यवस्था के साथ ही बच सकते हैं।
पुरानी व्यवस्था गई कि वे भी गए, वे बराबर कोशिश करेंगे पेट्रोल लाने की। और वे आपको भी यह समझाने की कोशिश करेंगे कि पेट्रोल नहीं है, पानी है। वे यह भी समझाने की कोशिश करेंगे कि इससे आग जलेगी नहीं, बढ़ेगी नहीं, बुझेगी। यह सब चलेगा। लेकिन इसका मतलब यह है कि हमें दूसरा विचार खड़ा करने की कोशिश करनी चाहिए। इसके सिवाय उपाय नहीं है कोई। इसके सिवाय उपाय नहीं है।

प्रश्नः और बचत के लिए पेट्रोल आवश्यक वह तो आप मानते हैं?

बिल्कुल, हमेशा आवश्यक रहेगा, हमेशा आवश्यक रहेगा, हमेशा आवश्यक रहेगा। लेकिन हिंसा तभी तक होगी जब तक दस-पच्चीस को ऐसा लगता है कि हम दस-पच्चीस करोड़ को अपने साथ खड़ा कर सकते हैं। जिस दिन दस-पच्चीस को ऐसा लगे कि चालीस करोड़ उस तरफ हो गए, वे एकदम इंपोटेंट हो जाते हैं। कुछ करने का सवाल नहीं है। मामला खतम हो जाता है। यह कांशसनेस साफ हो जानी चाहिए। वे मर गए, अपने आप मर गए। वे कुछ नहीं करेंगे। वे विदा हो गए। बल्कि वे बहुत जल्दी आपके साथ पानी लाने की कोशिश करेंगे। जैसा कि अंग्रेजों ने किया इस मुल्क में। अंग्रेजों को यह साफ हो गई बात कि यहां से उखड़ जाना पड़ेगा और उखड़ना फिर बहुत महंगा पड़ेगा। तो समझौते से चले जाना बहुत अच्छा है। इसमें कुछ पैर जमे रहेंगे, कुछ पैर जमे रहेंगे, मित्रता बनी रहेगी। यह दुश्मनी शांति से हल हो सकती है। यह साफ हो गई है बात, तो हट जाना पड़ता है।
यह कोई हिंदुस्तान में, जिन लोगों के हाथ में भी शोषण की सारी व्यवस्था है, वे एकदम हट जाएं अगर चेतना पूरी तरह जग जाए। चेतना न जगे तो उनको हटाने में हिंसा करनी पड़ेगी। और मजा यह है कि हिंसा में आप बिड़ला को थोड़े ही मारेंगे! बिड़ला के पीछे जो गरीब खड़ा होगा, वही मरेगा। यह आप भूल कर भी मत करना। रूस में भी जो लोग मरे, वे गरीब मरे। वह जो एक करोड़ लोगों की हत्या हुई, वे कोई एक करोड़ लोग कोई अमीर लोग नहीं थे। एक करोड़ अमीर होते तो फिर कहना ही क्या था! वे सब गरीब लोग थे जिनको अमीरों ने यह समझाया कि पुरानी व्यवस्था तुम्हारे हित में थी। वे मरे, और अमीर तो बच गया, फिर भी बच गया। अमीर तो होशियार है, उसके पास बुद्धि भी है, सुविधा भी है, संपन्नता भी है, वह तो बच गया, वह तो नहीं मरा। वह तो कल बिड़ला मरने लगे तो उनका बैंक इंग्लैंड में भी होगा, अमरीका में होगा, वे तो बच जाएंगे। लेकिन बिड़ला के पीछे जो नासमझ गरीब खड़े होकर लड़ता रहेगा वह मर जाएगा, वे मर जाते।

उसकी मौत हो जाएगी। मजा यह है कि हिंसा भी होगी, अगर कम्युनिज्म आए तो भी जो हिंसा होगी वह भी गरीब की होगी। अमीर की हिंसा होने का कोई मतलब नहीं, वह हो नहीं सकती। वह हो नहीं सकती।

प्रश्नः आपकी जो वैचारिक-क्रांति चल रही है और जो चला रहे हैं आप सारे देश में, तो उससे जो आप बोलते हैं कि एक्शन आने वाला है, तो आना ही चाहिए, तो कैसे एक्शन आएगा? आप सोचते हैं, आपके ख्याल में क्या हुआ एक्शन?

मेरा तो कहना यह है, मेरा तो कहना यह है कि हमारी जो सारी चेष्टा होती
है न, वह मेरी चेष्टा नहीं है। हमारी चेष्टा यह होती है आमतौर से कि मैं आपको एक विचार दूं और एक निर्णय करूं कि यह कर्म उससे पैदा होना चाहिए। एक कमरे में हम बैठे हैं, जैसा मैंने आपसे कहा, आग लगी है, आपको दिखाई नहीं पड़ रही है। मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि आपको दिखाई पड़ जाए कि आग लगी है। इतना दिखाई पड़ जाना पर्याप्त है। और हमारी चेतना पकड़ लेगी उस एक्शन को जो आना चाहिए। इस आग को बुझाने का क्या उपाय हो सकता है, वह हम पकड़ लेंगे। मैं उसमें उत्सुक नहीं हूं, क्योंकि मेरा मानना यह है कि मेरी जैसे ही उसमें उत्सुकता हो जाती है, फिर मैं आपको विचार नहीं देना चाहता, फिर एक्शन ही देना चाहता हूं। फिर यह फिकर होती है कि विचार की झंझट में कौन पड़े!
मैं आपको बताऊं कि यह करिए। और मेरा मानना है, जो लोग भी आपको बताते हैं, यह करिए, वे आपके विचार को नुकसान पहुंचाते हैं। मैं यह कहता हूं, आप देखिए कि आग लगी है कि नहीं, इसलिए तो मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि आग लगी ही है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं, आप उठिए, देखिए, सोचिए, हो सकता है आग लगी हो। और इसलिए मैं यह भी नहीं कहना चाहता कि आग लगी ही है। वह भी कहूं तो मैंने आपको नुकसान पहुंचाया, नुकसान पहुंचाया। बस इतना कि आप देख सकें। आप सोच सकें। हो सकता है, आग न लगी हो, मैं गलती में होऊं, तो आप मुझे दिखा सकें कि आप गलती में थे, आप फिजूल परेशान हो रहे हैं, आग नहीं लगी है। तो मैं शांत हो जाऊं। यह सवाल बहुत गहरे में मुल्क चिंतन कर सके--यह सवाल ही नहीं कि क्या चिंतन करे, मुल्क चिंतन कर ही नहीं रहा है किसी मसले पर। और एक बार मुल्क चिंतन करने लगे तो ऐसा कोई मसला नहीं जिस पर चिंतन नहीं होगा।
अभी यह जो फ्रांस में बच्चों का विद्रोह चला, तो फ्रांस का एजुकेशन मिनिस्टर सोरगुन युनिवर्सिटी में बोलने गया। तो उसने उसी के पहले शिक्षा पर छह सौ पृष्ठों की किताब लिखी थी। तो बेंगेट नाम के लड़के ने खड़े होकर उससे कहा कि हमने आपका घंटे भर भाषण सुना और हम आपकी छह सौ पृष्ठों का किताब भी पढ़ गए, लेकिन हमारे एक भी मसले पर उसमें विचार नहीं है, एक भी मसले पर विचार नहीं है। तो दूसरे लड़के ने खड़े होकर कहा कि तुम्हारा सवाल ही गलत है। यह आदमी विचार करना ही नहीं जानता। यह सवाल ही नहीं है कि किसी मसले पर यह विचार करे।
ये विचार से बचने की कोशिश में लगे हुए लोग हैं। ये विचार करना ही नहीं चाहते। क्योंकि विचार करना खतरनाक है कुछ लोगों के लिए। विचार करने से सारी जगह के लूप-होल खुल जाने वाले हैं। जहां-जहां हमने थेगड़े लगा रखे हैं और जहां-जहां जिंदगी को हमने कनवीनियंट बना रखा है, सब जगह से खुल जाने वाले हैं। क्योंकि विचार करने की आग में हमारी न मालूम कितनी धारणाएं, कितनी आस्थाएं, कितने मंदिर, कितनी मूर्तियां, कितने गुरु, कितने शास्त्र विदा हो जाएंगे। कोई पक्ष में नहीं है विचार के। वह कहता है, विचार मत करना। गीता में सब कहा हुआ है, वह मान लो। गांधी जो कहते हैं, वह मान लो। या मैं भी यह कह सकता हूं...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, मेरी आप बात नहीं समझे। मैं इसीलिए तो कोई आपको पाजिटिव प्रोग्राम भी नहीं देना चाहता हूं। देना ही नहीं चाहता हूं। हमारा मन तो फौरन चाहता है कि पाजिटिव कुछ दें। मेरी तो पूरी प्रोसेस निगेटिव है। मैं

तो आपको सिर्फ चिंतन में डाल देना चाहता हूं। मैं तो मानता हूं, हिंदुस्तान में इस समय कोई पचास साक्रेटीज की जरूरत है जो गांव-गांव में एक-एक आदमी की पुरानी धारणाओं को हिला दें। सब तरफ--राजनीति हो, धर्म हो, साहित्य हो, शिक्षा हो, सब तरफ हिला दें। और पूरा मुल्क खड़ा हो जाए, क्वेश्चनिंग हो जाए! और पूरे मुल्क के सामने प्रश्न खड़ा हो जाए, हर चीज के पीछे प्रश्न लग जाए!

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह भी नहीं कहता हूं। आप सोचें इस पर। यह तो नहीं कहता कि आप मेरी बात मान लें और कर जाएं, लेकिन आपने सोचा कि क्रांति हो गई। मेरा आप मतलब नहीं समझे। इस पर भी आप सोचें--एण्ड दिस टू।

प्रश्नः आपकी समझ में कहां-कहां पर आग है समाज में? इस मुल्क में कहीं-कहीं है आग ऐसा मानते हैं आप। कहां है? कहां-कहां आग है?

पूरे मुल्क में आग है। आग कोई एक आदमी के पीछे नहीं, एक घर में नहीं है।

प्रश्नः कौन सी जगह आग नहीं है? गुजरात में नहीं है।

नहीं-नहीं, सब जगह आग है, सब जगह आग है। सब जगह आग है, लेकिन कहीं आग को देखने की क्षमता थोड़ी कम है, कहीं थोड़ी ज्यादा है। बंगाल में ज्यादा दिखती है, गुजरात में कम दिखती है। वह जरा गुजराती की देखने की क्षमता कम है।
उसका कारण है। उसका कारण है। उसका कारण है।

प्रश्नः यह विचार का... है आपका, ब्रेन-वाशिंग से कितना ताल्लुक है?

ब्रेन-वाशिंग से बिल्कुल उलटा है।

प्रश्नः क्योंकि उचित प्रोग्राम आपके पास नहीं है।

बिल्कुल नहीं है।

प्रश्नः उसी समय में सिर्फ मानवीय के मन को एक खोखला बना देना है।

खोखला नहीं; पाजिटिव प्रोग्राम से खोखला बनता है मानवीय मन।

प्रश्नः... जो मूल्य हैं, उसको तोड़-फोड़ दिए जाएं?

न, न, न, यह भी नहीं कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं--क्वेश्चन मार्क! अगर वे आपको ठीक लगें तो उनको बचाइए, गलत लगें तो जाने दीजिए।

प्रश्नः यह प्रयत्न तो है...

मेरा प्रयत्न है कि सब संदिग्ध हो जाए। कोई भी चीज असंदिग्ध न रह जाए। क्योंकि जिस देश के पास जितनी ज्यादा असंदिग्ध चीजें होंगी, उस देश की प्रतिभा उतनी जंग खा जाएगी। जिस मुल्क के पास जितना डाउट होगा, उतना उसकी चेतना विकसित होगी, तर्क विकसित होगा, विज्ञान विकसित होगा, चिंतन विकसित होगा, फिलासफी विकसित होगी, आइडियोलॉजी विकसित होगी।
निगेटिव प्रोग्राम ही आपको खोखला होने से बचा सकता है। पाजिटिव प्रोग्राम खोखला करता है। क्योंकि वह आपको कोई मौका ही नहीं देता सोचने का। वह कहता है, यह रहा भगवान, इसकी तुम पूजा करो, सब हो जाएगा, मामला खतम!

तुम्हें कुछ होने की जरूरत नहीं है। तुम्हें सोचना नहीं है। और ब्रेन-वॉश से मेरी बात बिल्कुल उलटी है। ब्रेन-वॉश आपको पाजिटिव देता है, निगेटिव बिल्कुल नहीं देता। ब्रेन-वॉश कहता है, कैपिटल ही सत्य है। बस इसको ही रिपीट किए चला जाता है। गीता ही सत्य है, ये सब ब्रेन-वॉश के तरीके हैं। वह कभी नहीं कहता है कि सोचो।

प्रश्नः नहीं, ऐसे वे कहते हैं, यही सच है, यही सच है। आप कहते रहते हैं, यही झूठ है, यही झूठ है।

न-न, यह मैं नहीं कह रहा, मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, क्या झूठ है, क्या सच है, यह तय नहीं है, सोचो। यह मैं नहीं कह रहा। अगर मैं यह कहूं कि यह झूठ है, यह झूठ है, यह झूठ है, तब तो वह ब्रेन-वॉश ही है। मैं यह नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि कोई चीज, जो हम अब तक मानते चले आए हैं कि सच ही है, या मानते चले आए हैं कि झूठ ही है, इतना निश्चित कुछ भी नहीं है। और इस निश्चय के कारण समाज जंग खा गया है। जिंदगी अनिश्चित है, और अनसर्टेन है, और डाउटिंग है, और पूछने जैसी है, और पूछना चाहिए। और जो ठीक लगे वह मानना चाहिए; लेकिन जो हम मान लें वह भी कभी ऐसा नहीं हो जाना चाहिए कि पूछना बंद कर दें। उस पर भी पूछना सदा जारी रहना चाहिए, तो विकास होगा। डारमेंट सोसाइटी और इवॉल्विंग सोसाइटी का इतना ही फर्क है कि जो जितनी सोसाइटी स्टैटिक होगी, वह उतना ही मानती है कि सब निश्चित हो गया है, सब ज्ञात हो गया है, अब कुछ जानना नहीं है, कुछ पूछना नहीं है, कुछ खोजना नहीं है। विकसित समाज पूछता है, खोजता है, पूछता ही चला जाता है।
आइंस्टीन से किसी ने पूछा मरने के कोई पांच-सात दिन पहले कि आप एक साइंटिफिक माइंड में और एक नॉन-साइंटिफिक माइंड में फर्क क्या करते हैं? तो आइंस्टीन ने कहा कि अगर नॉन-साइंटिफिक माइंड से आप सौ सवाल पूछो तो वह सौ के ही उत्तर देने को राजी है। वह एक सवाल पर भी यह नहीं कहेगा कि मैं नहीं जानता हूं। अवैज्ञानिक चित्त कभी कहने की हिम्मत ही नहीं जुटाता कि मैं नहीं जानता हूं। वह सब जानता है, वह सर्वज्ञ है। साइंटिस्ट से पूछो तो वह सौ में से निन्यानबे प्रश्नों पर तो कहेगा कि हम कुछ भी नहीं जानते। एक के बाबत कहेगा, कुछ जानते हैं। वह भी पक्का, निश्चित नहीं है। वह भी कल बदल सकता है। इतनी ह्यूमिलिटी, इतना डाउट, इतनी इग्नोरेंस की स्वीकृति पैदा हो तो मुल्क विकास करता है।
तो मैं कोई ज्ञान देने को उत्सुक ही नहीं हूं जरा भी, कि मैं आपको कोई ज्ञान दूं तो ब्रेन-वॉश हो जाएगा। सब ज्ञानी ब्रेन-वॉश करते हैं। क्योंकि वह आपको ज्ञान दे देते हैं पाजिटिव। वे कहते हैं, आपको सोचने की जरूरत नहीं है। यह रेडीमेड नालेज हम आपको देते हैं। आप इस पर एक्शन करो, बस, मामला खत्म होता है। मेरा वह बिल्कुल ही उलटा है, बिल्कुल ही उलटा है।

प्रश्नः इंदिरा जी कांग्रेस को चलाती रहेंगी और मोरार जी तोड़ डालेंगे
तो उसमें आपका क्या ख्याल है? मोरार जी क्यों, कैसे तोड़ डालेंगे? मोरार जी तोड़ डालेंगे तो कैसे तोड़ डालेंगे?

मोरार जी साफ हैं, मोरार जी साफ हैं। उनका पक्ष स्पष्ट है। समाजवाद की कोई बात उनके मन में नहीं है। न बात मन में है, न समाजवाद का धोखा खड़ा करने की बात है। इसलिए मोरार जी के साथ तो कांग्रेस जल्दी मर जाएगी। क्योंकि मोरार जी के साथ कांग्रेस सीधी पूंजीवादी हो जाएगी। इंदिरा के साथ धोखा फिर जारी रहता है। कांग्रेस तय नहीं हो पाती कि क्या है? वह नेहरू जी के साथ भी धोखा जारी रहा। कांग्रेस तय नहीं हो पाई कि कांग्रेस क्या है? वल्लभ भाई के साथ तय हो जाती और जल्दी मर जाती। और मुल्क का छुटकारा हो जाता।

प्रश्नः धोखा अच्छा है या तो...

धोखा खतरनाक है!

प्रश्नः इसलिए मोरार जी...

हां, मोरार जी अच्छे हैं, क्योंकि सुसाइडल हैं कांग्रेस के लिए, इसलिए मैं कहता हूं, वे अच्छे हैं। वह जहर साबित होंगे, बिल्कुल जहर साबित होंगे।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं यह मानता हूं कि मुल्क में भीतर बहुत अशांति है, बहुत पीड़ा है। वह प्रकट होनी चाहिए सब तरफ से।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। प्रॉब्लम साल्व नहीं होगा, प्रॉब्लम साल्व नहीं होगा। प्रॉब्लम साल्व उनसे नहीं होगा। लेकिन वे इतने उपद्रव में खुद टूट जाएं और मर जाएं, तो प्रॉब्लम साल्व करने वाले लोग मुल्क में पैदा हो सकते हैं। वह कठिनाई नहीं है। यानी मेरा मानना है कि कांग्रेस की मृत्यु मुल्क के हित में होगी। कांग्रेस जब तक नहीं मरती तब तक मुल्क में नई पार्टी के खड़े होने का बड़ा मुश्किल मामला है, एकदम मुश्किल मामला है। उसको मर जाना चाहिए।

प्रश्नः कब मरेगी?

मोरार जी आएं तो जल्दी मरती है। इंदिरा आएं तो थोड़ी देर लगती है, थोड़ी देर लगती है। दस साल, बहत्तर में तो अब नहीं मरती है, अगर इंदिरा सम्हल जाती हैं तो बहत्तर में नहीं मरती है। इंदिरा बहत्तर में जीता ले जाएगी।

प्रश्नः इ.ज देअर एनी पॉसिबिलिटी कम्युनिज्म इन इंडिया?

है तो संभावना, लेकिन ऐसे गलत लोगों के हाथ कम्युनिज्म है भारत का कि उससे बहुत आशा नहीं बनती है।

प्रश्नः आपका ख्याल ऐसा है कि कांग्रेस जब तक जिंदा रहेगी तो दूसरे बड़े पक्ष नहीं हो सकते?

नहीं, बिल्कुल असंभव है। क्योंकि पक्ष को खड़े होने के लिए मौका ही नहीं मिलता, गुंजाइश नहीं मिलती।

प्रश्नः आपके विचार और हिप्पी के विचार में क्या फर्क है?

बड़ा मेल है, बड़ा मेल है। बड़ा मेल है, थोड़ा सा फर्क है। मैं धार्मिक हिप्पी हूं, बस इतना ही फर्क हो सकता है और कुछ नहीं।

प्रश्नः आपने कहा कांग्रेस की मृत्यु नजदीक है, तो जब कांग्रेस मर जाएगी--चाहे मोरार जी आएं तो दो साल में मर जाए और इंदिरा आएं तो दस साल बाद, लेकिन जिस दिन कांग्रेस मर जाएगी--आपका ख्याल क्या है कि यहां डेमोक्रेसी चालू रहेगी या विकृत हो जाएगी?

कुछ भी हो, वह बेहतर होगा--पहली बात। कुछ भी हो, वह बेहतर होगा। क्योंकि इतने मरे हुए होने से कुछ भी होना बेहतर है, कुछ भी होना बेहतर है। एक तो मैं यह कहता हूं, कुछ भी होगा, वह बेहतर होगा। मुल्क में कुछ भी तो

हो। कुछ भी नहीं हो रहा है। बीस साल से ऐसा जड़ हो गया है कि हम एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगा रहे हैं। कुछ भी नहीं हो रहा है। और होने का धोखा पैदा हुआ जा रहा है कि कुछ होता है, कुछ होता है। कुछ भी हो, तो बेहतर होगा। लेकिन मेरा मानना है कि कांग्रेस का विघटन ही मुल्क में डेमोक्रेसी ला सकता है। कांग्रेस बचने की आखिरी कोशिश में डिक्टेटोरियल हो सकती है-- आखिरी कोशिश में। जो आखिरी कोशिश होगी कांग्रेस की, वह डेमोक्रेसी का भ्रम छोड़ देना होगा। आखिरी बचने की जो कोशिश होगी। अभी तो वह समाजवाद का नाम लेकर बचने की कोशिश करेगी, लेकिन कितनी देर! इसके बाद आखिरी जो उपाय होगा वह यह होगा कि कांग्रेस अपने बचने की अंतिम चेष्टा में तानाशाही पैदा कर दे मुल्क में। हिंदुस्तान की कोई दूसरी पार्टी अभी तानाशाही की हैसियत में नहीं है। सिर्फ कांग्रेस हो सकती है, सिर्फ कांग्रेस हो सकती है। यह डर पैदा हो सकता है कांग्रेस से।
कांग्रेस के विघटन से हिंदुस्तान में डेमोक्रेसी की संभावना बहुत बढ़ जाएगी, क्योंकि कोई बहुत बड़ी, मेजर पार्टी नहीं होगी। सब पार्टियां बंटी हुई ताकत की होंगी। हिंदुस्तान में कभी कोई डिक्टेटरशिप की संभावना फिर नहीं है। कांग्रेस के साथ, एक तो नेहरू के साथ थी वह नेहरू के मरने के साथ खतम हो गई। अब कांग्रेस के साथ है, वह कांग्रेस के मरने के साथ खतम होगी। डिक्टेटरशिप की संभावना नहीं है, क्योंकि जितनी पार्टी होंगी, इतनी छोटी होंगी कि ये थोड़े-बहुत दिन चला सकें। और इनको मोल-तोल से ही चलना पड़ेगा। ये ज्यादा दिन, इनको कोई ताकत इकट्ठी नहीं हासिल कर सकता। कुछ भी हो, मैं यह मानता हूं कि ना-कुछ होने की हालत से कुछ भी होना बेहतर होगा।

प्रश्नः हमारी जो यह एक्झिसटिंग कंडीशन है मुल्क की, वह देखते हुए आपको लगता है के वी पीपुल इन इंडिया, आर वी डिजर्विंग डेमोक्रेसी ऑर वी आर फिट फॉर डिक्टेटरशिप?

सवाल तो यह है, सवाल यह नहीं है।

प्रश्नः क्योंकि डिजर्व इन डेमोक्रेसी।

यह तो प्रत्येक आदमी को हक है डेमोक्रेसी का। डेमोक्रेसी का हर आदमी
को हक है। वह कितना ही बुरा आदमी हो और कैसा ही अज्ञानी हो, कितना ही नासमझ हो, उसको व्यक्ति होने का हक है। डेमोक्रेसी इतना ही कहती है कि हम तुम्हें स्वीकार करते हैं। उतना ही मूल्य देते हैं जितना किसी को देते हैं। और अगर हम हक पूछने जाएं तो शायद कभी दुनिया ऐसी नहीं होगी कि हम यह मान सकें कि अब सब लोग लोकतंत्र के योग्य हो गए हैं। ऐसे तो प्रत्येक आदमी हकदार है। लेकिन योग्यता तो कभी नहीं होगी पूरी। पूरी योग्यता तो तब हो जब कि जीसस क्राइस्ट जैसे लोग सारे लोग हों। वह तो कभी नहीं होगा। इसलिए हमें बीच में ही चलना पड़ेगा। लोग अयोग्य होंगे और लोकतंत्र की चेष्टा जारी रखनी पड़ेगी, जारी रखनी पड़ेगी।

प्रश्नः एनी विज्युलाइजेशन इन दि कांग्रेस इन विच इयर्स?

अगर इंदिरा टिक जाती है, तो बहत्तर में नहीं मरती। इसलिए मैं तो बड़ा उत्सुक था कि मोरार जी आ जाएं तो बहत्तर में वह...

लेकिन, दोनों को छोड़ कर अगर तीसरा कोई आ गया तो?

नहीं, अब कोई तीसरे का सवाल नहीं है।... कोई सवाल नहीं है। तीसरे का कोई सवाल नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, नाम कोई भी हो, तीसरे का सवाल नहीं है।

देख कबीरा रोया
तेईसवां प्रवचन

गांधी की रुग्ण-दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन्!
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक छोटी सी किताब लिखी है। वह किताब सूक्तियों की, मैक्सिम्स की किताब है। उसमें पहली सूक्ति उसने बहुत अदभुत लिखी है। पहला सूत्र उसने लिखा हैः दि फर्स्ट गोल्डन रूल इ.ज दैट देअर आर नो गोल्डन रूल्स। पहला स्वर्ण-सूत्र यह है कि जगत में स्वर्ण-सूत्र हैं ही नहीं।
यह मुझे इसलिए स्मरण आता है कि जब मैं सोचने बैठता हूं, गांधी-विचार
पर बोलने के लिए, तो पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि गांधी-विचार जैसी कोई विचार-दृष्टि है ही नहीं। गांधी-विचार जैसी कोई चीज नहीं है। गांधी-विश्वास जैसी चीज है, गांधी-विचार जैसी चीज नहीं है। गांधी के विश्वास हैं कुछ, लेकिन गांधी के पास कोई वैज्ञानिक दृष्टि और कोई वैज्ञानिक विचार नहीं है। गांधी के विश्वासों को ही हम अगर गांधी-विचार कहें, तो बात दूसरी है। क्योंकि विचार का पहला लक्षण है--संदेह। विचार शुरू होता है संदेह से। विचार की यात्रा ही चलती है डाउट, संदेह से। और गांधी संदेह करने को जरा भी राजी नहीं हैं। उनके जीवन की सारी चिंतना चलती है--श्रद्धा से, विश्वास से। यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि जो व्यक्ति संदेह करने को राजी नहीं है, वह विचार के जगत में कोई गति नहीं कर सकता है। जो व्यक्ति विश्वास करने को पकड़े बैठा हुआ है, वह विचार नहीं कर सकता है। उसे विचार करने की जरूरत ही नहीं है।
ऐसी भूल गांधी जी के साथ हो गई हो, ऐसा नहीं है। अगर उनके अकेले के साथ हुई होती तो हम पहचान जाते कि गांधी जी के पास विचार नहीं हैं, विश्वास है, श्रद्धा है। यह हम नहीं पहचान पाए क्योंकि भारत के पास हजारों साल से विचार नहीं है। और विश्वासों की संपत्ति को ही हम विचार समझते हुए जी रहे हैं। भारत ने हजारों साल से विचार करना बंद कर रखा है। विचार हम करते ही नहीं। क्योंकि विचार का जो पहला सूत्र है, उसे हमने इनकार कर दिया है। हमने भारतीय दृष्टि को खड़ा किया है श्रद्धा की ईंट पर। और ध्यान रहे, जो कौम भी श्रद्धा की ईंट पर मनुष्य के व्यक्तित्व को खड़ा करना चाहती है, वह विचार की दुश्मन हो जाती है।
विचार और श्रद्धा में बुनियादी विरोध है। श्रद्धा कहती है, मानो, सोचो मत। श्रद्धा कहती है, स्वीकार करो, इनकार मत करो। श्रद्धा कहती है, आस्था रखो, अनास्था प्रकट मत करो। श्रद्धा कहती है, तुम्हें विचार की जरूरत नहीं है। विचार किया जा चुका है--महापुरुषों ने, अवतारों ने, शास्त्रकारों ने विचार कर लिया है, तुम्हारा काम है सिर्फ मानो। विचार मत करो। जब कि विचार की यात्रा बिल्कुल विपरीत है। विचार की यात्रा शुरू होती है संदेह से, प्रश्न से, पूछने से। विचार चलता ही है, बीज है उसका संदेह--शक करो, संदेह करो। मान मत लो, खोजो, अन्वेषण करो, और जब कि माने बिना रहने का कोई उपाय ही न रह जाए, जब तुम सारी परीक्षा कर डालो, सारी खोज-बीन कर डालो और संदेह के लिए आगे कोई मौका ही न रह जाए, तभी स्वीकार करो। और वह स्वीकृति भी हाईपोथैटिकल हो, वह स्वीकृति भी इस तरह की हो कि कल और विचार करेंगे, अगर बदलाहट होगी, तो बदल लेंगे।
भारत सैकड़ों वर्षों से श्रद्धा के आधार पर अपने व्यक्तित्व को खड़ा किया है, इसलिए भारत की प्रतिभा मर गई है, वह जंग खा गई है। हमने सैकड़ों वर्ष से सोचा ही नहीं है सिर्फ माना है। कोई महावीर को मानता है, कोई कृष्ण को मानता है, कोई राम को मानता है। यह दूसरी बात है कि कौन किसको मानता है। लेकिन हम मानते हैं। सोचते हम नहीं हैं। इसलिए गांधी जी के संबंध में भी यह भ्रांति हो गई, वह भ्रांति स्वाभाविक थी, क्योंकि हमारी परंपरा के अनुकूल पड़ती थी। गांधी जी संदेह के लिए राजी नहीं हैं। वे भी आस्थावान हैं। आस्थावान विचार करता नहीं, केवल विचारों को ग्रहण करता है। आस्थावान के पास सब विचार उधार होते हैं, मौलिक नहीं हो सकते हैं। आस्थावान यह कहता है कि मैं स्वीकार करने को तैयार हूं, कहीं से मिलते हों तो मैं ले लेता

हूं। वह सुन लेता है और ले लेता है। गांधी जी के पास एक भी मौलिक विचार नहीं है। गांधी जी के पास सब उधार विचार हैं जो इस देश की परंपराओं से या बाहर की परंपराओं से लिए गए हैं। गांधी जी की चिंतना में उनका अपना कुछ भी नहीं है सिवाय इसके कि जोड़ भी नया हो सकता है। अगर मैं गांव में जाऊं और थोड़ा-थोड़ा सामान एक-एक घर से इकट्ठा करूं, सब उधार हो और फिर उस सामान को जोड़ कर एक ढेर लगा लूं, तो वह ढेर एक अर्थ में सिर्फ नया होगा--ढेर के अर्थ में, बाकी सब चीजें बासी, उधार होंगी।
गांधी जी के विचार में एक भी विचार उनका अपना नहीं है, निजी नहीं है। उनके सब विचार परंपरा, रूढ़ियों, शास्त्रों से गृहीत हैं। इसका भी कारण है। इसका भी बुनियादी कारण है। और गांधी जी का ही, ऐसा नहीं है, हम सबका भी अधिक में ऐसा ही है। भारत के साथ ऐसा घट गया है। यह दुर्भाग्य पूरी भारतीय प्रतिभा का है, और गांधी जी की सफलता का राज भी यही है। भारत में विचारशील व्यक्ति के सफल होने की बहुत कम उम्मीद है। भारत में परंपरागत रूढ़िगत, भारत की जो हजारों साल से खून में मिल गई बात है, उस पर ही खड़े होकर सफल हुआ जा सकता है। भारत में सफल होना हो तो विचारवान होना उचित नहीं है। उसमें कोई तालमेल नहीं बैठ सकेगा।
आप कह सकते हैं कि गांधी का अगर कोई विचार नहीं तो इतनी बड़ी सफलता कैसे? इतनी बड़ी सफलता सिर्फ इसलिए कि कोई विचार नहीं है। इस सफलता के पीछे कारण यही है कि हम न विचार करने वालों के बीच में विचार करने वाला तो निरंतर कठिनाई में पड़ जाएगा। हमारे बीच तो न विचार करने की धारा का व्यक्ति ही अंगीकार हो सकता है।
यह विचार जब कोई व्यक्ति दूसरे से ग्रहण करता है, जब उसके स्वयं के भीतर से वे पैदा नहीं होते, तो ऐसा क्या कारण है, जिससे कोई व्यक्ति आस्थावान, श्रद्धावान हो जाता है? सच तो यह है कि बच्चे के जन्म के साथ श्रद्धा नहीं होती, बच्चे में संदेह होता है--स्वाभाविक संदेह। श्रद्धा सिखाई जाती है। छोटे-छोटे बच्चों में संदेह होता है, बड़ा जीवंत संदेह होता है। वे हर चीज पर संदेह करते हैं। लेकिन हम उनके संदेह को मिटाते चले जाते हैं। हम उनके संदेह की जड़ काट देते हैं। हम इसलिए जड़ काट देते हैं कि संदेह में छिपे हुए विद्रोह के बीज हैं, संदेह रिबेलियस है, संदेह में खतरा है। अगर बच्चे सब चीजों पर संदेह करें, तो हमने जो व्यवस्था बना रखी है, वह सब टूट जाए।
इसलिए हम सबसे पहला काम यह करते हैं कि बच्चे का संदेह तोड़ देते हैं। बाप उससे कहता है कि मैं तुम्हारा पिता हूं, इसलिए मेरी बात मानो। वह कहता है कि मेरी उम्र ज्यादा है, इसलिए मेरी बात मानो। वह कहता है, यही किताब कृष्ण ने भी कही-लिखी है, यही बुद्ध ने भी कहा है, इसलिए मेरी बात मानो। वह बेटे पर, बच्चे पर विश्वास को थोपने की चेष्टा करता है। समाज की पूरी इच्छा संदेह को मिटाने की और विश्वास को थोपने की है। क्योंकि पुराने समाज का ढांचा तभी जिंदा रह सकता है, जब हम आने वाले बच्चों में संदेह को मिटा दें। लेकिन यह प्रक्रिया बड़ी आत्मघाती है, क्योंकि अगर संदेह मिट जाए, तो आने वाले समाज के निर्माण का उपाय नहीं रह जाता।
भारत में पुराना समाज ही चलता जा रहा है। नया समाज पैदा नहीं होता। क्योंकि नये समाज को पैदा होने का जो मूल सूत्र है "संदेह", वह हम बच्चों में जड़ से काट देते हैं। हम उसकी पहले ही जड़ों में गैप रख देते हैं, हम उसको समाप्त कर देते हैं। संदेह, बच्चा पैदा नहीं कर पाता है, इसलिए बैलगाड़ी से हम कभी भी राकेट पर नहीं पहुंच सकते हैं। हम अपनी तरफ से नहीं पहुंच सकते हैं। क्योंकि बैलगाड़ी से राकेट तक जाने की पहली बात तो यह है कि बैलगाड़ी पर संदेह हो। बैलगाड़ी चलाने वाले पर संदेह हो, बैलगाड़ी बनाने वाले पर संदेह हो और यह हो कि इससे बेहतर हो सकता है, इससे अच्छा हो सकता है। यहीं तक रुक जाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह संदेह भारत की प्रतिभा से हमने हटा दिया है। इसलिए भारत ने एक जड़, स्टैग्नेंट सोसाइटी, एक ठहरा हुआ समाज पैदा किया है जिसमें कोई गति नहीं। इसलिए भारत विज्ञान को पैदा नहीं कर पाया है।

संदेह पहला सूत्र है विचार का, और अगर विचार चले तो विज्ञान उसका परिणाम है। संदेह प्रारंभ है, विचार यात्रा है, विज्ञान परिणाम है।
भारत में कोई विज्ञान पैदा नहीं हो सका। न होने का कारण सिर्फ इतना है
कि उसका पहला चरण ही हमने उठने नहीं दिया, हम पहले ही काट डाले। हम प्रत्येक को सिखाते हैं कि मानो! लेकिन मानो, यह सिखाने का रास्ता क्या है? इसका सीक्रेट क्या है? और गांधी जी क्यों मानने वाले व्यक्ति हैं? विचारने वाले व्यक्ति नहीं हैं। क्या कारण है?
मेरी दृष्टि में, जो बच्चा जितना भयभीत होगा, उतना श्रद्धावान होगा। जितना अभय होगा, उतना संदेहशील होगा। जितना फियरलेस होगा, जितना निर्भय होगा, उतना संदेह करेगा। जितना भयभीत होगा, उतना श्रद्धावान होगा। गांधी जी के व्यक्तित्व को समझने में यह सूत्र बहुत उपयोगी होगा कि गांधी का प्रारंभिक व्यक्तित्व अत्यंत भय से आक्रांत है। अत्यंत भयभीत व्यक्ति हैं। उनकी प्रारंभिक जीवन की सारी व्यवस्था भय पर खड़ी है। यद्यपि बाद में बहुत निर्भयता उनमें प्रकट हुई। इस सूत्र को समझ लेना जरूरी होगा, क्योंकि इससे उनके व्यक्तित्व में और उनकी जो स्थिति है उसमें प्रवेश करने में बड़ा सहयोग मिलेगा। गांधी जी अत्यंत भयातुर हैं। उतना भयभीत आदमी खोजना जरा मुश्किल है।
गांधी जी हिंदुस्तान से यूरोप की यात्रा पर जा रहे हैं। रास्ते में जहाज पर कुछ मित्र हैं। कैरो में जहाज रुकता है, तो वे मित्र कहते हैं कि चलो सांझ है, रात हम यहीं रुकेंगे, वेश्या के घर हो आएं। गांधी इतना साहस नहीं जुटा पाते कि उनसे कह दें कि मैं वेश्या के घर नहीं जाना चाहता हूं। उन्हें डर लगता है कि पता नहीं वे क्या समझेंगे। शायद वे सोचेंगे यह कमजोर है। शायद वे सोचेंगे यह भयभीत है। वे यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं कि मैं वेश्या के घर नहीं जाऊंगा। वे उनके साथ हो लेते हैं। अब दोहरा भय उनको पकड़ता है। एक तो यह भय है कि ये मित्र हंसेंगे अगर मैं न जाऊं, इनकार करूं। और दूसरा भय यह है कि घर से चलते वक्त मां ने आज्ञा दी है और संकल्प दिलवा दिया है कि दूसरी स्त्री से सावधान रहना, बच कर रहना! अब ये दोनों भय उनके प्राणों को पकड़ लेते हैं। वे उस वेश्या के द्वार पर पहुंच गए हैं। मित्र उनको वेश्या के दरवाजे के भीतर पहुंचा देते हैं। दरवाजा बंद हो जाता है। हाथ-पैर उनके कंप रहे हैं, पसीना छूट रहा है। वे घबड़ा कर बिस्तर पर बैठ गए हैं। अब वे उस वेश्या को भी यह नहीं बता पाते हैं कि मैं किस मुसीबत में फंसा हुआ हूं। अब एक तीसरा भय सामने खड़ा हो गया है कि वेश्या बैठी हुई है, वह क्या सोचेगी! कोई सोच भी नहीं सकता कि यह व्यक्ति फिर बाद के दिनों में इतना निर्भय कैसे हो गया!
गांधी जी वकालत पास करके हिंदुस्तान वापस लौट आए हैं। रात भर वे तैयारी करते हैं अदालत में प्रकट होने की। रात भर सोते नहीं हैं। कंठस्थ कर लेते हैं, जो उन्हें बोलना है। और दूसरे दिन अदालत में "माई लार्ड" से ज्यादा नहीं बोल पाते हैं। इतना ही बोल पाते हैं। और इसके बाद चक्कर खाकर गिर पड़ते हैं। जो व्यक्ति अदालत में अपना पूरा वक्तव्य न दे सका--वकालत सीख कर आया है; रात भर तैयारी की है; चक्कर आ गया, हाथ-पैर ढीले पड़ गए, आंखें बंद हो गईं, कुर्सी पर बैठ गया। यह व्यक्ति बाद में इतनी बड़ी हुकूमत से लड़ता है और उसकी जड़ें हिला देता है। जरूर इसके व्यक्तित्व में कोई गहरी आंतरिक ग्रंथि है, जिसको समझना जरूरी है। नहीं समझेंगे तो बहुत कठिनाई होगी।
मेरी दृष्टि में गांधी के व्यक्तित्व को भय के बिना समझा ही नहीं जा सकता है। इतने वे भयभीत! वे पश्चिम जाकर मांसाहार नहीं करते हैं, दूसरी स्त्री के साथ दोस्ताना नहीं करते हैं, नाचने नहीं जाते हैं, डरते हैं, भयभीत हैं। आमतौर से आप सोचते होंगे कि शायद वे बड़े धार्मिक हैं। नहीं, मां से जो उन्होंने संकल्प लिए हैं, उसे तोड़ने की भी हिम्मत वे नहीं जुटा सकते। एक घर में ठहरते हैं, हाउस, एक घर में गेस्ट होकर, अतिथि होकर ठहरते हैं। अतिथि होकर ठहरते हैं। उस घर की महिला यह सोच कर कि यह युवक बड़ा अकेला अकेला है, एक लड़की से दोस्ती करवा देती है। वे यह भी नहीं कर पाते हैं कि मैं विवाहित हूं। अब यह कौन सा डर है कहने में कि मैं विवाहित हूं? लेकिन

वे यह भी हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं कि घर की गृहिणी को यह कह दें कि मैं विवाहित हूं, कृपा करके मेरी दोस्ताना मत कराइए। और वह महिला यह कोशिश करती है कि उनका प्रेम बन जाए और उनका विवाह भी हो जाए। वे उस लड़की को भी नहीं कह पाते हैं कि मैं विवाहित हूं और इस प्रेम के जाल में मुझे मत फंसाओ। वे प्रेम में फंसते चले जाते हैं और यह नहीं बता पाते हैं कि मैं विवाहित हूं। फिर एक दिन बात वहां आ जाती है कि अंतिम निर्णय लेना है। तब वे घर छोड़ कर, चिट्ठी लिख कर भाग खड़े होते हैं कि मैं तो विवाहित हूं!
यह थोड़ा सोचने जैसा है कि इतना भय इनके भीतर? इस भय के कारण ही वे आस्थावान बन जाते हैं। इस भय के कारण ही वे संदेह नहीं कर सकते हैं। जो भयभीत है, वह संदेह नहीं कर सकता है। और इसलिए अगर किसी को आस्थावान बनाना हो, तो पहले उसे भयभीत करना जरूरी है। बच्चों को भी हम भयभीत करके आस्थावान बनाते हैं। शिक्षक डंडा लिए हुए खड़ा है, बाप डंडा लिए हुए खड़ा है। हम उसे भयभीत करते हैं छोटे से बच्चे को। जितना वह भयभीत हो जाता है उतना वह श्रद्धायुक्त हो जाता है। अगर हम उसे निर्भय करें तो वह संदेह करेगा। निर्भय के साथ संदेह आना जरूरी है। संदेह के साथ विचार आएगा। गांधी में विचार नहीं आता है। वे पश्चिम में जाते हैं तो भी वे इस तरह
की संस्थाओं और इस तरह के लोगों से संबंधित होते हैं जो निपट अवैज्ञानिक हैं। जब वे इंग्लैंड में थे तो वहां डार्विन की चर्चा थी, लेकिन गांधी जी का डार्विन की चर्चा से कोई संबंध नहीं हुआ। क्योंकि डार्विन की चर्चा बड़ी संदेहपूर्ण थी। डार्विन ने सारी दुनिया के विचार को एक धक्का दे दिया था। सारी दुनिया में यह ख्याल था कि आदमी परमात्मा से पैदा हुआ है, परमात्मा का बेटा है। आदमी के अहंकार को इससे बड़ी तृप्ति मिलती है कि हम परमात्मा के बेटे हैं। इसलिए आदमी ने इस तरह की बातें ईजाद कर रखी थीं कि भगवान ने अपनी ही शक्ल में आदमी को बनाया है।
डार्विन ने एक बहुत बड़ा संदेह प्रकट किया, उसने कहा कि आदमी को देख कर
यह पता नहीं चलता कि तुम भगवान से पैदा हुए हो; तुम्हें गौर से देख कर यह पता चलता है कि तुम्हारा पिता किसी न किसी अर्थ में बंदर रहा होगा। आदमी की सारी स्थिति को देख कर उसने कहा कि यह बात बिल्कुल संदिग्ध मालूम होती है कि तुम भगवान से पैदा हुए हो। यह ज्यादा सही और वैज्ञानिक, तर्कयुक्त मालूम पड़ता है कि आदमी बंदर से पैदा हुआ है। इतनी बड़ी क्रांति इसने खड़ी कर दी, क्योंकि हजारों वर्ष का ख्याल था कि भगवान का बेटा है आदमी। उसने कहा कि बंदर का बेटा है। एकदम भगवान की जगह पिता को हटा कर और बंदर को रखना बड़ा कठिन मामला था। बड़ी हिम्मत की जरूरत थी। लेकिन डार्विन ने जो तर्क दिए थे, एकदम वैज्ञानिक थे।
आपको ख्याल भी नहीं है, आज भी आप जब रास्ते पर चलते हैं, तो आपने ख्याल किया? बाएं पैर के साथ दायां हाथ हिलता है, दाएं पैर के साथ बायां हाथ हिलता है। कोई पूछे कि इनको हिलाने की क्या जरूरत है। डार्विन ने पहली दफा बताया है कि बंदर चार हाथ-पैर से चलता था। वह आदत हाथ की अब भी नहीं मिटी। वह हाथ अब भी हिलता है। अब भी बाएं के साथ दायां हिलता है, दाएं के साथ बायां हिलता है। वह क्यों हिल रहा है? वह दस लाख साल पहले की पुरानी आदत पड़ी अभी भी नहीं भूल पाया है, वह उसी तरह हिल रहा है। अब कोई जरूरत नहीं है। चलने में उससे कोई संबंध नहीं है। लेकिन वह हिलने की गति तो थिर हो गई शरीर के भीतर। वह शरीर के क्रोमोसोम में, शरीर के सेल्स में घुस गई है। वह वहां बैठी हुई है। डार्विन ने हजार तरह से यह प्रमाणित किया है कि आदमी जो है वह बंदर का ही विकसित रूप है। लेकिन गांधी जी का डार्विन के विचार से इंग्लैंड में रह कर कोई संपर्क नहीं हुआ, जब कि सारी हवा डार्विन की थी। मार्क्स के ख्याल ने सारी दुनिया के मस्तिष्क को बेचैन कर दिया था, लेकिन गांधी का संबंध उससे भी नहीं हुआ। मार्क्स ने एक अदभुत, इससे भी बड़ी क्रांति की बात कही थी। उसने पहली दफा यह कहा था कि संपत्ति व्यक्ति की नहीं है, और व्यक्ति ने धोखा पैदा किया है कि संपत्ति व्यक्ति की है। संपत्ति समाज की है। और उसने यह भी कहा कि यह सब जालसाजी की बातें हैं कि अपने-अपने कर्मों के फल के अनुसार कोई गरीब है और अमीर है। गरीब और अमीर समाज की व्यवस्था का परिणाम है, किसी कर्मों के फल का परिणाम नहीं है।

मार्क्स की यह बात सारी दुनिया के विचारशील लोग विचार कर रहे थे। उसने भी बहुत धक्का दे दिया था। क्योंकि अब तक का नियम यह था कि हर आदमी अपने कर्मों का फल भोग रहा है। अब तक का विचार यह था कि अगर कोई गरीब है तो उसने पाप किए हैं इसलिए गरीब है, अमीर है तो उसने पुण्य किए हैं इसलिए अमीर है। कोई राजा है तो पुण्यों का फल है, कोई भिखारी है तो पापों का फल है। यह सारी चिंतना थी सारी दुनिया की। मार्क्स ने एक क्रांति खड़ी कर दी है। उसकी क्रांति की बात ठीक मालूम पड़ती है। ऐसा मालूम पड़ता है कि यह अमीर के द्वारा ईजाद किया गया सिद्धांत है--गरीब को गरीब रखने के लिए और अमीर को अमीर बने रहने के लिए। लेकिन गांधी से इसका भी कोई संबंध नहीं हुआ। गांधी का संबंध किनसे हुआ? गांधी जी इंग्लैंड में थे जहां इतनी जोर का ऊहापोह चल रहा था--इस सदी का जन्म हो रहा था। इस सदी की क्रांतिकारी चिंतना के सारे बीज इंग्लैंड की हवा में थे, लेकिन गांधी का कोई संबंध ही नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि गांधी को पता ही नहीं चला कि डार्विन भी हुआ है। गांधी को मार्क्स भी, उन्नीस सौ बयालीस के जेल में उन्होंने मार्क्स की किताब पढ़ी-- पचास साल बाद! और पचास साल पहले जब वे इंग्लैंड में थे, तब यह सारी हवा थी। गांधी का संबंध किनसे हुआ? गांधी का संबंध बड़े अजीब लोगों से हुआ! वेजिटेरियन, शाकाहारियों के सम्मेलन में वे उपस्थित रहे। शाकाहार की बातें उन्होंने चुनी। चाय पीनी चाहिए कि नहीं पीनी चाहिए, और यह सब्जी खानी चाहिए कि नहीं खानी चाहिए, और दूध लेना चाहिए तो बकरी का कि गाय का कि नहीं लेना चाहिए! गांधी जी इन सारे लोगों से इंग्लैंड में संबंधित हुए। यह थोड़ा सोचने जैसा है। जहां इतनी क्रांति की चर्चा थी, जहां सब तरह की क्रांतियों के सूत्र निकल रहे थे, उनका संबंध बहुत अजीब लोगों से हुआ! और वे उन्हीं के संपर्क में गए और वे उन्हीं की सब बातें सीख कर लौटे हैं। पश्चिम से वे तीन आदमियों के ख्याल लेकर भारत की तरफ आए। इसलिए एक और ख्याल आप समझ लेना, कि आमतौर से लोग समझते हैं कि गांधी जी भारत के बड़े प्रतिनिधि हैं, इस भूल में मत पड़ जाना। गांधी जी के तीनों गुरु पश्चिमी हैं। टाल्सटाय, रस्किन, थोरो--ये तीनों गुरु उनके पश्चिम के थे। और जो इन तीनों ने कहा है और किया है, गांधी जी उसे चुपचाप लेकर चले आए हैं श्रद्धा से स्वीकार किए। उन तीनों की विचारधारा से वे प्रभावित हैं। उन तीनों के विचारों को उन्होंने आत्मसात कर लिया है। वे उन्हीं का फिर जिंदगी भर प्रयोग करते रहे हैं। ये तीनों व्यक्ति बिल्कुल ही अवैज्ञानिक विचार के थे। इनकी चिंतना में कोई वैज्ञानिकता नहीं थी। इनका विचार ऐसा है कि अगर आदमी मान ले, अगर थोड़ी सी बात आदमी मान ले जिसको गांधी जी अपना गुरु स्वीकार करते हैं, तो जंगली दुनिया फिर वापस आ जाए। थोरो रेलगाड़ी के खिलाफ है, और उसी के प्रभाव में गांधी जी ने उन्नीस सौ पांच में एक किताब लिखीः हिंद स्वराज्य। और उसमें लिखा है कि रेलगाड़ी के मैं सख्त खिलाफ हूं। टेलिग्राफ के खिलाफ हूं। पोस्ट आफिस के खिलाफ हूं। इन सबके खिलाफ हूं। इनसे मनुष्य का पतन होने वाला है।
और कोई सोचता होगा कि उन्नीस सौ पांच में लिखी किताब बहुत प्रारंभिक रूप से उसका उल्लेख नहीं देना चाहिए। क्योंकि गांधी जी के बाद में जो... निकला था... उन्नीस सौ पैंतालीस के... ने उनसे पूछा कि आपने जो उन्नीस सौ पांच में हिंद स्वराज्य नाम की एक किताब लिखी थी, क्या उसकी बातों से आप अब भी सहमत हैं कि नहीं? रेलगाड़ी के अब भी आप खिलाफ हैं?
गांधी जी ने लिखा कि मैं उस किताब के...
थोरो मानता है कि सब काम हाथ से करना चाहिए, रस्किन ऐसा मानता है, टाल्सटाय भी ऐसा मानता है कि सब काम हाथ से करना चाहिए। पैदल चलना चाहिए। मशीन का उपयोग नहीं करना चाहिए।
लेकिन आपको पता होना चाहिए कि मनुष्य का जितना विकास हुआ है, वह सारा विकास इसलिए हो सका है कि मनुष्य ने हाथ की जगह मशीन की ईजाद की है। सारा विकास इसलिए हो सका है। मशीन का मतलब केवल इतना है कि हम अपने उपकरणों को, अपनी इंद्रियों को हजार करोड़ गुना बड़ा कर लेते हैं। मनुष्य की सारी विकसित जीवन-व्यवस्था यंत्र पर विकसित हुई। लेकिन वे तीन यंत्र-

362

विरोधियों की बात सुन कर वे आ गए और उन्होंने भी यहां यंत्र-विरोध की बात शुरू कर दी।
उनकी बात न तो वैज्ञानिक है, न विचारपूर्ण। क्योंकि पहली तो बात यह है
कि मनुष्य को पीछे लौटाया नहीं जा सकता। यह असंभव है। यह इसलिए असंभव है कि पीछे लौटना प्रकृति का नियम ही नहीं है। कोई चीज पीछे नहीं लौटती। जवान बूढ़ा होगा, बच्चा जवान होगा। बूढ़े को जवान बनाना, जवान को बच्चा बनाना, बच्चे को मां के गर्भ में ले जाना संभव नहीं है। जिंदगी सदा आगे की तरफ जाती है। व्यक्ति भी आगे की तरफ जाता है, समाज भी आगे की तरफ जाता है। समाज रोज आगे की तरफ गति करता है। पीछे लौटना संभव ही नहीं है। पीछे लौटा ही नहीं जा सकता। और अगर पीछे बड़ा सुख था तो आदमी आज की दुनिया में आया ही न होता! वह आया ही इसलिए है कि पीछे बड़ा दुख था। लेकिन पीछे का दुख भूल गया है।
मैं अभी काश्मीर के एक छोटे से गांव में था। एक मुसलमान मेरा खाना बनाता था, मीर मोहम्मद उसका नाम था। दो दिन, तीन दिन मेरे साथ था। उसने मुझे कहा कि किसी भी तरह मुझे यहां से ले चलिए। मैंने कहा कि तू बिल्कुल पागल हो गया है। गांधी जी और उनके अनुयायी तो कहते हैं कि सब बड़े शहर मिटा दो और छोटे गांव बना दो। और फिर तू तो इतनी सुंदर जगह में है--पहाड़ पर बर्फ छाई हुई है, हिमालय की निकटता है, बर्फ है, हरियाली है, झरने हैं! उस आदमी ने कहा कि न मुझे दरख्तों से मतलब है, न पहाड़ से, न हरियाली से। क्योंकि पेट भूखा है, ये सब नहीं दिखाई पड़ते। ये भरे पेट को दिखाई पड़ने वाली चीजें हैं। ये बंबई से जो लोग आते हैं, उसने कहा, उनको दिखाई पड़ता है कि पहाड़ पर बड़ी सुंदर बर्फ जमी है। इधर पेट इतना भूखा है कि बर्फ के जमे होने में कोई सौंदर्य नहीं दिखाई पड़ता है। उसने कहा, मुझे तो कोई तरह आप शहर ले चलिए। सारे गांव के लोग शहर की तरफ भाग रहे हैं, अकारण नहीं भाग रहे हैं। भागना ही पड़ेगा। जो नहीं भाग पा रहे हैं वे भी दुखी हैं वहां रुक कर। वहां कोई आनंदित नहीं हैं। लेकिन गांधी जी मानते हैं कि शहरों को विसर्जित करके वापस गांव की तरफ लौट जाना चाहिए। यह सयता, यह मनुष्य की संस्कृति गांवों की तरफ अब वापस नहीं लौटेगी। गांवों से आई है, गांवों की तरफ वापस नहीं लौटेगी, क्योंकि गांवों में उसने बहुत तरह के दुख जाने हैं। लेकिन हमें पता नहीं चलता। क्योंकि एक पीढ़ी जो शहर में पैदा हुई है, उसे पता ही नहीं है कि गांव की तकलीफ क्या है? उसकी कल्पना के बाहर है। जब कार से वह गांव के पास से गुजरती है नई पीढ़ी तो वह कहती है, अहा, कितना खुला आकाश है! कितने अच्छे बादल घूम रहे हैं! कितना अच्छा सूरज निकला है! बस उसे यही दिखाई पड़ता है। उसे पता नहीं है कि गांव के आदमी ने हजारों-लाखों साल में कितनी तकलीफ और कितना कष्ट उठाया है और कितनी मुसीबत सही है। किस तरह चौबीस घंटे मेहनत करके बामुश्किल पेट भरता आया है, फिर भी पेट नहीं भर पा रहा है!
गांवों के जितने गांव के आप गहरे पहुंचेंगे, जितने शहर के गांव में पहुंचेंगे, उतनी भीड़ बढ़ती चली जाएगी। क्योंकि आदमी अपने हाथों से कितना भी पैदा करे तो भी पूरा हो जाना, पूरा करना... आदमी की तरह जिंदगी बसर करना असंभव है। उसे कहने की जरूरत नहीं। सारी दुनिया में जिन लोगों ने उपकरण पैदा कर लिए वे समृद्धि के बाग लगा लिए। लेकिन गांधी जी जिन लोगों से बात सीख कर लौटे, उन लोगों की बात एकदम अवैज्ञानिक थी। यहां भी उन्होंने वही बात शुरू कर दी। यहां भी उन्होंने कहा कि चरखा... चरखा हमारी आर्थिक-व्यवस्था का प्रतीक है। आधा नंगा खड़ा हुआ आदमी...
दरिद्र होने में बड़ी पवित्रता है, दरिद्र होने में बड़ा अध्यात्म है। हमने दरिद्रता को गौरवांवित किया है, ग्लोरीफाई किया है। ताकि हम हमारी दरिद्रता...
लेकिन मैं आपसे यह कहता हूं कि दरिद्रता की यह स्वीकृति हमें और दरिद्र बनाए चली जाती है। दरिद्रता की स्वीकृति हमें संपन्न न होने देगी...
लेकिन गांधी जी ने जो उपाय सुझाए... तो ज्यादा से ज्यादा तन ढंक सकता है। अगर एक आदमी गेंथी-फावड़ा लेकर, हल-बक्खर लेकर खेती-बाड़ी करता रहे, तो

ज्यादा से ज्यादा पेट भर सकता है, मार्जिनल, बिल्कुल सीमा पर जीएगा मरने के। लेकिन कभी भी... असल में जीवन में जो भी श्रेष्ठतम है, वह अतिरिक्त संपन्नता से पैदा होता है। अतिरिक्त संपन्नता से--जब खाने-पीने, पेट भरने से बच जाता है, तब हम जीवन की और दिशाओं में...
मैं नहीं देखता हूं कि गांधी जी... सारी चिंतना हमारे अनुकूल तो है, लेकिन वैज्ञानिक नहीं है, हमारे हित में नहीं है। और ध्यान रहे, अनुकूल होना एक बात है, हित में होना बिल्कुल दूसरी बात है। अनुकूल होना एक बात है। अगर हम सब एक आंख के हों और मैं भी आकर एक आंख फोड़ लूं तो आपके अनुकूल पड़ेगा। क्योंकि यह लगेगा कि यह आदमी बड़ा अपने जैसा है, कितना अदभुत आदमी है कि इसने हमारे साथ खड़े होकर एक आंख फोड़ ली। लेकिन मेरा एक आंख का हो जाना आपके हित में नहीं है। हित में तो यह है कि मैं आपको भी दो आंख का बनाने की कोशिश करूं। इस फर्क को आप समझ लेना।
गांधी जी का दरिद्र हो जाना हित में नहीं है। हित में तो यह है कि दरिद्र को गांधी जी संपन्न बनाने की कोशिश में संलग्न हों। गांधी जी को दरिद्र बना लेने से क्या होगा? चालीस करोड़ की जगह चालीस करोड़ एक दरिद्र हो जाएंगे। और क्या होने वाला है? इससे क्या फर्क पड़ने वाला है? दरिद्रता और बढ़ जाएगी, एक आदमी और दरिद्र हो जाएगा। हां, दरिद्रों को तृप्ति मिल जाएगी, लेकिन उनका मंगल सिद्ध होने वाला नहीं है। मंगल तो इसमें सिद्ध होगा कि विचारशील व्यक्ति, जो दरिद्र है, उसको संपन्न बनाने की कीमिया और केमिस्ट्री के बाबत सोचे कि वे दरिद्र क्यों हैं? लेकिन गांधी जी ने जो भी हमसे कहा है वह वही है, जिसकी वजह से हम दरिद्र हैं। अगर मान लें तो और दरिद्र हो जाएंगे।
हिंदुस्तान पांच हजार साल से दरिद्र है, और दरिद्र होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमने धन का सम्मान नहीं किया है। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति धन का सम्मान करेगा। धन का मोह नहीं कह रहा हूं, सम्मान कह रहा हूं। अगर आपको स्वस्थ रहना है, तो खून का सम्मान करना पड़ेगा। खून चलेगा शरीर में, तभी आप स्वस्थ रहेंगे। और अगर आपने कहा कि हम तो खून को इनकार करते हैं, हम तो खून को मानते ही नहीं, तो फिर पीलिया पकड़ लेगा और बीमार हो जाएंगे और सब समाप्त हो जाएगा।
धन समाज की नसों में दौड़ता हुआ खून है। जितना खून समाज की नसों में दौड़ता है, उतना समाज स्वस्थ होता है। धन खून है। और इसीलिए अगर कोई खून हाथ में रोक ले बांध कर, तो बीमार पड़ जाएगा, क्योंकि खून अगर रुकता है तो गति बंद हो जाती है। इसलिए जो लोग धन को तिजोरियों में रोकते हैं, वे समाज की खून की गति में बाधा डालते हैं। खून की गति रुक जाती है, समाज बीमार पड़ जाता है। लेकिन जितना अतिरिक्त खून हो, उतना जरूरी है। जितना अतिरिक्त धन हो, उतना जरूरी है। लेकिन गांधी जी का विचार यह कहता है कि धन? नहीं, धन की कोई जरूरत ही नहीं है। वे तो असल में उन लोगों से प्रभावित हैं--टाल्सटाय जैसे लोगों से--जो कहते हैं, मुद्रा समाप्त कर देनी चाहिए। जो कहते हैं कि रुपया होना नहीं चाहिए। वे चाहते तो अंत में यह है कि एक बार्टर सिस्टम, जैसा पुराना था दुनिया में लेन-देन का--कि मैं आपको गेहूं दे दूं, आप मुझे एक बकरी दे दें। मैं एक मुर्गा दे दूं, आप मुझे एक जूते की जोड़ी दे दें। वे तो चाहते हैं कि अंततः समाज ऐसा हो जहां चीजों का लेन-देन हो।
लेकिन ध्यान रहे, चीजों का लेन-देन करने वाला समाज कभी भी सुखी और संपन्न नहीं हो सकता। एक तो चीजों का लेन-देन इतना उपद्रवपूर्ण है कि मुझे जूता चाहिए, आपकी बकरी बेचनी है; और आपको जूता नहीं चाहिए, आपको गेहूं चाहिए। अब यह गेहूं वाले आदमी को हम खोजने जाते हैं, जो उसे गेहूं बेचेगा। लेकिन उसे न जूता चाहिए, न बकरी चाहिए, उसे मुर्गी चाहिए। अब हम एक आदमी को खोजने जाते हैं जिसे मुर्गी बेचनी है। रुपये ने यह व्यवस्था कर दी है कि किसी को कुछ भी चाहिए हो, रुपया माध्यम बन जाता है। कोई फिकर नहीं, आपको जूता चाहिए, मुझे मुर्गी चाहिए, रुपये से काम बन जाएगा।
रुपया बहुत अदभुत चीज है। अगर मेरे खीसे में एक रुपया पड़ा है, तो सिर्फ एक रुपया नहीं पड़ा है, मेरे खीसे में एक ही साथ करोड़ों चीजें पड़ी हैं। वैकल्पिक संभावनाएं पड़ी हैं। अगर मैं चाहूं तो एक रुपये से खाना ले

लूं; मेरे खीसे में खाना पड़ा है। अगर मैं चाहूं तो जूता खरीद लूं; मेरे खीसे में जूता पड़ा है। अगर मैं चाहूं तो एक मुर्गी खरीद लूं; मेरे खीसे में मुर्गी पड़ी है। अगर मैं चाहूं तो दवा ले लूं; मेरे खीसे में दवा पड़ी हुई है। रुपये ने इतना अदभुत काम किया है। लेकिन गांधी जैसे विचारक रुपया और मुद्रा के विरोध में हैं। अगर रुपया दुनिया से हट जाए, तो आदमी वहां पहुंच जाएगा जहां जंगली आदमी है। आज भी आदिवासी हैं, उसको तेल चाहिए तो बेचारा गेहूं लाकर देगा, तब तेल ले पाएगा। गेहूं लाकर देगा, तो नमक ले पाएगा। लेकिन वैसी दुनिया में कभी विकास भी हो सकता है?
रुपया जो है वह गति है, वह स्पीड है जिंदगी में चलने की। और अगर थिर बनाना हो समाज को, जड़ बनाना हो तो रुपया हटा दो। लेकिन इस मुल्क में रुपये का बहुत पुराना... । हम धन के दुश्मन हैं, इसलिए हम दरिद्र हैं। हम धन के ऐसे दुश्मन हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। हम कहते हैं, धन की कोई जरूरत ही नहीं है। हम कहते हैं, जो धन छोड़ देता है, वह बड़ा संन्यासी है। हम कहते हैं, जो धन को मानता ही नहीं है, वह बड़ा त्यागी है। वह होगा बड़ा त्यागी, वह होगा बड़ा संन्यासी, लेकिन वह समाज के लिए खतरनाक है। क्योंकि समाज के भीतर चाहिए धन को पैदा करने की तीव्र व्यवस्था। समाज के भीतर चाहिए कि हम धन का सृजन कर सकें, तो हमारी साख चारों दिशाओं में फैल सकेगी।
गांधी जी का विचार हमारे अनुकूल है। इसलिए गांधी हमें बड़े प्यारे लगते हैं। लेकिन अनुकूल और प्यारे लगने से कोई चीज ठीक नहीं हो जाती। अगर एक आदमी बीमार पड़ा हो और वह कहता है कि मुझे मिठाई खानी है, तो जो चिकित्सक उससे कहे कि हां मिठाई खाओ, वह अनुकूल मालूम पड़ेगा, और प्राण भी ले लेगा। अनुकूल और प्रीतिकर होने से कोई चीज श्रेष्ठ नहीं हो जाती। तर्क की
और विज्ञान की कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि इससे हित क्या होगा? इससे अहित बहुत हो चुका। हम जमीन पर सबसे पुरानी सयता हैं। सच तो यह है कि अगर हमने समझदारी बरती होती तो आज दुनिया में हमसे ज्यादा समृद्ध कोई भी नहीं होता। जितने लंबे दिनों से हमने खेती की है, किसी ने भी नहीं की है। जितने लंबे दिनों से हम जिंदगी पर काम कर रहे हैं, उतना किसी कौम ने नहीं किया है। सब कौमें जीतती आई हैं, और जीत कर आने वाली कौमों ने खेती में बड़ी प्रगति की है।
आज की हालत में रूस उन्नीस सौ चालीस से लेकर उन्नीस सौ पचास तक अपने रेल के इंजनों में कोयले की जगह गेहूं जलाता था, क्योंकि कोयला ज्यादा महंगा था, गेहूं ज्यादा सस्ता था। क्योंकि कोयले को बनने में लाख वर्ष लग जाते हैं और गेहूं तो हर साल पैदा होता है। वह एक मुल्क है कि जो अपने रेल के इंजन में गेहूं जला रहा है, और एक मुल्क है जो कि अपने शरीर की जरूरतों के लिए गेहूं नहीं जुटा पा रहा है। थोड़ा सोचने वाली बात है। रूस भी इतना ही गरीब था। आज से पचास साल पहले हमसे भी ज्यादा गरीब था। रूस की गरीबी का कोई हिसाब न था। लेकिन पचास साल में वह अमीर हो गया। न केवल अमीर हो गया, बल्कि सारी दुनिया में एक सिक्का बिठा दिया अपनी अमीरी का, अपने स्वास्थ्य का, अपनी उम्र का। आज रूस में सौ वर्ष के ऊपर के हजारों वृद्ध हैं, डेढ़ सौ वर्ष के लोग भी हैं। अभी एक बूढ़ी औरत मरी है, जिसकी उम्र एक सौ बहत्तर वर्ष है। वह परिपूर्ण स्वस्थ मरी।
समृद्धि, स्वास्थ्य, जीवन का आनंद, सारी व्यवस्था उन्होंने जुटा ली है। और हम? हम सबसे पुरानी कौम क्यों हार गए हैं? हम एक हजार साल तक गुलाम रहे। कभी सोचा कि किसकी वजह से गुलाम रहे? कोई कहेगा कि मीर कासिम ने धोखा दे दिया। कोई कहेगा कि फलाने धोखा दिया। ये सब झूठी बातें हैं। धोखे-वोखे की वजह से यह नहीं हुआ है। धोखेबाज सब दुनिया में होते हैं। इसके होने का कुल कारण इतना है कि जब भी जो कौम हमारे ऊपर आई, वह टेक्नॉलॉजिकली, यांत्रिक रूप से हमसे ज्यादा विकसित थी। बस, यांत्रिक रूप से जो विकसित था, वह जीत गया। अगर आप एक बंदूक लिए खड़े हैं, और मैं तोप लेकर आ जाऊं, तो आप कितने ही बुद्धिमान हों और कितने ही देश-भक्त हों, करेंगे क्या? और आप तोप लिए खड़े हैं और मैं एटम बम लेकर आ जाऊं ऊपर से, तो आप करेंगे क्या? हिंदुस्तान हमेशा तकनीकी दृष्टि से पीछे रहा, इसलिए गुलाम होता रहा।
और अभी भी तकनीकी दृष्टि से हम दुनिया में सबसे पिछड़ी हुई कौम हैं। आप इस

भ्रांति में मत रहना कि अगर चीन से टक्कर हो तो आप जीत जाएंगे। कविताएं वगैरह करना एक बात है कि हम शेर हैं और हम ऐसे हैं और हम चीर कर दो कर देंगे, हमसे जूझो मत! वह सब कविताएं करना ठीक है, लेकिन कविताओं से कोई युद्ध नहीं जीते जाते। चीन का हमला हुआ, सारा हिंदुस्तान कविता करने लगा। कोई पूछे कि पागल हो गए हो? कविताओं से क्या होगा? क्यों अपनी मजाक करवाते हो? लेकिन कवियों ने कविताएं कर लीं, शोरगुल हो गए, तालियां बज गईं, उन कवियों को पद्म-भूषण और सब उपाधियां मिल गईं और हिंदुस्तान हार गया और जमीन पर चीन का कब्जा है।
मैं एक नेता से बात कर रहा था, कि वह लाखों मील जमीन के बाबत क्या ख्याल है? वे शेर कहां गए जिन्होंने कविताएं लिखी थीं? उनसे पद्म-विभूषण की उपाधि वापस लो। राष्ट्रकवि, उपराष्ट्रकवि बन गए, वह उनसे वापस लो। क्योंकि क्यों मजाक उड़वाते हो सारी दुनिया में? वह जमीन का क्या हुआ? अब क्यों चुप बैठे हो? तो उन्होंने कहाः वह जमीन तो बिल्कुल बेकार है। उसमें घास भी पैदा नहीं होता। उसका करना भी क्या है! अगर घास भी पैदा नहीं होता है और जमीन बेकार है तो मैं पूछता हूं, लड़े क्यों थे? अपने सैनिकों को क्यों व्यर्थ कटवाया? अगर जमीन बेकार थी और घास पैदा नहीं होता था तो जमीन वैसे ही दे देनी थी, वह बड़ा अच्छा होता, बड़ा गांधीवादी कृत्य होता। चीन भी प्रसन्न होता, सारी दुनिया भी खुश होती कि बड़ा अच्छा काम किया। फिर दे क्यों न दी, लड़े क्यों थे? वहां नाहक गरीब हिंदुस्तानियों को क्यों कटवाया वहां? तब जमीन बड़ी कीमती थी!
वह मैं आपसे कह रहा हूं कि हमारा चिंतन का ढंग हमेशा वह लोमड़ी वाला ही
है; अंगूर खट्टे हो जाते हैं, अगर हम न छू पाएं। अब वह जमीन बेकार हो गई; अब उसका कोई मतलब नहीं है। अब सब चुप हैं। सब शेर नदारद हो गए। अब सब शांति हो गई।
चीन से आप जीत नहीं सकते। बहादुरी से जीत नहीं होती। यह पुराना ख्याल छोड़ दें कि बहादुर जीत जाता है। बहादुरी का मामला गया। अब तकनीक से जीत होती है, बुद्धिमान जीतता है। अब तकनीक हमारे पास क्या है? हमारे पास तकनीक कुछ भी नहीं है।
जब हिंदुस्तान में सिकंदर ने हमला किया तो सिकंदर से पोरस कोई कम ताकत का आदमी नहीं था। हो सकता, दोनों मैदान में लड़ते तो शायद पोरस जीत जाता। पोरस बहुत हिम्मत का आदमी था, लेकिन तकनीक में पिछड़ा था। पोरस हाथियों को लेकर लड़ रहा था और सिकंदर घोड़ों पर सवार होकर आया था। मुश्किल हो गई। क्योंकि हाथी बारात वगैरह के लिए ठीक है, युद्ध के लिए ठीक नहीं है। वह युद्ध की दृष्टि से टेक्नॉलॉजिकल नहीं है। हाथियों को लेकर युद्ध पर जाना नासमझी है। क्योंकि घोड़ा तेज जानवर है, थोड़ी जगह घेरता है, जल्दी गति करता है, जल्दी मुड़ता है, कहीं से भी बचता है, भागता है। हाथी इतना बड़ा जानवर कि आप बारात निकालते हैं और बाराती चले जा रहे हैं जनवासे की तरफ, तो बिल्कुल ठीक है, उसके पीछे चले जाइए। लेकिन हाथी जल्दी मुड़ नहीं सकता, इतना बड़ा जानवर है, जगह ज्यादा घेरता है। और अगर गड़बड़ हो जाए, घबड़ा जाए तो अपने ही सैनिकों को कुचल देता है। पोरस और सिकंदर की लड़ाई में पोरस की हार अपने ही हाथियों की वजह से हुई।
फिर हिंदुस्तान में बाबर आया और हम उससे हारे, क्योंकि हम तलवारों से
लड़ रहे थे। बाबर बारूद लेकर आया था। बारूद के सामने तलवार बेकार है। लेकिन यह कोई नहीं कहेगा। हम यही समझेंगे कि हिंदुस्तान फूट की वजह से हार गया, दगाबाजों की वजह से हार गया। ये सब झूठी बातें हैं। असली बात यह है कि बारूद के सामने तलवार जीतेगी कैसे? फिर हम अंग्रेजों से हारे। अंग्रेजों से हारने का भी कारण कुल इतना था कि हमारे पास बंदूकें थीं, बारूद थी, लेकिन अंग्रेजों के पास तोपें थीं। और तोपों के सामने हमारी बंदूकें एकदम ठंडी पड़ गईं। वे कुछ भी न कर पाईं। आज भी हम उसी हालत में हैं। आज भी कोई फर्क नहीं पड़ गया है। आज भी जमीन पर अगर हम किसी से लड़ें तो हमारी हार सुनिश्चित है, क्योंकि उनके पास एटम हैं, हाइड्रोजन बम हैं। और हमारे पास? हमारे पास कुछ भी नहीं है; ताबीज है!

वैज्ञानिक होने की जरूरत है, टेक्नॉलॉजिकल विकास की जरूरत है। अगर पचास साल में दुनिया की दौड़ के साथ हम खड़े नहीं हो गए, तो शायद फिर हम कभी साथ खड़े नहीं हो सकेंगे, क्योंकि दौड़ का फासला बढ़ता ही चला जा रहा है। एकदम बढ़ता चला जा रहा है। हमारे उनके प्रश्न अलग हुए जा रहे हैं। हमारे उनके सवाल अलग हुए चले जा रहे हैं। अमरीका में आज वे उस आदमी को भी तनख्वाह दे रहे हैं जो बेकार बैठा हुआ है। वह उसको बेकारी की तनख्वाह दे रहे हैं। वे कहते हैं कि जो आदमी बेकार है, वह भी समाज पर बड़ी कृपा कर रहा है, क्योंकि वह मांग नहीं करता कि हमको नौकरी चाहिए। तो उसको भी तनख्वाह मिलनी चाहिए। एक कौम उस जगह पहुंच गई, जहां बेकार को तनख्वाह बेकारी की दी जा रही है कि आप बेकार होने को राजी हैं। आप यह तनख्वाह ले लें। नहीं तो वह झंझट खड़ा करे कि हमको नौकरी चाहिए!
अब अमेरिका में चिंतन चल रहा है कि धीरे-धीरे आने वाले पच्चीस वर्षों में सभी व्यवस्था आटोमेटिक, स्वचालित हो जाएगी। और लाखों-करोड़ों लोग मुक्त हो जाएंगे काम से। जहां दस हजार आदमी काम करते हैं, वहां एक आदमी बटन दबाएगा और काम कर लेगा। दस हजार आदमी मुक्त हो जाएंगे। तो अमरीका के सामने सवाल यह है कि जब दस हजार आदमी मुक्त हो जाएंगे तो उनको साहित्य की, संगीत की, कला की, किन दिशाओं में लगाओ, नहीं तो बड़ी मुश्किल होगी। इनको किन्हीं दिशाओं में लगाना जरूरी होगा। और तनख्वाह तो इनको देनी पड़ेगी। क्योंकि कमाओगे किसके लिए? वह दस हजार की जगह जो कारखाना चल रहा है, वह कमाएगा किसके लिए? आखिर इन्हीं के लिए कमाएगा। तो पश्चिम में तो वे वहां पहुंचे जा रहे हैं जहां आदमी श्रम से मुक्त हो जाएगा। और जैसे ही आदमी श्रम से मुक्त होगा उसकी प्रतिभा छलांग लगा कर उन सीमाओं को छू लेगी, जिनको कभी- कभी कोई छू पाया है। कोई बुद्ध, किसी राजा का लड़का, कोई महावीर, किसी राजा का लड़का जिस प्रतिभा को कभी छू पाता है, उस प्रतिभा को रूस और अमरीका का मजदूर का बेटा भी छूने की हालत में आ गया है।
लेकिन हम? हम नहीं छू पाएंगे और हम बैठ कर रामधुन करते रहेंगे। और अल्ला-ईश्वर तेरे नाम कहते रहेंगे। हम जो कर रहे हैं, वह इतना अवैज्ञानिक है कि जीवन को बदलने से उसका कोई संबंध नहीं है।
गांधी जी की पूरी दृष्टि अवैज्ञानिक है। विचार वहां नहीं है। अंधे विश्वास की तरह वे चल रहे हैं। और जो भी पुराना है, उसको वे नई बोतलों में ढाल कर हमको दिए चले जा रहे हैं। वह हमको अच्छा लग रहा है, क्योंकि हम इसके आदी हो गए हैं।
दो-चार बातें और कहना चाहूंगा, जिनसे मैं आपको यह ख्याल दिला सकूं कि गांधी जी ने जो भी किया उससे अंततः हमें बहुत नुकसान पहुंचे हैं--अंततः। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि बहुत फायदा हो गया, अंततः नुकसान पहुंचा है। हम कहते हैं, आजादी मिली। आजादी मिलती, आजादी गांधी की वजह से नहीं मिल जाती। गांधी जिन मुल्कों में नहीं हैं, वे भी आजाद हो गए हैं। सारी दुनिया आजाद हो गई है। असल में दुनिया में किसी को गुलाम रखना आर्थिक रूप से महंगा काम हो गया है, और कोई कारण नहीं है। आज दुनिया में किसी को गुलाम रखना आर्थिक रूप से महंगा काम हो गया है।
जैसे, उदाहरण के लिए--एक जमाना था, गुलाम हम रखते थे। आदमी को खरीद लेते थे। जिस राम-राज्य की गांधी जी बातें करते हैं, शायद उन्हें पता नहीं है, तो उस राम-राज्य में आदमी बिकता था। गुलाम खरीदे और बेचे जाते थे, औरतें खरीदी और बेची जाती थीं। बाजार भरे थे जहां आदमी बिकता था! आदमी बिकता था एक दिन। आदमी गुलाम बना लेता था दूसरे को, खरीद लेता था जिंदगी भर के लिए। लेकिन बाद में पता चला धीरे-धीरे कि गुलाम महंगा पड़ता है। उससे मजदूर सस्ता पड़ता है। गुलाम इसलिए महंगा पड़ता है कि वह बीमार हो जाए तो उसका इलाज करो। कम से कम उसे इतना खाना तो दो ही कि वह काम कर सके। बूढ़ा हो जाए, तो उसका इंतजाम रखो। हाथ-पैर टूट जाएं तो सिर पर पड़ जाता है। तो गुलाम महंगा पड़ने लगा। फिर गुलामी की व्यवस्था अपने आप उखड़ गई। समझ में आया कि इसकी जगह तो मजदूर बेहतर है। मजदूर का मतलब है--छह घंटे की गुलामी, चौबीस घंटे की नहीं। हम छह घंटे के लिए खरीदते हैं, बाकी तुम जानो। छह घंटे के लिए हम तुम्हें खरीदते हैं, उससे हमारा संबंध है। बाकी अठारह घंटे में तुम

जानो, तुम्हें क्या होता है। दुनिया से दासता उठ गई, क्योंकि मजदूर सस्ता पड़ा।
आपको मैं कहना चाहता हूं, राजनैतिक गुलामी दुनिया से उठ गई इस सदी में आकर, क्योंकि राजनैतिक गुलामी महंगी पड़ने लगी। राजनैतिक की जगह आर्थिक गुलामी, इकोनॉमिक स्लेवरी--नई ईजाद आ गई। राजनैतिक गुलामी का मतलब है, एक मुल्क पर पूरा कब्जा रखो। आखिर कब्जे का फायदा यह है कि उसका शोषण करो। यह पुराना ढंग था। अब नया ढंग यह है कि कब्जा रखने में बड़ी मुश्किल होती है, तो मुल्क इनकार करता है शोषण से। झगड़ा करता है, विरोध करता है। दिन-रात गोली चलाओ, पुलिस बिठाओ, मिलिटरी बिठाओ, फिर भी झंझट जारी रहती है। तब एक दूसरी नई तरकीब ईजाद हो गई है, वह इकोनॉमिक स्लेवरी, वह है आर्थिक गुलामी; राजनैतिक नहीं। राजनैतिक रूप से मुक्त कर दो और आर्थिक रूप से भीतर बाजार में हाथ डाल कर शोषण जारी रखो।
इसलिए दुनिया में सब मुल्क आजाद हो गए और सब मुल्कों को, जो उनके मालिक थे उन्होंने आजाद कर दिया है, सिर्फ उनके बाजारों पर कब्जा कर लिया है। उनके बाजारों से शोषण जारी है। हम समझते हैं स्वतंत्र हो गए, लेकिन बाजार में जाकर देखें तो आलपिन से लेकर हवाई जहाज तक सब किसी कहीं और से बन कर चला आ रहा है। वहां से शोषण जारी है; आर्थिक शोषण जारी है। सारी दुनिया में यह समझ आ गई कि अब राजनैतिक गुलामी महंगी पड़ती है, अब आर्थिक गुलामी ही उचित है। बाजार पर कब्जा रखो। इसलिए सारी दुनिया स्वतंत्र हो गई है। लेकिन अगर गांधी जी की वजह से हिंदुस्तान का विभाजन जरूर हुआ। आजादी
तो फिर भी आ सकती थी, बिना विभाजन के आ सकती थी, वह गांधी जी की वजह से नहीं आ सकी। क्यों? आप कहेंगे, गांधी जी तो विभाजन के बिल्कुल खिलाफ थे। वे बिल्कुल खिलाफ थे, लेकिन उनका चिंतन बिल्कुल पक्ष में था। वे बिल्कुल खिलाफ थे, लेकिन वे जिस ढंग की बातें कर रहे थे, उससे यह होना सुनिश्चित था।
पहली तो बात यह है कि गांधी जी ने इस तरह की वेश-भूषा, इस तरह की व्यवस्था, इस तरह का आश्रम, इस तरह की महात्मागिरी का इंतजाम किया कि गांधी जी पक्के हिंदू मालूम पड़ने लगे। उनका भजन-कीर्तन, प्रार्थना, उनका आश्रम, उनके आश्रम के अंतेवासी, उन्होंने सारे मुसलमानों को सचेत कर दिया कि अगर हिंदुस्तान गांधी जी के हाथ में जाता है तो बहुत गहरे में हिंदू संस्कृति के हाथ में चला जाएगा। गांधी जी हिंदू संस्कृति के बिल्कुल प्रतीक बन गए। और हमने उनको इसलिए पूजा, महात्मा कहा। नहीं तो हम भी नहीं पूजते, महात्मा नहीं कहते। हिंदू संस्कृति उनको पूजा देने लगी। उसने उनको अवतार मानना शुरू कर दिया क्योंकि वह हिंदू संस्कृति के बिल्कुल प्रतीक बन गए, सिंबालिक बन गए। लेकिन मुसलमान सचेत हो गया।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि गांधी जी ज्यादा हिंदू थे, बजाय जिन्ना
के ज्यादा मुसलमान होने के। जिन्ना इतना मुसलमान नहीं था, जितना गांधी जी पक्के हिंदू थे। लेकिन यह हमें दिखाई नहीं पड़ा कि गांधी जी का महात्मापन मुसलमान को हिंदू से अलग करता चला गया। और गांधी जी ने जितनी कोशिश की हिंदू-मुसलमान को एक करने की, एक बनाने की, वह कोशिश भी गलत साबित हुई क्योंकि यह भी अवैज्ञानिक थी, विचारपूर्ण नहीं थी। हिंदू-मुसलमान कभी एक नहीं हो सकते। अगर हिंदू हिंदू रहेगा और मुसलमान मुसलमान रहेगा तो एकता कभी नहीं हो सकती। असल में हिंदू के हिंदू होने में मुसलमान से झगड़ा छिपा हुआ है। मुसलमान के मुसलमान होने में हिंदू से झगड़ा छिपा हुआ है। ज्यादा से ज्यादा दो बातें हो सकती हैं--या तो वे लड़ें या थोड़ी देर रुक कर लड़ने की तैयारी करें, और कोई फर्क नहीं हो सकता है। या तो वे दंगे-फसाद करें, या थोड़े दिन के लिए अमन कमेटियां बना कर भाषणबाजी करें, थोड़े दिन शांत रहें, फिर तैयारी करें और फिर लड़ें। ठीक वैज्ञानिक बात तो यह थी कि अगर गांधी ने यह कहा होता कि मैं न हिंदू हूं, और मैं सिर्फ अकेला आदमी हूं, मनुष्य हूं, हिंदू होने की मुझे कोई चिंता नहीं है, हिंदू होना सब फिजूल है। अगर गांधी ने यह कहा होता कि हिंदू को हिंदू होने से मिटाया होता और मुसलमान को मुसलमान होने से मिटाने की कोशिश की होती; हिंदू-मुसलमान को एक करने की कोशिश नहीं, हिंदू को हिंदू होने से मिटाने की, मुसलमान को मुसलमान होने

से मिटाने की कोशिश की होती, तो हिंदुस्तान में आदमी बचता पाकिस्तान-हिंदुस्तान पैदा नहीं हुआ होता। फिर गांधी जी ने इतना जोर दिया हिंदू- मुसलमान की एकता पर कि उनके जोर से भी ख्याल पैदा होने लगा। इतना जोर देना कि हिंदू-मुसलमान भाई-भाई हैं, शक पैदा कर देता है।
आपको पता है, हिंदुस्तान और चीन के झगड़े के पहले हम यह भी चिल्ला रहे
थे कि हिंदी-चीनी भाई-भाई। अब ध्यान रखना कि जब भी कोई नारा पैदा हो कि फलाने-फलाने भाई-भाई, तब समझ लेना कि लड़ाई होने वाली है। असल में भाई-भाई का शोरगुल ही हम तब मचाते हैं जब लड़ाई पैदा होने के करीब आ जाती है। और दिखता है कि अब झंझट होगी। तो भाई-भाई कह कर उस झंझट को मिटाना चाहते हैं, झंझट के मूल कारण नहीं मिटाना चाहते। झंझट का मूल कारण कोई नहीं मिटाना चाहता। भाई-भाई कह कर झंझट मिटने वाली है? मूल कारण देखना पड़ेगा कि मूल कारण कहां है? बुनियाद में कारण कहां है, वह तो देखा नहीं, बस ऊपर से लीपा- पोती शुरू की कि अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई। कुरान को भी पढ़ लो, गीता को भी पढ़ लो, सब साथ कर लो। लेकिन इससे कुछ हुआ नहीं। जितने जोर से उन्होंने कहा, हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई, उतना मुसलमान को यह पक्का दिखाई पड़ गया कि मेरे बिना साथ हुए आजादी नहीं मिल सकती। उतना साफ होता चला गया कि गांधी और उनके अनुयायी मुझे मिलाने को अति आतुर हैं। उतना वह सख्त होता चला गया।
दूसरी मजे की बात यह है, जो ख्याल में हमें नहीं आती कि जब हम किसी को भाई-भाई होने पर जोर देते हैं, और अंत में यह सिद्ध हो जाए कि वे भाई-भाई हैं, और फिर भी झगड़ा न निपटे तो बंटवारे का सवाल अपने आप पैदा होगा। बंटवारा भाइयों के बीच होता है और किसी के बीच नहीं होता है। हिंदुस्तान में हमने हिंदू-मुसलमान के भाई-भाई होने की इतनी बकवास की और इतना शोरगुल मचाया कि उन दोनों के दिमाग में पार्टिशन का ख्याल पैदा हो गया। अगर यह भाई-भाई की बातचीत न की गई होती तो बंटवारे का ख्याल ही पैदा न होता। दुनिया में यह पहला मौका है जब देश का बंटवारा हुआ। दुनिया में कभी देशों के बंटवारे नहीं हुए आज तक। यह पहला मौका है, उसके बाद तो सिलसिला शुरू हुआ, अब और भी हो सकते हैं। दुनिया में कभी देश का बंटवारा नहीं हुआ है क्योंकि दुनिया में कभी यह हिंदू-मुसलमान के भाई-भाई का इतना शोरगुल नहीं मचाया गया था।
दो भाइयों में बंटवारा होता है। अगर मेरे आप भाई हैं और झगड़ा हो जाए
तो एक ही रास्ता है कि मकान को बांट लो, बीच में दीवाल खींच दो। भाई-भाई के शोरगुल मचाने का परिणाम है पाकिस्तान। आखिरी नतीजा यह था कि अब साथ नहीं बनता तो बंटवारा कर लो, क्योंकि भाई-भाई तो हैं। जब भाई-भाई हैं तो बंटवारा तो मानना ही पड़ेगा। क्योंकि भाई-भाई बंटवारा कर लेते हैं। फिर बंटवारे से इनकार करना मुश्किल हो गया। जब भाई-भाई की फिलासफी स्वीकार की तो बंटवारा उसका लॉजिकल कांसिक्वेंस था, उसका तार्किक परिणाम था। वह बंटवारा हुआ। मुल्क दो हिस्सों में टूट गया, और दो हिस्सों में एक दिन के लिए नहीं टूट गया, सदा के लिए उपद्रव हो गया। और वह उपद्रव जारी रहेगा। और उपद्रव को मिटाना मुश्किल है। लेकिन गांधी यह न कह सके कि मैं हिंदू नहीं, सिर्फ आदमी हूं। अगर गांधी यह हिम्मत जुटा लेते, तो यह हो सकता था कि हिंदू की मान्यता गांधी में कम हो जाती, लेकिन हिंदुस्तान का हित होता। हिंदुस्तान का बड़ा हित हो सकता था। लेकिन उनके विचार में कोई वैज्ञानिक बात ही नहीं है।
वैज्ञानिक बात यह है कि जब तक दुनिया में हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध हैं, तब तक दुनिया में झगड़े किसी न किसी भांति जारी रहेंगे। ये झगड़े की सीमाएं बनी हुई हैं। इनसे झगड़ा पैदा होता ही रहेगा। अगर झगड़ा मिटाना हो तो यह मत कहो कि हिंदू, मुसलमान, जैन भाई-भाई हैं। यह कहो कि हिंदू एक तरह का पागलपन है, मुसलमान दूसरे तरह का पागलपन है। हम सब तरह के पागलपन मिटाना चाहते हैं। हम स्वस्थ आदमी चाहते हैं; सीधा आदमी चाहते हैं, जिसके साथ कोई लेबल न लगा हो। हम बिना लेबल का आदमी चाहते हैं। बहुत झगड़ा हो चुका, बहुत लेबल के साथ पागलपन हो चुका, वह हम मिटाना चाहते हैं। लेकिन वे यह नहीं कह सके। उन्होंने तो कोशिश यह की कि कुरान भी ठीक, गीता भी ठीक, सब

ठीक। किसी भी भांति जुड़े रहो, सब ठीक। लेकिन भीतर बुनियादी कारण थे जिनसे वह सब ठीक नहीं हो सकता। वह सब एक भी नहीं हो सकता।
और गांधी के मन में भी एक नहीं हो गया था। गांधी जी ने जिंदगी भर दोहरायाः अल्ला ईश्वर तेरे नाम, लेकिन जब गोली लगी, तो अल्लाह का नाम नहीं निकला, निकला राम का ही नाम। जब गोली लगी तो निकला--हे राम, हे अल्लाह नहीं निकल सका। जिंदगी भर दोहराने के बाद भी वह भीतर जो हिंदू है, वह मौजूद है, वह कह रहा है, हे राम! उस वक्त अगर हे अल्लाह भी निकला होता तो थोड़ा सोच में आता कि इस आदमी के भीतर भी कहीं जाकर कोई बात मिल गई होगी। वह भी भीतर नहीं मिल पाई। वह भी एक राजनैतिक व्यवस्था थी कि किसी भांति इकट्ठे, समझौतावादी, किसी तरह इकट्ठे, सब इकट्ठे हो जाएं, तो अच्छा होगा।
गांधी के व्यक्तित्व में बुनियादी रूप से भय है और भय के कारण वे समझौतावादी हैं, कंप्रोमाइजिंग हैं। असल में भयभीत आदमी हमेशा समझौते के लिए उत्सुक होता है--कोई भी समझौता। वे निरंतर समझौते करते रहे। हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा आखिरी समझौता है। वह भी समझौता हो गया कि उससे भी टूट जाओ। वह हिंदुस्तान के मन को समझौते की एक प्रवृत्ति में डाल गया। हर चीज से समझौता करते चले जाओ। आंध्र वाले अलग बनाना चाहें प्रांत, तो अलग बनाओ; पंजाबी बनाना चाहें, पंजाबी का बनाओ। वे सारे मुल्क को समझौतेवादी प्रवृत्ति पर छोड़ गए। वे यह फिकर नहीं दे गए कि मुल्क का कल्याण किसमें है, इसमें हम विचार करें।
और उन्होंने एक बहुत बड़ी नासमझी की, अत्यंत अविचारपूर्ण बात की। उन्होंने कभी भी जो वे कहते थे, उसके लिए तर्क नहीं दिए। हमेशा उन्होंने कहा कि मेरी अंतरात्मा की आवाज है। यह बहुत खतरनाक बात है। क्योंकि आपकी अंतरात्मा की आवाज गलत हो सकती है। किसी की अंतरात्मा ने ठेका नहीं लिया हुआ है कि उसकी अंतरात्मा की आवाज ठीक ही होगी। और आपकी अंतरात्मा की आवाज एक हो सकती है और मेरी दूसरी हो सकती है, फिर क्या करिएगा?
और उन्होंने दूसरी एक बहुत खतरनाक ईजाद की इस मुल्क में--धमकी की। वह
यह कि अगर आप मेरी बात नहीं मानते हैं तो मैं भूखा, अनशन करके मर जाऊंगा। इसका परिणाम हम हजारों साल तक भुगतेंगे। यह इतनी खतरनाक बात उन्होंने इस मुल्क को सिखा दी कि अब कोई भी नासमझ खड़े होकर कह सकता है कि मेरी अंतरात्मा की आवाज है--कि चंडीगढ़ जो है वह पंजाब में होना चाहिए, नहीं तो मैं मर जाऊंगा! अब परेशानी है। अब डरो उससे, अब घबड़ाओ उससे।
सत्याग्रह के नाम पर आत्महत्या की धमकी उन्होंने सिखा दी, सबको सिखा
दी कि आत्महत्या की धमकी दे दो। अब अगर कोई आदमी कहता है कि मैं आग लगा कर मर जाऊंगा, तो आप यह मत समझना कि वह आदमी कुछ गलत कह रहा है। वह गांधीवादी चिंतन का ही फल है। वह जो कह रहा है कि... वह यह कह रहा है कि धीरे-धीरे क्या मरना सत्तर दिन में, हम अभी आग लगा कर पेटरेल डाल कर मरते हैं। वह फिर भी वैज्ञानिक है। सत्तर दिन में धीरे-धीरे क्या मरना, पेटरेल डाल कर मर जाते हैं! जल्दी खत्म किए लेते हैं। जल्दी तय करो, नहीं तो हम मर जाएंगे। हिंदुस्तान की बहुत सी बीमारियां गांधी जी के अविचारपूर्ण चिंतन से पैदा हुई हैं। हिंदुस्तान में आज विद्यार्थियों की जो स्थिति है, उसके लिए गांधी जी के सिवाय और कोई जिम्मेवार नहीं है। हिंदुस्तान की युनिवर्सिटी, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और स्कूलों से गांधी जी ने विद्यार्थियों को आजादी के लिए बाहर निकाला। रवींद्रनाथ ने इसका विरोध किया था, तो रवींद्रनाथ देशद्रोही मालूम पड़े। एनीबीसेंट ने इसका विरोध किया, तो एनीबीसेंट की इज्जत खतम हो गई। क्योंकि गांधी जी ने कहा कि जब देश में आजादी का सवाल है तो पढ़ने का कोई सवाल नहीं है। पहले आजादी, फिर पढ़ना हम देखेंगे। रवींद्रनाथ ने कहा कि यह खतरनाक बात आप कर रहे हैं, क्योंकि एक बार विद्यार्थियों के सामने अगर राजनैतिक पकड़ शुरू हो गई, तो इसे मिटाना मुश्किल हो जाएगा।
आज रवींद्रनाथ सही साबित हो रहे हैं, गांधी पूरे के पूरे गलत साबित हो
गए हैं, सोलह आने गलत साबित हो गए हैं। लेकिन उस दिन रवींद्रनाथ देशद्रोही मालूम पड़े कि वे देशद्रोह की बातें कर रहे हैं। गांधी जी ने हिंदुस्तान के विद्यार्थी को उठा लिया राजनीति में, अब वह वापस नहीं लौटता। अब वह कहता

है, हड़ताल करेंगे। अब वह कहता है, कांच फोड़ेंगे, बस में आग लगाएंगे। अब वह कहता है, यह चाहिए, अब वह चाहिए। और हम कहते हैं कि तुम कैसे गांधी के देश के बेटे हो! तुम यह क्या कर रहे हो? वह ठीक पिता गांधी का अनुकरण ही कर रहा है। कोई फर्क नहीं कर रहा है। वह यह कह रहा है कि हमें पढ़ना-लिखना पीछे, पहले राजनीति।
विद्यार्थी को राजनीति में खींचना बहुत महंगा पड़ा है। और अब कब इससे छुटकारा होगा, कहना मुश्किल है। युनिवर्सिटीज व्यर्थ पड़ी हुई हैं। आज वहां शिक्षा का कोई काम नहीं हो पा रहा है, क्योंकि राजनीति पहले। आज हिंदुस्तान का कोई विद्यार्थी पढ़ ही नहीं रहा है। सारी दुनिया के विद्यार्थी सारी शक्ति लगा कर पढ़ रहे हैं, सोच रहे हैं, विचार कर रहे हैं, खोज कर रहे हैं। हिंदुस्तान का विद्यार्थी कुछ भी नहीं कर रहा है। उसका जिम्मा किस पर है? कौन जिम्मेवार है? अवैज्ञानिक थी बात।
विद्यार्थी को ज्ञान से बड़ी आजादी भी नहीं है। ध्यान रहे, ज्ञान से बड़ी आजादी भी नहीं है। युवकों को उपद्रवों में डालना ठीक नहीं है। उन्हें तो सारी शक्ति ज्ञान में लगा देनी उचित है। यूनिवर्सिटी के बाहर आकर लड़ाई लड़ लेंगे। फिर हिंदुस्तान में कोई आजादी की लड़ाई लड़ने वालों की कोई कमी थी? चालीस-पचास करोड़ का मुल्क है, क्यों विद्यार्थियों को घसीटते हो? और लोग नहीं हैं? लेकिन सच बात यह है कि उपद्रव सिर्फ विद्यार्थियों से ही करवाया जा सकता है? वे नासमझ हैं, भोले-भाले हैं, उकसाए जा सकते हैं। उनको उकसा कर उपद्रव करवाया। अब वे वापस नहीं लौटते हैं। अब वे कहते हैं, उपद्रव जारी रहेगा। हिंदुस्तान की सारी शिक्षा अस्तव्यस्त हो गई है। और कैसे व्यवस्थित होगी, कहना मुश्किल है। बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है कि वह व्यवस्थित हो जाए।
अंग्रेजों ने हिंदुस्तान में दो सौ साल में शिक्षा का एक व्यवस्थित ढंग दिया था। गांधी जी ने वह सब अव्यवस्थित कर दिया। और उन्होंने इस तरह की बातें कहीं कि हम तो बुनियादी तालीम चाहते हैं। बुनियादी तालीम का मतलब है, चरखा चलाना सीखो, तकली चलाना सीखो, चटाई बुनना सीखो। बुनो चटाइयां, चरखे चलाओ, लेकिन दुनिया से इस बुरी तरह पिछड़ जाओगे कि उनके पैरों में खड़े होने की भी स्थिति न रह जाएगी। पश्चिम का लड़का चांद पर जाने का उपाय कर रहा है और हमारा लड़का बुनियादी तालीम लेगा, बेसिक एजुकेशन ले रहा है। वह यह कह रहा है कि हम तकली में से कैसे सूत निकालें। तो तुम निकालते रहो सूत, उस अमरीका के लड़के के सामने हारोगे, बच नहीं सकते। खो जाओगे, मिट जाओगे। लेकिन यह अवैज्ञानिक चिंतना हमें समझ में नहीं आ सकी। और अब जब मैं ये बातें कहता हूं तो लोग मुझे गाली देने आ जाते हैं। वे कहते हैं कि आप गांधी जी के लिए ऐसा कहते हैं! मैं गांधी जी के लिए कुछ भी नहीं कह रहा हूं। गांधी जी से मुझे क्या लेना-देना है! कह इसलिए रहा हूं कि अगर यह अवैज्ञानिक चिंतन हमको दिखाई नहीं पड़ा, तो हम आत्मघात कर लेंगे। यह हिंदुस्तान बुरी तरह से नुकसान में पड़ता जा रहा है और पड़ जाएगा। रोज हम गड्ढे में उतरते जा रहे हैं और अंधकार में उतरते जा रहे हैं। और मैं आपसे कहना चाहता हूं, उसका सबसे बड़ा जिम्मा गांधी जी पर है। उससे बड़ा जिम्मा किसी के ऊपर नहीं है। और अगर हम समय रहते चेत जाएं और चीजों को सोच लें, समझ लें और भविष्य का निर्णय ले लें और गांधी जी से सावधान हो जाएं, उनकी अविचारपूर्ण बातों से सावधान हो जाएं...
लेकिन वह हम हो न पाएंगे, क्योंकि हमारी पुरानी आदत यह है कि अगर एक आदमी गलत बात कहता हो, लेकिन चरित्रवान हो, तो हम उसकी बात मान लेंगे। जैसे कि चरित्र किसी सही बात के होने का सबूत है! एक आदमी कहता है, दो और दो पांच होते हैं और रात को पानी नहीं पीता है, तो हम कहेंगे बिल्कुल ठीक है। क्योंकि वह आदमी रात को पानी नहीं पीता है; क्योंकि वह आदमी दूध छान कर पीता है; क्योंकि वह आदमी चोरी नहीं करता है; बेईमानी नहीं करता है, तो वह दो और दो पांच जो कहता है, ठीक कहता होगा!
और मैं आपसे यह कहना चाहता हूं--यह आखिरी बात कि हिंदुस्तान चरित्र को तर्क मान रहा है हजारों साल से, इससे बहुत नुकसान उठा रहा है। चरित्र तर्क नहीं है। चरित्र तर्क नहीं है, तर्क की अपनी जगह है जो चरित्र से बिल्कुल

अलग है। हिंदुस्तान में अगर कोई आदमी अच्छा चरित्र निर्मित कर ले तो फिर हम पूछना ही छोड़ देते हैं कि वह जो कह रहा है वह साइंटिफिक है, वैज्ञानिक है? फिर हम पूछना छोड़ देते हैं। हम कहते हैं, चरित्रवान है, बस फिर ठीक है। फिर वह जो कह रहा है वह ठीक कह रहा है। लेकिन ऐसा कोई ठेका है कि चरित्र से कोई ठीक होने का संबंध है?
गांधी जी के पास एक चरित्र है, एक नैतिक चरित्र है। मैं उन्हें धार्मिक आदमी नहीं मानता हूं। एक अतिनैतिक व्यक्ति मानता हूं। जिन्होंने बहुत श्रम करके एक तरह का चरित्र निर्माण किया है। बहुत श्रम उठाया है। लेकिन वह सारा श्रम सप्रेसिव है, दमन का है। वह दबा-दबा कर उन्होंने अपने को बदला है। उनका सारा ब्रह्मचर्य, सेक्स का दमन है। अति कामुक व्यक्ति थे बचपन से। जिस दिन पिता मरे हैं, पिता के पैर दाब रहे हैं, लेकिन मन उनका लगा है... चले जाएं। पिता मरने को हैं। चिकित्सकों ने कहा कि पिता बचेंगे नहीं आज रात। लेकिन फिर भी मन लगा है; आज की रात भी पत्नी को छोड़ नहीं सकते। और पत्नी भी अच्छी हालत में नहीं है। चार ही दिन बाद उसको बच्चा हुआ है। वह गर्भवती है। लेकिन किसी ने कहा कि लाओ मैं दबा देता हूं। तो वे मौका पाकर भाग गए हैं। जब वे पत्नी के साथ सोए हैं--अभी चार दिन बाद उसको बच्चा पैदा हुआ। वह बच्चा भी मर गया। और उसके बच्चे के मरने का कारण भी वह संभोग हो सकता है। क्योंकि चार दिन पहले गर्भ का अगर संभोग किया जाए, तो बच्चा मर सकता है। वह बच्चा मर गया चार दिन बाद पैदा होकर।
गांधी अपनी पत्नी के साथ बिस्तर पर सोए हैं, तब घर में हाहाकार मच गया
कि पिता मर गए। उनको बड़ा सदमा पहुंचा। और वह सदमा यह पहुंचा कि मैं कैसा कामुक हूं, कैसा सेक्सुअल हूं! फिर इसके खिलाफ वे जिंदगी भर ब्रह्मचर्य साधते रहे और दमन करते रहे अपने सेक्स का, और ब्रह्मचर्य साधते रहे। यह सारा ब्रह्मचर्य उनके चित्त में काम की प्रवृत्ति से जो पहुंची पीड़ा और दुर्घटना है, उसका फल था।
और मैं कहता हूं, उनकी सारी अहिंसा उनके भीतर जो छिपा हुआ भय था उस भय
से बचने का उपाय थी।
लेकिन अभी तो लंबी चर्चा होगी। दुबारा आता हूं तो आपसे मैं बात करूंगा कि गांधी जी की अहिंसा भय पर खड़ी है। और गांधी जी का ब्रह्मचर्य सेक्स के दमन पर खड़ा है। इसलिए गांधी जी का व्यक्तित्व बहुत अर्थों में पैथालॉजिकल है, मानसिक रूप से रुग्ण है। और अगर उसको हमने आदर्श मान कर हिंदुस्तान के व्यक्तित्व को ढालने की कोशिश की तो हम सारे हिंदुस्तान को पैथालॉजिकल, बीमार बना दे सकते हैं।
जरूरी नहीं है कि मेरी सारी बातें मानी जाएं। यह धोखा हम बहुत दफा खा चुके हैं इस मुल्क में। अब किसी की सब बातें मत मानना। जरूरी नहीं है कि मैं जो कहता हूं, वह सही ही हो--ऐसा मुझे दिखाई पड़ता है, इसलिए मैं कहता हूं। और अगर कल मुझे दिखाई पड़ जाए कि गलत है तो मैं कह दूंगा, वह गलत था। मुझे दिखाई पड़ता है कि ऐसा है। आपको जरूरी नहीं है मेरी बात मान लेने की। आप सोचना। हो सकता है मेरी सारी बातें गलत हों। अगर गलत हों तो उनको कचरे में फेंक देना, अगर लेकिन ठीक मालूम पड़ें तो सिर्फ इस वजह से इनकार मत कर देना कि गांधी जी के विरोध में हम कैसे स्वीकार कर लें! सिर्फ इस वजह से इनकार मत कर देना, सोचना। और मेरा किसी से विरोध नहीं है। गांधी जी से तो कोई विरोध नहीं है। विरोध है तो इस बात से है कि गांधी जी हिंदुस्तान के भविष्य पर छाए नहीं होने चाहिए। गांधी जी की छाया अब हिंदुस्तान के भविष्य पर नहीं चाहिए। उनकी मूर्तियां गांव-गांव में खड़ी हैं, खड़ी रहें, लेकिन हिंदुस्तान के भविष्य पर उनकी मूर्ति की छाप नहीं होनी चाहिए, अन्यथा हिंदुस्तान भटक सकता है।

मेरी कड़वी बातों को भी इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में आप सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
चौबीसवां प्रवचन

राष्ट्रभाषाः अ-लोकतांत्रिक

प्रश्नः आई टेक इट दैट यू बिलीव इन गॉड। शुड आई गो अहेड?

मेरी समझ ऐसी है कि परमात्मा और विश्वास का कोई संबंध ही नहीं है। और
जो भी विश्वास करता है, उसको मैं आस्तिक नहीं कहता। विश्वास का मतलब है कि जिसे हम नहीं जानते, उसे मानते हैं। और मेरा कहना है कि जिसे हम नहीं जानते, उसे मानने से बड़ा पाप नहीं हो सकता। अगर कोई ईश्वर को इनकार करता है और कहता है कि मुझे अविश्वास है, तो भी मैं कहता हूं, वह गलत बात कह रहा है। क्योंकि जब तक उसने खोज न लिया हो, समस्त को खोज न लिया हो और ऐसा पा न लिया हो कि ईश्वर नहीं है, तब तक ऐसा कहना ठीक नहीं कि अविश्वास है। और एक आदमी कहता है, मुझे विश्वास है, हालांकि मैंने जाना नहीं, देखा नहीं, लेकिन विश्वास करता हूं।
मैं दोनों बातें... मैं कहता हूं, ईश्वर जानने की चीज है; बिलीफ की नहीं, नोइंग की। तो जब मैं कहता हूं कि ईश्वर है तो यह मेरा विश्वास नहीं है, ऐसी मेरी प्रतीति है। ऐसा मुझे लगता है कि वही है और कुछ भी नहीं है। और ईश्वर को मैं कोई व्यक्तिवाची, एक पर्सनल तरीके से नहीं सोच पाता। ईश्वर से मेरा मतलब है, दि एक्झिस्टेंशियल। वह जो है, उसका ही नाम ईश्वर है।

प्रश्नः दि एक्झिसटेंशियल।

हां, जो है। जो अस्तित्व है।

प्रश्नः वॉट इ.ज।

हां, वॉट इ.ज।

बस उसको ही मैं ईश्वर कह रहा हूं। इसलिए अगर कोई कोई कहे कि ईश्वर नहीं भी है तो मुझे दिक्कत नहीं पड़ती। इतना मैं कहता हूं कि जो है, वह तो है, उसको नाम देने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्नः तो इस संदर्भ में मैं आपसे पूछना चाहूंगा कि यह जो आधुनिक जो भाषा है, यह भाषा में ईश्वर शब्द का प्रयोग जिस कनोटेशन से किया जाता है, वह कनोटेशन को ध्यान में रखते हुए जब आप परमात्मा, ईश्वर, नया शब्द का इस्तेमाल अपने पब्लिक फंक्शंस में करते हैं, तो क्या आपको नहीं लगता कि इससे कुछ गैर-समझ पैदा हो जाएगी?

न, गैर-समझ तो किसी भी चीज से पैदा हो सकती है। समझदारी से समझदारी की बात से भी गैर-समझ पैदा हो सकती है। वह खतरा तो सदा है। वह तो हम बोले कि खतरा है--कि गैर-समझ हो जाएगी। लेकिन मेरी चेष्टा यह है, परमात्मा शब्द मुझे बहुत प्रीतिकर मालूम होता है। उसके कनोटेशन सब सही नहीं हैं और जिस अर्थ में हमने अब तक ग्रहण किया है, वह अर्थ भी गलत है। तो मैं दोनों काम करता हूं--जिस अर्थ में हमने उसे ग्रहण किया है, उनको गलत भी कहता हूं; और जिस अर्थ में ग्रहण करना चाहिए, उसकी बात भी करता हूं। लेकिन शब्द मुझे बहुत प्रीतिकर लगता है। शब्द मुझे इसलिए प्रीतिकर लगता है कि समस्त को प्रकट करने के लिए इससे ज्यादा इंटिमेट कोई टर्म नहीं है। सत्य हम कहें, तो सत्य कुछ बड़े फासले का मालूम पड़ता है--दूर, जिससे शायद हमारा कोई संबंध जोड़ना मुश्किल है। अस्तित्व हम कहें तो एक डेड टर्म है, जिसमें जिंदगी नहीं मालूम पड़ती, जिसमें जीवंतता नहीं मालूम पड़ती।
जब हम कहते हैं, परमात्मा, तो अस्तित्व में जो बात नहीं थी, वह परमात्मा में है। अस्तित्व से कुछ ज्यादा; एक जीवंतता है; और दूसरी एक

इंटिमेसि है, एक निकटता है। परमात्मा का मतलब--अस्तित्व कुछ ऐसा है जिससे हम किन्हीं अर्थों में संबंधित हो सकते हैं। तो शब्द तो मुझे प्रीतिकर है। लेकिन उस शब्द से जुड़े हुए जो संयोग हैं, वे बहुत अप्रीतिकर हैं। और उन अप्रीतिकर संयोगों को मैं तोड़ने की कोशिश करता हूं।

प्रश्नः इसका मतलब यह हुआ कि जहां तक आपको लगता है, वहां तक आदमी की जो लिंग्विस्टिक इनजिन्युइटी है, वह ईश्वर शब्द के आगे खत्म हो जाती है। क्या आदमी इससे अच्छा कोई शब्द नहीं ढूंढ सकता?

हूं-हूं। उसमें बिल्कुल कठिनाई नहीं है ढूंढ लेने की। कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्नः व्हिच कनवेंस दि लाइट।

न।

प्रश्नः द एक्जेट मीनिंग व्हिच यू वांट टु कनवे?

बिल्कुल ही नया शब्द खोजा जा सकता है। लेकिन शब्द की खोज भी एक माहौल में होती है। नई दुनिया में जो शब्द खोजे जा रहे हैं, वे वैज्ञानिक हैं।

प्रश्नः माहौल यानी मिल्यू?

हां, मिल्यू। तो जो नया मिल्यू है, उसमें जो शब्दों की खोज है वह वैज्ञानिक है। मिल्यू साइंटिफिक है। जिस दिन इस पृथ्वी पर मिल्यू रिलीजस था, उस दिन जो श्रेष्ठतम शब्द खोजा था वह परमात्मा था। मिल्यू खो गया है, तो नया शब्द खोजना बहुत मुश्किल है। और अगर हम खोजेंगे तो वह कंस्ट्रक्टेड मालूम होगा, बना-बनाया मालूम होगा। और ऐसा नहीं कि शब्द न खोजे गए हों, शब्द खोजे गए।
जैसे बुद्ध ने ईश्वर शब्द का उपयोग नहीं किया, निर्वाण शब्द का उपयोग किया, लेकिन फिर भी लगा कि निर्वाण बहुत दूर का शब्द है, और बुद्ध को प्रेम करने वाले बुद्ध को ही भगवान कहने लगे। निर्वाण शब्द को खोजने वाले को भी अंततः उनको प्रेम करने वालों ने भगवान शब्द दे दिया। भगवान कुछ इतना निकट का शब्द है, भगवान में कुछ ऐसा प्रीतिपूर्ण भाव है कि वह छोड़ा नहीं जा सका। जैनों ने भी इनकार कर दिया था। उन्होंने भी आत्मा के ऊपर मानने के लिए स्वीकृति नहीं दी। आत्मा काफी है, और मोक्ष है, और भगवान को हटा दिया। लेकिन तब भी पीछे से फौरन परमात्मा वापस लौट आया, नये अर्थ लेकर वापस लौटा--कि आत्मा जब पूरी तरह से शुद्ध हो जाती है, परम हो जाती है तो परमात्मा हो जाती है। लेकिन परमात्मा शब्द ने फिर अपनी जगह बना ली।
असल में आदमी के माइंड में कुछ आर्च टाइप्स हैं। तो अभी तो मुझे नहीं दिखता, अब तक पूरे इतिहास में परमात्मा से ज्यादा उचित शब्द नहीं खोजा जा सका। नहीं कहता हूं कि नहीं खोजा जा सकेगा, खोजा जा सकता है। अगर पृथ्वी का मिल्यू फिर से रिलीजस हुआ तो शायद हम नया शब्द खोज लें, लेकिन नये शब्द से कोई प्रयोजन नहीं है। मेरा मानना है, परमात्मा शब्द इतना जीवंत है कि उसे नये अर्थ दिए जा सकते हैं।
असल में शब्द नया तब खोजना पड़ता है, जब पुराना शब्द इतना सीमित हो कि उसमें नये अर्थ जोड़ना मुश्किल हो; तब यह नया शब्द खोजना पड़ता है। अगर पुराना शब्द रोज नये अर्थ दे सकता है, तो नये शब्द खोजने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। परमात्मा मुझे अब भी एक लिविंग एनटाइटी वाला शब्द मालूम पड़ता है। अभी उसमें नये अर्थ दिए जा सकते हैं। जैसे मैं भी उसमें नये अर्थ ही दे रहा हूं।

प्रश्नः मेरा जो सवाल है न वह उसका मोटिवेशन कम्युनिकेबिलिटी का है।
जब आप इतने सारे लोगों के समक्ष भाषण देते हैं, तो जाहिर है कि आप उनसे कुछ कम्युनिकेट करना चाहते हैं।

निश्चित ही। निश्चित ही।

प्रश्नः और जब आप जानते हैं कि यह शब्द के पीछे इतने-इतने सब कल्सटर्स
ऑफ इमोशंस एटसैटर लगे हुए हैं।

बिल्कुल ही ठीक है। मैं उनको तोड़ता हूं।

प्रश्नः फिर भी।

मैं उनको तोड़ता हूं। मैं उनको तोड़ता हूं। असल में अगर मुझे आपसे कम्युनिकेट करना है, तो दो काम करने पड़ेंगे। एक तो वह भाषा उपयोग करनी पड़ेगी, जो आप समझते हैं। अगर मैं नया शब्द एक्स वाई जेड उपयोग करता हूं तो कम्युनिकेशन नहीं होगा। और अगर मैं शब्दों का उपयोग करता हूं, जो आप समझते हैं, और आपको कनोटेशंस में ही करता हूं तो भी कम्युनिकेशन नहीं होगा। कम्युनिकेशन दोहरे काम से पूरा होगा। शब्द तो मैं वे उपयोग करूं जो आप समझते हैं, लेकिन उन अर्थों में उपयोग करूं, जो आप नहीं समझते हैं। तो आप शब्द को समझते हैं, यह आधार बनेगा; और उस अर्थ की तरफ मैं इशारा कर सकूं, जो आप नहीं समझते हैं तो कम्युनिकेशन हो सकता है। अगर मैं ऐसे शब्द का उपयोग करूं जो आप समझते नहीं, शब्द ही नहीं समझते... एक तो अर्थ की कठिनाई है कि अर्थ नहीं समझते हैं, दूसरी शब्द की कठिनाई है, तब तो बहुत कठिन हो जाएगा। इसलिए शब्द तो मैं पुराने उपयोग करता हूं, और अर्थ उनको नये देने की चेष्टा करता हूं, इसमें नासमझी और गलत-समझी होने की सदा संभावना है। असल में मिसअंडरस्टैंडिंग की सदा संभावना है। अगर कुछ भी महत्वपूर्ण कहना हो तो मिसअंडरस्टुड होने के लिए तैयार होना ही चाहिए। लेकिन चेष्टा करनी चाहिए कि कम से कम यह हो पाए। वह मैं चेष्टा करता हूं।

प्रश्नः एक जनसाधारण के प्रतिनिधि के रूप में मैं इतना ही कह सकूंगा आपको कि आप अपना काम जान-बूझ कर मुश्किल बना रहे हैं।

ऐसा लग सकता है, ऐसा लग सकता है। असल में, जान-बूझ कर तो मैं उसको सरल बनाने की कोशिश करता हूं, लेकिन आदमी इतना जटिल है कि सब सरलताएं कठिन मालूम पड़ती हैं। मेरी तरफ से तो मैं कोशिश करता हूं कि सरल हो जाए बात। लेकिन आदमी इतना जटिल है कि जो कहना चाहिए, जो मैं कह रहा हूं, वह उस तक नहीं पहुंच पाता कुछ और पहुंच जाता है। जटिलता हो जाती है। कम्युनिकेशन हमेशा से जटिल है, आज की ही बात नहीं है। और हमेशा जटिल रहेगा। स्वाभाविक भी है, क्योंकि जो हम कहना चाहते हैं, वह मेरा अनुभव है और उस अनुभव को मुझे शब्दों से आप तक पहुंचाना है। शब्द पहुंच जाते हैं, अनुभव मेरे पास रह जाता है। इसलिए शब्द ज्यादा से ज्यादा इशारा बन सकते हैं। कठिनाई तब होती है, जब कोई शब्दों को जोर से पकड़ लेता है; तब बहुत मुश्किल हो जाती है।

प्रश्नः आपने जो जवाब मुझे दिया, उसमें बाइ द वे, यह मेरा दूसरा प्रश्न था, उसका भी जवाब आ गया--कि आपके ख्याल में ह्यूमन लैंग्वेज जो है, आदमी की भाषा उसकी क्या लिमिटेशंस हैं?

हां, मनुष्य की भाषा की बड़ी सीमाएं हैं; और मनुष्य की भाषा की बड़ी संभावनाएं भी हैं। पहली सीमा तो यह है कि जब भी हम बोलते हैं तो दूसरे तक शब्द ही पहुंचता है। शब्द के साथ जो मेरा अर्थ था, वह मेरे पास रह जाता है।

प्रश्नः एसोसिएशन।

जो मीनिंग था वह मेरे पास रह जाता है।

और आपके पास शब्द पहुंचता है। और शब्द के साथ जो मीनिंग पहुंचता है,
वह शब्दकोश का मीनिंग पहुंचता है, मेरा नहीं। और जब मैं एक शब्द का उपयोग कर रहा हूं, तो मैं इनवाल्वड हूं उस शब्द में। उसी में कुछ अर्थ दे रहा हूं, कोई रंग, कोई शेड दे रहा हूं। तो पहली तो सीमा यह है कि शब्द शब्दकोश से निर्धारित होते हैं। और हम सब जब बात करते हैं तो हमारे अपने अर्थ होते हैं, जो इंडिविजुअल होते हैं। उनको डालने की कठिनाई हो जाती है।
दूसरी कठिनाई यह है कि जब भी हम सुन रहे हैं--यह तो बोलने वाले की तरफ
से कठिनाई है--जब हम सुन रहे हैं, तो अक्सर जो हम सुनना चाहते हैं, वह सुन लेते हैं। जो हम नहीं सुनना चाहते हैं, उसे हम छोड़ ही जाते हैं। या, अगर हम पक्ष में हैं तो पक्ष में सुन लेते हैं; विपक्ष में हैं तो विपक्ष में सुन लेते हैं। हम च्वाइस करते हैं पूरे समय। हम पूरा नहीं सुनते--जो पूरा कहा गया है, क्योंकि निष्पक्ष होना बड़ा कठिन है। और ओपन होना भी बड़ा कठिन है। एक आदमी पूरी तरह सुने, कोई भाव न ले, कोई पक्ष न ले, कोई प्रिज्युडिस न हो, बहुत कठिन है। माइंड पूरे समय पीछे कुछ कर रहा है। जब मैं बोल रहा हूं, तब आपका माइंड कुछ कर रहा है। आप खाली नहीं बैठे हैं, आपका माइंड काम कर रहा है। उसका काम पूरे समय बाधा डाल रहा है। इसलिए सुनने जैसी घटना मुश्किल से ही हो पाती है।
तो भाषा की दो सीमाएं हैं--एक तो बोलने में अर्थ पीछे छूट जाता है, और सुनने वाला अपना अर्थ भी डालता है। ये सीमाएं हैं, लेकिन अगर ये सीमाएं हमारी समझ में आ जाएं, और हमारे ख्याल में हों, और हम इन पर ध्यान रख सकें, तो भाषा की संभावनाएं अनंत हो जाती हैं। फिर हम भाषा से वह भी कह सकते हैं जो नहीं कहा जा सकता है। और भाषा से वे अर्थ भी पहुंचा सकते हैं जो बहुत बारीक और महीन हैं। और हम वे बातें भी सुन सकते हैं जिनको कि कहना बहुत कठिन था। लेकिन अगर सुनने और बोलने वाले के बीच एक सिम्पैथी हो, एक सहानुभूति हो, तो भाषा की संभावना अनंत हो जाती है। एंटी-पैथी हो तो भाषा की सीमाएं बहुत छोटी हो जाती हैं। अगर हम दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े होकर बात कर रहे हैं, जैसा कि हमारा पुराना हिसाब है--जब भी दो आदमी बात कर रहे हैं तो आमने-सामने बात कर रहे हैं।
अभी नये मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि क्लास की व्यवस्था बदलनी चाहिए। उसमें शिक्षक सामने खड़ा है और लड़के सामने बैठे हुए हैं। यह एनकाउंटरिंग है, यह खतरनाक है। यह एक-दूसरे के अगेंस्ट है। तो नया मनोवैज्ञानिक कहता है, सर्कुलर होना चाहिए लड़कों को, सब तरफ होने चाहिए शिक्षक के, ताकि सीधी लड़ाई न हो जाए खड़ी। तो एक ग्रुप होना चाहिए जिसमें शिक्षक ऐसा अलग खड़ा नहीं है और आप अलग नहीं हैं। शिक्षक घूम रहा है। कभी वह आपके पीछे भी पड़ता है, कभी बगल में भी पड़ता है।

प्रश्नः यह तो टोपोग्राफीकल अरेंजमेंट हुई।

मेरा मतलब यह है कि माइंड भी एनकाउंटर जब करता है एक-दूसरे को, तब भाषा बहुत सीमित हो जाती है।

प्रश्नः इस कांटेक्स्ट में आपसे मैं पूछना चाहूंगा कि आजकल पिछले थोड़े सालों में ब्रिटेन में जो लिंग्विस्टिक एनालिसिस की जो फिलासफी निकली है, वे लोग अपना सारा ध्यान यही प्रश्न पर--लिंग्विस्टिक एनालिसिस पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं। तो क्या आपको लगता है कि यह जो प्रवृत्ति है ब्रिटिश फिलासफर्स की, यह एडमिरेबल है या होनी चाहिए, या यही फिलासफी सबसे अच्छी है ऐसा कुछ आप मानते हैं? इसके बारे में क्या ख्याल है आपका?

हां, पहला तो यह, यह काम तो बहुत बढ़िया है और बड़ा कीमती है। क्योंकि जब
तक लैंग्वेज की ठीक से एनालिसिस न हो, तब तक लैंग्वेज की एनालिसिस न होने

के कारण बहुत सी भूलें होती रहती हैं, जिनमें व्यर्थ विवाद होता रहता है। लेकिन फिलासफी का कुल काम लैंग्वेज की एनालिसिस से इससे मैं राजी नहीं हूं। फिलासफी का एक काम यह भी है--लेकिन फिलासफी, लैंग्वेज एनालिसिस पर्यायवाची हैं, बराबर हैं ऐसा मैं नहीं कहता। फिलासफी का काम और बड़ा है। लेकिन उसमें एक काम यह भी जरूरी है कि हम भाषा को ठीक से समझने की कोशिश करें, क्योंकि बहुत सी गड़बड़ें सिर्फ भाषा की वजह से हैं।
अब जैसे कि उदाहरण के लिए महावीर-बुद्ध एक साथ हुए, और उनके बीच जो विवाद है, वह ऐसा लगता है कि सिर्फ भाषा का विवाद है। काश, भाषा की ठीक-ठीक व्याख्या हो सकती, तो शायद महावीर और बुद्ध के बीच कोई विवाद नहीं होना चाहिए। महावीर कहते हैं, आत्मा को जानना ही ज्ञान है और बुद्ध कहते हैं, जो आत्मा को मानता है उससे बड़ा अज्ञानी नहीं है। अब बड़ी मुश्किल की बात है। तो सीधा-उलटा हो गया। लेकिन जितना समझने की कोशिश मैं करता हूं, तो मुझे लगता है कि बुद्ध आत्मा को हमेशा अहंकार के अर्थों में प्रयोग करते हैं, ईगो के अर्थों में। "मैं" इस अर्थ में वे आत्मा का प्रयोग करते हैं। और महावीर जब भी आत्मा का प्रयोग करते हैं, तब वे कहते हैं, "मैं" को छूट जाने पर जो शेष रह जाएगा, वह आत्मा है। अब यह बिल्कुल लिंग्विस्टिक मामला है। दोनों तरह प्रयोग हो सकता है। ईगो जब मिट जाएगा, तो जो शेष रह जाएगा मेरे भीतर, अगर वह आत्मा है, तो बुद्ध और महावीर के बीच कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन बुद्ध यह कहते हैं कि जब "मैं" नहीं रहेगा, तो कुछ बचेगा ही नहीं। तो वह "मैं" ही सब कुछ है। वही आत्मा है।
अगर हम भाषा को ठीक से समझ पाएं, तो कई बातें ख्याल में आएंगी। दुनिया में दर्शन का जितना विवाद है, उसमें से नब्बे प्रतिशत लिंग्विस्टिक है। और अगर भाषा की, लैंग्वेज की ठीक-ठीक एनालिसिस हो जाए, तो दुनिया में नब्बे प्रतिशत विवाद तो इसी क्षण विदा हो जाए। इसलिए ब्रिटिश फिलासफी ने इधर बीस-तीस वर्षों में जो काम किया है, वह बहुत कीमती है। लेकिन दार्शनिक की सदा की एक भूल रही है कि वह जो छोटा सा काम करता है, उसे टोटल बना लेता है। तब झंझट खड़ी हो जाती है।
ब्रिटिश फिलासफी ने जो तीस साल में काम किया है वह एडमिरेबल है। लेकिन खतरा क्या है? खतरा वही है कि वह जो आदमी के मन की निरंतर भूल है--कि धीरे-धीरे उन्होंने कहा कि सारी फिलासफी ही लैंग्वेज है; इससे ज्यादा कुछ है ही नहीं फिलासफी में। यह सब लिंग्विस्टिक मामला है, इससे ज्यादा कुछ मामला नहीं। अगर हम लैंग्वेज को पूरा समझ लेते हैं तो फिलासफी विदा हो जाएगी। यह बात गलत है। क्योंकि बहुत कुछ है, बहुत कुछ है।
जैसे विटगिंस्टीन का एक वाक्य मुझे पसंद है। उसने एक वाक्य कहा हैः
जो न कहा जा सके, उसे नहीं कहना चाहिए। जो न कहा जा सके, उसे नहीं कहना चाहिए। जैसा कि पुराने सारे दर्शन कहते हैं--कि ब्रह्म है, लेकिन उसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। तो वह विटगिंस्टीन कहता है कि कृपा करके इतना भी मत कहो कि ब्रह्म है। कम से कम इतना तो तुम कहते ही हो, और इतना भी कहते हो कि उसके संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। मगर तुमने काफी कह दिया। इतना भी मत कहो, इससे उपद्रव पैदा होता है। लेकिन विटगिंस्टीन यह जरूर मानता है कि कुछ है, जो नहीं कहा जा सकता। उससे इनकार नहीं है। उसे कहो मत, लेकिन उससे इनकार नहीं; वह है।
हम बहुत कुछ अनुभव करते हैं, जो नहीं कहा जा सकता। और बहुत कुछ अनुभव
कर सकते हैं, जो नहीं बताया जा सकता। अब मेरे सिर में दर्द है, और जब मैं कहता हूं, मेरे सिर में दर्द है, तो हालांकि मैं कह रहा हूं। लेकिन जिस आदमी के सिर में दर्द न हुआ हो, उससे मैं कुछ भी नहीं कह सकता कि मैं क्या कह रहा हूं? वह तो हम सबके सिर में दर्द हुआ है इसलिए कम्युनिकेट हो जाती है बात। और फिर भी ध्यान रहे, वही कम्युनिकेट नहीं होती जो मेरे सिर में दर्द है। आपके सिर के दर्द का पता नहीं किस तरह का है।

प्रश्नः हजार किस्म का।

हां, जब मैं कहता हूं, मेरे सिर में दर्द है, तो आप यही समझते हैं कि जैसा सिर में दर्द आपके होता है, वही मुझे होगा। इसलिए कम्युनिकेशन फिर भी नहीं हुआ है। आपका सिरदर्द आपका है, मेरा सिरदर्द मेरा है। पता नहीं उन दोनों का कभी तालमेल होगा भी नहीं, क्योंकि दोनों के सिरदर्द लेबोरेटरी में सामने रख कर कभी तौले नहीं जा सकते कि इसके सिरदर्द में क्या है, इसके सिरदर्द में क्या है। और सिर को खोलो तो दर्द विदा हो जाता है। दर्द का पता नहीं चलता है कि वह कहां है? लेकिन है। और अगर दस आदमियों को सिरदर्द न हुआ हो और मैं उनके बीच में पड़ जाऊं और कहूं कि मेरे सिर में दर्द है, वे कहेंगे, पागल हो, सिरदर्द होता ही नहीं। तो मैं लाख उपाय करके भी सिद्ध नहीं कर सकता कि सिरदर्द है।

प्रश्नः फिर भी यह तथ्य तो रहता ही है, फैक्ट। कि यह लैंग्वेज इ.ज द ओनली इंस्ट्रुमेंट लेट बी हैव?

हां-हां, इसको इनकार नहीं है, इसको इनकार नहीं है। भाषा के कारण जो भूलें हुई हैं, वे भाषा के विश्लेषण से दूर हो जाएंगी और हम ज्यादा वैज्ञानिक ढंग से कम्युनिकेट कर सकेंगे।

प्रश्नः जैसे कि बहुत से लोग मानते हैं--पढ़े-लिखे लोग, जो अपने आपको इंटलेक्चुअल कहलाना पसंद करते हैं। या मॉडिस्टी से कभी वे कहते नहीं हैं लेकिन मानते हैं कि हम दूसरों से अलग हैं। हमारा या तो आइ क्यू ज्यादा है या... थिंकिंग कैपेसिटी ज्यादा है। और बहुत-कुछ काम जो लोग करते हैं, उसका थिंकिंग पार्ट जो है वह हम करते हैं। तो आप जब लोगों के सामने बोलते हैं, तो आपको यह डिफरेंटशिएट करने का पसंद आता है? कि यह भई पांच हजार की मीटिंग है, तो मैं एक तरह से बोलूं। कोई पढ़ा-लिखा आदमी इंटरव्यू लेने आए और वह तरह-तरह के जो इंटलेक्चुअल फैशन के वर्ड हों, जिससे आपको पता चले कि यह आदमी कुछ ज्यादा सामान्य लोगों से पढ़ा-लिखा है, तो इससे थोड़ा सा ज्यादा सफेस्टिकेटिड बात करूं, ऐसा डिफरेंटशिएट करना आप पसंद करते हैं?

हूं-हूं।

और इसके साथ एक दूसरा सवाल--कि आप जिस उत्साह से यह सब जगह घूमते-फिरते हैं और लोगों को जो पैशन से आप बातें कहते हैं, उससे एक बात तो जाहिर है कि आप में कनसर्न तो बहुत है लोगों के लिए। हमारी जो दशा है, हमारी जो प्रिडिकमेंट है हमारे देश का, उसके लिए कनसर्न आप में बहुत है। तो उसके साथ आप यह भी जानते हैं कि जो समाज आपके सामने है, जिसके साथ आपको बात करने की है, कम्युनिकेट करना है, वह एक बहुत स्टेटिक सोसाइटी है, स्टेग्नेंट है, स्टेटिक है। और उसकी जो नीड हैं वे बहुत ही एलिमेंट्री हैं--खाना, पीना, घर पर रूफ हो, मकान, कपड़ा, मेडिकल एड, एजुकेशन, ये बहुत एलिमेंट्री नीड हैं। तो क्या आपको कभी ऐसा नहीं लगता कि एक तरह कि इसमें स्टेज हो सकता कि पहले यह सब लोगों को रोटी वगैरह का इंतजाम किया जाए, उसके बाद उनको परमात्मा वगैरह बातों के बारे में कहा जाए। ताकि वह उनके सिर पर से चला न जाए। या वे मुझे एंटटेंमेंट के रूप में ने लें कि भई यह कहानी यह आदमी कहता है, और ठीक है, मजा है, आवाज भी मधुर है, लेकिन वह कुछ बात कभी-कभी कहता है कि यह झंडा जो है हमारा, यह तो सिर्फ कपड़े का टुकड़ा है। और फिर लोगों के मन में यह, मेरे मन में भी यह ख्याल आया था कि जब यूनिलेटरली अगर हम इंटरनेशनल होना डिसाइड कर लें, तो उससे क्या फायदा होगा, जब तक सारा जगत इंटरनेशनेलिस्ट न हो जाए। तो इस तरह की, एक आप जब गरीबी पर बात करते हैं, तो लोगों को बहुत जंचती है कि यह हमारे काम की बात है। यह कपड़े, खाने-पीने की बात है। और हमको तो यही चाहिए। और दूसरी बात फिर ऐसा भी लगता है कि भई यह क्या बात करते हैं कि यह ध्वज जो है, यह राष्ट्र-ध्वज, यह तो सिर्फ कपड़े का टुकड़ा है। अब ये दोनों बातों को एक ही गल्प में स्वालो करना लोगों के लिए मुश्किल होता है।

मैं समझा। पहली बात तो यह कि मैं कभी फर्क नहीं करता अपनी तरफ से कि कौन आदमी इंटलेक्चुअल है और कौन नहीं है। मैं नहीं फर्क करता। लेकिन फर्क अपने आप हो जाता है। क्योंकि मैं अपनी तरफ से, आप मुझसे कुछ बात करते हैं, तो आप जिस तल पर बात करते हैं उस तल पर आप मुझसे कुछ निकलवा लेते हैं। न तो मैं पहले से सोच कर बैठा हूं कि आपसे क्या बात करनी है। न पहले से मेरा कोई हिसाब है, न कभी सोचता हूं। आप सामने होते हैं तो बात निकल आती है। उस बात निकलने में मैं जितना जिम्मेवार हूं, उससे ज्यादा जिम्मेवार आप होते हैं। तो अगर एक सोफिस्टिकेटेड माइंड आए, तो वह जिस तरह की बातें करेगा, वह उस तरह की बातें मुझसे निकलवा लेगा। एक सीधा-सादा किसान आए, तो वह जिस तरह की बातें करेगा, वह मुझसे निकलवा लेगा। मेरे लिए कोई फर्क नहीं है। मेरे लिए कोई फर्क नहीं है, क्योंकि मुझे कुछ अपनी तरफ से कहना ही है, ऐसा नहीं है-- डायलाग है। आप मुझसे कुछ बात करते हैं, उससे जो निकल आता है, वह निकल आता है, लेकिन मुझे कभी फर्क करने का कोई सवाल ख्याल में नहीं आता।
फिर मेरी अपनी समझ यह है कि जिसको हम बहुत सोफिस्टकेटेड कहते हैं, अक्सर जरूरी नहीं है कि वे इंटेलिजेंट भी हों, क्योंकि बहुत गहरे में जैसे-जैसे इंटेलिजेंस बढ़ती है वैसे-वैसे सोफिस्टिकेशन विदा होने लगता है और चीजें सरल और सीधी और साफ हो जाती हैं। असल में अनसोफिस्टिकेटेड माइंड सरल होता है, ऐसा नहीं; इंटेलिजेंट माइंड सरल होता है। जितना विचारशील व्यक्ति हो, उतना सरल हो जाता है। और इंटलेक्चुअल होने को जो भ्रम है, वह अक्सर इंटलेक्चुअल को नहीं होता, वह अक्सर उसको होता है जो इंटलेक्चुअल नहीं है। इंटलेक्चुअल माइंड को कभी ये सवाल नहीं उठते हैं कि वह इंटलेक्चुअल है।
असल में स्वस्थ आदमी को पता ही नहीं चलता कि वह स्वस्थ है, सिर्फ बीमार को ही ख्याल में रहता है।

प्रश्नः कि वह स्वस्थ नहीं है।

स्वस्थ नहीं है या है, या दावा करे या न करे, ये सब बीमार के ही लक्षण हैं। स्वस्थ आदमी को पता ही नहीं चलता। वह होना इतना सरल होता है कि उसका कुछ पता नहीं चलता। हमारे मुल्क में जो इंटलेक्चुअल को इतना ख्याल रहता है इंटलेक्चुअल होने का, उसका कुछ कारण इतना है कि इंटलेक्चुअल बहुत कम हैं; जिसको इंटेलिजेंसिया कहें, वह न के बराबर है। इसलिए बड़ा रुग्ण बोध एक बीमार ख्याल है इंटलेक्ट का। और उसकी वजह से इंटलेक्चुअल अकड़ा हुआ है। और व्यर्थ सोफिस्टिकेट कर रहा है। और व्यर्थ सीधी-सीधी चीजों को उलझा रहा है, क्योंकि उलझा कर वह दिखाई पड़ सकता है कि वह इंटलेक्चुअल है।

प्रश्नः काम बड़ा मुश्किल है और मैं ही कर सकता हूं।

हां, मैं ही कर सकता हूं, यह हमारे मुल्क की भ्रांति में एक हिस्सा है। मैं लेकिन कोई फर्क नहीं करता।
और जरूरी नहीं है कि आइ.क्यू. ज्यादा हो किसी का तो वह इंटलेक्चुअल हो,
यह भी जरूरी नहीं है। क्योंकि जितनी समझ बढ़ती जाती है, उतना पता चलता है कि आइ.क्यू. कोई ठीक मेजरमेंट नहीं है। कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कुछ भी नहीं कहा जा सकता। बहुत मुश्किल है मामला।
रवींद्रनाथ परीक्षा में फेल हो सकते हैं, कुछ पक्का पता नहीं चल सकता है। गांधी थर्ड क्लास आ सकते हैं। आठ सौ लड़कों में मैट्रिक में चार सौ चारवां नंबर था गांधी का। वे चार सौ चार लड़के जो गांधी के ऊपर थे, हो सकता था आइ क्यू में गांधी से आगे निकल गए, वे कहां हैं, उनका कुछ पता नहीं है। जिंदगी बहुत जटिल है और आइ क्यू अभी भी बहुत सीधा-सादा मेजरमेंट है, कोई बहुत गहरा नहीं है, कुछ पकड़ नहीं पाता। इसलिए उस सबकी मैं कोई फिकर नहीं करता। पांच हजार लोग मुझे सुन रहे हैं, तो उसमें मैं यह फिकर नहीं करता कि कौन बुद्धिमान है, कौन गैर-बुद्धिमान है। वह पांच हजार लोगों की चेतना से

जिस भांति मैं संबंधित हो सकता हूं, हो जाता हूं। वह भी कांशस एफर्ट नहीं है, वह भी कांशस एफर्ट नहीं है।
दूसरी बात आप जो कहते हैं--दूसरी बात जो कहते हैं कि एलिमेंट्री नीड्स हैं--खाना है, कपड़ा है, रोटी है, मकान का छप्पर है, वह पूरा न हुआ हो, तो और दूसरी बातों में कोई रस कैसे ले? लेकिन मेरी अपनी समझ यह है कि जिंदगी इतना इकट्ठा जोड़ है कि अगर वह खाना, कपड़ा और मकान का छप्पर पूरा नहीं हुआ है तो उसका कारण भी जिंदगी की पूरी टोटेलिटी को न देखना ही है। और उसके पूरे न होने में भी हमने जो फिलासफी और रिलीजस ख्याल बना रखे हैं, वे ही कारण हैं। और अगर हम उनको नहीं बदलते तो यह भी पूरा होने वाला नहीं है। हालांकि ऊपर से ऐसे ही दिखाई पड़ता है कि आखिर भारत में रोटी नहीं है, छप्पर नहीं है, तो यह पहले आना चाहिए। लेकिन मेरा मानना यह है कि भारत के पास जो फिलासफी है, वह ऐसी है कि उसमें रोटी, छप्पर हो ही नहीं सकता। तो अगर हम उस फिलासफी से नहीं लड़ते हैं, और उस फिलासफी से रोटी-छप्पर बना कर नहीं लड़ा जा सकता। उस फिलासफी से फिलासफिकली ही लड़ना पड़ेगा। उस फिलासफी से अगर हम नहीं लड़ते हैं तो हम रोटी, छप्पर की स्थिति भी पैदा नहीं कर पाएंगे।
तो यह हो सकता है कि जिसका पेट खाली हो उसे लगे कि क्या बेकार बातें कर रहे हैं। अब जैसे समझ लें कि एक आदमी भूखा है और हम उससे कहते हैं कि गेहूं पैदा करने की यह विधि है; और वह कहता है कि यह क्या बेकार की बातें कर रहे हैं? मुझे रोटी चाहिए। आप कहां गेहूं पैदा करने की बातें कर रहे हैं! तो उसकी बात भी हमारे समझ में पड़ती है, क्योंकि भूखे के लिए कनसर्न इतना इमीजिएट है कि आपकी दूर की बात का कोई मतलब नहीं है। लेकिन वह भूखा भी इसीलिए है कि कुछ लोगों ने पहले दूर के कनसर्न की फिकर नहीं की, नहीं तो वह भूखा भी नहीं होता। और अगर हम भी आज नहीं फिकर करते हैं दूर की, तो बीस साल बाद भी वह भूखा होगा।
यानी मेरी अपनी समझ यह है कि जिंदगी के प्रॉब्लम्स दो तरह के हैं। एक
तो इमीजिएट प्रॉब्लम्स हैं; और इमीजिएट प्रॉब्लम्स को ही अगर हम हल करने में लगे रहें, तो प्रॉब्लम्स कभी खतम न होंगे। और दूसरे दूर के प्रॉब्लम्स हैं; जिनको अगर हम हल कर लें तो बीस साल बाद हमारे बच्चों के लिए इमीजिएट प्रॉब्लम जैसी चीज न रह जाएगी।
तो वह दोहरे तल पर हमें लड़ाई लेनी पड़ेगी। तो मैं दोहरे तल पर ही बात कर रहा हूं। मैं उस रोजी-रोटी की भी बात कर रहा हूं और यह भी फिकर कर रहा हूं कि रोजी-रोटी पैदा क्यों नहीं हो सकी? आखिर बात क्या है? ऐसी कौन सी कठिनाई है हमारे साथ कि हम रोजी-रोटी पैदा नहीं कर पाए? तो हमारी कुछ मानसिक जो कंडीशनिंग है, वह रोटी-रोजी पैदा नहीं होने दे रही है। उसको बदलना पड़ेगा। मैं एक घटना पढ़ रहा था कि कुछ सोशलॉजिस्ट दो कम्युनिटीज का अध्ययन कर रहे थे, अमेजान में। तो वे दोनों कम्युनिटीज एक ही पहाड़ पर रहती हैं; आदिवासी हैं। दोनों के पास एक सी जमीन है, लेकिन एक गरीब है और एक अमीर है! और दोनों का मौसम एक है, और दोनों का सब एक है। लेकिन एक सदा से गरीब है, और एक सदा से अमीर है। वे बड़े हैरान थे कि मामला क्या है? क्योंकि जमीन वही है, औजार वही हैं, सब कुछ वही है, इसलिए इसमें तो कुछ फर्क करने का कारण ही नहीं है। एक गांव उनका है, बगल में दूसरा गांव है। वह अमीर गांव है, यह गरीब गांव है। यह मामला क्या है? तो वे बड़े हैरान हुए। उन दोनों की फिलासफी अलग है। जो कम्युनिटी गरीब है उसकी फिलासफी यह है कि किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है, सब सामूहिक है। एक खेत पर काम करना है, तो पूरा गांव काम करेगा। खेत छोटा सा है। पहाड़ी इलाका है, खेत छोटा सा है, पूरा गांव उसमें काम करने आता है। बजाय काम बढ़ने के काम घटता है, क्योंकि उतने लोगों को उस खेत में खड़े होना ही प्रॉब्लम है। अच्छा, तब तक सब खेतों का काम बंद रहेगा, क्योंकि वे सारे लोग तो एक खेत पर काम करेंगे, फिर दूसरे खेत पर काम करने जाएंगे, फिर तीसरे खेत पर। वे दो-चार खेत पर काम कर पाएंगे कि मौसम निकल जाएगा। अच्छा, दूसरी कम्युनिटी इंडिविजुअल है। छोटे-छोटे खेत के टुकड़े हैं, वे अपना-अपना काम करते हैं। पूरा गांव इकट्ठा काम कर लेता है। वह पहली कम्युनिटी--एक अर्थ में सोशलिस्टिक फिलासफी है उसकी। लेकिन जो ढांचा है पहाड़ का, पहाड़ पर छोटे-छोटे टुकड़ों में, पैचेस में जमीन

है, उस पर इतने लोग काम नहीं कर सकते कलेक्टिवली, उसमें दो ही आदमी काफी हैं। एक पत्नी और पति काम कर लें तो काफी हैं। उनके बेटे काम कर लें तो बहुत हैं।
तो वह जो सोशलिस्टिक सोसाइटी है, वह गरीब है और वह जो इंडिविजुअल सोसाइटी है, वह अमीर है। और एक-सा सब है, और कोई मामला नहीं है। अब सवाल यह है कि अगर उनको जाकर समझाया जाए कि तुम्हारा यह जो ढांचा है सोचने का, यह गलत है। इतना मजा है, वह कम्युनिटी, जो इकट्ठी काम करती है, उसमें इंडिविजुअल की कांशसनेस ही विकसित नहीं हुई। जब अमरीका में उनको नौकरी पर रखा जाता है तो एक आदमी से आप काम नहीं ले सकते हैं। दो-तीन को इकट्ठा रखना पड़ेगा नौकरी पर। अगर एक आदमी को आपने रखा तो वह काम ही नहीं कर सकता। उसने कभी अकेले काम किया ही नहीं है। यानी अकेला काम किया जा सकता है, यह उसकी चेतना में ही नहीं घुसा है। अगर दो को साथ रखो तो वह काम कर लेगा। अकेले को रखो तो वह बैठा रह जाएगा।
मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हमारी जो फिलासफी है इस मुल्क की, हमारा जो रिलीजन है, हमारे चिंतन के जो ढंग हैं, वे एंटी- मैटीरियलिस्टिक हैं। तो न तो वे छप्पर बनने देगें, न वे रोटी जुटने देगें, न वे कपड़े आने देगें। तो अगर उनको लाना है तो भी यह दोहरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। उनसे भी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। इस मुल्क की फिलासफी को आमूल बदलना पड़ेगा। तो स्वाभाविक है, एक भूखे आदमी को लगेगा कि क्या मतलब है कि आप कर्म की और पुनर्जन्म की बात करते हैं? लेकिन मेरा मानना यह है कि वह कर्म और पुनर्जन्म की बात ने ही तुम्हें छप्पर नहीं मिलने दिया, तो अब अगर छप्पर जुटाना है, तो वह कर्म और पुनर्जन्म की बात को उखाड़ कर फेंक देना पड़ेगा। और दूसरी जो आप बात कहते हैं, और दूसरी जो आप बात कहते हैं कि गरीबी की बात करता हूं तो वह समझ में आ जाती है। लेकिन अगर मैं कह देता हूं कि यह जो झंडा है सह सब चीथड़े का टुकड़ा है या कागज का टुकड़ा है, तो समझ में नहीं आती है। वह नहीं आएगी, लेकिन विरोध नहीं है दोनों बातों में। अब तो मेरा मानना है कि दुनिया को गरीब रखने में वे चीथड़े के टुकड़े भी काम कर रहे हैं। वह जो आकाश में आप फहरा रहे हैं; वे भी काम कर रहे हैं दुनिया को गरीब रखने में। और अब अगर दुनिया को हमें समृद्ध बनाना है तो वे चीथड़े के टुकड़े आकाश से हटा देने पड़ेंगे। अगर यह पृथ्वी एक हो तो आज समृद्ध हो सकती है। इसमें अब कठिनाई नहीं रह गई है। क्योंकि जिन कौमों ने वैज्ञानिक विकास कर लिया है, उनका वैज्ञानिक विकास हमें तभी उपलब्ध हो सकता है, जब हमारे बीच की सीमाएं कम हो जाएं, टूट जाएं, गिर जाएं। जब तक हम हम हैं, और वे वे हैं, तब तक हर कौम यह फिकर करेगी, हर कौम यह फिकर करेगी।

प्रश्नः इसके बारे में एक मेरा अनुभव जो है वह आपको बताऊं, कि दीवाली
के दिनों में, दिल्ली में मैंने रेडिकल ह्यूमिनिस्ट जो एसोशिएसन है एम.एन. राय के फॉलोअर्स का, वह मैंने अटेंड किया। तो मैं वैसे ऑब्जर्वर के नाते से गया था। आइ वा.ज ऑन द पेरेफरी, आइ वा.ज नॉट ए पार्ट ऑफ द मूवमेंट। लेकिन क्योंकि मुझे लगा कि ये लोग कुछ ठीक काम कर रहे हैं इसलिए मैं गया था ऑब्जर्व करने के लिए। तो मैंने वहां देखा कि बार-बार उनके जो लीडर्स हैं, उनको अपनी रैंकियन फाइल जो है, लोग जो अपने मुल्क में जाकर, अपने जिल्हे में या अपने गांव में जाकर काम करते हैं, उनको बार-बार याद दिलाना पड़ता था कि भई हम लोग दूसरी पोलिटिकल पार्टीज की तरह कोई एक्शन का प्रोग्राम ले नहीं सकते या हमें इन बातों में बहुत रस नहीं हैं, एक्शन करना चाहते हैं लेकिन जिस तरह का एक्शन आप मांगते हैं, उस तरह का हम कर नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारा जो मकसद है वह प्राइमरिली हमारा मकसद है पार्टी एसोशिएसन का, फिलॉसफीकल रेवोल्यूशन लाना। क्योंकि हम लोगों का प्राइमेसी ऑफ आइडिया में, प्राइमेसी ऑफ थॉट, इसमें मानते हैं कि जब तक यह विचार-क्रांति न हो, तब तक बाकी सब फिजूल हैं। अब वे जो लोग थे रैंकियन फाइल के, उनका क्या था कि उनकी पर्सनल लॉयल्टी, एम.एन. राय की एक रोमांटिक फिगर होने से--कि वह बहुत बड़ा रेवोल्यूशनरी था, मास्को गया था, यह किया था, मैक्सिकन रेवोल्यूशन का उसने इंजीनियर किया था। वह सब बातों की वजह से उनका पर्सनल

लॉयल्टी बन गई है एम.एन. राय के फिगर के प्रति। और वे लोग उसी तरह से काम कर रहे हैं कि भई हम एम.एन. राय के लिए काम करते हैं। और लीडर से सब ये बात से परेशान हैं कि इन लोगों को कैसे समझाएं? अब यह भी नहीं कह सकते हैं कि भई तुम समझते नहीं, ये सब बातें बहुत जरा झीनी हैं, यानी कि बहुत सूक्ष्म हैं। और इस तरह की हम नहीं करना चाहते, हमारा काम तो सिर्फ पोलिटिकल पार्टी जैसा नहीं है। वह बार-बार कहने पर मैंने देखा कि एक तीन दिन की कांफ्रेंस के बाद भी वे लोग सब कांफ्रेंस पूरी होने के बाद मुझे बता रहे थे कि देखो न भई, ये लोग तो कुछ, ये बातें बड़ी-बड़ी करते हैं, और क्या करना है वह असल में बात करते नहीं, तो यह कोई भी जो कोई पार्टी या कोई आदमी इस तरह का प्रोग्राम लेकर चलता है न, तो उसको इस तरह का मुझे लगता है कि डिफरेंशिएशन करना ही पड़ता है। कि भई कुछ लोग ये सब किताबें लिखेंगे-पढ़ेंगे, ये सूक्ष्म चर्चाएं करेंगे। और वे शायद उनमें कुछ गलती हो शायद फंडामेंटली ताकि वे एक्शन करना नहीं चाहते या अलसा जाते हैं। और कुछ लोग ऐसे हैं कि बस काम करने के लिए तत्पर हैं, तो उनको काम करने का प्रोग्राम भी देना पड़ेगा। अब यह जो डिफिकल्टी है, यह जो पैराडॉक्स है या डाइकोटॉमी, वह मेरा ख्याल है कि ये रेडिकल ह्यूमिनिस्ट एसोशिएसन वाले तो रिलाज्व नहीं कर सके, तो फर्ज करो कि आपके साथ भी जो लोग हमेशा रहते हैं, आपका प्रोग्राम वगैरह अरेंज करते हैं, वे भी आपको एक दिन आकर कहें कि भई हम आपको बुलाते हैं, भाषण करवाते हैं, लेकिन लगता है कि कुछ और काम करना पड़ेगा, एक्शन जिसे बोलते हैं क्रूड मीनिंग में, वैसा कुछ करना पड़ेगा, तो आपका भी यही जवाब होगा कि भई देखो, मैं तो भाषण करता हूं, लोग सुनते हैं, चर्चा भी अखबारों में होती है और बहुत से लोग इससे डिस्टर्ब हो गए हैं, तो यह काफी है। अगर उनको संतोष न हुआ?

नहीं-नहीं, मैं नहीं कहता काफी है। मैं नहीं कहता कि काफी है। मैं नहीं कहता कि काफी है। काफी इसी अर्थ में है कि वह एक्शन में ले जाए। प्राइमेसी ऑफ आइडिया का सिर्फ मतलब इतना होता है, वह अल्टिमेसी ऑफ आइडिया नहीं है। प्राइमेसी ऑफ आइडिया का मतलब ही यही है कि वह बिल्कुल प्राइमरी है। उसके बाद एक्शन ही अल्टिमेट होगा। और आइडिया पर अगर इतना जोर है, विचार पर, तो इसलिए है कि वह कर्म में रूपांतरित हो जाए।
मैं नहीं कहता ऐसा। मैं तो यह कहता हूं कि यह कितना दुर्भाग्य है हमारा कि अभी विचार भी नहीं है। आइडिया ही नहीं है, तो एक्शन कैसे होगा?

प्रश्नः और होगा तो गलत होगा।

हां, होगा तो गलत होगा, क्योंकि वह अंधेरे में होगा, और अनजाना होगा,
और क्रोध से भरा होगा। उसमें कुछ समझ नहीं होगी। तो मैं तो नहीं मानता कि दिन-रात निरंतर अंत तक कोई विचार ही करते रहना है। विचार है सार्थक इसी अर्थों में कि वह एक्शन में ले जाए।
तो जो लोग मेरे पास आ रहे हैं, मेरी बात समझ रहे हैं, अगर उन्हें जिस दिन भी लगता है कि ठीक है, विचार समझ में आ गया, तो मैं तो उनको कहता हूं कि एक्शन में जाना है। एक्शन में जाना ही पड़ेगा। क्योंकि हम कब तक बैठ कर बात करते रहेंगे कि रोटी चाहिए, रोटी चाहिए? रोटी बनानी पड़ेगी। लेकिन रोटी बन ही तब सकती है, जब रोटी चाहिए का ख्याल बहुत साफ और स्पष्ट हो जाए। और कैसे रोटी बनेगी उसके सारे एलिमेंट्स का बोध हो जाए और उन सबको लाने का ख्याल आ जाए कि किस दिशा से क्या मिलेगा?
तो मैं एक्शन विरोधी नहीं हूं, लेकिन इतना मैं मानता हूं कि आइडिया प्राइमरी है और एक्शन उसका दूसरा स्टेप है। वह आएगा ही; आना ही चाहिए। अगर कोई आइडिया एक्शन में नहीं ले जाता, तो वह इंपोटेंट आइडिया है। उस आइडिया का कोई मतलब ही नहीं है। यानी उसने समय खराब करवाया हमारा। उससे तो बेहतर था कि हम एक्शन ही कर लेते। गलत होता, फिर भी कुछ तो होता! और वह आइडिया अगर कहीं भी नहीं ले गया तो वह तो इंपोटेंट है।

पोटेंट आइडिया हमेशा एक्शन में ले ही जाएगा, ले ही जाना चाहिए। तो मैं
तो नहीं ऐसा कहता। मैं नहीं ऐसा कहता। लेकिन अब जरूरत जरूर है कि एक बीस साल मुल्क के दिमाग में एक वैचारिक क्रांति की हवा खड़ी हो जाए, ताकि क्रांतिकारी कृत्य करने की संभावना बन सके। मेरे मन में दोनों में विरोध नहीं है। मेरे मन में जब भी विचार परिपक्व होगा, तो एक्शन बनेगा। बनना ही चाहिए। अगर विचार ठीक था, पोटेंशियली उसमें कुछ फोर्स थी, तो वह एक्शन बनेगा, वह रुक नहीं सकता।

प्रश्नः बहुत से लोगों से मैंने सुना है, पढ़ा भी है--कि हमारे इतिहास
का सबसे बड़ा जो प्रश्न है, यह प्रश्न यह है कि मिडिएबल एज खतम होने के बाद रेनेसां यूरोप में आया, या तो उसी रेनेसां की वजह से मिडिएबल खतम हुआ। और उसके बाद साइंस का एक्सप्लोजन हुआ, जिसने सारा नक्शा यूरोप का बदल दिया। और यूरोप की वजह से उसकी असर सभी जगह पड़ी। तो हिंदुस्तान के बारे में ऐसा क्या कारण है कि हम यह मिडिएबल मेंटेलिटी में से बाहर निकल ही न सकें। कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि यह जो सब गड़बड़ हुई हमारे कल्चर में यह कहीं आठवीं-नवीं सदी के आस-पास हुई, हर्ष के एंपायर, हर्ष के साम्राज्य के टूट जाने के बाद, और उसके बाद हमारा कल्चर डाइनेमिक होना बंद हो गया। उसके बाद जो कुछ भी हुआ वह सिर्फ पिष्टपेषण कमेंट्री के रूप में हुआ, और भक्ति संप्रदाय जो है उसने हमारी जो थिंकिंग थी वह स्टल्टिफाई कर दी। इस वजह से भक्ति संप्रदाय में भक्त और भगवान का जो नाता है, वह प्रेम वगैरह कुछ फीलिंग्स के आधार पर है। जिसके लिए थियोलॉजिकल डिबेट्स करना कोई जरूरी नहीं है। अब यह भक्ति संप्रदाय क्यों आया, यह एक और अलग सवाल है, लेकिन फिर भी कुछ लोग मानते हैं कि यह भक्ति संप्रदाय का जो कंट्रीब्यूशन है हमारी स्टेग्नेंसी में वह काफी है और उसी की वजह से शायद हमारे यहां रेनेसां कभी आया ही नहीं। रेनेसां की वजह से साइंस भी नहीं आया। तो क्या आपको ऐसा कुछ लगता है कि यह बात सही हो सकती है?

इसमें थोड़ा सा सच है, लेकिन मूल कारण दूसरे हैं। रेनेसां जैसी चीज भारत में नहीं आई, उसके कारण बहुत दूसरे हैं। पहला कारण तो यह है कि हमारा टाइम कांसेप्ट बाधा बन गया। पश्चिम का टाइम कांसेप्ट ही रेनेसां ला सका।
पश्चिम की जो समय की धारणा है, वह एक रेखा में है।

प्रश्नः लिनिअर है।

लिनिअर है। हमारी जो समय की धारणा है, वह सर्कुलर है; वह चक्कर में है।
हमारी समय की धारणा ऐसी है कि सब चीजें फिर वापस लौट आती हैं।

प्रश्नः इसका मतलब साइकिकल है।

साइकिकल है। तो हमारी समय की जो धारणा है, उसमें ऐसा है कि जो आज है वह फिर लौट आएगा, जो कल था वह फिर लौट आएगा। एक व्हील की तरह घूम रहा है।
वह जो अशोक चक्र है, वह असल में टाइम की ही हमारी धारणा है। समय घूम रहा है चाक की तरह। चूंकि चाक की तरह हमारी धारणा है समय की, इसलिए हममें हिस्टारिक सेंस नहीं है, क्योंकि जब चीजें बार-बार लौट ही आनी हैं तो कोई इवेंट हिस्टारिक नहीं है। हिस्टारिक इवेंट तभी होता है, जब वह अनरिपीटेबल हो। जैसे जीसस क्राइस्ट अब अनरिपीटेबल हों, तो हिस्टारिक पर्सनैलिटी हैं। लेकिन महावीर पहले भी हुए हैं अनेक बार, चौबीस तीर्थंकर जैनों के और आगे भी अनेक बार होंगे। हर कल्प में चौबीस तीर्थंकर होते रहेंगे। हर कल्प में राम और रावण होते रहेंगे।
तो हमारी जो धारणा है समय की, चक्रीय होने के कारण इतिहास का बोध पैदा नहीं हुआ--एक बात। इसलिए हमने इतिहास लिखा भी नहीं। हमने पुराण लिखा। पुराण का मतलब यह है कि जो सदा होता है, सनातन है। वह बार-बार होता रहा है,

होता रहेगा। इसलिए हमने इतिहास नहीं लिखा। इतिहास का मतलब है कि एक-एक इवेंट यूनीक है।
हिंदुस्तान में कोई इवेंट यूनीक नहीं है। इसलिए हमने कभी इतिहास नहीं लिखा। इतिहास का बोध पैदा नहीं हुआ। और क्रांति का कोई अर्थ ही नहीं है। क्रांति का अर्थ तभी है जब क्रांति इवेंट बन सके। जब सब चीजें फिर लौट कर आ जानी हैं, तो बदलने से भी क्या मतलब है? तो जो बदलने का ख्याल है कि चीजों को बदल डालो, अगर मुझे ऐसा पता लगे कि मैं कितना ही बदलूं, सब चीजें फिर वैसी हो जाएंगी, तो बदलने की क्षमता क्षीण हो जाएगी। रेनेसां न आने का एक कारण तो हमारा टाइम कांसेप्ट है, जो बहुत गहरा है। और अभी भी हमारा वह टाइम कांसेप्ट वही है। उसके बहुत कारण हैं कि वह टाइम कांसेप्ट क्यों बना। उसके बहुत कारण हैं।
पश्चिम का वेदर जो है, वह अनिश्चित है। पूरब का वेदर बिल्कुल सुनिश्चित है। और भारत की जो मौसम की व्यवस्था है, वह बिल्कुल सुनिश्चित थी, अभी धीरे-धीरे अनिश्चित हुई है, अन्यथा वह बिल्कुल सुनिश्चित थी। कब वर्षा आएगी, कब गर्मी आएगी, कब सर्दी आएगी, एक सर्किल में सब घूमता रहेगा। बच्चा जवान होगा, बूढ़ा होगा; एक सर्किल में सब घूमता रहेगा। सारी ऋतुएं सर्किल में घूम रही हैं। जीवन की उम्र ऋतुओं में घूम रही है। इधर जन्म के बाद जवानी है, फिर मृत्यु है और फिर जन्म है और फिर जवानी है और फिर मृत्यु है, और ऐसा सब घूम रहा है। पश्चिम का वेदर अनसर्टेन है, अनसर्टेन वेदर ने उन्हें सर्किल का ख्याल नहीं दिया। और हमारा वेदर बिल्कुल सर्टेन था। उसमें सब सुनिश्चित था। तारीखें तय थीं और वह सब तारीखों पर घूम रहा था। उस सुनिश्चित मौसम की ऋतुओं की व्यवस्था ने हमें एक ख्याल दिया घूमने का। पश्चिम में सब अनिश्चित था और अनिश्चित की वजह से एक ख्याल उन्हें आया कि घटना जो आज घट गई, जरूरी नहीं कि कल घटे। सब अनिश्चित हो तो ऐसा भाव पैदा होगा। इस भाव ने उन्हें टाइम की एक धारणा दी जो कि लाइन में, रेखा में सीधा जा रहा है। और हर घटना यूनीक हो गई।
इसने बड़ा कीमती काम किया--एक। इसने इतना बड़ा काम किया कि हमें परिवर्तन की आकांक्षा ही हममें न रही, क्योंकि परिवर्तन हमें दिखता ही न था। सब चीजें थिर थीं। स्टेंग्नेंट सोसाइटी पैदा होने का बहुत गहरे में कारण वह कि परिवर्तन दिखे तो हम परिवर्तन की आकांक्षा करें। जब परिवर्तन दिखता ही न हो कभी; सुबह सूरज उगता हो, सांझ ढल जाता हो, रोज सब वैसा ही होता हो, और सदियों तक वैसा ही होता रहता हो तो फिर स्टेग्नेंसी पैदा होगी। उससे रेनेसां असंभव हो गया--एक।
दूसरा एक कारण और हुआ। इसी सर्कुलर व्हील ने हमें एक और ख्याल दिया,
और वह ख्याल था अनंत जन्मों का, कि एक आदमी एक जन्म नहीं है, पिछले भी जन्म थे, आगे भी जन्म हैं। वह सर्किल की वजह से हुआ, क्योंकि सर्किल का ऑरा जो अभी ऊपर है, वह लौट कर फिर ऊपर आ जाएगा। तो अभी अगर मैं पैदा हुआ हूं और मर गया हूं, अगर जन्म के बाद मौत है तो मौत के बाद जन्म होना ही चाहिए। वह सर्कुलर ख्याल से पैदा हुआ।
पश्चिम में ख्याल है एक ही जिंदगी का। जो जूडो क्रिश्चिएन जो कांसेप्ट है, मोहम्मडन या क्रिश्चिएन, वह एक जन्म का है। एक जन्म की वजह से एक इंटेंसिटी पश्चिम में जीने की आई, जो हममें कभी भी नहीं आ सकी। एक शिथिलता रही है जिंदगी की कि जब फिर जन्म लेना है तो कोई हर्जा नहीं है। अगर आज गरीब हैं तो अगले जन्म में अमीर हो सकते हैं। अगर आज तकलीफ है तो अगले जन्म में तकलीफ मिट सकती है। लेकिन पश्चिम में एक इंटेंसिटी आ गई लाइफ में और ऐसा लगा कि यह तो अल्टिमेट जिंदगी है। अगर इस बार अमीर नहीं हो पाए तो फिर कभी नहीं होना है, क्योंकि मौत यानी एंड। उसके बाद कुछ उपाय नहीं है। तो अमीर होना है तो अभी होना है। प्रेम करना है तो अभी करना है। मकान बनाना है तो अभी बनाना है। एक-एक मोमेंट कीमती हो गया और इसलिए जिंदगी अगर कहीं भी अग्लि दिखाई पड़े तो उसे बदल डालना है, क्योंकि दुबारा तो जिंदगी मिलनी नहीं।
इधर एक रिलैक्स्ड माइंड है इस मुल्क का। वह यह कह रहा है कि कोई फिकर नहीं। इतनी लंबी बार हम पैदा हुए हैं, इतनी बार प्रेम किया है कि अगर यह

औरत इस बार न मिली, अगली बार खोज लेंगे। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? मैं यह कह रहा हूं, यह नहीं कह रहा हूं कि कांसेप्ट गलत है। मैं यह कह रहा हूं कि इसकी वजह से--यह मत समझ लेना आप कि मैं यह कह रहा हूं कि यह अनंत जन्मों का कांसेप्ट गलत है, यह मैं नहीं कह रहा हूं।
अनंत जन्मों के कांसेप्ट के पैदा होने की वजह से रेनेसां असंभव हो गया। परिवर्तन, रिवोल्यूशन का ख्याल असंभव हो गया। रेवोल्यूशन वे लोग करते हैं जिनकी जिंदगी में त्वरा है, इंटेंसिटी है। हम एवोल्यूशन के विश्वासी बन गए, क्योंकि त्वरा का कोई सवाल नहीं है। ग्रेजुअल डवलपमेंट है, जो हो रहा है। और इतना लंबा है कि उसमें कोई जल्दी का कारण नहीं है। इसलिए जिसको स्पीड कहें, वह हम पैदा न कर पाए। बैलगाड़ी चल रही है, तो हमें कोई कठिनाई नहीं हुई इससे। उसका कारण है कि हमारे माइंड में स्पीड के लिए जगह नहीं है। इतना ग्रेजुअल ग्रोथ के लिए हम तैयार हैं। हम बेफिक्र हैं। जैसे हम यहां बैठे हैं और मुझे पता है कि कल भी है, कल भी बात कर लेंगे आपसे। लेकिन मुझे पता है कि यह रात आखिरी है, शाम आखिरी है, तो बात कर ही लेनी है, तो एक इंटेंसिटी आएगी।
पश्चिम में जूडो क्रिश्चिएन जो ख्याल पैदा हुआ एक ही जन्म का, उसने एक इंटेंसिटी दी पश्चिम को और लिविंग को एक अर्थ दिया, जो हमारी लाइफ को कभी भी नहीं हो सकता। इसलिए स्पीड पैदा हुई, टेक्नालॉजी आई। और सब चीजें अगर गलत हैं तो अभी बदल डालो, इसकी जल्दी आई। यानी ऐसा नहीं है कि कल बदल लेंगे। क्योंकि कल का कोई भरोसा नहीं है। कल मैं नहीं रहूं, यह हो सकता है। तो पश्चिम में इन दो बातों के जोर के प्रभाव में रेनेसां संभव हो गया। वह पूरब में संभव नहीं हो सका।

प्रश्नः जूडो क्रिश्चिएन जो ट्रेडीशन था, उसका विकास भले ही यूरोप में हुआ हो, लेकिन उसका जन्म जो है, वह मिडिल ईस्ट है।

वह कहीं भी हो, यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं, वह कहीं भी हो, उसका जो प्रभाव-क्षेत्र है, उस प्रभाव-क्षेत्र के माइंड को एक दूसरा मौका मिला। वह प्रभाव-क्षेत्र भारत नहीं है। भारत एक दूसरे प्रभाव-क्षेत्र में है, जहां अंतहीनशृंखला का ख्याल है। वह गलत है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। वह ख्याल सही हो सकता है और क्रिश्चिएन ख्याल गलत ख्याल है। और मैं निकल कर बाहर चला जाऊं और बाहर मैं देखूं, सूरज निकला है, फूल खिले हैं और मैं उसी कमरे में बैठा गुजार देता, हालांकि वह ख्याल का कोई मतलब न था, लेकिन बाहर तो फूल खिले थे, वे मुझे मिल गए? कई दफा जरूरी नहीं है कि सत्य सिद्धांत ही जिंदगी को गति में ले जाएं। हां, असत्य सिद्धांत भी जिंदगी को गति में ले जा सकते हैं।

प्रश्नः आपने जो बात कही उसका मतलब यह हुआ कि आपका जो सारा आर्ग्युमेंट है वह हिजिंस ऑन क्लाइमेटिक कंडीशंस?

बहुत सी बातों पर है। उतने पर भी नहीं। उतने पर ही नहीं, बहुत सी बातों पर, बहुत सी बातों पर। असल में...

प्रश्नः क्योंकि अगर ऐसा हो तब तो--वी आर एज ए पीपुल रिटेन ऑफ फॉर एवर।

यह मैं नहीं कह रहा, यह मैं नहीं कह रहा। अगर हमें यह बोध आ जाए, अगर हमें यह बोध आ जाए और हम समझ लें कि हमारी धारणाओं को बनने में इन चीजों ने हाथ बंटाया, तो हम नई धारणाएं विकसित कर सकते हैं। अगर हमें यह ख्याल न आए तो रिटेन ऑफ हो जाते हैं। और यह हमें ख्याल अब तक नहीं आया। और हर्ष इत्यादि से कुछ लेना-देना नहीं है। और वह अगर हमको ख्याल आता भी रहे तो कुछ फर्क न पड़ेगा।
यानी मैं यह कह रहा हूं कि अगर हमारा टाइम कांसेप्ट हम बदलने को तैयार हों तो आज रेनेसां आ जाए। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? तो टाइम कांसेप्ट

बदलने में कोई वजह नहीं। इस वजह से हमें एक तरह का टाइम कांसेप्ट मिला। यह बिल्कुल इंसिडेंटल, कोइंसिडेंटल बात है। पश्चिम को वह टाइम कांसेप्ट नहीं मिला। इसलिए पश्चिम ने एक तरह की जिंदगी जी, हमने एक तरह की जिंदगी जी। और कुछ न पूछो, क्योंकि इतने लंबे मामले हैं कुछ नहीं कहा... जैसे आज है हालत--आज हालत यह है कि अगर दुनिया में एटामिक वॉर हो तो संभावना इस बात की है कि सिर्फ एशिया और अफ्रीका के लोग ही बच पाएंगे। यानी मैं यह कह रहा हूं कि यह मामला इतना जटिल है, अगर आज एटामिक वॉर हो, तो सिर्फ विलेजेज बच पाएंगे, सिटीज तो नष्ट हो जाएंगी। लंदन तो नहीं बच सकता, न्यूयार्क तो नहीं बच सकता; अमरीका की कोई सिटी नहीं बच सकती। अगर एटामिक वॉर हो जाए तो यह मजे की बात है कि हो सकता है, बस्तर के निवासी बच जाएं।
अगर एटामिक वॉर हो जाए दस साल के भीतर, तो सिर्फ पूरब के एकदम ही अविकसित लोग बचेंगे। और हो सकता हैः वे कहें कि यह तो बहुत अच्छा हुआ; हम बचे और वे मूरख सब मर गए! उसका कारण यह होगा कि पश्चिम ने जो विकास किया साइंस का, उसने सब सिटिज बना दी; विलेजेज विदा हो गए। तब पीछे इतिहास लिखने वाला यह कह सकता है कि भारतीयों की धारणा बड़ी अच्छी थी। छोटे गांव में रहना, बड़ी मशीन न लाना। क्योंकि ये देखो, बच गए, और पश्चिम पूरा मर गया। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि जिंदगी इतनी इंटररिलेटेड है कि कुछ नहीं कहा जा सकता। हम सिर्फ तथ्य की बात कर सकते हैं। तथ्य यह है। मैं इसमें जजमेंट नहीं दे रहा। तथ्य यह है कि भारत में ऐसा हुआ, टाइम कांसेप्ट सर्कुलर बना। पश्चिम में लिनियर बना।

प्रश्नः और यह क्लाइमेट होते हुए भी विचार की मदद से हम बहुत कुछ कर सकते हैं।

बिल्कुल कर सकते हैं।

प्रश्नः इंस्पाइट ऑफ क्लाइमेट।

हां-हां, क्लाइमेट अब कुछ बाधा नहीं है। क्लाइमेट तभी तक बाधा थी, जब
तक हम दूसरे विचारों से अपरिचित थे। तब तक कोई उपाय ही न था। करते भी क्या हम? भारत एक कुएं में बंद था। भारत का विचारक वही कर सकता था, जो उसे दिखाई पड़ रहा था। उसी हिसाब से जी सकता था। लेकिन आज जब हम सारी दुनिया के कल्चर्स के करीब आए तो पहली दफे पता चला, तो पहली दफे पता चला कि और ढंग के विचार भी हो सकते हैं। यह भी सारी दुनिया के संपर्क-बोध का परिणाम है। वह नहीं था पहले, आज संभव हो गया।
आज अगर हमें टेक्नालॉजी विकसित करनी है तो हमें सिर्फ पश्चिम से टेक्नालॉजी उधार नहीं लेनी पड़ेगी, उनका टाइम कांसेप्ट भी लेना पड़ेगा। और अभी हम क्या कर रहे हैं? अभी हम एक बेईमानी में लगे हैं। अभी हम यह कहते हैं कि कल्चर तो हम हमारा रखेंगे, और टेक्नालॉजी तुम्हारी ले लेंगे। और हमें पता नहीं है कि हमारा जो कल्चर है, उसमें वह टेक्नालॉजी फिट होने वाली नहीं है। हम यह कहते हैं कि हम अपना अध्यात्म तो अपना रखेंगे, हम तुमसे साइंस ले लेंगे। केमिस्ट्री तुम्हारी पढ़ लेंगे, फिजिक्स तुम्हारी पढ़ लेंगे, लेकिन आत्मा-परमात्मा की हमारी जो धारणा है, वह हम अपनी रखेंगे। मेरा अपना मानना है, इन दोनों के बीच में इनकंसिस्टेंसी है, क्योंकि हमारी जो धारणाएं हैं, या तो उन धारणाओं का टूटना हो जाएगा साइंस के आते ही, और या फिर हम साइंटिफिक न हो पाएंगे, उन धारणाओं को बचाना है तो।

प्रश्नः प्रोफेसर गैलब्रेथ जो हैं, उन्होंने एक रिव्यू लिखते हुए "एनकाउंटर" में कुछ अर्से पहले ऐसा लिखा था कि जापान में क्या हुआ कि वे लोग गुलाम नहीं थे पोलिटिकली, और पश्चिम का जब आक्रमण आया, पश्चिम की हवा जब आई, तो उन लोगों के पास टाइम था चूज करने को--टु पिक एण्ड चूज। तो उन लोगों ने ऐसा पसंद किया कि भई अपना कल्चर, भाषा वगैरह जो है वह तो हम अपनी रखेंगे, लेकिन इनकी टेक्नालॉजी जो है उसकी हम कापी कर लें और वह मास्टर कर

लें। जब कि हिंदुस्तान के बारे में यह हुआ कि मुगल साम्राज्य के पतन के बाद जब ब्रिटिशर्स आए तो हिंदुस्तान के लोगों को ऐसा लगा कि यही लॉजिकल कांसिक्वेंस हो सकता है कि यह मुगल साम्राज्य खतम हुआ और दूसरा इससे भी बड़ा साम्राज्य जो मिलेटरीली, पोलिटिकली, कल्चरली ज्यादा सुपिरियर है, वह आया। और उन्होंने सबमिट कर दिया और उनके पास वह पिक ए चूज का कोई टाइम ही नहीं रहा। तो इसी वजह से हमारी जो सब बिहेवियर है वह हॉफ हार्टेड है, किसी भी बात में क्लेरिटी नहीं है। और गैलब्रेथ ने एक वह एग्जांपल, एक उदाहरण भी दिया कि बहुत ही ऐसे बड़े-बड़े ऑफिसर्स, सिविल सरवेंट्स को मैं जानता हूं हिंदुस्तान के कि जिनके बारे में जिनकी इंटेलेक्चुअली क्लेरिटी, काम्पिटेंस वगैरह देख कर मुझे बहुत सम्मान होता है, और फिर दो-तीन साल के बाद अचानक मुझे पता चलता है कि वह आदमी तो ज्योतिष में विश्वास करता है, तो यह सब कुछ हॉफ हार्टेड है।

इसका कारण गैलब्रेथ जो कहते हैं वह नहीं है। इसका कारण वह नहीं है। असल में अगर हिंदुस्तान में बुद्ध सफल हो गए होते तो जो जापान में संभव हुआ वह हिंदुस्तान में भी हो जाता। उसका कारण गैलब्रेथ जो कहते हैं वह नहीं है। उसका कारण यह है कि बुद्ध ने एक नया ख्याल दिया। हिंदुस्तान का ख्याल है बीइंग का। बीइंग हमेशा स्टेटिक है, ब्रह्म का ख्याल है। जो हमेशा ठहरा हुआ है, उसमें कोई विकास नहीं होता; उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। वह जैसा है, वैसा है। हमारा जो ख्याल है, हमारा जो सेंट्रल आइडिया है पूरे भारतीय दर्शनों का, वह एक थिर सत्य है, शाश्वत, सनातन सत्य।
बुद्ध ने एक ख्याल दिया बिकमिंग का। बुद्ध ने कहा, सनातन और शाश्वत कुछ भी नहीं है। परिवर्तन ही एकमात्र शाश्वत सत्य है, कांसटेंट चेंज ही सत्य है। और बुद्ध टिक न सके। बुद्ध को हमने उखाड़ फेंका इस मुल्क से, क्योंकि हमारी पूरी धारणा के खिलाफ पड़ा था यह, यह परिवर्तन का ख्याल। चीन और जापान ने बुद्ध को स्वीकार कर लिया। बुद्ध की स्वीकृति के साथ ही परिवर्तन स्वीकृत हो गया। और जब पश्चिम से आई हवा तो जापान परिवर्तन के लिए तैयार था।
परिवर्तन उनकी फिलासफी हो गई, क्योंकि बुद्ध ने कहा, एवरीथिंग इ.ज इन कांसटेंट फ्लक्स। सब चीजें परिवर्तित हो रही हैं। और जो पकड़ने की कोशिश करेगा कि कुछ रुक जाए, वह मर जाएगा। रुक कुछ सकता ही नहीं। गंगा बह रही है, बही जा रही है। कल जो गंगा थी वह आज नहीं है। तो जापान के माइंड में बिकमिंग का ख्याल था और हिंदुस्तान के माइंड में बीइंग का ख्याल था। तो जापान तो फौरन एब्जार्ब कर गया। उसने कहा, परिवर्तन तो जीवन है। तो वह बदलने के लिए तैयार था।
हमने कहा जीवन तो सनातन और शाश्वत सत्य है। तो हम उसे बदल नहीं सकते।
हम तो वही रहेंगे, जो हम थे। हमने पूरी कोशिश की कि हम वही रहें, जो हम हैं।
मुगलों के आने पर भी हमने कोशिश की कि हम वही रहें जो हम हैं। हमने इस्लाम से कुछ भी नहीं सीखा। सीखा ही नहीं। इस्लाम से बहुत कुछ सीखा जा सकता था।
लेकिन हमने कहा, हम जो हैं वही रहेंगे। परिवर्तन को हम मानते नहीं। तो हमने इस्लाम को बाहर रखा। उसको म्लेच्छ कह कर दरवाजे के बाहर खड़ा कर दिया। उसे हमने भीतर प्रवेश नहीं करने दिया। उससे हम कुछ सीख सकते थे, क्योंकि वह जूडो-क्रिश्चियन ट्रेडीशन ला रहा था इस मुल्क में, और इस मुल्क के अमन को बहुत कुछ कीमती चीजें दे सकता था जो हमने बंद कर दीं।
अच्छा, कठिनाई यह थी कि इस्लाम जब इस मुल्क में आया, तो जिनके हाथ से आया, वे हमसे बहुत गरीब और पिछड़े हुए लोग थे। कल्चरली वे हमसे पिछड़े हुए लोग थे, नोमेड्स थे, भगोड़े थे, खानाबदोश थे, हमसे पिछड़े हुए थे; तो कल्चरली हमारा अहंकार भारी था। हमने उनसे सीखने का सवाल ही नहीं उठाया। इस्लाम ने हमसे बहुत कुछ सीखा हिंदुस्तान में। हमने उनसे कुछ नहीं सीखा, हमने दरवाजा बंद कर दिया। क्योंकि हमसे पिछड़े हुए लोगों से अगर जीत भी गए थे तो कोई बात नहीं। हमारा भाग्य है कि हम गुलाम हो गए, लेकिन कल्चरली तो हम ऊपर थे। हमने मुसलमान से कुछ न सीखा।

फिर अंग्रेज आए। अंग्रेज के साथ भी हमने सीखने में बहुत जद्दोजहद की। हमने सीखना नहीं चाहा, हमने सब तरफ से उपाय किए। वह तो अंग्रेज की जबरदस्ती थी कि उसने हमें सिखाने की कोशिश की। मुसलमान ने हमें कभी सिखाने की भी फिकर नहीं की; इसलिए मुसलमान का एंपायर भी ज्यादा दिन टिका। और अंग्रेज अपनी ही भूल से मरा, क्योंकि जो उसने हमें सिखाया, वही उससे लड़ने का कारण बना। नहीं तो हम उससे लड़ते भी नहीं कभी।
अंग्रेज यहां हजार साल तक हम पर हुकूमत कर सकता था, अगर उसने हमें कुछ सिखाने की कोशिश न की होती। तो हम उससे भी दूर खड़े रहते। हम अपने में जीते रहते, वह हुकूमत करता रहता। अंग्रेज ने हमें सिखाने की कोशिश की और उसका कारण यह था... । और मुसलमान ने हमें सिखाने की कोशिश नहीं की, क्योंकि वह पिछड़ा हुआ कल्चर था।
अंग्रेज जब आया तो वह हमसे सुप्रीम कल्चर था। सब हालतों में वह हमसे आगे था--धन में, ताकत में, सौंदर्य में, स्वास्थ्य में, सबमें आगे था, ऊंचाई में, सब में आगे था। वह जब आया तो वह गौरवांवित था। उसने हमें, न केवल हुकूमत करना चाही, बल्कि हमको शिक्षित भी करना चाहा। शिक्षित करने का मतलब था कि वह टीचर होने की हैसियत रखता था। वह समझता था कि इनको सिखाना है, इनको कल्चर्ड करना है, सिविलाइज करना है। उसने हमें सिखाने की कोशिश की।
उसकी सिखाने की कोशिश में हमने रेसिस्टेंस किया। हमने सब तरह से विरोध किया कि हम सीखने से बच जाएं। अगर हमने सीखा भी तो मजबूरी में सीखा, इसलिए हॉफ हार्टेड हो गए। क्योंकि हम सीखने को तैयार कभी भी न थे, इसने हमें जबरदस्ती सिखाने की कोशिश की। हम सीखना न चाहते थे, लेकिन स्थितियों ने मजबूर किया कि नौकरी न मिलेगी, यह न मिलेगा, वह न मिलेगा। हमको सीखना पड़ा। लेकिन हॉफ-हार्टेड हमने सीखा। तो हम भीतर से वही बने रहे।
हमने ऊपर से टाई लगा ली और भीतर जनेऊ डाले रहे! इधर हमने टाई भी दिखला
दी कि हम बिल्कुल सीख गए हैं, हम साहब हैं। भीतर हमने जनेऊ भी रखा है। बाथरूम में हमने कान पर जनेऊ चढ़ा कर एकांत में अपनी पेशाब भी कर ली। हमने दोनों काम सम्हाल लिए। हम भीतर से पक्के वही रहे, जो हम थे। तुम हमको क्या बदलोगे? और बाहर से हमको बदलना भी पड़ा, क्योंकि बिना बदले जीना मुश्किल हो गया। इसलिए एक डिवाइडेड माइंड हिंदुस्तान में पैदा हो गया। वह जापान में नहीं हुआ। जापान परिवर्तन के लिए तैयार हो गया।

प्रश्नः एक वैल्यू जजमेंट का सवाल पूछूं, कि यह सब बातों से क्या आप ऐसा कुछ वैल्यू जजमेंट करने के लिए तैयार होंगे, जो हिंदू कल्चरल ट्रेडीशन है वह जूड़ो-क्रिश्चियन ट्रेडीशन या इस्लामिक ट्रेडीशन से इनहेरेंटली इनफीरियर है?

नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि जूडो-क्रिश्चियन कल्चर से टेक्नालॉजी विकसित हो सकती है।

प्रश्नः यूस्फुलनेस उसकी साबित हो सकती है?

अभी, अभी, लेकिन पच्चीस साल बाद क्या होगा, कहना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जितनी टेक्नालॉजी विकसित हुई, उतना मेंटल टेंशन विकसित हो गया साथ में। और अब उनका आदमी आज यहां गुरु खोजने आ रहा है पूरब में। मैं आपसे यह कह रहा हूं, ये दोनों कल्चर अलग हैं। इन दोनों की इनहेरेंट पोटेंशियलिटी अलग है। मैं वैल्यू जजमेंट नहीं देता। मैं यह कहता हूं, पश्चिम के कल्चर से टेक्नालॉजी विकसित हो सकती है, लेकिन मेंटल पीस नहीं। पूरब के कल्चर से मेंटल पीस विकसित हो सकती है, लेकिन टेक्नालॉजी नहीं। और इसलिए अब हालत... अभी हम पीड़ित हैं। लेकिन पचास वर्ष में सारा पश्चिम पूरब की तरफ देखने लगेगा कि योग क्या है? मेडिटेशन क्या है? ध्यान क्या है? क्योंकि हम मरे जा रहे हैं, क्योंकि अकेली टेक्नालॉजी को क्या करिएगा? मैं यह कह रहा हूं, ये दोनों कल्चर बेसिकली अधूरे हैं। उससे सिर्फ टेक्नालॉजी

विकसित होती है, इससे सिर्फ स्प्रिचुअलिटी विकसित होती है। और इसलिए भविष्य का कल्चर कुछ ऐसा होगा जो पश्चिम के कल्चर से टेक्नालॉजी ले लेगा और पूरब के कल्चर से स्प्रिचुअलिटी ले लेगा। तो भविष्य का कल्चर एक अर्थ में यूनिवर्सल और टोटल हो सकेगा। मैं इसमें तौल नहीं करता। मैं तौल इसलिए नहीं करता...

प्रश्नः आपने यह जो मिश्रण किया दो बातों का, वह तो बहुत अच्छा है, लेकिन इसमें मेंटलिटी ऐसी लगती है शायद कि हैविंग द बेस्ट ऑफ बोथ द वर्ड्स।

नहीं, यह सवाल नहीं है, यह सवाल नहीं है, यह सवाल नहीं है। असल में उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है; उसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। आज पश्चिम का जो श्रेष्ठतम मस्तिष्क है उसकी एक ही चिंता है कि टेक्नालॉजी ने जो दुनिया पैदा कर दी है, उससे आदमी को कैसे बचाएं? सारे श्रेष्ठतम मस्तिष्क की एकदम एक ही चिंता है कि टेक्नालॉजी ने एक दुनिया बना दी है, उससे आदमी को कैसे बचाएं? कि आदमी उसमें खो न जाएं? और पूरब की एक ही चिंता है कि एंटी- टेक्नालॉजी ने जो दुनिया बनाई है उसमें कहीं आदमी मर न जाए? न रोटी है, न खाना है, पीना है--कहीं आदमी खतम न हो जाए?
दोनों ट्रेडीशंस उस जगह पहुंच गई हैं, जहां आदमी खतम हो सकता है विभिन्न मार्गों से।

प्रश्नः डेड एण्ड आ गया है।

हां, डेड एण्ड आ गया है। और इसलिए अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है कि
हम सोचें कि एक कांप्लिमेंटरी कल्चर कैसे विकसित हो सकता है, जिसमें हम दोनों बातों की फिकर रख सकें कि टेक्नालॉजी बाहर के जगत को सम्हाल सकें, क्योंकि उसके सिवाय कोई सम्हाल नहीं सकता--और भीतर के जगत को सम्हालने के लिए भी एक रिलीजस माइंड पैदा कर सकें। अब तक यह संभव नहीं था कि दोनों मिलें। अब ये मिल सकते हैं। क्योंकि दोनों की इनहेरेंट अधूरापन सिद्ध हो गया है। अब तक यह कभी सिद्ध ही नहीं हुआ था।
दोनों का ख्याल था कि हम पूरे हैं। पश्चिम तीन सौ साल में बड़े गर्व से भरा हुआ था कि साइंस जो है वह लास्ट वर्ड है, अब इसके आगे कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन वह गर्व एकदम खंडित हो गया। वह एकदम गर्व नीचे गिर गया है। हिंदुस्तान भी तीन हजार साल से इसी गर्व से भरा हुआ था कि स्प्रिचुअल इ.ज लास्ट वर्ड है, लेकिन हमको भीख मांगनी पड़ गई; वह गर्व एकदम खंडित हो गया।
दोनों कल्चर का अधूरा जो अहंकार था, वह खंडित हो गया। इससे एक उपाय बनता है अब कि कम्युनिकेशन हो सकता है दोनों के बीच।

प्रश्नः इसका मतलब यह हुआ कि द वेरी लॉजिक ऑफ द सिचुएशन।

हां, वेरी लॉजिक ऑफ द सिचुएशन।

प्रश्नः वी विल कंपेल।

हां, बिल्कुल ही कंपेल। कंपेल ही करने वाली बात है। कंपेल ही करेगी।
पूरब को सीखना ही पड़ेगा पश्चिम से सारा विज्ञान और अपने भीतर उन धारणाओं को जगह देनी पड़ेगी जिनसे विज्ञान विकसित हो सके। और पश्चिम को पूरब से सीखना ही पड़ेगा अध्यात्म।

प्रश्नः शांति जो है मन की, उसके लिए ईश्वर का ख्याल जरूरी है?

नहीं; बिल्कुल नहीं। असल में मन शांत हो तो ईश्वर का ख्याल आना शुरू होता है। ईश्वर के ख्याल के लिए शांति जरूरी है।

प्रश्नः लेकिन वह जो सहारा ढूंढने की जो हमारी जरूरत होती है।

वह अशांत चित्त की व्यवस्था है--वह अशांत चित्त की है। और अशांत चित्त ईश्वर को कभी नहीं जान सकता।

प्रश्नः आप जिस तरह की धर्म की बात करते हैं, वह धर्म से रिचुअल, मिथ वगैरह सब बातें उसमें नहीं होती हैं?

नहीं, बिल्कुल नहीं होती हैं।

प्रश्नः अब, आजकल कुछ ऐसा ख्याल है, जैसा कि सुजान लेंगर ने कहीं लिखा
है कि माइंड का एक फंक्शन है बेसिक सिंबल मेकिंग का। और वह सिंबल मेंकिंग का फंक्शन, वैसी इंडस्ट्रीयल सोसाइटी में जहां रिचुअल्स नहीं होते, जहां मिथ नहीं होती, वहां आदमी को बहुत बेरननेस वीरान जैसा लगता है और आदमी पागल सा हो जाता है। तो उसका कहना यह है कि कुछ प्रॉब्लम आजकल ऐसा है कि क्या हम रिचुअल के बिना, सिंबल्स के बिना, मिथ के बिना जी सकेंगे? अब कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि यह सब पोएटिक नानसेंस हैं सब ये।

नहीं, नहीं, पोएटिक नानसेंस जरा भी नहीं है, और हम सिंबल और रिचुअल के बिना जी भी नहीं सकते। लेकिन अतीत के रिचुअल और सिंबल हमारे भविष्य में काम नहीं पड़ने वाले हैं। भविष्य नये सिंबल और नये रिचुअल खोजेगा। लेकिन, अब मेरी दृष्टि जो है--रिलीजस माइंड का रिचुअल से कोई संबंध नहीं है। रिलीजस माइंड रिचुअल से बिल्कुल मुक्त हो जाता है। रिलीजस माइंड का कोई संबंध नहीं है रिचुअल से। लेकिन साधारण मन का रिचुअल से बड़ा संबंध है; बड़ा संबंध है। साधारण माइंड बिना रिचुअल के नहीं जी सकता।

प्रश्नः अब जैसे यह "साधारण" शब्द आप उपयोग करते हैं...

साधारण का मेरा मतलब यह है कि जो रिलीजस नहीं है। और किसी अर्थ में साधारण नहीं कह रहा हूं। साधारण इस अर्थ में कि जो अभी रिलीजस नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि कुछ मैं लोअर कर रहा हूं उसको। बहुत इंटेलेक्चुअल आदमी हो सकता है, वह रिलीजस नहीं है। यह जो आदमी है...

प्रश्नः नहीं, मेरा ख्याल इतना है, मेरा जो मतलब है कि यह एब्स्ट्रेक थिकिंग की कैपेसिटी कुछ लोगों में होती है, कुछ में नहीं होती।

नहीं, यह सवाल नहीं रिलीजस का। रिलीजस मैं उस आदमी को कह रहा हूं, रिलीजस उस आदमी को कह रहा हूं जो टोटल लिविंग जी रहा है--न शरीर को इनकार करता है, न मन को इनकार करता है, न आत्मा को इनकार करता है; इनकार करता ही नहीं। जो सब तलों पर इकट्ठा जीने का संयोग खोज रहा है। रिचुअल जरूरी रहेगा, सिंबल जरूरी रहेगा, लेकिन भविष्य के सिंबल--स्कल्पचर, आर्ट, पेंटिंग और काव्य के सिंबल होंगे, रिलीजन के नहीं। जैसे कि आदमी को मूर्ति बनाना है, मैं मानता हूं कि कुछ लोग बिना मूर्ति बनाए तृप्त नहीं हो सकते और कुछ लोग बिना मूर्ति देखे तृप्त नहीं हो सकते हैं। लेकिन मूर्ति राम की या हनुमान की हो, यह जरूरी नहीं है। और भविष्य की मूर्ति राम और हनुमान की नहीं होगी, लेकिन मूर्ति तो बनती रहेगी। लेकिन तब रिलीजन से हट कर वह आर्ट का सिंबल होगा।
और मेरा मानना है कि खजुराहो या अजंता या एलोरा में जिन्होंने मूर्तियां खोदी हैं, उन्होंने सिर्फ रिलीजन के नाम पर आर्ट का काम किया है, और कोई उपाय न था पिछले दिनों में, कोई मार्ग न था। एक मंदिर पर ही मूर्ति खुद सकती थी, क्योंकि मंदिर पर ही लोग खर्च कर सकते थे! एक आर्टिस्ट के लिए मुसीबत थी कि वह क्या करे? तो मजबूरी उसको यहां तक की थी, उसको

सेक्स की तो, मैथुन की तो प्रतिमा खोदनी है, लेकिन मंदिर पर ही खोदी जा सकती है, और कहीं उपाय न था। और कहीं कोई पैसे देने को राजी नहीं था, कोई खर्च करने को नहीं था। तो उसने मंदिर पर मैथुन की प्रतिमा भी खोद दी है। लेकिन जैसे-जैसे हमारा मन आगे बढ़ेगा, विकसित होगा, वैसे-वैसे आर्ट, पोएट्री उसमें सिंबल्स जगह लेना शुरू करेंगे। फिल्म है, वह भी सिंबल है। नये डरमा होंगे, नई कविताएं होंगी, और शायद हम नये डाइमेन्शंस में और नई चीजें खोज लेंगे जो कि काम करेंगी। जैसे कि समझ लीजिए कि एक जंगली जाति है, वह भगवान को बीच में रख कर चारों तरफ नाच रही हैं। अब उस भगवान को व्यर्थ रखना है, लेकिन उसके लिए बिना उसके नाचना मुश्किल है। अगर हम बिना उसके नाच सकते हैं, तो उसको विदा कर सकते हैं। नाच जारी रहेगा।

प्रश्नः आज का जो पश्चिम का समाज है, इंडस्ट्रियल सोसाइटी को जो टेंशंस हैं, वहां क्या आपको लगता है कि पिछले सौ दो सौ साल में पश्चिम ने अपने नये सिंबल्स ढूंढ लिए हैं?

ढूंढ रहे हैं, बिल्कुल ढूंढ रहे हैं। पिकासो नये सिंबल्स ही खोज रहा है। सारी पश्चिम की पेंटिंग नये सिंबल्स खोज रही है, पोएट्री नये सिंबल्स खोज रही है। और इतने नये खोज रही है, जितने हमने कभी भी न खोजे थे। और इसलिए पुरानी सोसाइटी के आदमी को समझ के ही बाहर है कि यह क्या मामला है? यह कैसा चित्र? वह नई इंडस्ट्रियल सोसाइटी नये सिंबल्स खोज रही है। टेक्नालॉजीकल सोसाइटी नये सिंबल खोज रही है। सिंबल्स तो हम खोजते रहेंगे। यह तो जारी रहेगा।
लेकिन धर्म का सिंबल से कुछ लेना-देना नहीं है, रिचुअल से कुछ लेना- देना नहीं है। रिचुअल तो हम खोजते रहेंगे। जब आप रास्ते पर मुझे मिलते हैं और हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हूं, वह भी रिचुअल है। रात जब आप बिस्तर पर जाते हैं और एक सिगरेट पीते हैं और बिस्तर पर लेटते हैं, वह भी रिचुअल है। बिना सिगरेट पीए आप न सो सकेंगे। एक छोटा बच्चा है, वह अपना अंगूठा मुंह में देकर सो जाता है तो नींद आ जाती है। अंगूठा बाहर खींच लो उसकी नींद टूट जाती है। वह भी एक रिचुअल है उसका। वह अपना रिचुअल रोज पूरा कर लेता है। अंगूठा मुंह में दिया कि रिचुअल से एसोसिएशन--नींद आ गई। आपने एक सिगरेट पी ली, नींद आ गई। एक आदमी ने एक भजन कर लिया, नींद आ गई। किसी ने एक माला फेर ली और नींद आ गई। ये सब रिचुअल हैं।

प्रश्नः कल आपने कहा था कि एक कैपिटलिज्म के फर्म बेस के... कैपिटलिज्म के एक सॉलिड फाउंडेशन के बिना समाजवाद की कल्पना करना व्यर्थ है, क्योंकि इसका मतलब फिर अब यह होगा कि गरीबी का बंटवारा। तो इसमें कुछ ऐसा लगा कि इकोनॉमिक डवलमेंट में आप स्टेजिस विज्युलाइज करते हैं।

बिल्कुल ही।

प्रश्नः तो इसी तरह से मैं इसको थोड़ा एक्सटेंड करना चाहता हूं--कि जैसे कि हमारा जो राष्ट्र है, वह अभी बाईस-तेईस साल से बना है। और हम देखते हैं कि राष्ट्र की जो फीलिंग होती है--राष्ट्रीयता; वह हमारे लोगों में बहुत कम है, लोकल लॉयल्टीज ज्यादा हैं। तेलंगाना जैसी मूवमेंट भी हो सकती है, वगैरह। तो क्या यह जरूरी होगा कि हम लोग अभी पच्चीस-पचास साल इंटेंसली पहले राष्ट्रीय होना सीखें, इसके बाद इंटरनेशनलिज्म की बात करेंगे?

यह बात सच है।

प्रश्नः उसी के साथ दूसरी बात भी कि पश्चिम में रिअलिस्टिक जो आर्ट है, उसमें एक हद तक वे लोग पहुंचे हैं। बहुत से क्लासिक मास्टर पीसेस उनके बने, और वहां के आर्टिस्टों को और शायद वहां के वाचक वगैरह भोक्ताजन जो हैं उनको भी लगता है कि अब बहुत हो गया यह रियलिस्टिक। रिप्रेजेंटेंशनल

आर्ट तो गई अब, रिअलिज्म भी गया। अब कुछ ज्यादा एब्सट्रेक्ट होना चाहिए। अब हमारे यहां के कलाकार जो हैं, लेखक और चित्रकार वे भी वैसा ही मानते हैं कि भई रिअलिज्म तो, क्या अब तो यह पुरानी बात हो गई। और हम भी एब्स्ट्रेक्ट ही बनाएंगे। लिखने-पढ़ने और लिट्रेचर में भी हमारे यहां हर एक लिंग्विस्टिक रिजनल लैंग्वेज में ऐसा होता है कि सब जगह जो आवाज, जो नये लेखक हैं छोटी पीढ़ी के, वे अवांगर्ड बनने की कोशिश करते हैं। लेकिन कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि इसमें कुछ फोनी हैं, इंपोर्टेड हैं, इमिटेशन हैं, इमिटेटिव हैं। क्योंकि हमने अभी वह अपना रियलिस्टिक आर्ट में कुछ काम किया ही नहीं, तो हमारे लिए कोई ऐसा कारण नहीं है ऐसा महसूस करने का--दैट वी हैव आउट ग्रोन रिएलिस्टक आर्ट, एण्ड वी जंप स्ट्रेट टू द एब्स्ट्रेक्ट आर्ट। तो क्या इस तरह के स्टेजेज में विचार करना राष्ट्रीयता के बारे में या कला के बारे में या इकोनॉमिक डवलपमेंट के बारे में क्या सही होगा?

हां, सही होगा। असल में, दो बातें ख्याल लेनी चाहिए। एक तो यह कि अगर
सच में ही पिछली स्टेज पूरी नहीं की गई है, तो अगली स्टेज फोनी मालूम पड़ेगी; फोनी होगी ही। उसमें प्राण नहीं हो सकते, क्योंकि उसमें जो प्राण आते हैं, वह पिछले स्टेज से ही आते हैं। अगर रिअलिज्म से लोग ऊब गए हैं तो ही एब्सट्रेक्ट आर्ट में रस ले पाते हैं। अगर रिअलिज्म से नहीं ऊबे हैं, तो एब्सट्रेक्ट आर्ट उन्हें अर्थहीन होता है, उसमें कोई रस ले ही नहीं पाते। यानी एब्सट्रेक्ट आर्ट में रस लेने के लिए रिअलिज्म से ऊब जाना जरूरी शर्त है और रिअलिज्म को आउट-ग्रो कर जाना जरूरी शर्त है।
यह भी बात सच है कि जो लोग अभी राष्ट्रीय ही नहीं है, वह अंतर्राष्ट्रीय होना उनका बहुत कठिन है। क्योंकि अभी जो तेलंगाना में उलझे हैं, और जो अभी प्रदेश में उलझे हैं--गुजरात में, महाराष्ट्र में उलझे हैं, उनको अभी भारत का भी वि.जन नहीं है। इतना भी वि.जन नहीं है कि भारत को इकट्ठा देख पाएं। वे सारी पृथ्वी को एक देख पाएं, यह असंभव है। यह बात भी सच है कि एक राष्ट्रीयता का युग पार करना ही पड़ेगा अंतर्राष्ट्रीय होने के पहले, यह भी सच है।
लेकिन मेरा मानना, दूसरी बात जो कहना चाहता हूं वह यह कि जब हम पूरे राष्ट्र की बात सोचते हैं, तब हम व्यक्ति को बिल्कुल भूल जाते हैं। कुछ व्यक्ति हो सकते हैं जो रिअलिज्म से ऊब गए हैं। उनसे हम हक नहीं छीन सकते कि वे एब्सट्रेक्ट आर्ट में न जाएं। और उनके लिए वह फोनी भी नहीं है, आपके लिए फोनी होगा--दर्शक के लिए। लेकिन अगर मैं रिअलिज्म से ऊब गया हूं--मैं ऊब सकता हूं--भला मॉसेस न ऊबी हों--तो मेरे लिए तो फोनी नहीं है, मगर सारे जगत के लिए फोनी हो, हो; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसे लोग हो सकते हैं मुल्क में, जिनको राष्ट्रीयता भी उबाने वाली मालूम पड़ रही है। तो उनको तो अंतर्राष्ट्रीयता की बात करनी चाहिए।
असल में जब हम इकट्ठे मुल्क की बात करते हैं तो हम स्वभावतः छोड़ देते हैं व्यक्तियों को, लेकिन व्यक्तियों को भी नजर में लेना पड़ेगा। आज जो लोग भी थोड़े से सोच-विचार से भरे हुए हैं, वे तेलंगाना से बंधे हुए नहीं हैं। उनको भारत से बंधना भी मुश्किल है। और मेरा मानना है कि उनका भारत से बंधना मुश्किल है, इसलिए वे तेलंगाना से बंधने में मुश्किल अनुभव कर रहे हैं। नहीं तो उनको वह भी मुश्किल न रहेगा। क्योंकि एक बार भारत से बंधना आसान हो तो तेलंगाना से बंधने में कौन सी दिक्कत है? जरा और थोड़े सिकुड़ कर बंधने की बात होती है। उधर भी बंध सकते हैं।
बहुत तरह के व्यक्ति मुल्क में होंगे। बहुत तलों पर काम जारी रहेगा, बहुत तलों पर काम जारी रहेगा। लेकिन स्टेजेज मुल्क को तो पार करनी पड़ती हैं। एज ए मॉस, तो स्टेजेज पार करनी पड़ती हैं। मॉस के लिए बेमानी है। आज एब्सट्रेक्ट आर्ट का कोई मतलब नहीं है। अगर हम पिकासो की एक पेंटिंग एक गांव में जाकर रख दें, उसका कोई भी अर्थ नहीं है। एकदम बेमानी है। इसमें गांव वालों का कोई कसूर नहीं है। इसमें कोई कसूर नहीं है, बीच की स्टेजेज नहीं हुई हैं पार। इसलिए वह कहां से पिकासो को समझ पाएगा? लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ लोग पिकासो को नहीं समझ पाएंगे। कुछ लोग समझ पा सकते

हैं। इसलिए मुल्क में बहुत तलों पर एक साथ ग्रोथ चलती है, बहुत तलों पर एक साथ ग्रोथ चलती है।
अब मेरी समझ यह है कि लोग कैपिटलिज्म से आउट-ग्रो कर गए हैं, उन्हें छोटे-छोटे एक्सपेरिमेंट करने चाहिए; पूरे मुल्क में नहीं। अगर हम दस मित्र हैं और हमको लगता है कि कैपिटलिज्म बेवकूफी है, तो हम एक छोटा कम्यून बना कर एक एक्सपेरिमेंट करें। मुल्क में दस-पचास कम्यून हों। जो लोग सोशलिज्म का प्रयोग कर सकते हैं, वे करें। और वह प्रयोग भी महत्वपूर्ण होगा। चारों तरफ के लोगों को ख्याल में भी आ सके कि यह हो सके, यह संभव है। लेकिन पूरे मुल्क को सोशलिस्ट पैटर्न में ढालने का मतलब खतरनाक होगा। खतरनाक इसलिए होगा कि हम कैपिटलिज्म को आउट-ग्रो नहीं किए, बहुत मामलों में तो हम फ्यूडलिज्म को भी आउट-ग्रो नहीं किए। मगर हमारी बड़ी झंझटें हैं। बहुत सी सदियां एक साथ चल रही हैं, और इसलिए कठिनाई है।

प्रश्नः जेट ने ऐसा एक जगह कहा है कि स्मालर द यूनिट, द मोर इंटेंसली
वी लिव। तो मुझे कुछ ऐसा ख्याल आया कि भई इसके साथ कि अगर यूरोप में बल्गेरिया जैसा या फिनलैंड जैसा छोटा सा मुल्क हो सकता है और फिर भी अपने आप का एक्झिस्टेंस, अपना अस्तित्व टिका रख सकता है तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि अगर हमारे यहां सत्रह जो भाषाएं हैं, उसके मुताबिक सत्रह सॉवरिन स्टेट बना दें तो ज्यादा एक्सपेरिमेंटेशन हो सके और कामन जो आदमी है, सामान्य आदमी, जन-साधारण उसका अपना कारोबार अपनी ही भाषा में चलने की वजह से ज्यादा आइडेंटीफिकेशन हो सके।

समझ गए आप।

प्रश्नः जैसे कि फॉर अवे दिल्ली में जो कुछ चलता है अंग्रेजी भाषा में, उसके साथ गांव के आदमी को बोलना कि भई तुम्हारी दिल्ली सरकार जो है, वह तुम्हारी राष्ट्रीयता वहां रहती है, उसका कोई मतलब नहीं है। जब कि नवसारी के आदमी को या सूरत के आदमी को कहना कि अहमदाबाद में तुम्हारी सरकार है, दो सौ मील दूर है और गुजराती में ही बात करती है तुम्हारी अपनी भाषा में, तो उसको शायद राष्ट्रीयता का ज्यादा उभार इंटयूजिएज्म आएगा।

मैं आपकी बात समझा, मैं आपकी बात समझा। असल में, बल्गेरिया या यूरोप
के छोटे-छोटे फिनलैंड जैसे मुल्क, यूरोप के मुल्क हैं, एशिया के नहीं। और होता क्या है कि जैसे-जैसे कोई समाज समृद्ध होता है, वैसे-वैसे इंडिविजुअलिटी विकसित होती है। और छोटे ग्रुप में इंटेंसली जीने की जो बात है वह बहुत विकसित समाज में संभव है, अविकसित समाज में संभव नहीं है। अविकसित समाज तो जितना बड़ा समाज हो, उतना सिक्योर्ड अनुभव करता है। मेरी बात समझे न? जितना विकसित माइंड हो उतना अकेला हो सकता है। जितना अविकसित माइंड हो, वह चार का हाथ पकड़ कर ही खड़ा हो तो उसको लगता है कि सुरक्षा है, नहीं तो खतरा हो जाएगा।
भारत अभी उस हालत में नहीं है कि इसको अगर हम टुकड़ों में तोड़ें तो कोई फायदा हो। टुकड़ों में तोड़ने से भारत को नुकसान ही होगा। भारत वैसे ही शक्तिहीनता अनुभव करता है और इंफीरिअरिटी अनुभव करता है। छोटे टुकड़े और इंफीरिअर हो जाएंगे। चीन जैसे मुल्क के सामने उनकी जान और भी निकल जाएगी, उनको कोई मतलब ही नहीं रह जाएगा। इतना बड़ा मुल्क भी शक्तिशाली अनुभव नहीं करता। छोटे टुकड़े और शक्तिहीन हो जाएंगे। और इतना बड़ा मुल्क भी इंडस्ट्रीलाइज नहीं हो पा रहा है, तो छोटे-छोटे टुकड़े तो बिल्कुल ही विलेजेज हो जाएंगे और एकदम प्रिमिटिव हो जाएंगे। उनकी तो ताकत ही नहीं रह जाएगी, दुनिया के साथ खड़े होने की।
भारत में यह संभव नहीं हो सकता है। लेकिन अगर भारत टेक्नालॉजिकली विकसित हो, तो मेरा मानना है, इतने बड़े मुल्क की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन टेक्नालॉजिकल विकास हो तो ही! और इतनी चेतना, इतना कल्चर, इतना एजुकेशन

विकसित हो कि हम छोटे टुकड़ों में रहने का मजा ले सकें और भयभीत न हों। वह उसके लिए बहुत बड़ी, और इस तरह की स्थिति चाहिए।
इधर मेरी समझ यह है कि जैसे-जैसे व्यक्ति ज्यादा समझदार होता है, कांशस होता है, उतना छोटे टुकड़े में रहना चाहता है, क्योंकि छोटे टुकड़े में इंटिमेसि है, संबंध है, डायलाग है। बड़े टुकड़े में तो भीड़ है, मॉस है; और खो जाते हैं।

प्रश्नः एनानिमिटी।

हां। तो जैसा विकसित आदमी होगा उतना भीड़ से बचना चाहेगा, क्योंकि भीड़ में कोई मतलब नहीं है उसके लिए। वह जब भी भीड़ से लौटेगा, तो लगेगा कुछ खोकर लौटा। और जब थोड़े से लोगों के पास होगा तब लगेगा कि रिच हुआ, समृद्ध हुआ। पर यह बहुत विकसित होने की बात है।
और दुनिया विकसित होगी तो बड़े मुल्क विदा हो जाएंगे, अपने आप विदा हो जाएंगे। बड़े मुल्कों का कोई मतलब नहीं है, क्योंकि जहां हम छोटे-छोटे टुकड़ों में निकट हो सकेंगे, इंटिमेट हो सकेंगे, वे टुकड़े बन जाएंगे। बड़े टुकड़े भी इसलिए हैं दुनिया में कि दुनिया अभी भी प्रिमिटिव है। तो ताकत इतनी है कि कितनी बड़ी भीड़ हमारे साथ है, उतनी बड़ी ताकत है। नहीं तो काश्मीर पाकिस्तान में जाए, झगड़ा क्या है? मगर कश्मीर इतना बड़ा टुकड़ा हमारा चला जाए तो हम कमजोर हो जाते हैं। कश्मीर अकेला रहे तो झगड़ा क्या है? लेकिन हम कमजोर हो जाते हैं। वह भी हमारा प्रिमिटिव माइंड है, लेकिन इस मुल्क में संभव नहीं हो सकता।
यानी मेरा कहना यह है कि जिस मुल्क में छोटे-छोटे टुकड़े का आग्रह इतना ज्यादा है, उस मुल्क में छोटे टुकड़े संभव नहीं हो सकते। जिस दिन छोटे टुकड़े का आग्रह न रह जाएगा, उस दिन छोटे टुकड़े संभव हो सकते हैं। यह बात उलटी लगती है, लेकिन मामला ऐसा ही है जैसा हम बैंक की बाबत कहते हैं कि बैंक उस आदमी को पैसा देती है जिसको जरूरत नहीं है। जिसको जरूरत है, बैंक उससे बचती है, क्योंकि उसको देना खतरनाक है।
यह मुल्क अगर छोटे टुकड़ों का आग्रह छोड़ दे तो फिर छोटे टुकड़ों में भी
जी सकता है। तब तक तो नहीं जी सकता। तब तक तो हमको बड़ी एंटाएटी का बोध चाहिए। मगर हमारी चेतना नहीं पकड़ पा रही है बड़ी एंटाएटी के बोध को। नहीं पकड़ पाएगी अभी, क्योंकि उसको पकड़ने के जो भी आधार होने चाहिए, वे नहीं है। और जो राजनैतिक नेता बातें करते हैं, नेशलन इंटिग्रेशन की और एकता की,
वे ही राजनैतिक नेता छोटे टुकड़ों के नेता हैं। और छोटे टुकड़ों के टुकड़े होने की कांशसनेस पर उनका नेतृत्व निर्भर है। तो इधर वे छोटे टुकड़े को होने के लिए शोरगुल मचाए रखते हैं--इधर वे कहते हैं कि यह जिला मैसूर में हो कि महाराष्ट्र में। उधर दिल्ली में बैठ कर वे विचार करते हैं कि नेशनल इंटिग्रेशन कैसे हो? असल में हिंदुस्तान की पूरी पॉलिटिक्स खंडों की पॉलिटिक्स है। मेरी दृष्टि में तो हिंदुस्तान से सब प्रांत विदा कर देने चाहिए। उसे.जोनल कर देना चाहिए। तो ही नेशनल इंटिग्रेशन हो सकता है। क्योंकि पॉलिटिक्स.जोनल हो जाएगी।
जब तक हिंदुस्तान की पॉलिटिक्स लोकल होगी, तब तक आप इंटिग्रेशन नहीं
ला सकते। अब महाराष्ट्र की पॉलिटिक्स महाराष्ट्र होने पर निर्भर है और मराठी के अहंकार को बढ़ाने पर निर्भर है। अब वह मराठी नेता, जिनको महाराष्ट्रीयन की ताकत पर तो वह खड़ा है। तो वह कैसे मान ले कि सारा मुल्क एक है? और जिला मैसूर में रहे कि महाराष्ट्र में, क्या फर्क पड़ता है? अब एक मध्यप्रदेश का नेता मध्यप्रदेश की ताकत पर निर्भर है। वह कहता है, नर्मदा का पानी हमारा है; वह गुजरात का कैसे हो सकता है? उसकी ताकत इस पर है। उसका वोटर उसको इसलिए वोट दे रहा है कि नर्मदा का पानी हमारा है। वह इस पर तो बेचारा खड़ा हुआ है, फिर वह ऊपर मंच पर बात कर रहा है कि नेशनल इंटिग्रेशन होना चाहिए।
मेरे हिसाब में, भारत इतना प्रिमिटिव है कि अभी स्टेट्स में बांटने योग्य नहीं है। अभी झोनल होना चाहिए। एडमिनिस्ट्रेटिव.जोनल; और सीधी एक

सेंट्रल गवर्नमेंट होनी चाहिए, तो ही इंटिग्रेशन हो पाएगा। यहां पचास गवर्नमेंट की जरूरत ही नहीं है स्टेट्स की। गवर्नमेंट एक ही होनी चाहिए; राजधानी एक ही होनी चाहिए। और उस एक राजधानी और एक गवर्नमेंट को ध्यान में रख कर जब नेता पॉलिटिक्स करेगा तो इंटिग्रेशन आ जाएगा, नहीं तो नहीं आ सकता है।

प्रश्नः भाषा का सवाल रहेगा?

भाषा का सवाल है, भाषा का सवाल है। मेरा मानना है कि भारत को राष्ट्रभाषा के लिए जोर नहीं देना चाहिए। वह उपद्रव का कारण है। जहां इतनी भाषाएं हैं, वहां राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। वह बेहूदी है बात, क्योंकि वह किसी न किसी भाषा की मालकियत होगी, इम्पीरियलिज्म होगा, और किसी भाषा का दबाना होगा। इसलिए भारत में राष्ट्रभाषा की बात ही नहीं करनी चाहिए। भारत में तो जिस रीजन की जो भाषा है वह भाषा उपयोग में आए, और सभी भाषाओं को राष्ट्रभाषा की हैसियत मिल जानी चाहिए। और संसद भर का प्रॉब्लम है, तो संसद भर में हमें, आज तो मैकेनिकल डिवाइस हो सकती है, उसकी कोई जरूरत नहीं है। नेशनल लैंग्वेज की बात ही बंद कर देनी चाहिए। और हम बंद कर दें तो शायद बीस साल में नेशनल लैंग्वेज विकसित हो जाए। अगर हम बंद न करें, तो विकसित हो ही नहीं सकती।
इस मुल्क में नेशनल लैंग्वेज कभी नहीं बन सकेगी, अगर हमने बातचीत जारी रखी। और अगर हमने कहा कि हिंदी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, फलानी होनी चाहिए, तो हिंदी कभी राष्ट्रभाषा बननी वाली नहीं। वह बात बंद कर देनी चाहिए। सबकी भाषाएं हैं, वह ठीक है। सब नेशनल लैंग्वेजेज हैं। और हमें रूस के पैटर्न पर सबको स्वीकार कर लेना चाहिए और केंद्र में मैकेनिकल डिवाइस कर लेनी चाहिए जिससे बात चल जाए। इसमें कोई ऐसी झंझट की बात नहीं है। तो शायद सहज जीने से ही एक भाषा धीरे-धीरे विकसित हो जाए। फिर शायद वह हिंदी नहीं होगी, हिंदुस्तानी होगी, जिसमें तमिल के शब्द भी घुस जाएंगे, गुजराती के शब्द भी घुस जाएंगे, उर्दू के शब्द भी घुस जाएंगे, अंग्रेजी के शब्द भी रहेंगे। वह एक भाषा शायद धीरे-धीरे विकसित हो जाए।
और मेरा मानना है, भाषाएं थोपी नहीं जा सकतीं, विकसित होती हैं। और जब भाषाएं थोपी जाएंगी, तो उनके खिलाफ रिएक्शन होगा।
तो गांधी जी कुछ रोग इस हिंदुस्तान को दे गए, उसमें एक राष्ट्रभाषा का रोग भी है।

प्रश्नः अनविटिंग्ली है।

अनविटिंग्ली है। वह हिंदी को राष्ट्रभाषा कह कर उन्होंने झंझट खड़ी कर दी। हिंदी राष्ट्रभाषा बन सकती थी। उसमें कोई खास बाधा न थी। वह धीरे-धीरे फैलती चली जाती थी, लेकिन जैसे वह कांशस हो गई, तो वह जो हिंदी लीडरशिप है, वह जो कांशस हो गई हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की; अब नहीं बनेगी। हिंदी के राष्ट्रभाषा की अब कोई उम्मीद नहीं है। अब हमें पचास साल राष्ट्रभाषा की बात ही नहीं करनी चाहिए, उसको विदा कर देना चाहिए। अगर डवलप हो जाए तो ठीक; न डवलप हो तो भी कोई हर्जा नहीं। कुछ बाधा नहीं बनती।

देख कबीरा रोया
पच्चीसवां प्रवचन

समाजवादः परिपक्व पूंजीवाद का परिणाम

प्रश्नः आपने अभी-अभी ऐसा कहा था कि हमारे यहां अभी सोशलिज्म की जरूरत नहीं है। अभी जो कैपिटलिज्म है, वह यहां फ्लरिश होना चाहिए। उस बारे में आप कुछ विस्तार से कहेंगे?

हां, मेरी ऐसी दृष्टि है कि समाजवाद पूंजीवाद की परिपक्व अवस्था का
फल है। और समाजवाद यदि अहिंसात्मक और लोकतांत्रिक ढंग से लाना हो तो पूंजीवाद परिपक्व हो इसकी पूरी चेष्टा की जानी चाहिए। पूंजीवाद की परिपक्वता का अर्थ है एक औद्योगिक क्रांति कि देश का जीवन भूमि से बंधा न रह जाए, और देश का जीवन आदिम उपकरणों से बंधा न रह जाए। आधुनिकतम यंत्रीकरण हो तो संपत्ति पैदा हो सके। और संपत्ति जब अतिरिक्त मात्रा में पैदा होती है, तभी उसका वितरण भी हो सकता है और विभाजन भी हो सकता है।
अभी हम समाजवाद की कोशिश करेंगे तो हम सिर्फ गरीबी ही बांट सकते हैं,
और गरीबी बांटने का कोई अर्थ नहीं है, बल्कि खतरनाक भी है। और एक बार भी अगर हम आज समाजवादी ढांचे में समाज को ढालें, तो जिस समाज में उत्पादन की आज कोई प्रेरणा नहीं है, जिसका प्रमाद बहुत पुराना और गहरा है, और जिसे संपत्ति पैदा करने की कोई समझ भी नहीं है, उस समाज को अगर आज समाजवादी ढांचा दिया जाए तो हम सदा के लिए गरीब होने की मुहर अपने ऊपर लगा लेंगे। इसलिए मैं यह नहीं कहता हूं कि समाजवाद जरूरी नहीं है। मैं मानता हूं
कि समाजवाद ही जरूरी है। लेकिन समाजवाद संभव हो सके इसलिए औद्योगीकरण और राष्ट्र का ठीक अर्थों में पूंजीवादी हो जाना जरूरी है। या फिर दूसरा रास्ता यह है कि अगर कच्चे पूंजीवाद से हमें समाजवाद पर जाना हो तो हमें हिंसा के कम से कम पचास वर्षों की तैयारी करनी चाहिए। फिर वह लोकतांत्रिक नहीं होगा। फिर वह वैसा ही होगा जैसा रूस या चीन में हो रहा है। वैसी भी हमारी तैयारी नहीं है कि हम इतने बड़े पैमाने पर हिंसा कर सकें कि एक करोड़ आदमियों की हत्या कर सकें। और मैं मानता हूं कि एक करोड़ की हत्या करके भी हम अपने देश में संपत्ति पैदा कर पाएंगे, यह भी संदिग्ध दिखता है। फिर ऐसी भी मेरी समझ है कि उतनी बड़ी हिंसा करके भी रूस में जैसी सफलता की आशा थी, वह सफलता उपलब्ध नहीं हो पाई। और आज भी रूस एक गरीब मुल्क ही है, अमीर मुल्क नहीं है। और चीन की हालतें तो और भी बदतर हैं।

प्रश्नः इसके लिए अभी जो हमारे यहां जो प्लान्स वगैरह हैं--फाइव ईयर प्लान्स और डवलपमेंट प्लान्स, रूअलर डवलपमेंट प्लान्स। ये जो प्रोग्राम हमने अपनाएं हैं, वे प्रोग्राम ठीक हैं, या उसमें कुछ बेसिक चेंज आप सजेस्ट कर सकते हैं। यानी कि जो आप पूंजीवाद को परिपक्व बनाने का आपका जो सजेशन है, वह सजेशन को पार करने के लिए ये प्रोग्राम जो हैं वे ठीक हैं या उसमें कुछ चेंज आप बता सकते हैं?

जहां तक प्रोग्राम की कागज पर होने की बात है, वहां तक तो ठीक ही है, लेकिन इंप्लीमेंटेशन में वह कुछ हो नहीं पाता है। और उसमें भी जो दृष्टि है हमारी, वह भी हमने रूस के फाइव ईयर प्लान से ली है, जो कि भूल भरी बात है। समाजवादी ढांचे के बाद पंचवर्षीय योजनाएं एक अर्थ रखती हैं, क्योंकि उनको जबरदस्ती इंप्लीमेंटेशन करवाया जा सकता है। लेकिन समाजवादी ढांचा न हो तो फाइव ईयर प्लान बहुत और शक्ल के होने चाहिए। वह जापान या अमरीका की शक्ल में या इजरायल की शक्ल में होने चाहिए--रूस की शक्ल में नहीं।
हमारी तकलीफ क्या है कि हम दुनिया में, कहीं भी अच्छा हो रहा है उसको अच्छा मान कर फौरन शुरू कर देते हैं, इस बात कि बिना फिकर किए कि उसकी पूरी पृष्ठभूमि हमारे पास तैयार है या नहीं। अगर पृष्ठभूमि तैयार नहीं है तो वह बिल्कुल अच्छा हो तो भी बेमानी है। वह ऐसे ही है जैसे कार के इंजन को लाकर बैलगाड़ी में रख लिया है। अब बैठे हैं। वह बहुत अच्छा था कार में, और

ठीक चलता था। वह बैलगाड़ी में बिल्कुल बेमानी है। वह बैलगाड़ी पर बोझ बन रहा है और बैलगाड़ी को उससे कुछ हित नहीं है, बैल के लिए और परेशानी है। तो हमारी तकलीफ इधर रही है, इक्लैक्टिक तकलीफ है हमारी। सारी दुनिया में जो भी अच्छा हो रहा है, वह सब हमें करना है। ठीक है, करना भी है, लेकिन उसकी जो बेसिक फाउंडेशंस हैं, वे न होने से सब मुसीबत खड़ी हो जाती है।
हिंदुस्तान को नजर रखनी चाहिए उन मुल्कों की तरफ जिनकी सामान्य पृष्ठभूमि हमारे जैसी है, जिनका बेसिक ह्यूमन मैटीरियल हमारे जैसा है, जिनका बौद्धिक विकास हमारे जैसा है, और वे क्या प्रयोग कर रहे हैं? जैसे मेरी नजर में, हिंदुस्तान को इजरायल पर नजर रखनी चाहिए, जापान पर नजर रखनी चाहिए, तो हमारे काम का हो सकता है।
अब हमारी तकलीफ यह है, अच्छा, दूसरी तकलीफ हमारी यह है कि बहुत सी व्यवस्थाएं दुनिया में आज काम कर रही हैं। उन व्यवस्थाओं के प्रत्येक के काम करने का ढंग है और अपने उनके यंत्र की एक व्यवस्था है। अमरीका से कुछ अच्छा लगता है, वह हम उधार ले लेते हैं; रूस से कुछ अच्छा लगता है, वह हम उधार ले लेते हैं। हमारा पूरा कांस्टिट्यूशन, हमारे सोचने का ढंग ऐसा है कि जहां से जो अच्छा है वह ले लो। वे सब अच्छा इकट्ठा हो जाता है, लेकिन वह ऐसे हो जाता है जैसे कि मीठे-मीठे का भोजन हो जाए। जिसका कोई मतलब नहीं होता। बल्कि वह महंगा ही पड़ता है, पेट पर भारी पड़ जाता है।

प्रश्नः हजम नहीं हो पाता।

हां, हजम नहीं हो पाता है। तो हमारा विधान भी वैसा है, हमारे पिछले बीस वर्षों का चिंतन भी वैसा है।
तो हमारा फाइव ईयर प्लान भी एक समाजवादी ढांचे में तो अर्थ रखता था,
रख सकता था; लेकिन चूंकि वह ढांचा नहीं है इसलिए हमें उसे और तरह से सोचना चाहिए। प्लान तो हमें करना ही पड़ेगा। प्लांड इकोनॉमी तो जरूरी है। लेकिन वह प्लांड इकोनॉमी पूंजीवाद के अंतर्गत होगी। समाजवाद है नहीं, उसके अंतर्गत वह होने की बात नहीं उठती। और जब वह प्लान इकोनॉमी हमें करनी हो पूंजीवाद के अंतर्गत, तो उसका अधिकतम खर्च औद्योगीकरण पर होना चाहिए। और वह भी प्राइवेट सेक्टर में, अधिकतम उसमें से हमें लगाने की फिकर करनी चाहिए। क्योंकि पब्लिक सेक्टर जैसी चीज हमारे पास नहीं है। और अगर है तो सिर्फ नुकसान में ले जाएगी, कहीं फायदे में नहीं ले जा सकती।
यानी मेरा मतलब यह है कि व्यक्तिगत रूप से जो इंटरप्रिनिओर्स हैं, जो उद्योगपति हैं, औद्योगिक हाउसेस हैं, वे जो काम में लगे हैं, उनके लिए देश कितनी सहायता पहुंचा सकता है, उनके काम में कितनी सुविधा जुटा सकता है, और उनके व्यक्तिगत इंसेंटिव का कितना फायदा उठा सकता है, उसकी हमें फिकर करनी चाहिए, बजाय इसके कि हम उस सारी संपदा को सरकारी नियंत्रण में चलने वाली व्यवस्था में लगाएं। क्योंकि सरकारी नियंत्रण में चलने वाली व्यवस्था एकदम असफल है। वह बोध ही नहीं है हमारे पास। इसमें कोई कठिनाई की बात नहीं है वह असफल होगी ही। हम उसमें जितना लगाते जाएंगे, वह डूबने वाला है, वह कहीं आने वाला नहीं है।
और बड़े आश्चर्य की बात है कि सरकारी व्यवस्था में जितना हम लगाते हैं उसमें से कोई पचहत्तर प्रतिशत तो लोगों की नौकरी और तनख्वाह, इसमें सब खर्च हो जाता है। वह इंतजाम में ही सब खर्च हो जाता है। और जो हमें जो लगाने का सवाल था वह कहीं लग ही नहीं पाता, उसका कोई परिणाम नहीं हो पाता। हिंदुस्तान में तो अभी व्यक्तिगत प्रेरणा के आधार पर यह जो काम चलता है उस पर ही हमें, सारी प्लानिंग उस पर ही खर्च करनी चाहिए। मगर हालतें उलटी हैं, क्योंकि हमारे दिमाग में एक सोशलिस्टिक पैटर्न है। तो हम हर हालत में व्यक्तिगत प्रेरणा से चलने वाले कार्य में बाधा डाल रहे हैं। और व्यक्तिगत रूप से जो काम कर रहे हैं; उनको हम कितना रोक सकते हैं काम करने से, उस कोशिश में लगे हैं। और सामूहिक तल पर राज्य के द्वारा चलने वाले काम में ताकत लगा रहे हैं, जो कि असफल होना है।

जो सफल हो सकता था उसकी सफलता में बाधा डाल रहे हैं। जो असफल होगा, उसमें संपत्ति लगा रहे हैं। इतना मैं चाहता हूं कि इतना चेंज हमारी प्लानिंग में होना चाहिए। अभी हमें प्लांड कैपिटलिज्म की जरूरत है, सुनियोजित पूंजीवाद की जरूरत है; क्योंकि समाजवाद का अभी कोई सवाल नहीं उठता है।

प्रश्नः जो इंडिविजुअल इंटरप्रिनिओर्स है, वह बि.जनेस करेगा, वह सिर्फ अपना प्रॉफिट देखेगा। सोसाइटी इन लार्ज को जिस चीज की आवश्यकता है जैसे कि प्राइमरी नीड्स ऑफ लाइफ, वह उसका ख्याल नहीं करेगा। तो उसके लिए आप क्या सोचते हैं?

हां, यह बात ठीक है, यह बात ठीक है। लेकिन सच्चाई यह है कि हमारे जैसे मुल्क में, जहां अभी सोशल कांशसनेस जैसी कोई चीज नहीं है। जहां व्यक्तिगत स्वार्थ पर ही हम पांच हजार सालों से जिंदा हैं वहां हमें सामाजिक स्वार्थ को पैदा करने की पृष्ठभूमि जब तक न बन जाए, तब तक व्यक्तिगत स्वार्थ का ही हम कितना अपशोषण कर सकते हैं समाज के हित में, उस पर ही ध्यान देना होगा। निश्चित ही व्यक्ति अपने लाभ के लिए ही चेष्टा करेगा। सरकार इसको इस तरह से उपयोगी कर सकती है कि बेसिक नीड्स को पूरा करने वाले जो लोग उद्योग पैदा करें, उन्हें सरकार ज्यादा सुविधा देती हो और ज्यादा लाभ की व्यवस्था जुटाती हो। जो लोग सिर्फ अपने ही हित के लिए धन पैदा करने की कोशिश में लगे हों, उनको उतना लाभ न होता हो तो हमारा जो व्यक्तिगत रूप से जो इंटरप्रिनिओर्स है, वह सामाजिक जरूरत की चीजों को पैदा करने की ओर संलग्न होगा। क्योंकि उसकी नजर सिर्फ लाभ की है। उसे लाभ मिलना चाहिए। अगर हम बेसिक और एलिमेंट्री नीड्स को पूरा करने वाले उद्योग को ज्यादा लाभ पहुंचाने की व्यवस्था करते हैं, कम टैक्स लगाते हैं, ज्यादा धन का लोन देते हैं, बेचने की ज्यादा सुविधा देते हैं, कानून का कम बंधन खड़ा करते हैं, हिसाब-किताब के उपद्रव से थोड़ा मुक्त करते हैं, तो हमारा जो उद्योगपति है वह उस दिशा में प्रवाहित होना शुरू हो जाएगा। यानी मेरा मानना यह है कि हमें व्यक्तिगत स्वार्थ का ही शोषण करना पड़ेगा अभी।
अब सवाल यह है कि व्यक्तिगत स्वार्थ को सामाजिक हित में नियोजित करने
की बात है। तो वह तो किया जा सकता है। उसमें बहुत कठिनाई नहीं है। और अगर यह बहुत बड़े पैमाने पर किया जाए, तो धीरे-धीरे... क्योंकि उद्योगपति को या संपत्ति की खोज में निकल गए व्यक्ति को उससे कोई प्रयोजन नहीं कि वह क्या पैदा करता है? वह वही पैदा करता है जिससे लाभ आता है, प्रॉफिट मोटिव है। तो हम प्रॉफिट मोटिव क्यों न उसका पूरा करें? और उन दिशाओं में पूरा करें जो देश के हित में हों। हम क्या कर रहे हैं कि हम उसके प्रॉफिट मोटिव को नुकसान पहुंचा रहे हैं। और मजा यह है कि हमारे मुल्क में सिवाय प्रॉफिट मोटिव के कोई मोटिव नहीं है। नया कोई मोटिव ही नहीं है। उसके लिए किया नहीं जा सकता कुछ। और उसके बहुत कारण हैं। हमारा पूरा का पूरा चिंतन जो हजारों साल का है, वह व्यक्ति-केंद्रित है। उसमें समाज का कोई बोध नहीं है। पाप है तो मेरे हैं, पुण्य हैं तो मेरे हैं, स्वर्ग मिलेगा तो मुझको मिलेगा, नरक मिलेगा तो मुझको मिलेगा। कर्म हैं तो मेरे हैं, फल हैं तो मेरे हैं। दूसरे से कोई संबंध नहीं हैं कहीं। हम दो कहीं जुड़ते नहीं हैं। सुख है तो मेरा है, दुख है तो मेरा है। दूसरे से कहीं जोड़ नहीं बनता है। हमारी जो फिलासफी है भारत की, उसमें इंटररिलेशनशिप का कोई भाव नहीं है। निपट व्यक्ति केंद्र है सारे चिंतन का, सारे धर्म का, सारे जीवन का।
तो जहां निपट व्यक्ति केंद्र रहा हो दस हजार साल तक, वहां हम एकदम से सोशल मोटिव पैदा नहीं कर सकते हैं। सोशल मोटिव पैदा करने के लिए हमें इंटररिलेशनशिप का बोध बढ़ाना पड़ेगा। और वह जब तक नहीं बढ़ जाता है, तब तक हमें पुराने मोटिव का ही फायदा लेकर समाज को फायदा पहुंचाने की फिकर करनी चाहिए। पर हमारी कठिनाई यह है कि पश्चिम में जो भी ख्याल पैदा होता है वह हम पकड़ लेते हैं। वहां एक सोशल मोटिव पैदा हुआ। और उसका कुल कारण इतना है कि उनको कोई तीन सौ वर्ष से यह बात साफ समझ में आ गई कि व्यक्ति का व्यक्ति

की तरह न कोई जीवन है, न कोई अर्थ है। अगर कोई भी जीवन और अर्थ है, सुख है और दुख है, स्वास्थ्य है, बीमारी है, तो वह इंटररिलेशनशिप में है। वह हम सब जुड़ कर हैं। यह भाव तीन सौ साल की निरंतर व्यवस्था से पैदा हुआ। इसके बाद सोशलिज्म की बात सार्थक हो सकी वहां। वह हमारे पास नहीं है भाव। इसे अगर हम सीधा स्वीकार नहीं करेंगे तो हम दोहरे नुकसान में पड़ेंगे। जिसका हम फायदा उठा सकते हैं उसका फायदा नहीं उठाएंगे और जो है ही नहीं उस पर हम खर्च करेंगे और हम परेशान हो जाएंगे।
इसलिए हिंदुस्तान में जितने भी सामाजिक हित के लिहाज से सरकार व्यवस्थाएं करती हैं, वे सब नुकसान में पड़ती हैं और सब असफल होती हैं। भिलाई का स्टील कारखाना हो कि बोकारो हो कि कोई भी हो। यानी रेलवे जैसी निरंतर लाभ देने वाली व्यवस्था भी इधर नुकसान दे रही है। यानी जो कि बिल्कुल ही चमत्कारपूर्ण है कि जिससे कभी नुकसान न हुआ था, जो कि सदा ही लाभ की व्यवस्था थी, वह भी नुकसान दे रही है।
अब इधर मैं देखता हूं, मैं प्राइवेट कालेज में भी था, तो प्राइवेट कालेज में एक प्रोफेसर सप्ताह में कम से कम बीस लेक्चर देता है, मेहनत करके देता है। फिर मैं गवर्नमेंट कालेज में भी था; गवर्नमेंट कालेज में कोई आठ या दस लेक्चर दे दे तो बड़ी कृपा करता है। अच्छा, बिना तैयारी के देता है, बिना फिक्र के देता है, क्योंकि नौकरी सिक्योर है, फिर उसे कोई प्रयोजन नहीं है। फिर बात खत्म हो गई। उसको तनख्वाह मिलनी है और एक दफा कंफर्मेशन उसका हो गया तो उसको कोई निकालने वाला नहीं है। वह अपनी आरामकुर्सी पर बैठा रहता है।
इधर मैं जिस कालेज में था, उसमें सौ प्रोफेसर थे। और मैं हैरान हुआ यह जान कर कि मैं एक आदमी न खोज सका कि जिसको पढ़ाने में कोई भी रस हो। तनख्वाह में रस था, वह पूरा हो गया, बात खतम हो गई। प्राइवेट कालेज में तनख्वाह में रस है, पढ़ाना पड़ेगा, नहीं तो नौकरी जाती है। तो अब मैं इधर हैरान हूं, अच्छा, सब प्राइवेट कालेज धीरे-धीरे हम गवर्नमेंट के बनाए चले जा रहे हैं और हमारा ख्याल है कि गवर्नमेंट का कालेज हो जाने से कुछ फायदा हो जाएगा उसमें। और जब कि वे जो पूरे के पूरे टीचर्स हैं, उनका मोटिव पूरा हो जाता है, बात खतम हो गई, उनको पढ़ाने-लिखाने से कोई मतलब नहीं है। हिंदुस्तान में ऐसा टीचर नहीं है जिसको पढ़ाने में रस है। उसको तनख्वाह में रस है। एक दफा तनख्वाह सुनिश्चित हो गई तो बात खतम हो गई। अब उसको क्या प्रयोजन है?
तो मैं कालेज में देखा भी, मैं पूछा भी लोगों से, उन्होंने कहा, करना क्या है? हमें कौन अलग कर सकता है? और तनख्वाह जितनी मिलनी है उतनी मिलनी है। हम पढ़ाएं तो ज्यादा नहीं मिल जाएगी, न पढ़ाएं तो कोई कम नहीं हो जाएगी। तो फिर मेहनत किसलिए करनी है? यह प्रोफेसर की बुद्धि हो, तो मजदूर की बुद्धि तो फिर ठीक ही है। यानी मैं यह पूछता हूं, यह हमारा जो टॉपमोस्ट हो, उसकी जब यह बुद्धि हो तो फिर ठीक है, पीछे हम क्या सोचें इसमें। इसलिए आप क्लैक्टिव फार्मिंग करें, कोई काम नहीं करेगा। क्लैक्टिव काशंसनेस नहीं है।
तो मेरा मानना है कि इंडिविजुअल कांशसनेस का हमें पचास साल तक शोषण करना चाहिए। और इस शोषण को जारी रख कर क्लैक्टिव कांशसनेस पैदा करने की कोशिश करनी चाहिए। और जब क्लैक्टिव कांशसनेस पैदा हो जाए तो इंडिविजुअल मोटिव को सोशल मोटिव में बदलने का उपाय हो सकता है, उसके पहले नहीं हो सकता है। इसलिए मैं समाजवाद की बात ही एक असंभावना मानता हूं अभी और अगर हमने कोशिश की तो हम उसमें आत्मघात ही करेंगे। हम उससे कहीं भी पहुंच नहीं सकते, हम और दरिद्र और दीन हो जाएंगे।

प्रश्नः पूंजीवाद आप परिपक्व करने की बात करते हैं, तो वह कौन सी स्टेज होगी पूंजीवाद की, जब हम कह सकें कि हमारे यहां पूंजीवाद परिपक्व हो गया है और सोशलिज्म के लिए एक स्टेज तैयार हो गया हमारे लिए?

सच तो यह है कि मेरा मानना है कि आपको कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी।
पूंजीवाद परिपक्व हो तो सोशलिज्म में रूपांतरण बहुत सहज है।

प्रश्नः आपो आप हो जाएगा?

हां, आपो आप हो जाएगा। और मैं मानता हूं, जिस दिन आपो आप होगा उसी दिन ठीक से होगा, उसके पहले नहीं हो सकता। इसलिए हमें इसकी बहुत चिंता लेने की जरूरत नहीं है कि जवान कब आदमी हो जाएगा और बूढ़ा कब होना शुरू होगा। शायद तारीख तय भी नहीं की जा सकती। और शायद पता भी नहीं चलेगा। मेरा मानना है कि अमेरिका सोशलिज्म की तरफ जाना शुरू हो चुका है।

प्रश्नः लेकिन आज तो प्रचार ऐसा है कि पूंजीवाद, पूंजी वाला तो पूंजीवाला हो जाता है और गरीब तो गरीब हो जाता है। पीछे ऐसा कौन हो जाएगा कि पूंजीवाद बढ़ जाएगा?

यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। मजा यह है कि हमको ख्याल यह है कि गरीब जो
है वह बड़ा दया का पात्र है, क्योंकि पूंजी...

प्रश्नः वह तो गरीब ही हो जाता है।

न, वह जो मैं कह रहा हूं, हमें यह ख्याल जो कि बिल्कुल भ्रांत है कि गरीब बड़ा दया का पात्र है। और हमें यह ख्याल है कि गरीब इसलिए गरीब है कि अमीर ने उसकी पूंजी खींच ली है। यह बड़ी ही भ्रांत बात है। अमीर ने पूंजी पैदा की है। उसने गरीब से खींच नहीं ली है। हां, गरीब से उसने पैदा करवाने में सहयोग लिया है। और अगर अमीर को हम बीच से हटा दें तो गरीब कोई अमीर नहीं हो जाता।
मजा तो यह है कि पहली बार गरीब को जितनी सुविधा है उतनी जगत में कभी भी
न थी। पूंजीवाद ने पहली दफा गरीब को भी जिंदा रहने का हक दिया है। गरीब का बच्चा अब बच सकता है, मर नहीं जाता। और इतनी जो बड़ी गरीबों की जमात खड़ी दिखाई पड़ रही है, वह पूंजीवाद ने जो संपत्ति पैदा की है वह उसके फल की वजह से जिंदा है, नहीं तो वह जिंदा नहीं रह सकती थी। दुनिया की आबादी पिछले सौ वर्षों में बढ़नी शुरू हुई है। इसके पहले वह थिर थी। क्योंकि गरीब कितने बच्चे पैदा करता! आठ-दस बच्चे पैदा करता, नौ मर जाते। जो एक बचता वह भी हमेशा मिनिमम लिविंग पर बचता। उससे ज्यादा बच नहीं सकता था।
एक हमें यह बड़ी भ्रांति का ख्याल दे दिया है समाजवादी विचारकों ने कि गरीब इसलिए गरीब है कि अमीर ने उसकी पूंजी शोषण कर ली। अमीर ने पूंजी पैदा की है पहली दफा, और पैदा करने की वजह से अमीर अमीर हुआ है और गरीब गरीब दिखाई पड़ने लगा है। पूंजी जो है वह क्रिएशन है, शोषण नहीं है एकदम। यह मैं जो फर्क कर रहा हूं, पूंजी एक तरह का सृजन है। अब जैसे कि आप अगर अमरीका के बारह अमीरों को बाहर कर दें तो अमरीका गरीब ही रहता पूरा का पूरा, लेकिन तब गरीबी का बोध नहीं होता, क्योंकि कोई अमीर भी नहीं था। अगर हम मार्गन को या रॉकफेलर को या फोर्ड को अलग कर दें अमरीका से, जिन्होंने कि संपत्ति पैदा करने के हजार-हजार रास्ते खोजे और हजार-हजार उपायों से लोगों को संपत्ति पैदा करने में संलग्न करवाया, अगर उनको अलग कर दें तो अमरीका का वह जो आज मजदूर है, वह कोई अमीर हो जाता ऐसा नहीं कि उसके पास संपत्ति होती। उसके पास संपत्ति होती नहीं। हां, एक फर्क पड़ता कि गरीब की जितनी बड़ी संख्या है, वह नहीं होती। और गरीब का जो बोध है, वह नहीं होता।
पहली दफा पूंजीवाद ने संपत्ति पैदा करने के उपाय खोजे हैं। लेकिन हमें पुरानी आदत रह गई है। पुरानी तो सामंतवादी व्यवस्था थी, वह शोषक व्यवस्था थी। राजा संपत्ति पैदा नहीं करता था, सिर्फ चूसता था। यानी यह बड़े मजे की बात है कि राजा जो था वह संपत्ति कभी पैदा नहीं करता था, वह चूसता था। पूंजीपति ने पहली दफा संपत्ति पैदा करने का उपाय खोजा। वह चूस नहीं रहा है। हमको ऐसा लगता है कि मैंने एक मजदूर से दिन भर काम लिया, उसको दो रुपये दिया। मजदूर को ऐसा लगता है कि मेरा शोषण कर लिया गया। और मजा यह है कि अगर मैं उससे काम न लूं तो वह दो रुपये भी पैदा नहीं कर सकता था। वे

दो रुपये भी मेरे काम में संलग्न होने की वजह से उसको मिल रहे हैं। उसको दो रुपये भी मिलने वाले नहीं थे। वह पैदा भी नहीं होता, वह मरता। वह जिंदा भी नहीं रह सकता था।
पूंजीवाद को मैं वह व्यवस्था कहता हूं जिसने पूंजी पैदा करने के उपाय निकाले हैं। लेकिन पूंजी पैदा होने से निश्चित एक विभाजन हुआ कि एक तरफ पूंजी इकट्ठी हो गई और एक तरफ पूंजीहीन लोग इकट्ठे हो गए। ये पूंजीहीन लोग पूंजीपति के शोषण के कारण पूंजीहीन नहीं हैं। पूंजीपति ने पूंजी इकट्ठी करने का उपाय खोजा है इसलिए उसके पास पूंजी है, इनके पास नहीं है। आज जो हमारी पूंजी, जैसे अमरीका की, आज अगर हम पूंजी का हिसाब लगाएं, तो सौ साल पहले यह पूंजी कहां थी? अगर शोषण किया तो यह सौ साल पहले भी होनी थी दूसरे लोगों के पास और फिर किसी ने शोषण कर लिया।
हम इस कमरे में बैठे हैं। हमारे पास तीस रुपये हैं सबके पास। दो साल बाद मेरे पास हजार रुपये हैं, और आप कहते हैं, आपने शोषण कर लिया। तो मैं यह पूछता हूं कि दस साल पहले जब तीस ही रुपये थे तो कमरे में तो मैं हजार रुपये शोषण कर कैसे लेता? यह हजार रुपये का मैंने उपाय भी किया है। और मजा यह है कि आपके पास भी तीस की जगह आज तीन सौ रुपये हैं। लेकिन फिर भी आपको लग रहा है कि आप गरीब हैं और आप शोषित हो गए हैं। क्योंकि मेरे पास हजार हैं और आपके पास तीन सौ हैं। तो सात सौ का फासला है। यह सात सौ का फासला दस साल पहले नहीं था। आपके पास भी एक रुपया था, मेरे पास भी एक रुपया था। हम दोनों एक जगह खड़े थे। आज मेरे पास हजार हैं, आपके पास तीन सौ हैं। आज तीस की जगह तेरह सौ हैं इस कमरे में, लेकिन यह बाकी तेरह सौ रुपये कहां से आए? ये क्रिएट किए हैं।
पूंजीवाद पूंजी पैदा करने की व्यवस्था है। लेकिन एक दफा जब पूंजी इतनी पैदा हो जाए, इतनी अतिरिक्त पैदा हो जाए कि उस पर व्यक्तिगत स्वामित्व का कोई अर्थ न रह जाए तो मैं मानता हूं कि समाजवाद में रूपांतरण शुरू हो जाता है।
जैसे अमरीका की--मेरी समझ यह है कि--पिछले तीस वर्षों में अमरीका रोज एक-एक कदम समाजवाद की तरफ रख रहा है। रखना ही पड़ेंगे। क्योंकि पूंजी जब इतनी ज्यादा हो जाती है तो उसको मालकियत रखने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। यानी मैं यह मानता हूं कि मालिक को नहीं मिटाना है, मालकियत का प्रयोजन मिटाना है। और मालकियत का प्रयोजन तभी मिटेगा जब अतिरेक हो, सुपर फ्लुअस, एफ्लुएंट सोसाइटी हो, तब प्रयोजन मिटेगा। आज आप इस साड़ी पर अपना कब्जा बताना चाहती हैं। क्योंकि साड़ी न्यून है। अगर आपने कब्जा नहीं बताया तो और कोई कब्जा कर लेगा। लेकिन साड़ियां अगर इतनी हों कि कब्जे का कोई मतलब न रह जाए, कि कोई भी आपकी साड़ी पर कब्जा कर ले तो दूसरी साड़ी उपलब्ध हो सके तो आपको कब्जे का भाव मिट जाएगा। मकान न्यून हैं, इसलिए हमें कब्जा बताना पड़ रहा है। कार न्यून हैं, इसलिए उस पर हमको कब्जा बताना पड़ रहा है कि मेरी गाड़ी है। लेकिन कार अगर इतनी हो जाएं कि जितने आदमी हों, उनसे ज्यादा हो जाएं, तो कब्जा बेमानी हो जाता है। बिल्कुल ही अर्थहीन हो जाता है। असल में कब्जा तब तक बताना पड़ता है जब तक ऐसे लोग हैं जिनके पास चीजें नहीं हैं।
तो मैं मानता हूं कि एफ्लुएंट सोसाइटी का अंतिम परिणाम समाजवाद होगा।
और यह ही सहज हो सकता है। अगर अहिंसात्मक रूपांतरण का हमें कोई ख्याल हो, लोकतांत्रिक रूपांतरण का ख्याल हो--और अगर यह नहीं हमें ख्याल हो तो फिर जबर्दस्ती हो सकता है। लेकिन जबरदस्ती में पूंजीवाद जो पूंजी पैदा करता है वह नहीं हो पाएगी; क्योंकि पूंजी पैदा करने का जो इनसेंटिव है, वह पूंजीवाद में है वह सोशलिज्म में नहीं है। यानी मैं मानता हूं कि पूंजीवाद का एक हिस्टारिक रोल है कि वह पूंजी पैदा कर जाए। अगर वह पैदा नहीं कर पाया तो सोशलिस्ट सोसाइटी पूंजी पैदा करने में मुश्किल में पड़ जाएगी। हां, एक दफा पूंजी पैदा हो गई तो रन करेगी, लेकिन सोशलिस्ट सोसाइटी पूंजी पैदा नहीं सकेगी और अगर करनी है तो फिर लोकतंत्र नहीं रह सकेगा। यानी दो उपाय हैं, या तो प्रॉफिट मोटिव से आदमी पूंजी पैदा करेगा और या फिर बंदूक के कुंदे से पूंजी पैदा करेगा। अब इन दो के बीच चुनाव करना है कि

मेरी छाती के पीछे या तो बंदूक का कुंदा लगा हो तो मैं आठ घंटे मजदूरी कर सकता हूं और या मेरे सामने लाभ का, प्रॉफिट का मोटिव लटका हो तो मैं मेहनत कर सकता हूं।
अब मेरा मानना यह है कि प्रॉफिट मोटिव जो है, वह ज्यादा लोकतांत्रिक
है बजाय बंदूक के कुंदे के। मैं नहीं देख पाता कि बंदूक का कुंदा किस अर्थ में समाजवादी है। और वह भी व्यक्ति को ही लगाना पड़ेगा हमको; कोई उपाय नहीं है उसका। यह है कि हमको आठ घंटे एक मजदूर को काम करना है। जेल में भी हम काम ले रहे हैं। वह भी एक काम है। उसको हमने कह दिया है कि इतना आटा उसको पीसना है या इतने पत्थर तोड़ने हैं। नहीं तोड़ता है तो शाम को उसकी हड्डी-पसली टूट जानी है। वह भी एक रास्ता है। वह बिल्कुल सोशलिस्ट पैटर्न है। अगर पूरे मुल्क को इसी तरह एक कनसनट्रेशन कैंप बनाना हो, तो हो सकता है। एफ्लुएंट सोसाइटी के बाद यह सरलता से हो जाए। क्योंकि एफ्लुएंट जैसे ही सोसाइटी हुई, प्रॉफिट मोटिव का कोई मतलब नहीं रह जाता फिर--एक। और आदमी को धक्का देने का भी कोई कारण नहीं रह जाता।
अच्छा, दूसरी बात यह है कि जैसे ही अतिरिक्त रूप से संपन्न समाज होगा वैसे ही श्रम का अर्थ खो जाएगा। क्योंकि हम यंत्र से काम लेने लगेंगे। असल में गरीब समाज श्रम से काम लेता है, अमीर समाज यंत्र से काम लेता है। और एफ्लुएंट सोसाइटी आटोमैटिक यंत्रों से काम लेगी। आने वाले सौ वर्षों में अमेरिका में श्रम का कोई अर्थ ही न रह जाएगा। यानी उलटी हालत भी हो सकती है कि मैं आपसे आकर कहूं कि मुझसे घंटे भर थोड़ा काम ले लें और पांच रुपये भी ले लें। यह हालत पैदा हो सकती है। यह बिल्कुल पैदा हो जाएगी। क्योंकि मैं चौबीस घंटे खाली, बेकार मुश्किल में पड़ जाऊंगा। तो मैं किसी से कह सकता हूं कि आपके बगीचे में मैं दो घंटे काम करना चाहता हूं, आप कृपा करके ये पांच रुपये ले लें और मुझे दो घंटे काम कर लेने दें। यह आज हमें असंभव लगता है, लेकिन यह संभव हो जाएगा।
एफ्लुएंट सोसाइटी का अंतिम परिणाम यह होगा कि काम जो है वह खेल ही हो जाएगा। उससे ज्यादा कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। और हम लोगों को काम से रोकने के पैसे देंगे। यानी जो आदमी काम करने के लिए जिद्द बताएगा उसको कम पैसे मिलेंगे और जो आदमी कहेगा हम नहीं करने को राजी, उसको ज्यादा पैसे मिल जाएंगे। एफ्लुएंट सोसाइटी जैसे ही आटोमैटिक यंत्रों पर उतर जाएगी--अगर मैं कहता हूं कि मैं तो दो घंटे काम मांगूंगा ही मुल्क से, तो मुल्क मुझे कहेगा, हम आपको सौ रुपये देते हैं, और यह आदमी चूंकि काम मांगता ही नहीं, इसको हम दो सौ देते हैं। क्योंकि यह समाज पर बड़ी कृपा कर रहा है। यह काम की झंझट पैदा नहीं करता। क्योंकि काम कम होता चला जाएगा तो काम जो लोग मांगेंगे, स्थिति बिल्कुल उलटी हो जाएगी।
जैसे ही एफ्लुएंट सोसाइटी आती है, श्रम व्यर्थ हो जाएगा, श्रमिक व्यर्थ हो जाएगा। और तब श्रम एक आनंद हो जाएगा, जिसकी हम बहुत दिन से कल्पना करते रहे कि श्रम आनंद हो जाए। आदमी ऐसे श्रम करे जैसे खेल खेल रहा है। लेकिन यह हो नहीं सकता था पहले कभी--चाहे गांधी समझाएं, चाहे विनोबा समझाएं कि श्रम को आप आनंद समझो। यह बेहूदी बात है, समझा नहीं जा सकता। श्रम तभी आनंद हो सकता है जब मेरी जिंदगी की सब जरूरतें बिना श्रम के पूरी होती हों; श्रम करने की कोई भीतरी मजबूरी न रह जाए। तो ऐसा नहीं है कि आदमी बिना श्रम के जिंदा रह सकता, आदमी श्रम तो करेगा ही। और आज भी अगर एक आदमी को कोई श्रम नहीं है तो वह मछली ही मार रहा है जाकर नदी के किनारे बैठ कर। अब उसको कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है, वह मछली काहे के लिए मार रहा है? शतरंज ही खेल रहा है, अब इसमें मेहनत का कोई मतलब नहीं है, कि वह घंटों ताश ही फीट रहा है, इसमें कोई सेंस नहीं है। लेकिन आदमी बिना काम के नहीं रह सकता।
तो मुझे ऐसा लगता है कि सौ वर्ष में अब आंतरिक व्यवस्था इतनी विकसित
हो गई है कि हमें किसी गैर-लोकतांत्रिक ढंग से समाजवाद लाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। एफ्लुएंस लाने की चेष्टा करनी चाहिए। यानी एज ए बाई-प्रॉडक्ट, सोशलिज्म पीछे से आएगा और तब वह बड़ा सहज होगा। और मैं जिस तरह से कह रहा हूं उसी तरह से वह नॉन-वाइलेंटली आ सकता है, डेमोक्रेटिकली आ सकता

है। नहीं तो वह आ ही नहीं सकता है। फिर लाने के लिए हमें कुंदा लगाना पड़ेगा। जब तक प्रॉफिट मोटिव है तब तक हमें बंदूक या प्रॉफिट मोटिव, ऐसी च्वाइस करनी पड़ेगी।
और मैं मानता हूं कि प्रॉफिट मोटिव बहुत लोकतांत्रिक, भद्र उपाय है। जिसमें अगर एक आदमी चाहे कि मुझे लाभ नहीं चाहिए, तो उस पर कोई मजबूरी भी नहीं है। अगर मैं कहता हूं कि मुझे नहीं करोड़ रुपये कमाने हैं तो मैं घर में बैठ कर अपनी किताब पढ़ता रहूं, सौ रुपये कमाऊं, अपना खाने का इंतजाम कर लूं, बाद की फिकर छोड़ दूं। लेकिन बंदूक वाले समाज में मैं यह नहीं कह सकता। यहां व्यक्तिगत चुनाव का उपाय है। बंदूक वाले समाज में उपाय नहीं है।
आज सोवियत रूस में कोई संन्यासी नहीं हो सकता। सबसे बड़ा पाप है। एक-एक आदमी अगर कहे कि हम चार आदमियों से रोटी मांग कर ले लेंगे, तो यह सवाल नहीं उठता। वह फौरन उठा कर बंद कर दिया जाएगा। क्योंकि वहां तो बंदूक के कुंदे पर श्रम करना पड़ेगा आपको। यह सवाल ही नहीं है कि एक आदमी कहे कि मैं किताब पढ़ कर जिंदगी गुजार लूंगा, मेरे दो मित्र मुझे दो रोटी दे देते। यह गैर-कानूनी बात हो जाएगी।
व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपहरण करके समाजवाद लाने के पक्ष में मैं नहीं हूं। क्योंकि स्वतंत्रता का समानता से बड़ा मूल्य है। समानता को मैं स्वतंत्रता के ऊपर कभी भी नहीं रख सकता हूं। क्योंकि स्वतंत्रता है तो समानता भी लाई जा सकती है। लेकिन स्वतंत्रता को खोकर लाई गई समानता, फिर अगर हम बदलना भी चाहें तो बदल नहीं सकते। आज सिर्फ रूस में कोई बदलाहट नहीं हो सकती, कोई बगावत नहीं हो सकती, कोई विद्रोह नहीं हो सकता। यानी पहले दफे एक ऐसी सोसाइटी पैदा हुई है जो बगावत प्रूफ है, जिसमें आप भीतर से बगावत नहीं कर सकते। क्योंकि बगावत का विचार ही नहीं बो सकते। विचार बोया नहीं, आपने दूसरे से कहा नहीं कि आप गए। आपका पता ही नहीं चलेगा।
यह इतना बड़ा खतरा है कि इस खतरे के मुकाबले तो मैं कहता हूं, गरीबी- अमीरी को सहा जा सकता है। यह इतना बड़ा खतरा है कि इसका अंतिम परिणाम, अगर रूस जैसी सोसाइटी चलती है तो मेरी अपनी समझ है कि रूस में अब करीब-करीब वर्ण-व्यवस्था की स्थिति आ गई है। वर्ग-व्यवस्था तो मिट गई, वर्ण-व्यवस्था आ गई। अब जो आज हुकूमत में है जो वर्ग, करीब-करीब लेनिन का जो प्रोलिट ब्रू था, करीब-करीब उसी प्रोलिट ब्रू के आदमी पिछले पचास साल से हुकूमत कर रहे हैं। एक छोटा सा क्लीक, एक छोटा सा गु्रप हुकूमत कर रहा है। उस क्लीक में बीस करोड़ लोगों में से एक नया आदमी प्रवेश नहीं कर पाया है। स्टैलिन न रहे, ख्रुश्चेव न रहे, फलां-ढिकां सब हों, लेकिन एक ग्रुप है पचास-सौ आदमियों का जो छाती पर बैठा है, जो काम कर रहा है। उसी में से कोई आदमी हावी होता है। सौ आदमी एकदम से सत्ताधिकारी हो गए हैं। बीस करोड़ लोग कट-ऑफ हो गए हैं। और जो आज रूस में कम्युनिस्ट है, उसकी प्रतिष्ठा ब्राह्मण की है, बाकी सब शूद्र है पूरा मुल्क। बाकी मुल्क का कोई अर्थ नहीं है। दो वर्ग हैं आज-- वर्ण कहना चाहिए, वर्ग नहीं, क्योंकि वर्ग में एक लिक्विडिटी होती है। वर्ग का मतलब होता है, जिसमें बदलाहट संभव है। और वर्ण का मतलब है, जिसमें बदलाहट असंभव है; जो जन्मजात तय हो गया। तो अब वहां एक तो सत्ताधिकारी का वर्ग है और गैर-सत्ताधिकारी का वर्ग है। गैर-सत्ताधिकारी को हक है कि वह खाए, पीए, सोए। बोले न, सोचे न!
इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे सोचने--जैसा हिंदुस्तान में
हो गया था, शूद्र सोचे न, बोले न, पढ़े न। तो पांच हजार वर्ष में एक शूद्र ने प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा नहीं किया। अंबेदकर पहला शूद्र है, जिसमें कोई प्रतिभा है। पांच हजार साल में अंबेदकर अंग्रेजों की कृपा है, हमारे कारण से नहीं। पांच हजार वर्ष में इतने बड़े शूद्रों की जमात में एक प्रतिभा पैदा हो, वह भी अंग्रेजों की सुविधा से पैदा हो पाए, तो यह सोचने जैसा है कि इसका हुआ क्या कारण?
रूस में नीचे का जो वर्ग है, समाज जो है, वह अब प्रतिभा पैदा नहीं कर सकेगा। क्योंकि प्रतिभा बिना सोच-विचारे पैदा नहीं होती। और धीरे-धीरे रिफ्ट बड़ी होती जाएगी। आज प्रोलिट ब्रू के लोग हुकूमत करते हैं, कल इनके बच्चे करेंगे, परसों उनके बच्चे, रिश्तेदार। यह एक ग्रुप बन जाएगा, जो

करता रहेगा निरंतर। और अब इसके हाथ में इतने साधन है जितने साधन किसी सत्ता के हाथ में कभी भी नहीं थे। धन इनके हाथ में है, राज्य इनके हाथ में है, पुलिस इनके हाथ में है, मिलिटरी इनके हाथ में है, विज्ञान इनके हाथ में है, और वह जो नीचे जनता है उसके हाथ में कुछ भी नहीं है।
अभी इस पर बहुत विचार चलता है कि इस तरह के ड्रग्स खोजे गए हैं, जिनका मॉस-एप्लिकेशन हो सकता है, कि आपके गांव के रिजर्वायर में, पानी के झील में एक ड्रग डाल दिया जाए, जो गांव भर पीता रहे, तो छह महीने के बाद गांव में बगावत की वृत्ति न रह जाए। ट्रैंक्लाइजिंग हो कि वह पूरा का पूरा गांव जो है बगावत कर ही न सके, सोच ही न सके कभी। उसके भीतर से सारी की सारी नर्वस सिस्टम जो है, वह ट्रैंक्वेलाइज हो जाए। अब यह तो बड़ा मुश्किल का मामला है, इसका तो मतलब बड़ा, क्योंकि हमें पता ही न चलेगा कभी कि हमारे नल से जो हम पानी पी रहे हैं उसमें कोई ड्रग भी है। अब हम यह भी कर सकते हैं कि हम बच्चा पैदा हो, तभी उसमें के कुछ हिस्से काट लें, जो अस्पताल में घटित हो जाए, हमें कभी पता न चले। पैदा होते से जैसे हम ये वैक्सिनेशन लगाते हैं, पैदा होते से हम एक इंजेक्शन उसे दें, जो उसको सदा के लिए चिंतन की बगावत से मुक्त कर दे। वह कभी सोच ही न पाए विरोध में; क्योंकि विरोध में सोचने के लिए कुछ केमिकल जरूरी हैं बॉडी में। अगर वे केमिकल न रह जाएं तो आप विरोध में नहीं सोच सकते। आप हमेशा हां कह कर ही सोचेंगे।
इतनी बड़ी सत्ता के हाथ में ताकत आ जाए और स्वतंत्रता का कोई उपाय न रहे, तो मैं मानता हूं कि गरीबी-अमीरी को भी सह लेना बेहतर है, इतने बड़े उपद्रव को लेने का अब कोई कारण नहीं समझ में नहीं आता है। रूस में अगर यह व्यवस्था चलती है तो सौ वर्ष में शूद्रों का एक वर्ग पैदा हो जाएगा, जो कि जिसके पास कोई प्रतिभा, कोई बुद्धि, किसी चीज की जरूरत नहीं होगी। वह खाएगा, पीएगा, मोटा-तगड़ा होगा, स्वस्थ होगा, लंबी उम्र का होगा; मगर उसके पास कोई प्रतिभा और बुद्धि जैसी, इंटेलिजेंस कोई चीज नहीं रह जाएगी। या इंटेलिजेंस उसी मात्रा में रह जाएगी जो हां कह सकती है, ना नहीं कह सकती है।
तो इसलिए मैं मानता हूं कि एफ्लुएंट सोसाइटी के माध्यम से ही--इसलिए मैंने परसों कहा कि हिंदुस्तान में समाजवाद लाना हो, मास्को पहुंचना हो, तो वाया वाशिंगटन ही पहुंचा जा सकता है। और कोई उपाय नहीं है। मैं समझता हूं कि अमरीका में जो घटित हो रहा है वह बिल्कुल नैचरल प्रोसेस है। रूस में जो घटित हुआ है वह बिल्कुल अननैचरल प्रोसेस से घटित हुआ है, चीन में जो हुआ वह बिल्कुल ही अननैचरल प्रोसेस है, अस्वाभाविक प्रक्रिया है। और यह भी मेरी दृष्टि है कि अस्वाभाविक प्रक्रिया में ही हिंसा जरूरी होती है। स्वाभाविक प्रक्रिया ही अहिंसक हो सकती है। अस्वाभाविक प्रक्रिया का मतलब यह है कि जिसमें हमें वाइलेंस करनी पड़ेगी। तो अगर अहिंसात्मक ढंग से--और मैं मानता हूं कि अहिंसात्मक ढंग से ही कुछ भी लाने योग्य है तो आने देना चाहिए।
दूसरा भी मेरा कारण है। मेरा यह भी ख्याल है कि एक आर्थिक समानता तो ठीक है लेकिन बहुत गहरे में यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दो व्यक्ति समान नहीं हैं। असमानता एक बहुत वैज्ञानिक सत्य है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की स्वतंत्रता का भी हक है। यह तो इकोनॉमिक बात है और मैं मानता हूं कि समान सुविधा सबको मिल जानी चाहिए, लेकिन समान सुविधा भी इसीलिए मिलनी चाहिए कि मैं जो होना चाहूं वह हो सकूं, आप जो होना चाहें वह हो सकें। इसका गहरा मतलब यह हुआ कि समानता की सुविधा भी मैं इसलिए मांगता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति असमान होने को स्वतंत्र हो सके। और अगर हमने जबर्दस्ती समानता थोपी तो हमें वह मनोवैज्ञानिक भेद जो हैं उनके कोने भी झड़ा देने पड़ेंगे। और हमें एक-एक व्यक्ति को ऐसा बना देना पड़ेगा कि वह टाइप हो। क्योंकि वह जिस मात्रा में असमान होगा, उसी मात्रा में हमारी जो जबरदस्ती थोपी गई व्यवस्था है, उसमें बाधा डालेगा। तो इसलिए मैं नैसर्गिक विकास के पक्ष में हूं। पूंजीवाद जैसे नैसर्गिक ढंग से आया है, ऐसे नैसर्गिक ढंग से समाजवाद भी आना चाहिए। तो उसमें समानता भी आ जाएगी

एफ्लुएंस के द्वारा, और व्यक्ति असमान होने के लिए भी स्वतंत्र होगा। उसमें कोई बाधा न होगी।
हमें ख्याल में नहीं है कि अगर सारे व्यक्तियों को हम किसी तरह से बिल्कुल समान कर दें तो वह समाज इतना उबाने वाला होगा जिसका हिसाब नहीं है। अब माओ ने चीन में करीब-करीब कपड़े समान कर दिए हैं। कोई कपड़े की वैराइटी नहीं है चीन में। दो-चार तरह के कपड़े मिल सकते हैं, वही आपको पहनने होंगे। दफ्तर का एक तरह का कपड़ा है, घर का एक तरह का है। तो करीब-करीब पूरा मुल्क ऐसा लगता है जैसे कि एक मिलिटरी कैंप हो गया है। चेहरे खतम हो गए। यह आपने कभी ख्याल किया कि अगर सौ जवान मिलिटरी के खाकी ड्रेस पहन कर खड़े होते हैं तो आपको चेहरे दिखाई नहीं पड़ते। चेहरा मिट ही जाता है एकदम एक सी ड्रेस में। वह इंडिविजुअलिटी मिट जाती है। इसीलिए यूनिफार्मिटी, यूनिफार्म हम इसीलिए पहनाते हैं कि उसका व्यक्तित्व खत्म हो जाए। चंडीगढ़ है, नये नगर बस रहे हैं जो बिल्कुल यूनिफार्म हैं। तो बड़ी बोरिंग है, मोनोटोनस है। उन्हें थोड़ी देर देखने के बाद घबड़ाहट और ऊब शुरू हो जाती है। तो अगर हमने समानता की कोई अस्वाभाविक चेष्टा की तो हम एक मोनोटोनस समाज पैदा करेंगे, जिसमें से रस और वैविध्य भी नष्ट हो जाएगा। इसलिए मेरे लिए सवाल सिर्फ आर्थिक ही नहीं है, मेरे लिए सवाल मनोवैज्ञानिक भी है। और मनोवैज्ञानिक अर्थों में समानता बिल्कुल ही असत्य है, हो ही नहीं सकती। होनी भी नहीं चाहिए।
हां, आर्थिक समानता की सुविधा हमें एक दिन जुटानी चाहिए। वह भी तभी हम जुटा पाएंगे जब हम अतिरिक्त संपत्ति पैदा कर लेते हैं।

प्रश्नः लेकिन भारत की इतनी बड़ी गरीबी, यह पूंजीवाद लाने में तो बहुत वर्ष लगेंगे। उसका प्रचार कैसे करेगा? पूंजीवाद लाने का प्रचार कैसा होगा?

पूंजीवाद के प्रचार के लिए कुछ भी नहीं करना है। हमारे ख्याल में भर
एक बात आ जाए, तो पूंजीवाद तो अपनी गति से ग्रो कर रहा है। हम सिर्फ बाधा न डालें। और हम इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लें कि इसकी ग्रोथ हमारे हित में है। कुछ और प्रचार करने की जरूरत नहीं है। प्रचार हमें उसका करना पड़ता है जो अपने आप ग्रो न कर रहा हो। उसका प्रचार करने की कोई जरूरत ही नहीं है कि जवान आदमी बूढ़ा कैसे होगा। वह तो हो जाएगा। इसके प्रचार की कोई जरूरत नहीं है। वह तो सोसाइटी अपने आप पूंजीवाद के दौर में आ रही है, आएगी। अगर हम बाधा डालेंगे तो रुकेगी।
समाजवाद का प्रचार करना पड़ेगा, पूंजीवाद के प्रचार की कोई जरूरत ही नहीं। पूंजीवाद कोई सिद्धांत थोड़े ही है! पूंजीवाद समाज का सहज विकास है। समाजवाद एक सिद्धांत है। उसको हमें थोपना पड़ता है। पूंजीवाद तो बिल्कुल ही सहज प्रक्रिया से आया है, किसी ने प्रचार नहीं किया। पूंजीवाद को समझाने के लिए प्राफेट नहीं है। पूंजीवाद को समझाने के लिए कोई पार्टी नहीं है। पूंजीवाद को समझाने के लिए कोई फिलासफी नहीं है। पूंजीवाद तो सहज आया है। वह जिंदगी के रास्तों से आया है। वह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा है। हमें कुछ नहीं करना है, सिर्फ हम बाधा न डालें और हम सहयोगी हो जाएं और हम पूंजीवाद कैसे फैले शीघ्रता से, उसकी चिंता करें।
और आप यह ठीक कहती हैं कि इतनी पुरानी गरीबी है, इतनी पुरानी गरीबी को अगर जल्दी मिटाने की कोशिश की तो मैं नहीं मानता हूं कि मिट जाएगी। इतनी पुरानी गरीबी को मिटाने के लिए बहुत धैर्य की जरूरत है। समाजवादी में वह धैर्य बिल्कुल नहीं है। वह कहता है, हम आज ही मिटा देंगे। खतरा यह है कि आज मिटाने में वह कहीं और लंबा वक्त न लगवा दे! मैं मानता हूं, लंबा लगवा देगा। क्योंकि उसे पूंजी पैदा करने का कोई ख्याल ही नहीं है। आज हिंदुस्तान में जो समाजवादी है, उसका एक ही ख्याल है कि पूंजी का वितरण कर देना है। अब मजे की बात यह है कि पूंजी के वितरण से गरीबी नहीं मिटेगी। कितनी पूंजी है हिंदुस्तान के पास जिसका आप वितरण कर लेंगे? एक दस करोड़पतियों को, उनके पास पूंजी है, उसको उठा कर बांट दीजिए। यह पचास करोड़

की गरीबी में वह ऐसे खो जाएगी जैसे एक तालाब में हमने एक मुट्ठी भर रंग डाल दिया हो। उसका कोई पता नहीं चलेगा।

प्रश्नः लेकिन ये पूंजीवादी कैसे उनको पैसा दे देगा?

यह मैं कहता ही नहीं देने का, यह मैं कह नहीं रहा हूं। मैं तो कहता नहीं कि पूंजीवादी पैसा दे। यह मैं कहता नहीं हूं। आज अगर हम ले भी लें जबरदस्ती बंदूक के कुंदे पर, तो कोई हित नहीं है। हिंदुस्तान के समाजवादी मेरे ख्याल से बहुत बचकानी बुद्धि के हैं। एक तो उनको यह लगता है, उनके लिए बड़ा सवाल जो है वह क्रिएशन ऑफ वेल्थ का नहीं है, डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ वेल्थ का है--बड़ा सवाल जो है। मैं जितने समाजवादियों से बात करता हूं--उनके एक ही दिमाग में है कि पूंजी का वितरण कैसे हो, विभाजन कैसे हो। मजा यह है कि पूंजी हो तो वितरण भी हो। पूंजी है कहां जिसका वितरण आप करने को लगे हैं? दिख रही है आज दिल्ली में, अहमदाबाद में, बंबई में, तो हमें मुल्क का कोई ख्याल नहीं है। मुल्क का हमें कोई ख्याल ही नहीं है कि मुल्क इतनी बड़ी गरीबी से भरा है कि इतना ही हो सकता है कि दस-पांच जिनके पास पूंजी दिखाई पड़ रही है, उनको भी हम गरीब बना दें, बस। इससे ज्यादा कोई परिणाम नहीं होगा बांटने का। और बांटने की प्रक्रिया में पैदा करने का जो यंत्र है वह नष्ट हो जाएगा।
आपका यह कहना ठीक है कि हम पूंजीपति से कैसे ले लेंगे? मैं कहता नहीं लेने की जरूरत है। असल में पूंजीपति पूंजी ले कहां जाता है? यह जो हमको ख्याल है, यह भी हमको बड़ा अभी अजीब ख्याल है। अब बिड़ला कोई सोना थो.ेडे ही खाता है! अगर बहुत गौर से देखा जाए तो बिड़ला के पास जो अतिरिक्त संपत्ति आती है वह और संपत्ति को पैदा करने में लगती है। कोई खा तो सकते नहीं हैं, उसको करिएगा क्या?
आज बिड़ला के पास कोई साढ़े तीन सौ करोड़ रुपया है। इतनी संपत्ति पर उसकी मालकियत है आज। यह संपत्ति का करिएगा क्या? बिड़ला भी क्या करेंगे? कोई भी क्या करेगा? यह संपत्ति अंततः समाज को ही उपलब्ध होती चली जाती है। यह कहीं जाती नहीं। उत्पादन में लगती है, मंदिर बनता है कि धर्मशाला बनती है कि कालेज खुलता है कि स्कूल खुलता है, कि अस्पताल बनता है। हां, फर्क इतना पड़ता है कि उस अस्पताल पर सरकारी नाम न होकर बिड़ला का नाम होता है। और कोई फर्क होता नहीं। और बिड़ला जितना खाता है, जितना पीता है, उससे तीन सौ करोड़ का कोई लेना-देना नहीं है। वह तो एक करोड़ वाला क्या, पचास लाख वाला भी, पांच लाख वाला भी उतना खा-पी रह सकता है। उससे कोई सवाल नहीं है। पूंजीपति संपत्ति पैदा करता है। लगता हमें ऐसा है कि शोषण कर रहा है। अंततः वह समाज को ही दे जाता है, करेगा क्या? मेरी अपनी समझ यह है कि वह करता क्या है?
और एक व्यवस्था है जिसका हमें ख्याल में नहीं आता है। कोई परिवार तीन-चार पीढ़ियों से ज्यादा अमीर नहीं रहता। रह नहीं सकता। कि अगर मैं गरीब हूं तो संपत्ति इकट्ठा करने में लगता हूं। मेरा बेटा अमीर का बेटा होता है। वह संपत्ति को बांटने में लग जाता है। गरीब संपत्ति इकट्ठी करता है, अमीर बांटता है।
फोर्ड एक दफा इंग्लैंड आया, तो वह उतरा लंदन स्टेशन पर और उसने जाकर इंक्वायरी में पूछा कि यहां सबसे सस्ता होटल कौन सा है? तो इंक्वायरी वाले ने कहा कि मैं समझता हूं, आप हेनरी फोर्ड हैं। आपका फोटो, अखबार में मैं फोटो देखा हूं कल, और आप सस्ता होटल पूछते हैं? और आपका लड़का आता है, वह तो पूछता है, सबसे अच्छा होटल कहां है? तो उसने कहा, वह हेनरी फोर्ड का लड़का है। मैं गरीब आदमी का लड़का हूं। हमने इकट्ठी की है, वह बांटेगा। यानी वह तो करेगा क्या? यह बड़े मजे की बात है कि चार पीढ़ियों से ज्यादा कोई परिवार अमीर नहीं रहता। तीसरी-चौथी पीढ़ी बांट जाती है। वह जाएगी कहां संपत्ति? मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पूंजीपति पैदा भर कर पाता है। आखिर में बंट
तो वह समाज में जाती है। फिर पूंजीपति, जिसको हम कहते हैं विलास कर रहा है, वह भी समाज में वितरित होता है। एक पूंजीपति एक कार खरीदता है, दो कार खरीदता है, तो हमें लगता है कि पूंजीपति ने दो कार खरीद ली है। लेकिन दो

कार बनती हैं, दो कारखाने चलते हैं, दो कारखाने में इतने मजदूर काम करते हैं। वह पूंजीपति कार न खरीदे?
अगर हम गांधीजी की बात मान लें और सब सादगी से रहने लगें, पचास करोड़ लोगों में से कम से कम तीस करोड़ लोगों को मरना पड़े इसी वक्त। क्योंकि हमारा गैर-सादगी से रहना ही हमारे सारे उत्पादन की व्यवस्था है। आज अगर गांधीजी की बात मान ली जाए, तो मेरी अपनी समझ यह है कि चंगेज ने, तैमूर ने, हिटलर ने जितनी हत्या नहीं की, उतनी हत्या गांधीजी के सिर पड़ जाएगी। अगर हम चुकता ही मान कर राजी हो जाएं, सब सादगी से रहने लगें। इस समय कोई पचास प्रतिशत उत्पादन तो स्त्रियों के उपकरण बनाने में लगा रहता है। आधी मनुष्यता उससे पलती है। अगर गांधी की बात मान ली जाए, और स्त्रियां चूड़ी औरशृंगार, और सब छोड़ दें, पाउडर, साबुन, फलां-ढिकां, सब छोड़-छाड़ कर बिल्कुल सादी खड़ी हो जाएं। आधी जमीन आज मरने की हालत में पहुंच जाए। क्योंकि सारा उत्पादन का जो चक्र है, वह उत्पादन का चक्र एकदम ठहर जाए, पचास प्रतिशत तो उन्हीं चीजों को पैदा करना पड़ रहा है। इसलिए समझ तो यह कहेगी कि आप अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाएं ताकि आवश्यकताओं का उत्पादन बढ़े, ताकि उत्पादन में ज्यादा लोग संलग्न हों। ताकि ज्यादा लोग जी सकें और ज्यादा लोग भोजन पा सकें।
हमें ऊपर से दिखता है। उसका कारण यह है कि हम वैज्ञानिक ढंग से कम सोचते हैं, अमीर के प्रति एक ईर्ष्या और क्रोध का भाव ज्यादा है। वह बहुत सरलता से हो जाता है। एक आदमी सुख में और हम तकलीफ में हैं, लगता है कि मिटा दो इसको। इसकी फिकर कम होती है कि इसके सुख के मिटने से हमको सुख मिलेगा कि सिर्फ इतना होगा कि इसका सुख विदा हो जाएगा। और यह भी हमें ख्याल नहीं आता कि यह इतने सुख से रह रहा है तो इसके इतने सुख से रहने में इसके आस-पास भी सुख के वर्तुल इसको पैदा करने पड़ते हैं, नहीं तो रह नहीं सकता इतने सुख में।
एक आदमी बड़ा मकान बनाता है, तो ऐसा हमारा ख्याल यह है आमतौर से कि बड़ा मकान तब बनता है जब कि कुछ मकान छोटे हो जाते हैं। ऐसा नहीं है। बड़ा मकान बनता है तो कुछ छोटे मकान भी बनते हैं उसके आस-पास। अगर हम ठीक वैज्ञानिक ढंग से सोचें तो बड़ा मकान बनता है तो एक इंजीनियर को भी पैसा मिलता है, एक आर्किटेक्ट को भी मिलता है और एक मजदूर को भी मिलता है, और राज को भी मिलता है। एक बड़ा मकान न बनाओ तो ये दस आदमियों के छोटे-छोटे मकान चल रहे थे, इसी वक्त ठप्प हो जाएंगे।
तो मेरी अपनी दृष्टि यह है कि पूंजीवाद का एक ऐतिहासिक रोल है, वह पूरा कर रहा है। उसको क्रोध से लेने की जरूरत नहीं है, उसको समझ से लेने की जरूरत है, सांइटिफिकली सोचने की जरूरत है। अमरीका ने इतनी पूंजी पैदा की है... इसका परिणाम... इसका परिणाम यह हुआ है कि जिसको हम गरीब कहते हैं, ऐसा गरीब अमेरिका में नहीं रह गया। गरीब तो अमेरिका में है, पर वह गरीब बहुत और तरह का है। अमीर गरीब है हमारे लिहाज से तो।
अभी मेरे एक मित्र एक घर में ठहरे थे तो जिस टैक्सी को उन्होंने किया
था, जो ड्राइवर उनको घुमाता था, पंद्रह दिन उनके साथ था वह ड्राइवर। तो उसने कहा कि जाने के पहले एक दफा मेरे घर आप चाय लेंगे तो मुझे बड़ी खुशी होगी। उन्होंने कहाः मैं जरूर चलूंगा। तो वह जब उनको लेने आया तो वह दूसरी गाड़ी लेकर आया। तो उन्होंने पूछा कि आज तुमने गाड़ी बदल ली? उसने कहा कि वह तो मालिक की गाड़ी थी, टैक्सी थी। यह मेरी गाड़ी है। वे हैरान हुए कि यह गाड़ी उसकी टैक्सी से बेहतर थी। जब उसके घर गए तो वे दंग रह गए। उसकी पत्नी थी और वह था। दोनों ही हैं, नौ कमरे थे। उसका मार्बल फ्लोर था। उसका बाथरूम देख कर वे मुझसे... वे तो इंदौर के एक करोड़पति हैं, एक बड़ी मिल के मालिक हैं। वे मुझसे कहने लगे कि उसका बाथरूम देख कर मुझे ईर्ष्या हो गई। ऐसा बाथरूम तो मेरे पास भी नहीं है। पूरा मार्बल का था। और वह ड्राइवर था, टैक्सी ड्राइवर। टैक्सी ड्राइवर अब भी गरीब है अमरीका में। वह तुलना में गरीब है, लेकिन हमारे लिहाज से वह बहुत अमीर है।... शानदार हो गई है। वह सड़क पर चलती है तो आप यह नहीं कह सकते कि भंगिन है। आज कोई एलिजाबेथ भी उसके साथ खड़ी हो जाए तो कोई खास फर्क नहीं है। कोई फर्क नहीं है--बल्कि एक दफा एलिजाबेथ

उतनी शायद शानदार न मालूम पड़े। क्योंकि वह अभी भी पुराने ढांचे में खड़ी है, और भंगिन ने तो सारा नया रूप कर लिया है।
पूंजीवाद सहज विकसित होता चला जाए, तो अपने आप इतनी संपत्ति पैदा कर लेगा। और भी कई कारण हैं जिनकी वजह से मेरे ख्याल में है कि अतिरिक्त संपत्ति पैदा हो जाती है। एक तो संपत्ति संपत्ति को पैदा करती है, और यह बिल्कुल चक्रवृद्धि की तरह चलता है। यह ऐसा नहीं है कि एक दफे संपत्ति पैदा होनी शुरू होती है तो संपत्ति के नये वर्तुल संपत्ति शुरू कर देती है। फिर संपत्ति संपत्ति को पैदा करती चली जाती है--एक।
दूसरी बात यह है कि जैसे ही संपत्ति पैदा होती है, लोग बच्चों में कम उत्सुक हो जाते हैं और कम बच्चे पैदा करते हैं। सिर्फ गरीब ज्यादा बच्चे पैदा करते हैं। तो संपत्तिशाली समाज की जनसंख्या कम होने लगती है और संपत्ति फैलने लगती है। और इसके दोहरे परिणाम होते हैं क्योंकि अंततः अतिरेक हो जाता है। जनसंख्या कम होने लगती है और संपत्ति फैलने लगती है, संपत्तिशाली आदमी कम बच्चे पैदा करता है, दो-तीन कारणों से। एक तो सेक्स उसका अकेला एम्यू.जमेंट नहीं रह जाता। उसकी जिंदगी में और भी सुख आ जाते हैं। गरीब की जिंदगी में कोई सुख नहीं है। और एक ही सुख है जो मुफ्त मिलता है उसको, वह सेक्स है। तो वह ज्यादा बच्चे इकट्ठे कर लेता है। उसे कोई उपाय ही नहीं दिखता।
गरीब को यह भी आशा रहती है कि जितने ज्यादा बच्चे होते हैं, गरीब के लिए सहयोगी हैं। अमीर के जितने ज्यादा बच्चे होते हैं, अमीर के लिए दुश्मन हैं, क्योंकि अमीरी कम होती है। बच्चों के पैदा होने से अमीरी कटती है। अगर मेरे पास करोड़ रुपये हैं और चार बच्चे हो गए, तो पच्चीस लाख के ही आदमी रह गए। क्योंकि चार बच्चे पच्चीस-पच्चीस लाख बांट लेने वाले हैं। गरीब के चार बच्चे पैदा हो जाते हैं तो एक बच्चा बर्तन मांजता है, एक बच्चा ढोर चरा आता है, एक बच्चा गांव में काम कर आता है। गरीब अमीर होता है। तो गरीब बच्चों में उत्सुक है, जनसंख्या में उत्सुक है। उसकी समझ में नहीं आ सकता कि जनसंख्या कम होनी चाहिए। अमीर जनसंख्या में बिल्कुल उत्सुक नहीं रह जाता, बच्चों में उत्सुक नहीं रह जाता। और उसके सुख के साधन बढ़ जाते हैं। इसका आखिरी जो टोटल इफैक्ट होता है, वह होता है कि संपत्ति ज्यादा हो जाएगी और जनसंख्या कम हो जाएगी। और इससे एक समाजवादी व्यवस्था अपने से निकलेगी जो सहज होगी।
तो मैं कहता हूं कि दो सौ वर्ष--सौ वर्ष की हमें फिकर नहीं करनी चाहिए।
सौ वर्ष कोई बहुत वक्त नहीं है। जब पांच हजार साल से हम गरीब हैं तो सौ वर्ष की हमें फिकर करनी चाहिए, वह कोई बहुत बड़ा वक्त नहीं है, बल्कि बहुत जल्दी ही हो जाएगा। और अगर हमने पांच वर्ष में समाजवाद लाने की कोशिश की, तो मैं मानता हूं कि हम पांच हजार साल तक और गरीब न रह जाएं। महंगा सौदा हो जाएगा वह। इस वक्त बहुत धैर्य की जरूरत है। धैर्य कठिन है, यह भी मैं जानता हूं। मैं नहीं समझता कि मेरी बात सुनी जा सकेगी। धैर्य बहुत कठिन है।

प्रश्नः इस पर सोचें तो अभी जो इंदिरा जी कांग्रेस से अलग होकर जो सोशलिज्म की राह पर देश को ले जा रही हैं, वे गलत ले जा रही हैं?

एकदम ही गलत ले जा रही हैं। थोड़ा-बहुत नहीं, एकदम ही गलत ले जा रही हैं। लेकिन इंदिरा जी के बड़े फायदे में हैं और उनके साथी जो हैं उनके भी बड़े फायदे में हैं। देश का तो कोई उससे हित नहीं है। सच बात यह है कि बीस साल में इंदिरा जी और उनके पिताजी दोनों के पास एक ही टैक्टिक्स थी। कांग्रेस को मर जाना चाहिए था। उसका कोई अर्थ नहीं था आजादी के बाद, क्योंकि उसका काम पूरा हो गया था। नेहरू जी को भी जब भी दिक्कत दिखती कांग्रेस को बचाने में, तब वे समाजवाद की बात शुरू कर देते थे। जब परेशानी आती तब समाजवाद बचाता। उनकी बेटी उसी ट्रिक को और लंबा रही है। और लंबाना उसे पड़ेगा, क्योंकि बीस साल का फासला हो गया। अब बहुत शोरगुल मचाना पड़ेगा तभी ट्रिक काम करेगी, इतनी जल्दी काम नहीं करेगी। नेहरू जी कहते थे, समाजवाद, और ट्रिक काम कर जाती थी। उसको थोड़ा बहुत समाजवाद लाकर भी

दिखलाना पड़ेगा--कुछ नेशनलाइजेशन कर दे, कुछ यह कर दे, वह कर दे। तो यह अगला इलेक्शन कांग्रेस और जीत लेती है। लेकिन इसके बाद वह ट्रिक भी काम नहीं करेगी। पर मेरा मानना यह है कि यह पोलिटिकल स्टंट मुल्क के भविष्य के लिए महंगा है। इसमें इंदिरा जी को फायदा है, उनके कलीग्स को फायदा है और उनकी पूरी कंपनी को फायदा है, लेकिन इससे मुल्क को कोई फायदा नहीं है। और जनता आकर्षित हो जाएगी, यह भी ठीक है। जनता दुख में है, परेशानी में है और उसको तत्काल कोई लाभ मिले इसकी आशा है। पर मुझे नहीं लगता है इससे मुल्क को कोई फायदा होने वाला है, नुकसान होने वाला है।

देख कबीरा रोया
छब्बीसवां प्रवचन

गांधीवादः दरिद्रता का दर्शन

... मैं धर्म को जीवन के साथ परिपूर्ण रूप से समृद्ध देखना चाहता हूं।
आज तक तो धर्म और जीवन दो विरोधी बातें थीं। और मेरी प्रतीति है कि जीवन इसी विरोध के कारण अधार्मिक हुआ। अगर धर्म जीवन-विरोधी है तो जीवन अधार्मिक हो ही जाएगा। आज जीवन में जो भी बुराई और जो भी पतन दिखाई पड़ता है, उसके बुनियाद में यही कारण है कि जीवन को जो शुभ और सुंदर बना सकती थी दृष्टि, उसे हमने जीवन की शत्रुता बना रखा है। जैसे कोई जीवित व्यक्ति श्वास लेने का दुश्मन हो जाए; और फिर मर जाए इस कारण, क्योंकि वह श्वास लेने के विरोध में था। वैसी ही पूरी समाज की स्थिति हुई है।
लेकिन मैं जीवन और धर्म को एक ही मानता हूं और इसीलिए जीवन के समस्त पहलुओं पर सोचता हूं कि वे कैसे मनुष्य की आत्मा के ज्यादा निकट, सत्य के ज्यादा करीब, शांति और आनंद तक पहुंचाने वाले बन सकते हैं। इसी ख्याल से समाज और समाज की आर्थिक व्यवस्था के संबंध में भी थोड़ी सी बातें मैं आपसे करना चाहता हूं। साधारणतः साधुओं या संतों का सामाजिक और आर्थिक विषयों से कोई संबंध मालूम नहीं होता। स्वभावतः आपके मन में ख्याल आया होगा कि मैं सोशियो इकोनॉमिक, सामाजिक-आर्थिक जीवन-व्यवस्था के संबंध में क्या कहूंगा?
लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं कि सामाजिक जीवन-व्यवस्था और आर्थिक-व्यवस्था के संबंध में कुछ न कहना भी एक दृष्टिकोण है। समाज की आर्थिक-व्यवस्था जैसी चल रही है वह वैसी ही चलती रहे, जो लोग ऐसा चाहते हैं, वे लोग चुप रहेंगे।
आज तक के साधु और संत अगर चुप रहे हैं तो उसका कारण यह नहीं कि उनकी कोई दृष्टि नहीं सामाजिक और आर्थिक जीवन के प्रति; बल्कि जो चल रहा है वह ठीक है, ऐसी दृष्टि होने के कारण कुछ भी कहना जरूरी नहीं समझा गया।
मुझे दिखाई पड़ता है कि जो चल रहा है वह ठीक नहीं है। जो चलता रहा है वह ठीक नहीं था। और जिसकी अत्यधिक संभावना पैदा हो गई है भविष्य में चलने की वह भी ठीक नहीं होने को है। पूंजीवाद या तो मर चुका है या मरने के करीब है। पूंजीवाद के मरने से शायद किसी को बहुत दुख भी नहीं होगा। लेकिन पूंजीवाद के साथ कुछ अदभुत खूबियां थीं, वे भी उसके साथ मर जाएंगी, इससे घबड़ाहट होनी जरूरी है। पूंजीवाद ने मनुष्य को कुछ दिया था, वह भी उसके साथ ही छिन सकता है।
सारे जगत में विचारशील व्यक्ति--चाहे वे किसी वर्ग के हों--एक बात से
भर गए मालूम पड़ते हैं और वह यह कि व्यक्तिगत संपत्ति की व्यवस्था समाप्त होनी चाहिए। और इन सारे विचारों के पीछे एक विकल्प है, एक अल्टरनेटिव है, जो हर आदमी को दिखाई पड़ता है। और वह विकल्प हैः आने वाले भविष्य में हमें एक ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था करनी है जो समानता पर आधारित हो या स्वतंत्रता पर। शायद इससे ज्यादा महत्वपूर्ण चुनाव का मौका मनुष्य के इतिहास में कभी नहीं आया था।
अब तक हम ऐसा ही सोचते थे और फ्रेंच क्रांति ने इसी तरह का नारा दिया
था कि मनुष्य को समानता और स्वतंत्रता चाहिए। शायद क्रांति को नारा देने वाले लोगों ने कभी भी यह नहीं सोचा था कि समानता और स्वतंत्रता दो विरोधी बातें हैं, सेल्फ कंटरडिक्ट्री हैं। आपस में वे दोनों विरोधी हैं। अगर हम समानता की पूरी चेष्टा करें तो स्वतंत्रता का अंत हो जाना सुनिश्चित है। और अगर हम मनुष्य को पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ दें तो समानता किसी भी भांति स्थापित नहीं हो सकती है। क्योंकि स्वतंत्रता के भीतर असमान होने की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। और मनुष्य को समान करने की चेष्टा में, मनुष्य का जो मौलिक स्वभाव है उसका दमन करने के लिए जरूरी होगा कि हम स्वतंत्रता को समाप्त कर दें।
मनुष्य स्वभाव से असमान है। कोई दो मनुष्य समान नहीं हैं--न योग्यता में, न व्यक्तित्व में, न पात्रता में, न गुणों में--कोई भी दो मनुष्य समान

नहीं हैं। और किसी भी भांति उनको समान करने का कोई उपाय नहीं है, सिवाय इसके कि हम प्रत्येक व्यक्ति की सारी स्वतंत्रता छीन लें और जबरदस्ती समानता उसके ऊपर थोप दें। निश्चित ही पहले यह संभव नहीं था, आज यह संभव हो गया है, नये ड्रग्स हैं, ब्रेन-वॉश है, नई टेक्नालॉजी है, और मनुष्य के मन को और मनुष्य के स्वभाव को इस भांति से दमन किया जा सकता है कि मनुष्य के भीतर वह जो भिन्नता है वह समाप्त हो जाए और मनुष्य यंत्रों की भांति समान हो जाए या चींटियों की भांति समान हो जाए।
समाजवाद ने सारी दुनिया में जो ख्याल पैदा किया है, मनुष्य की समता का
जो मोह पैदा किया है, वह बहुत खतरनाक सिद्ध होने वाला है। अगर हमें यह ख्याल पकड़ गया कि मनुष्य को समान करना है सभी दृष्टियों से, तो मनुष्य का समाज धीरे-धीरे चींटियों के समाज में परिवर्तित हो जाएगा। क्योंकि समान करने की चेष्टा में हमें प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर देना जरूरी होगा। व्यक्तित्व ही भिन्न हैं। तो अगर हम मनुष्य को व्यक्तित्व से शून्य कर दें, उसकी सारी इंडिविजुअलिटी छीन लें, तो ही हम समान मनुष्यों का एक समाज खड़ा कर सकते हैं। लेकिन उस समाज का क्या मूल्य होगा जिसमें मनुष्य का व्यक्तित्व और आत्मा छिन गई हो?
और समानता से सारी दुनिया प्रभावित है। और हम तो बहुत, जो दरिद्र मुल्क हैं वे तो बहुत ज्यादा प्रभावित हैं। दरिद्रता में इस भांति प्रतीत होता है कि समानता आ जाएगी तो सब ठीक हो जाएगा। और कई बार ऐसा होता है कि जिन बीमारियों से लड़ने के लिए हम उपाय खोजते हैं वे बाद में बीमारियों से भी बदतर सिद्ध हो सकते हैं।
मैंने सुना है, एक आदमी का इलाज होता था। उसे कोई नई से नई दवा और औषधि
दी गई थी। लेकिन उसका दुष्परिणाम हुआ, और दुष्परिणाम को रोकने के लिए उसे फिर पहली दवा की विरोधी दवा दी गई। और उसका दुष्परिणाम हुआ और उसे उसकी विरोधी दवा दी गई। और वह आदमी इतना घबड़ा गया कि उसने डाक्टर से कहा कि डाक्टर, प्लीज गिव मी बैक माई डिसी.ज! मुझे मेरी बीमारी ही आप वापस लौटा दें तो अच्छा है!
मनुष्य-जाति समानता के आग्रह में उस हालत में पहुंच सकती है कि हमें लगने लगे कि वह हमारा पूंजीवाद वापस लौटा दें तो अच्छा है। लेकिन ध्यान रहे, जगत में कुछ भी वापस नहीं लौटता है। और यह भी ध्यान रहे कि पूंजीवाद तो जगत में अब नहीं टिक सकेगा, वह तो जाएगा; लेकिन पूंजीवाद जाएगा, इसका यह अनिवार्य मतलब नहीं है कि समाजवाद आएगा। लेकिन मार्क्स और उसके साथियों और उसके अनुयायियों ने इतने जोर का प्रचार किया है कि पूंजीवाद का जाना और समाजवाद का आना पर्यायवाची हो गए हैं, जो कि बड़ी अजीब बात है। पूंजीवाद जा सकता है और समाजवाद के आने की अनिवार्यता नहीं है, कुछ और भी लाया जा सकता है। लेकिन धीरे-धीरे हमें यह दिखाई ही पड़ना छूट गया कि पूंजीवाद के हटने के बाद सिवाय समाजवाद के क्या विकल्प है, क्या अल्टरनेटिव है।
और मैं आपसे कहता हूं, पूंजीवाद के पास अपनी एक व्यक्तिगत स्वतंत्रता है। एक-एक मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल उसे विकसित होने का मौका है। निश्चित ही असमानता इतनी ज्यादा है और दरिद्रता इतनी ज्यादा है कि इस असमानता के कारण और आर्थिक वैषम्य के कारण प्रत्येक व्यक्ति को पूरा मौका नहीं मिलता कि वह विकसित हो सके। स्वतंत्रता बहुत है, लेकिन स्वतंत्रता का उपयोग केवल वे ही लोग कर सकते हैं जो आर्थिक रूप से संपन्न हैं। विकल्प यह है कि हम सारे लोगों को आर्थिक रूप से राष्ट्र के विपन्न कर दें, राज्य के हाथ में सब कुछ सौंप दें। एक-एक व्यक्ति की व्यक्तिगत संपदा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सब राज्य के हाथों में चली जाए। समाजवाद का मूलभूत अर्थ होगा राज्यवाद। समाजवाद का मौलिक अर्थ होगा स्टेट कैपिटलिज्म। समाजवाद पूंजीवाद का ही दूसरा रूप है।
इसलिए जो लोग सोचते हैं कि समाजवाद पूंजीवाद के लिए विकल्प है, वे पहली तो गलत बात यह सोचते हैं कि वह विकल्प है; दूसरी बात वे यह गलत सोचते हैं कि वही अनिवार्य विकल्प है। समाजवाद पूंजीवाद का ही रूपांतरण है। और रूपांतरण खतरनाक है, क्योंकि पूंजीवाद में संपदा व्यक्तिगत है और समाजवाद में संपदा राज्य के हाथों में होगी, स्टेट के हाथों में होगी।

फर्क इतना पड़ेगा कि आज जो वर्ग-भेद है वह पूंजी के मालिक और मजदूर के बीच है, कल जो भेद होगा वह स्टेट के मैनेजर्स और जनता के बीच होगा। और अभी जो शक्ति बहुत से लोगों में विभाजित है, बहुत से पूंजी के मालिकों में, वह सारी की सारी शक्ति राज्य के हाथ में केंद्रित होगी।
इतना विभाजित होने पर भी पूंजीवाद नुकसान पहुंचा रहा है, तो जब वह एक
ही जगह जाकर केंद्रित हो जाएगा तो वह कितना नुकसान पहुंचाएगा, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। फिर, पूंजीवाद को बदलना संभव है, आसान है। अगर वह गलत है तो हम बदल सकते हैं। लेकिन एक बार समाजवाद स्थापित हुआ तो उसको बदलने की संभावना निरंतर क्षीण होती चली जाएगी। क्योंकि जब इतनी केंद्रित सत्ता होगी राज्य के हाथों में और सारे व्यक्तियों का व्यक्तित्व पोंछ दिया गया होगा और एक-एक व्यक्ति के पास लड़ने के लिए कोई सामर्थ्य शेष नहीं रह जाएगी, तो इस बात की बहुत संभावना है कि क्रांति कभी भी पैदा न हो सके।
एक बार दुनिया में कम्युनिज्म स्थापित हो जाए, फिर क्रांति कभी भी पैदा नहीं हो सकती। और कम्युनिज्म के हाथ में अगर पूरी ताकत हो राज्य के हाथों में, तो उसके पास अब नई शोधें भी हैं मनुष्य के मस्तिष्क को पूरी तरह रूपांतरित करने के लिए। बायोकेमिकली आदमी के पूरे व्यक्तित्व को बदलने के लिए और उससे एक आटोमेटा, एक मशीन की तरह काम लेने के लिए आज पूरी सुविधाएं उपलब्ध हो गई हैं। राज्य के हाथ में जिस दिन पूरी ताकत होगी, तो राज्य को सम्हालने वाले लोगों को रोकने के लिए कौन होगा कि वे आदमी की पूरी आत्मा को तोड़ न डालें?
इतनी ताकत आज राज्य को देनी सबसे ज्यादा खतरनाक है। पहले कभी इतनी खतरनाक नहीं थी; क्योंकि राज्य के पास आदमी की आत्मा को नष्ट करने का कोई उपाय न था। अब तक दुनिया में आदमी के शरीर कैदी बनाए गए थे और आत्मा सदा से स्वतंत्र रही थी। एक कैदी भी जेल के भीतर शरीर से बंधा हुआ था, लेकिन आत्मा से मुक्त था। वह ख्याल छोड़ दें अब! अब कैदी की आत्मा को भी बांधा जा सकता है और नष्ट किया जा सकता है। क्रांति की सारी संभावना रोकी जा सकती है, परिवर्तन की सारी संभावना रोकी जा सकती है।
ऐसे खतरनाक समय में इस देश में भी समाजवाद के विचार के प्रति लोगों का आकर्षण रोज गहरा से गहरा होता चला जा रहा है। जितनी दीनता बढ़ेगी, जितनी दरिद्रता बढ़ेगी, जितनी सामाजिक विपन्नता और परेशानी बढ़ेगी, हमें एक ही ख्याल सूझने लगेगा--समाजवाद, समाजवाद, समाजवाद। और शायद हम यह भूल ही जाएंगे कि समाजवाद के पूरे के पूरे अर्थ समाज के जीवन के लिए क्या हो सकते हैं।
मनुष्य के व्यक्तित्व में व्यक्तिगत संपत्ति एक बल देती है। जिस आदमी
से हमने व्यक्तिगत संपत्ति छीन ली, हमने उसके व्यक्तित्व का नब्बे प्रतिशत हिस्सा छीन लिया, उसके पास बल समाप्त हो गया। सच तो यह है कि विश्व में व्यक्तिगत संपत्ति पैदा होने की वजह से, प्राइवेट प्रॉपर्टी पैदा होने की वजह से पर्सनैलिटी पैदा हुई, व्यक्तित्व पैदा हुआ। जब तक व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी, आदमी का कोई व्यक्तित्व न था, समूह का व्यक्तित्व था। और अगर हम समूह के और राज्य के हाथों में वापस सारी संपदा दे देते हैं, तो फिर समूह का व्यक्तित्व होगा और व्यक्ति का कोई व्यक्तित्व नहीं होगा।
लेकिन कहेंगे हम कि विकल्प क्या है? और मार्ग क्या है?
समानता अगर हम लाते हैं तो स्वतंत्रता पूरी तरह नष्ट होती है। और अगर
हम पूरी तरह स्वतंत्रता देते हैं तो जीवन इतना दुख, दारिद्रय और परेशानी से भर जाता है। क्या इन दोनों के बीच कोई मार्ग नहीं हो सकता? क्या इतनी स्वतंत्रता हम स्थापित नहीं कर सकते कि प्रत्येक व्यक्ति को असमान और स्वयं होने की मुक्ति हो? और क्या इतनी समानता हम व्यवस्थित नहीं कर सकते कि समानता स्वतंत्रता का अंत न बने? क्या कोई नई जीवन रचना और व्यवस्था नहीं हो सकती है? क्या पूंजीवाद और समाजवाद, दो ही चिंतना के मार्ग हैं? नहीं; तीसरी एक जीवन चिंतना हो सकती है, उसे मैं मानववाद कहता हूं। एक ह्यूमेनिस्ट सोसाइटी हो सकती है। ह्यूमेनिस्ट सोसाइटी की या मानववादी समाज की रचना का मूलभूत आधार होगा कि व्यक्ति परम मूल्यवान है। समाज परम

मूल्यवान नहीं है, न ही संपदा परम मूल्यवान है। संपदा और समाज, दोनों का अल्टीमेट वैल्यू नहीं है, चरम मूल्य नहीं है। चरम मूल्य व्यक्ति का है, एक-एक व्यक्ति का है।
दूसरी बात होगी कि एक-एक व्यक्ति मूलतः, स्वभावतः असमान है और भिन्न है। और जो समाज-व्यवस्था व्यक्ति की भिन्नता को स्वीकार नहीं करती, वह व्यक्ति को नष्ट करने वाली बनेगी। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है और समाज इसलिए है कि प्रत्येक व्यक्ति को भिन्न होने का पूरा अवसर मिल सके--ईक्वल ऑपरच्यूनिटीज टु बी अनईक्वल! एक-एक व्यक्ति को स्वयं अपने भिन्न रूप से होने की समान सुविधा और व्यवस्था मिल सके।
उस समाज-व्यवस्था में पूंजी का मूल्य कम करना जरूरी है। न तो पूंजीवाद में पूंजी का मूल्य कम होता है और न समाजवाद में। समाजवाद में पूंजी का मूल्य पूंजीवाद से भी ज्यादा हो जाता है; क्योंकि पूंजी एक जगह जाकर सेंट्रलाइज और केंद्रित हो जाती है। और एक बार सारी पूंजी केंद्रित हो गई, तो जिन हाथों में पूंजी केंद्रित हो जाएगी उन हाथों को रोकने के लिए फिर कुछ भी उपाय नहीं है कि वे क्या करें और उन्हें कैसे रोका जा सकता है। निश्चित ही, अगर आदमी अपनी पूरी आत्मा को खोने को तैयार हो, तो हम उसे ज्यादा रोटी दे सकते हैं, ज्यादा अच्छा मकान दे सकते हैं, ज्यादा अच्छे कपड़े दे सकते हैं। लेकिन यह सौदा बहुत महंगा होगा। बहुत अच्छे कपड़े, बहुत अच्छी रोटी, बहुत अच्छे मकान, और सारी सुविधाएं अगर हम इस मूल्य पर देते हैं कि हम उसका व्यक्तित्व छीन लेंगे; तो मैं समझता हूं यह विकल्प वैसा ही होगा जैसा सुकरात ने कहा था कि मैं एक संतुष्ट सूअर होने की बजाय एक असंतुष्ट सुकरात होना पसंद करूंगा। सब भांति सुविधा मिल गई और आत्मा खोने की बजाय मैं नहीं सोचता कि कोई भी विचारशील लोग, इससे ज्यादा बेहतर यह पसंद करेंगे कि व्यक्ति की आत्मा जीवित रहे, व्यक्तित्व जीवित रहे, चाहे उसके लिए कितनी ही पीड़ा और परेशानी झेलनी पड़े।
हालांकि परेशानी झेलने की कोई अनिवार्यता नहीं है; कोई जरूरी नहीं है
कि हम परेशानी झेलें। समाज में जो इतनी विषमता है, इतना शोषण है, यह शोषण कम किया जा सकता है। यह शोषण अत्यंत कम किया जा सकता है। यह असमानता भी कम की जा सकती है। पहले यह संभव नहीं था, लेकिन टेक्नालॉजी के अदभुत विकास ने इसे संभव बना दिया है। मार्क्स को कभी भी ख्याल नहीं था कि सौ वर्षों के भीतर टेक्नालाजी इतनी विकसित हो जाएगी कि मनुष्य के श्रम का कोई सवाल ही नहीं रह जाएगा।
मनुष्य के श्रम का शोषण था पूंजीवाद। और मनुष्य के श्रम का शोषण न हो सके, इसलिए समाजवाद की कल्पना विकसित हुई थी, लेकिन टेक्नालॉजी ने मनुष्य को तो विदा कर दिया। तकनीक का विकास इस जगह ले आया है कि मनुष्य का श्रम उत्पादन में अनावश्यक हो गया है। इसलिए मनुष्य के श्रम का शोषण या मनुष्य के श्रम पर शोषण न हो और समान वितरण हो, दोनों बातें फिजूल हो गई हैं। आने वाले सौ वर्षों में तो हम एक ऐसी दुनिया बना सकते हैं जहां मनुष्य के श्रम का कोई सवाल न रह जाए। बल्कि हमें, जो टेक्नालॉजी से उत्पन्न होगा, जो स्वचालित तकनीक से उत्पादन होगा, उसका हम कैसे वितरण करें, इसके हमें नये ख्याल सोचने पड़ेंगे। क्योंकि अब तक यह था कि जो मजदूरी करता है उसे कुछ मिले, जो धन लगाता है उसे कुछ मिले, जो व्यवस्था करता है उसे कुछ मिले। लेकिन कल तो इन सबको विदा किया जा सकता है और तकनीक इन सबकी जगह ले सकता है। तो जो समाज में उत्पादन हो, उसके वितरण की क्या व्यवस्था हो? वह कैसे डिस्ट्रिब्यूट हो? किस आधार पर? क्योंकि किसी ने श्रम नहीं किया है बहुत, किसी ने बहुत व्यवस्था नहीं की है, या लाखों लोगों का श्रम एक आदमी ने किया है। और धीरे-धीरे विकास ऐसा हो सकता है कि उस एक आदमी को भी हम विदा कर दें और उस एक आदमी की जगह यंत्र-चालित मनुष्य काम को सम्हाल ले। सौ वर्षों के भीतर तकनीक का विकास उस जगह ले जाएगा जहां समाजवाद और पूंजीवाद, दोनों ही आउट ऑफ डेट हो जाते हों, उन दोनों का कोई सवाल नहीं रह जाता।
मेरी दृष्टि में, तकनीक के इस विकास ने एक मानववादी समाज-रचना का पहला सूत्र शुरू कर दिया है। वह यह कि समाज के उत्पादन पर न तो संपत्तिशाली के हक की कोई जरूरत है, न श्रम के मालिक के हक की कोई जरूरत है। समाज का

उत्पादन तो तकनीक से हो सकता है, मशीन से हो सकता है। और धीरे-धीरे मशीन मनुष्य को स्थांतरित करती चली जाएगी। यह जो उत्पादन होगा, यह किन आधारों पर वितरित हो? इसके वितरण का आधार ह्यूमैनिस्ट, इसके वितरण का आधार मानववादी चिंतन ही हो सकता है। किस मनुष्य को उसके व्यक्तित्व के, उसके भिन्न व्यक्तित्व के विकास के लिए कितना जरूरी है, किस मनुष्य को अपने भिन्न व्यक्तित्व को निर्मित करने के लिए कौन सी सुविधाएं जरूरी हैं, वे सब चिंतन की जा सकती हैं, उन सबकी व्यवस्था की जा सकती है। न तो अब जरूरी है कि पूंजीवाद रुके, न अब जरूरी है कि हम पूंजीवाद को समाजवादी दिशा में ले जाएं। अब जरूरी है कि हम इस दिशा में सोचें कि हम सारे लोग, जो इकट्ठे हैं एक बड़े परिवार में जिसे हम समाज कहते हैं, उसमें प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता कैसे सुरक्षित हो सके और प्रत्येक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को कैसे विकसित कर सके, उसके लिए आधार खोज लेने जरूरी हैं।
लेकिन उन आधारों पर चिंतन नहीं हो सकेगा, जब तक हम यह मान कर बैठ गए हैं कि पूंजीवाद तो जाएगा--चाहे हम खुशी से इसको मान कर बैठे हों और चाहे दुख से और उदासी से और उपेक्षा से--लेकिन एक भाव पैदा हो गया है कि वह जाएगा और समाजवाद आएगा। और मार्क्स ने जिस भांति कहा था कि वह इनइविटेबल है, वह अनिवार्य है उसका आना... निरंतर किन्हीं बातों को अगर दोहराया जाए, तो सिर्फ दोहराने की वजह से वे बातें सच मालूम होने लगती हैं।
मनुष्य के जगत में कुछ भी इनइविटेबल नहीं है; भविष्य में कुछ भी अनिवार्य नहीं है। भविष्य को हम निर्मित करते हैं।
हिटलर ने लिखा है अपनी आत्मकथा में, कि मैंने तो एक ही बात पाई कि बड़े
से बड़े असत्य को भी अगर बार-बार दोहराते चले जाएं तो वह धीरे-धीरे सत्य मालूम होने लगता है।
मार्क्स और उसके पीछे चलने वाले लोग सौ वर्षों से एक बात दोहरा रहे हैं कि समाजवाद एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है। वह आएगा ही। उसके रुकने न रुकने का कोई सवाल नहीं है। पूंजीवाद के बाद वह अनिवार्य चरण है। वे इतने दिन से चिल्ला रहे हैं इस बात को कि यह सबके मन में गहरे बैठ गई है कि वह अनिवार्य चरण है; वह आएगा; चाहे न चाहे वह आने को है।
मैं आपसे कहना चाहता हूं, भविष्य में कोई भी चरण अनिवार्य नहीं है। भविष्य बिल्कुल ही निश्चित नहीं है, कभी भी निश्चित नहीं है। और भविष्य हम निश्चित करते हैं। तो हम कैसा सोचेंगे, उससे निश्चय होगा भविष्य का। और भारत के लिए तो और भी विचारणीय है। क्योंकि भारत तो ठीक अर्थों में पूंजीवादी भी नहीं है। भारत तो ठीक अर्थों में अर्द्धसामंतवादी है, अभी भी फ्यूडलिस्ट है। अभी भी, भारत में पूंजीवाद जन्म गया, ऐसा कहना कठिन है। और इसलिए भारत की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में और भी दुर्भाग्य हो गया है। पूंजीवाद जन्मा नहीं है और पूंजीवाद की मृत्यु की बातें शुरू हो गई हैं। भारत में पूंजीवाद विकसित भी नहीं हुआ है और उसके गर्भपात का विचार, समाजवादी व्यवस्था, सोशलिस्ट पैटर्न और सारी बातें शुरू हो गई हैं।
भारत के जीवन को इससे बहुत ज्यादा नुकसान और हानि उठानी पड़ेगी। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो जाए, तो हम चिंतन और विचार भी कर सकते हैं। वह विकसित नहीं हुआ है और उसके विकास में बाधा पड़नी शुरू हो गई है, क्योंकि समाजवादी ढांचे को खड़ा करने की चेष्टा भी साथ में चलनी शुरू हो गई है। तो भारत एक अजीब परेशानी में पड़ गया है--न वह पूंजीवादी है, न वह समाजवादी है। पूंजीवाद के विकास के सारे चरण रोकने की कोशिश की जा रही है और समाजवाद को जबरदस्ती थोपने की भी कोशिश की जा रही है। समाजवाद अगर अनिवार्य चरण भी हो, जैसा मार्क्स कहता है, तो वह पूर्ण रूप से विकसित पूंजीवादी समाज में ही हो सकता है।
लेकिन मार्क्स की सारी भविष्यवाणियां फिजूल चली गईं। रूस में वह विकसित हुआ, जो बिल्कुल ही सामंतवादी समाज था। चीन में वह विकसित हुआ, जिसका अभी पूंजीवाद से कोई भी संबंध नहीं था। और बड़े से बड़े पूंजीवादी मुल्क अमेरिका में उसके कोई भी आसार नहीं हैं। सच तो यह है कि अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो, तो वह अनिवार्यरूपेण धीरे-धीरे, जो उसके भीतर छिपे हुए तत्व हैं स्वतंत्रता के, लोकतंत्र के, वे उसे एक मानववादी समाज

में रूपांतरित कर सकते हैं। लेकिन अगर जबरदस्ती की जाए तो वह रूपांतरण रोका जा सकता है और समाजवाद जैसी धारणा को थोपा जा सकता है।
रूस में कोई साठ लाख से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या करनी पड़ी। और चीन में वे कितनी हत्या कर रहे हैं, इसका शायद कभी कोई आंकड़ा स्पष्ट नहीं हो सकेगा। उतनी बड़ी हत्या करने के बाद जबरदस्ती--जैसे हम किसी बच्चे को मां के पेट से निकाल लें--समाजवाद पैदा कर लिया गया। फिर इतने वर्षों तक भी जबरदस्ती ही आदमी को दबा कर उसे विकसित करने की चेष्टा की गई। लेकिन इधर पांच-सात वर्षों से रूस का उत्पादन रोज नीचे जा रहा है और रोज रूस को लग रहा है कि ज्यादा दिन दबा कर हम आदमी से जबरदस्ती उसके स्वभाव के प्रतिकूल काम नहीं ले सकते हैं। और विचार पैदा हो रहा है। और आज चीन और रूस के बीच जो झगड़ा खड़ा हो गया है, उसके पीछे वही विचार है।
रूस धीरे-धीरे व्यक्तिगत संपत्ति की तरफ झुकाव ले रहा है। उसे लेना पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल जबरदस्ती थोपी गई कोई भी व्यवस्था अंतिम नहीं हो सकती है। या फिर उसे अंतिम बनाए रखने के लिए इतना श्रम करना पड़ेगा, इतनी मुसीबत उठानी पड़ेगी, इतनी हत्या और हिंसा करनी पड़ेगी कि वह हिंसा और हत्या महंगी पड़ सकती है। थोड़े दिन तक खींची जा सकती है। रूस के झुकाव व्यक्तिगत संपत्ति को थोड़ी सी सुविधा देने की तरफ हैं। सब भांति का उत्पादन गिरा है; खेती और गेहूं का उत्पादन भी गिरा है। उसे कनाडा और अमेरिका से इधर तीन वर्षों में गेहूं खरीदना पड़ा है। और अभी मैं एक लेख पढ़ता था, और किसी ने भविष्यवाणी की है, कि आने वाले उन्नीस सौ पचहत्तर में सारी दुनिया में संभवतः मनुष्य के इतिहास का सबसे बड़ा अकाल संभावित है। उस अकाल से हिंदुस्तान, चीन और रूस सर्वाधिक प्रभावित होने वाले मुल्क होंगे और अमेरिका को यह निर्णय करना पड़ेगा कि इन तीन मुल्कों में से किस एक को बचाए। ये तीनों इकट्ठे बचाए भी नहीं जा सकेंगे। और अगर रूस को बचना है तो उसे आने वाले सात वर्षों में रोज-रोज अमेरिका के निकट पहुंच जाना पड़ेगा। अगर भविष्य में कोई युद्ध भी हो सकता है तो वह रूस और अमेरिका को साथ लेकर चीन के साथ हो सकता है, रूस और अमेरिका के बीच युद्ध की संभावना खत्म है। और जैसे-जैसे रूस अमेरिका के निकट पहुंचेगा, वैसे- वैसे रूस को अपनी सारी जबरदस्ती की थोपी व्यवस्था को फिर विसर्जित कर देना पड़ेगा।
और हम इस देश में समाजवादी व्यवस्था को जबरदस्ती थोप देने के लिए आकुल हो गए हैं!
मैं यह आपसे कहना चाहता हूं, समाजवादी व्यवस्था तो आने वाले भविष्य में किसी देश के लिए लागू नहीं होगी, क्योंकि साइकोलॉजिकली मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल है। मनुष्य के भीतर, मनुष्य की पात्रता, उसकी योग्यता, उसके प्राण एकदम असमान हैं सारे लोगों से। वे सारी अभिव्यक्तियों में असमान हैं। और हम कितनी ही जोर-जबरदस्ती करें, वे नये-नये रास्ते खोज लेंगे असमान होने के। वे नये मार्ग खोज लेंगे असमान होने के। और अगर हम पूरी कोशिश करें और पूरा श्रम करें, तो जरूर हम रोक सकते हैं; लेकिन उस रोकने में आदमी की हालत वैसी हो जाएगी, जैसे वे चीन में कभी लोगों को सजा देते थे। तो एक लोहे की जैकेट पूरे शरीर पर कस देते थे। न हाथ हिल सकता था, न गर्दन हिल सकती थी, न कमर हिल सकती थी। और आदमी जरा भी नहीं हिल सकता था, लोहे से जकड़ देते थे। और वह जकड़ा हुआ आदमी दो दिन, चार दिन, पांच दिन, सात दिन खड़ा रहता था। न हिल सकता, न डुल सकता, सांस तक लेनी कठिन हो जाती थी। सजा देते थे उसे, और कन्फेस करवाने के लिए इस भांति बांध देते थे उसे।
अगर हमने किसी दिन इतनी जोर-जबरदस्ती करके आदमी को समान भी बना लिया,
तो वह करीब-करीब लोहे की जैकेट में बंद आदमी हो जाएगा। वैसे आदमी की सारी प्रफुल्लता, सारा आनंद, सारी खुशी, जीने का सारा रस छिन जाएगा। इसलिए मैंने कहा कि वह चींटियों का एक समाज हो सकता है। शायद चींटियां कभी समाजवाद पर पहुंच गई हैं और उन्होंने एक व्यवस्था पैदा कर ली है जो समता की है, लेकिन स्वतंत्रता की नहीं है।
हमें तो इस मुल्क में निर्णय लेना है आने वाले दिनों में कि हम क्या करें। और वह निर्णय अगर हम नहीं लेते हैं और अगर हवा पैदा नहीं करते हैं,

तो शायद हमारे बिना चाहे समाजवादी दृष्टिकोण हमारे ऊपर थोप दिया जा सकता है। लेकिन उसके विरोध में कोई उपाय नहीं किया जा रहा है, न कोई विचार किया जा रहा है, न कोई हवा पैदा की जा रही है। और न यह कहा जा रहा है कि स्वतंत्रता के मूल्य पर समानता को खरीदना धोखा है और बहुत महंगा सौदा है। लेकिन पूछा जाता है मुझसे कि इसका क्या मतलब है? इसका क्या यह मतलब है
कि जैसा पूंजीवाद चल रहा है, हम उसे वैसा ही सहते रहें और स्वीकार कर लें? नहीं; इसका यह मतलब नहीं है। पूंजीवाद की व्यवस्था लाई नहीं गई है, आई है। इस फर्क को समझ लेना जरूरी है। समाजवाद लाया जा रहा है, आया नहीं है। पूंजीवाद की व्यवस्था लाई नहीं गई है, आई है। कोई पूंजीवादी चिंतन, कोई पार्टी, कोई क्रांति, कोई दल चेष्टा नहीं किया है, कोई कैपिटलिस्ट मेनिफेस्टो नहीं रहा है कैपिटलिज्म के आने के पहले कि हम उसे समाज पर थोप देना चाहते हैं। समाज के नैसर्गिक विकास से पूंजीवाद उत्पन्न हुआ है। सच तो यह है कि आज तक का सारा समाज नैसर्गिक विकास से उत्पन्न हुआ था। समाजवाद पहली बार मनुष्य की चेष्टा का फल है। इसलिए आज तक की सारी सामाजिक व्यवस्था मनुष्य के प्राणों और स्वभाव के किसी न किसी भांति अनुकूल थी। आज पहली बार विचार करके हमने जो आरोपण किया है, वह किसी सिद्धांत के अनुकूल है, लेकिन मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है। तो अगर पूंजीवाद एक सहज व्यवस्था की तरह आया है, तो पूंजीवाद में कुछ तत्व है जो मनुष्य के प्राणों के अनुकूल पड़ता है। उस तत्व को विकसित किया जाना चाहिए। और पूंजीवाद अगर पीड़ा दे रहा है, तो जरूर उसमें कुछ तत्व है जो मनुष्य को कठिन पड़ रहा है और परेशान कर रहा है। उस तत्व को विदा किया जाना चाहिए।
कौन सा तत्व है जो पूंजीवाद में आज पीड़ा का कारण हो गया है?
ऐसा ख्याल है कि पूंजीवाद के कारण दरिद्रता पैदा हुई। हालांकि यह ख्याल बुनियादी रूप से गलत है। पूंजीवाद नहीं था तब दुनिया और भी दरिद्र थी। और जिनको आज हम दरिद्र कहते हैं, ये तो जिंदा भी नहीं रह सकते थे पूंजीवाद के पहले की दुनिया में, ये तो कभी के मर गए होते। जिनको हम आज पीड़ित कहते हैं, एक्सप्लायटेड कहते हैं, शोषित कहते हैं, ये तो जिंदा भी नहीं रह सकते थे।
शायद आपको ख्याल भी न हो कि हजारों साल तक दुनिया की आबादी दो करोड़ से आगे नहीं बढ़ सकी, सारी दुनिया की आबादी! बढ़ ही नहीं सकती थी। पहली बार पूंजीवादी श्रम ने, पूंजीवादी चिंतन ने, पूंजीवादी संपदा को पैदा करने की तीव्र चेष्टा ने इतनी संपदा उत्पन्न की कि दुनिया की आबादी बढ़ सकी। और इतनी शीघ्रता से बढ़ सकी कि आज दूसरा सवाल हमारे सामने खड़ा हो गया कि वह आबादी कम कैसे हो! दुनिया में आबादी का सवाल कभी भी नहीं था। बुद्ध के जमाने में दुनिया की आबादी दो करोड़ थी। और वह हजारों साल से उतनी थी। और वह उसके बाद भी सैकड़ों वर्ष तक उतनी ही रही। वह बढ़ नहीं सकती थी। क्योंकि इतने बच्चे पैदा होते थे, उनके लिए भोजन नहीं जुटाया जा सकता था, न कपड़े जुटाए जा सकते थे, न प्राण जुटाया जा सकता था, वे खत्म हो जाते थे। पहली बार, जो आज हमें शोषित दिखाई पड़ रहा है, वह बच सका है इसलिए कि संपदा पैदा हुई है।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वह शोषित बना रहे और दुखी बना रहे और पीड़ित बना रहे। संपदा और पैदा की जा सकती है और उसकी दरिद्रता मिटाई जा सकती है। लेकिन एक दृष्टि पैदा हो गई है कि संपदा को वितरित करना है और वितरण से बीमारी खत्म हो जाएगी।
वितरण से सब दरिद्र हो जाएंगे; बीमारी खत्म नहीं होती है। और संपदा पैदा की जानी चाहिए, कि थोड़े लोगों के पास संपदा है, इतनी संपदा पैदा हो कि धीरे-धीरे अधिक लोगों के पास हो, और फिर इतनी संपदा पैदा हो कि वह सब लोगों के पास पहुंच सके।
मानववादी समाज संपत्तिशाली लोगों का समाज होगा; जहां जो कल दरिद्र थे
वे भी धीरे-धीरे संपत्तिशाली हो गए हैं। और समाजवादी समाज दरिद्र समाज होगा; कल जो संपत्तिशाली थे, उनको भी बांट दिया गया है, वे भी धीरे-धीरे दरिद्र हो गए हैं। दो तरह की समानता फलित हो सकती है, एक समानता जो आपस में गरीबी को बांट लेने से उत्पन्न होगी और एक समानता जो संपदा को विकसित करने

से उपलब्ध होगी। और आज जो मोह संपत्ति पर इतना दिखाई पड़ता है आदमियों का, एक-एक व्यक्ति का अपनी संपत्ति पर इतना मोह, वह इस कारण नहीं है कि संपदा बहुत कीमती है, वह इस कारण है कि संपदा कम है। संपदा ज्यादा होगी तो वह मोह कम होगा। संपदा बहुल होगी तो वह मोह विलीन हो जाएगा। और संपदा सबके पास होगी तो संपदा के कारण जो आज न्यस्त स्वार्थ दिखाई पड़ता है, कि एक आदमी के पास ज्यादा संपत्ति है तो वह ज्यादा बलशाली हो जाता है, वह भी विलीन हो जाएगा।
एक बहुल संपदा से भरा हुआ समाज चाहिए। और बहुल संपदा को पैदा करने में पूंजीवाद ने जो अदभुत दान दिया है जगत को, उसका कोई हिसाब नहीं है। उसके लिए लेकिन उसे कोई धन्यवाद देने को भी दुनिया में नहीं है। कोई धन्यवाद देने को भी नहीं है कि उसने बहुल संपदा पैदा की है। अशोक के पास जो कपड़े नहीं थे वे आज मजदूर के पास हैं; और अकबर जो सुख नहीं भोग सकता था, आज दरिद्र से दरिद्र आदमी भोग रहा है। लेकिन इसके लिए धन्यवाद के लिए भी कोई देने को नहीं है। और ये सुख रोज बढ़ सकते हैं। लेकिन पुराने चिंतकों ने, पुराने धार्मिक लोगों ने दरिद्रता का बड़ा गुणगान किया था। और गांधी तक, वेद से लेकर गांधी तक दरिद्रता को बहुत आदर दिया गया। गांधी भी दरिद्र नारायण कहते थे। और जिसको आप नारायण कहेंगे उसको मिटाना बहुत मुश्किल है। जिसको भगवान मान लेंगे उसको मिटाइएगा?
दरिद्रता एक बीमारी है, एक महामारी है। दरिद्र नारायण नहीं हैं। अगर दरिद्र नारायण हैं, तो फिर हैजा नारायण और मलेरिया नारायण भी हमको खोजने पड़ेंगे।
लेकिन पिछले पांच हजार वर्षों में दरिद्रता को आदर दिया गया। और उस आदर देने के कारण थे। दरिद्रता मिटाने का कोई उपाय नहीं था और दरिद्र को संतोष देने के सिवाय कोई चारा नहीं था--कि दरिद्रता भी बड़ी बहुमूल्य है, एक आध्यात्मिक मूल्य है उसका। तो दरिद्रता को एक आदर दिया गया। धीरे-धीरे दरिद्र की संख्या जागरूक हुई, बड़ी हुई। सारे जगत में दरिद्र का बोध जगा, शिक्षा आई, समझ आई और साथ में एक ख्याल आया--जो कि बिल्कुल गलत ख्याल है--एक ख्याल आया कि दरिद्र आदमी इसलिए दरिद्र है, क्योंकि कुछ संपत्तिशाली लोगों ने उससे संपत्ति छीन ली है। हालांकि यह किसी ने नहीं पूछा कि दरिद्र के पास संपत्ति थी कब जो छीनी जा सके?
समृद्धशाली के पास जो संपत्ति है वह दरिद्र से छीन कर नहीं पाई गई है; दरिद्र के पास संपत्ति कभी थी ही नहीं। बल्कि दरिद्र के पास जो कुछ दिखाई पड़ता है, वह संपत्तिशाली के साथ उसने श्रम जो थोड़ा सा किया है, उसके कारण उसके पास है।
इंग्लैंड में चाइल्ड लेबर के दिन थे; छोटे बच्चे से अठारह-अठारह घंटे काम लेते थे। बुरा था यह कि छोटे बच्चों से अठारह घंटा काम लिया जाए। और हम आज गाली देंगे, अपराध मानेंगे इसको कि छोटे बच्चों से बारह घंटे, अठारह घंटे काम लिया जाए। तो पूंजीवाद पर एक कलंक का टीका लगा। लेकिन किसी ने नहीं पूछा कि अगर उन बच्चों को अठारह घंटे काम नहीं दिया जाता तो वे जिंदा रहते? दो ही विकल्प थेः या तो वह अठारह घंटे उनको काम मिले तो वे जिंदा रहते थे; या काम न मिले तो वे मरते थे। एक बात हमने देखी कि उनसे अठारह घंटे काम लिया जा रहा था; लेकिन दूसरी बात हमने नहीं देखी कि अठारह घंटे काम लिए जाने की वजह से वे जिंदा रह सके। वे बच्चे उसके दो सौ साल पहले जिंदा नहीं रहते थे, हजार साल पहले जिंदा नहीं रह सकते थे। काम लिया गया, वह बुरा था; लेकिन काम लेकर ही उनको जिंदगी मिली, उसका कोई ख्याल नहीं है।
निश्चित ही, एक दुनिया आनी चाहिए कि बच्चों से इतना काम न लिया जा सके। यह जो आज दरिद्र का इतना बड़ा वर्ग सारी दुनिया में दिखाई पड़ता है, इसके पास से संपत्ति छीनी नहीं गई है, इसके पास संपत्ति कभी थी ही नहीं। संपत्ति पैदा की गई है; संपत्ति किसी से छीनी नहीं गई है। पूंजीवाद ने संपत्ति को पैदा करने के उपाय खोजे हैं, पहली दफे डिवाइसेज खोजी हैं कि संपत्ति कैसे पैदा हो। और संपत्ति जब पैदा हो गई है तो ख्याल में आता है कि वह किसी से छीन ली गई है। वह किसी से छीनी नहीं गई है। दुनिया सदा दरिद्र थी। पहली दफा इधर दो सौ वर्षों में दुनिया के पास संपदा दिखाई पड़ती है। यह

संपदा कभी भी नहीं थी, यह दुनिया में कभी भी नहीं थी। संपदा और भी पैदा की जा सकती है। जिन मार्गों से इतनी संपदा पैदा की गई है, अगर उन मार्गों को और बलिष्ठ और पुष्ट और सहयोग दिया जाए तो संपदा और भी पैदा की जा सकती है। संपदा इतनी पैदा की जा सकती है कि एक भी आदमी दरिद्र न रह जाए। और इतनी संपदा पैदा करने की खोज की जानी चाहिए और हमारे मन में एक कल्पना होनी चाहिए आने वाले समाज की कि संपत्ति इतनी होगी कि कोई दरिद्र नहीं होगा। मौजूदा संपत्ति को बांट लेने से सिर्फ दरिद्रता बंटेगी, और कुछ भी नहीं होने वाला है।
लेकिन इस मुल्क में उस धारा में कोई चिंतन चलता हो, ऐस मुझे दिखाई नहीं पड़ता। कोई चिंतन भी चलता है, ऐसा भी दिखाई नहीं पड़ता। हमने कुछ पिटे- पिटाए नारे पकड़ लिए हैं और उनके अनुसार सत्ता जी रही है, राजनीतिज्ञ जी रहे हैं। और मुल्क की जीवन-व्यवस्था पर कुछ भी थोपने की कोशिश की जा रही है, जिसके कोई अच्छे फल आते नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। रोज जीवन-व्यवस्था नीचे गिर रही है और एक अनार्किक, एक अराजक समाज खड़ा होता चला जा रहा है। जिसमें न कोई काम करना चाहता है... और अगर मुल्क काम नहीं करेगा तो कैसे संपत्ति पैदा होगी? जिसमें काम करने के विचार कम और हड़ताल के विचार ज्यादा और बाधा डालने के विचार ज्यादा हैं, संपत्ति कैसे पैदा होगी?
लेकिन यह ख्याल पैदा किया गया है कि संपत्ति गरीब से छीनी गई है, उसका शोषण करके पैदा की गई है। और गरीब के पास कोई संपत्ति नहीं है। संपत्ति पैदा करने में इसलिए बाधा डाली जा रही है, क्योंकि हमारा शोषण किया जा रहा है।
शोषण किया जाता है प्रकृति का; न किसी गरीब का शोषण हुआ है, न किसी अमीर का। शोषण होता है प्रकृति का। वह जो चारों तरफ हमारे संपदा के अनेक स्रोत हैं उनका शोषण होता है, उनसे संपत्ति पैदा होती है। और आज तो उपाय ज्यादा हैं कि अगर हम एक संपत्तिशाली समाज पैदा करना चाहें तो पैदा कर सकते हैं। निश्चित ही, उस समाज को पूंजीवाद कहना गलत होगा। पूंजीवाद का नाम भी पाप और अपराध हो गया। उस समाज का पूंजीवादी ढांचा है भी नहीं उस समाज का। लेकिन उस समाज का एक मानववादी ढांचा है कि ऐसा समाज हम बर्दाश्त नहीं करेंगे जहां एक भी आदमी गरीब हो। गरीब मिटना चाहिए, गरीबी जानी चाहिए।
लेकिन भारत में गरीबी मिटी नहीं इतने दिनों तक, क्योंकि गरीबी के हम पक्षपाती रहे, गरीबी को हमने आदर दिया। दुनिया में सबसे पहले भारत ने गणित खोज लिया था, व्हील खोज लिया था, चाक खोज लिया था। दुनिया में सबसे पहले भारत ने भाषा खोज ली थी। दुनिया में सबसे पहले भारत के पास सर्वाधिक स्रोत थे संपदा पैदा कर लेने के। लेकिन भारत को एक फिलासफी, एक गलत जीवन-दर्शन सिखाया गया कि दरिद्रता में संतोष है, दरिद्रता ठीक है, जो है वह ठीक है। संपदा के विस्तार की कामना और योजना भारत के मन को नहीं दी गई। उसका परिणाम है कि भारत दरिद्र है। और वही विचार आज भी हमारे दिमाग में है। आज भी हमारे दिमाग में यह विचार है, ग्रामोद्योग, चरखा, न मालूम कितने तरह की बेवकूफियां हमारे दिमाग में हैं, जिनसे संपदा फिर पैदा नहीं होगी और देश दरिद्र ही बना रहेगा। और देश जितना दरिद्र बनेगा उतना ही दरिद्र का विद्रोह अमीर के प्रति होना स्वाभाविक है। और आज नहीं कल दरिद्र और समृद्ध के बीच एक उपद्रव हो और उस उपद्रव में जो थोड़ी सी संपदा मुल्क में पैदा करने की संभावनाएं हैं वे भी नष्ट हो जाएं।
तो भारत को एक तो विस्तार, समृद्धि, संपदा, और जीवन को जितना ज्यादा हम विकासमान कर सकें उसकी एक फिलासफी की जरूरत है। मेरी मान्यता है कि मनुष्य के अहित में दरिद्रता के विचार और आदर ने जितना काम किया है उतना किसी और बात ने नहीं किया है। मनुष्य की संपदा बढ़ने में रुकावट पैदा हो गई। इसलिए हम विज्ञान की खोज नहीं कर पाए। हमने कोई तकनीक की खोज नहीं की। और आज तकनीक के युग में भी हम बैठ कर चरखा कात रहे हैं। और विचार कर रहे हैं कि इस भांति हम मुल्क को समृद्ध बना लेंगे। और इस भांति हम सोच रहे हैं कि स्वावलंबी हो जाएंगे।

स्वावलंबन की बात फिजूल है। समाज का अर्थ है कि वहां कोई स्वावलंबी नहीं हो सकता। स्वावलंबी होने की चेष्टा सुसाइडल है। अगर एक आदमी स्वावलंबी होने की चेष्टा करे तो सिर्फ मरेगा, जी नहीं सकता। स्वावलंबन का कोई मतलब नहीं है। जीवन को चाहिए सबका सहयोग। जितना बड़ा सहयोग होगा उतनी बड़ी संपदा पैदा होगी। और एक-एक आदमी इस ख्याल में हो कि मैं अपने लायक पैदा कर लूं, तो वह दरिद्र ही जीएगा। पुरानी दुनिया इसीलिए दरिद्र थी। पूंजीवाद ने पहली दफा सहयोग, समूह और परावलंबन के द्वारा संपत्ति पैदा करने का उपाय खोजा। दुनिया दरिद्र थी; एक-एक आदमी अपने लिए चरखा कात रहा था, अपनी खेती पर दो जरा से टुकड़े में काम कर रहा था, अपना मकान बना रहा था, सोचता था पर्याप्त है।
पहली बार हम एक-दूसरे पर निर्भर हो जाएं; पहली बार हम एक-दूसरे पर इतने निर्भर हो जाएं कि यह ख्याल ही न रह जाए स्वावलंबन का कि मैं अपने पैर पर खड़ा हो जाऊं। अपने पैर पर आप कैसे खड़े हो सकते हैं? श्वास लेते हैं तो सारे जगत की हवाओं पर निर्भर हैं, रोशनी लेते हैं तो दूर सूरज पर निर्भर हैं। अभी सूरज ठंडा हो जाए तो हम यहीं ठंडे हो जाएंगे। हम क्या स्वावलंबी हो सकते हैं? सारा जगत एक इकट्ठी इकाई है। पूरी मनुष्यता एक इकाई है। स्वावलंबी होने की जरूरत नहीं है।
अगर संपदा पैदा करनी है तो उचित है कि बंबई में अगर कारें बनाई जाती हैं तो पूरा बंबई सिर्फ कारें बनाए। सारे हिंदुस्तान में पच्चीस जगह कार बनाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि वह सिर्फ अपव्यय है शक्ति का, और संपदा कम पैदा होगी उससे। एक ही नगर सारी कारें बनाए। सच तो यह है कि दुनिया में एक ही नगर सारी दुनिया के लिए कारें बनाए, यह उचित होगा। तो उस गांव में कुशलता पैदा होगी, इफिशिएंसी पैदा होगी। उस गांव में पैदाइश से ही बच्चे कुशल पैदा होंगे उस दिशा में, उस सारे गांव की हवा एक ही उत्पादन की होगी। वह सारी दुनिया को कारें दे।
निश्चित ही वह गांव स्वावलंबी नहीं हो सकता, क्योंकि वह सिर्फ कारें बनाएगा; गेहूं उसे किसी और से लेना पड़ेगा, कपड़े किसी और से लेने पड़ेंगे, फर्नीचर किसी और गांव से खरीदना पड़ेगा। लेकिन उस दिन दुनिया में इतनी संपदा पैदा हो जाएगी, जिस दिन हम वैज्ञानिक विधि से और तकनीक के विकास से और स्वावलंबन की नासमझी से भरी बात से मुक्त हो जाएंगे, इतनी संपदा पैदा हो सकती है कि दुनिया में किसी आदमी के दरिद्र होने का कोई कारण नहीं है। दरिद्रता मिटानी है और समृद्धि बढ़ानी है। और यह समृद्धि उतनी ही बढ़ सकती है जितनी एक-एक व्यक्ति को अधिकतम स्वतंत्रता होगी। स्वतंत्रता व्यक्ति के भीतर जो छिपी हुई शक्तियां हैं, उसे संघर्ष में रत करती है, उसे विकासमान करती है, स्वतंत्रता उसे मौका देती है कि वह जो हो सकता है, होने की चेष्टा करे।
स्वतंत्रता पूरी चाहिए और दरिद्रता को मिटाने का एक दर्शन चाहिए--इस देश को तो बहुत जोर से! नहीं तो हम हो सकता है कि... हम हजार साल की गुलामी से मुक्त हुए हैं; और कोई तीन-चार हजार वर्ष की गलत फिलासफी हमारी छाती पर सवार है, गलत जीवन-दर्शन हमारे ऊपर सवार है; और एक नई दुर्घटना हमारे ऊपर आ रही है, वह समाजवादी चिंतन है... तो हम दरिद्र ही रह जाएं। दरिद्रता को बांट लें और बड़े खुश हों। और इस दरिद्र समाज में फिर हमें वही सब उपद्रव, सारे आघात और सारी संभावनाएं भविष्य में झेलनी पड़ें, जिनको हम अतीत में झेलते रहे हैं।
तो मुझे लगता है कि समाजवाद नहीं है आने वाले भविष्य की जीवन-व्यवस्था। आने वाले भविष्य की जीवन-व्यवस्था है मानववाद। और मानववाद पूंजीवाद के विरोध में आने वाली व्यवस्था नहीं है, पूंजीवाद का ही सुसंगत विकास है। जहां पूंजीवाद की बीमारियां क्रमशः विदा हो जाएं और पूंजीवाद में जो भी श्रेष्ठ था वह क्रमशः उन्नत होता चला जाए, और इतनी संपदा पैदा हो सके कि दरिद्र न रहे। दरिद्र इसलिए नहीं है कि शोषण है, दरिद्र इसलिए है कि संपदा पैदा करने के हमारे उपाय क्षीण और कम हैं। संपदा हम जितनी पैदा कर सकेंगे उतना दरिद्र विदा होगा।

और मुझे यह भी नहीं दिखाई पड़ता कि क्लासलेस सोसाइटी या वर्ग-विहीन समाज कभी भी निर्मित हो सकता है, या होना चाहिए, या उचित है। नहीं, वर्ग-विहीन समाज कभी भी निर्मित नहीं हो सकता। संपदा अधिक होगी, वर्गों के फासले कम होंगे। संपदा इतनी बहुल हो सकती है कि वर्गों के फासलों का कोई वास्तविक अर्थ न रह जाए।
लेकिन अगर हमने वर्ग-विहीन व्यवस्था बनाने की चेष्टा की, तो उस व्यवस्था में हमें स्वतंत्रता खो देना पड़े और जबरदस्ती वर्गों को तोड़ने का उपाय करना पड़े। और वर्गों को तोड़ने की चेष्टा में एक नया वर्ग पैदा हो जाएगा जो तोड़ने वाला होगा। तो पुराने वर्ग नई शक्ल ले लेंगे। वहां पूंजीपति था, यहां मजदूर था। फिर यहां मजदूर होगा, सामान्य जनता होगी, और मैनेजर होगा, और व्यवस्थापक होगा, और नया वर्ग खड़ा हो जाएगा।
रूस में नया वर्ग खड़ा हो गया है। वर्ग तोड़े नहीं जा सकते, वर्ग तो "विदर अवे" होंगे, जैसा मार्क्स कहता है, शायद ठीक कहता है। लेकिन तोड़े नहीं जा सकते। अगर मनुष्य का स्वभाव विकसित होता चला जाए और संपदा इतनी बहुल हो जाए... जैसे आज पानी बहुल है, तो पानी की कोई मालकियत नहीं करता है। और न कोई यह कहता है कि यह नदी मेरी है, यह पानी मेरा है। लेकिन पानी अगर कम पड़ जाए तो पानी की मालकियत शुरू हो जाएगी। इतनी संपत्ति चाहिए जगत में, इतनी संपत्ति पैदा होनी चाहिए कि मालकियत का ख्याल फिजूल हो जाए। तो वर्ग "विदर अवे" होंगे, तो वर्ग की निर्जरा होगी, तो वर्ग झड़ जाएंगे, जैसे सूखे पत्ते झड़ जाते हैं।
लेकिन जब तक इतनी संपदा पैदा नहीं होती, तब तक हम एक ढांचे को बदल कर वर्ग-विहीन करेंगे, दूसरे ढंग का ढांचा और वर्ग खड़ा हो जाएगा। यह कभी होगा वर्ग-विहीन समाज, यह कहना मुश्किल है। लेकिन वर्ग का भेद धीरे-धीरे कम होता जा सकता है। सारे महत्वपूर्ण कामों के लिए वह अर्थहीन हो सकता है। और सच तो यह है कि जीवन में कुछ भी पूर्ण नहीं है। जीवन एक अनंत अपूर्ण यात्रा है। जिसमें हर घड़ी फिर नई अपूर्णता है, हर घड़ी फिर नई समस्याएं हैं, हर घड़ी फिर नई चुनौतियां हैं और उनको फिर झेलना है। अगर किसी भी दिन समाज पूर्ण हो जाएगा, तो मैंने जैसा कहा, वह चींटियों का समाज हो जाएगा। क्योंकि उसके आगे फिर विकास को कुछ शेष नहीं रह जाता है।
क्या इस संबंध में आप सोचेंगे? क्या इस संबंध में हम मुल्क में एक हवा खड़ी करेंगे? कि पूंजीवाद के गुण हैं, और पूंजीवाद के गुणों का सहज विकास होना चाहिए, और जो दुर्गुण हैं उन्हें विदा होना चाहिए। पूंजीवाद का एक ही दुर्गुण है कि पूंजीवाद अभी इतनी संपत्ति पैदा नहीं कर पाया है कि कोई भी दरिद्र न रह जाए। और इसलिए अगर पूंजीवाद को बचना है--और उसके साथ स्वतंत्रता को और व्यक्तिगत आजादी को और आत्मा को बचना है--तो कैसे अधिकतम संपदा पैदा हो सके, इस दिशा में हमें शोध, खोज और विचार करना जरूरी है।
और हमारे मुल्क में हालतें उलटी हैं। जिन चीजों की वजह से हम कभी भी संपत्ति पैदा नहीं कर पाए, उन्हीं चीजों को हम फिर सिर पर थोपे चले जा रहे हैं। हम फिर, जिनकी वजह से हम संपत्ति कभी पैदा नहीं कर पाए...
मैंने सुना है कि दक्षिण अमेरिका में एक छोटा सा आदिवासी समाज है। उस आदिवासी समाज में एक-एक आदमी अपने खेत पर काम नहीं करता। छोटे-छोटे खेत हैं और बीच-बीच में पहाड़ियां हैं, खाइयां हैं, फिर छोटे खेत हैं। लेकिन उनकी तीन-चार हजार वर्ष की संस्कृति यह है कि अपने खेत पर अकेले काम नहीं करना है, सब पास-पड़ोस के मित्रों को बुला कर काम करना है। तो आज एक खेत पर सारा गांव काम करेगा; फिर सारा गांव यात्रा करके जाएगा और दूसरे खेत पर काम करेगा; फिर यात्रा करके जाएगा और तीसरे खेत पर काम करेगा। फिर इतने लोग इकट्ठे होंगे, भीड़भाड़ होगी, बातचीत होगी, नाच-गाना होगा, स्वागत-समारंभ होगा। तो वह तीन हजार साल से एक ही दफे रोटी नहीं जुटा पा रहा है वह समाज। उसके पड़ोस में ही दूसरा समाज है। उसे यह बात फिजूल मालूम पड़ी कि एक खेत से दूसरे खेत के बीच के फासलों को पार करके सारे लोग इकट्ठे होकर वहां जाएं और वहां काम करें। फिर तीसरे खेत पर जाएं। इस तरह शक्ति और श्रम का अपव्यय हो। इससे तो उचित है कि अपने खेत पर ही आदमी पूरा काम करे। बगल में ही एक समाज है दूसरे आदिवासियों का, वह संपन्न होता चला गया है। और एक समाज

है, वह विपन्न होता चला गया है। लेकिन वह अपनी आदत से बाज नहीं आता। अभी भी वह अपनी आदत से बाज नहीं आता।
पश्चिम संपन्न होता चला गया, हम विपन्न होते चले गए। लेकिन हमने कभी सोचा नहीं कि हमारी कुछ गलत आदतें हैं जीवन के बाबत। हमने कभी सोचा नहीं कि हमारा दरिद्र होना स्वाभाविक परिणाम है हमारे विचार का। पश्चिम का समृद्ध होना उनका स्वाभाविक परिणाम है उनके विचार का। और आज पश्चिम के सामने हाथ जोड़ कर भीख मांगते हमको शर्म भी नहीं आती कि हम पांच हजार साल की पुरानी संस्कृति हैं और अमेरिका की सारी संस्कृति कुल तीन सौ वर्ष की है। तीन सौ वर्ष की एक बच्चा संस्कृति के सामने पांच हजार वर्ष की बूढ़ी संस्कृति भीख मांगे, और रोज भीख मांगती चली जाए और शर्मिंदा भी न हो। और मजा यह है, शर्मिंदा होना तो दूर, उलटा उनको कहे कि वे भौतिकवादी हैं और हम अध्यात्मवादी हैं। बेशर्मी की भी सीमाएं होती हैं, वे भी हमने तोड़ दी हैं! इस देश को एक सुसम्यक, सुसंगत, विस्तारवादी जीवन-चिंतन, जीवनवादी जीवन-चिंतन, समृद्धि और संपदा को पैदा करने का विचार। स्वावलंबन, चरखा और ग्रामोद्योग जैसी नासमझी की बातों से मुक्ति का प्रयास। तो हम संपदा पैदा कर सकते हैं। और यह देश, मैं एक रूसी लेखक की डायरी पढ़ रहा था, उसने लिखा तो मैं समझा कि कोई छापेखाने की भूल है। उसने लिखा कि मैं भारत गया और मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि भारत एक धनी देश है जहां गरीब आदमी रहते हैं। मैं समझा कि कोई छापेखाने की भूल हो गई। ए रिच कंट्री, व्हेयर पुअर पीपल लिव। फिर आगे पढ़ा तो मुझे ख्याल आया कि नहीं, भूल नहीं हुई है, वह यही कहना चाहता है। वह यह कहना चाहता है कि इतना संपदाशाली देश है, लेकिन मूढ़ता की वजह से गरीब आदमी वहां रह रहे हैं, वे संपत्ति पैदा नहीं कर पाए।
संपत्ति अगर हम शीघ्रता से पैदा नहीं कर पाए तो समाजवाद हमारे ऊपर आ
ही जाएगा। उससे सिर्फ दरिद्रता बंट जाएगी। सारा देश दरिद्र हो जाएगा। और सारे देश की छाती पर एक लोहे का शिकंजा हो जाएगा। सारी स्वतंत्रता खो जाएगी। लेकिन फिर पछताने से कुछ नहीं होगा, कुछ कदम ऐसे होते हैं जो कि वापस नहीं उठाए जा सकते।
एक छोटी सी घटना, मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
मोहम्मद के एक मित्र थे अली। अली ने एक दिन मोहम्मद से पूछा कि आदमी स्वतंत्र है या परतंत्र? तो मोहम्मद ने कहा, तू अपना एक पैर ऊपर उठा ले। तो अली ने अपना बायां पैर ऊपर उठा लिया। मोहम्मद ने कहा कि अब तू अपना दूसरा पैर भी ऊपर उठा ले। उसने कहा कि यह कैसे हो सकता है? मोहम्मद ने कहा, दायां पैर भी ऊपर उठा लो। उसने कहा, अब यह कैसे हो सकता है? लेकिन अगर मैंने बायां न उठाया होता, तो मैं दायां उठा सकता था। अब तो दायां नहीं उठा सकता, क्योंकि बायां मैं उठा चुका हूं।
तो मोहम्मद ने कहा, तू स्वतंत्र था उठाने के पहले। एक पैर उठाया कि दूसरा पैर जो नहीं उठाया उस संबंध में भी बंध गया।
अभी देश स्वतंत्र है कदम उठाने के पहले, और एक बार उसने समाजवादी कदम उठाया कि फिर दूसरा कदम उठाना बहुत मुश्किल हो जाएगा, वह बंध जाएगा। उसके पहले विचार कर लेना जरूरी है कि हम क्या कदम उठाना चाहते हैं। या सिर्फ हम हवा में घूमते हुए जो आटोसजेशंस सारे मुल्क में तैरते रहते हैं, सारी दुनिया में हवा में जो सुझाव तैरते रहते हैं, उन्हीं को पकड़ कर चल जाएंगे? या सोचेंगे-विचारेंगे और देश के लिए कोई नया जीवन-चिंतन, समाज-व्यवस्था, अर्थव्यवस्था के लिए कोई धारणा खड़ी करेंगे?
मैं समझता हूं मेरा ख्याल आपको स्पष्ट हुआ होगा। अगर कुछ आपको पूछने
को होगा तो पूछें।

प्रश्नः यह जो कहा तो इसके बारे में यह इतना सुनने में आया था कि चरखा कोई अर्थव्यवस्था है...

अगर ऐसा भी है तो गलत है। क्यों? क्योंकि हम जितने पुराने साधन उपयोग करेंगे उतनी ही कम संपदा उनसे पैदा होती है। नवीनतम साधन, नवीनतम तकनीक का प्रयोग करेंगे तो अधिकतम संपदा पैदा होती है। सवाल संपत्ति पैदा करने का

है। और जब एक बार हमारी दृष्टि यह हो जाती है कि चरखा चलाने से काम चल जाए, जब इधर दृष्टि पैदा हो जाती है कि बैलगाड़ी से सफर कर ले जो नहीं कर सकता है, तो जेट विमान बनाने की कल्पना और विचार क्षीण होता है। अगर मुल्क दरिद्र है और आदमी को काम नहीं है, तो हमें अधिकतम संपदा पैदा करने वाली व्यवस्था कैसे पैदा हो सके, उसका चिंतन करना चाहिए। हमें अगर सब्स्टीट्यूट मिल जाए तो हम वहीं खत्म हो जाते हैं।
एक आदमी कैंसर से बीमार है। और हम कहें कि गांव में तो ओझा ही मिलता है, तो अब बीमार है तो ओझा से ही इसका इलाज करवा दें। तो ठीक है, ओझा इलाज करेगा। लेकिन कैंसर ओझा से ठीक होने वाला नहीं है। और ओझा के इलाज के कारण हम कैंसर की जो खोज कर सकते थे कि उसका इलाज कैसे हो, वह भी हम नहीं कर पाएंगे। सब्स्टीट्यूट खतरनाक होते हैं।
अगर भारत गरीब है, तो मैं कहता हूं कि गरीबी से परेशान होना बेहतर है, सस्ते सब्स्टीट्यूट नहीं खोजने चाहिए। क्योंकि गरीबी की परेशानी हमें उस दिशा में ले जाएगी जहां हम गरीबी को मिटाने के लिए कुछ सोचें। लेकिन अगर सस्ते उपाय हमें मिल गए तो हम आगे भी नहीं बढ़ते हैं, बात वहीं खतम हो जाती है।
और यह जो चरखे की बात है, यह सिर्फ इतनी ही नहीं है जितना आप कहते हैं। उसके पीछे जीवन-दृष्टिकोण तो यह है--गांधी का जीवन-दृष्टिकोण तो यही है-- कि बहुत बड़े तकनीक और टेक्नालॉजी के वे पक्ष में नहीं हैं। वे इसलिए पक्ष में नहीं हैं कि टेक्नालॉजी अंत में सेंट्रलाइज करेगी। गांधी विकेंद्रीकरण के पक्ष में हैं। वे कहते हैं, डीसेंट्रलाइज होना चाहिए। तो चरखा जो है वह डीसेंट्रलाइजेशन का प्रतीक है उनका। एक बड़ी मिल होगी तो सेंट्रलाइजेशन होगा। और फिर अगर आटोमैटिक व्यवस्था होगी मशीनों की तब तो फिर बिल्कुल सेंट्रलाइज हो जाएगा।

सच तो यह है कि अगर सेंट्रलाइजेशन ठीक से हो, तो दुनिया के इतने अधिक लोगों को कपड़ा पैदा करने में लगा रखना बिल्कुल पागलपन है। कोई मतलब नहीं है इसका। और एक-एक आदमी चार-चार घंटे दिन में चरखा काते और साल भर में अपने लायक कपड़ा निकाल पाए, यह इतनी बेहूदी बात है--आध्यात्मिक अर्थों में भी! क्योंकि एक आदमी अगर साठ साल जिंदा रहता है, तो बीस साल तो वह सोने में गंवा देता है। कोई पांच साल खाना खाने में, कपड़े पहनने में, दाढ़ी बनाने में गंवा देता है। कुछ बातचीत करने में, सफर करने में गंवा देता है। साठ साल की जिंदगी में मुश्किल से एक आदमी के पास पंद्रह-बीस साल होते हैं, जिनको हम कहें कि उसके पास लिविंग स्पेस मिलती है उतने दिन के लिए। उसमें आप उससे चरखा कतवाइए और घर में जूते बनवाइए और साबुन बनवाइए घर की और घर का दंत-मंजन बनवाइए। तो आपने उसकी जान ले ली! उसकी जिंदगी में कोई समय नहीं बचा जब वह कुछ और हायर डायमेंशंस में सोचता, कुछ जीवन की ऊंचाइयों पर सोचता।
मैं आपको यह कहता हूं कि दुनिया में अध्यात्म दरिद्र मुल्क में कभी पैदा नहीं हो सकता। हिंदुस्तान अगर कभी आध्यात्मिक था तो वह इस कारण था कि उन दिनों हिंदुस्तान के पास समृद्धि थी थोड़ी सी संख्या के लायक। आपको शायद ख्याल में न हो, जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के लड़के हैं। बुद्ध राजा के लड़के हैं, राम, कृष्ण राजा के लड़के हैं, ये सारे राजाओं के लड़कों को कैसे कल्पना उठी अध्यात्म की इतनी?
सच तो यह है कि जब भौतिक जरूरत और भौतिक श्रम से आदमी मुक्त होता है,
तो पहली बार आत्मा ऊंचाइयों में यात्रा शुरू करती है। और मैं आपको कहना चाहता हूं कि आने वाले पचास वर्षों में अगर दुनिया बची, तो अमरीका दुनिया का सबसे बड़ा आध्यात्मिक मुल्क हो जाएगा, वह उसमें भी आपसे आगे निकल जाने वाला है। क्योंकि जितनी सुविधा होगी, जितना समय होगा, जितनी चेतना खाली होगी, उतना ही चेतना के लिए नये आयाम और नई दिशाएं खोजना जरूरी हो जाता है। अन्यथा क्या करेंगे आप? सारा अध्यात्म लेजर में पैदा हुआ है, विश्राम में पैदा हुआ है। और हम जिस अध्यात्म की बातें करते हैं खासकर गांधी जी, वे आदमी को श्रम में लगा देना चाहते हैं पूरी तरह से कि उसका चौबीस घंटे श्रम में लग जाए।

मैं आपको कहता हूं, वह आदमी शरीर के तल से कभी ऊपर नहीं उठ सकेगा। वह शरीर के तल पर ही जीएगा और मरेगा। सारा श्रम उसका शरीर के तल पर लग जाएगा। दरिद्रता मिटानी है, उस आदमी को काम भी देना है, वह ठीक है। लेकिन विधि खोजी जानी चाहिए जो सर्वाधिक नवीनतम, श्रेष्ठतम, अधिकतम उत्पन्न करने वाली, कम से कम श्रम लेने वाली हो।
लेकिन गांधी की दृष्टि यंत्र-विरोधी है। और चरखा उसका सिर्फ प्रतीक है। अगर गांधी का बस चले तो और बड़े यंत्रों को भी विदा करेंगे। क्योंकि उनका दूसरा ख्याल जो मैंने कहा स्वावलंबन का। बड़ा यंत्र परावलंबी बनाएगा। बड़ा यंत्र कैसे स्वावलंबी बना सकता है? और सच तो यह है कि स्वावलंबन की बात भी गैर-आध्यात्मिक है, ईगोइस्ट है। क्या वजह है कि मैं स्वावलंबी होने की चिंता करूं? क्या वजह है कि आप स्वावलंबी होने की चिंता करें? समाज है और समाज एक कम्युनल लिविंग है, वह हम सबका इकट्ठा जीवन है। उस इकट्ठे जीवन में स्वावलंबन की बात ही फिजूल है। जो मैं श्रेष्ठतम कर सकता हूं वह मैं करूं, जो आप श्रेष्ठतम कर सकते हैं वह आप करें और हम एक-दूसरे पर निर्भर हों।
और सच तो यह है कि हम जितने निर्भर होंगे उतने ही हम प्रेमपूर्ण होंगे। हम जितने निर्भर होंगे उतने ही हम निकट आएंगे। अगर सारी दुनिया में टेक्नोलाजिकली हम निर्भर हो जाएं एक-दूसरे पर, तो युद्ध असंभव हो जाएंगे। युद्ध इसीलिए होते रहे कि एक-एक मुल्क स्वावलंबी था। जैसे-जैसे दुनिया टेक्नालॉजिकली परस्पर निर्भर हो जाएगी--कि अमरीका आपको कार देगा, आप अमरीका को कपड़े देंगे, चीन आपको गेहूं देगा या रूस आपको मशीनें देगा-- उतना ही मुश्किल है युद्ध में उतरना। दुनिया से युद्ध मिटेगा, सिर्फ एक ही रास्ता है और वह यह कि दुनिया इतनी पर-निर्भर हो जाए कि किसी से लड़ कर हम जिंदा न रह सकें एक मिनट, तो युद्ध मिटेगा। नहीं तो युद्ध नहीं मिट सकता। गांधी जी की अहिंसा की बातों से युद्ध नहीं मिटने वाला। युद्ध मिटेगा, टेक्नालॉजी इतनी सेंट्रलाइज्ड हो जाए कि कोई मुल्क स्वतंत्र खड़े होने की हिम्मत न कर सके, कोई प्रदेश स्वतंत्र खड़े होने की हिम्मत न कर सके, कोई आदमी अलग खड़े होने की हिम्मत न कर सके। तो जगत में एक नये तरह का जीवन शुरू होगा जो युद्धहीन होगा और एक नये तरह की शांति उत्पन्न होगी। मैं पक्ष में नहीं हूं विकेंद्रीकरण के और आध्यात्मिक कारण मानता हूं विपक्ष में होने के। और वह चरखा उतनी ही बात नहीं है, उसके पीछे पूरी फिलासफी है गांधी की। गांधी के लिए चरखा सिर्फ प्रतीक है, और पूरा दर्शन है उसके पीछे उनका।

प्रश्नः आपके विचार तो बहुत क्रांतिकारी हैं और आपने उनको बड़े स्पष्ट रूप से रखा है। इन विचार के प्रचार की कुछ योजना भी आपके सामने है?

वह आप सोचेंगे, इसी ख्याल से मैंने विचार रखा। मेरे पास तो कोई योजना नहीं है। विचार मेरे पास हैं। प्रतीक्षा में हूं उन मित्रों की जिनकी योजना होगी तो मेरे विचार काम में आ जाएंगे। मेरे पास कोई योजना नहीं है। विचार मेरे पास हैं, वह मैं कह सकता हूं, समझा सकता हूं। योजना तो कुछ मित्र इकट्ठे होंगे तो बनेगी। तो वह भोगी भाई का यही ख्याल था कि यहां कुछ मित्र मिलेंगे तो कुछ सोचेंगे। उसी ख्याल से। मेरे पास योजना नहीं है। हो भी नहीं सकती। ख्याल मेरे पास कुछ हैं, अगर वे ठीक लगेंगे मित्रों को तो मैं मानता हूं कि वे मित्र अपने आप आ जाएंगे जो योजना बना सकेंगे।

प्रश्नः अभी तक इस दृष्टिकोण से कुछ कार्य नहीं हुआ?

नहीं, कोई भी कार्य नहीं। मैं मुल्क में जगह-जगह मित्रों से थोड़ी बात
कर रहा हूं। और चूंकि मेरी दृष्टि जीवन के सभी पहलुओं पर है, इसलिए और कठिनाई है। कहीं मित्रों से सेक्स के बाबत बात करता हूं, क्योंकि मेरे उस संबंध में कुछ और ख्याल हैं। कहीं मित्रों से धर्म के बाबत बात करता हूं, क्योंकि मेरे उस संबंध में और ख्याल हैं। कहीं...

([illegible])

देख कबीरा रोया
सत्ताईसवां प्रवचन

गांधी पर पुनर्विचार

मेरे प्रिय आत्मन्!
डाक्टर राममनोहर लोहिया मरणशय्या पर पड़े थे। मृत्यु और जीवन के बीच झूलती उनकी चेतना जब भी होश में आती तो वे बार-बार एक ही बात दोहराते। बेहोशी में, मरते क्षणों में वे बार-बार यह कहते सुने गएः मेरा देश सड़ गया है, मेरे देश की आत्मा सड़ गई है। यह कहते हुए ही उनकी मृत्यु हुई। पता नहीं उस मरते हुए अदभुत आदमी की बात आप तक पहुंची है या नहीं पहुंची। लेकिन राममनोहर लोहिया जैसे विचारशील व्यक्ति को यह कहते हुए मरना पड़े कि मेरा देश सड़ गया, मेरे देश की आत्मा सड़ गई है, तो कुछ विचारणीय है।
क्यों सड़ गई है इस देश की आत्मा? किसी देश की आत्मा सड़ कैसे जाती है? जिस देश में विचार बंद हो जाता है उस देश की आत्मा सड़ जाती है। जीवन का प्रवाह है, विचार का प्रवाह है। और जीवन का प्रवाह जब रुक जाता है, विचार का प्रवाह जब रुक जाता है, तो जैसे कोई सरिता रुक जाए और डबरा बन जाए, फिर वह सागर तक तो नहीं जाती, डबरा बन कर सड़ती है, गंदी होती है, सूखती है। कीचड़ और दलदल पैदा होता है। इस देश में विचार की सरिता रुक कर डबरा बन गई है। हमने विचार करना बंद कर दिया है। हम तो विचार से भयभीत हो गए हैं, ऐसा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि विचार से हमारे भीतर कोई डर पैदा हो गया है। हम विश्वास की बात करते हैं, विचार की जरा भी बात नहीं करते हैं। विचार करने में भय क्या हो सकता है? विचार करने से इतने डरने की, इतने कंपने की बात क्या है? गांधी वर्ष-शताब्दी चलती है। मैंने पिछले दो अक्टूबर को कुछ मित्रों को यह कहा कि यह वर्ष बड़े मौके का है। इस पूरे वर्ष गांधी पर विचार किया जाए तो अच्छा। क्योंकि गांधी से बड़ा व्यक्ति संभवतः भारत के इतिहास में खोजना मुश्किल है। संन्यासी हुए हैं बहुत बड़े, त्यागी हुए हैं बहुत बड़े, धर्मात्मा हुए हैं बहुत बड़े, लेकिन धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति जीवन के बीच खड़े रहे हों, जीवन के संघर्ष में लड़े हों, राजनीति से भाग न गए हों, ऐसे गांधी अकेले आदमी हैं। ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्ति पर क्या हम विचार नहीं करेंगे? नहीं; मित्रों ने कहा कि विचार तो बहुत होगा--सभाएं होंगी, प्रवचन होंगे, पुस्तकें छपेंगी, करोड़ों रुपया खर्च किया जाएगा। मैंने उनसे कहा, उसमें विचार जरा भी नहीं होगा सिवाय प्रशंसा के।

प्रशंसा विचार नहीं है। न ही निंदा विचार है, न प्रशंसा विचार है। मित्र और भक्त प्रशंसा करते हैं, शत्रु और दुश्मन निंदा करते हैं; लेकिन न शत्रु विचार करते हैं, न मित्र विचार करते हैं। विचार निंदा और प्रशंसा से भिन्न बात है। विचार है तटस्थ आलोचना, विचार है सृजनात्मक आलोचना, विचार है क्रिएटिव क्रिटीसिज्म। निंदा का तो कोई सवाल ही नहीं है। प्रशंसा चलेगी वर्ष भर तक। प्रशंसा से क्या हित होगा? हमारा या गांधी का, किसका? गांधी की हम कितनी ही प्रशंसा करें, उन्हें और बड़ा नहीं बना सकते हैं। गांधी की हम कितनी ही निंदा करें, उन्हें हम छोटा नहीं बना सकते हैं। गांधी की निंदा से हम बड़े नहीं हो जाएंगे और न गांधी की प्रशंसा से हमारी आत्मा को कोई लाभ होने वाला है।
लेकिन गांधी पर अगर विचार हो तो इस देश की आत्मा को गति मिल सकती है।
लेकिन विचार करने को कोई राजी नहीं है। मैंने कुछ बातें कहीं कि उन मुद्दों पर गांधी पर विचार होना चाहिए, तो बंबई के पत्रकारों ने उन्हें इस तरह गलत और विकृत करके छापा कि जब मैं महीने बाद बंबई पहुंचा तो मैं तो हैरान रह गया।
मुझे उन पत्रों को देख कर एक बात याद आई। वेटिकन का पोप अमरीका गया था। न्यूयार्क के हवाई अड्डे पर उतरने के पहले उसके मित्रों ने उससे कहा, और तो सब ठीक है, पत्रकारों से सावधान रहना। अगर वे कुछ पूछें तो बहुत सोच-समझ कर उत्तर देना। वेटिकन के पोप ने कहा कि सोच-समझ कर उत्तर देने का क्या

मतलब? तो उनके साथियों ने कहा, जहां तक बने, हां और न में उत्तर मत देना। जहां तक बच सको प्रश्न से तो बचने की कोशिश करना। जैसा कि राजनीतिज्ञ हमेशा करते हैं, राजनीतिज्ञ कभी हां और न में उत्तर नहीं देते। क्योंकि हां और न में पीछे कमिटमेंट होता है, कोई झंझट हो सकती है। राजनीतिज्ञ ऐसा उत्तर देता है कि जब जैसी जरूरत पड़ जाए वैसा उससे अर्थ निकाला जा सके। वह गोल-मोल उत्तर देता है।
तो वेटिकन के पोप के मित्रों ने कहा कि आप गोल-मोल उत्तर देना। ऐसा कुछ उत्तर देना कि जो भी मतलब पीछे चाहे निकाला जा सके। या अगर कुछ समझ न पड़े तो बचने की कोशिश करना। जैसे ही हवाई अड्डे पर पोप उतरा, पत्रकारों ने उसे घेर लिया। और उन पत्रकारों ने पहला प्रश्न जो पूछा पोप से, वह यह पूछा कि वुड यू लाइक टु विजिट एनी न्यूडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? क्या आप कोई नंगे लोगों का क्लब देखना पसंद करेंगे, जब तक आप न्यूयार्क में हैं? वेटिकन का पोप समझा कि आई झंझट। अगर मैं हां कहूं तो वे कहेंगे कि वेटिकन का पोप अमेरिका की नंगी औरतें और नंगे लोगों को देखने के लिए आया हुआ है। अगर मैं कहूं कि नहीं मैं नहीं देखना चाहता, तो कहेंगे, वेटिकन के पोप इतने डरते हैं नंगी औरत और नंगे आदमी को देखने से, जरूर कोई मामला होना चाहिए। तो वेटिकन के पोप ने कहा कि कुछ ठीक सीधा-सीधा उत्तर देना उचित नहीं है, घबड़ाहट में उसने दूसरा ही प्रश्न पूछ लिया। उसने यह पूछा कि इ.ज देयर एनी न्यूडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? कोई नंगे लोगों का क्लब है न्यूयार्क में? ताकि सीधा कुछ कहना न पड़े। फिर बात टल गई। वह बड़ा खुश हुआ। लेकिन दूसरे दिन अखबारों के मुखपृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में क्या छपा था? छपा था कि महामहिम, परम पूज्य पोप ने हवाई अड्डे पर उतरते ही जो पहला प्रश्न पत्रकारों से पूछा वह यह है कि इ.ज देयर ऐनी न्यूडिस्ट क्लब इन न्यूयार्क? आते ही अड्डे पर पहली बात वे महापुरुष यही पूछने लगे कि नंगे लोगों का कोई क्लब है न्यूयार्क में?
पत्रकारों से मैंने गांधी के संबंध में जो बातें कही थीं, बंबई लौट कर मुझको पता चला कि वेटिकन के पोप को जैसा अनुभव हुआ होगा, वह कैसा अनुभव हुआ होगा? मेरी बातों को इतना ही बिगाड़ कर, तोड़-मरोड़ कर प्रसंग के बाहर उपस्थित किया। उसका जोर से प्रचार किया। मैं हैरान हुआ कि इसके पीछे क्या कारण हो सकता है? अभी जब गुजरात गया तो कारण पता चला। मोरारजी देसाई, देबर भाई, काका कालेलकर, स्वामी आनंद जैसे प्रतिष्ठित लोगों ने भी मेरे विरोध में वहां भाषण दिए। तब मेरी समझ में आया कि गांधी के संबंध में विचार करने में गांधीवादी को डर है। गांधी का डर नहीं है, क्योंकि गांधी पर विचार अंततः गांधीवाद पर विचार बन जाएगा। गांधीवादी घबड़ाता है, उस पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि उसके बीस वर्ष का इतिहास बहुत कालिख से और अंधेरे से भरा हुआ इतिहास है। सफेद कपड़ों के भीतर काले आदमी की कहानी है बीस वर्षों की। और अगर गांधी पर विचार शुरू हुआ तो वह विचार रुकेगा नहीं, वह गांधीवादी पर पहुंच जाएगा। तब मुझे समझ में आया कि गांधीवादी पत्र इतने जोर से इस बात को क्यों विरोध में प्रचार किए हैं?
और मैंने कहा क्या था? मैंने यह कहा था कि जो समाज अपने महापुरुष की आलोचना नहीं करता वह समाज शायद डरता है कि उसके महापुरुष बहुत छोटे हैं। आलोचना में पिघल जाएंगे, बह जाएंगे। इतनी घबड़ाहट एक ही बात का सबूत है। अगर हम एक मिट्टी का पुतला पानी में बना कर खड़ा कर दें तो वर्षा से डरेंगे क्योंकि उसके रंग-रोगन के बह जाने का डर है। लेकिन प्रस्तर की, संगमरमर की प्रतिमाएं तो वर्षा में खड़ी रहती हैं। उनका कुछ बहता नहीं। वर्षा आती है तो और उनकी धूल बह जाती है और प्रतिमाएं और स्वच्छ होकर निखर आती हैं। मेरी दृष्टि में महापुरुष पर जब भी आलोचना की वर्षा होती है तो महापुरुष और निखर कर प्रकट होता है, लेकिन छोटे लोग जरूर बह जाते हैं। उनके पास ऐसा कुछ भी नहीं है जो आलोचना की वर्षा में टिक सके। गांधी को तो कोई भय नहीं हो सकता है आलोचना से, लेकिन गांधीवादी को बहुत भय है।
गांधीवादी छोटा आदमी है, जो बड़े आदमी की आड़ में बड़े होने की कोशिश में लगा है। उसे डर है। वह अपने ही ढंग से सोचता है। उसे यह भय है कि जैसा छोटा मैं आदमी हूं, कहीं गांधी की आलोचना गांधी को कोई नुकसान न पहुंचा दे।

मेरी दृष्टि में गांधी इतने बड़े व्यक्ति हैं कि आलोचना से उनका कोई
भी अहित होने का नहीं है। बल्कि, उनकी स्पष्ट आलोचना गांधी के रूप को हमारी आंखों के सामने प्रकट करने में ज्यादा सफल हो सकेगी। उनकी कोई प्रशंसा हमारे प्राणों तक उन्हें नहीं पहुंचाएगी, लेकिन उनका सृजनात्मक विचार हमारे प्राणों में उन्हें पुनरुज्जीवित कर सकता है। और मेरी दृष्टि में, कोई महापुरुष ऐसा नहीं होता कि उससे भूलें न होती हों। हां, महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते हैं, महापुरुष बड़ी भूलें करते हैं अपने अनुपात से। वे जितने बड़े होते हैं, उतने ही बड़े काम करते हैं--चाहे भूल करें और चाहे ठीक करें। महापुरुष छोटी भूलें नहीं करते, छोटे काम ही नहीं करते हैं। और इसलिए महापुरुष की भूल को देख पाना बड़ा कठिन हो जाता है क्योंकि हम उतनी आंख खोलें, उतना विचार करें, तभी हमें दिखाई पड़ सकता है। लेकिन अगर हम न देखें तो हम उन भूलों को बार-बार दोहराए जा सकते हैं। उन्नीस सौ बीस के बाद गांधी के सामने एक सवाल था। वह सवाल था कि देश एक कैसे हो, एकता कैसे हो। और गांधी ने देश की एकता के लिए एक नारा दिया-- हिंदू-मुस्लिम एकता का, हिंदू-मुस्लिम यूनिटी का। बड़ी भूल हो गई। हिंदुस्तान में ईसाई भी रहते हैं, जैन भी रहते हैं, बौद्ध भी रहते हैं, पारसी भी रहते हैं, आदिवासी भी रहते हैं, सिक्ख भी रहते हैं, लेकिन गांधी ने नारा दिया--हिंदू-मुस्लिम एकता, हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई। गांधी से बुनियादी भूल हो गई। जैसे ही गांधी ने यह कहा, हिंदू-मुस्लिम एकता, वैसे ही मुसलमान और हिंदू को अतिरिक्त महत्व मिल गया जो खतरनाक सिद्ध हुआ। और मुसलमान को भी यह दिखाई पड़ गया कि मेरी एकता ही असली बात है। अगर मैं एक होने को राजी नहीं तो हिंदुस्तान कुछ भी नहीं कर सकता है। अगर गांधी ने कहा होता भारतीय एकता... हिंदू-मुस्लिम एकता बहुत दुर्भाग्यपूर्ण चुनाव था। वह शब्द बहुत खतरनाक था। उसी शब्द के बीज ने पाकिस्तान का रूप लिया। वही शब्द विकसित हुआ और पाकिस्तान तक पहुंच गया। मुसलमान को सेल्फ कांशस कर दिया गांधी ने। हिंदू को भी सेल्फ कांशस कर दिया। गांधी ने दोनों को यह चेतना दे दी कि हमीं सब कुछ हैं, हिंदू-मुसलमान ही भारत है। हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई; मुसलमान और हिंदू को लगा कि हम ही हैं, हमारे ऊपर सब कुछ निर्भर है। और मुसलमान को यह चेतना स्पष्ट यह अनुभव करा गई कि अगर वह साथ खड़ा नहीं होता है तो भारत की एकता नहीं बन सकती है। आखिर इसी समझौते पर हिंदुस्तान की आत्मा विभाजित हुई। हिंदुस्तान दो टुकड़ों में टूटा। शायद हजारों वर्ष लग जाएंगे हिंदुस्तान को अपने शरीर को फिर एक बनाने में--शायद न भी बना पाए।
लेकिन एक छोटी सी भूल--शब्दों का चुनाव। लेकिन गांधी से भूल हुई तो पीछे कारण था। गांधी यद्यपि मानते थे कि सारे धर्म समान हैं, सारे धर्म बराबर मूल्य के हैं, लेकिन फिर भी गांधी के मन से यह भ्रम कभी नहीं मिटा कि मैं हिंदू हूं। वह यह हमेशा कहते रहे कि मैं हिंदू हूं। काश, गांधी इतनी हिम्मत और कर लेते और कह सकते कि मैं सिर्फ मनुष्य हूं; न मैं हिंदू हूं, न मैं मुसलमान, तो हिंदुस्तान का विभाजन कभी भी नहीं हो सकता था। लेकिन गांधी का यह ख्याल कि मैं हिंदू हूं, जिन्ना को मुसलमान, और मुसलमान, और मुसलमान बनाता चला गया। पता है आपको, गांधी की मृत्यु पर जिन्ना ने जो ट्रिब्यूट दी, जो संवेदना प्रकट की, उसमें क्या कहा? कहा कि गांधी वा.ज ए ग्रेट हिंदू लीडर। गांधी एक बड़े हिंदू नेता थे। लेकिन हिंदू नेता कहना जिन्ना नहीं भूला।
गांधी भी मरने के पहले वसीयत किए कि मेरी लाश को न बचाया जाए, क्योंकि लाश को बचाना ईसाइयत का रास्ता है। मैं हिंदू ढंग से संस्कार चाहता हूं। मरने के बाद भी शरीर को हिंदू ढंग का संस्कार चाहते हैं। गांधी के मन से हिंदू का भाव नहीं जा सका। गांधी अदभुत व्यक्ति थे, लेकिन कहीं एक हिंदू की पकड़ एक कोने पर बैठी रह गई और वह कोने की पकड़ सारे हिंदुस्तान के लिए घातक सिद्ध हुई। कोई छोटा-मोटा आदमी, मेरे जैसा कोई व्यक्ति अगर अपने को हिंदू और मुसलमान मानता रहता तो कोई नुकसान नहीं हो सकता था। गांधी जैसे व्यक्ति, जो कि सारे मुल्क की आत्मा के प्रतिनिधि थे, उनको यह ख्याल होना कि मैं हिंदू हूं, खतरनाक है। बहुत महंगा पड़ गया। लेकिन इसे सोचना जरूरी

है ताकि आगे यह भूल बार-बार न दोहराई जाए। यह भूल बार-बार दोहराई जा सकती है।
हिंदुस्तान को ऐसे नेतृत्व की जरूरत है जो न हिंदू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो, न ईसाई हो। हिंदुस्तान को एक ऐसे नेतृत्व की जरूरत है जिसका हिंदी पर आग्रह न हो, तमिल पर आग्रह न हो, बंगाली पर आग्रह न हो। नहीं तो फिर यह भूल दोहरेगी, यह हिंदुस्तान और दस टुकड़ों में टूट सकता है। जैसे कल हिंदू- मुसलमान ने तोड़ दिया था, आने वाले दस-पच्चीस वर्षों में हिंदी और गैर-हिंदी टूट सकते हैं। लेकिन गांधी की भूल पर विचार कर लेने से यह ख्याल में आ सकता है कि यह भूल फिर न दोहरा दी जाए।
गांधी ने कहा, हिंदू-मुसलमान भाई-भाई। फिर हम आजाद हुए, और हमने एक नारा लगाया, हिंदी-चीनी भाई-भाई। हम फिर वही भूल दोहरा रहे थे। एशिया में बर्मी नहीं रहते? जापानी नहीं रहते? कोरियन नहीं रहते? एशिया में सिलोनी नहीं रहते? एशिया में थाई नहीं रहते? एशिया में सिर्फ हिंदी और चीनी रहते हैं? वही बेवकूफी, जो हिंदू-मुसलमान के साथ हुई थी, वही बेवकूफी हमने फिर दोहराई--हिंदी-चीनी भाई-भाई। चीन समझ गया कि जैसे ये मुसलमान से डरते थे, अब हमसे डरना इन्होंने शुरू कर दिया है। यह समझने में देर न थी।
हम जिससे डरते हैं उसी को भाई-भाई कहते हैं। जिससे हम नहीं डरते उसकी
हम बात ही नहीं करते। यह हमारे फियर का, हमारे भय का सबूत हो गया है। हम जिससे डरेंगे उसी को कहेंगे कि हम-आप तो भाई-भाई हैं। लेकिन जिसको हम भाई कहते हैं, वह समझ जाता है कि भाई हम किसको कहते हैं। गलती जो मुसलमान के साथ हुई थी वही गलती चीन के साथ हुई। एशिया में हमने दो दुश्मन खड़े किए--एक पाकिस्तान और एक चीन; और दोनों को हमने भाई-भाई कहा था। यह भाई-भाई कि फिलासफी में कहीं कोई बुनियादी भूल है। और इस फिलासफी के लिए गांधी जिम्मेवार हैं।
तो मैंने पत्रकारों को कहा था कि हमें सोचना चाहिए। गांधी इतने बड़े व्यक्ति हैं कि उनकी छोटी सी भूल भी बहुत बड़ी भूल सिद्ध हो सकती है। हजारों साल के लिए प्रभावित कर सकती है। हिंदुस्तान को एक नेतृत्व चाहिए अब, जो न हिंदू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो, न जो बंगाली हो, न मद्रासी हो, न उत्तरप्रदेशीय हो। हिंदुस्तान को नेतृत्व चाहिए जो हिंदीभाषी न हो, जो तमिलभाषी न हो, जो यह दावा न करता हो कि हिंदी ही, जो दावा न करता हो कि अंग्रेजी ही--जो दावा पूरे मुल्क का विचार करके करता हो, किसी एक हिस्से का विचार न करता हो। क्योंकि एक हिस्से के विचार ने हिंदुस्तान के दो टुकड़े करवाए। अब और इस तरह के विचार हिंदुस्तान को अनेक टुकड़ों में तोड़ डाल सकते हैं, और हिंदुस्तान करीब-करीब टूट गया है। मुश्किल है इस जोड़ को बिठाना। इस जोड़ को बिठाना बहुत मुश्किल साबित होगा। भाषावार प्रांत तोड़ दिए। पूरे हिंदुस्तान की हमने कोई फिकर न की, एक-एक भाषावार प्रांत की फिकर की। अब महंगा हो गया मामला। अब एक-एक भाषावार प्रांत एक-एक पाकिस्तान सिद्ध हो सकता है।
जो हो गया, वह सवाल नहीं है, आगे फिर यह पुनरुक्ति रोज-रोज होती चली जाएगी। पीछे लौट कर देखना जरूरी है। गांधी के पचास वर्षों की कहानी इस हिंदुस्तान के लिए हजारों वर्ष तक मूल्यवान रहेगी। उस पचास वर्ष में हमें फिर गौर कर-करके देख लेना जरूरी है कि हमने क्या भूलें दोहराईं, हमने कौन सी गलतियां कीं जो कि आगे हमसे न हों। फिर यह भी जानना जरूरी है कि कोई कितना ही बड़ा महापुरुष हो, दुनिया में कोई पूर्ण पुरुष न हुआ है, न हो सकता है। सच तो यह है कि जो पूर्ण हो जाते हैं वे मोक्ष चले जाते हैं, शायद वे दुनिया में वापस नहीं आते हैं। दुनिया में जो आता है वह अपूर्ण होता है, इसीलिए आता है। अपूर्ण पुरुष--महान से महान व्यक्ति भी अपूर्ण ही होता है। उसकी अपूर्णता पर ध्यान न हो, और हम पूरे मनुष्य को स्वीकार कर लें तो हम बहुत महंगाइयों में भी पड़ सकते हैं। बहुत महंगा सौदा हो सकता है।
गांधी के कुछ अपने फैड थे, गांधी के कुछ अपने रुझान थे। सभी महापुरुषों के होते हैं। मार्क्स जितनी देर किताब लिखता उतनी देर मुंह में सिगरेट पीता रहता। लेकिन मार्क्स कितना ही बड़ा आदमी हो, उसका सिगरेट पीना बड़ा नहीं हो जाता। और किसी को मार्क्सवादी होना हो तो चौबीस घंटे

सिगरेट पीने की जरूरत नहीं है। लेकिन कम्युनिस्ट सिगरेट पीते हैं, शायद इसी ख्याल से पीते हों कि मार्क्स बहुत सिगरेट पीता था। कहते हैं, मार्क्स ने अपनी "कैपिटल" नाम की किताब लिखी, तो जितनी सिगरेट पी डालीं, कैपिटल के बिकने पर उतने सिगरेट के दाम भी नहीं आए। लेकिन सिगरेट पीना मार्क्स का अपना व्यक्तिगत रुझान हो सकता है। इसका कोई अनुकरण करने की जरूरत नहीं है।
गांधी के बहुत से व्यक्तिगत रुझान थे, जो गांधीवादी फिलासफी का हिस्सा बन गए। जैसे, गांधी को हाथ से काती गई चीजों पर बड़ा प्रेम था। इसमें कोई हर्जा नहीं है। किसी आदमी को हो सकता है। किसी आदमी को हाथ से काती गई चीज पसंद हो सकती है, इसमें कोई भी हर्जा नहीं है। लेकिन आने वाली दुनिया में चरखे और तकली को बहुत मूल्य देना आत्मघाती है, सुसाइडल है। मुल्क मर जाएगा। दुनिया विकसित हो रही है विराट से विराट टेक्नालॉजी की तरफ, तकनीक की तरफ। और हम जो बातें कर रहे हैं वह पांच हजार साल पिछले जमाने की बातें हैं। पांच हजार साल पहले तकली और चरखा ईजाद हुए होंगे। तब वे सबसे बड़े यंत्र थे, अब वे सबसे बड़े यंत्र नहीं हैं। और एक आदमी अगर अपने साल भर का कपड़ा भी बनाना चाहे तो कम से कम दिन में तीन-चार घंटे चरखा कातना पड़ेगा। तब कहीं अपने लायक पूरा कपड़ा एक आदमी तैयार कर सकता है।
एक आदमी की जिंदगी का रोज चार घंटे का हिस्सा उसके कपड़े पर खर्च करवा देना निहायत अन्याय है। क्योंकि हमें शायद पता नहीं, अगर एक आदमी को साठ साल जीना है तो बीस साल तो सोने में गुजर जाते हैं। रोज आठ घंटे आदमी सो जाता है। बीस साल तो नींद में चले गए। खाने में, कमाने में और बीस साल चले जाते हैं। बीस साल बचते हैं आदमी के पास मुश्किल से। उसमें कुछ बचपन का हिस्सा निकल जाता है, कुछ बुढ़ापे का हिस्सा निकल जाता है। अगर हम एक आदमी के पास देखें तो मुश्किल से जीने के लिए जिसको हम कहें--ठीक से जीने के लिए पूर्ण सुविधा का समय, पूरे जीवन में साठ साल के, पांच साल से ज्यादा नहीं होता एक आदमी के पास। इस पांच साल के लिए उससे कहो कि चप्पल भी तुम अपनी बनाओ, कपड़ा भी तुम अपना बनाओ, खाना भी तुम अपना बनाओ, गेहूं भी अपना पैदा कर लो, स्वावलंबी हो जाओ--आदमी की हत्या करने के सुझाव देना है।
मुझे यह स्वीकार्य नहीं मालूम होता। मेरी समझ यह है कि आज तक जगत में संस्कृति, धर्म, काव्य, चित्र, म्यूजिक, संगीत जो भी पैदा हुआ है वह उन लोगों से पैदा हुआ है जो लिजर में थे, जो विश्राम में थे। जिसका चौबीस घंटे काम में व्यतीत हो जाता है, उससे न संगीत पैदा होता है, न काव्य पैदा होता है, न संस्कृति पैदा होती है, न धर्म पैदा होता है। अब तक जगत में जो भी श्रेष्ठतम विकास हुआ है मनुष्य-संस्कृति का, वह विश्राम के क्षणों में हुआ है। वे ही कौमें और वे ही युग संस्कृति को जन्म देते हैं जो विश्राम में होते हैं। जैसे, एथेंस ने सुकरात को, प्लेटो को, अरस्तू को जन्म दिया, क्योंकि एथेंस बहुत संपन्न था और सारा काम गुलाम कर रहे थे। ऊपर का वर्ग कोई भी काम नहीं कर रहा था। इसलिए अरस्तू पैदा हुआ, सुकरात पैदा हुआ, प्लेटो पैदा हुआ। हिंदुस्तान ने बुद्ध और महावीर जैसे लोग पैदा किए, कृष्ण और राम जैसे, ये सब लिजरली क्लास के लोग थे। ये सब अभिजात वर्ग के लोग थे जिनके ऊपर कोई काम नहीं था।
हिंदुस्तान के इतिहास को अगर हम उठा कर देखें तो सारे ग्रंथ ब्राह्मणों ने लिखे जिनके पास कोई काम नहीं था। हिंदुस्तान के सारे धर्म को जन्म ब्राह्मणों ने दिया, उनके पास कोई काम नहीं था। हमने काम से उन्हें मुक्त कर दिया था। हमने कहा था, तुम्हें कोई काम नहीं है, तुम पढ़ो, लिखो, सोचो, विचारो। शूद्रों ने तो एक वेद नहीं लिखा, एक उपनिषद नहीं लिखा। शूद्र कैसे लिख सकते थे? पूरे हिंदुस्तान के इतिहास में एक बुद्धिमान शूद्र पैदा हुआ, वह भी अंग्रेजों की बदौलत--डाक्टर अंबेदकर। उसके पहले कोई शूद्र पैदा नहीं हुआ। नहीं हो सकता। कोई कारण नहीं है। उसको चौबीस घंटे हमने काम में उलझा दिया है।
अगर स्वावलंबन की बात को बहुत ज्यादा खींचा जाए तो एक-एक आदमी की जिंदगी सुबह से सांझ तक फिजूल कामों में नष्ट हो जाएगी और उसके व्यक्तित्व में ऊंचे उठने के कोई उपाय नहीं रह जाते।

अगर व्यक्ति की चेतना को ऊपर उठाना है तो समाज में अधिकतम विश्राम हो सके, इसकी चिंता करनी चाहिए। वह कैसे होगा? विश्राम होगा, मनुष्य का श्रम यंत्रों के हाथ में चला जाए तो। जब तक गुलाम थे दुनिया में तो गुलाम श्रम करते थे, मालिक विश्राम करता था। वह अन्यायपूर्ण था, क्योंकि गुलामों की आत्मा को विकसित होने का कोई मौका नहीं मिलता था। किसी आदमी को यह हक नहीं है कि वह दूसरे आदमी की आत्मा की कीमत पर अपनी आत्मा को विकसित करे। यह अन्याय है। यह सीधा पाप है। लेकिन विज्ञान ने एक बड़ा भारी उपकार किया मनुष्य के ऊपर, आदमी का काम यंत्र कर सकता है। आदमी को काम में गुलाम बनाने की अब कोई जरूरत नहीं रह गई है। नई टेक्नालॉजी सारा काम कर लेगी। आने वाले पचास वर्षों में अमरीका और रूस में किसी आदमी के ऊपर किसी तरह का अनिवार्य श्रम नहीं रह जाएगा। जिस दिन पूरा समाज श्रम से मुक्त हो सकेगा उस दिन हम कितनी बड़ी संस्कृति को, कितने महान धर्म को, कितने बड़े काव्य को, कितने बड़े साहित्य को जन्म दे सकेंगे इसकी आज कल्पना करनी भी मुश्किल है।
गांधी की स्वावलंबन की बात अवैज्ञानिक है। और यह भी ध्यान रहे कि आदमी जितना स्वावलंबी होता है उतना ही समाज दरिद्र होता है। आदमी जितना परस्पर आश्रित होता है, समाज उतना समृद्ध होता है। आप चश्मा पहने हुए हैं, वह चश्मा कलकत्ते में बना होगा। आप जूता पहने हुए हैं, वह जूता कानपुर में बना होगा। आप कोट पहने हुए हैं, वह कोट बंबई से कपड़ा तैयार हुआ होगा। आपकी अगर सारी चीजें उठा कर देखी जाएं तो आप पाएंगे कि पूरे मुल्क का उसमें हाथ है, पूरी दुनिया का भी हो सकता है। आपकी चीजें सारी दुनिया से आई हैं। आप सब पर निर्भर हैं, सब आप पर निर्भर हैं। इसी से दुनिया में एक यूनिटी खड़ी होती है। जितना स्वावलंबी व्यक्ति होता है, उतना ही समाज से असंबंधित हो जाता है।
हिंदुस्तान इतने दिन तक राष्ट्र नहीं बन सका, नेशन नहीं बन सका, उसका बुनियादी कारण मेरी दृष्टि में यही है कि हिंदुस्तान पांच हजार वर्षों से एक-एक व्यक्ति करीब-करीब स्वावलंबी होने की चेष्टा में जी रहा है। एक किसान अपनी खेती-बाड़ी से पैदा कर लेता है। एक गांव, अपना लोहार भी है, उसका अपना चमार भी है। गांव को दूसरे गांव पर निर्भर होने की कोई भी जरूरत नहीं है। हिंदुस्तान के सारे गांव स्वावलंबी थे, इसलिए हिंदुस्तान राष्ट्र नहीं बन सका। क्योंकि जब हम स्वावलंबी हैं और बगल के गांव पर हमला हुआ तो हमारा गांव सोचता है, हमें क्या प्रयोजन है! वह दूसरा लड़ रहा है, लड़ेगा। अगर हिंदुस्तान एक-दूसरे पर पूरी तरह निर्भर हो जाएगा तो ही हिंदुस्तान एक राष्ट्र बनेगा। और जिस दिन दुनिया पूरी निर्भर हो जाएगी एक-दूसरे पर, दुनिया में युद्ध बंद हो जाएंगे। अहिंसा से युद्ध बंद होने वाले नहीं हैं। जिस दिन टेक्नालॉजी सारी दुनिया को एक-दूसरे पर निर्भर कर देगी उस दिन युद्ध बंद हो जाएंगे। उसके बाद युद्ध की कोई संभावना नहीं। आज रूस अमरीका से युद्ध करने में असमर्थ होता जा रहा है। पता है आपको किसलिए? इसलिए नहीं कि रूस के मन में कोई शांति की बड़ी कामना पैदा हो गई, बल्कि इसलिए कि आज चार वर्षों से रूस को गेहूं के लिए अमेरिका और कनाडा के ऊपर निर्भर रहना पड़ रहा है और आने वाले दस वर्षों में उसको अमेरिका से गेहूं लेना पड़ेगा, उसके बिना कोई रास्ता नहीं है। जिनसे गेहूं लेना है, जिनसे भोजन लेना है उनसे युद्ध नहीं किया जा सकता।
मेरी कल्पना में यह दुनिया एक हो सकती है अगर दुनिया में तीव्रतम केंद्रीकरण हो, सेंट्रलाइजेशन हो। इतना केंद्रीकरण होना चाहिए कि एक गांव एक ही चीज पैदा करे। सारे गांव को हजार तरह की चीजें पैदा करने की जरूरत नहीं है। अगर बंबई में कपड़ा अच्छा बन सकता है तो सारे हिंदुस्तान में अलग-अलग मिलें बनाने की कोई जरूरत नहीं है। यह साइंटिफिक होगा कि बंबई सिर्फ कपड़े पैदा करे, और कुछ भी पैदा न करे। क्योंकि तब सौ वर्षों में बंबई में वह कुशलता पैदा हो जाएगी, बच्चे जन्म के साथ कपड़ा पैदा करने में समर्थ पैदा होंगे। बंबई का एक-एक आदमी कुशल हो जाएगा। कपड़े के सारे एक्सपर्ट और विशेषज्ञ वहां इकट्ठे हो जाएंगे। सारी नई खोज करने वाले, रिसर्च के लोग वहां इकट्ठे हो जाएंगे। सारे हिंदुस्तान के पकड़े के जानकार वहां इकट्ठे होंगे। हम श्रेष्ठतम कपड़ा पैदा कर सकेंगे और कम से कम श्रम में पैदा कर

सकेंगे। और सारे मुल्क को दे सकेंगे। जो गांव जूते बनाता है, वह सिर्फ जूते बनाए। एक-एक गांव में अलग-अलग जूते बनाना नासमझी की बात है। सच तो यह है कि अगर सेंट्रेलाइजेशन ठीक से हो तो दुनिया की दरिद्रता मिट सकती है और दुनिया का बहुत सा समय जो व्यर्थ नष्ट होता है, वह मिट सकता है।
एक-एक घर में चूल्हा जलता है, यह बिल्कुल पागलपन की बात है। अगर वैज्ञानिक दुनिया होगी तो एक मुहल्ले का एक किचन होना चाहिए जहां कि दस औरतें काम करेंगी, अभी हजार औरतें रोज दिन भर काम कर रही हैं, पूरा व्यर्थ अपव्यय हो रहा है। एक मुहल्ले का एक किचन होना चाहिए जहां दस औरतें काम करेंगी और नौ सौ औरतें मुक्त हो जाएंगी, इन नौ सौ औरतों से दूसरे काम लिए जा सकते हैं। इनसे शिक्षा का काम लिया जा सकता है, इनसे बच्चे पालने की व्यवस्था की जा सकती है, ये समाज का हजार काम कर सकती हैं। लेकिन आधा हिंदुस्तान सिर्फ रोटी बना रहा है, कुछ भी नहीं कर रहा है। आधा मुल्क सिर्फ रोटी बनाने में व्यतीत हो जाता। थोड़ी हैरानी की बात मालूम होती है। हमारे सोचने का अवैज्ञानिक ढंग है यह। आधा हिंदुस्तान सिर्फ रोटी बनाएगा? आधा हिंदुस्तान कुछ और नहीं करेगा? तो यह देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता। इस देश को समृद्ध बनाना हो, तो यह मामला वैसा ही है जैसे कि पुराने रईसों के घर थे। तो रईसों के लड़कों को एक-एक मास्टर लगा दिया जाता था। एक लड़का है, एक मास्टर पढ़ा रहा है। अवैज्ञानिक थी यह बात। इसमें बहुत लोग शिक्षित नहीं हो सकते थे। आज एक शिक्षक है और तीस लड़के पढ़ रहे हैं। हमको समझ में आता है। यह केंद्रित अवस्था हो गई। एक रईस के घर में एक ट्यूटर पढ़ाता है। एक मास्टर है, एक बच्चा है। ज्यादा बड़ा रईस है तो चार मास्टर हैं और एक बच्चा है। लेकिन हम समझ गए कि इस भांति तो दुनिया को शिक्षित नहीं किया जा सकता। तीस बच्चे और एक शिक्षक होना चाहिए। तो हमने सेंट्रलाइज कर दी शिक्षा को। स्कूल की एक क्लास खोल दी। हर घर-घर में क्लास बनाने की जरूरत नहीं है। मुहल्ले की एक स्कूल है, उस स्कूल में मोहल्ले के सारे बच्चे पढ़ते हैं और चार शिक्षक, आठ शिक्षक उस काम को निपटा देते हैं। अगर एक-एक बच्चे को एक-एक शिक्षक निपटाने जाए, तो ठीक है, हो गया मुल्क का काम। शिक्षा ही पूरी हो जाए, वही बहुत मुश्किल हो जाएगा।
आज हम दूसरी चीजों में उतने ही अवैज्ञानिक हैं। एक-एक घर में चौका यह सबूत देता है कि हमारी बुद्धि में गणित, सोच-समझ बिल्कुल नहीं है। अगर समझदारी होगी तो ठीक है, दस-पच्चीस घरों के बीच में एक चौका होना चाहिए। दस-पांच महिलाएं उसमें काम करेंगी। जो श्रेष्ठतम भोजन बना सकती हैं वे बनाएं। अब हजार औरतें बनाती हैं जिनमें नौ सौ को भोजन बनाने की कोई अक्ल और कोई तमीज नहीं है। उनकी कोई जरूरत नहीं है। वह दूसरा काम शायद बेहतर कर सकें। उनको वह काम मिलना चाहिए। गांधी जी के स्वावलंबन के विचार से मैं बिल्कुल भी सहमत नहीं हूं, बिल्कुल गैर-साइंटिफिक है। परावलंबन चाहिए। जितने हम परावलंबी होते हैं, समाज में उतनी एकता बढ़ती है।
शायद आपको पता नहीं, हिंदुस्तान में अगर हिंदू और मुसलमानों के बीच शादी-विवाह होता होता, तो पाकिस्तान कभी भी नहीं बंटता। क्योंकि हम एक-दूसरे पर निर्भर हो जाते। निर्भर होने पर दंगा होना मुश्किल हो जाता। चीन में कभी कोई धार्मिक दंगे नहीं हुए आज तक। उसका कुल एक कारण है कि एक-एक घर में तीन-तीन चार-चार धर्मों के लोग हैं। दंगा कैसे हो सकता है? पत्नी मुसलमान है, पति बौद्ध है, बाप कंफ्यूशियन है, मां लाओत्से को मानती है। चारों चार अलग मंदिरों में जाते हैं। झगड़ा कैसे होगा? चारों मंदिरों में झगड़ा होगा तो घर में छुरेबाजी करनी पड़ेगी। चीन में कोई धार्मिक झगड़ा नहीं हो सका तीन हजार वर्ष के इतिहास में। उसका कुल एक कारण है कि चीन के धर्म परस्पर निर्भर हैं।
हिंदुस्तान में झगड़ा हो सका। झगड़ा इसलिए हो सका कि हिंदू बिल्कुल अलग हैं, मुसलमान बिल्कुल अलग हैं। कोई उनसे नाता नहीं है, कोई गहरा संबंध नहीं है। अगर हिंदुस्तान में हिंदू-मुसलमानों के दंगे और बेवकूफियां मिटानी हैं तो यह स्वावलंबन बंद करना पड़ेगा कि हम हिंदू के भीतर ही शादी करेंगे, कि हम मुसलमान के भीतर ही शादी करेंगे। आने वाले बच्चों को ख्याल रखना चाहिए, इस हिंदुस्तान की एकता तुम्हारे विवाह पर निर्भर करेगी। अगर

तुममें थोड़ी भी समझ है तो भूल कर हिंदू कभी हिंदू घर में शादी मत करना, जैन कभी जैन घर में शादी मत करना। यह हिंदुस्तान मर जाएगा अगर तुमने--जैन ने जैन के घर में शादी की और मुसलमान ने मुसलमान के घर में शादी की। हिंदुस्तान नहीं बच सकता आगे। क्योंकि जैसे ही हम एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं वैसे ही हम एक-दूसरे के शत्रु नहीं रह जाते। निर्भरता, एक-दूसरे के संबंध, गहरे संबंध हमारे भीतर दुश्मनी और वैमनस्य को समाप्त कर देते हैं। हिंदुस्तान में गांधीजी ने जो बात कही वह हमारी हजारों साल की परंपरा से अनुमोदित है। हजारों साल से हमारा यह ख्याल रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलंबी होना चाहिए, अपना काम खुद कर लेना चाहिए, जहां तक बनें किसी पर निर्भर नहीं होना चाहिए। ये सारी की सारी बातें अहंकारपूर्ण हैं, ईगोइज्म से भरी हुई हैं।
क्यों निर्भर नहीं होना चाहिए किसी पर? दूसरा आदमी दुश्मन है? और निर्भरता तो म्युचुअल है, पारस्परिक है। जब मैं दूसरे पर निर्भर होता हूं, दूसरा मुझ पर निर्भर होता है। जब हम एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं तो जो काम हजार आदमी करते हैं वह सौ आदमी कर लेते हैं। नौ सौ आदमियों का श्रम मुक्त हो जाता है। अब आप थोड़ा सोचिए। कि आप घर में साबुन भी बनाएं, टुथपेस्ट भी बनाएं, जूता भी सीएं, कपड़े भी बनाएं, तो आप दरिद्रतम आदमी होंगे दुनिया के। रद्दी से रद्दी कपड़े पहनने पड़ेंगे, खराब से खराब जूते पहनने पड़ेंगे। और जाकर आप देख सकते हैं साबुन खादी भंडार में, कि कैसी साबुन आपको उपयोग करना पड़ेगी, कैसी साबुन आपको उपयोग करना पड़ेगी। आपको पता नहीं है एक लक्स टायलेट आप खरीदते हैं, उतने बड़े पैमाने पर पैदा होती है लक्स कि एक लक्स टायलेट करीब-करीब दो पैसे में तैयार हो जाती है। आप लक्स टायलेट घर में बनाएं तो अगर बाजार में एक रुपये में आपको मिलती है तो आप दो रुपये में भी घर नहीं बना सकते। उतनी सुविधा, उतनी व्यवस्था, उतने बड़े पैमाने पर नहीं जुटाई जा सकती है। स्वावलंबन की बात फिजूल है, चाहे कपड़े का संबंध हो, चाहे साबुन का संबंध हो, चाहे भोजन का संबंध हो।
समाज है परस्पर निर्भरता। समाज का अर्थ ही क्या है? समाज की कांसेप्ट
का मतलब क्या है? जिस समाज में सारे लोग स्वावलंबी हैं वह समाज है ही नहीं। समाज का मतलब क्या होता है? समाज का मतलब होता है, परस्पर निर्भर लोग, परस्पर निर्भरता से बंधे हुए लोग। अगर गांधी के स्वावलंबन की बात मानी जाती है तो हिंदुस्तान में समाज विकसित ही नहीं हो सकेगा। और हिंदुस्तान में आज तक समाज विकसित नहीं हो सका। नहीं होने का कारण था कि हिंदुस्तान के छोटे-छोटे यूनिट इंडिपेंडेंट थे। एक गांव था, उसे कोई फिकर नहीं कि दिल्ली किसके हाथ में है। मुसलमान के हाथ में है कि हिंदू के हाथ में है, मुगल हैं कि तुर्क हैं कि कौन हैं, उसे कोई मतलब नहीं। गांव को पता ही नहीं चलता था, हुकूमतें बदल जाती थीं दिल्ली की। क्योंकि गांव का कोई संबंध दिल्ली से नहीं था। दिल्ली में हुकूमत बदल गई, बीस साल बाद गांव में पता चलेगा कि मालूम होता है दूसरा राजा आ गया।
लाओत्सु ने लिखा है--तीन हजार साल पहले चीन के एक गांव का किस्सा लिखा है--कि मेरे पिता और मेरे बुजुर्ग यह कहते थे कि हमारे गांव के पास एक नदी बहती है, उसके उस तरफ कोई गांव है। शाम को उस गांव का धुआं दिखाई पड़ता है, रात में उसके कुत्ते भौंकते हुई सुनाई पड़ते हैं, लेकिन हमसे उनका कोई संबंध नहीं, इसलिए न कोई कभी नदी के उस पार गया, न कभी कोई नदी के इस पार आया। सुनाई पड़ता है कि उस तरफ लोग जरूर रहते होंगे, क्योंकि रात में कुत्ते भौंकते हैं, कभी-कभी सांझ को धुआं दिखाई पड़ता है। होंगे लोग वहां, लेकिन कोई संबंध नहीं है। क्या जरूरत वहां जाने की?
हिंदुस्तान इसीलिए हिंदुस्तान के बाहर नहीं गया। हिंदुस्तान का हिंदुस्तान के बाहर न जाना बहुत महंगा पड़ गया। हम एक कुएं में बंद लोग हो गए। हजारों साल तक हमें पता ही नहीं था कि बाहर एक बड़ी दुनिया भी है। अब फिर अगर हमें स्वावलंबन की बात कही जाती है तो हमने जो भूल हजारों साल तक दोहराई है, हम फिर दोहरा लेंगे।
आपको पता है, हिंदुस्तान ने आज से कोई दस हजार साल पहले गाड़ी का चाक खोज लिया होगा। गाड़ी के चाक की खोज के बाद हवाई जहाज बना लेने में कोई

वैज्ञानिक तकनीकी उपद्रव नहीं है। चाक ही सब कुछ है। एक दफा हमने घूमता हुआ चाक खोज लिया, हम फिर बड़ी से बड़ी मशीन खोज सकते हैं क्योंकि आधारभूत नियम वह चक्का है। लेकिन हम गाड़ी पर ही चलते रहे। हमने कुछ और नहीं खोजा? दूसरे मुल्क अंतरिक्षयान बना लिए, और हम? हमने क्यों नहीं खोजा? हमने कहा, जरूरत क्या है? अपनी जितनी छोटी सी चादर है उसके भीतर ही पैर सिकोड़ कर सोए रहना चाहिए। चादर के बाहर पांव कभी नहीं निकालना चाहिए। बैलगाड़ी है तो बैलगाड़ी से चलो, तकली है तो तकली चलाओ लेकिन फैलाओ मत, क्योंकि फैलाने में, फैलाने में झंझट बढ़ सकती है, जटिलता बढ़ती है। क्या जरूरत है? जरूरतें कम रखो।
हिंदुस्तान की पूरी फिलासफी एक शब्द में कही जा सकती है--जरूरतें कम रखो! चादर के भीतर पैर रखो! इस फिलासफी ने हिंदुस्तान को दरिद्र बनाया, दीन बनाया, दुखी बनाया, दास बनाया। क्योंकि जब हम चादर के बाहर पैर न फैलाएंगे, और पैरों को सर्दी और गर्मी नहीं लगेगी तो चादर को बड़ा करने का सवाल ही कब उठेगा? चादर को बड़ा करने का सवाल तब उठता है जब जरूरत पैदा हो जाती है। जरूरत जन्म बनती है आविष्कार की। हम कहते हैं, जरूरतें कम रखो, इसलिए आविष्कार करने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। जरूरत जब पैदा होती है तो आविष्कार होता है।
हिंदुस्तान ने कोई आविष्कार नहीं किया। उसका कारण, हिंदुस्तान के पास प्रतिभा की कमी है? हिंदुस्तान के पास इतने प्रतिभाशाली लोग पैदा हुए-- बुद्ध, महावीर, कणाद, गौतम। क्या मुकाबला है दुनिया में इनका? शंकर, नागार्जुन--कौन इनकी चोटी का विचारक है दुनिया में? लेकिन एक आइंस्टीन पैदा नहीं हुआ, एक न्यूटन पैदा नहीं हुआ। क्यों? क्योंकि हमारी बुनियादी धारणा यह रही कि आवश्यकताएं कम, नीड्स कम होनी चाहिए तो ही आदमी सुखी रह सकता है। और देख रहे हैं हम भलीभांति कि पांच हजार साल से आवश्यकताएं कम हैं, कौन सा आदमी सुखी है हिंदुस्तान में? पांच हजार साल के अयास के बाद कौन सा आदमी सुखी है हिंदुस्तान में, जो हम कहते हैं कि आवश्यकताएं कम हों तो आदमी सुखी हो सकता है।
नहीं, न आवश्यकताओं के ज्यादा होने से सुख का संबंध है, न कम होने से। सुख एक बात ही अलग है। उसकी खोज आवश्यकता कम हो तो भी करनी पड़ती है, आवश्यकता ज्यादा हो तो भी करनी पड़ती है। लेकिन आवश्यकताएं ज्यादा होने से संपदा बढ़ती है, आवश्यकताएं ज्यादा होने से तकनीक बढ़ती है। आवश्यकताएं ज्यादा होने से मनुष्य को कम श्रम करना पड़ता है, ज्यादा विश्राम मिलता है। आवश्यकताएं ज्यादा होने से ज्यादा आविष्कार होते हैं, विज्ञान होता है, शक्ति बढ़ती है, सामर्थ्य बढ़ती है। हिंदुस्तान की सामर्थ्य नहीं बढ़ सकी। अब गांधी जी फिर वही कहते हैं कि आवश्यकताएं कम। वह हमें बात बिल्कुल समझ में आती है क्योंकि गांधी हमारे पांच हजार साल के प्रतिनिधि हैं। जो हमने पांच हजार साल में बार-बार सुना है वे उसे फिर से कह रहे हैं इसलिए बिल्कुल समझ में बात आती है।
लेकिन वह बात महंगी पड़ी है और अगर हम आगे भी उसको दोहराते हैं तो अब तक
तो हम जी भी लिए, आगे हम जी भी नहीं सकेंगे। क्योंकि हिंदुस्तान की आबादी बुद्ध के जमाने में दो करोड़ थी, आज हिंदुस्तान की आबादी बावन करोड़ है। पचास करोड़ लोग बढ़ गए हैं, और हिंदुस्तान की बुद्धि बुद्ध के जमाने की है, उसमें कोई बढ़ती नहीं हुई। यह बड़ी घबड़ाने वाली बात है। हमारे उपकरण, हमारे साधन, खेती-बाड़ी का हमारा ढंग बुद्ध के जमाने का है। उसमें कोई फर्क नहीं हुआ है। किसान जैसा आज खेत पर काम कर रहा है, ठीक ऐसा ही बुद्ध के जमाने में कर रहा था। उसके उपकरणों में कोई वृद्धि नहीं हुई है, और पचास करोड़ की संख्या बढ़ गई है। और आने वाले बीस वर्षों में यह संख्या रोज बढ़ती चली जाएगी, रोज बढ़ती चली जाएगी। इस सदी के पूरे होते-होते हिंदुस्तान में एक अरब आदमियों के होने की संभावना हो गई है।
और विचारक कहते हैं कि उन्नीस सौ अठहत्तर में इतने बड़े अकाल की संभावना है हिंदुस्तान में कि जिसमें दस करोड़ से लेकर बीस करोड़ लोगों को मरना पड़ सकता है। लेकिन हम कहते हैं कि हम इंडस्ट्रिलाइज नहीं करेंगे। हम कहते हैं, हम औद्योगीकरण नहीं करेंगे। तो फिर मरेंगे बीस करोड़ लोग उन्नीस

सौ अठहत्तर तक। और जब बीस करोड़ लोगों को किसी मुल्क में मरना पड़े तो बाकी जो जिंदा रह जाएंगे, वे जिंदा हालत में रहेंगे? अगर बीस करोड़ आदमी मुल्क में मरना पड़े, हर तीन आदमी में एक आदमी मर जाए, तो आप सोचते हैं, जो दो आदमी बचेंगे, उनकी हालत क्या हो जाएगी? उनकी हालत मरों से बदतर हो जाएगी, और बीस करोड़ लोग अगर तीव्रता से मरें मुल्क में तो लाशें फेंकना मुश्किल हो जाएगा।
लेकिन गांधीजी का विचार हिंदुस्तान को समृद्ध नहीं बना सकता, क्योंकि
वे कहते हैं कि छोटे उपकरण चाहिए। हाथ से चलने वाले उपकरण चाहिए, ग्रामोद्योग चाहिए, घर-घर का धंधा चाहिए। इससे काम नहीं चलेगा। खेती को भी इंडस्ट्रिलाइज करना होगा। इंडस्ट्रियल एग्रिकल्चर चाहिए। अब खेती छोटे- छोटे टुकड़ों में और एक-एक किसान अपने-अपने टुकड़े में करे, यह नहीं चल सकता है। एक गांव का एक ही खेत चाहिए और एक गांव के पूरे खेत पर नये से नये उपकरण, नये यंत्र, नई मशीनें चाहिए। और मजा यह है कि एक गांव में एक हजार किसान हैं, अगर इन एक हजार किसानों के हल-बक्खर सब बेच दिए जाएं तो एक ट्रेक्टर उससे आ सकता है और एक ट्रेक्टर से सारा काम हो सकता है। ये हजार हल-बक्खर और ये दो हजार बैल, इन सबका खर्च, इनकी परेशानी यह सब हमें खाए जा रही है। इसके आगे हम नहीं जा सकते हैं। हिंदुस्तान को चाहिए केंद्रित औद्योगिक व्यवस्था--सेंट्रेलाइज्ड। हिंदुस्तान को चाहिए इंडस्ट्रियल एग्रिकल्चर, औद्योगिक कृषि। एक-एक आदमी के हाथ में नहीं दिया जा सकता अब मामला। उससे कुछ होने वाला नहीं है अब। अब हम मर जाएंगे, अब हम जी नहीं सकते।
हम देख रहे हैं कि आजादी के बाद हमको रोज भीख मांग कर जीना पड़ रहा है। अगर अमेरिका हमें गेहूं न दे तो हम आज मर जाएं, इसी वक्त। हमारी जीने की हैसियत क्या है? हम मांग कर खा रहे हैं और भूल गए हैं, मजे से जी रहे हैं, जैसे कि कोई असुविधा नहीं है। अमेरिका में चार किसान जो काम कर रहे हैं उनमें से एक किसान का उत्पादन हम खा रहे हैं। अमेरिका का विचारक कह रहा है कि हम और दस साल ज्यादा से ज्यादा खींच सकते हैं। इसके बाद तो हमारी अर्थ-व्यवस्था टूट जाएगी हिंदुस्तान को पालने में। यह नहीं चल सकता। लेकिन हम निश्चिंत हैं, हमें कोई ख्याल नहीं है। हम बैठ कर क्या बातें कर रहे हैं? हम बैठ कर बातें कर रहे हैं कि तकली चलाने से बड़ी आध्यात्मिकता आती है, कि चरखा चलाने से आदमी बड़ा सात्विक और पवित्र हो जाता है। हम जय-जय गान कर रहे हैं, किन बातों का? गांधी को फैड था, गांधी को झुकाव था, लगाव था इस बात का। ठीक है, गांधी को मौज है। उन्हें जो ठीक लगे वह करें, और जिसको भी ठीक लगता है वह करे, लेकिन पूरे मुल्क को सोचना पड़ेगा कि हम इन बातों से राजी होते हैं तो उसका परिणाम क्या होगा?
फिर शायद आपको पता नहीं कि जितना मनुष्य का तकनीक विकसित होता है उतनी ही मनुष्य की चेतना विकसित होती है। आदिवासियों में जाइए, एकाध बर्ट्रेंड रसल, एकाध नेहरू मिल सकता है आदिवासियों में खोजने से? क्यों, आदिवासियों के पास बुद्धि नहीं है, आत्मा नहीं है? आदिवासियों के पास एकाध गौतम बुद्ध पैदा नहीं होता है? आदिवासियों के पास कोई थियरी ऑफ रिलेटिविटी पैदा करने वाला आइंस्टीन पैदा नहीं होता है? कोई तानसेन, कोई निराला, कोई रवींद्रनाथ, कोई पैदा होता है? क्यों नहीं पैदा होता? बात क्या है? बात कुल इतनी है कि जितना उत्पादन का साधन विकसित होता है उतना मनुष्य की चेतना को चुनौती मिलती है। उस चुनौती से चेतना विकसित होती है। एक आदमी बैलगाड़ी चला रहा है, बैलगाड़ी चलाने में कितनी चेतना की जरूरत पड़ती है? एक आदमी हवाई जहाज चला रहा है, हवाई जहाज चलाने के लिए बहुत सचेतन होना जरूरी है। हवाई जहाज की जटिल मशीनरी के साथ व्यवहार करने के लिए बहुत बुद्धिमानी होनी जरूरी है। हवाई जहाज को चलाने के लिए आदमी में परिवर्तन हो जाएगा। उसकी चेतना को चुनौती मिलेगी। उसकी चेतना को बदलना पड़ेगा। तो जितना जटिल यंत्र होता है उतनी ही श्रेष्ठतर चेतना को जन्म मिलता है। जितना सरल यंत्र होता है उतनी सामान्य चेतना को जन्म मिलता है।
अभी अंतरिक्ष-यानों में जो यात्री गए, उन्होंने जो वापस लौट कर कहा-- उन्होंने यह कहा कि अंतरिक्ष-यान में जैसे ही हम प्रवेश करते हैं शून्य

आकाश में, इतना सन्नाटा है वहां, इतना साइलेंस है, इतना टोटल साइलेंस है, इतनी शांति है--वहां कोई ध्वनि नहीं, कोई आवाज नहीं कि सिर फटने लगता है शांति से। आपने सुना होगा, आवाज से फिर फटने लगता है, यह मुहावरा, लेकिन शांति से सिर फटने लगता है, यह मुहावरा आपने सुना कभी? लेकिन अंतरिक्ष से जो लौटे हैं लोग वे यह कहते हैं कि शांति से सिर फटने लगता है, नसें जवाब देने लगती हैं, क्योंकि इतनी शांति का कोई अयास नहीं है।
तो आज अमेरिका में और रूस में कमरे बनाए हैं कृत्रिम, जिनके भीतर अंतरिक्ष के जितनी शांति पैदा की है। वहां उनको, यात्रियों को ट्रेंड करते हैं। पंद्रह-बीस मिनट में यात्री बाहर आ जाता है घबड़ा कर कि नहीं, बहुत घबड़ाहट लगती है।
अब आप समझते है, अमेरिका और रूस दोनों मुल्कों के वैज्ञानिक ध्यान में उत्सुक हुए हैं क्योंकि वे कहते हैं कि अब ध्यान सिखाना पड़ेगा यात्रियों को, ताकि वे अंतरिक्ष में सामना कर सकें सन्नाटे का, शून्य का। अब इसको सोचना जरूरी है कि जब पंद्रह मिनट में आदमी बाहर निकल आता है घबड़ा कर, तो धीरे-धीरे उसका अयास चलेगा, उसे चौबीस-चौबीस घंटे, दो-दो तीन-तीन दिन, फिर महीने-महीने इस शून्य में रहना पड़ेगा। क्या आपको पता है इस शून्य में रहने पर उसके मस्तिष्क में बुनियादी फर्क नहीं हो सकता है। बुनियादी फर्क हो जाएगा। जो आपके योगियों को तीस-तीस चालीस-चालीस वर्ष की मेहनत से उपलब्ध हुआ था वह अंतरिक्ष-यान के यात्री को दो दिन में भी उपलब्ध हो सकता है। इतने शून्य का साक्षात करने से चेतना में बुनियादी क्रांति हो जाएगी। और हम? हम कहते हैं, हमें बहुत जटिल यंत्र नहीं चाहिए। हमें जटिल यंत्रों को विकसित नहीं करना है। डर इस बात का पैदा हो गया है कि आने वाले पचास वर्षों में अमरीका और रूस में बिल्कुल नये तरह के मनुष्य के पैदा होने की संभावना है। लेकिन हमें कोई ख्याल नहीं। हम अपनी दकियानूसी, पुराणपंथी बातों को लिए बैठे रहेंगे। और अगर कोई कुछ कहेगा तो उसको गाली देंगे, नाराज होंगे। साठिया कुआं जबलपुर से लेकर सफदरजंग दिल्ली तक, सब नाराज हो जाएंगे एकदम। कोई सोचने-विचारने को राजी नहीं होगा। अब साठिया कुआं के लोग नाराज हो जाएं तो ठीक भी है, क्योंकि कुआं में रहने वालों की कितनी सामर्थ्य और समझ हो सकती है! लेकिन दिल्ली के लोग नाराज हो जाते हैं।
अभी सौराष्ट्र में था, मेरे खिलाफ मोरार जी भाई ने वहां वक्तव्य दिए,
और मोरार जी भाई ने कहा कि मैं ऐसी बातें कह रहा हूं जो मुझे नहीं कहनी चाहिए। एक आध्यात्मिक व्यक्ति को, गांधी जी की आलोचना ही नहीं करनी चाहिए। मैंने कहाः आध्यात्मिक व्यक्ति होना क्या कोई पाप है? मोरार जी भाई कहते हैं, आध्यात्मिक व्यक्ति को आलोचना ही नहीं करनी चाहिए गांधी जी की। अब तक तो राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री आलोचना करते थे, अब आध्यात्मिक लोग आलोचना करते हैं। मैं मोरार जी भाई को कहना चाहता हूं कि गांधी जी को आध्यात्मिक लोग ही समझ सकते हैं, राजनैतिक और आर्थिक लोग तो समझ भी नहीं सकते। क्योंकि गांधी जी मूलतः आध्यात्मिक व्यक्ति हैं--न तो राजनीतिज्ञ हैं और न अर्थशास्त्री। दोनों नहीं हैं। राजनीति आपद-धर्म थी उनके लिए। एक मुसीबत थी, जरूरत आ गई थी इसलिए खड़े थे। लेकिन मूलतः तो वे आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। उनको आध्यात्मिक व्यक्ति नहीं समझेंगे तो कौन समझेगा? और अगर आध्यात्मिक व्यक्ति गांधी की आलोचना नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा?

(बीच में एक आदमी का हस्तक्षेप और शांत रहने का आग्रह)
प्रश्नः आचार्य श्री, ...

पूरी बात सुन लें, फिर पीछे। पूरी बात सुन कर।

प्रश्नः गांधी जी के कुछ अच्छे बारे में सुनना चाहता हूं।

बैठिए। समझ गया।
(न, न, न, उनको कहने दें, कहने दें। हां, कहिए, कहिए।)

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अच्छी बात, अच्छी बात। बैठिए न। बैठिए, बैठिए, बैठिए।

प्रश्नः गांधी जी ने कुछ अच्छा किया, क्या...

हां, मैं बात करता हूं।

(ठीक, उनको रोको मत। उनको रोकिए मत। उनको रोकिए मत।)

उनकी बात मैंने सुन ली। वे यह कह रहे हैं कि मैं गांधी जी के संबंध में कुछ अच्छी बात भी कहूं। वह मैं कहूंगा, इतने घबड़ा मत जाइए। इतने परेशान मत हो जाइए। जाते-जाते एकाध अच्छी बात जरूर उनके बाबत कहूंगा जो आपके मन को बहुत अच्छी लगे।
यह जो मोरार जी भाई कहते हैं कि आध्यात्मिक व्यक्ति को आलोचना नहीं करनी चाहिए, यह बड़ी नासमझी की बात मालूम पड़ती है। शायद उनका ख्याल है कि आध्यात्मिक व्यक्ति आलोचना करते ही नहीं। तो उन्हें पता नहीं है कि दयानंद ने कितनी आलोचना की है। उन्हें पता नहीं है कि शंकराचार्य ने कितनी आलोचना की है। उन्हें पता नहीं है कि बुद्ध ने कितनी आलोचना की है। उन्हें पता नहीं कि सारे अध्यात्म का विकास आलोचना से हुआ है। फिर, गांधी तो एक आध्यात्मिक व्यक्ति हैं। गांधी के ऊपर हिंदुस्तान के आध्यात्मिक व्यक्ति को गंभीरता से सोचना और विचार करना जरूरी है। और मेरा कहना है कि गांधी चूंकि आध्यात्मिक व्यक्ति हैं इसलिए ही अर्थ के जगत में, राजनीति के जगत में बहुत सी भूलें कर सकते हैं; जो कि शायद कौटिल्य या मैक्यावेली कभी भी न करता।
काका कालेलकर ने अहमदाबाद में मेरे खिलाफ अभी एक वक्तव्य दिया और कहा
कि मेरी उम्र कम है इसलिए मैं गड़बड़ बातें कह देता हूं; उम्र थोड़ी ज्यादा होगी तो फिर मैं ठीक बातें कहने लगूंगा। मुझे वे जवाब कोई भी नहीं देते हैं। यह जवाब हुआ! मैं जो कहता हूं उसका यह जवाब हुआ! शंकराचार्य की उम्र-- तैंतीस वर्ष में वे खतम हो गए। तो उनकी उपनिषदों पर लिखी टीकाएं व्यर्थ हैं, अस्सी साल के आदमी की ठीक होती हैं? विवेकानंद की मृत्यु छत्तीस साल में हो गई, तो विवेकानंद ने जो कहा, वह नासमझी से भरा होगा? जीसस क्राइस्ट तैंतीस साल में सूली पर लटक गए, बड़ी गलती की जीसस क्राइस्ट ने। अगर काका कालेलकर से वे सलाह लेते तो वे कहते कि अस्सी साल जीओ। यह उम्र का सवाल है? उम्र से बुद्धिमत्ता आ जाती है? अगर उम्र से बुद्धिमत्ता आती होती तब तो बड़ी आसान बात थी, हम सब लोग उम्र की प्रतीक्षा करते और बुद्धिमत्ता आ जाती। उम्र से तो बुद्धिमत्ता आती दिखाई नहीं पड़ती, चालाकी और कनिंगनेस जरूरी आती दिखाई पड़ती है।
गुजरात सरकार मुझे छह सौ एकड़ जमीन देती थी। जिस दिन मैंने पहली दफा अहमदाबाद में गांधी के लिए वक्तव्य दिया, तो मेरे मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा, यह आप क्या करते हैं? थोड़ा ठहर जाइए, वह जमीन मिल जाने दीजिए। फिर वक्तव्य देना चाहिए। मैंने उनसे कहा, आप अनुभवी लोग हो, आपके लिए जमीन का ज्यादा मूल्य है। मैं गैर-अनुभवी हूं, मुझे जीवन का कोई भी मूल्य नहीं है। जो मुझे ठीक लगता है वह मैं कहूंगा। जमीन आती हो या जाती हो, इसका कोई अर्थ और कोई हिसाब रखने की जरूरत नहीं है। मैंने काका को खबर भेजी कि ठीक कहते हैं, वह अगर मैं अनुभवी होता तो चार दिन बाद कह सकता था, जमीन मिल जाती। और क्या था, अगर न भी कहता, क्या हर्ज क्या था? न भी कहता तो मुझे प्रशंसा ज्यादा मिलती। अभी तो निंदा मिल सकती है, गाली मिल रही हैं। क्या जरूरत थी कहने की? समझदार आदमी, अनुभवी आदमी ऐसी बातें नहीं कहते। वे ऐसी ही बातें कहते हैं जो सबको अच्छी लगें, सबकी प्रशंसा के पात्र बनें। लेकिन ऐसे लोग जगत में कोई बुनियादी क्रांति करने में कभी भी समर्थ नहीं होते।

मुझे गांधी से विरोध नहीं है। वे मित्र शायद घबड़ा गए। हम इतने पतले टीन के बने हुए लोग हैं कि जरा सी गर्मी में बस उबाल आ जाता है। वे घबड़ा गए। गांधी से मुझे विरोध नहीं है। शायद उन्होंने सुना नहीं, मैंने कहा कि गांधी जैसा आदमी इस मुल्क के इतिहास में दूसरा खोजना मुश्किल है। मेरे सिवाय शायद ही किसी आदमी ने गांधी की इतनी प्रशंसा की हो। लेकिन हमारा छोटा सा दिमाग है।

(पुनः हस्तक्षेप)
बैठिए, बैठिए। ठीक है।

यह जो हमारा दिमाग है, यह जो छोटा सा हमारा दिमाग है यह इतनी जल्दी परेशान हो जाता है कि गांधी की जैसे अगर कोई आलोचना की गई तो गांधी का कोई अहित हुआ जा...

(उनसे कुछ भी मत कहिए, उनसे कुछ भी मत कहिए। एक ही आदमी का गड़बड़ होना काफी है, उनको समझाइए मत। उनको बिल्कुल समझाइए मत)

यह जो हमारी मानसिक दशा है कि हम प्रशंसा सुनने के लिए आतुर होते हैं, हमें अच्छा लगता है कि हमारे महापुरुष को बड़ा कहा जा रहा है। हमारे अहंकार की बड़ी तृप्ति होती है। लेकिन, उस तृप्ति से मुल्क का क्या हित होता है? यह भी मैं नहीं कह रहा हूं कि गांधी ने जो किया वह सभी बुरा किया। कह मैं यह रहा हूं कि सारा मुल्क तो प्रशंसा करेगा, कम से कम एक आदमी को आलोचना करने दो। एक वर्ष चलेगी यह प्रशंसा तो। हिंदुस्तान पूरी प्रशंसा करेगा, सारे लोग प्रशंसा करेंगे। खोज-खोज कर लाएंगे कि क्या-क्या अच्छा किया। कोई नहीं कहेगा कि क्या मुल्क पर, आने वाले मुल्क पर उस सबका क्या परिणाम हो सकता है। एक आदमी को कहने दो।
और मैं यह जानता हूं कि गांधी अगर स्वयं हों तो आलोचना के लिए स्वागत करेंगे। जीवन भर उनकी आदत यह थी। न केवल आलोचना का स्वागत करेंगे, बल्कि खुद निरंतर अपनी आलोचना करते रहे। प्रति वर्ष कहते रहे कि यह भूल हो गई, यह भूल हो गई। मरने के बाद ही उनसे कोई भूल नहीं हुई। जीते थे तब तो रोज बताते रहे कि यह भूल हो गई, यह भूल हो गई।
एक अमरीकी पत्रकार ने गांधी के खिलाफ बहुत सी ऐसी बातें लिखीं, जो सरासर झूठी थीं। लिखा कि गांधी औरतों के कंधों पर हाथ रख कर सैर-सपाटा करते हैं। कुछ ऐसे बुद्धिमान लोग हैं कि उन्हें औरतों के सिवाय कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता। अब वह गांधी की अपने लड़कों की लड़कियां हैं, अपनी भतीजियां हैं, ये हैं, वे हैं, छोटी लड़कियां जिनके कंधों पर वे हाथ रखते हैं। उनकी तस्वीरें छापीं कि गांधी बड़े अश्लील आदमी हैं। अंग्रेज सरकार ने लाखों रुपये उस सबके प्रचार के लिए दिए। वह अमरीकी पत्रकार हिंदुस्तान आया, तो वह डरा हुआ था। वह सारे के सारे जवाब तैयार करके लाया था कि हिंदुस्तान में पूछताछ होगी। गांधीजी को खबर मिली तो उन्होंने अपने सेक्रेटरी को दिल्ली भेजा और उस पत्रकार को निमंत्रण दिया कि वर्धा आए बिना मत चले जाना, मुझे बहुत दुख होगा। अमेरिका में बहुत ही कम लोग इतना मुझे जानते हैं जितना तुम जानते हो। वह आदमी बहुत डरा। वह आदमी घबड़ाया कि यह कुछ फांसने की चाल तो नहीं है? लेकिन उसे पता नहीं कि गांधी राजनीतिज्ञ नहीं थे, फांसना वे जानते ही नहीं थे। उनको कल्पना भी नहीं थी। वह डरा हुआ वर्धा आया। वह इतना घबड़ाया हुआ है कि जाते से ही दिखता है कि वही बात पूछी जाएगी कि तुमने यह लिखा, तुमने यह लिखा, तुमने यह लिखा। लेकिन दिन बीत गया, गांधी ने बहुत बातें पूछीं--उसका स्वास्थ्य कैसा है, उसकी तबीयत कैसी है, उसकी पत्नी कैसी है, बच्चे कैसे हैं, अमेरिका में और सब क्या हाल है? सब पूछा, रात आ गई, वह बात नहीं हुई। दूसरा दिन हो गया, और सब बातें हुईं--गीता और कुरान सब आए।
दूसरे दिन विदा का वक्त आ गया। और उस आदमी से यह नहीं पूछा कि तुमने मेरे बाबत यह क्या लिखा है? चलते वक्त वह आदमी रोने लगा, और उसने कहा कि

क्या बापू आप मुझसे वह पूछेंगे नहीं? गांधी ने कहा कि तुमने लिखा है तो सोच कर ही लिखा होगा। तुमने लिखा है, तुम इतने बुद्धिमान आदमी हो, विचार करके ही लिखा होगा। और फिर जब से मैंने पढ़ा, मैं खुद भी सोचने लगा कि मेरे भीतर कहीं कोई वासना शेष तो नहीं है? अन्यथा यह आदमी लिखता कैसे! कहीं मेरे भीतर कोई वासना जरूर शेष होनी चाहिए, इस आदमी को पकड़ में आई है बात। तो कहीं न कहीं कोई किसी कोने में वासना शेष होगी। ठीक ही तो है, मुझे विचार का तुमने मौका दिया। और तुमसे मेरी प्रार्थना है, वहां जाकर मेरी प्रशंसा मत करने लगना। मेरी प्रशंसा करने वाले बहुत लोग हैं। थोड़े ही आलोचक हैं, उनके ही आधार से मैं विकसित होता हूं। जो थोड़े से आलोचक हैं उनके आधार से मैं विकसित होता हूं। क्योंकि वे मुझे कहते हैं कि यहां गलत। मेरे प्रशंसक तो जयजयकार करते हैं। उनसे मुझे पता ही नहीं चलता कि मैं गलत भी हो सकता हूं। और अगर मैं उनकी ही बातों में पड़ा रहूं तो मुझे गड्ढे में ले जाएंगे वे। सब अनुयायी अपने नेताओं को गड्ढों में ले जाने वाले सिद्ध होते हैं। क्योंकि अनुयायी जयजयकार करते हैं। और अनुयायी बहुत घबड़ाता है, जयजयकार में कोई कमी न हो जाए। लेकिन गांधी जैसे लोगों को जयजयकार से कोई फर्क नहीं पड़ता है। इतने घबड़ाने की जरूरत नहीं है। इतने बेचैन होने की जरूरत नहीं है।
मैं जो कह रहा हूं वह गांधी के खिलाफ नहीं कह रहा हूं। मैं जो कह रहा हूं वह गांधी की जो धारणाएं हैं, गांधी का जो विचार है वह इस मुल्क के लिए लागू हो सकता है कि नहीं, इस संबंध में कह रहा हूं। गांधी तो अनूठे व्यक्ति हैं, उनके विचार चाहे कितने ही गलत सिद्ध हों। विचार उनके खतम हो जाएंगे, लेकिन गांधी की महानता खतम होने वाली नहीं है।
कराची में एक कांग्रेस में गांधी थे। कुछ लोगों ने काले झंडे दिखाए गांधी को और नारा लगाया, गांधीवाद मुर्दाबाद। गांधी ने माइक से बोलते हुए कहा, गांधी मर जाएगा लेकिन गांधीवाद जीएगा। मैं गांधी से कहना चाहता हूं, थोड़ी भूल हो गई शब्दों में। मैं उनसे कहना चाहता हूं, गांधीवाद मर सकता है, गांधी जीएगा। गांधी नहीं मर सकता है। गांधी का व्यक्तित्व ऐसा अनूठा है कि वाद वाद का कोई सवाल नहीं है। वह सब चला जाएगा लेकिन गांधी की सच्चाई, गांधी की करुणा, गांधी की अहिंसा, गांधी का प्रेम, गांधी की ईमानदारी, गांधी की सरलता, वह जीएगी। गांधीवाद में कोई मूल्य नहीं है बहुत, लेकिन गांधी में बहुत मूल्य है।
और यह मैं उदाहरण के लिए कहना चाहता हूं। जैसे मार्क्स को अगर हम उठा
कर देखें तो मार्क्स के व्यक्तित्व में कुछ भी नहीं है। दो कौड़ी का व्यक्तित्व है लेकिन विचार बहुत कीमती है। मार्क्स के व्यक्तित्व में कुछ भी नहीं है। कोई कीमत की बात नहीं है, लेकिन विचार उसका अनूठा है। मार्क्स का विचार जीएगा। गांधी का विचार अनूठा नहीं है। गांधी के व्यक्तित्व में बड़ी अनूठी खूबियां हैं। गांधी का व्यक्तित्व जीएगा।
मैं जिस समाज की कल्पना करता हूं उस समाज में गांधी जैसे व्यक्ति चाहता हूं और मार्क्स जैसा समाज चाहता हूं। अब यह मेरी मजबूरी है कि गांधी के विचार से मैं राजी नहीं हूं, लेकिन इससे मैं यह भी नहीं कहता हूं कि आप मुझसे राजी हो जाएं। मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि मेरी जो गैर राजी होने की स्थिति है, उसे आप समझ लें, सोचें, विचार करें। हो सकता है, मैं गलत सिद्ध हो जाऊं। मैं गलत सिद्ध हो जाऊं तो मेरी बातों को फेंक दें कचरे में। लेकिन यह भी हो सकता है कि मेरी कोई बात सही सिद्ध हो सकती है। और अगर कोई बात सही सिद्ध हो सकती है तो सिर्फ इस भय से कि कहीं गांधी की आलोचना हो जाए उसको न कहना, सारे मुल्क को गड्ढे में ले जाना होगा।
इस मुल्क की तरफ देखें या गांधी की जयजयकार की तरफ देखते रहें? क्या करें? इस बड़े मुल्क का भविष्य देखें या बस चुपचाप बैठ कर प्रशंसा करते रहें? बहुत हमने प्रशंसा की है हजारों साल से। हम अपने किसी महापुरुष की आलोचना कभी किए ही नहीं हैं, और इसीलिए यह मुल्क इतना छोटा का छोटा रह गया है। महापुरुषों की आलोचना से मुल्क ऊपर उठते हैं। महावीर की आलोचना की कभी इस देश ने? कभी हमने बुद्ध की आलोचना की? अब हम गांधी के साथ वही दुर्व्यवहार कर रहे हैं। वह दुर्व्यवहार यह है कि गांधी को भी भगवान बना

कर बिठा देना है एक मंदिर में। बस उनकी पूजा करो, फूल चढ़ाओ, लेकिन उनका उपयोग मत करना देश के जीवन के लिए। और देश के लिए, जीवन के लिए उपयोग करना है तो सोचना पड़ेगा, तो गांधी को घसीटना पड़ेगा आग में। लेकिन मैं जानता हूं कि उनके भीतर बहुत कुछ सोना है। वह आग में भी बच जाएगा और जो कचरा है वह तो जल ही जाना चाहिए। वह गांधी का है इसलिए उस कचरे को आदर देने का कोई सवाल नहीं उठता है।
कुछ गांधी से मुझे विरोध है, ऐसी धारणा लोगों के मन में पैदा हो जाती है। गांधीवाद से मेरा विरोध है। और गांधीवादियों से तो बहुत ज्यादा विरोध है, क्योंकि बीस साल में गांधीवादियों ने मुल्क को नरक की यात्रा करवा दी। और उनसे इस मुल्क को बचाना एकदम जरूरी है। लेकिन वे सारे लोग गांधी की आड़ में गांधीवाद को और गांधीवादी को बचाए रखना चाहते हैं। गांधी का जोर से शोरगुल मचा कर यह भ्रांति मुल्क में जारी रखना चाहते हैं कि गांधीवाद ठीक है और पीछे से गांधीवादी ठीक है। आदमी के तर्क बड़े अनूठे हैं। आदमी बहुत होशियारी से तर्क खोजता है। वह उसे पता भी नहीं चलता है कि वह कैसे तर्क खोज रहा है। एक आदमी कहता है हिंदू धर्म महान है, और भीतर से वह यह कहना चाहता है कि मैं हिंदू हूं। मैं महान हूं इसलिए हिंदू धर्म महान है।
मैं हमेशा एक कहानी कहता रहा हूं। पेरिस युनिवर्सिटी में एक प्रोफेसर
था दर्शन का। उसने एक दिन आकर अपनी कक्षा में कहा कि मुझसे महान व्यक्ति दुनिया में कोई भी नहीं है। उसके शिष्यों ने पूछा, आप! आप एक गरीब से शिक्षक, फटा कोट पहने हुए हैं। आप, सबसे महान! कैसे आपको पता चला? मन में तो सोचा दार्शनिक हैं, पागल हो गए होंगे। दार्शनिकों के पागल हो जाने में देर नहीं लगती। वे किनारे पर खड़े रहते हैं, कभी भी पागल हो सकते हैं। एक विद्यार्थी ने पूछा, लेकिन आप, महान सबसे? वह आदमी उठ कर गया, उसने नक्शे पर जाकर कहा कि मैं सिद्ध कर दूंगा। तुम तो जानते हो, मैं तर्कशास्त्री हूं। उसने जाकर नक्शे पर हाथ रखा और पूछा कि मैं पूछता हूं, दुनिया में सबसे महान देश कौनसा है? उन्होंने कहा, फ्रांस। वे सभी फ्रांस के रहने वाले हैं--फ्रांस। हिंदुस्तान के रहने वाले होते तो हिंदुस्तान, तिब्बत के होते तो तिब्बत। क्योंकि जहां हम पैदा होते हैं वही देश महान हो जाता है क्योंकि हम जो महान हैं भीतर! उन्होंने कहा, फ्रांस। उसने कहा, तब सारी दुनिया खतम हो गई। अब रह गया फ्रांस। अब मुझे सिद्ध करना है कि फ्रांस में मैं सर्वश्रेष्ठ आदमी हूं। तब भी उसके बच्चे नहीं समझे कि वह कहां ले जा रहा है। फिर उसने कहा कि फ्रांस में सबसे श्रेष्ठ नगर? तब बच्चों को शक हुआ कि मामला गड़बड़ हुआ जाता है। वे सब पेरिस के रहने वाले थे। उन्होंने कहा, पेरिस। उसने कहा, तब फ्रांस खत्म, अब रह गया पेरिस। अब पेरिस में ही सिद्ध करना है कि मैं बड़ा हूं या नहीं। और पेरिस में सबसे श्रेष्ठ स्थान? निश्चित ही विद्या का मंदिर विश्वविद्यालय है, वही युनिवर्सिटी। उसने कहाः तब ठीक, अब रह गई युनिवर्सिटी। और युनिवर्सिटी में श्रेष्ठतम विषय, सब्जेक्ट? फिलॉसफी। और मैं फिलॉसफी विभाग का हेड ऑफ द डिपार्टमेंट हूं। आदमी इतना चालाक है। भीतर बहुत गहराई में एक ही बात है कि "मैं"। गांधी महान है, गांधीवाद महान है, गांधीवादी महान है। और फिर धीरे से वह धीरे से कहता है, मैं तो एक गांधीवाद का सेवक हूं। पीछे वह आदमी खड़ा है। पीछे वह छोटा सा सेवक है जिसका सारा जाल है। वह सेवक घबड़ाया हुआ है। वह गांधीवादी घबड़ाया हुआ है। गांधी को कोई डर नहीं है आलोचना का, लेकिन गांधीवादी को डर है। वह बहुत भयभीत है। उसका भय क्या है? उसका भय यह है कि गांधी पर अगर तीव्र आलोचना इस मुल्क में चली और लोगों ने सोचा और समझा, और अगर गांधी में कुछ गलतियां दिखाई पड़ीं तो गांधीवादी की जड़ कट जाने वाली है। वह इस मुल्क में जी नहीं सकेगा। उसके शोषण का सारा उपाय नष्ट हो जाएगा।
गांधी जी ने कहा कि मैं ट्रस्टीशिप चाहता हूं। मैं चाहता हूं एक ऐसा देश, जहां धनी अपने धन का मालिक न हो। लेकिन चालीस वर्षों की निरंतर मेहनत के बाद गांधी एक भी धनी आदमी को ट्रस्टी बनने के लिए राजी कर पाए? एक भी आदमी को? यह असफलता नहीं है? और अगर खुद गांधी जैसा महान व्यक्ति एक धनपति को राजी नहीं कर पाया ट्रस्टी बनने के लिए तो गांधीवादी राजी कर लेंगे, ये

छुटभय्यै राजी कर लेंगे--गांधी के पीछे जो कतार खड़ी है? गांधी हार गए, एक करोड़पति राजी नहीं हुआ। बल्कि मामला उलटा हो गया। गांधी के एक करोड़पति शिष्य ने जब हिंदुस्तान आजाद हुआ तो उनके पास तीस करोड़ की संपत्ति थी। बीस साल के बाद उनके पास तीन सौ तीस करोड़ की संपत्ति है। बीस साल में तीन सौ करोड़ संपत्ति इकट्ठी की! शास्त्रों में मैंने पढ़ा था, सत्संग का फायदा होता है। पता पहली दफे चला कि सत्संग का फायदा है। महात्मा के सत्संग का फायदा। ट्रस्टी तो वे नहीं बने, लेकिन तीस करोड़ से बीस साल में संपत्ति का संग्रह तीन सौ तीस करोड़ हो गया!
कहते हैं दुनिया के इतिहास में किसी करोड़पति ने एक परिवार ने इतने कम समय में इतनी संपत्ति इकट्ठी नहीं की। तो गांधीवाद को कैसे गिरने देगा करोड़पति? कैसे गिरने देगा अमीर गांधीवाद को? उसके ऊपर ही आज उसकी जिंदगी ठहरी हुई है। इधर गांधीवादी की आवाज है, लेकिन पीछे से पूंजीवादी के स्वर हैं। लगाम उसके हाथ में है। वह कहता है कि सब हृदय-परिवर्तन से ठीक हो जाएगा। गांधीजी एक आदमी का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाए। एक आदमी का हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ कि वह अपनी संपत्ति छोड़ दे। अब कौन हृदय-परिवर्तन करेगा? गांधी नहीं कर पाए तो कौन करेगा हृदय-परिवर्तन? नहीं, हृदय-परिवर्तन की बातचीत के पीछे हिंदुस्तान में शोषण का जाल जारी रहे इसकी चेष्टा चल रही है।
ये सारी बातें सोचने जैसी हो गई हैं कि इन बातों को चलने देना है या हिंदुस्तान में एक समाजवादी समाज निर्मित करना है? एक शोषणविहीन समाज निर्मित करना है या कि हिंदुस्तान में जो गरीबी-अमीरी के फासले हैं वे बड़े से बड़े होते जाने देना है! एक तरफ गरीबों का ढेर इकट्ठा होता जाए, जिसके पास जिंदगी की सांस लेने की सामर्थ्य भी नहीं रह गई, और एक तरफ धन इकट्ठा होता चला जाए। यह चलने देना है? यह नहीं चलने देना है तो हमें विचार करना पड़ेगा कि गांधी जो हृदय-परिवर्तन की बात कहते तो उससे कुछ होगा, या कुछ और करना जरूरी है।
विनोबा ने मेहनत की, गांधी की बात मान कर उन्होंने श्रम कर लिया बीस साल। उनकी मेहनत में, उनकी नीयत में कोई भी शक नहीं हो सकता। उन जैसे साफ आदमी खोजने मुश्किल हैं। उन जैसे सच्चे और देश के लिए प्राण लगाने वाले आदमी खोजने मुश्किल हैं। लेकिन असफल हो गई सारी यात्रा। असफल इसलिए हो गई कि आप चाहे कितना ही दान लेकर गरीबों में बांट दो, कितनी ही जमीन बांट दो, शोषण का यंत्र बरकरार है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं एक लाख रुपया दान कर दूं तो मैं नहीं बदलता हूं। मैं कल फिर जिस तरह मैंने एक लाख पिछला कमाया था, दुगुनी ताकत से उस एक लाख को कमाने में फिर लग जाता हूं। वह शोषण का यंत्र जारी है। मैं जमीन दान कर दूं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दान-दक्षिणा से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है क्योंकि शोषण का यंत्र दान-दक्षिणा से नहीं बदलता, बल्कि दान-दक्षिणा कर ही वे पाते हैं जो शोषण से पहले इकट्ठा कर लें, तब दान-दक्षिणा करें। नहीं तो दान-दक्षिणा करेंगे कहां से? पहले एक आदमी अमीर हो जाता है, फिर दान करता है। और अमीर होने का जो यंत्र है वह जारी रहता है। दान करता जाता है और यंत्र भी जारी रखता है। इससे कोई मुल्क की सामाजिक व्यवस्था नहीं बदल सकती। समाजवाद आए इस देश में तो सर्वोदय हो सकता है, लेकिन सर्वोदय से समाजवाद कभी नहीं आ सकता। इस सब पर सोचना जरूरी है। इस सब पर विचार करना जरूरी है। यह विचार करने के लिए मैं पूरे मुल्क में एक-एक गांव में जाने की मेरी योजना है इस पूरे वर्ष में कि गांधी पर हम पुनर्विचार करें। लेकिन गांधी पर ही क्यों? क्योंकि गांधी को इस सदी का मैं श्रेष्ठतम मनुष्य मानता हूं, इसलिए गांधी पर विचार किया जाना जरूरी है। जो श्रेष्ठतम है, उसके बाबत हमें बहुत सजग और होशपूर्वक विचार कर लेना चाहिए। साधारण-जनों के बाबत विचार करने की कोई भी जरूरत भी नहीं है। गांधी के बाबत विचार करने की जरूरत है। और आने वाले पचास-पच्चीस वर्षों में हिंदुस्तान में जो कुछ हो सकता है वह इस पर निर्भर होगा कि हम गांधी के बाबत क्या निर्णय लेते हैं? अगर हमें यह निर्णय लेना है कि गांधी ठीक हैं, तो मैं कहता हूं, फिर सौ प्रतिशत यही निर्णय लो। पर विचार करो, यही निर्णय लो। कहो कि गांधी ठीक हैं; तो फिर सौ

प्रतिशत यही निर्णय लो। फिर छोड़ो सारी यांत्रिकता, फिर छोड़ो सारा केंद्रीकरण। फिर लौट जाओ, बड़े शहरों को तोड़ दो, लौट जाओ गांव में, और गांधी का प्रयोग पूरा कर लो। ईमानदारी से यही निर्णय ले लो, एक आनेस्टी तो हो! सिंसियरिटी तो हो!
लेकिन अभी मामला ऐसा है कि एक आदमी मैंने देखा, एक कार्टून मैंने देखा, एक आदमी जा रहा है। अपना सूटकेस लिए हवाई जहाज पर चढ़ रहा है, उसके मित्र छोड़ने आए हैं, वे उससे पूछते हैं, आप कहां जा रहे हैं? वह आदमी कहता है कि मैं लंदन जा रहा हूं हिंदी पर रिसर्च करने। हिंदी पर रिसर्च करने लंदन जा रहे हैं? एक आदमी हिंदी के पक्ष में भाषण देता है और अंग्रेजी में भाषण देता है कि हिंदी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए, अंग्रेजी में बोलता है। यह पागलपन छोड़ो।
एक तरफ हम गांधी का विचार करें और गांधी को सही मानें और जयजयकार करें, और दूसरी तरफ? दूसरी तरफ यंत्रीकरण करें, तो गलत है। फिर यंत्रीकरण मत करो। फिर तोड़ दो सारे बड़े यंत्रों को। फिर पश्चिम से सहायता मत लो। फिर मत बनाओ भिलाई, फिर मत खड़े करो भाखरा और नंगल। छोड़ो इनको, इनकी जरूरत नहीं है, फिर लौट चलो गांव को। तो भी मैं तैयार हूं। गांधी पर विचार करके इतनी हिम्मत भी मुल्क करे तो भी समझ में आता है। लेकिन यह बेईमानी, यह काइयांपन ठीक नहीं है कि गांधी की जयजयकार करो, और जो कर रहे हो वह बिल्कुल दूसरा है। इसकी वजह का परिणाम यह होता है कि एक तरफ हम बड़ा काम भी करते हैं और दूसरी तरफ जो बिल्कुल उलटा है वह भी किए चले जाते हैं। एक तरफ बड़ी मिल खड़ी करते हैं, दूसरी तरफ खादी को प्रोत्साहन देते हैं।
अगर मैं एक खादी की धोती पहनूं--दस रुपये में मिल सकती है बाजार में साधारण धोती--तो यह साठ रुपये की होगी। साठ रुपये पर पंद्रह रुपये सरकार देगी। सरकार किसके पास से दे रही है? सरकार उनके पास से दे रही है जो खादी नहीं पहनते हैं। उनसे टैक्स ले रही है, और जो खादी पहनते हैं उनको पंद्रह रुपये का कंसेशन दे रही है। करोड़ों रुपया इन बीस वर्षों में खादी को कंसेशन देने में खर्च किया गया है। किसलिए? ये करोड़ों रुपये से मिलें बन सकती थीं, मशीनें बन सकती थीं। और नहीं बनाना है मिलें और मशीनें, तो तोड़ दो, फिर पूरी खादी ही बनाओ। लेकिन मुल्क को एक स्पष्ट निर्णय चाहिए कि हम जो करेंगे वह साफ हो, स्पष्ट हो। हम ऐसा न करें कि एक कदम आगे रखेंगे और दूसरा पीछे रखेंगे। बाएं हाथ से ईंट रखेंगे और दाएं हाथ से खींच लेंगे। तो इस मुल्क का भवन फिर निर्मित नहीं हो सकता है। एक स्पष्ट निर्णय चाहिए मुल्क के सामने गांधी के पक्ष में, तो गांधी के पक्ष में हिम्मत से जुट जाना चाहिए।
मुझे लगता है कि गांधी के पक्ष में जुटना आत्मघात है, सुसाइड है। यह मुझे कहने का हक है। मुझे लगता है कि गांधी से पूरी तरह मुक्त हो जाना चाहिए, गांधीवाद से। गांधीवाद नहीं मुल्क के हित में सिद्ध होने वाला है। मुल्क को चाहिए नवीनतम वैज्ञानिक उपकरण, श्रेष्ठतम टेक्नालॉजी, केंद्रीकरण, नई से नई शोध, नया विज्ञान ताकि मुल्क की दरिद्रता मिट सके, मुल्क संपन्न हो सके। और मैं यह मानता हूं कि गांधीवाद से मुक्त होने का मतलब गांधी के आदर से मुक्त हो जाना नहीं है।
सच तो यह है कि अभी जो लोग समझते हैं कि गांधी को आदर दे रहे हैं, उन्होंने कुल आदर इतना दिया है कि हवालात में एक फोटो लटका दी है गांधी की, अदालत में एक फोटो लटका दी है। उन्हीं के नीचे बैठ कर मजिस्ट्रेट रिश्वत ले रहा है और गांधी ऊपर लटके हुए हैं। हवलदार के पीछे फोटो लटकी है, मां- बहन की गाली दे रहा है हवलदार, उसको, जिसके लिए गांधी जिंदगी भर लड़े, वह फोटो लटकी देख रही है। यह सम्मान बढ़ाया है!
मैं आपको कहता हूं, गांधीवादियों के चक्कर में अगर गांधी रह गए तो बीस साल में गांधी की कोई इज्जत नहीं बचेगी इस मुल्क में, इनकी वजह से इज्जत नष्ट हो जाएगी। इनसे गांधी का छुटकारा चाहिए। गोडसे तो गांधी की हत्या करने में सफल नहीं हो पाया, सिर्फ शरीर को मार पाया। गांधीवादी गांधी की आत्मा भी मार डाल सकते हैं। इनसे बचाना जरूरी है गांधी को। यह कोई समझ की बात है, गांधी कोई पंचम जार्ज हैं। हवालात में लटकाए हो उनको, काहे के लिए?

ऐसे कोई आदर बढ़ जाएगा? कि तुम मूर्तियां गांव-गांव में खड़ी कर दोगे तो आदर बढ़ जाएगा? आदर इस तरह नहीं बढ़ता है, बल्कि सरकार, जिस संत को सरकारी बना लेती है, वह संत नष्ट हो जाता है, क्योंकि लोकमानस से उसकी प्रतिष्ठा चली जाती है। गांधी की जय वह भी थी जो उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले लोग बोलते थे और अब भी बोलते हैं, लेकिन अब बोलने वालों में सिर्फ प्राइमरी स्कूल के बच्चे सुनाई पड़ते हैं और कोई भी नहीं। और ये बेचारे प्राइमरी स्कूल के मास्टर और बच्चे, इनका सदा से यही काम रहा है--चाहे पंचम जार्ज की जय बुलवाओ, चाहे गांधी की जय बुलवाओ।
इन जयजयकारों से कोई प्रयोजन नहीं है। मेरी दृष्टि में भारत को गांधी
के संबंध में पुनर्विचार किया जाना आवश्यक है। नहीं मैं कहता हूं कि मुझसे राजी हो जाएं, नहीं मैं कहता हूं कि मैं जो कहता हूं वही सच है। नहीं, यह दावा मेरा नहीं है लेकिन जो मुझे सच दिखाई पड़ता है वह कहने का मुझे हक है। और मैं समझता हूं, जो थोड़े भी बुद्धिमान हैं उन्हें सुनने का भी कर्तव्य दिखाना चाहिए। सुन लें, सोचें, गलत हो, फेंक दें। कुछ ठीक लगे, मुझसे कोई संबंध न रहा। जो आपके विवेक को ठीक लगता है वह आपका हो जाता है। लेकिन विचार का प्रवाह खुलना चाहिए। और परमात्मा को धन्यवाद दे सकते हैं हम कि गांधी जैसा बड़ा आदमी अभी-अभी हुआ हमारे बीच। उस पर अगर हम विचार कर लें तो शायद आने वाले देश के लिए हम सुगम, सीधा और साफ रास्ता निर्मित करने में सफल हो जाएं। इस धारणा से उन पर पुनर्विचार करने के लिए मैं सारे मित्रों को देश भर में आमंत्रित करना चाहता हूं। लेकिन वे घबड़ाए हुए हैं। वे कहते हैं, विचार नहीं, आप आइए, स्तुति करिए, जयजयकार करिए। मैं कहता हूं, वह कोई भी कर रहा है। आलोचना करने के लिए सोचना जरूरी है। प्रशंसा करने के लिए सोचना जरूरी नहीं होता। सच तो यह है, जो सोच नहीं सकते वे बेचारे प्रशंसा करके निपट जाते हैं। एक कुत्ता भी पूंछ हिला कर प्रशंसा जाहिर कर देता है। कोई सोचने की बहुत जरूरत नहीं होती। लेकिन आलोचना करना हो तो सोचना जरूरी है, विचारना जरूरी है, और हिम्मत और साहस से विचार करना जरूरी है।
मेरी ये थोड़ी सी बातें आपने सुनीं। संभव हुआ तो अगले महीने तीन या चार दिन इकट्ठा... यह तो मैंने गांधी पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए, इस संबंध में बोला हूं, गांधी पर मैं क्या पुनर्विचार करता हूं वह तीन दिन या छह लेक्चर में इकट्ठा बोलना चाहूंगा। यह तो पुनर्विचार होना चाहिए, इस संबंध में मैंने प्रस्तावना की है। पुनर्विचार क्या होना चाहिए? गांधी के इंच-इंच, रत्ती-रत्ती पर विचार करना जरूरी है। वह संभव हुआ तो अगले महीने मैं बोलूंगा और आपसे आशा करूंगा कि आप भी तब तक सोचेंगे, विचार करेंगे। और उन तीन दिनों में मैं चाहूंगा कि आप लिख कर देंगे ताकि आपके प्रश्नों की बात भी हो सके।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना--और उन मित्र को भी बहुत धन्यवाद देता हूं, क्रोध में भी इतनी देर वे शांत रहे। थोड़ी देर क्रोधित हुए, इतनी देर शांत रहे, यह भी कोई कम है! आप सबने मेरी बात को इतनी शांति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

देख कबीरा रोया
अट्ठाईसवां प्रवचन

अनिवार्य संतति-नियमन

प्रश्नः हम लोग कुछ समझने आए हैं।

कहिए।

प्रश्नः आपको हम सुनते थे। आप तीसरी बार आए हैं यहां। तो दो बात का हमारे पर असर रहा। आप एक तो बुद्धिनिष्ठा की हिमायत करते हैं और दूसरी विचारनिष्ठा-बुद्धिनिष्ठा की बात करते हैं आप। वह गुरु-ग्रंथ वगैरह की कोई रोक-टोक न होनी चाहिए। या तो उनको मान लेना, वैसा आप नहीं चाहते हैं।

हूं-हूं।

(प्रश्न गुजराती भाषा में।)

नहीं, मैं तो इतना हैरान हूं कि जो खबरें मेरे बाबत पहुंचाई जाती हैं,
वे इतनी तोड़-मरोड़ कर, इतनी बिगाड़ कर पहुंचाई जाती हैं कि जब मुझे आप कहते हैं तो मुझे हैरानी हो जाती है। वह जो पत्रकारों की जिस कांफ्रेंस में यह बात हुई...

प्रश्नः नारगोल में।

हां। उनसे सिर्फ मजाक में मैं यह कहा, उनसे सिर्फ मजाक में यह कहा कि इसको तुम लोकतंत्र कह रहे हो, इस लोकतंत्र से तो बेहतर हो कि पचास साल के लिए कोई तानाशाह बैठ जाए। यह सिर्फ मजाक में कहा। और उनकी बेवकूफी की सीमा नहीं है कि इसको उन्होंने कि मैं पचास साल के लिए देश में तानाशाही चाहता हूं। मैं जो कह रहा हूं, ऐसा ही उनमें से किसी ने कहा कि आप जो बातें कहते हैं, इसमें तो कोई आपको गोली मार दे तो क्या हो? तो मैंने सिर्फ मजाक में कहा कि यह फिर तो बड़ा अच्छा हो जाएगा, गांधी से मुकाबला हो जाए। उन्होंने सबने छाप दिया कि मैं गांधी से मुकाबला करना चाहता हूं।
अब इन सबके लिए क्या किया जा सकता है? ह्यूमर को समझने की क्षमता भी हमारी खोती चली जा रही है। मजाक भी नहीं समझ सकते! और फिर आप सब लोग हैं कि उनकी खबर पर आप सब खंडन-मंडन भी शुरू कर देते हैं!

प्रश्नः नहीं, आपने राजकोट में भी कहा था।

राजकोट में जो कहा हूं, वह तो यह कहा हूं, मेरा कहना यह है कि जो लोकतंत्र आर्थिक रूप से समानता नहीं लाता, वह सिर्फ धोखे का लोकतंत्र है, वह लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र सिर्फ राजनैतिक समानता की बात करे तो वह लोकतंत्र बिल्कुल धोखे का है। क्योंकि राजनैतिक समानता अंततः आर्थिक समानता पर निर्भर होती है। और अगर आर्थिक असमानता है तो राजनैतिक समानता का कोई मतलब नहीं होता है। वह जिनके पास अर्थ है, उन्हीं के लिए मतलब होता है। बाकी के लिए कोई अर्थ नहीं होता।
तो वहां तो मैं यह कहा हूं कि अगर सच्चा लोकतंत्र लाना है देश में, अगर
सच में ही डेमोक्रेसी पैदा करनी है, तो यह जो थोथी डेमोक्रेसी जिसको तुम समझे चले जा रहे हो, यह डेमोक्रेसी काम नहीं करेगी। आर्थिक समानता लाए बिना कोई डेमोक्रेसी खड़ी नहीं हो सकती। और आर्थिक समानता लाने के लिए अगर तुम सिर्फ डेमोक्रेटिक बातें करते चले जाते हो तो ये डेमोक्रेसी की बातें आर्थिक समानता लाने में बाधा बनती मालूम पड़ती हैं। जो मैंने वहां कहा, कुल इतना कहा कि यह जो सारी दुनिया में डेमोक्रेसी की जितनी बात चलती है-- डेमोक्रेसी सोशलिस्टिक भी हो सकती है और कैपिटलिस्टिक भी हो सकती है।

प्रश्नः आपका जो स्टेटमेंट है, वह तो है ही, वह आप डिनाई नहीं कर सकते?

नहीं-नहीं, डिनाई तो मैं कब करूंगा, डिनाई का तो सवाल ही नहीं है, डिनाई का तो सवाल ही नहीं है।

प्रश्नः नहीं, राजकोट में आपने अभी कहा भी।

बिल्कुल कहा हूं।

प्रश्नः कि मेरी थिसिस क्या है, तो कम्युनिज्म प्लस...

हां-हां, बिल्कुल कहा हूं न। इसमें कौन मना करता है।

प्रश्नः कम्युनिज्म है तो...

न, यह जरूरी नहीं है, क्योंकि कम्युनिज्म की क्या परिभाषा करूंगा, यह मुझ पर निर्भर है। कोई मार्क्स ने ठेका नहीं ले लिया है कम्युनिज्म की परिभाषा का। यह तो कोई सवाल नहीं है कि कम्युनिज्म मैंने कह दिया तो कोई ठेका है मार्क्स का। यह सवाल नहीं है।

प्रश्नः कंपल्सरी फेमिली प्लानिंग का भी आप...

बिल्कुल कंपल्सरी मानता हूं। मेरी बात समझ लें थोड़ा सा। मैं कंपल्सरी मानता हूं, इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कंपल्सरी कर दूंगा। कंपल्सरी का मतलब कुल इतना है कि मैं आपके विचार को अपील करता हूं कि कंपल्सरी हो जाने जैसी चीज है। और अगर मुल्क की मेजारिटी तय करती है तो कंपल्सरी होगा। कंपल्सरी का मतलब कोई माइनारिटी थोड़े ही मुल्क के ऊपर तय कर देगी! लेकिन मेरा कहना यह है कि अगर एक आदमी भी इनकार करता है मुल्क में, तो भी कंपल्सरी है वह। अगर हिंदुस्तान के चालीस करोड़ लोगों में एक आदमी भी कहता है कि मैं संतति-नियमन मानने को तैयार नहीं हूं और चालीस करोड़ लोग कहते हैं कि मानना पड़ेगा तो भी कंपल्सरी है।
आप अभी कंपल्सरी एजुकेशन दे रहे हैं बच्चों को, और यह नहीं कहते कि यह तानाशाही हो गई? कि हम कहते हैं कि हर बच्चे को शिक्षा लेनी पड़ेगी, हम किसी बच्चे को अशिक्षित नहीं छोड़ेंगे। और अगर मान लीजिए, दस बच्चे के मां-बाप यह कहते हैं कि हम अपने बच्चे को अशिक्षित रखना चाहते हैं, यह तो डेमोक्रेसी की हत्या हो रही। क्योंकि हम अपने बच्चे को शिक्षा नहीं देना चाहते और आप कैसी डेमोक्रेसी की बात करते हैं, आप कहते हैं कंपल्सरी एजुकेशन! अगर कंपल्सरी एजुकेशन हो सकता है और डेमोक्रेसी में कोई हर्जा नहीं होता तो कंपल्सरी बर्थ-कंट्रोल क्यों नहीं हो सकता है? यह तो सवाल लोकमानस को तैयार करने का है।

प्रश्नः नहीं, कांशियंस को।

हां, कांशियंस को जगाने की बात है। तो मैं यह थोड़ी ही कह रहा हूं, मैं
यह नहीं कह रहा हूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं कहता हूं इसलिए कंपल्सरी हो जाए। मैं इसलिए कहता हूं कि मुझे यह बात कंपल्सरी होने जैसी लगती है। जैसी कंपल्सरी एजुकेशन मुझे लगती है कि कंपल्सरी होनी चाहिए। किसी बाप को यह हक नहीं हो सकता कि वह किसी बच्चे को अशिक्षित रखने का दावा करे। और करेगा तो मुल्क इसकी फिकर करेगा कि यह नहीं चलेगा।

प्रश्नः तो तमे येम न कह सको, जो आऊ कोण है, तो तमे येम न कह सको के म्हारो विचार तमने गले उतरे तो स्वीकार जो।

वही कह रहा हूं न मैं तो। आप मेरी बात नहीं समझ पा रहे हैं, मेरी बात यह नहीं समझ पा रहे हैं, अगर एक आदमी इस गांव में हैजा के कीटाणु फैलाए और हम कहें कि कंपल्सरी रुकावट रहेगी इस बात पर कि कोई आदमी बीमारी के कीटाणु नहीं फैला सकता, तो आप कहना डेमोक्रेसी की हत्या हो रही है! एक आदमी कहे कि हम चोरी करेंगे--कंपल्सरी चोरी बंद है मुल्क में। हत्या करना कंपल्सरी बंद है। हत्या करना आपकी स्व-इच्छा पर निर्भर नहीं है कि आपका दिल होगा तो हत्या करेंगे, नहीं होगा तो नहीं करेंगे। तो अगर मैं यह कहूं कि हत्या करना कंपल्सरी बंद होना चाहिए...

प्रश्नः वह डेमोक्रेटिक तरीके से ही ऐसा होना चाहिए।

मेरा तो सारा डेमोक्रेटिक तरीका है। मेरे पास कोई बंदूक-तलवार है। आपको समझा सकता हूं, इससे ज्यादा और क्या कर सकता हूं!

प्रश्नः नहीं, वह स्टेटमेंट आपका, जब आपने बेनिवलेंट डिक्टेटरशिप की बात कही, उसके साथ ही आया है। इसीलिए वह डिक्टेटरशिप के साथ...

हां-हां, बिल्कुल। वह सारा मजा यह है, हम शब्दों के साथ तो हमारे प्राण
इस तरह जुड़े हुए हैं कि शब्द--बेनिवलेंट डिक्टेटरशिप कहने का मतलब होता है कि डिक्टेटरशिप गई! और कम्युनिज्म के साथ गॉड जोड़ने का मतलब होता है कि कम्युनिज्म गया! आप इसको थोड़ा समझने की कोशिश करें। आपकी कोई भी हुकूमत, किसी भी तरह की हुकूमत अंततः डिक्टेटरशिप है। क्योंकि अंततः वह कंपल्शन है। किसी भी तरह की हुकूमत, स्टेट जहां तक है वहां तक डिक्टेटरशिप है।

प्रश्नः कोएर्शन रहेगा।

हां, कोएर्शन रहेगा। तो स्टेट एज सच कोएर्शन है। तो स्टेट तो किसी भी तरह की हो वह कोएर्शन है। अब सवाल यह है कि वह ज्यादा से ज्यादा बेनिवलेंट हो, इतना ही हम कर सकते हैं स्टेट के रहते हुए। नहीं तो पूरी स्टेट जानी चाहिए। ठीक डेमोक्रेसी का मतलब तो होगा नो-स्टेट। और इसलिए जब तक स्टेट है, तब तक सब स्टेट बेनिवलेंट डिक्टेटरशिप है। वह किस मात्रा में बेनिवलेंट है, यह सवाल है। यह सवाल नहीं है, यानी इसमें मात्रा में भेद होंगे कि एक बिल्कुल ही डिक्टेटोरियल है, कोई बेनिवलेंस नहीं है वहां। एक बहुत बेनिवलेंट है, डिक्टेटोरियल नहीं है वह। लेकिन मेरा तो...

प्रश्नः क्वालिटेटिव चेंज हो जाता तो परिभाषा भी बदल जाती है।

बदलेगी न।

प्रश्नः आप परिभाषा वही रखते हैं और अर्थ बदलते हैं।

मैं नहीं बदलता।

प्रश्नः जैसे आपने अभी कहा, पहले ही कहा कि मैं यह कहता हूं, मेरा मानना यह है कि कम्युनिस्ट ईश्वर ऐसा मैं मानता हूं। लेकिन तो फिर कहा कि एक हिसाब से यह तो नहीं है कि मार्क्सवाद को मैंने माना। कम्युनिस्ट को तो मैं अपनी रीति से कहता हूं।

हां-हां, मैं अपनी रीति से कहूंगा।

प्रश्नः आप कहते हैं, ठीक है, आपकी रीति से। लेकिन लोग तो कम्युनिस्ट
का जो अर्थ है, वह तो मार्क्सवाद के अर्थ से निकला है। वही उनके मन में तो... तो आपके मन का अर्थ वे समझ नहीं सकते हैं।

थोड़ा समझिए, थोड़ा समझिए, लोगों की समझ... थोड़ा समझिए, कम्युनिज्म के पच्चीस रूप हैं कम से कम। साइमन का भी कम्युनिज्म है, पूरिए का भी है, ओबेन का भी है, मार्क्स का भी है, बर्नार्ड शॉ का भी है। सारी दुनिया में पच्चीस रूप हैं। और मेरा भी कम्युनिज्म हो सकता है और आपका भी हो सकता है। कम्युनिज्म का कोई ठेका नहीं है किसी का।

प्रश्नः नहीं, ठेका का सवाल नहीं है। लेकिन सामान्यरूप से, सामान्यतौर से जो अर्थ निकलता है वही तो लोग पकड़ते हैं न। तो स्पष्टता नहीं होती है तो लोग नहीं समझेंगे आपकी बात को।

मैं जो बातें कह रहा हूं, मैं चाहता हूं कि स्पष्टता न हो; क्वेश्चनिंग पैदा हो, इंक्वायरी हो, मुझसे जवाब मांगे जाएं, मैं जवाब देने को तैयार हूं। मैं तो, मेरा पूरा काम यह है कि पहले प्रश्न पैदा कर जाता हूं, फिर जवाब देने आना पड़ता है।

प्रश्नः नहीं, जैसा आपका कम्युनिज्म हो सकता है वैसा गांधी और विनोबा
का भी हो सकता है।

कौन मना करता है।

प्रश्नः उसको आप पूंजीवाद कहते हैं?

मैं कहां कहता।

प्रश्नः आज सुबह उसको आपने पूंजीवाद कहा।

मैं उसको पूंजीवाद कहूंगा, क्योंकि मैं जिसे कम्युनिज्म कहता हूं अगर
वह उसके विपरीत पड़ता है तो मैं पूंजीवाद कहूंगा। वह गांधी-विनोबा का कम्युनिज्म होगा, इससे मुझे क्या लेना-देना है! आप नहीं समझे, मेरा कम्युनिज्म आपको पूंजीवाद मालूम पड़ सकता है, इसमें क्या झगड़े की बात है! यह तो हमारे विचार करने की बात हुई। मैं जो भी क्या कह रहा हूं, वह उसको क्या नाम देते हैं, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। नाम देने से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्नः नहीं, सवाल आप जो नाम देते नहीं, इसलिए पैदा होता है। मैं समझ सकता हूं, आपका यह ख्याल है कि समाज कैसा होना चाहिए। और वह कम्युनिज्म का एक ख्याल आया है चलता हुआ--मार्क्स से लेकर स्टैलिन तक आया है, माओ तक आया हुआ है, और... भी आया हुआ है--तो फिर अभी जब हम यही शब्द इस्तेमाल करते हैं तो तकलीफ है।

शब्द का तो भोगीलाल भाई ऐसा मामला है, शब्द का ऐसा मामला है कि शब्द हम हमेशा बासे उपयोग करते हैं, सब शब्द। ईश्वर शब्द का भी उपयोग करिए तो हजार लोग उपयोग कर चुके हैं। हजार तरह से उपयोग कर सकते हैं। और हजार तरह से उपयोग किया गया है। और आज जब आप उसका उपयोग करिएगा, तो उसके पीछे हजारों डेफिनेशंस खड़ी हुई हैं। आप एक भी शब्द का ऐसा उपयोग नहीं कर सकते जो कि हजार तरह से उपयोग नहीं किया जा चुका है। शब्द तो हमेशा बासा है।

प्रश्नः वही किया गया है फिर भी जब आप कोई दूसरी चीज आगे रखना चाहते हैं तो नया आइडिया...

है तो डिफाइन हमें करना पड़ेगा।

आपको यह डिफाइन इस तरह करना चाहिए कि जिससे लोगों के दिमाग में पहले
यह हो जाए कि यह जो पुरानी चीज है, यह बासी नहीं है। यह पुराना कम्युनिज्म नहीं है। क्लास स्ट्रग्ल का कम्युनिज्म नहीं है, मैटीरियलिस्टिक इंटरप्रिटेशन का कम्युनिज्म नहीं है।

मैं समझा आपकी बात। मैं वही कर रहा हूं। मेरे साथ कठिनाई तो यह है न,
कि मेरे पास न तो कोई स्टाफ है कि जो सारा हिसाब-किताब रखता हो। अकेला आदमी हूं, जो बोलता हूं उससे क्वेश्चनिंग खड़ी होती है, तो डिफाइन करता हूं। डेफिनेशन से क्वेश्चनिंग खड़ी होती है तो उसको डिफाइन करता हूं। चलेगा, दो- चार, दस साल बातचीत करने के बाद साफ हो सकेगा आपको कि मैं क्या कह रहा हूं। इससे जल्दी साफ नहीं हो सकेगा।

प्रश्नः प्रोसेस थोड़ा सरल हो सकता है। जैसे, आपको मैंने तो बहुत नहीं सुना, मैं सुबह भी नहीं आया, और पहले भी एकाध दफा सुना आपको। आज और कल मैंने जो सुना, तो मुझे यह ख्याल आया कि आप जो अनिष्ट है समाज में, जो दंभ चल रहा है, जो ऊपर-ऊपर का एक... है, इसके ऊपर आप प्रहार करते हैं, वह ठीक ही है। इसमें तो कोई बात यह नहीं है कि जो चलता है वही ठीक है करके कोई बात करे, ऐसा तो हम नहीं चाहते हैं। और यह चाहते हैं कि जहां दंभ पड़ा हुआ है उसको खुल्ला करना। इसके लिए कुछ ज्यादा जा.ेड कर भी बोलना पड़ता है।

ठीक है।

प्रश्नः फिर भी क्या होता है कि आप जब एक ही चीज रखते हैं--जैसे आज आपने आखिर में कहा कि कल मैं दूसरी बात बताऊंगा, लेकिन कल तो आप क्या बताएंगे मैं नहीं जानता। लेकिन मेरे ख्याल में जो कल सुना और आज सुना, इससे एक सवाल पैदा हुआ, यह हुआ कि आप एक बात करें कि सत्य जो है--प्रेम है, ब्रह्मचर्य है, उनका दो रूप हो सकता है। एक दंभ का भी हो सकता है और एक सत्य का भी हो सकता है। सच्चा ब्रह्मचर्य भी हो सकता है, सच्चा प्रेम भी हो सकता है। सच्ची अहिंसा भी हो सकती है और दंभी और दिखाने की भी दूसरी हो सकती है। लेकिन आपका जो बोलने का तरीका यह रहता है कि--बहुत से मॉसेज के लिए, जो आते हैं और ताली बजाते हैं, वे तो बिल्कुल ताली बजाते हैं। वे यह नहीं पकड़ते हैं कि आप क्या चाहते हैं। आप जब कटाक्ष करते हैं तो वे खुश हो जाते हैं। वह... जैसा हो जाता है। और इसमें जो सीरियसनेस आपकी है वह आती नहीं है। और फिर करीब-करीब इस तरीके से चलता है कि जैसे कि आप पूरे-पूरे सत्य को, अहिंसा को, ब्रह्मचर्य को जितने बड़े आइडियल्स से वे सब आपको इनकार कर रहे हैं। और आखिर में लोगों को यह कि यह तो बड़ा क्रांतिकारी आया है। तो इस तरह से एक जो इंप्रेशन पैदा होती है, और इससे जो... सोच कर तो नहीं आते, ज्यादा लोग तो ऐसे ही आते हैं।

आप अपनी बात करिए। कौन सोच कर आता है, नहीं आता है, यह हिसाब आप मत लगाइए।

प्रश्नः मैं मेरी बात कर रहा, मैं मेरी बात कर रहा।

क्योंकि वह कौन झूठी ताली बजा रहा है, कौन खुश होकर बजा रहा है, यह आप हिसाब मत लगाइए। वह तो लगाना मुश्किल है। वह तो बिल्कुल मुश्किल है कि कौन आदमी क्या कर रहा है। वह तो हम आप अपनी...

प्रश्नः जज करना मुश्किल है।

बहुत मुश्किल है मामला।

लेकिन मुझे यह लगता है कि आप जब यह कहते हैं, तो यह चीज, कल की बात जो आपने बताई कि बाहर का जो रहता है, जो हम बताने के लिए जो करते हैं, और जो अंदर की बात है--अंदर चले जाओ, अंदर देखो, अंदर का क्या है, वह अंदर छिपा कर मत रखो, जो आप बात कर रहे हैं। तो यह चीज होती है कि जो संत हैं, आज के जो भक्त हो गए हैं, ऋषि हो गए हैं, धर्मात्मा जो हो गए हैं, वह सबको एक साथ हम नहीं ले सकते हैं। इसमें भी अच्छे-बुरे रहेंगे--कोई क्रोधी होगा और कोई नहीं भी क्रोधी होगा। और कोई ऐसे भी होंगे जो सचमुच अपने जीवन को परिवर्तन करने के लिए प्रयत्न, कोशिश कर रहे हैं। तो यह दोनों की शुभ-अशुभ जो चलती है, जिसको हम कहें कि एक आसुरी और दैवीय जो चलती है प्रकृति, वह दोनों चलती है। आज आप देखते हैं और मैं देखता हूं और बहुत लोग देखते हैं कि आसुरी ज्यादा है, अशुभ ज्यादा है। तो प्रहार करते हैं, लेकिन दूसरी चीज जो है वह सच है। और आज...

यह हमेशा से ज्यादा है, आज ज्यादा नहीं हो गई है।

प्रश्नः हमेशा से आज ज्यादा है, आप कहते हैं।

न, न, न, यह हमेशा से ही ज्यादा है, यह हमेशा से ही ज्यादा है। और आज शायद कम है।

प्रश्नः सतयुग में भी होगा?

सतयुग-वतयुग कभी रहा नहीं है। और जिन ऋषियों-मुनियों की आप बहुत बातें करते हैं, उनमें से सौ में निन्यानबे परसेंट सरासर धोखा है। मेरा मतलब यह है कहने का कि ऋषि-मुनि का भी ढांचा तैयार है, और ढांचे में जो फिट हो जाता है, सो ऋषि-मुनि हो जाता है। और वही ऋषि जैन के ढांचे में ऋषि मालूम न पड़ेगा। और वही हिंदू के ढांचे का ऋषि जैन के ढांचे में ऋषि नहीं मालूम पड़ेगा। कृष्ण को जैन नरक भेज देते हैं कि यह आदमी हिंसा करवाता है, महायुद्ध करवाता है महाभारत का। और हिंदू उसको भगवान, परम अवतार।

प्रश्नः वह छोटापन है।

मेरा मतलब यह समझ रहे हैं आप? मेरा कहने का मतलब यह है कि किसी को आप ऋषि कहते हैं, किसी को आप मुनि कहते हैं, यह आपकी परिभाषाओं की बातें हैं। इनमें कोई बहुत सार नहीं है। इनमें कोई बहुत अर्थ नहीं है।
मेरा जोर इस बात पर है कि अब तक ऋषि-मुनि को भी तौलने का आपका ढंग बाहर
से ही है। और सच बात तो यह है कि भीतर से तो तौला नहीं जा सकता। और इसलिए मेरी दृष्टि यह है कि जो ऋषि-मुनि तुल जाते हैं आपकी परिभाषाओं में, वे अक्सर इसलिए तुल जाते हैं कि नहीं हैं। अगर आदमी हो तो आपकी तौल में आना बहुत मुश्किल है उसका। मेरा कहना यह है कि हमारी जो सोसाइटी है, जो पूरी की पूरी धारा है हमारी तौलने की, हमारे तो क्राइटेरियन बंधे हुए हैं और क्राइटेरियन में जो बैठ जाता है, सो ऋषि हो जाता है हमारे लिए।
और मेरी अपनी समझ यह है कि जो भी क्राइटेरियन में आपके बैठने को राजी होता है, आपके क्राइटेरियन में बैठने को जो राजी होता है या आपके क्राइटेरियन में बैठने की चेष्टा करता है, वह आदमी के पास आथेंटिक व्यक्तित्व ही नहीं है। नहीं तो आपके क्राइटेरियन में बैठेगा नहीं वह। और अगर बैठेगा तो मरने के हजार दो हजार साल लग जाएंगे, तब आपके क्राइटेरियन में बैठेगा, जब तक कि आप उसके योग्य क्राइटेरियन खड़ा कर लेंगे। जैसे जीसस अगर जिंदा है तो ऋषि मालूम नहीं पड़ेगा, आवारा मालूम पड़ेगा जिंदा में तो। सुकरात जिंदा में आवारा और शरारती मालूम पड़ेगा और लगेगा कि चरित्र बिगाड़ रहा है, लोगों को खराब कर रहा है। मरने के बाद ऋषि-मुनि बन पाएगा।

प्रश्नः मरने के बाद वह समझ में आया।

समझ-वमझ में नहीं आया। समझ में आ जाता तब तो दुनिया अब तक सुकरात हो गई होती। समझ में नहीं आया। समझ में कुछ नहीं आया। मरे हुए आदमी पर ढांचा बिठालने में आपको सुविधा है।

प्रश्नः वह आपका रिंग है। मैं यह समझता हूं कि समझाने में...

मैं आपको यह कहता हूं कि... क्या समझ गए आप सुकरात को? समाज क्या समझ गया सुकरात को? मैं आपसे यह कहता हूं, सुकरात अभी भी पैदा हो तो वही अड़चन आप खड़ी करेंगे जो उस दिन खड़ी की। जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा। मैं आपसे यह पूछता हूं कि सुकरात--समझ लीजिए आपको उदाहरण के लिए कहता हूं--सुकरात अभी खड़ा हो जाए तो सोसाइटी एक्जेक्ट वही अड़चन खड़ी करेगी, जो उस दिन खड़ी की उसने। उसमें जरा भी फर्क नहीं पड़ेगा। उसमें इसलिए फर्क नहीं पड़ेगा...

प्रश्नः यह बात ठीक है। इसमें आप क्या करेंगे कि जो आथेंटिक एक्झिस्टेंस है, जो सच्चा जो अस्तित्व आदमी का है उसकी मूल्य नहीं होती है, जो झूठा है या ऊपर से लादा हुआ, दुनिया, ट्रेडीशन जला हुआ...

वही जो मैं कह रहा हूं, और जिस ढंग से कह रहा हूं...

लेकिन आप यह भी कहेंगे कि सुकरात वह दंभी है, आप यह नहीं कहेंगे यीशु दंभी है। आप कहेंगे कि है पूरा...

इसको थोड़ा समझिए, इसको थोड़ा समझिए। दंभी होता तो आपको सूली-वूली लगाने की जरूरत न पड़ती। आप तो ऋषि-मुनि मान कर पूजा शुरू कर देते दंभी होता तो। वह तो आसान है। लेकिन जिस दिन से आपने पूजा शुरू की है, उस दिन से जीसस की आपने दूसरी शक्ल बना ली, जो उसकी कभी थी नहीं। उसकी शक्ल को तो आप सूली ही लगाते हैं। जिस शक्ल को आप पूज रहे हैं, वह बिल्कुल झूठी है और आपकी खड़ी की हुई है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न?

प्रश्नः वह नहीं मानने की जरूरत है।

मेरी आप बात समझ रहे हैं? मैं यह कह रहा हूं कि जीसस जैसा आदमी था, उसकी तो कभी आपने पूजा की नहीं। और जीसस अभी खड़ा हो जाए तो वह जीसस का जो तगमा लगाए घूम रहा है, वह भी उसकी पूजा करने अभी भी राजी नहीं है।
एक बहुत मजेदार घटना, दोस्तोवस्की का एक उपन्यास है--ब्रदर्स कर्माजोव! उसमें एक अदभुत घटना उसने कल्पित की है कि जीसस अठारह सौ वर्ष बाद वापस लौटते हैं। यह देखने कि अब तो सारी दुनिया में मेरे चर्च बन गए हैं और सारे लोग मेरी पूजा कर रहे हैं। अब तो मेरा स्वागत होगा। अब तो लोग मुझे रिकग्नाइज कर लेंगे कि मैं क्या हूं।
तो वे जेरुसलम में, एक दिन सुबह चर्च से लोग आ रहे हैं, रविवार का दिन है, वे एक झाड़ के नीचे खड़े हो गए। वे चर्च के लोग निकले और उन्होंने कहा कि अरे, यह कौन आदमी बन-ठन कर बिल्कुल जीसस बना हुआ खड़ा है, कौन बदमाश! कौन शरारती आ गया! कुछ भीड़ आ गई पास, उन्होंने कहा कि तुम कौन हो भाई, बिल्कुल ऐसे बन कर खड़े हो कि बिल्कुल जीसस मालूम पड़ रहे हो। उन्होंने कहा कि मैं जीसस हूं। तो तब तो उन लोगों ने कहा कि पक्का ठग मालूम पड़ता है, क्योंकि जीसस जो एक दफा हो चुका, अब दुबारा नहीं हो सकता है। तो जीसस ने कहा, अरे तुम मेरी ही पूजा करके चर्च से लौटते हो, मुझको नहीं पहचाने। खैर, तुम नहीं पहचाने, तुम्हारा चर्च का पादरी तो आता होगा, आर्च प्रीस्ट है सबसे बड़ा, वह आता होगा। वह आर्च प्रीस्ट आया तो लोगों ने उसके लिए रास्ता छोड़ दिया। उस आर्च प्रीस्ट ने तो देखा और दो लोगों से कहा कि इस बदमाश को पकड़ कर नीचे

उतारो। यह हमारे जीसस की नकल कर रहा है। जीसस ने कहा कि मैं जीसस हूं, नकल नहीं कर रहा हूं। तुम मुझे पहचानते नहीं? कितनी तुमने प्रार्थना-पूजा की, मैं आ गया हूं। उसने कहा, बदमाश नीचे उतर। उसको ले जाकर कोठरी में बंद कर दिया। रात दो बजे वह पादरी आया दरवाजा खोल कर, पैर पकड़ लिए और कहा कि मैं पहचान गया था, लेकिन तुम मुर्दा ही अच्छे लगते हो, तुम जिंदा बहुत खतरनाक हो, बहुत डिस्टर्बिंग हो, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं, हमने तुम्हारा सब काम अच्छी तरह जमा रखा है, सब धंधा बिल्कुल ठीक से चल रहा है। तुम्हारे वापस लौटने की कोई जरूरत नहीं। और बाजार में हम तुम्हें नहीं पहचान सकते। और अगर तुमने गड़बड़ की, तो हमें वही करना पड़ेगा जो यहूदी पादरियों को तुम्हारे साथ करना पड़ा। हम हालांकि तुम्हारे पादरी हैं, लेकिन हमको करना वही पड़ेगा।
मैं जो कह रहा हूं वह यह कि जीसस की जिस शक्ल को आप पूज रहे हैं...

प्रश्नः जो एस्टेब्लिशमेंट है, वह आप कहते हैं वह यह करेगी और करती रहेगी और नेस करेगी।

करेगी ही।

प्रश्नः लेकिन हम जो लोग हैं, वह एस्टेब्लिशमेंट की एक ही चीज नहीं देखते हैं। दो चीज होती है, एस्टेब्लिशमेंट के सामने लड़ने वाले, इससे बाहर रहने वाले, आउट साइडर जिसको आप भी कहेंगे। वे आउट साइडर भी रहते हैं और इससे एक-एक आदमी में कोई ऐसी चीज रहती है कि जब वह भी चाहता है कि एस्टेब्लिशमेंट जो है वह पूरी है, इसके बाहर रह कर कुछ कर सकते हैं, करना चाहिए। आपका पूरा एक जो अटेक रहता है वह एस्टेब्लिशमेंट के ऊपर नहीं रहता है, पूरा जितना आज तक का...

मेरा सब पर है अटेक, वह गलती न समझें आप। बिल्कुल सब पर है। मेरा सब पर है। मेरा कहना यह है, मेरा अटेक सब पर है, और जो मेरे अटेक से बच जाता है, दैट व्हिच रिमेंस, उसको मैं कहता हूं, वह सच है। क्योंकि उस पर अटेक किया ही नहीं जा सकता। मेरा आप मतलब समझे न? यानी जिस पर भी अटेक किया जाता और किया जा सकता, उस पर मेरा अटेक है। जो शेष रह जाता है, कुछ जरूर है जिस पर कोई अटेक नहीं हो सकता, जो सच है। उसको आपको खोजना पड़ेगा। मेरी तो पूरी प्रोसेस निगेटिव है। मैं तो कहता हूंः यह नहीं है, यह नहीं है। नेति-नेति है। यह भी नहीं, यह भी नहीं। लेकिन फिर मेरा कहना है कि जो शेष रह जाता है, और शेष बहुत रह जाता है, जो शेष रह जाता है वही आथेंटिक है। और मेरा कहना यह है कि...

प्रश्नः क्योंकि आप कहते नहीं हैं, वह छोड़ देते हैं।

न-न, मैं कहूंगा भी नहीं, मैं कहूंगा भी नहीं, मैं छोड़ ही दूंगा। कुछ आपके लिए छोड़ना चाहिए न। नहीं तो फिर बड़ा मुश्किल हो जाएगा, अगर मैं ही मैं पूरा कह दूं। वह जो जरूरी है वह मैं जरूर छोड़ देता हूं। और छोड़ना अत्यंत आवश्यक है। क्योंकि जैसे ही उसको पाजिटिव कहा, एस्टेब्लिशमेंट शुरू हुआ। यह जो मामला है सारा का सारा, जब तक मैं यह कहता हूं यह गलत है तब तक एस्टेब्लिशमेंट नहीं होता। और जब मैं कहता हूं, यह सही है और एस्टेब्लिशमेंट शुरू होता है। सारा एस्टेब्लिशमेंट पाजिटिव के सेंटर पर खड़ा होता है। सारा इंस्टिट्यूशन, आर्गनाइजेशन, संस्था, संप्रदाय, पाजिटिव के ऊपर खड़ा होता है। और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि आदमी में जो क्रांति आती है, वह पाजिटिव से कभी नहीं आती, वह हमेशा वाया निगेटिव से आती है। तो मेरी तो सारी प्रोसेस निगेटिव है।

प्रश्नः पाजिटिव में परिवर्तित हो।

पाजिटिव शेष रह जाता है, पाजिटिव में परिवर्तन-अरिवर्तन नहीं होती।
वह तो जो गलत है, उसको हम काट डालते हैं और जो नहीं कट सकता, वह शेष रह जाता है। जैसे हमने सोने को डाल दिया आग में, तो जो कचरा है वह जल जाता है, जो नहीं जलता है वह सोना है, वह बच जाता है।,

प्रश्नः तो क्या आप खंडन की करते रहेंगे?

बिल्कुल खंडन करता रहूंगा।

प्रश्नः वह तो ठीक ही है, वह करना ही चाहिए।

बिल्कुल खंडन करना रहूंगा।

प्रश्नः बेनिवलेंट डिक्टेटर को आपने जो पाजिटिव बना दिया।

जरा भी नहीं किया, जरा भी नहीं किया। मेरी जो सारी बातचीत है, मेरी बातचीत में क्या तकलीफ होती है कि जब भी मैं खंडन कर रहा हूं तो आखिर शब्दों का ही उपयोग करूंगा! और हम सबके माइंड पाजिटिव के साथ इस बुरी तरह बंधे हैं कि फौरन पाजिटिव को निकाल लेते हैं, निगेटिव की फिकर छोड़ देते हैं। वह पाजिटिव को फौरन निकाल लेते हैं। एकदम हमारा माइंड जो है न, माइंड की आम वर्किंग जो है वह पाजिटिव के लिए है। और मेरा कहना यह है कि वही माइंड ऊपर जाता है, जिसकी वर्किंग निगेटिव हो जाती है।

प्रश्नः नहीं, नॉन-कनफरमिस्ट एटिट्यूट पाजिटिव रहता है।

वह तो रहेगा ही। पाजिटिव जो है न, पाजिटिव जो है वह तो जो रिमेनिंग है,
वह हमेशा पाजिटिव है। आपको जो जरूरत है, वह जरूरत है कि आप कितने माइंड को निगेटिव बना सकते हैं। माइंड का कितना निगेशन आप कर सकते हैं ताकि वही रह जाए, दैट व्हिच कैन नॉट बी निगेटिड, दैट इ.ज पाजिटिव। दैट व्हिच कैन नॉट बी निगेटिड।
और फर्क क्या है? हम समझते हैं कि पाजिटिव निगेटिव का विपरीत है। निगेटिव पाजिटिव का विपरीत नहीं है। पाजिटिव जो है वह निगेशन का विपरीत नहीं है, नॉट निगेशन ऑफ द निगेशन। पाजिटिव का वह मतलब नहीं होता है। पाजिटिव का मतलब है कि दैट व्हिच रिमेंस ऑफ्टर दि निगेशन। वह विपरीत नहीं है। मेरा आप मतलब समझे न?

प्रश्नः यानी कंप्लीट निगेशन हो ही नहीं सकता।

कंप्लीट निगेशन कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता। लेकिन जो निगेशन
हो जाएगा, तो जो शेष रह जाएगा, वह पाजिटिव है। और इसलिए दो रास्ते हैं।

प्रश्नः वह शेष का भी कुछ अंदाजा लोगों को...

अंदाजा बिल्कुल मिलता है, बिल्कुल मिलता है। अंदाजा बिल्कुल मिलता है।

प्रश्नः आपके जैसे जो कहते हैं, वे भी कुछ उनको बता सकते हैं।

वे पाजिटिव इशारा नहीं कर सकते।

प्रश्नः इशारा नहीं होता।

न-न। वे सब निगेटिव इशारा करेंगे। वे कहेंगेः नॉट दिस, नॉट दैट! और तब
तो शेष रह जाएगा, इस इशारे में आप चलेंगे न साथ, तो शेष रह जाएगा कुछ। उस शेष की तरफ आपको ही इशारा होगा। वह इशारा कोई नहीं करेगा। क्योंकि जैसे ही हमने इशारा किया, वह फाल्स हुआ। क्लिगिंग शुरू हुई। हमारा मन चाहता है कि इशारा कोई जल्दी से कर दे। वह चाहता है कि निगेटिव बात मत करो। आप यह बताओ कि पाजिटिव क्या है। क्योंकि उसको हम पकड़ लें और निश्चिंत हो जाएं।

प्रश्नः दो एक्सटीम्स हैं--स्पून फीडिंग करते हैं एजुकेशन में। एक-एक चीज बताते हैं बच्चे को, यह करो, यह करो, यह न करो। और दूसरी एक्सट्रीम यह रहती है कि बच्चे को छोड़ ही देते हैं। उनको कुछ करना है, संस्कार देना है, कुछ ऊपर लाना है, कुछ सिखाना है, वह मां-बाप नहीं करते। दो एक्सट्रीम्स रहते हैं। आप दूसरी एक्सट्रीम पर पहुंच गए।

न, न, न। मैं एक्सट्रीम की बात ही नहीं कर रहा। मैं तो यह कह रहा हूं, मैं एक्सट्रीम की बात नहीं कर रहा। मैं यह नहीं कह रहा कि मैं कुछ नहीं कर रहा हूं। मैं तो बहुत कर रहा हूं। लेकिन जो भी कर रहा हूं, जो समझने की बात है कुल जमा, वह यह है...

प्रश्नः बच्चों को कह कर उसको कहने दो, करने दो।

नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि सत्य की तरफ, जो है उसकी तरफ जितने भी इशारे हैं, वे इशारे हमेशा निगेटिव हैं, वे कभी पाजिटिव नहीं हो सकते हैं। वे कभी हो ही नहीं सकते पाजिटिव।
तो आज तक जगत में जिन्होंने भी उस तरफ कोई भी श्रम किया है, वे सब निगेटिव हैं--चाहे उपनिषद का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे लाओत्से का हो, चाहे झेन के फकीरों का हो।

प्रश्नः नेति-नेति से आगे नहीं जाता।

वह नेति-नेति से आगे नहीं जाता। वह जा ही नहीं सकता।

प्रश्नः नथिंगनेस एक्झिटेंशियल फिलॉसफी।

हां। तो वह आपको नथिंगनेस तक ले जाकर छोड़ा जा सकता है। उसके बाद उस तक आपको यात्रा करनी पड़ेगी।

प्रश्नः लेकिन वहां इसेंस की बात आती ही है।

वह एक्झिस्टेंशियलिस्ट की आती होगी, उनसे मुझे मतलब नहीं है।

प्रश्नः नहीं-नहीं, कोई भी फिलॉसफी।

न, न, न।

प्रश्नः आप शून्यवाद में जाइए या...

हां, वहां नहीं आएगी। अगर नागार्जुन के साथ चलने की हिम्मत हो तो नहीं आएगी। नागार्जुन के साथ चलने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। क्योंकि वह तो खंडन ही खंडन करता चला जाएगा। यानी वह आखिर में आप उससे पूछोगे, आप खंडन तो कर रहे हो कम से कम, वह कहेगा, मैं खंडन भी नहीं कर रहा हूं। वह एक आखिरी खंडन यह करेगा कि मैं वह भी नहीं कर रहा। आप उससे कहो कि आपसे इतना तो कहा कि शून्य है, वह कहेगा, मैंने कब कहा! मैंने यह भी नहीं कहा!

लाओत्सु ने जिंदगी भर नहीं लिखा कुछ भी। जब बूढ़ा हो गया अस्सी साल का,
तो चीन छोड़ कर भाग रहा था। उसको पकड़ लिया एक पोस्ट पर। और चीन के राजा ने खबर भेजी कि लाओत्सु जा रहा है चीन छोड़ कर, वह हमारा सब ज्ञान लिए जा रहा है, जो उसने पाया है। वह उससे वापस रखवा लो। तो लाओत्सु ने किताब लिखी। इस किताब की भूमिका में जो शब्द लिखे हैं, वे बहुत ही अदभुत हैं। दुनिया की किसी भूमिका में नहीं हो सकते। लाओत्सु ने लिखा कि मैं मजबूरी में लिख रहा हूं और यह पहले कह देना चाहता हूं कि जो भी कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा। जो भी लिखा जा सकता है, वह सत्य नहीं होगा। तुमने लिखा कि असत्य हुआ, तुमने कहा कि असत्य हुआ। अब तुम मुझे मजबूर कर रहे हो, इसलिए मैं लिख रहा हूं। लेकिन इसको समझ कर किताब को पढ़ना। जो भी कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं हो सकता। वह जो कह रहा है, अब जो तुम पढ़ो इसे समझ कर पढ़ना। और यह जो माइंड है, यह जो हमारा माइंड है...

प्रश्नः डायलाग फिर भी है।

हां-हां, है न। और हमारी...

प्रश्नः तो यूक्युलिट की व्याख्या जैसा है।

यूक्युलिट की व्याख्या का सवाल नहीं है यहां। नॉन-यूक्लिट जानने के लिए थोड़ी आप यहां।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।

तो फिर छोड़िए उस बात को। यहां यूक्युलिट का मामला नहीं है, यह बिल्कुल नॉन-यूक्लिडियन है। यूक्लिट से बिल्कुल उलटा मामला है। यूक्लिट तो परिभाषाएं कर रहा है उनकी, जिनकी परिभाषाएं नहीं हो सकती हैं। और यहां तो मामला यह है कि उनकी बात की जा रही है, जिनकी परिभाषा कभी हुई नहीं और कभी हो भी नहीं सकती। और उनकी बात करनी जरूरी है, जिनकी बात नहीं की जा सकती। तो फिर रास्ता क्या है? तो रास्ता तो सिर्फ यह है कि जिनकी बात की जा सकती है, उनको कहा जाए कि यह नहीं है, यह नहीं है। और अल्टीमेटली उस जगह ले जाया जाए, जहां माइंड की सारी क्लिंगिंग छूट जाती है, क्योंकि एक-एक चीज हम छीनते चले जाते हैं हाथ से कि यह भी नहीं है और छीनते चले जाते हैं। आखिर छीनना उस जगह पहुंचता है कि हाथ में कुछ भी नहीं बच जाता। फिर छोड़ देते हैं उस आदमी को कि यह है। और अब अगर यह आदमी इतने निगेशन में चलने की हिम्मत रखता हो, तो जरूर वहां पहुंच जाता है, जहां है। लेकिन, नहीं तो नहीं पहुंच पाता।
और हमारी जो सारी टेनिंग है, ईथिकल माइंड की, वह पाजिटिव है। वह कहता
है कि ब्रह्मचर्य की साधना बताइए। मैं कहता हूं, सेक्स नहीं है, वहां ब्रह्मचर्य है। लेकिन ब्रह्मचर्य की कोई सीधी परिभाषा आपने बताई कि आदमी उसको साधना शुरू करता है। और साधने का कुल परिणाम होता है कि वह सेक्स को दबाना शुरू करता है। सेक्स को समझाइए और सेक्स को निगेट करने की स्थिति तक माइंड को ले जाइए। और जहां सेक्स निगेट हो जाएगा, वहां जो शेष रह जाएगा, वह ब्रह्मचर्य है। और उसकी कोई बात नहीं की जा सकती। उसको असर्शन...

प्रश्नः लेकिन वह प्रोसेस आप समझाएंगे न?

मैं सारी निरंतर सारी चेष्टा कर रहा हूं न, सारी चेष्टा कर रहा हूं। किसी कैंप में आप थोड़ा वक्त निकालिए जहां कि थोड़ी सी गहरी बात हो पाती है।

प्रश्नः नहीं, आप चेष्टा तो जरूर करते होंगे ऐसा तो मैं नहीं सोचती।
लेकिन देखते हैं आप... कि गांधीजी ने कितना ब्रह्मचर्य पैदा किया। बहुत ब्रह्मचर्य का उन्होंने प्रचार वगैरह किया, ऐसा कुछ उसका आपका था।

नहीं! आप तो जो कह रही हैं, मैंने शायद ही कहा हो। हरिवल्लभ भाई सुनते हैं...

प्रश्नः नहीं-नहीं, आपने कहा था कि कितने देर वे... प्रकाश में कहा था, व्यंग्य के रूप में।

कोई बात नहीं।

प्रश्नः ठीक है। समझो कि कोई भी नहीं हुए। कल आपने कहा कि लोगों को बाहर से अंर्तमुख होना चाहिए। कल आपको कोई पूछ सकता है कि कितने अंर्तमुख हुए?

बिल्कुल।

प्रश्नः तो हजारों भी हो सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं।

बिल्कुल, बिल्कुल।

प्रश्नः लेकिन जो बात आपने कही कि अंर्तमुख होना चाहिए या गांधी ने कहा कि यह जो... वह जो मूल बात है वह तो सच्ची है न, उसका परिणाम आया न आया वह अलग बात है।

गांधी की बात तो बिल्कुल सच्ची नहीं है। मूल-वूल बात ही नहीं है गांधी
के पास। गांधी की बात अगर उठाएंगी, तो गांधी... मैं जो कह रहा हूं, गांधी के पास तो कोई न गहरी साधना है...

प्रश्नः वह आप छोड़ दीजिए।

मैं कह रहा हूं न।

प्रश्नः नहीं-नहीं, वह तो सवाल नहीं है। मैं तो गांधी का नाम तो आपने दिया इसलिए दिया। अ ब क किसी ने कहा, ए बी सी किसी ने कहा, तो अंतर्मुख होना, ब्रह्मचर्य का, सत्य का पालन करो न, उनके अंदर जो सत्य है, वह बात में, वह चीज में, वह तो रहती है।... वह अलग बात है।

उसको आप सुन लें पूरा, मैंने क्या कहा। मैंने यह नहीं कहा कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता। मैंने कहा ब्रह्मचर्य साधा जा सकता है। लेकिन ब्रह्मचर्य की साधना वाले अगर संतति-नियमन के विरोध की बात करते हों, तो नासमझी की बात करते हैं। मेरी आप बात... सुबह जो मैंने कहा उसको आप समझ लिए हैं पूरा? अगर मैं यह कहूं कि अंतर्दृष्टि साधी जा सकती है, लेकिन अंतर्दृष्टि साध ली, फिर संतति-नियमन की कोई जरूरत नहीं। तो फिर मैं झंझट की बातें कर रहा हूं। फिर मुझसे पूछा जा सकता है कि कितने लोग अंतर्दृष्टि साध कर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होंगे? और ये बच्चे पैदा होते जाएंगे, इनका जिम्मा कौन लेगा? लेकिन मैं यह कह नहीं रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि जिनको अंतर्दृष्टि साधनी हो, वे साधें, साधी जा सकती है। जिनको ब्रह्मचर्य साधना है, वे ब्रह्मचर्य साधें, वह भी साधा जा सकता है, वह भी सत्य है। लेकिन मैं यह कह रहा हूं इसका इंप्लीकेशन आप संतति-नियमन के रोक की बातें मत करिए, यह बिल्कुल ही एब्सर्ड बात है। इसका इंप्लीकेशन यह नहीं हो सकता। संतति-नियमन का अलग प्रयोजन और अर्थ है और वृहत्तर समूह के लिए वही सार्थक और अर्थपूर्ण है। और गांधी जी की बातचीत या इस तरह की ब्रह्मचर्य की कोई बातचीत वहां लागू करना समाज को गड्ढे में ले जाना और खतरे में ले जाना है। कोई मना नहीं करता, ब्रह्मचर्य आप साधिए। यह सवाल

नहीं है। जो मैं कह रहा हूं, वह मैं यह कह नहीं रहा कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता, और यह भी मैं नहीं कह रहा कि हजारों साल में किसी ने भी ब्रह्मचर्य नहीं साधा। मैं कह यह रहा हूं कि यह ब्रह्मचर्य की साधना संतति को रोकने के लिए सार्थक अभी पांच हजार साल में नहीं हो सकी, पचास हजार साल में भी नहीं हो सकती। संतति रोकनी हो तो संतति-नियमन का ही उपयोग करना पड़ेगा। ब्रह्मचर्य से यह होने वाला नहीं है। ब्रह्मचर्य से जो... मेरा जो कहने का मतलब था सुबह वह आपके ख्याल में नहीं है। मैं यह नहीं कहता हूं कि ब्रह्मचर्य नहीं साधा जा सकता, लेकिन मेरा कहना है कि ब्रह्मचर्य की साधना के आधार पर संतति-नियमन की बातें नहीं बिल्कुल...

प्रश्नः सच्ची बात का प्रचार किया या बातें कहीं, उनको जो सच्चा लगता है, तो उसके अंदर का जो सत्य है, वह तो सब ठीक है ही।

वह हो तभी न! वह हो तभी न!

प्रश्नः वह तो आपकी मान्यता पर।

हां। मैं अपनी मान्यता कहूंगा, इनकी मान्यता तो नहीं बोलूंगा वहां। मैं तो मजबूर हूं, अपनी ही मान्यता बोलूंगा। जिनमें जहां सत्य है...

प्रश्नः मैं तो यह चाहती हूं कि जो चीज अंदर की है वह जो बीज तो है ही।

जहां है उसकी तो मैं बात ही कर रहा हूं। और जहां वह नहीं दिखाई पड़ रहा है, वहां भी इसलिए बात कर रहा हूं कि वह वहां आपको दिखाई पड़ जाए कि वहां नहीं है, तो आप खोज सकें, जहां वह है।

प्रश्नः इतनी स्पष्टता से आप कल से बात को... हमारे मन में इतनी उलझनें, इतने प्रश्न नहीं उठते।

आपके मन में प्रश्न उठ रहे हैं मेरी बात के कारण नहीं, आप कुछ बात पकड़े बैठी हुई हैं उसके कारण।

प्रश्नः यह तो आप बात कह रहे हैं।

नहीं-नहीं, मेरे पास आप ही थोड़े ही आती हैं, मेरे पास दूसरे लोग भी आते हैं। मुझे सुन कर जिनके मन में यह प्रश्न नहीं उठता। तो मैं जानता हूं। एक जगह मैं बोलता हूं तो आप ही तो नहीं आई हैं मुझसे मिलने, बच्चू भाई भी मिलने बैठे हुए हैं, डाक्टर भी मिलने बैठे हुए हैं, लेकिन आप जो प्रश्न लेकर आई हैं, वह डाक्टर प्रश्न लेकर नहीं आते। तो उसका मतलब है कि प्रश्न मेरे बोलने से नहीं उठता है, आपकी पकड़ से उठता है। डाक्टर का दूसरा उठता है, आपका तीसरा उठता है। मैं तो एक ही बात बोलता हूं, लेकिन तीन आदमी तीन प्रश्न लेकर आते हैं। वह आपकी पकड़ से आते हैं। उलझन जो आती है, वह आपकी पकड़ से आ रही है। और आपकी कोई पकड़ न हो तो कोई उलझन नहीं है। और आपकी कोई पकड़ न हो तो समझना एकदम आसान और सीधा है। हो सकता है मेरी बात गलत हो तो वह भी समझना आसान पड़ेगा। उलझन नहीं पैदा होगी। अगर मेरी बात गलत है और आपकी कोई पकड़ नहीं है तो आपको इतना साफ दिखाई पड़ जाएगा कि यह बात गलत है! उलझन फिर पैदा नहीं होगी, बात खतम हो गई।

प्रश्नः वैक्यूम तो हो ही नहीं सकता है।

वैक्यूम हो सकता है। वही तो हमारा अजमशन है, नहीं तो निगेशन का सवाल
ही नहीं है।

प्रश्नः जो सोचा, जो कुछ भी पढ़ा है, सोचा दिमाग से, बुद्धि से या अंतर
से भी जो कुछ मुकाबला इसका जो कुछ है वह एक पिंड है। वह पिंड अगल-अलग है, इसलिए अगल-अलग रिएक्शंस होता है। लेकिन वह पिंड से जांचा जाता है कि यह ठीक है यह नहीं ठीक है।

उस पिंड से अगर जांचते हैं तो आप कभी नहीं जांच पाते हैं। यही तो सारा झगड़ा है।

प्रश्नः यह पिंड बदलता रहेगा।

इसको थोड़ा समझ लीजिए, इसको थोड़ा समझिए। यह जो पिंड है...

प्रश्नः यह पिंड जो पुराना है...

न, न, न, यह सवाल नहीं है पुराने-नये का।

प्रश्नः आज जो मेरा है वह कल बदलता है, परसों बदलता है।

बदलता है। पिंड है, समझने के दो रास्ते हैं। एक तो वाया पिंड।

प्रश्नः पिंड यानी कांशसनेस।

मैं समझ गया न! कंडीशनिंग आपकी, कांशसनेस-वांशसनेस कहां रखी है।
कंडीशनिंग। पिंड का क्या मतलब होता है? पिंड का क्या मतलब होता है?

प्रश्नः कंडीशनिंग माने वह सामाजिक, वह जो...

सामाजिक नहीं। आपके ऊपर जितने भी संस्कार हैं, आपके माइंड के जितने
भी संस्कार हैं, सब कंडीशनिंग हैं। सब कंडीशनिंग हैं।

प्रश्नः जितने भी संस्कार हैं और इससे जो चैतन्य का जो आविर्भाव हरेक मनुष्य में जो हद तक हुआ है, वही स्वरूप की बात है।

यह जो आविर्भाव जो है न, इससे आविर्भाव नहीं होता, इससे आविर्भाव ढंकता है। वही तो सारा झगड़ा है।

प्रश्नः आप जो अभी झगड़ रहे हैं कि आविर्भाव को, जो जगता है, उसके सामने
घट गया है।

इसको थोड़ा समझ लें कि वह जो हमारी कंडीशनिंग है, जो हमने सुना है, पढ़ा है, सोचा है, समझा है, वह जो हमारे माइंड की कंडीशनिंग है। तो अब मेरी बात अगर आप सुन रहे हैं तो दो तरह से सुन सकते हैं, दो तरह से। वैक्यूम तो आप नहीं होते, वह तो मैं जानता हूं। वह तो अल्टीमेट बात है कि वैक्यूम हो जाएं तो मुझे सुनने आने की जरूरत नहीं है।

प्रश्नः और आपको कहने की भी जरूरत नहीं है।

नहीं, मुझे कहने की जरूरत हो सकती है।

प्रश्नः कैसे?

वह दूसरी बात है।

प्रश्नः समझाइए आप?

इसको समझ लेने दीजिए पूरा, फिर आपसे बात कर लूंगा।

मुझे कहने की जरूरत हो सकती है, नहीं तो बुद्ध को, महावीर को, किसी को कहने की कोई जरूरत नहीं है।

प्रश्नः मैं नहीं सुन सकूंगा वैक्यूम से।

उसकी बात सुन लीजिए पूरा, अभी वैक्यूम को समझ लीजिए थोड़ा। यह जो कंडीशनिंग है, इसको दो तरह से आप सुन सकते हैं। एक तो रास्ता यह है कि कंडीशनिंग मेरे बोलते वक्त, आपके सुनते वक्त बीच में हो, कंडीशनिंग बीच में हो...

प्रश्नः तो गलत ही होगा?

हां।

प्रश्नः तो समझ नहीं पाएंगे।

हां, तो नहीं समझ पाएंगे। वही मैं कह रहा हूं। कंडीशनिंग एक कोने पर, मेमोरी में पड़ी हो और आप फ्रेश और इमीजिएट, सीधा कांटेक्ट कर रहे हों, तो समझना आसान होगा। वैक्यूम का अभी तो इतना ही मतलब हो सकता है अभी कि कंडीशनिंग जो है वह बीच में बैरियर की तरह खड़ी न हो, लेकिन वह खड़ी होती है आमतौर से। बहुत कठिन है उसको भी एक तरफ हटाना। क्योंकि अगर मैंने गांधी के लिए कुछ भी कहा तो आप उसको ऐसे ही नहीं सुन रहे हैं जैसा मैं क्राइस्ट के संबंध में कुछ कहूंगा तो सुनेंगे।

प्रश्नः सुनना चाहिए।

सुनना चाहिए। वह तो है। अगर मैं महावीर के संबंध में कुछ कह रहा हूं
तो जैन वैसे नहीं सुनता है जैसा कि अ-जैन सुन लेता है। अ-जैन के लिए कोई कंडीशनिंग नहीं है। वह चुपचाप देखता है कि ठीक है, महावीर के लिए कुछ कहते हैं, सुनता है वह। यह उसकी डायरेक्ट लिसनिंग हो जाती है। जैन तो बेचैन हो गया है कि महावीर के लिए, मेरे भगवान के लिए! अब यह मामला महावीर का नहीं रहा, यह इसका भी हो गया। और यह बीच में खड़ा हो गया। यह जो बीच में खड़ा हो जाना है, यह तो नब्बे प्रतिशत कंफ्यूजन तो यह पैदा करता है। फिर हम कुछ जो नहीं कहा गया है, वह भी सुन लेते हैं। कुछ जो नहीं कहा गया है, वह अर्थ भी निकाल लेते हैं और वह हमें इतना सही मालूम पड़ता है कि हमने सुना कि हमें कल्पना में भी नहीं हो सकता कि यह नहीं कहा गया, यह नहीं सुना गया। कुछ छूट जाता है, कुछ जुड़ जाता है, यह सब पैदा हो जाता है। इस माइंड को मैं कहता हूं कि यह माइंड लिसनिंग नहीं कर रहा है। यह नुकसानदायक है। और इससे कंफ्यूजन की सारी ताकत पैदा होती है। जो मेमोरी है हमारी, वह मेमोरी में होनी चाहिए। वह रहेगी, जाएगी नहीं आज। लेकिन जब मैं सुन रहा हूं, जब भी मैं सुन रहा हूं, तब वह बीच-बीच में खड़ी नहीं हो जाना चाहिए--एक बात। और वह जो आप कहते हैं न, वैक्यूम जो है, एक घटना आपको कहूं, उससे ख्याल में आए।
फरीद था मुसलमान फकीर। वह गया यात्रा पर। तो सारे मुसलमान तीर्थ घूम रहा था, मजारे घूम रहा था। कबीर के गांव के पास से निकला मगहर के। तो फरीद के साथ कोई सौ लोग थे। उन्होंने कहा कि कबीर का आश्रम आता है, अगर यहां रुक जाएं और कबीर से थोड़ी आपकी बातचीत होगी तो हमें बड़ा आनंद होगा कि क्या बात होती है। फरीद ने कहा कि रुक तो जरूर जाएंगे, लेकिन बात होनी मुश्किल है। उधर कबीर को भी, मित्रों को भी पता चली आश्रम के कि फरीद गुजरने वाला है, तो आकर रोक लो फरीद को। कबीर से कहा कि बड़ा आनंद आ जाएगा, दो दिन आपकी चर्चा हो

जाएगी, तो हम सुन लेंगे। कबीर ने कहा, चर्चा बहुत मुश्किल है। रोक लो, तो जरूर रोक लो। बैठेंगे, हंसेंगे, चर्चा बहुत मुश्किल है। चर्चा क्यों मुश्किल है? उन्होंने कहा, वह तो जब आएगा फरीद तो समझ में आ जाएगा।
फरीद आया, कबीर लेने गए, गले मिले, वे आकर बैठे, दो दिन रहे साथ, हंसे, गले लगे, चलते वक्त आंसू बह गए दोनों की आंखों से, लेकिन बात नहीं हुई। छूटते से ही शिष्य तो सब घबड़ा गए, दोनों के। दो दिन में बोर्डम हो गई बिल्कुल कि यह क्या पागलपन हो गया। बैठे हैं बैठे, और उन दोनों की वजह से दूसरे भी न बोल पाएं कि वे क्या सोचेंगे।
जैसी ही छूटे तो फरीद से मित्रों ने पूछा कि क्या पागलपन किया कि तुम चुप ही रह गए, बोले नहीं? फरीद ने कहा, जो बोलता, वह नासमझ सिद्ध हो जाता। फरीद ने कहा कि मैं बोलता तो मैं बुद्धू हो जाता। क्योंकि वह आदमी शून्य हो गया है। पर कबीर क्यों नहीं बोला? तो फरीद ने कहा कि कबीर जानता है कि मैं शून्य हो गया हूं। दो शून्य क्या बोल सकते हैं! बोलने को कुछ भी नहीं बचता। तो फरीद के मित्र पूछने लगे, लेकिन हमसे तो आप बोलते हैं? हमसे तो आप बोलते हैं! फरीद ने कहा, जरूर बोलता हूं, क्योंकि तुम शून्य नहीं हो। और तुम तभी तक सुन रहे हो, जब तक तुम शून्य नहीं हो। जिस दिन तुम शून्य हो जाओगे, न तुम सुनोगे।
दो शून्य खड़े हों तो बोलना और सुनना बंद हो जाएगा, लेकिन एक शून्य का बोलना चल सकता है। एक शून्य का बोलना चल सकता है। वह एक अंतर्व्यथा है उसकी कि जो उसे दिखाई पड़ गया है, जो उसने जान लिया है, जो उसे हो गया है, उसकी सारी तड़प है कि वह कैसे हो जाए किसी को। उसकी सारी तड़प में वह कई दफा आपको बहुत ज्यादा दुष्ट भी मालूम पड़ेगा। उसकी सारी तड़प में वह कई दफा ऐसा लगेगा कि हमारी बहुत मान्यता को तोड़ दिया है, हमारे दिल को दुख पहुंचा दिया है, हमारी चोट कर दी है। और उसकी पीड़ा को तुम नहीं समझ सकते हो कि वह जान यह रहा है कि जितनी तुम्हारी पकड़ टूट जाए, जितना तुम खाली हाथ हो जाओ उतनी ही वह घटना घट जाए, वह हैपनिंग हो जाए, जिसकी कि चिंता है।
यह बिल्कुल ठीक है कि हम एकदम शून्य होकर नहीं सुन सकते हैं, लेकिन हम करीब-करीब शून्य होकर सुन सकते हैं। और करीब-करीब शून्य होने का मतलब यह है कि वह बीच में नहीं होना चाहिए। वह जो आप कहती हैं न, बिल्कुल ठीक कहती हैं कि मेरी बात से बहुत सी चिंता, बहुत सा विचार, बहुत से प्रश्न खड़े हो जाते हैं। जरूर मेरी बात कुछ ऐसी है कि उससे ऐसा होगा। लेकिन वह उतना ही नहीं है कारण, उससे भी ज्यादा कारण यह है कि हमारी सबके मन की अपनी पकड़ है। उस पकड़ पर कहीं भी भेद पड़ता है, चोट पड़ती है, तो स्वाभाविक है कि खड़ा हो जाए। और मैं चाहता हूं कि खड़ा हो जाए। मैं चाहता भी हूं कि खड़ा हो जाए, क्योंकि खड़ा हो जाए तो डायलॉग शुरू होता है। तो हम सोचते हैं, विचार करते हैं, बात करते हैं। आज नहीं, कल लड़ेंगे, झगड़ेंगे, कुछ होगा, लेकिन उससे कुछ रास्ता बनेगा। अगर कुछ रास्ता उससे बनता है और अगर लड़ने-झगड़ने, सोचने- विचारने के बाद अगर हम थोड़ी सी भी ज्यादा अंडरस्टैंडिंग में छूटते हैं-- जरूरी नहीं है कि मेरी बात सही हो जाएगी उससे, लेकिन मेरा मानना यह है कि उस प्रोसेस से गुजरने पर भी अंडरस्टैंडिंग बढ़ती है। चाहे मेरी बात गलत हो, चाहे सही सिद्ध हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। हरिवल्लभजी और मैं अगर दो घंटे बातचीत करूं और सिर्फ लड़ भी लें बातचीत में, तो भी हम दो आदमी दो घंटे के बाद ज्यादा समझदार लौटते हैं। मेरा मतलब यह है कि अगर उस प्रोसेस से गुजरने की थोड़ी भी इच्छा हो तो हम उससे समझदार लौटते हैं।
और हिंदुस्तान में ऐसा हो गया है कि हिंदुस्तान में भोगीलाल जी, डायलाग जैसी चीज ही नहीं रह गई है। बिल्कुल डायलाग नहीं है। और इसलिए ऐसी हैरानी मालूम पड़ती है कि डायलाग तो नहीं है ज्यादा से ज्यादा गाली-गलौच हो सकती है। अगर कोई ज्यादा ही कोई बातचीत करो, तो गाली-गलौच फौरन हो जाएगी, डायलाग-वायलाग नहीं हो पाता। यानी ऐसा संभव ही नहीं रह गया है कि हम बैठें, हम चर्चा करें, मुल्क में हवा चले बात करने की, गांव-गांव में अड्डे हों, जहां लोग जिंदगी के बड़े मसलों पर कुछ बात करते हों, लड़ते-झगड़ते हों, पक्ष-विपक्ष करते हों, वह सब खतम हो गया। और ऐसी पिटी-पिटाई हालत हो गई कि जो हमने पकड़ लिया उसको दोहराए चले जाते हैं रोज-रोज उसको! न उसको कोई इनकार

करता है। यानी मुझे तो कई दफे ऐसा लगता है कि आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, तो भी लगता है कि इनकार कर दो इस आदमी को। थोड़ी बातचीत तो हो, मुझे कई दफा ऐसा लगता है कि आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, लेकिन मुझे लगता यह है कि यह ठीक कहा हुआ कहीं सिर्फ पकड़ा हुआ तो नहीं है? अगर पकड़ा हुआ है तो बकवास में गिर जाएगा और नहीं पकड़ा हुआ है तो टिक जाएगा, हर्जा क्या है? यानी मेरा कहना यह, तो मुझे तो लगता यह है कि इस वक्त एक-एक चीज पर हमला कर देने जैसी हालत है।

प्रश्नः ठीक है, वह मान लिया। पूरी की पूरी बात मान ली। लेकिन एक जो बात, तीसरा वजह होता है कंफ्यूजन का। आपको बुरा न लगे तो यह बात है।

नहीं, बुरा-वुरा नहीं, बिल्कुल कहिए।

प्रश्नः आप जो जिस तरह से रखते हैं न, वह ओवर सिंप्लीफाई करते हैं।

हां-हां।

जो चीज इतनी कांप्लीकेटिड है, उसको ये जो कथानक होते हैं और एनक्डोट्स होते हैं, वह इतना देते हैं, और इस तरह से देते हैं कि उसका एक दूसरा ही रूप, जो सिरिअस चीज है, जो समझने के लिए लोगों को अंतर ढूंढना पड़ेगा...

आप ऐसा सोचते हैं भोगीलाल जी, लेकिन मेरी समझ यह है कि जो एनक्डोट मैं कहता हूं, उसको आप सिंपल भी समझ सकते हैं और बहुत कांप्लेक्स भी। आप अगर, यह जो भी एनक्डोट मैं कहता हूं या जो भी छोटी कहानी कहता हूं...

प्रश्नः इससे कंट्राडिक्शंस भी तो आते हैं।

न, न, न। वे आएंगे। कंट्राडिक्शन की क्या फिकर करते हैं, वह तो बातचीत थी, द मूवमेंट यू असर्ट, देयर इ.ज कंट्राडिक्शन। वह तो आप बोले, कंट्राडिक्शन आने वाला है।

प्रश्नः एनक्डोट का ही स्वभाव यह है कि वह कभी भी पूरा-पूरा उसको नहीं
कह सकते।

हां-हां, पूरा तो कोई चीज नहीं कह सकती। भाषा ही नहीं कहती, एनक्डोट क्या कहेगा। लेकिन एनक्डोट जो है, वह इतना कहता है--एक दो मिनट का एनक्डोट, जितना दो घंटे की बात नहीं कहती है, और दो घंटे की कोई फिलॉसफी की ट्रिटाइज नहीं कह सकती। और यह भी आपका ख्याल ठीक नहीं है कि उसकी गंभीरता कम करता है। वह तो आदमी गंभीर है तो उसकी गंभीरता बढ़ाता है और आदमी गंभीर नहीं है तो उसकी गंभीरता कम करता है। यानी मेरा कहना यह है कि वह तो अगर आदमी गंभीर है तो एक एनक्डोट पर सोचने के लिए घंटों लगा देगा। और अगर आदमी गंभीर नहीं है, अगर आदमी गंभीर नहीं है, तो आप उसको गीता के वचन सुनाइए, वह समझेगा कि फिल्मी गाने गा रहे हो। यह सवाल नहीं है। वह तो आदमी के ऊपर निर्भर है। बुद्ध ने अपनी श्रेष्ठतम-श्रेष्ठतम सारी बातें...

प्रश्नः दोनों पर निर्भर है। आप उनको ज्यादा व्यंग्य, उस तरफ प्रमुख देंगे, तो वह ओवर सिंप्लीफाई हो जाएगा।

मुझे तो फिकर नहीं है, ओवर सिंप्लीफाई, मैं तो कहता हूं कि सत्य इतना सिंपल है कि उसमें से ओवर सिंप्लीफाई कर नहीं सकते हैं।

प्रश्नः ऐसा तो फिर दोनों चीज कह सकते हैं एक साथ।

प्रश्नः कांप्लिकेटिड भी है और...

एक ही बात है। एक ही मतलब है। और इसलिए हम किस तरह... अधिकतम लोगों के लिए सोचना कैसे संभव हो जाए, वह मेरी दृष्टि है। और मेरी दृष्टि यह भी रहती है कि जो अंतिम है वहां, उसके भी ख्याल में आ सके, जो प्रथम है उसके ही ख्याल में नहीं। वह जो पच्चीस लोग बैठे हैं, तो उसमें जो अंतिम है, उसके भी ख्याल में कुछ आ सके। वह भी बिल्कुल खाली हाथ वहां से नहीं जाना चाहिए। नहीं तो प्रथम के ख्याल के लिए तो बहुत किताबें हैं, आप उनको पढ़िए मजे से। और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि दुनिया में अब तक जितनी भी कठिन से कठिन बात कही गई है, वह सरल से सरल कहानियों में कही गई है--चाहे जीसस ने, चाहे बुद्ध ने, चाहे कनफ्यूशियस ने।

प्रश्नः इसका इनकार नहीं है। आपके कहने की जो प्रथा है, जो पद्धति है,
वह पद्धति का यह कोई मुझे दोष मालूम होता है--कि जिससे यह निर्दोष की गंभीरता नहीं रहती है। मैं तो यह बताना चाहता हूं।

हो सकता है। मैं तो गंभीरता चाहता भी नहीं। गंभीरता की मुझे इच्छा भी नहीं है जरा भी। गंभीरता मैं चाहता भी नहीं। गंभीरता को मैं रोग ही मानता हूं, रोते हुए आदमियों का लक्षण मानता हूं। वह मैं चाहता भी नहीं बहुत। मेरी तो अपनी समझ यह है कि कितना सरल और कितना सहज और कितना वहां से जहां आदमी के हृदय में प्रवेश करता है किसी द्वार से। अब मेरी अपनी...

प्रश्नः आप गांधी को पूंजीवाद मानते हैं?

नहीं, गांधी को मैं पूंजीवादी नहीं मानता, लेकिन गांधी जी की पूरी चिंतना की विधि पूंजीवाद की समर्थक है। गांधी को पूंजीवादी नहीं मानता। और गांधी पूंजीवादी चित्त से हैं भी नहीं। और उनका भाव भी नहीं है पूंजीवादी होने का। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। गांधी के जीवन की विधि, गांधी के सोचने का ढंग पूंजीवादी है, बुर्जुवा है।

प्रश्नः तो इसमें फर्क क्या हुआ? गांधी का सोचने का ढंग पूंजीवादी है
और गांधी पूंजीवादी नहीं है।

बहुत फर्क है, बहुत फर्क है। गांधी जी कांशस नहीं हैं इस बात के लिए,
और इसलिए गांधी की नीयत पर मैं कभी दोष नहीं देता। यानी मैं एक बात कह सकता हूं, जिसमें मेरी कोई नीयत किसी को नुकसान पहुंचाने की नहीं, और नुकसान पहुंच सकता है। आपको नुकसान पहुंचाने की मेरी कोई नीयत नहीं है, आपको फायदा ही पहुंचाने की मेरी नीयत है, और नुकसान आपको पहुंच सकता है। मेरा कहना है कि गांधी की नीयत के बाबत कोई शक करने का सवाल नहीं उठता। लेकिन गांधी की ठीक नीयत भी जो कर रही है, वह पूंजीवाद का समर्थन है।

प्रश्नः वह तीस साल पहले जो कम्युनिस्ट पहले रहे थे, वह आप कह रहे हैं?

मुझे पता नहीं, कम्युनिस्ट क्या कहते थे कब, कब नहीं कहते थे, मुझे पता नहीं।

प्रश्नः मुझे तो पता है।

वह तो आप बदल गए होंगे तो दुनिया बदल गई लगता है।

प्रश्नः सुबह आपने जो बात कही कि गांधी पूंजीवादी थे, ऐसा आप प्रतिपादित कर रहे थे। वह तीस करोड़ और तीन सौ तीस करोड़ वाली बात चलती रही।

मैंने यह नहीं कहा, मैंने यह कहा कि गांधी के सत्संग से फायदा मिला उसको। गांधी को फायदा नहीं मिल गया। वह बिरला को मिला था फायदा।

प्रश्नः लेकिन वह बात सही नहीं है। गांधी ने उसके लिए सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, भाई फिरोदशाह और सेठना की बात करके वह कही थी कि जो बात हम अंग्रेजों के साथ करेंगे वही हमारी गुजरे देश के भी...

वह तो कठिनाई नहीं है। वह तो दूसरे वक्तव्य ऐसे रखे जा सकते हैं, जैसा
आप रख रहे हैं। जिसमें उन्होंने उत्तरप्रदेश के जमीदारों की कमेटी उनसे मिली और उन्होंने कहा कि तुम्हारे ऊपर अन्याय होगा, अगर जमीदारी छीनी गई। मैं लडूंगा तुम्हारे लिए। इसमें क्या मतलब है। गांधी की जिंदगी में तो इतने कंटरडिक्ट्री वक्तव्य हैं कि कुछ भी सिद्ध कर सकते हैं। इसलिए किताब-विताब नहीं लाना चाहिए, इनमें कोई मतलब नहीं है। मेरा मतलब यह है, गांधी जी के बाबत, गांधी जी की चालीस...

प्रश्नः आप सुबह गांधी को जो आप बता रहे थे, वह गलत ढंग से बता रहे थे।

यह हो सकता है। यह झगड़ा नहीं है, यह झगड़ा नहीं है मेरा, क्योंकि आपको पक्का होगा कि आप सही ढंग से समझ गए हैं तो बात अलग है। वह झगड़ा नहीं है मेरा।

प्रश्नः नहीं, वह जो गांधी नहीं थे, वह आप बता रहे थे?

मैं तो अभी भी वही कह रहा हूं, बता नहीं रहा था। मैं आपसे यह कह रहा हूं
कि मेरा...

प्रश्नः नहीं, फिर भी वह जो कहने की ढंग थी उससे ऐसा ही सुनने वालों को लगता है कि गांधी पूंजीवादी थे।

वह कितने सुनने वालों को लगा, वह कितने सुनने वालों को लगा...

प्रश्नः उनकी बात बिल्कुल साफ इसमें हो जाती है कि जो कहते हैं कि नीयत से मेरा कुछ नहीं है।

गांधी जो जरा भी नहीं है।

प्रश्नः फिर भी वे पूंजीवादी थे।

लेकिन गांधी के व्यक्तित्व, गांधी की चर्या, गांधी का पूरा चालीस साल
का जो कुछ हिसाब है, गांधी का आंदोलन, वह सब पूंजीवाद के समर्थन में गया है।

प्रश्नः... वह पूंजीवादी था, क्या फायदा। वह पूंजीवादी हुआ।

यह दूसरी बात है। यह आप नतीजा निकाल रहे हैं, यह मैं नहीं कहता। आप उनकी नीयत पर भी शक कर रहे हैं। आप नीयत पर भी शक कर रहे हैं, मैं उनकी नीयत पर शक नहीं कर रहा हूं। यह आपका नतीजा है, यह मेरा नहीं।

प्रश्नः आप कहते हैं इसीलिए उसमें से उसका... होता है।

न, न, न, यह आप निकालोगे न। यह हरिवल्लभ भाई नहीं निकाल रहे हैं, भोगीलाल भाई भी नहीं निकाल रहे हैं यह, यह आप निकाल रहे हो।

प्रश्नः वह तो ठीक है, लेकिन आपकी नीयत नहीं है फिर भी आपके करने से कुछ नुकसान होता है। वह समाज में...

कुछ हो सकता है, इसमें क्या कठिनाई है, इसमें क्या कठिनाई है। ये दोनों बातें एक नहीं हैं। और यही कठिनाई हो रही है। यही कठिनाई हो रही है, लोग समझते हैं कि मैं कोई गांधी को कह दिया हूं। गांधी को मैं क्यों कहूंगा?

प्रश्नः लेकिन जो बोला जाता है वह उस तरह से बोला जाता है कि जैसे गांधी को तोड़ने के लिए जो लोग बोलते थे कि भई यह...

मजा यह है कि मैं तो सभी को तोड़ने के लिए उत्सुक हूं। इसमें तो कोई झंझट नहीं है।

प्रश्नः तोड़ें आप, उनकी जो गलत बात है उसको तोड़ें। कोई गलत बात को रख
कर कुछ बनाने से बनता नहीं है, सभी ने देख लिया है।

ठीक है।

प्रश्नः तो इसलिए गांधी की जो बात है वह ठीक से जैसा गांधी कहता था, उसी तरह से आप स्ट्रेट करें और इसके बाद...

मगर वह कौन तय करेगा कि गांधी कैसा कहता था। आप तय करेंगी कि मैं तय करूंगा?

प्रश्नः क्यों, जो कोई पढ़ेंगे। वे तो छोड़ गए हैं...

यह तो बच्चों जैसी बातें कर रही हैं आप। ये इसलिए बच्चों जैसी बात कर रही हैं--भोगीलाल भाई बैठे हैं, वे उसको समझ सकते हैं कि यह कौन तय करेगा कि गांधी क्या कहते थे! यह आप तय करेंगी कि मैं तय करूंगा? मेरे लिए मैं ही तय करूंगा न, आप तो तय नहीं कर सकती हैं।

प्रश्नः फिर भी इसमें तर्क रहेगा।

हां तर्क रहेगा भोगीलाल भाई और इसमें विवाद रहेगा। विवाद रहेगा और इसमें कोई तय नहीं कर सकता। आज भी मजा यह है कि बुद्ध क्या कहते थे कि यह बुद्ध के छह संप्रदाय छह तरह से तय करते हैं।

प्रश्नः वैसी बात हो तो... ।

सारी बातें ऐसी हैं महाशय!

प्रश्नः सारी बातें ऐसी कैसी हैं भाई?
प्रश्नः ओशो, एक और एक दो, यह जो बात है गणित की, एक और एक दो...
ये जो दलीलें आप लाती हैं न ढूंढ-ढूंढ कर कि एक और एक दो, ये दलीलें इतनी नासमझी की भरी हुई हैं, एक और एक अनिवार्य रूप से दो नहीं होते हैं। यह आपको पता नहीं, गणित की कितनी समझ मुझे पता नहीं। एक और एक अनिवार्य रूप से दो नहीं होते। और एक और एक सिर्फ इसलिए दो होते हैं कि हमने नौ के डिजिट बना रखे हैं। दस डिजिट बना लें और नहीं होंगे, पांच डिजिट बना लें और नहीं होंगे। मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? मेरा मतलब यह है...

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उसी तरह सारी बातें हैं।

प्रश्नः उसका अर्थ ऐसा निकालने की कोई जरूरत भी नहीं, लेकिन मेरा कहने का तात्पर्य आप नहीं समझे कि मैं क्या कहना चाहती हूं। कई चीजें तो ऐसी जरूर होती है कि जो आप...

एक चीज ऐसी नहीं होती है।

प्रश्नः एक होती है।
प्रश्नः तो डायलॉग ही नहीं हो सकता है।
प्रश्नः होती है, सबमें एक होती है।

देखिए, इसी पर ही एक नहीं पा रही न। एक पर भी नहीं हो पा रही न।

प्रश्नः आपके साथ डायलॉग के लिए आते हैं, हमने कुछ नहीं पकड़ा हुआ है, फिर भी हम आते हैं कि किसी के पास से कुछ लेना है।

बिल्कुल आइए, बिल्कुल आइए।

प्रश्नः तो फिर आपके साथ कैसे डायलॉग करें?

लेने की फिकर में मत आइए, इधर कुछ छोड़ जाना है, तो कुछ मजा आ सकता है।
लेन-वेने... मेरे पास कुछ है ही नहीं, दूंगा क्या आपको।

प्रश्नः यह तो उनकी अपनी भावना है, आपकी भावना को मैं जान लिया।
प्रश्नः नहीं है कुछ, फिर भी आप फिर रहे हैं कुछ देने के लिए।

छीनने के लिए। नहीं, भोगीलाल भाई कुछ नहीं देता।

प्रश्नः वह तो ठीक है। वह प्रेम का संबंध ऐसा ही होता है।

कोई का छीन लूं, बस इतना ही ख्याल रहता है।

प्रश्नः छीनना और देना, वह एक ही चीज होती है।

अच्छा हुआ, अच्छा हुआ।

प्रश्नः लेकिन बात यह है कि जो कोई--ड़ायलॉग के लिए कोई भूमिका ऐसी लानी चाहिए कि जो आदमी प्रयत्न करके भी पास बैठ सके, बात कर सके।

मैं तो ला रहा हूं भूमिका।

प्रश्नः नहीं, आप कह रहे हैं कि आप नहीं समझेंगे, क्योंकि आपने कुछ पकड़ा हुआ है।

यह मैं नहीं कह रहा हूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वही कोशिश चलती है, वही कोशिश चलती है। कोई छोड़ता भी है, कोई नहीं भी छोड़ता है। कोई धीरे छोड़ता है, कोई लंबे छोड़ता है। अब उसका हिसाब भी नहीं रखना पड़ता है कि कौन छोड़ता है कि नहीं छोड़ता। काम मेरा हो गया, कह दिया, बात खतम हो गई।

प्रश्नः नहीं, आपसे डायलाग इसलिए नहीं हो सका कि आप सबको कहते हैं कि कंडीशन है, क्वेश्चनिंग कोई है नहीं। सब कंडीशन होकर आप... तो डायलाग कैसे हो सकता है? आप मानते हैं कि सब लोग कंडीशंड हैं।

हैं ही। इसमें मानने का क्या सवाल है।

प्रश्नः हरेक आदमी है, बोलने वाला भी और सुनने वाला भी है। लेकिन फिर
भी डायलाग होता है क्योंकि आदमी एक-दूसरे को समझने की भी कोशिश करता है, सिर्फ जो है वह बताने की कोशिश नहीं करता है।

बिल्कुल ही, बिल्कुल ही। तभी डायलाग होता है, लेकिन डायलॉग में बाधा...

प्रश्नः एक-दूसरे को समझे बिना आदमी कुहम्लाता भी है। उसको ऐसा लगता
है कि मुझे दूसरे को समझना चाहिए।

बिल्कुल। अगर ऐसा लगे, तो डायलाग हो जाता है। लेकिन मामला क्या है, मामला क्या है, बहुत मुश्किल से हम इस कोशिश में होते हैं कि दूसरा क्या है इसे समझें। अंदरूनी कोशिश यह होती है कि क्या हम हैं यह दूसरे को समझाएं। इसलिए डायलॉग में तकलीफ होती है। नहीं तो डायलॉग में इतनी तकलीफ नहीं है।
मेरा मतलब समझे न? डायलॉग तो हमेशा ही चल सकता है और चलता है, लेकिन वह जो हमारी कोशिश होती है बहुत भीतरी, वह अगर समझने की, तब तो बहुत आसान हो जाता है। समझाने की, तब बहुत मुश्किल हो जाता है।

प्रश्नः दोनों होती हैं।

दोनों ही न।

प्रश्नः समझाने की भी रहती है और समझने की भी रहती है।
प्रश्नः लेकिन क्रांति भाई ने जो कहा, तो आपने कहा कि गांधीजी ने कहा
था कि जमीदारों की तरफ से मैं लडूंगा, यानी कुछ फेक्ट को बेस बनाया जा सकता है, उसको लेकर मैं कह रहा हूं। तो वह बिल्कुल आपका ठीक था कहना, उन्होंने कहा था कि मैं जमीदारों की तरफ से लडूंगा और सत्याग्रह करूंगा, उसी गांधी ने पैंतालीस में आगाखान से निकलने के बाद यह कहा कि मैं मानता हूं कि अब जमीदारों को कंपनसेशन भी न दिया जाए और जमीदारी खतम की जाए। ये फेक्ट्स हैं। और इसमें उनके विचारों में विकास हुआ है।

ठीक है।

प्रश्नः तो इन विचार-परंपरा को और विकास-परंपरा को भी कुछ ध्यान में हमें लेकर के...

इसमें ऐसा मामला है न, ऐसा मामला है कि इसमें ही गांधी को अगर पूरा उठा
कर हम देखने चलें, तो ऐसा मुझे मालूम पड़ता है कि गांधी में कोई इकहरा व्यक्तित्व विकसित हो रहा है, यह भी मुझे नहीं दिखाई पड़ता। गांधी में मुझे बहुत व्यक्तित्व दिखाई पड़ते हैं। गांधी का मुझे एक व्यक्तित्व दिखाई नहीं पड़ता। मुझे मल्टी-साइकिक मालूम पड़ते हैं और कई धाराएं उनमें विकसित हो रही हैं, और कई मामलों में वे पीछे भी गिरते हैं, आगे भी बढ़ते हैं। बहुत सा मामला है।

प्रश्नः वही हमें दिखा आपके बारे में दो दिन में।

हां। यह जो बहुत सा मामला है, यह जो बहुत सा मामला है। इसको जितनी समझदारी से हम समझने की कोशिश करें, उस कोशिश में गांधी की पूजा और हानि और निंदा का कोई सवाल नहीं है। सवाल कुल इतना है कि गांधी के व्यक्तित्व को आधार बना कर अगर हम समझने की कोशिश करें, तो मुल्क के आने वाले व्यक्तित्व को बनाने के लिए कुछ रास्ते निकल सकते हैं।
लेकिन दो तरह की बातें हैं। या तो कोई आदमी गांधी को गाली देने की वृत्ति में पड़ जाता है, तब बहुत मुश्किल हो जाता है। और या फिर कोई पूजा करने की, तब भी बहुत मुश्किल हो जाता है। और अगर कोई आदमी दोनों के बीच में, जिसको कहें क्रिटिकल थिंकिंग कर रहा हो, तो दोनों तरफ के आदमी धक्के देकर उसको कहते हैं कि तुम किसी कोने पर खड़े हो जाओ। यानी जैसा कि आप कहते हैं मुझसे कि या तो आप यह भी कहो कि गांधी की नीयत गलत है, तो फिर हम समझ लें आपकी बात। वह दूसरा जो आदमी आता है, वह मुझसे कहता है कि तुम अगर कहते हो कि उनकी नीयत ठीक है, तो यह भी कहो कि उनका विचार भी ठीक है।
अब मेरी तकलीफ आप समझते हैं न? मेरी तकलीफ क्या हो जाती है, न मैं पक्ष में हूं किसी के, न मैं किसी विपक्ष में हूं। मुझे पक्ष-विपक्ष का अर्थ ही मालूम नहीं पड़ता। मुझे तो मालूम पड़ता है कि गांधी जैसा महत्वपूर्ण आदमी, इसको सोचा जाना चाहिए।

प्रश्नः बहुत कांप्लेक्स पर्सनैलिटी है।

कांप्लेक्स हैं बहुत। और इसलिए बहुत पहलू हैं। और बहुत पहलुओं से सोचने की जरूरत है, कोई जिद्द की जरूरत नहीं बहुत जल्दी की यह पहलू ही ठीक है। यह जितना हम समझें--लेकिन यह समझने में क्या तकलीफ होती है, पक्ष वाला चाहता है कि समझो तो पूजा की बात करो। विपक्ष वाला चाहता है कि समझो तो विरोध की बात करो। मैं दोनों बात नहीं करना चाहता, इसलिए मैं दोनों के साथ दिक्कत में हूं।
इधर मेरी जो कठिनाई हो गई है--नास्तिक मेरे पास आता है, तो वह समझता है
यह आदमी आस्तिक है। आस्तिक आता है, तो वह समझता है कि यह आदमी नास्तिकता की बातें कर रहा है। और मुझे न आस्तिक से कोई प्रयोजन है, न नास्तिक से कोई प्रयोजन है। कम्युनिस्ट मेरे पास आता है, तो वह समझता है कि मैं एंटी- कम्युनिस्ट बातें कर रहा हूं। गांधीवादी आता है, तो वह समझता है कि मैं एंटी-गांधीवादी बातें कर रहा हूं। और मेरी हालत यह हो गई है कि चूंकि मैं प्रत्येक पर विचार करने का आग्रह करना चाहता हूं। और विचार का मतलब यह होता है कि वह आलोचना शुरू होती है। अगर आप गांधीवादी होकर मेरे पास आए हैं, तो मुझसे आपकी जो बात होगी, उसमें गांधी की आलोचना हो जाएगी। अगर आप मार्क्सवादी होकर आए हैं, तो मार्क्स की आलोचना हो जाएगी। वह मार्क्सवादी यह ख्याल लेकर जाएगा कि मैं मार्क्स का दुश्मन हूं और गांधीवादी यह ख्याल लेकर जाएगा कि मैं गांधी का दुश्मन हूं। मुझे किसी की दुश्मनी से कुछ लेना-देना नहीं है। तो मेरी जो पोजीशन है उसको तो वक्त लग जाएगा कि मैं उसको साफ कर सकूं। क्योंकि वह पोजीशन वैसी जगह पर है जहां कि साफ करने में थोड़ा वक्त लगने...

प्रश्नः पांच मिनिट ज्यादा लेकर यही पोजीशन जो माप और गॉड एण्ड गॉड,
ये जो चीज हैं वह एक थोड़े लफ्जों में आप कह सकते हैं तो...

हां, वहां जो मैंने कहा, उन्होंने मुझसे पूछा किसी ने प्रेस-कांफ्रेंस में शायद, राजकोट या सुरेंद्रनगर में, कि क्या आप ऐसा मानते हैं कि साम्यवाद--ईश्वर ऐसी आपकी मान्यता है? मैंने कहा, इसमें मैं हां भर सकता हूं। मेरी दृष्टि यह है कि साम्यवाद समाज की व्यवस्था की दृष्टि से, तो उसने एक अंतर्दृष्टि दी है, साम्यवाद ने। लेकिन वह अंतर्दृष्टि अधूरी है। क्योंकि वह मनुष्य का जो आंतरिक है, उसको कहीं भी स्पर्श नहीं करती है। या मनुष्य के जो अतीत है, उसको भी कहीं स्पर्श नहीं करती है। अत्यंत आंशिक है। और आंशिक बात को पूर्ण सत्य कहना बड़ा ही खतरनाक हो जाता है।

यानी वह असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है। क्योंकि उसमें अंश सत्य तो होते ही हैं और इसलिए ऐसा भी लगता है कि सत्य है, और फिर मन होता है कि इसको पूरा सत्य कह दें।
साम्यवाद पूरा सत्य नहीं है। वह मनुष्य के जीवन के अत्यंत बाहरी तल को, अत्यंत पदार्थ के तल को छूता है।

प्रश्नः मैटीरियलिस्टिक कम्युनिज्म।

हां, तो वह वहां छूता है। और यही उसकी कमी है और यही उसका बल भी है। उसका बल भी यही है, क्योंकि वह जिस बात को छूता है, उसे पूरी तरह छूता है और पूरी गणित की तरह छूता है और पूरे विज्ञान की तरह छूता है। यह उसका बल भी है, क्योंकि उसने जिस बात को भी छुआ है, तो बिल्कुल एक पूरी पहुंच है उसकी और यही उसकी कमजोरी भी है, क्योंकि बहुत बड़ा अछूता रह गया। और उस अछूते को बिल्कुल इनकार करता है।
तो वह जो मैंने हां भर दिया, तो वह जो गॉड है मेरे लिए, वह जो सब शेष रह गया कम्युनिज्म में, उस सबका इकट्ठा मतलब है गॉड से मेरा। वह आदमी का आंतरिक और आदमी के अतीत जो भी है, पदार्थ और रूप की पकड़ की बाहर जो भी है, तौल-माप, जो प्रयोगशाला के बाहर जो भी है, शब्द-विचार के बाहर जो भी है, वह जो भी छूट जाता है पीछे, उसको मैं गॉड कह रहा हूं, मेरे लिए गॉड का जो मतलब है। तो उसको हम जोड़ दें...

प्रश्नः समथिंग ट्रांसेंडेंटल।

समथिंग ट्रांसेंडेंटल। तो वह जो अगर जुड़ जाए, तो कम्युनिज्म की जो अधूरी दृष्टि अत्यंत पूरी हो जाती है। लेकिन उस पूरे होने में वह जो कम्युनिज्म था मार्क्स का वह विलीन हो जाता है। क्योंकि यह इतना बड़ा हमला है गॉड का कि इस हमले में वह जो टुच्चापन है, वह गया, वह गया। वह सारी वाइलेंस गई, वह सारी... कम्युनिज्म गया। इसलिए मैंने कहा कि वह तो गॉड को जोड़ना, पूरे कम्युनिज्म को, पूरा का पूरा, यहां से वहां तक बदल देना है। कम्युनिज्म पूरा बदल जाएगा गॉड के जोड़ने से। और यह भी ध्यान रहे कि गॉड भी बदल जाएगा कम्युनिज्म के जुड़ने से। वही गॉड नहीं रह जाएगा जो हिंदू का है, ईसाई का है, मुसलमान का है। यह गॉड की अब स्थिति बहुत और हो जाएगी, क्योंकि वह जो गॉड था अब तक, वह एक अर्थ में बुर्जुवा गॉड है, वह एक समाजवादी दृष्टि की उसमें कोई पहुंच नहीं है। तो मेरी अपनी दृष्टि है कि साम्यवाद भी बदलता है ईश्वर के जुड़ने से, ईश्वर भी बदलता है साम्यवाद के जुड़ने से। और जो एक नई सिंथिसिस बनती है, वह बहुत मूल्यवान है। इसलिए मैंने हां भर दिया कि मुझे यह बात ठीक लगी, इसको हां भरा जा सकता है।

प्रश्नः तो आज गॉड और मार्क्ससिज्म या कम्युनिज्म कहते हैं, तो कम्युनिज्म का भी वह पुराना... और गॉड का भी वह पुराना ढांचा है।

ढांचा ही बना हुआ है, सब कुछ का भी। दोनों के ढांचे हैं, वही दिक्कत हो जाती है।

प्रश्नः इसलिए ऐसे जो लोग रहते हैं न, क्रिश्चिएन का कम्युनिस्ट कहते हैं, क्रिश्चिएन मार्क्ससिस्ट कहते हैं, तो ऐसा ख्याल आ जाता है कि आप कोई ऐसा तो मानने वाले हैं नहीं कि...

ऐसे कई दफे भोगीलाल जी ख्याल आएंगे, लेकिन किसी ख्याल में पढ़ना मत आप, मैं कोई नहीं हूं।

प्रश्नः नहीं, आप बोले इसलिए ख्याल में...

प्रश्नः अब आखिर मिनट आपकी बात कर लें। यह हम आपको इत्मीनान दिला सकते हैं कि जो आपने यह बहस शुरू कर दी है, गांधी शताब्दी के वर्ष में भारत और भारत के बाहर भी, गांधी की बड़ी तारीफ भी होगी और उसके कामों के बारे में सोचा भी जाएगा, उस वक्त एक आलोचनात्मक तटस्थ दृष्टि से आपने जो विचार-परंपरा शुरू की है, उसका हमारे जैसे बहुत सारे लोग जो हैं सर्वोदय विचार में और काम करने, उसका स्वागत करते हैं, यह मैं आपको, चाहे हम कुछ भी आपके खिलाफ लिखें, उसका मतलब यह होगा कि जो आप चाह रहे हैं वह हम कर रहे हैं।

कर रहे हैं, बिल्कुल आप कर रहे हैं।

प्रश्नः लिखा था तब वह भी लिखा था कि ऐसी आलोचना होनी चाहिए।

बिल्कुल, बिल्कुल बढ़िया।

प्रश्नः तो यह सिर्फ आपको आखिरी मिनट में इत्मीनान दिलाऊंगा कि लिखा
भी है शायद और भी लिखेंगे, इससे जोरदार लिखेंगे और आपको इसके लिए लिखने के लिए आह्वहत करेंगे कि और ज्यादा साइंटिफिक। और मुमकिन है कि गांधी शताब्दी के वर्ष में ही असली रूप, उसका वैज्ञानिक रूप निखर आए जो आप चाहते हैं और हम चाहते हैं।
प्रश्नः और हम तो चाहते हैं कि आप भी कुछ लिखें, आप सब बोलते हैं और फिर उसमें कुछ गड़बड़ी भी हो जाती है।

गड़बड़ी मचाना है।

प्रश्नः गड़बड़ी मचाना है भाई।

लिखेंगे, लिखेंगे।
अच्छी बात है। आनंद हुआ भोगीलाल जी आप आए तो।

देख कबीरा रोया
उन्तीसवां प्रवचन

गांधी से मुक्ति

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

उस माइंड को तोड़ना है--एंटी-टेक्नालॉजीकल माइंड है हमारा। हमारा सोचने का ढंग यह है कि मशीन से बचो और आदमी से काम ले लो! पूरा ढंग हमारा यह है सोचने का। वह जो गांधी कह रहे हैं--गांधी जी एक अर्थ में तीन हजार वर्ष की भारत की सारी बेवकूफी के रिप्रेजेंटेटिव हैं, प्रतिनिधि हैं। वह उनका कसूर नहीं बेचारों का। वह जो तीन-चार हजार वर्ष से यह पूरा मुल्क कह रहा है, वे वही कह रहे हैं। वे यही कह रहे हैं कि एक आदमी छह घंटे चरखा कात लेगा और कपड़ा बना लेगा। चरखा कातने वाला कोई मुल्क संपत्ति पैदा नहीं कर सकता। कोई रास्ता पैदा नहीं कर सकता। संपत्ति नाइनटी परसेंट टेक्नालॉजी से पैदा होती है। दस परसेंट ही आज आदमी का श्रम रह गया है और आने वाले पच्चीस वर्षों में दस परसेंट भी रह जाने वाला नहीं है।
तो यह जो हमारा दिमाग है, हमने जो अब तक माइंड खड़ा किया है, वह बेसिकली एंटी-टेक्नालॉजीकल है। इधर गांधी ने और बातें करके उसको फिर एंटी- टेक्नालॉजीकल बनाने की कोशिश की है। इधर विनोबा उसको बनाए चले जा रहे हैं। ग्रामोद्योग है, चरखा है, खादी है, स्वावलंबन की बात--यह सारी की सारी बातें जो हैं हमारी, यह बिल्कुल ही अपरूट करके फेंक देनी पड़ेंगी। और तगड़ी लड़ाई लेनी है; अगर हिंदुस्तान को शक्तिशाली होना है।
तो गांधी से आने वाले बीस वर्षों में सीधी लड़ाई लेने की जरूरत है। अगर
आप गांधी की पूजा करते चले जाते हैं और लड़ाई नहीं लेते तो आप कहीं से सहायता ले आएं, आप जाकर सारी उनकी टेक्नालॉजी समझ लें, आप कुछ भी नहीं कर पाएंगे। गांधी से मुक्त हुए बिना यह मुल्क कभी समृद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि गांधी से मुक्ति के माध्यम से ही हम, वह जो तीन हजार वर्ष के प्रतिनिधि हैं गांधी, उससे मुक्त होंगे। गांधी से लड़ाई इस वक्त बहुत बेसिक है। बेसिक इन अर्थों में कि गांधी व्यक्ति से कुछ लेना-देना नहीं है। गांधी तो सिंबल की तरह खड़े हो गए हैं। जो हमारा बैकवर्ड माइंड है, उसका पूरा का पूरा प्रतीक बन कर खड़े हो गए हैं। और उन्होंने फिर से समर्थन दे दिया उन सब बातों को, जिनकी वजह से हम परेशान रहे हैं; जिनकी वजह से हम गरीब रहे हैं।
तो एक तो मुझे यह दिखाई पड़ता है कि मुल्क में साइंटिफिक और टेक्नालॉजिकल माइंड कैसे पैदा हो, बेसिक माइंड कैसे पैदा हो।
दूसरा मुझे यह दिखाई पड़ता है कि संपत्ति के पैदा होने के उसूल हों। और
उन उसूलों में एक बड़े से बड़ा उसूल यह है कि जो मुल्क भी इस भाषा में सोचता हो कि हमें अपनी जरूरतें कम करनी हैं, वह शक्तिशाली नहीं हो सकता। वह कैसे होगा? तो जब तक हम यह अपरिग्रह और त्याग और न्यूनतम आवश्यकता, इस तरह की फिलासफी की बातें करते रहेंगे, तब तक हम संपत्ति पैदा नहीं कर सकते। जब तक हम इस भाषा में सोचेंगे कि अपनी चादर से कम पैर फैलाने चाहिए, चादर के भीतर ही पैर रखो, तब तक चादर रोज छोटी पड़ती जाएगी। क्योंकि हम रोज बड़े होते जा रहे हैं चादर के भीतर। और हमारी मुश्किल और प्रश्न इसमें बढ़ते ही जाने वाले हैं, क्योंकि चादर के बाहर पैर निकालने नहीं हैं। और चादर उतनी की उतनी है, और हम रोज बड़े होते जो रहे हैं उसके भीतर। वह जो कल बच्चा था, आज जवान हो गया है और वह उसी के भीतर रहने की कोशिश कर रहा है!
एक बार भी हमें... यह जो लड़ाई है, यानी यह लड़ाई इतनी मुझे फाउंडेशन मालूम होती है--उसमें बद्ध और महावीर से भी लड़ना पड़ेगा। और गांधी से तो लड़ना ही है। और उसमें उपनिषद और वेदों से लड़ना पड़ेगा। क्योंकि उस सबने हमारा पूरा का पूरा--जिसको हम कहें कलेक्टिव माइंड, हमारा बनाया हुआ है, वह कलेक्टिव माइंड सोचता इस भाषा में है कि जितनी कम जरूरत, उतना सुखी आदमी। यह बात बिल्कुल ही नासमझी की है। सुख आता ही है किसी जरूरत के पूरे होने से। तो जितनी ज्यादा जरूरतें और जितनी ज्यादा जरूरतों की पूर्ति होती है,

उतना आदमी सुखी होता है। कम जरूरतों से, जितनी कम जरूरतें होंगी, उतनी ही कम तृप्ति होगी, उतना ही कम सुख होगा।
एक तो हमें यह जो हमारी आवश्यकता के बाबत दृष्टि है, इस मुल्क की, वह हमें बदलनी चाहिए। आवश्यकता बढ़ानी चाहिए। हमें कहना पड़ेगा कि जितना तुम कमाते हो उससे ज्यादा खर्च करने की हमेशा तैयारी रखो, ताकि तुम ज्यादा कमा सको। तुम ज्यादा मांग करो, जितनी तुम्हारी पूर्ति हो जाती है, ताकि तुम ज्यादा पूर्ति के लिए व्यवस्था कर सको। पूरा का पूरा माइंड हमारा स्टेग्नेंट हुआ है इस अपरिग्रह की बात पर। यह इस बुरी तरह जकड़ ली ही भीतर से कि अच्छे से अच्छा आदमी भी सोचता है कि, वह जो बिरला इतना पैसा कमा रहा है, वह भी बुनियाद में सोचता है इसी भाषा में। क्योंकि बड़े मजे की बात जो है, अगर बिरला से बात हो, तो वह कमाए चाहे करोड़ों, लेकिन वह सोचता ही इसी भाषा में है कि कम से कम में सुख है!
माइंड--बहुत एसेंशियल है माइंड। और इसलिए अगर एक आदमी नंगा खड़ा है, तो बिरला कमा ले करोड़ों, लेकिन नंगे खड़े आदमी को नमस्कार करने जाने वाले हैं। एसेंशियल माइंड की अपील वही है कि यह आदमी सुखी है। हम तो दुखी हैं, हमसे कुछ होता नहीं है कमाने से। तो हमें मुल्क को समझाना पड़ेगा कि सुख क्या है?
और हमारे मुल्क में यह भी समझाया गया है कि सुख जो है, वह एक मानसिक बात है, जो कि बिल्कुल झूठी बात है। सुख निन्यानबे प्रतिशत शारीरिक है और एक ही प्रतिशत मानसिक है। और जब तक यह बात हम फिर से नहीं समझाते हैं कि सुख निन्यानबे प्रतिशत शारीरिक है, और वह जो एक प्रतिशत मानसिक है वह भी निन्यानबे प्रतिशत शारीरिक उपलब्ध हो तो ही एक प्रतिशत मानसिक की संभावना बनती है; नहीं तो संभावना बनती नहीं। लेकिन हमको यह समझाया गया है कि सुख का शरीर से क्या लेना-देना है! आपके कपड़े-लत्ते और खाने से क्या संबंध है? वह तो मानसिक बात है, आपके एटिट्यूट की बात है। ये सब फिजूल की बकवासें हैं। मेरा अपना कहना यह है कि एक तो जिस तरह आज तक हमारे दिमाग में फिलासफी ऑफ पावर्टी डाली गई है, उसी तरह हम फिलासफी ऑफ रिचनेस एक दफा पूरे मुल्क के दिमाग में डालें।
वह जो यूथ मूवमेंट की बात करते हैं, आज अगर हम युवकों को सिर्फ बीस साल इतना ही समझा सकें कि रिचनेस की बेसिक फिलासफी क्या है? नहीं डिटेल्स की बात है, माइंड की बेसिक फिलासफी क्या है उसकी। हमारे जवान को ख्याल ही पैदा नहीं होता! वह खड़ा हो जाता है, लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि धन कैसे पैदा किया जाए, धन कहां से लाया जाए? उसको, पूरे मुल्क के दिमाग में ही वह बात नहीं है। और फिर एक कंटेंटमेंट हमको जहर की तरह, बिल्कुल पाय.जन की तरह पिला दिया गया है। उसको हमें उखाड़ फेंकना पड़ेगा। पूरे मुल्क को डिसकंटेंट से भरना पड़ेगा। वह जो आप कहते हैं कि इतनी दरिद्रता है, इतना कम पैसा मिल रहा है एक आदमी को, लेकिन उतनी दरिद्रता की आप बात करते होंगे, इकोनॉमिक उसकी बात करते होंगे, लेकिन वह जिस आदमी को मिल रहा है, वह बात ही नहीं कर रहा है उसकी! वह जीए चला जा रहा है! उसको मतलब ही नहीं है कि उसको तीन सौ अठारह मिलते हैं कि तीन सौ तेईस मिलते हैं। उसे कोई मतलब नहीं है!

प्रश्नः उसको दो टाइम खाना ही चाहिए बस।

नहीं, दो टाइम खाना नहीं मिलता तो भी उसे फिकर नहीं। वह एक दफे भी खाकर
जी रहा है। हम मुल्क के माइंड को बिल्कुल ही स्टेग्नेंट और डेड करने में भी सफल हो गए हैं। हमने आदमी मार डाला है। हमने आदमी में जो रुआब होनी चाहिए, बिल्कुल ही निर्जीव बना दिया है। हमने इतनी तरकीब से निर्जीव बनाया है कि दुनिया में कोई अफीम इस भांति निर्जीव नहीं बना सकती आदमी को। और इतना समझा दिया है, इतना समझा दिया है कि तुझे असंतुष्ट तो होना ही नहीं है। यह संतोष में ही सुख है।
इधर मैंने कहना शुरू किया कि सुख में ही संतोष है, संतोष में कोई सुख नहीं है। यह बात ही झूठी और उलटी है। और यह दुखी आदमी के लिए जहर पिलाना है कि संतोष में सुख है। हम संतोष किए चले जाते हैं। आदमी कुछ ऐसा है और आदमी

का माइंड कुछ इतना एडजस्टमेंट कर सकता है कि हम उसे जो समझा दें, और उसके आइडिया में बैठ जाए, तो वैसा आदमी हो जाएगा। हमने करोड़ों शूद्रों को यह समझा दिया है कि तुम यही होने को पैदा हुए हो। और पांच हजार वर्षों में शूद्रों ने जरा सा भी विद्रोह नहीं किया, नानुच भी नहीं की!
अंग्रेज भारत में नहीं आते तो हिंदुस्तान में शूद्र की कभी कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि यह भी आदमी है। कभी नहीं हो सकती थी। और जितने गुस्से से आप अंग्रेज को गाली देते हैं, मैं नहीं दे सकता। वह जो आप कहते हैं कि वह माइटी, डर्टी है। मैं इसलिए कहता हूं आपको, इसलिए कहता हूं कि वह हम बहुत ज्यादती कर रहे हैं। क्योंकि आपको यह ख्याल में नहीं है कि अंग्रेज ने आपको किनके हाथों से छुड़ा दिया। वह जो आपके बाप-दादे थे, अंग्रेज से बदतर थे। अंग्रेज की गुलामी की मैं तारीफ नहीं करता हूं। गुलामी की कभी भी कोई तारीफ नहीं की जा सकती। लेकिन जिन पुरखों के हाथ में आपका मुल्क था, अंग्रेज से बदतर लोग थे वे। और अगर दो सौ वर्ष अंग्रेजों के हाथ में आप नहीं होते तो आज से भी बदतर हालत में आप होते।

प्रश्नः मॉडर्निज्म में कभी नहीं आते?

आप कभी नहीं आने वाले थे। आपकी जितनी भी आज धारणा विकास की, चिंतन की, स्वतंत्रता की, समानता की, इक्वेलिटी की, लिबर्टी की--जितनी आज आपकी बातें हैं, वे सब पश्चिम से आईं। आपके दिमाग में ये कोई बातें कभी नहीं थीं। यह शूद्रों के पांच हजार साल के इतिहास में एक शूद्र पैदा नहीं हुआ, जिसका आप नाम ले सकें। इधर सिर्फ अंग्रेजों के वक्त में दो-चार शूद्र हुए--अंबेदकर और दो-चार और गिनती की जा सकती है। पांच हजार साल में एक आदमी नहीं पैदा हुआ, जिसका हम नाम भी कह सकें कि यह आदमी भी था।

प्रश्नः कैसे कह सकें, जब हमारे धर्म ने भी यह बताया कि चार वर्ण हैं
और जो शूद्र है, वह शूद्र है। ब्राह्मण तो ब्राह्मण रहेगा, वह बड़ा आदमी है।

जब तक मनु भाई, इस माइंड से लड़ाई नहीं लेते हैं, हिंदुस्तान में कोई भी मूवमेंट संपत्ति पैदा करने वाला नहीं होगा।

प्रश्नः समाज में क्रांति के लिए साधन की आवश्यकता है?

हां, वह मैं अलग बात करूंगा। वह साधन की बात नहीं कर रहा हूं। साधन की बात नहीं की है मैंने अभी। मैंने तो यह कहा कि मानसिक क्रांति के बिना हम इस देश में... और वह मानसिक क्रांति ऐसी नहीं कि वह कांग्रेस के खिलाफ होने वाली है। वह हमारे तीन हजार साल के इतिहास के खिलाफ होने वाली है। जो कठिनाई मैं आपको कह रहा हूं--आज मुल्क में यह ख्याल है। आज मुल्क में यह ख्याल है कि वह क्रांति हम तत्काल इधर सौ-पच्चीस वर्षों में निबट लेना चाहते हैं। वह इतना सस्ता मामला नहीं है। वह नेहरू से लड़ कर भी हल नहीं होता, क्योंकि जो आदमी नेहरू से लड़ कर पहुंचेगा, वह करीब-करीब नेहरू जैसा आदमी साबित होने वाला है। मैं आपसे यह कहता हूं, क्योंकि उसका मतलब यह है कि जो नेहरू के पीछे जड़ें हैं तीन हजार वर्ष पुरानी, वही मनु भाई के भी पीछे हैं तीन हजार वर्ष की जड़ें पुरानी।
आप नेहरू से लड़ लेंगे, लेकिन बेसिक रूप से आप भी वही हैं। तो आप किसको पहुंचाते हैं, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया है। हमें तो अपरूटेड आदमी को पहुंचाना है, जिसकी हिंदुस्तान के तीन हजार साल के इतिहास में रूट्स नहीं हैं, जिस आदमी की। तो, तो आप क्रांति लाते हैं और नहीं तो आप चचेरे भाई साबित होते रहेंगे। सौ वर्ष तक आप यह करते रहेंगे कि इधर कांग्रेसी हट जाए और समाजवादी बैठ जाए और जनसंघी बैठ जाए और स्वतंत्र आ जाए, और पाएंगे कि आप चचेरे भाई साबित होते हैं। क्योंकि राजगोपालाचारी के दिमाग और नेहरू के दिमाग की जड़ें बिल्कुल एक हैं। और इसलिए यह लड़ाई नेहरू और राजगोपालाचारी की नहीं है। और यह जो लड़ना है इनका, यह लड़ना बिल्कुल सतही है। यह गहरे में

नहीं है। यह करेंट लड़ाई है। इसमें ठीक है कि कौन सही और गलत है, यह दूसरी बात है। लेकिन मेरा कहना यह है कि हमें लड़ाई इससे गहरे में ले जानी पड़ेगी। और वह लड़ाई नेहरू से भी और राजगोपालाचारी से भी और गांधी से भी, क्योंकि इन सबकी रूट्स हैं, पुराने युग से हैं। वह जो पुराना युग था, उससे हमारी लड़ाई है।
तो वह जो माइंड की, रेवोल्यूशन की जो मैं बात कह रहा हूं, उसके साधन मैं ये नहीं कह रहा हूं। साधन तो आप ठीक कहते हैं जैसे यूथ मूवमेंट है--एक यूथ मूवमेंट की जरूरत है मुल्क में। और मैं आपसे कहूंगा मनु भाई, जैसा आपने कहा है, आप सोचते हैं इस मूवमेंट के लिए--लेकिन अगर आप सोचते हैं इस मूवमेंट के लिए, तो मैं आपसे कहूंगा कि थोड़ा सा भी पोलिटिकल बायस आपके यूथ मूवमेंट को खड़ा नहीं होने देगा। अगर आपको यूथ मूवमेंट ही खड़ा करना है--यूथ मूवमेंट ही खड़ा करना है तो आपकी पॉलिटिक्स से यूथ मूवमेंट न आए।
मेरा मानना है कि यूथ मूवमेंट खड़ा हो और उसमें पॉलिटिक्स न आए। इसमें मैं थोड़ा फर्क करता हूं। मेरा ख्याल यह है कि यूथ मूवमेंट किसी पॉलिटिक्स से खड़ा करेंगे आप, तो खड़ा होने वाला नहीं है इस मुल्क में। इस मुल्क में तो एक प्योर यूथ मूवमेंट, जो सारे हेरिटेज के खिलाफ खड़ा हो, इसका किसी से कोई लेना-देना नहीं है। आज का करेंट मामला नहीं है इसके सामने। यह तो इंडिया का जो हेरिटेज है, जो पास्ट है, उसके खिलाफ एक रिबेलियन की धारणा लेकर एक यूथ मूवमेंट खड़ा हो तो आप हिंदुस्तान में दस साल के भीतर यूथ मूवमेंट खड़ा कर सकते हैं। एण्ड लेट दि पॉलिटिक्स कम आउट ऑफ दैट। और वह यूथ मूवमेंट लाए पॉलिटिक्स। उसकी हमें फिकर नहीं करनी चाहिए आज कि वह क्या पॉलिटिक्स होगी? वह यूथ मूवमेंट अपनी पॉलिटिक्स पैदा कर लेगा। और वह जो पॉलिटिक्स होगी, वह पॉलिटिक्स प्रभावी हो सकती है हिंदुस्तान में बीस साल में।
एक दूसरी बात एक तो यह मेरी समझ में है, और मैं उत्सुक हूं, इधर मैंने बात की है कि मैं यूथ फोर्स खड़ा करना चाहता हूं। और इधर मुल्क में विद्यार्थी मेरे बहुत निकट आए हैं। और उनमें एक आत्मीयता है, जो मेरे प्रति बढ़ी है, क्योंकि मेरी कोई पॉलिटिक्स नहीं है, मेरा कोई रिलीजन नहीं है, मेरा कोई एफीलिएशन नहीं है किसी तरह की, और मेरा कोई बायस भी नहीं है। यानी मेरी कल्पना में भी नहीं है वह। यानी ऐसा नहीं है कि मेरा कोई बायस है और फिर कोई मैं मूवमेंट चलाना चाहता हूं। मेरा कोई बायस भी नहीं है।
बहुत निकट मैंने विद्यार्थी अनुभव किए हैं। और यह जो इन विद्यार्थियों को मैं कहता हूं, वह एक बिल्कुल ही मेंटल रेवोल्यूशन के तल पर है। आज पॉलिटिक्स की बात भी करनी फिजूल है उस यूथ के सामने। क्योंकि जैसे ही आप पॉलिटिक्स लेकर जाते हैं, मामले करेंट बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। क्योंकि पॉलिटिक्स का मतलब करेंट है। रेवोल्यूशन करेंट नहीं होती है मनु भाई। रेवोल्यूशन की रूट्स डीप होती हैं।

प्रश्नः रेवोल्यूशन आप कहते हैं, हमारे वेस्टेड इंट्रेस्ट हैं।

मैं समझा आपकी बात, मैं समझा। आज का असंतोष जो है न, आज का जो असंतोष है, अगर उस असंतोष को आप करेंट प्रॉब्लम की तरह व्यवहार करते हैं, तो आप सिर्फ रिएक्शन कर सकते हैं, रेवोल्यूशन नहीं। रिएक्शन और रेवोल्यूशन में बड़े फर्क हैं।

प्रश्नः क्या रिएक्शन के अंदर भी आपको रेवोल्यूशन दिखाई पड़ता है?

नहीं, साहब! मैं आपसे कहता हूं कि रेवोल्यूशन के भीतर अगर रिएक्शन होंगे तो बात मुल्क को बदलती है। और नहीं तो रिएक्शन हमेशा करेंट ही होते हैं और नीचे की रूट्स हमेशा शेष रह जाती हैं। उनमें कोई फर्क नहीं पड़ता। रिएक्शन और रेवोल्यूशन में जो मैं फर्क करता हूं। आज एक स्थिति है करेंट मुल्क की। करेंट मुल्क की स्थिति के खिलाफ हम कुछ करें--करना जरूरी हो गया है, कर रहे हैं। बात कर रहे हैं, विरोध कर रहे हैं। लेकिन आप यह नहीं जानते कि यह जो करेंट स्थिति के खिलाफ बात कर रहा है यह आदमी, और वह आदमी जो करेंट

स्थिति पैदा कर रहा है, इनकी दोनों की रूट्स अगर एक हैं, तो यह रिएक्शन इनका, इनको ताकत में ला सकता है चार-पांच साल के बाद। और आप हैरान होंगे जान कर कि इनके ताकत में आते ही ये लोग भी करीब-करीब वैसी स्थिति पैदा कर देंगे, कि वह जो हुकूमत में था वह इनके खिलाफ रिएक्शन करने लगेगा।

प्रश्नः पॉलिटिक्स नहीं लड़ना चाहते हैं?

नहीं-नहीं, मेरी बात नहीं समझे आप। मैं जो कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं, कि आप--इसमें जो फर्क कर रहा हूं, रेवोल्यूशन का कांसेप्ट बड़ा कांसेप्ट है। रिएक्शन का कांसेप्ट बिल्कुल करेंट कांसेप्ट है। रेवोल्यूशन का मतलब है कि माइंड के सोचने का जो ढंग था, जो फ्रेम वर्क था, माइंड जिस तरह से कंडीशन किया गया था, हम उस पूरी कंडीशनिंग को तोड़ना चाहते हैं। रिएक्शन का मतलब यह है कि हमें बेसिक कंडीशन से कोई मतलब नहीं है। जैसे हम यहां बैठे हैं और यहां पानी आने लगा, तो रिएक्शन का मतलब यह है कि हम एक छप्पर डाल देते हैं। लेकिन इस बेसिक मकान में, इसकी बुनियाद में, इसकी नींव में बिल्कुल फर्क नहीं करते हैं। एक छप्पर डाल देते हैं। ये जो करेंट मामले हैं, वे छप्पर डालने जैसे हैं। इस दीवाल में थोड़ी सी खिड़की बना देते हैं, इस दीवाल की थोड़ी फनयी रंग-रोगन कर देते हैं, लेकिन मकान वही बना रहता है।
और हिंदुस्तान आज तक रेवोल्यूशन से नहीं गुजरा है मैं आपको कहूं, रिएक्शन से तो बहुत गुजरा है। सच तो यह है कि मेरी अपनी समझ में हिंदुस्तान में, जिसको हम क्रांति कहते हैं अंग्रेजों से छुटकारे की, वह भी एक रिएक्शन थी, वह भी क्रांति नहीं थी। और इसलिए जिनके हाथ में ताकत गई वह अंग्रेजों के भाई-बंधु साबित हुए। उनमें कोई फर्क नहीं था। वे उनकी औलाद थे बिल्कुल।

प्रश्नः बदतर थे?

औलाद अक्सर बदतर साबित होती है। उसमें कोई ऐसी कठिनाई की बात नहीं है। तो हिंदुस्तान क्रांति से गुजरा नहीं। और क्रांति से अभी भी नहीं गुजर सकेगा मुल्क। मेरी अपनी समझ यह है कि इस मुल्क को इस समय कुछ ऐसे लोगों की जरूरत है, जिनको करेंट मामले में, करेंट प्रॉब्लम में ताकत नहीं लगा देनी है, बल्कि मुल्क के बेसिक माइंड पर जूझ पड़ना है। एक दस साल की मेहनत, और आप पाएंगे कि वह बेसिक माइंड का जो फर्क होगा, वह फिर करेंट प्रॉब्लम से लड़ने में समर्थ हो जाएगा। आपके पास करेंट प्रॉब्लम से लड़ने वाला मन भी नहीं है! आप चिल्ल-पों करते रहते हैं, शोरगुल मचाते रहते हैं। मजा यह है, मैं देखता यह हूं कि इधर आपके मुल्क की जो लीडरशिप है, वह चाहे किसी पार्टी की हो, वह बोलती रहती है! जनता को कोई मतलब नहीं है। जनता में कोई बात कहीं पहुंचती नहीं। उसके ख्याल में ही नहीं आ पाता कि आप क्या कह रहे हैं। उसका माइंड यह बना हुआ है कि "कोउ नृप होहिं, हमें का हानि"।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं हुआ, क्योंकि गलत शब्दों को हम उपयोग करते रहे। शब्द से गलत नहीं होता, हम गलत शब्द का उपयोग करते रहे। सच आप पूछिए तो हिंदुस्तान में कभी- कभी मुश्किल से कभी कोई एकाध आदमी क्रांति के शब्द बोला है। बोला ही नहीं है। क्रांति के शब्द ही नहीं बोले गए हैं। आप जो कहते हैं न, शब्द से कुछ नहीं होगा। वह गलत कहते हैं।

प्रश्नः मेरे हिसाब से निराशा और कालिमा दिखाई देती है।

वह निराशा और कालिमा क्यों है, उसकी कभी भी बुनियाद में हम घुसने की फिकर नहीं करते। हम ऊपर कोई कारण खोज कर निपटारा कर लेते हैं। उससे कभी हम

भीतर गहरे में नहीं जा सकते हैं। अब जैसे मैं आपको कहूं--हिंदुस्तान में क्रांति के शब्द बोले ही नहीं जा रहे हैं। और बोलने में हम इतने भयभीत हो गए हैं कि हम जो कुछ बोलते हैं, सब प्रतिगामी है हमारा बोलना। सारा प्रतिगामी है। मैं हिंदुस्तान में कभी नहीं सुनता कि महावीर के खिलाफ कोई आदमी एक शब्द बोल रहा हो, कि बुद्ध कि खिलाफ कोई आदमी एक शब्द बोल रहा हो, कि गांधी के खिलाफ कोई आदमी एक शब्द बोल रहा हो।

प्रश्नः गांधी के खिलाफ तो हैं--देअर आर एंटी-गांधियंस?

मैं आपसे कह रहा हूं, वह भी नेहरू के खिलाफ आपका बुनियाद है। और अभी भी मैं आपको कहता हूं कि गांधी के खिलाफ आप सोचते होंगे, बोल आप नहीं रहे।

प्रश्नः आदमी के नहीं, थाट्स के?

थाट्स के खिलाफ भी नहीं। गांधी के खिलाफ कौन सा मूवमेंट है? थाट्स के खिलाफ भी नहीं। आप बातें सोच लेते होंगे बैठ कर चार आदमी, उसका मतलब नहीं है। कोई मूवमेंट नहीं है यहां पर, कोई जरा सी भी नहीं है। कोई बात नहीं है, कोई खुले में चर्चा नहीं है। किसी मंच से कुछ नहीं कहा जा रहा है कि हम गांधी को, कोई आदमी गद्दार कह सकता हो, कि कोई कह सकता हो कि गांधी इस मुल्क का दुश्मन है।
मैं आपको जो कह रहा हूं--एक तो बात यह कि हमें एक बिल्कुल ही प्योर यूथ मूवमेंट चाहिए--जिसकी आज के मामले पर हम ताकत फिलहाल नहीं लगाना चाहते हैं, दस साल बाद लगाएंगे। दस साल बाद लग जाएगी अपने से। क्योंकि जो अपने पुराने अतीत से लड़ने को राजी हो गए, वे दिल्ली में बैठे बेवकूफों को मिनटों में उखाड़ सकते हैं--जो बुद्ध और महावीर से लड़ने को खड़े हो गए। मैं आपको कहता हूं, वह लड़ाई जो लेना पड़े, उनको उखाड़ फेंकने का कोई मतलब नहीं है। इनमें कोई ताकत है? लेकिन ये उनका सहारा लेकर बैठे हुए हैं पूरे वक्त। हमारे मुल्क की जो बुजुर्ग लीडरशिप है, वह पूरे हेरिटेज का सहारा लेकर बैठी हुई है। वह राष्ट्रपति जाएंगे और दो सौ ब्राह्मणों के जाकर पैर धोएंगे काशी में। राष्ट्रपति नहीं बैठा हुआ है वहां। जब तक ब्राह्मण बैठा हुआ है, राष्ट्रपति को हटाना बहुत मुश्किल मामला है। वे जो सहारे हैं उसके, वे बहुत गहरे हैं।
और दूसरी बात मुझे दिखाई पड़ती है जो हम मुल्क के ख्याल में बहुत साफ नहीं है। एक तो मैं कहता हूं, एक यूथ मूवमेंट हो जो बिल्कुल प्योर यूथ मूवमेंट है। रिबेलियन अगेंस्ट दि पास्ट, और टोटल माइंड के खिलाफ। तो मैं आपको कहता हूं, आपका युवक आज तैयार किया जा सकता है इस रिबेलियन के लिए। उसकी भीतरी तैयारी हो गई है। आप उसको दिशा नहीं दे पा रहे हैं। आप साफ नहीं कह पा रहे हैं कि उसके भीतर कौन सी दिशा हो।
और दूसरी बात मुझे दिखाई पड़ती है कि हिंदुस्तान में कोई भी समाज रचना अगर आने वाली हो तो हिंदुस्तान के पास एक रेवोल्यूशनरी संन्यासियों का आर्डर चाहिए, उसके बिना यहां कोई बड़ा मूवमेंट खड़ा नहीं हो सकता।
संन्यासियों का आर्डर चाहिए।

प्रश्नः क्योंकि आपको ट्रेडीशन... ?

तोड़ना है। मैं आपको कहता हूं, ट्रेडीशन से ही तोड़ी जा सकती है।

प्रश्नः यह कंट्राडिक्शन है।

नहीं, कंट्राडिक्शन नहीं है, मैं आपको कहता हूं। क्यों कंट्राडिक्शन नहीं है, मैं आपको कहता हूं। मैं इसलिए कहता हूं कि हिंदुस्तान के तीन हजार वर्षों में जो भी रचना हुई है हिंदुस्तान के माइंड की, जो भी रचना हिंदुस्तान के माइंड की, उसका सेंट्रल फोर्स जो है, वह रिलीजन है--

हिंदुस्तान के माइंड की। मैं रिलीजन के खिलाफ भी नहीं हूं। उस रिलीजन के खिलाफ हूं, जो चलता रहा है। लेकिन मेरी मान्यता यह है कि आदमी हमेशा रिलीजन में भी रेवोल्यूशन करता है और नये रिलीजन के कांसेप्ट को विकसित करता है।
संन्यासी की जो आज तक हमारी धारणा थी उसको मैं गलत कहता हूं, लेकिन मैं संन्यासी की धारणा को गलत नहीं कहता। मेरी अपनी मान्यता है कि कुछ लोग जो परम स्वतंत्रता के दीवाने हैं, वे हमेशा संन्यास जैसे जीवन को पंसद करेंगे--परम स्वतंत्रता के जो दीवाने हैं। और ये जो लोग हैं, ये जो परम स्वतंत्रता के दीवाने हैं, इन लोगों के कोई वेस्टेड इंट्रेस्ट नहीं हैं। आप जो कहते हैं न कि हमारा वेस्टेड इंट्रेस्ट है, वह गृहस्थ का हमेशा होगा, मैं आपको बताए देता हूं। गृहस्थ कभी भी रेवोल्यूशनरी नहीं हो सकता है। रेवोल्यूशनरी हो सकता है रिनन्सिएट, जिसका अब कोई वेस्टेड इंट्रेस्ट नहीं है; जिसका क्या जाना, क्या आना है? जिसको मार्क्स ने कहा है, सर्वहारा। तो मजदूर भी सर्वहारा नहीं है, सिर्फ संन्यासी सर्वहारा है, मेरी दृष्टि में। क्योंकि मजदूर जिसे प्रोलिटेरिएट कहते हैं हम, उसका वेस्टेड इंट्रेस्ट है। उसको भी कुछ कमाना है, उसका भी घर है, उसके भी बच्चे हैं। बच्चे पढ़ रहे हैं, डाक्टर बनना चाहते हैं। एक संन्यासी है, उसका कोई वेस्टेड इंट्रेस्ट नहीं है। उसका कोई पास्ट नहीं, कोई फ्यूचर नहीं। वह तो मरने को खड़ा हो गया है।

प्रश्नः जो हम आपको राहत दे दें, आपका एक आर्डर... ।

इस मुल्क में जो क्रांति गुजरेगी, अगर इस मुल्क में कोई तीव्रता से क्रांति लानी है, तो वह ऐसे लोगों से आएगी जिनका कोई वेस्टेड इंट्रेस्ट नहीं है, जो सब छोड़ने को खड़े हैं। मेरा मतलब समझे न? मेरा मतलब फकीर ही है। ये जो लोग क्रांति ले आएंगे, जरूर नहीं कि जो लोग क्रांति लाएं, वे क्रांति के बाद राज्य के मालिक हों। वह बिल्कुल बेवकूफी की बात है, क्योंकि क्रांति लाना एक और ही शिल्प है, एक और ही टेक्नीक है। और राज्य करना बिल्कुल और शिल्प है, और टेक्नीक है। वह भूल हम एक दफा कर चुके। अभी यह जो क्रांग्रेस हमारी छाती पर बैठ गई, ये वे लोग थे, जिन्होंने पिकेटिंग कर ली और जेल चले गए। लेकिन इनसे कोई राज्य करने का सवाल था? इनसे कोई मतलब था राज्य करने का? नहीं, यह सवाल नहीं है। वह तो क्रांति जब विकसित होती है तो क्रांति बहुत अंगों में विकसित होती है। क्रांति करने वाला अंग एक है, क्रांति के संबंध में सोचने वाली इंटेलिजेंस दूसरी है। क्रांति के बाद जब शक्ति आ जाएगी हाथ में, तो उसको एडमिनिस्टर करने वाली ताकत बिल्कुल तीसरी है।
और कोई भी क्रांतिकारी आंदोलन तीन तबकों में चलता है--वे जो क्रांति करेंगे, वे जो क्रांति को फिलासफी देंगे, वे जो लोग क्रांति के बाद सत्ता को हाथ में लेंगे। तो यह तो हमको साफ होना चाहिए। और यह जब तक हम तीन हिस्सों में तोड़ कर क्रांति के लिए गति नहीं देते, तब तक हम क्रांति ला भी नहीं सकेंगे। वह जो क्रांति कराता है, उसके हाथ में अगर सत्ता चली चली जाए तो नष्ट कर देगा। जो क्रांति की, उसी को नष्ट कर देगा वह। उसका जो माइंड है, वह माइंड तोड़-फोड़ वाला है जो सत्ता को तोड़ सकता है। यानी वह ऐसा ही मामला है कि हमें घर गिराना है तो हम मजदूरों को बुला कर घर गिरवा लेते हैं, लेकिन उनसे घर थोड़े ही बनवाते हैं! बनवाने के लिए राज को बुलवाते हैं। राज को घर गिरवाने के लिए बुलवाते नहीं हैं। क्योंकि घर गिराने में तो--कोई भी कुदाली-फावड़ा चला कर गिरा लेता है। इससे कोई मतलब नहीं। लेकिन घर बनाना दूसरी बात है।
और अगर हमें एक प्लांड रेवोल्यूशन से मुल्क को ले जाना है, तो हमें तीन तलों पर यह बात खड़ी करनी चाहिए। और इधर मैं यूथ मूवमेंट के लिए तो बहुत ही आतुर हूं। लेकिन मेरी अपनी दृष्टि यह है कि अगर उसे सच में खड़ा करना है, सच में ही खड़ा करना है... क्योंकि जैसे ही आप करेंट मामले पर उसे खड़ा करना चाहते हैं, वैसे ही उस यूथ मूवमेंट की फोर्स टूट जाती है फौरन। क्योंकि

करेंट मामलों पर दूसरे लोग सारी पार्टियां उत्सुक हैं उसको घेरने को। तो आपको एक टुकड़ा ही मिलता है यूथ का। कभी आपको पूरा यूथ नहीं मिलता। मैं जिस मूवमेंट की बात कर रहा हूं आपको, पूरा यूथ, टोटल यूथ मिलेगा। और इस टोटल यूथ से क्रांति--दस साल में अपने आप, आपको हमें कहना नहीं पड़ेगा। असल बात यह है कि एक दफा चिंतन पैदा हो जाए तो इस मुल्क को बरदाश्त किया जा सकता है एक दिन--यह जैसा चल रहा है? इसको बरदाश्त नहीं किया जा सकता।

तो मैं कहता हूं कि उसे टुटपुंजिया बातों में उलझाइए ही मत अभी। उसको
तो बेसिक मामले पर, एक दस साल के लिए पूरी मेहनत करें पूरे मुल्क में, और एक दफा यूथ मूवमेंट शकल पकड़ ले। हैरान होंगे, रूस में भी जो क्रांति आई उस क्रांति के पीछे जिन लोगों का हाथ था, वे थे निहिलिस्ट। वह यूथ मूवमेंट था बुनियादी। और निहिलिस्टों के सामने कोई कंसेप्शन नहीं था, सिवाय डिस्ट्रक्टिव माइंड के। लेकिन उस डिस्ट्रक्टिव माइंड को पकड़ गई ताकत उन्नीस सौ पांच तक। और एक दफा पकड़ गई तो उससे मूवमेंट दूसरा पैदा हो आया लेनिन का। इस मूवमेंट ने सारा शोषण कर लिया उस निहिलिस्टों के मूवमेंट का। हिंदुस्तान में निहिलिस्ट जैसा कोई मूवमेंट नहीं है। और जब तक नहीं है, तब तक हिंदुस्तान में कोई परमानेंट रेवोल्यूशन नहीं हो सकता। एक दफा निहिलिज्म से गुजर जाना जरूरी है। एक दफा वह अनार्किस्ट जो माइंड है, एक दफा उसकी पूरी हवा फैल जानी चाहिए। तब हम उसके पार आगे बढ़ते, नहीं तो नहीं बढ़ते। उसके बाद हम आगे नहीं बढ़ते।
मैंने जो यूथ मूवमेंट का कहा, तो मेरी अपनी धारणा ही यह है कि यूथ मूवमेंट अगर खड़ा करना है तो यूथ मूवमेंट के खड़े करने की शकल बिल्कुल ही एक मिलिटरी आर्गनाइजेशन की होगी, नहीं तो नहीं हो सकती है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

सुनिश्चित रूप से चाहिए। एक तो आदमी की जो भी बुनियादी जरूरतें हैं,
वे प्रत्येक आदमी को उपलब्ध होनी चाहिए। प्रत्येक आदमी की बुनियादी जरूरतें, ... एक भी आदमी इस मुल्क में ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसकी बुनियादी जरूरतें नहीं होतीं। या तो हम इतने लोग रहें, या बीस करोड़ लोग मर जाएं, लेकिन जितने आदमी जिंदा रहते हैं, उनको बुनियादी जरूरतें पूरी मिलनी चाहिए। अगर हमको यह भी करना पड़े कि मुल्क को राजी करना पड़े कि दस करोड़ लोग मरो, तो मैं उसके लिए भी तैयार हूं, लेकिन कोई भी जिंदा आदमी भूखा और बिना कपड़े के न रहे, अब ऐसा नहीं बर्दाश्त किया जा सकता।
तो एक शरीर के तल पर हमें सारी जरूरतें पूरी करने की फिकर करनी चाहिए।
मन के तल पर मनुष्य को अधिकतम जितनी हम फ्रीडम की व्यवस्था कर सकें, वह हमें करनी है। जितनी अधिकतम फ्रीडम की व्यवस्था संभव है।
न तो पुरानी दुनिया में मन के फ्रीडम की पूरी व्यवस्था थी। न रूस में
और न चीन में मन के फ्रीडम की पूरी व्यवस्था है, बल्कि पुरानी दुनिया से वहां वह व्यवस्था कम हो गई है। शरीर के तल पर सारी जरूरतें और सुविधाएं पूरी हों और मन के तल पर सारी स्वतंत्रता की सुविधा हम जुटा सकें--शिक्षा की, ज्ञान की, समस्त तरह के ज्ञान की, समस्त विरोधी ज्ञान की। और मुल्क के माइंड पर कम से कम जबरदस्ती और रोक हो। और ऊपर से व्यवस्था और थोपते न हों-- चाहे वह धर्मगुरु थोपते हों या राजनीतिज्ञ थोपते हों।
तो मुल्क के मन पर अधिकतम हम स्वतंत्रता की व्यवस्था जुटा सकें। शरीर
के तल पर और मन के तल पर। और आत्मा के तल पर मेरे अपने ख्याल हैं, वह शायद आपको ख्याल में नहीं होंगे। आत्मा के भी तल पर मेरे ख्याल हैं कि आत्मा के तल पर भी, जैसी मेरी समझ है कि शरीर के तल पर कुछ बेसिक जरूरतें हैं और मन के तल पर शिक्षा और ज्ञान के विस्तार की बातें हैं, वैसा ही आत्मा के तल पर भी ध्यान, मेडिटेशन और उस तरह की जरूरतें हैं। वह भी हम प्रत्येक आदमी को जुटा सकें। वह न भी ख्याल में हो अभी तो उसको छोड़ा जा सकता है। हम दो ही बात कर सकते हैं। तो मनुष्य के पूरे व्यक्तित्व के जो तीन हिस्से हैं उन तीनों

हिस्सों को हम अधिकतम विकास की सुविधा दे सकें, कम से कम रुकावट दे सकें, वैसी व्यवस्था करनी जरूरी है।
प्रत्येक आदमी को इतनी स्वतंत्रता चाहिए कि उससे दूसरे की स्वतंत्रता पर बाधा न पड़ती हो। बस इतनी स्वतंत्रता। उसके आगे स्वतंत्रता पर बाधा डालनी जरूरी है। प्रत्येक आदमी को इतनी समानता चाहिए कि उसके विकास के जो बुनियादी तत्व हैं, उनमें बाधा न पड़ जाती हो इतनी समानता। इतनी समानता नहीं कि हर एक आदमी बिल्कुल बराबर का काट-छांट कर खड़ा कर दें, कि उसके पास दो रुपये, मनु भाई के पास दो रुपये। और एक मकान मेरे पास और वैसा एक मकान मनु भाई के पास। उस बेवकूफी की समानता का मेरे मन में मूल्य नहीं है। मेरा मानना है कि अगर स्वतंत्रता हम देंगे पूरी मनुष्यता को तो उसके बहुत तलों पर असमानता बनी रहेगी।

देख कबीरा रोया
तीसवां प्रवचन

देख कबीरा रोया

एक आदमी को परमात्मा का वरदान था कि जब भी वह चले, उसकी छाया न बने, उसकी छाप न पड़े। वह सूरज की रोशनी में चलता तो उसकी छाया नहीं बनती थी। जिस गांव में वह था, लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। उसके परिवार के लोगों ने उसे घर के बाहर कर दिया। उसके मित्र और प्रियजन उसे देख कर डरने और भयभीत होने लगे। धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बन गई कि उसे गांव के बाहर रहने के लिए मजबूर हो जाना पड़ा। वह बहुत हैरान हुआ, तो उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि मैंने केवल छाया खो दी है, और लोग मुझसे इतने भयभीत हो गए हैं, लेकिन लोग तो अपनी आत्मा भी खो देते हैं, और तब भी कोई उनसे इतना भयभीत नहीं होता है।
पता नहीं, यह कहां तक सच है कि किसी आदमी ने अपनी छाया खो दी हो। यह बात बड़ी काल्पनिक मालूम होती है, लेकिन दूसरी बात बहुत सत्य है। बहुत ही कम लोग हैं पृथ्वी पर, जो अपनी आत्मा न खो देते हों। अधिकतम लोग आत्मा खो देते हैं और छाया को बचा लेते हैं। सिर्फ छाया बच जाती है और भीतर जो भी महत्वपूर्ण है, वह सब खो जाता है। हमारे देश में यह दुर्भाग्य और भी बहुत घना होकर प्रकट हुआ है। यद्यपि हम आत्मा की बातें करते रहे हैं हजारों वर्षों से, लेकिन वे बातें केवल बातें ही हैं और हमारे देश ने बहुत पहले से ही आत्मा खो दी है। शायद हम इसीलिए आत्मा और परमात्मा की बहुत बातें करते हैं, ताकि आत्मा के खो जाने के तथ्य को भूले रहें।
इधर हजारों वर्षों से हम इस भ्रम में रहे हैं कि हम जगत गुरु हैं। यह बात सरासर झूठी है। हम इस भ्रम में भी रहे हैं कि हम बहुत धार्मिक हैं, यह बात भी सरासर झूठी है। हमसे ज्यादा अधार्मिक जाति जमीन पर खोजनी आज कठिन है। लेकिन अपने अधर्म को, अपनी अनीति को, अपने जीवन की व्यर्थता और गलत ढंगों को हम बहुत अच्छी बातों में छिपाने में कुशल हो गए हैं। हमारे पास सिवाय बातों के और कुछ भी नहीं रह गया है, और सिवाय शास्त्रों और ग्रंथों के कुछ भी नहीं रह गया है। हमारा आदमी बहुत पहले खो चुका और मर गया है। क्या हम इन्हीं झूठी बातों को दोहराते रहेंगे या कि हजारों वर्षों से जो हमने सपना अपने मुल्क में पैदा किया था कि हम मनुष्य को उसके शरीर के ऊपर उठाएंगे, और हम मनुष्य के जीवन को परम जीवन से जोड़ेंगे, और मनुष्य के जीवन को हम उस शांति से भर देंगे, जो इस पृथ्वी पर दुर्लभ है, और हम मनुष्य के जीवन को एक आनंद और अमृत का स्रोत बना देंगे? क्या हम इस सपने को पूरा करेंगे या हम केवल बातें ही करते रहेंगे?
ये बातें कितनी ही सुखद मालूम होती हों, लेकिन दुनिया के सामने इन बातों की व्यर्थता रोज-रोज स्पष्ट होती चली जाती है। हमने न केवल आत्मा खो दी, बल्कि आत्मा की बातों में हमने संसार को भी खो दिया है और आज हम उन कौमों के सामने भीख मांगने को खड़े हैं, जिनकी उम्र हमारे सामने ना-कुछ है। अमरीका की सयता की कुल उम्र तीन सौ वर्ष है। रूस की सयता की कुल उम्र, जैसा रूस आज है, पचास वर्ष से ज्यादा नहीं है। और हम पांच हजार वर्ष पुरानी कौम और पांच हजार वर्ष पुराना देश, आज बच्चों के सामने भीख मांगने को मजबूर हो गए हैं। हमने आत्मा भी खो दी है और हम शरीर खोने की तैयारी पर भी पहुंच गए हैं!
क्या हम इसको चुपचाप देखते रहें? क्या इस आते हुए आसन्न संकट को हम चुपचाप सहते रहें? और क्या उन राजनीतिज्ञों के हाथ में सारी बात छोड़ दें, जो कि हमारी बीमारी के भी उतने ही अग्रणी हैं, जितनी हमारी राजनीति के। हमारी रुग्णता और हमारे पागलपन और हमारी बीमारी के भी जो नेता हैं, उन्हीं पर ही हम छोड़ दें? क्या उन पर छोड़ देने से इस मुल्क के भविष्य का कोई भी प्रकाशपूर्ण पक्ष प्रकट होता है?
इधर बीस वर्षों में हिंदुस्तान की गति रोज-रोज नीचे गिरी है--हमारी नैतिकता नीचे गई है, हमारा चरित्र नीचे गया है। यह हो भी सकता है कि हमने कुछ मकान बना लिए हैं, यह हो भी सकता है कि हमने कुछ कारखाने खोल लिए हैं, यह हो भी सकता है कि हमने कुछ रास्ते सुधार लिए हैं। लेकिन रास्तों का

क्या होगा और कारखानों का क्या होगा और मकानों का क्या होगा, अगर हमने आदमी को खो दिया?
और आदमी को हम रोज खोते जा रहे हैं। यह बहुत महंगा सौदा है। और केवल मुल्क में जो बिल्कुल अंधे हैं या बिल्कुल बहरे हैं, वे ही केवल इसको बरदाश्त कर सकते हैं और देखते रह सकते हैं। जिनके मन में थोड़ी भी करुणा है और जिनके मन में थोड़ा भी प्रेम है और जिनके हृदय में थोड़ी भी जीवन को बदलने की प्यास और अकुलाहट है, उन्हें कुछ करना है। यह चुनौती इतनी स्पष्ट है कि केवल मुर्दे ही इस चुनौती को बिना लिए रह जाएंगे। जिनके भीतर जीवन है, उन्हें यह चुनौती स्वीकार करनी ही होगी।
एक छोटी सी घटना मुझे याद आती है। एक बहुत बड़े महल में आग लग गई थी। और
उस महल के सामने बहुत लोग इकट्ठे थे। महल का मालिक रोता हुआ, आंसू बहाता हुआ बाहर खड़ा था। उसने सारा होश खो दिया था। उसकी कुछ समझ में न आ रहा था कि क्या हो गया है। नौकर और पड़ोस के लोग भीतर से सामान, तिजोरियां और बहुमूल्य चीजें निकाल कर ला रहे थे। फिर आखिरी क्षण आ गया मकान के जलने का और लोगों ने उस मकान मालिक को पूछा कि कुछ और भीतर तो नहीं रह गया है? उस मकान मालिक ने कहा, मुझे कुछ भी याद नहीं आता, मेरी कुछ समझ में नहीं पड़ता। तुम एक बार भीतर जाकर और देख लो। वे भीतर गए और वहां से छाती पीटते और रोते हुए वापस लौटे। मकान मालिक का इकलौता लड़का भीतर ही जल गया था! वे मकान बचाने में लग गए और मकान का असली मालिक जल कर समाप्त हो गया था!
मैंने जब यह बात सुनी थी, तो मैंने कहा, यह किसी महल में घटना घटी हो या
न घटी हो, लेकिन हमारा जो देश का महल है वहां यह घटना रोज घट रही है। हम सामान बचाने में लगे हैं और सामान का मालिक रोज मरता जा रहा है। और आने वाले बच्चों के लिए हम जो भविष्य खड़ा कर रहे हैं, वह इतना दुखद है कि बच्चे, आने वाली पीढ़ियां हमें सदा-सदा कि लिए कोसेंगी, हमें सदा के लिए दोषी ठहराएंगी। हम सदा के लिए आने वाले इतिहास की अदालत में बहुत मुजरिम की तरह, बहुत अपराधी की तरह खड़े होने को हैं, यह हमें पता होना चाहिए। मुझे यह दिखाई पड़ता है, जो लोग अपराध में भाग न भी लेते हों, लेकिन चुपचाप अपराध को होते हुए देखते हों, वे भी अपराधी ही होते हैं, यह हमें समझ लेना चाहिए। और हम सारे लोग इस बड़े अपराध में सम्मिलित हैं, जो मुल्क के साथ हो रहा है। क्या कुछ नहीं किया जा सकता है? क्या हताशा और निराशा इतनी है कि कुछ
भी नहीं हो सकता है? मुझे ऐसा मानने का कोई भी कारण दिखाई नहीं पड़ता है। मैं बहुत आशा से भरा हुआ हूं और मुझे लगता है कि रास्ते खोजे जा सकते हैं। आदमी के मन को बदलने को, आदमी के चरित्र को बदलने को, उसको प्राण देने को, उसको आत्मा देने के मार्ग खोजे जा सकते हैं। इन मार्गों की खोज में, इन मार्गों की चर्चाओं में इधर दस वर्षों से मुल्क के लाखों लोगों के पास गया हूं और मुझे मेरी आशा रोज-रोज घनीभूत होती दिखाई मालूम पड़ी है। और मुझे यह भी मालूम पड़ा है कि अगर मुल्क के जो सामान्यजन हैं, अगर मुल्क के नेता उन्हें गलत रास्तों पर न ले जाएं तो मुल्क के सामान्यजन के बदलाहट की बहुत आसान स्थिति है, कोई कठिनाई पैदा नहीं हो गई है। लेकिन राजनीति ने इतने जोर से हमारे ऊपर हमला बोला है कि जीवन के सारे अंग उसके नीचे दब गए हैं। जैसे राजनीतिज्ञ ही सब कुछ है और शेष कुछ भी नहीं है। लेकिन स्मरण रहे, राजनीति न तो किसी मुल्क के चरित्र को बनाती है, राजनीति न किसी मुल्क को आत्मा देती है! राजनीति न किसी मुल्क को शांति देती है और न आनंद देती है, और न जीवन को अर्थ और मीनिंग देती है। राजनीति केवल द्वंद्व देती है, संघर्ष देती है और महत्वाकांक्षा देती है। और महत्वाकांक्षा, एंबीशन, जितनी बढ़ती चली जाती है, उतना मुल्क वायलेंट, हिंसक और एक-दूसरे के प्रति शत्रु के भाव से भरता चला जाता है।
यह जो दशा है, यह बदली जा सकती है। हमें जीवन के सारे सूत्रों को एक बार फिर से पुनर्विचार कर लेना जरूरी होगा और मनुष्य के विज्ञान को निर्मित करना जरूरी होगा। और मनुष्य के विज्ञान का एक ही सूत्र अंत में मैं आपसे कह देना चाहता हूं। लंबी बात करनी तो कठिन नहीं है, एक सूत्र बहुत जरूरी है, और वह यह है, इसके पहले कि हम कुछ भी कर सकें, यह समझ लेना बहुत जरूरी है कि हम क्या हो गए हैं?

मैंने सुना है, एक छोटे से स्कूल में एक इंस्पेक्टर परीक्षा के लिए आया था, निरीक्षण के लिए। उस स्कूल की बड़ी कक्षा में जाकर उसने बच्चों से कहा कि तुम्हारी कक्षा में जो तीन विद्यार्थी सबसे श्रेष्ठ हों, नंबर एक, नंबर दो, नंबर तीन; वे खड़े हो जाएं। और पहले नंबर का विद्यार्थी आए और बोर्ड पर आकर सवाल हल करे।
पहले नंबर का विद्यार्थी आया, उसने बोर्ड पर सवाल हल किया और अपनी जगह वापस बैठ गया। फिर नंबर दो का विद्यार्थी आया, उसने भी सवाल हल किया, वह भी अपनी जगह जाकर बैठ गया। फिर नंबर तीन का विद्यार्थी आया। लेकिन नंबर तीन का विद्यार्थी बहुत डरता हुआ आया, बहुत घबड़ाया हुआ आया, बहुत भयभीत आया, और बोर्ड पर वह सवाल हल करने को था कि इंस्पेक्टर ने उसे गौर से देखा, वह पहचान गया यह लड़का धोखा दे रहा है। वह जो नंबर एक आया था, यह लड़का वही था और दुबारा आ गया था।
उस इंस्पेक्टर ने उसे पकड़ा और कहाः बेटे तुम धोखा दे रहे हो! तुम एक दफा आकर सवाल हल कर गए हो। उस लड़के ने कहाः धोखा मैं नहीं दे रहा हूं। लेकिन हमारा नंबर तीन का जो विद्यार्थी है, वह आज क्रिकेट का मैच देखने चला गया है और वह मुझसे कह गया है कि उसकी जगह कोई काम पड़ जाए तो मैं कर दूं। मैं उसकी जगह आया हुआ हूं। उस इंस्पेक्टर ने कहाः पागल, तुझे पता नहीं है कि परीक्षाएं दूसरों की जगह नहीं दी जा सकती हैं? लेकिन उस लड़के ने कहा, हमारे मुल्क में तो हर चीज दूसरों की जगह की जा सकती है। इंस्पेक्टर ने उसे बहुत डांटा, उसे अपनी जगह भेजा।
और फिर वह शिक्षक की तरफ मुड़ा, जो चुपचाप बोर्ड के पास खड़ा था। उसने उस शिक्षक को कहा कि मेरे मित्र, विद्यार्थी धोखा देता था, यह तो ठीक है, लेकिन तुम खड़े क्या देखते थे, तुम क्यों चुप रहे? क्या तुम भी इस धोखे में सम्मिलित हो? उस शिक्षक ने कहाः माफ करें, मैं इस क्लास का शिक्षक नहीं, विद्यार्थियों को पहचानता नहीं। मैं पड़ोस की क्लास का शिक्षक हूं। इस क्लास का शिक्षक क्रिकेट का मैच देखने चला गया है। वह मुझसे कह गया है कोई जरूरत पड़ जाए तो मैं उसकी जगह आकर खड़ा हो जाऊं।
फिर तो इंस्पेक्टर के नाराज होने के लिए काफी मौका था, वह बहुत चिल्लाया। उसने बहुत उपदेश दिए, जैसे कि हमारे मुल्क में उपदेश देने की एक बड़ी बीमारी है। जिसको भी मौका मिल जाए, वह उपदेश दिए बिना नहीं रहता है। उसने बहुत उपदेश दिए। और उस शिक्षक पर बहुत नाराज हुआ और कहा कि तुम्हारी नौकरी छूट सकती है इस बेईमानी के लिए। शिक्षक घबड़ाया, गरीब शिक्षक, उसकी आंखों में आंसू आ गए। वह माफी मांगने लगा। इंस्पेक्टर को दया आ गई, उसने कहा घबड़ाओ मत। यह तुम्हारा भाग्य है कि मैं असली इंस्पेक्टर नहीं हूं। असली इंस्पेक्टर क्रिकेट का खेल देखने चला गया है। मैं उसका मित्र हूं, वह मुझसे कह गया है कि जरा मैं आज निरीक्षण कर लूं!
हम सब एक नाव पर सवार हैं--धोखे की, बेईमानी की, चरित्रहीनता की। पहली
तो बात यह जान लेनी जरूरी है कि हम सब इस पर सवार हैं। इसमें कोई एक आदमी जिम्मेवार नहीं है, हम सब जिम्मेवार हैं--चाहे शिक्षक हो, चाहे संन्यासी हो, चाहे साधु हो, चाहे राजनीतिज्ञ हो, चाहे पत्रकार हो, चाहे कोई भी हो, हम सब सम्मिलित हैं। यह मुल्क के दुर्भाग्य में हम सबका हाथ है। एक तो मैं सारे मुल्क में जाकर लोगों को यह समझा देना चाहता हूं, क्योंकि इसके बिना कोई परिवर्तन की संभावना पैदा नहीं हो सकती है।
और फिर हम क्या करें? अगर यह ज्ञात भी हो जाए कि हम सब सम्मिलित हैं तो दूसरी बात यह समझा देना चाहता हूं कि कम से कम हम अपना हाथ तो खींच लें इस दुर्भाग्य से। इस मुल्क की दुर्घटना में कम से कम मैं सहयोगी तो न रह जाऊं। कम से कम मैं तो अपने को अलग कर लूं। और अगर एक-एक व्यक्ति भी अलग करने का साहस प्रकट करे--और यही धार्मिक मनुष्य का लक्षण है कि वह अपने को अलग करने का साहस प्रकट करता है। वह इतना करेज जाहिर करता है कि अगर सारा मुल्क भी एक बेईमानी में सम्मिलित है, वह अपना हाथ दूर करने की कोशिश करता है। और जो आदमी, थोड़े से लोग भी अगर मुल्क में अपने हाथ इस दुर्भाग्य से दूर कर लें तो इस देश की किस्मत को बदल देना बहुत कठिन नहीं है।

अंधकार कितना ही ज्यादा हो, एक छोटा सा मिट्टी का दीया भी जल जाए, तो अंधकार दूर हो जाता है। अगर एक-एक गांव में एक-एक आदमी का भी जीवन एक जलता हुआ दीया हो, तो हम एक-एक गांव के अंधकार को दूर कर सकते हैं।
ज्यादा बात मुझे आपसे नहीं कहनी है, लेकिन, मनुष्य के भीतर का दीया कैसे जल सकता है, उसके लिए एक पूरा विश्वविद्यालय, एक पूरा विद्यापीठ बनाने की योजना है, ताकि हम आने वाले बच्चों के मन में ज्योति का कोई दीया उनको दान में दे जाएं। हो सकता है मुल्क को गरीब छोड़ जाएं, हो सकता है बहुत बड़े कारखाने न दे जाएं, हो सकता है बहुत बड़े रास्ते और बड़े मकान न दे जाएं, हो सकता है पूरे मुल्क को हम बंबई न बना पाएं, लेकिन वे बच्चे हमारे लिए अनुगृहीत रहेंगे, अगर उनके भीतर हम प्रेम का, शांति का एक छोटा सा दीया जलाने में समर्थ हो जाते हैं।

ये थोड़ी सी बातें मैंने आपसे कहीं। इनको इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूं।

कोई प्रश्न पूछना हो तो पूछो।

मेरे देखे मुल्क की एक बहुत प्राचीन संस्था, संन्यास, विनष्ट हो रही है। इस देश ने दुनिया को जो कुछ भी दान दिया है--उसमें संन्यास ही सबसे बड़ा दान था।
सिकंदर जब हिंदुस्तान आया, तो उसके मित्रों ने, यूनान में उससे कहा था
कि तुम और सब चीजें तो लूट कर भारत से लाओगे, कृपा करके एक संन्यासी को भी लेते आना। हम संन्यासी को भी देखना चाहते हैं, यह आदमी कैसा होता है? यह आदमी कैसा होता है, जो जमीन पर रहते हुए भी आकाश का होता है। यह आदमी कैसा होता है, जो कांटों के बीच रहते हुए भी फूलों को ही जानता है कांटों को नहीं जानता है। यह आदमी कैसा होता है, जो कि दुख के सागर में भी आनंद को उपलब्ध हो जाता है। यह आदमी कैसा होता है, चारों तरफ मृत्यु जहां घिरी है वहां भी आत्मा की अमरता को खोज लेता है। हम इस आदमी को जानना चाहते हैं, उसे तुम लेते आना।
भारत ने संन्यास दिया है जगत को; जैसा पश्चिम ने विज्ञान दिया है जगत को।
पश्चिम ने साइंस दी है; भारत ने रिनन्सिएशन दिया है। और रिनन्सिएशन
के बड़े अर्थ हैं और बहुत गहरे अर्थ हैं, लेकिन भारत का संन्यासी नष्ट हो रहा है। और नष्ट होगा। क्योंकि भारत का संन्यासी दूसरों के ऊपर निर्भर हो गया था। उसने पूरे जीवन के लिए संन्यास ले लिया। पूरे जीवन के लिए संन्यास खतरनाक है। बोझिल है।
तो मेरी दृष्टि में संन्यासी तो चला जाना चाहिए पृथ्वी से, लेकिन संन्यास बच जाना चाहिए। वह कैसे बच सकता है, यह इस संस्था का, इस आश्रम का पहला ख्याल होगा।
तो मेरी दृष्टि यह है कि वर्ष में, बारह महीने में हर आदमी को यह हक होना चाहिए और यह अधिकार, जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए कि वह महीने भर के लिए दुनिया से अलग हो सके। पंद्रह दिन के लिए दुनिया को भूल सके। होना तो यह चाहिए कि चौबीस घंटे में कम से कम दो घंटे या घंटे भर के लिए वह परमात्मा को हो जाए। वह एक घंटे में जो उसे उपलब्ध होगा वह तेईस घंटों को एक अपूर्व शांति से और आनंद से भर देगा। लेकिन अगर यह भी न हो सके तो कम से कम वर्ष में महीने भर के लिए वह संन्यस्त हो जाए।
तो यह संस्था ऐसे लोगों को निमंत्रित करेगी जो वर्ष में महीने भर के लिए आकर चुपचाप संन्यास लेने को तैयार हों। उनके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक, तीनों तरह के स्वास्थ्य की वहां फिकर की जाएगी। और एक महीना वे इस तरह जीएं--जैसे जगत के परम संन्यासी जीए हैं--और फिर वापस अपने घर लौट आएं। इसका और भी परिणाम होगा, क्योंकि जो आदमी एक महीने भी संन्यासी रह ले, उसके बाकी ग्यारह महीनों में भी संन्यास की छाया प्रविष्ट हो जाएगी। वह दुकान पर बैठ कर भी फिर एकदम अधार्मिक नहीं हो सकेगा। वह चोरी करते वक्त भी, उसका

हाथ कंप जाएगा। उसे एक महीने के आनंद की खबर और ख्याल आ जाएगी, वह उसकी स्मृति का हिस्सा हो जाएगा। स्मरण रखें इस बात को। हमारे सामने आज कोई कंपेरिजन नहीं रह गया है। जब हम चोरी करने जाते हैं तो हमें कोई ख्याल ही नहीं आता, क्योंकि हमने जीवन भर चोरी ही की है, और कोई बात हमने जानी ही नहीं। अगर हम कुछ और अनुभव भी जान लें, तो शायद चोरी करते वक्त हाथ कहने लगे कि तुम क्या कर रहे हो। क्रोध करते वक्त हाथ कहने लगे कि तुम क्या कर रहे हो। तुमने वह भी जाना है, जो इससे बिल्कुल उलटा है, उसके आनंद को भी जीआ है।
एक कंपेरिजन पैदा करना चाहता हूं हर आदमी के मन में, उसे एक ख्याल हो जाए कि आनंद, चोरी और बेईमानी से नहीं पैदा होता है, आनंद के पाने के रास्ते कुछ अलग हैं। वह एक दफा उनकी झलक मिल जाए, तो आदमी के लिए हमेशा कसौटी मिल जाती है। उस कसौटी पर नापता और तौलता रहता है। तो ऐसी कसौटी देने के लिए वहां व्यवस्था करने की कोशिश है।
दूसरी बात, चौबीस घंटे हम अपने से बाहर जीते हैं, भीतर का हमें कोई पता नहीं है, बल्कि धीरे-धीरे तो हालत यह हो गई है कि, चूंकि हमें भीतर का पता नहीं है, हम यह भी कहने लगे हैं भीतर जैसी कोई चीज होती ही नहीं, आत्मा जैसी कोई चीज होती ही नहीं।
हेरीगल, एक जर्मन विचारक जापान आया हुआ था। एक बोकोजू नाम के फकीर को उसने मिलने के लिए बुलाया था एक बड़ी होटल में। जैसे हम यहां बैठे हुए हैं, एक सात मंजिल होटल में ऊपर बैठ कर बोकोजू का निमंत्रण किया था। और दस-पच्चीस मित्रों को भोजन पर बुलाया था। अचानक भूकंप आ गया। लोग भागे, हेरीगल भी भागा। द्वार पर भीड़ हो गई, सीढ़ियां संकरी थीं, मकान कंप रहा था, प्राण घबड़ाहट में थे, लेकिन द्वार पर भीड़ हो गई तो वह पीछे रुक गया, उसे ख्याल आया कि जिस मेहमान को हमने बुलाया था, वह साधु कहां गया है? उसने लौट कर देखा, साधु अपनी जगह बैठा है, और उसकी आंखें बंद हैं और उसके चेहरे पर तो पता भी नहीं चलता कि भूकंप आ गया है और प्राण खतरे में हैं। वह बहुत हैरान हो गया, वह लौट कर साधु के पास बैठ गया, उसने सोचा, मैं भी बैठूं, जो इसका होगा वह मेरा भी होगा।
फिर भूकंप खत्म हो गया। उस साधु ने आंख खोली और भूकंप के आने से, जहां बात टूट गई थी, वहीं से बात फिर शुरू कर दी।
हेरीगल ने कहाः मैं भूल गया सब कुछ कि भूकंप के पहले क्या होता था, प्राण बिल्कुल कंप गए, वह मुझे याद भी नहीं है कि हम क्या बात करते थे, उसे छोड़िए। मुझे दूसरी बात पूछनी है, इस भूकंप का क्या हुआ, आप कहां चले गए थे। उस साधु ने कहाः भागे तो तुम भी थे, भागा मैं भी, लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर की तरफ भागा। और तुम गलत भागे, क्योंकि तुम जहां से भाग रहे थे वहां भी भूकंप था और जहां भाग रहे थे वहां भूकंप था। तुम्हारा भागना व्यर्थ था। मैं अपने भीतर उस जगह चला गया, जहां कोई भूकंप कभी भी प्रविष्ट नहीं होता है। मैंने अपने भीतर वह शरण-स्थल खोज लिया है, जहां कोई कंपन बाहर का कभी भी नहीं पहुंचता है। मैं वहीं चला गया था।
तो उस संस्था में हम भीतर की तरफ जाने का विज्ञान भी सिखाना चाहते हैं
कि आदमी भीतर कैसे पहुंच जाए। जहां जीवन का कोई कष्ट, कोई दुख, कोई पीड़ा, कभी नहीं पहुंचती है। और एक बार आदमी अपने भीतर के उस केंद्र पर पहुंच जाए, तो ही उस मंदिर को जान पाता है जो परमात्मा का है। जो बाहर मंदिर और मस्जिद और चर्च बने हैं, वे सब झूठे मंदिर हैं, उनका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। मंदिर है एक मनुष्य के भीतर और उस मंदिर में जो प्रविष्ट हो जाता है वह धन्यभाग को उपलब्ध होता है। उसके जीवन में प्रकाश का, उसके जीवन में आनंद की वर्षा हो जाती है। और उसके बिना कोई आनंद नहीं है। उसके बिना कोई जीवन नहीं है। उसके बिना हम केवल धक्के खाते हैं और चलते चले जाते हैं और बहे चले जाते हैं। उसके बाद ही जीवन में पहली दफे मीनिंग और परपज और जिंदगी एक कविता बनती है और एक सौंदर्य बनती है। वह उसे भी वहां सिखाना चाहते हैं। और यह सिखाया जा सकता है। और यह इतना आसान है जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि मेरा कहना है कि अपने को जानने से ज्यादा आसान और क्या हो सकता है। और अगर हम आसान को भी न जान सकते हों, तो हम और क्या जान सकेंगे और क्या

पहचान सकेंगे और क्या पा सकेंगे। और जो अपने को भी नहीं जानता, उसके और किसी बात के जानने का मूल्य भी क्या है! और उसके किसी बात के जानने का फायदा भी क्या है! प्रयोजन भी क्या है!
तो स्वयं को हम कैसे जान सकते हैं। वह जो आत्म-विद्या है, उस आत्म-विद्या में वहां दीक्षा भी देना चाहते हैं। और फिर मेरा कहना है, इसके लिए पहाड़ों पर जाने की जरूरत नहीं है, इसके लिए भूखा और तपश्चर्या करने की जरूरत नहीं है, इसके लिए कष्ट और नंगे खड़े रहने की जरूरत नहीं है, कांटों पर लेटने की जरूरत नहीं है। जिन लोगों ने ऐसा किया होगा, वे किसी अपनी भीतरी विवशता और विक्षिप्तता के कारण ऐसा किए होंगे। वे कुछ इनसेन रहे होंगे। उनका धर्म से कोई नाता नहीं है।
धर्म का जीवन से विरोध ही नहीं है। जीवन की सुख और सुविधा से भी विरोध नहीं है। धर्म तो जीवन को सब भांति सुखी करना चाहता है--भौतिक अर्थों में भी, आध्यात्मिक अर्थों में भी।
तो कैसे एक मनुष्य सामान्य जीवन में उस दिशा को उपलब्ध हो सकता है, इसके लिए वहां कुछ व्यवस्था करनी है। और इसका पूरा विज्ञान है, इसकी पूरी साइंस है। और उतनी ही साइंटीफिक है जितनी की केमिस्ट्री या फिजिक्स या गणित। बल्कि मेरे ख्याल में उससे भी ज्यादा वैज्ञानिक है। क्योंकि केमिस्ट्री और फिजिक्स में भूल-चूक भी होती है, एक्सेप्शंस भी होते हैं, कानून टूटता भी है। लेकिन क्या आपको पता है, आज तक दुनिया में जितने लोग अपने भीतर गए हैं, उनमें से एक ने भी यह कहा है कि मैं भीतर गया और मैंने आनंद नहीं पाया। चाहे क्राइस्ट, चाहे बुद्ध, चाहे कृष्ण, चाहे महावीर, और चाहे इस देश में, चाहे किसी और देश में; चाहे सफेद चमड़ी का, चाहे गोरी चमड़ी का; चाहे चीन में, चाहे जापान में, जहां भी कोई आदमी भीतर की तरफ झुका है, उसने निरपवाद, बिना किसी एक्सेप्शन के यह घोषणा की है कि मैंने पा लिया वह, जिसे पाने से सब कुछ पा लिया जाता है।
और दूसरी बात भी इतनी ही सच है कि जिन लोगों ने बाहर खोजा है उनमें से
एक भी आज तक यह नहीं कह सका कि मैंने कुछ पा लिया।
सिकंदर जिस दिन मरा, उसकी अरथी जिस नगर में निकली, लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे, देख कर बहुत हैरान हो गए, उसके दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके हुए थे। लोग पूछने लगे, क्या भूल हो गई है कुछ? हाथ हमेशा अरथी के भीतर होते हैं। भिखमंगों के साथ भी भूल नहीं होती, सिकंदर के साथ भूल हो गई है क्या? लेकिन लोगों को पता चला, भूल नहीं हुई। मरने के पहले सिकंदर ने कहा था, मेरे दोनों हाथ बाहर लटके रहने देना, ताकि सब लोग देख लें, मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं, मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं है। हम दरिद्र ही जीते हैं और दरिद्र ही मर जाते हैं।
क्या समृद्ध होकर जीना और समृद्ध होकर मरने का कोई रास्ता है, कोई राज, कोई सीक्रेट है, उसकी वहां कोई व्यवस्था और कोई फिकर करनी है।

एनी मोर क्वेश्चंस?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

अभी कुछ विचार में है, लेकिन संभावना है कि पूना के पास आबोहवा अच्छी होने के ख्याल से अभी वहां सोच रहे हैं। लेकिन इस दो महीने के भीतर तय हो जाएगा। और छह महीने के भीतर मैं तो वहां बैठ जाऊंगा, ताकि फिर आस-पास कुछ काम हो सके। और दो साल के भीतर वह पूरा बन जाए इसकी फिकर है। और आप सबका साथ मिलेगा तो वह आशा पूरी हो सकती है।

प्रश्नः वॉट इ.ज द आउट-लाइन ऑफ दि साइंस दैट यू हैव जस्ट...

उसे तो कहना थोड़ा मुश्किल होगा। मैं माटुंगा आ रहा हूं, पूरी साइंस पर
छह लेक्चर्स रखे हुए हैं। अगर आप आ आएंगे तो बड़ी कृपा होगी। यह स्पष्ट हो

सकेगा। क्योंकि इतने थोड़े में कहना बहुत मुश्किल होगा या कहूंगा तो वह इतना अधूरा होगा कि ठीक नहीं होगा।